योगवाशिष्ठकी अनुक्रमणिका।

योगवाशिष्ठकी अनुक्रमणिका।

इति ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

भूमिका ॥

उस ईश्वर सच्चिदानन्दघन परमात्माका धन्यबादहै कि,जिसने संसारको उत्पन्न करके अपने प्रकाशके लिये वेदान्त आदि विद्या बनाई जिनमें अनेक प्रकारके शास्त्र और मत प्रकट कियेहैं औरजो अनेकप्रकारकी बार्त्तायें संयुक्तहैं । कोईतो कर्म्मकी प्रधानता मानतेहैं कोई ज्ञानको श्रेष्ठ जानतेहैं और कोई कहतेहैं कि,उपासनाही मुक्ति का हेतुहै परन्तु; इस पुस्तकमें कर्म और ज्ञान दोनोंकी प्रधानता लीगईहै। श्रीअग-स्त्यजी महाराजने श्रीमुखसे वर्णनकियाहै कि, न केवल कर्महीं मोक्षका कारणहै और न केवल ज्ञानहीसे मोक्षहोताहै बल्किदोनों मिलकर मोक्षसिद्ध होतीहै क्योंकि;अन्तः-करण निर्मलहुये बिना केवल ज्ञानसेही मुक्ति नहींहोती । कर्म करके प्रथम अन्तः-करण शुद्धहोताहै फिर ज्ञानउत्पन्न होता तब मुक्तिहोती—जैसे पक्षी आकाश में दोनों परोंसे उड़ताहै तैसेहीमोक्ष साधनके लिये कर्म और ज्ञानदोनोंही आवश्यकहैं । इस पुस्तकमें विशेषकरके ज्ञानवार्त्ता विषयक श्रीपरमात्मा रूप दशरथकुमार आनन्द-कन्द श्रीरामचन्द्र और जगत्गुरु श्रीवशिष्ठजीका संबादहै। इसके धारण करनेसे मुक्ति होतीहीहै मोक्षमार्ग्गके दिखानेको यह पुस्तक दीपकरूपहै औरज्ञानऔर योग कीतो स्वरूपहीहै । इसके प्रतिवाक्य और प्रतिपदसे बोधहोकर अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै । कलियुगबासियोंके उद्धारकेनिमित्त आदिकबि विद्वच्छिरोमणि बाल्मीकि जीने इसको संस्कृत पद्यमें निर्माणकिया और इसकेद्वारा संसार सागरके तरनेके निमित्त आत्मज्ञान रूप परमात्माको लखाया यहबातें इस पुस्तक के पढ़ने पढ़ानेसे विदित होती हैं ॥

इस पुस्तकमें छः प्रकरणहैं १ वैराग्य, २ मुमुक्षु, ३ उत्पत्ति, ४ स्थिति, ५ उपश-म और ६ निर्वाण । जिनमें नाम सदृशही विषयभी हैं ॥

अब इसके भाषान्तर होनेका हाल वर्णन कियाजाताहै । अनुमान डेढ़सौबर्ष के व्यतीत हुये कि, पटियाला नगरनरेश श्रीयुत साहबसिंहजी वीरेशकी दो बहिनें बिधवा होगईथीं इसलिये;उन्होंने साधुरामप्रसादजी निरंजनीसे कहाकि; श्रीयोगबाशिष्ठ जो

अति ज्ञानामृतहै सुनाओ तो अच्छीबातहो ! निदान उन्होंने योगबाशिष्ठकी कथा सुनानास्वीकार किया और उन दोनों बहिनोंने दो गुप्त लेखक बैठा दिये ज्योंज्योंपंडित जी कथा कहतेथे वेप्रत्यक्षर लिखते जातेथे। जबइसीतरह कुछ समयमें कथा पूर्ण हुईतो यह ग्रंथभी तय्यार होगया। जोकि इस में कथाकी रीतिथी कुछ उलथेका प्रकार न था और पंजाबी शब्दमिलेहुयेथे प्रथम यह ग्रंथऐसाही मुम्बई नगरमें अगहन सम्बत् १९२२में छपा। जबइसका इसभांति प्रचारहुआ औरज्ञानियोंको कुछ इसका सुख प्राप्तहुआ तोचारोंओरसे यहइच्छा हुईकि, यदि पंजाबी बोलियां और इबारत सुधारकर यहपुस्तक छापीजावेतो अति उत्तमहो। तथाच श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर जनिबैकुंठबासी प्यारेलालशर्म्मा कश्मीरीको आज्ञादी औरउन्होंने बोलियां बदलकर औरजहांतहांकी इबारत सुधारकर उनकी आज्ञाका प्रतिपालनकिया। परमशिष्टपाण्डित रामरत्न बाजपेयिके प्रबन्धसे यहग्रंथ दोबार शुद्धता पूर्व्वक छपचुकाहै और अब कान- पूर निवासी भगवानदास जी बर्म्मांद्वारा सम्पादित होकर फिर तीसरीबार प्रकाश होनेका अवसर मिलाहै—आशाहै कि,पाठकगण इसे देखकर बहुत प्रसन्नहोंगे। ईश्वर ऐसे उपकारक, दयालु, गुणग्राहक और आत्मनिष्ठ मुंशी नवलकिशोरजी सी-आई-ई- अवधसमाचार पत्रसम्पादक की आयुरारोग्य और धनकी वृद्धिकरे जिनके उत्साहसे यह ग्रंथ पाठकों के परमानन्द का कारण हुआ ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्री योगबाशिष्ठे

प्रथमवैराग्यप्रकरणप्रारम्भः ॥

उस सत्‌चित्-आनन्दरूप आत्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थितहोतेहैं एवम् जिससे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन दृश्य; और कर्त्ता, कारण, क्रिया सिद्धहोते हैं;जिसआनन्द के समुद्र के कण से सम्पूर्ण विश्वआनन्दवान्‌है और जिसआनन्दसेसबजीवजीतेहैं। अगस्त्यजीकेशिष्यसुतीक्ष्ण के मनमें एक संशयउत्पन्नहुआ तब वह उसके निवृत्ति करने के अर्थ अगस्त्यमुनि के आश्रम को जा विधिसंयुक्त प्रणामकरके स्थितहुआ और नम्रतापूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन्! आपसर्वतत्त्वज्ञ और सर्वशास्त्रों के ज्ञाताहो एकसंशय मुझको है सो कृपाकरके निवृत्तकरो।मोक्षकाकारणकर्महै या ज्ञान? वा दोनों? इतनासुन अगस्त्यजी बोले कि हेब्रह्मण्य! केवलकर्म्म मोक्षका कारणनहीं और केवलज्ञानसेभी मोक्षप्राप्तनहीं होता; मोक्षकीप्राप्ति दोनोंसे होतीहै। कर्म्म करके अन्तःकरणशुद्ध होताहै मोक्षनहीं होता और अन्तःकरणकी शुद्धि विना केवल ज्ञानसेभी मुक्तिनहीं होती; इससे दोनों से मोक्षकीसिद्धि होतीहै।कर्म्म करके प्रथम अन्तःकरण शुद्धहोता, फिर ज्ञानउपजताहै और तब मोक्षसिद्धहोताहै। जैसे दोनों पङ्खोंसे पक्षी आकाशमार्ग में सुखसे उड़ताहै तैसेहीकर्म्म और ज्ञान दोनों से मोक्षकी सिद्धता होतीहै। हे ब्रह्मण्य! इसी आशय के अनुसार एक पुरातन इतिहासहै वहतुमसुनो। अग्निवेषकापुत्र कारणनाम ब्राह्मण गुरुके निकट जा षटअङ्गों सहित चारों वेद अध्ययनकरके गृहमें आया और कर्म्मसे रहितहोकर तूष्णीहो स्थितरहा अर्थात् संशययुक्तहोकर्म्मोंसे रहितहुआ जब उसके पिताने देखा कि यहकर्म्मोंसे रहितहोकर स्थितभयाहै तो उससेकहाकि, हे पुत्र! कर्म्म की पालना क्योंनहीं करते? तुम कर्म्म के न करनेसेसिद्धताको कैसे प्राप्तहोगे? जिस कारण तुम कर्म्मसे रहितहुयेहो वहकारणकहो? कारणबोला हेपिता! मुझको एकसंशय उत्पन्नहुआ है उससे मैं कर्म्मसे तूष्णी हुआहूं कि वेदमें एकठौर तो कहा है कि, जब तकजीतारहै तबतककर्म्म अर्थात् अग्निहोत्रादिक करताहीरहै और एकठौरकहाहै कि न धनसे मोक्षहोता, न कर्म्मसे मोक्षहोताहै, न पुत्रादिकसे मोक्षहोताहै और न केवल त्यागसेहीमोक्षहोताहै। इनदोनोंमेंक्याकर्त्तव्यहै मुझको यहीसंशयहै सो आपकृपाकरके

निवृत्तकरो और बतलाओ कि, क्या कर्त्तव्यहै। अगस्त्यजी बोले हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जब कारणने पितासे कहा तब अग्निवेष बोले कि, हे पुत्र! एककथाजो पहिले हुईहै उसको सुनकर हृदयमें धारणकर फिर जो तेरीइच्छाहोगी सो करना। एककालमें सुरुचिनामकअप्सरा,जो सम्पूर्णअप्सराओंमें उत्तमथी, हिमालयपर्वतके सुन्दरशिखर पर जहांकि देवता और किन्नरगण, जिनके हृदय कामना से तृप्तथे, अप्सरोंके साथ क्रीड़ाकरतेथे और जहां गङ्गाजीके पवित्र जलकाप्रवाह लहरले रहाथा,बैठीथी। उसने इन्द्रकाएकदूत अन्तरिक्षसे चलाआतादेखा और जब निकटआया तो उससे पूछा; अहो सौभाग्य देवदूत! तुमदेवगणोंमें श्रेष्ठहो; कहांसेआये और अब कहां जावोगे सो कृपाकरकेकहो? देवदूतबोले, हे सुभद्रे! अरिष्टनेमि नामक एक धर्म्मात्माराजर्षिने अपने पुत्रको राज्यदेकर वैराग्यलिया और सम्पूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्यागकरके गन्धमादन पर्वतमें जा तप करनेलगाहै उसीके साथ मेरा एक कार्य्यथा और उस कार्य्यके लिये मैं उसके पासगयाथा अब इन्द्रकेपास जिसकामें दूतहूं सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करनेको जाताहूं। अप्सराने पूछा हे भगवन्! वह वृत्तान्तकौनसाहै मुझसे कहो? मुझको तुम अतिप्रियहो यहजानकर पूछतीहूं और महापुरुषोंसे जो कोई प्रश्नकरताहै तो उद्वेगरहित होकर वे उत्तर देतेहैं। देवदूत बोले हेभद्रे! वहवृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुमसे कहताहूं मनलगाकरसुनो जबउस राजाने गन्धमादन पर्वतमें बड़ा तप किया तब देवताओंके राजा इन्द्रने मुझको बुलाकर आज्ञा दी कि, हेदूत! तुम गन्धमादनपर्वतमें, जो नानाप्रकारकी लतावृक्षोंसे पूर्णहै, विमान, अप्सरा और नानाप्रकारकी सामग्री एवम् गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदङ्गादि वादित्रसङ्गले जाकर राजाको विमान पर बैठाके यहां लेआओ। तबमैं विमान और सामग्री सहित जहांराजाथा आया और राजासेकहा; हेराजन्! तुम्हारे कारण विमान ले आयाहूं; इसपर आरूढ़ होकर तुम स्वर्गकोचलो और देवताओंकेभोगभोगो! इतनासुन राजा ने कहा कि; हेदेवदूत! प्रथम तुम स्वर्गका वृत्तान्त मुझको सुनावो कि, तुम्हारे स्वर्ग में क्या क्या दोष और गुणहैंतो उनको सुनके मैं हृदयमें विचारूं पीछे जो मेरी इच्छा होगी तो चलूंगा मैंनेकहाकि; हे राजन्! स्वर्गमेंबड़े२ दिव्य भोगहैं। वहस्वर्ग जीवबड़े पुण्यसे पाताहै। जो बड़े पुण्यवाले होतेहैं वे स्वर्गके उत्तम सुखको पातेहैं; जो मध्यम पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के मध्यमसुखको पाते हैं और जोकनिष्ठ पुण्यवाले हैं वे स्वर्गके कनिष्ठसुखकोपातेहैं। येतो गुण स्वर्गमेंहैं वे तो तुमसेकहे-और अबस्वर्गके जो दोषहैं वेभीसुनो। हे राजन्! जो आपसे ऊंचे बैठे दृष्टआतेहैं और उत्तमसुखभोगतेहैं उनको देखकेतापकी उत्पत्ति होतीहै क्योंकि; उनकीउत्कृष्टता सहीनहींजातीजो कोई अपनेस- मान सुख भोगतेहैं उनको देखके क्रोध उपजताहै कि ये मेरे समान क्यों बैठेहैं और

जो आपसे नीचे बैठेहैं उनको देखके अभिमान उपजता है कि,मैं इनसे श्रेष्ठहूं । एक और भी दोष है कि, जब पुण्य क्षीण होते हैं तब जीवको उसी कालमें मृत्युलोक में गिरादेते हैं एक क्षणभी नहीं रहनेदेते । यही स्वर्ग के गुणों का दोषहै । हे भद्रे ! जब इस प्रकार मैंने राजासे कहा तो राजाबोला कि हे देवदूत ! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं और हमको उसकी इच्छाभी नहीं । जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानके त्याग करता है तैसेही हम उग्र तप करके यह देह त्याग करदेंगे । हेदेवदूत ! तुम अपने विमानको जहां से लायेहो वहीं लेजावो, हमारा नमस्कार है । हे देवी ! जबइस प्रकार राजाने मुझसे कहा तब विमान अप्सरा आदिक सबको लेके मैं स्वर्ग में गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्रसे कहा । इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सुन्दर वाणी से मुझसे बोला कि हे दूत ! तुम फिर जहां राजाहै वहां जावो । वहसंसारसे उपरान्त हुआहै । उसको अब आत्मपदकी इच्छा हुईहै इसलिये तुम उसको अपने साथ वाल्मीकिजीके पास, जिसने आत्मतत्त्वको आत्माकर जानाहै, लेजाकर मेरा यहसन्देशादेना कि, हे महाऋषी ! इस राजाको तत्त्वबोधका उपदेशकरना क्योंकि, यह बोधका अधिकारीहै । इसको स्वर्ग तथा और पदार्थोंकीभी इच्छानहीं इससे तुम इसको तत्त्व बोधका उपदेश करो कि, तत्त्वबोधको पाके संसारदुःख से मुक्तहो । हे सुभद्रे ! जबइस प्रकार देवराजने मुझसेकहा तब मैं वहां से चलकर राजाके निकट आया और उससे कहा कि; हे राजन् ! तुम संसार समुद्रसे मोक्षहोनेके निमित्त वाल्मीकिजीके पास चलो; वे तुमको उपदेश करेंगे । उसको साथलेकर मैं वाल्मीकिजीके स्थानपर आया औ उस स्थानमें राजाको बैठा और प्रणामकर इन्द्रका सन्देशा दिया । तब वाल्मीकिजीने कहा हे राजन् ! कुशलताहै ? राजाबोले; हे भगवन् ! आप परमतत्त्वज्ञ, और वेदान्त जानने वालोंमें श्रेष्ठहैं मैं आपके दर्शन करके कृतार्थहुआ औरअब मुझको कुशल प्राप्त हुई है । मैं आपसे पूछताहूं कृपा करके उत्तरदीजिये कि; संसार बन्धनसे कैसे मुक्तहो ? इतना सुन वाल्मीकिजी बोले; हे राजन् ! महा रामायण औषध तुम सेकहताहूं उसको सुनकेउसका तात्पर्य्य हृदयमें धारनेका यत्न करना । जबतात्पर्य्य हृदयमें धरोगे तब जीवन्मुक्तहोकर विचरोगे । हेराजन् ! वहवाशिष्ठजी और रामचन्द्रजीका सम्वादहै और उसमें मोक्षका उपाय कहाहै । उसको सुनके जैसे रामचन्द्रजी अपनेस्वभावमें स्थितहुये और जीवन्मुक्तहोके विचरेहैं तैसेही तुमभी विचरोगे । राजा बोले, हे भगवन् ! रामचन्द्रजी कौनथे, कैसेथे और कैसे होकर विचरे सो कृपा करके कहो ? वाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! शापके वशसे सच्चिदानन्द विष्णुजीने, जो अद्वैतज्ञानसे सम्पन्नहैं, अज्ञानको अंगीकारकरके मनुष्य का शरीर धारणकिया । इतना सुन राजाने पूछा, हे भगवन् ! चिदानन्द हरिको शाप किस कारण हुआ और

किसनें दिया सो कहो ? बाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! एक कालमें सनत्कुमार, जो निष्कामहैं, ब्रह्मपुरीमें बैठेथे और त्रिलोकके पति विष्णुभगवान् भी वैकुंठ से उतरके ब्रह्मपुरीमें आये। तब ब्रह्मा सहित सर्वसभा उठके खड़ीहुई और श्री भगवान् का पूजनकिया पर सनत्कुमारने पूजन नहींकिया। इस बालको देखकर विष्णु भगवान् बोले कि,हे सनत्कुमार ! तुमको निष्कामताका अभिमानहै इससे तुम कामसे आतुर होगे और स्वामिकार्त्तिक तुम्हारा नामहोगा ! सनत्कुमार बोलेहे विष्णु ! सर्वज्ञताका अभिमान तुमकोभीहै इसलिये कुछकाल के लिये तुम्हारी सर्वज्ञता निवृत्त होकर अज्ञानता प्राप्तहोगी। हे राजन् ! एकतो यह शापहुआ और एकशाप और भीहै। सुनो एककालमें भृगु की स्त्री जातीरहीथी। उसके वियोगसे वह ऋषी क्रोधित हुआथा उसको देखके विष्णुजीहँसे तब भृगु ब्राह्मणनेशापदिया कि,हेविष्णु ! मेरी तुमने हँसी कीहै सो मेरीनाईं तुमभी स्त्रीके वियोगसे आतुरहोगे और एकदिवस देवशर्म्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान् को शापदिया था सो भी सुनिये। एकदिन नरसिंह भगवान् गङ्गाके तीर परगये और वहां देवशर्म्मा ब्राह्मणकी स्त्रीको देखके नरसिंहजी भयानक रूप देखाके हँसे। निदान उनको देखके ऋषीकीस्त्रीने भयपाय प्राणछोड़दिया। तब देवशर्म्माने शापदिया कि, तुमनेमेरीस्त्रीका वियोगकिया इससे तुमभी स्त्रीका वियोग पावोगे ! हेराजन् ! सनत्कुमार, भृगु और देवशर्म्माके शापसे विष्णु भगवान्ने मनुष्यका शरीर धारण किया और राजादशरथ के घर में प्रकटे। हे राजन् ! यहजो शरीर धारणकिया और आगे जो वृत्तान्तहुआ सो सावधान होकर सुनो। अनुभवात्मक मेरा आत्मा जोत्रिलोकी अर्थात् देवस्वर्ग और पाताल लोकोंका प्रकाशकर्त्ता और भीतरबाहर आत्मतत्त्वसे पूर्णहै उस सर्वात्माको नमस्कारहै। हेराजन् ! यहशास्त्रजो आरंभ कियाहै इसका विषय, और प्रयोजन और सम्बन्ध क्या है और अधिकारी कौन है सो सुनो। यहशास्त्र—सत्—चित् आनंद रूप और अचिन्त्य—चिन्मात्र आत्माको जतताहै यहतो विषयहै, परमानन्द आत्माकी प्राप्ति और अनात्म अभिमान दुःखकी निवृत्ति प्रयोजनहै और ब्रह्मविद्या और मोक्ष उपायसे आत्मपद प्रतिपादन संबंधहै। जिसको यह निश्चयहै कि,मैं अद्वैत—ब्रह्म अनात्म देहसे बांधाहुआ हूं सो किसीप्रकार छूटूं—वह न अति ज्ञानवान्है न मूर्खहै—ऐसा विकृति आत्मा यहां अधिकारीहै। इस शास्त्रका मोक्षउपाय परमानन्दकी प्राप्ति करनेवालाहै। जो पुरुष इसको विचारेगा वह ज्ञानवान् होकर फिर जन्म मृत्युरूप संसारमें न आवेगा। हे राजन् ! यह महारामायण पावन है। श्रवणमात्रसेही सब पाप का नाशकर्त्ता है जिसमें रामकथाहै। यह मैंने प्रथम अपने शिष्य भारद्वाजको सुनाई थी एकसमय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरेपास आया और मैंने उसको उपदेश कियाथा।वह

उसको सुनके वचनरूपी समुद्रसे साररूपी रत्न निकाल और हृदयमें धरके एकसमय सुमेरु पर्व्वत परगया । वहां ब्रह्माजी बैठेथे,उसने उनको प्रणामकिया और उनके पास बैठकर यहकथा सुनाई । तब ब्रह्माजीने प्रसन्नहोकर उससेकहा हेपुत्र ! कुछ वर मांग;मैं तुझपर प्रसन्न हुआहूं ! भारद्वाजने,जिसका उदार आशयथा, उनसे कहा;हे भूत;भविष्य के ईश्वर ! जोतुम प्रसन्नहुयेहो,तो यह वरदो कि,सम्पूर्ण जीव संसार दुःखसे मुक्तहों और परमपदपावें और उसीका उपायभीकहो ! ब्रह्माजीने कहा हेपुत्र! तुम अपने गुरु वाल्मीकिजीके पासजावो ! उसने आत्मबोध महारामायण शास्त्रका जो परमपावन और संसार समुद्रके तरनेका पुलहै आरम्भ कियाहै । उसको सुनकर जीव महामोह संसार समुद्रसे तरेंगे । निदान परमेष्ठी ब्रह्मा जिनकी सर्वभूतों के हित में प्रीति है आपही भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रम में आये और मैंने भले प्रकार से उनका पूजन किया । उन्होंने मुझसे कहा , हे मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि ! यहजो तुमने राम के स्वभाव के कथन का आरंभ किया है इस उद्यमका त्याग न करना; इसकी आदिसे अंतपर्यंत समाप्ति करना क्योंकि; यह मोक्ष उपाय संसाररूपी समुद्रके पार करनेको जहाजहै और इससे सब जीव कृतार्थ होंगे ! इतना कहकर ब्रह्माजी, जैसे समुद्रसे चक्र एकमुहूर्त्त पर्यंत उठके फिरलीन होजावे तैसेही अंतर्द्धान होगये । तब मैंने भारद्वाज से कहा, हेपुत्र ! ब्रह्माजीनेक्या कहा ? भारद्वाज बोले हे भगवन् ! ब्रह्माजीने तुमसे यह कहा कि, हेमुनियोंमें श्रेष्ठ! यहजो तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यमकियाहै उसका त्याग न करना; इसे अंतपर्यन्त समाप्ति करना क्योंकि; संसार समुद्रकेपार करनेको यह कथा जहाजहै और इससे अनेकजीव कृतार्थ होकर संसार संकट सेमुक्तहोंगे। इतना कहकर फिर वाल्मीकिजी बोले , हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब उनकी आज्ञानुसार मैंने ग्रन्थबनाकर भारद्वाजको सुनाया । हेपुत्र ! वशिष्ठजीके उपदेशको पाकर जिस प्रकार रामजी निश्शंकहो विचरे हैं तैसेहीतुमभी विचरो । तबउसने प्रश्नकिया कि हेभगवन्! जिसप्रकार रामचन्द्रजी जीवन्मुक्त होकर विचरेहैं वह आदिसे क्रम करके मुझसे कहिये ? वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशल्या, सुमित्रा और दशरथ ये आठतो जीवन्मुक्त हुयेहैं और आठ मंत्री, अष्टगुण, और वशिष्ट वामदेवसे आदि अष्टविंशति जीवन्मुक्तहो विचरेहैं उनके नाम सुनो । रामजीसे लेकर दशरथ पर्यन्त आठतो ये कृतार्थ होकर अविरोध परम बोधवान् हुयेहैं और १ कुंतभासी, २ शतवर्धन,३सुखधाम, ४ विभीषण, ५ इन्द्रजित्, ६ हनुमान्, ७ वशिष्ठ, और ८ वामदेव ये अष्टमंत्री निश्शंकहो चेष्टा करते भये और सदा अद्वैतनिष्ट हुयेहैं । इनको कदाचित् स्वरूपसे द्वैतभाव नहीं फुराहै ॥ येअनामय पदकीस्थितियें तृप्त रहकर केवल चिन्मात्र

शुद्धपद परमपावनताको प्राप्त हुयेहैं॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यकथारंभवर्णनोनाम प्रथमस्सर्गः॥ १॥

भारद्वाजने पूछा हेभगवन्! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसीहै और रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुयेहैं वह आदिसे अंत पर्यंत सबकहो? वाल्मीकिजी बोले, हे पुत्र! यहजगत् जोभासताहै सो वास्तविक कुछनहीं उत्पन्नहुआ;अविचार करके भासताहै और बिचार कियेसे निवृत्त होजाताहै। जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो भ्रमसेहीहै यदिबिचार करके देखिये ते नीलताकी प्रतीतिदूर होजातीहै तैसे हरि अविचारसे जगत्भासता है और बिचारसे लीन होजाताहै। हे शिष्य! जबतक सृष्टिका अत्यन्त अभावनहीं होता तबतक परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। जब दृश्यका अत्यंत अभाव होजावे तब शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहतेहैं परन्तु मैं तुमको तीनोंकालका अभाव कहताहूं। जब इस शास्त्रको श्रद्धासंयुक्त आदिसे अंततक सुनकर धारणकरे तब भ्रान्ति निवृत्ति होजावे और अव्याकृत पदकीप्राप्तिहो। हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्धहै। इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना यहीमुक्तिहै।इसके बंधनका कारण वासनाहै औरबासनासेही भटकता फिरताहै।जबबासनाकाक्षयहोजायतब परमपदकी प्राप्तिहो। बासनाका एक पुतलाहैउसका नाम मनहै। जैसे जल शरदीकी दृढ़जड़ता पाके बरफ होजाताहै और फिर सूर्य्यके तापसे पिघलकर जलहोताहै तो केवल शुद्धजलही रहताहै तैसेही आत्मारूपी जल है, उसमें संसारकी सत्यतारूपी जड़ता शीतलताहै और उससे मनरूपी बरफका पुतलाहुआहै। जब ज्ञानरूपीसूर्य्य उदयहोगा तबसंसारकी सत्यतारूपी जड़ता और शीतलता निवृत्त होजावेगी। जब संसारकी सत्यता और बासना निवृत्तहुई तब मन नष्ट होजावेगा और जबमन नष्टहुआ तो परमकल्याणहुआ। इससे इसके बन्धनका कारण बासनाहीहै और बासनाके क्षय होनेसे मुक्तिहै। वहबासना दो प्रकारकीहै-एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध। अशुद्ध बासनासे अपने बास्तविक स्वरूपके अज्ञानसे अनात्मा जो देहादिकहैं उनमें अहंकार करताहै और जब अनात्ममें आत्म अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी बासना उपजतीहैं जिससे घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमतारहता है। हेसाधु! यहजो पञ्चभूतका शरीर तुमदेखतेहो सोसब बासना रूपहै और बासनासेही खड़ाहै। जैसे मालाकेदाने धागेके आश्रयसेगुंधे होते हैं और जब धागा टूटजाताहै तब न्यारे २ होजातेहैं और नहीं ठहरते तैसेही बासनाके क्षयहुये पञ्चभूतका शरीर नहीं रहता। इससे सबअनर्थोंका कारण बासनाही है शुद्ध बासनामें जगत्का अत्यन्त अभाव निश्चयहोताहै। हे शिष्य! अज्ञानी का बासनासे फिर निश्चय जन्मका कारणहोजाताहै और ज्ञानीकी बासना फिरजन्मके कारणसे नहीं होतीहै॥ जैसे कच्चा

बीज फिरउगताहै और जो दग्धहुआहै सो फिर नहीं उगता तैसेही अज्ञानी की वासना रससहितहै इससे जन्मका कारणहै और ज्ञानी की बासना रसरहितहै सो जन्मकाकारणनहीं। ज्ञानीकीचेष्टा स्वाभाविक गुणसेहोतीहै। वहकिसी गुणसे मिलके अपनेमें चेष्टानहीं देखता। वह खाता,पीता,लेता, देता, बोलता, चलता एवम् और २ व्यवहारकरताहै पर अन्तःकरणमें सदा अद्वैत निश्चयकोधरताहै कदाचित् द्वैतभावना उसको नहीं फुरती। वह अपने स्वभाव में स्थितहै इससे निर्गुण और अरूपकी चेष्टा भी उसे जन्मका कारण नहींहै। जैसे कुम्हारके चक्रको जबतक घुमावे तब तकफिरता है और जब घुमानाछोड़दिया तबस्थीयमान गतिसे उतरते२ स्थिररहजाताहै तैसेही जबतक अहङ्कार सहित बासना होतीहै तबतक जन्मपाताहै और जब अहङ्कारसे रहितहुआ तब फिर जन्मनहींपाता। हेसाधु! इसअज्ञानरूपी बासनाके नाशकरनेको एक ब्रह्मविद्याही श्रेष्ठउपायहै जो मोक्षउपायकशास्त्रहै। यदिइसेछोड़ और शास्त्ररूपी गर्त्त में गिरेगा तो कल्पपर्यंत भी अकृत्रिम पदको न पावेगा और जो ब्रह्मविद्या का आश्रय करेगा वह सुखसे आत्मपदको प्राप्तहोगा। हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय रामजी और बशिष्ठजीकासंबादहै, यह बिचारने योग्यहै और बोधका परमकारणहै। इसे आदिसे अन्तपर्यन्त सुनो और जैसे रामजी जीवन्मुक्तहो बिचरेहैं सोभी सुनो। एक दिन रामजी अध्ययनशालासे बिद्या पढ़के अपने गृहमेंआये और सम्पूर्णदिन बिचार सहित व्यतीत किया। फिर मनमें तीर्थ ठाकुरद्वारेका संकल्प धरकर अपने पिता दशरथ के पास, जो अति प्रजापालकथे, आये और जैसे हंस सुन्दरकमलको ग्रहणकरे तैसेही उन्होंने उनकाचरणपकड़ा। जैसे कमलके फूलके नीचे कोमलतरैयां होतीहैं और उन तरैयों सहितकमलको हंसपकड़ताहै तैसेही दशरथजीकी अंगुलियों को उन्होंने ग्रहणकिया और बोले हेपिता! मेराचित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारा के दर्शन कोचाहताहै। आपआज्ञाकीजिये तो मैंदर्शनकरआऊं। मैंतुम्हारापुत्रहूं, मुझेतुम्हारी सेवा करनी योग्यहै पर आगे मैंने कभी नहीं कहा यहप्रार्थना अब की है इससे यह वचन मेरा न फेरना क्योंकि, ऐसात्रिलोकी में कोईनहीं है कि, जिसका मनोरथ इस घरसे सिद्धनहुआ, इससे मुझको भी कृपाकरआज्ञादीजिये। इतनाकहकर बाल्मीकि जी बोले, हे भारद्वाज! जिससमय इसप्रकार रामजीनेकहा तब बशिष्ठजी पास बैठेथे उन्होंनेभी दशरथसेकहा, हे राजन्! इनका चित्तउठाहै रामजीको आज्ञादो कि, तीर्थ करआवें और इनकेसाथ सेना, धन, मंत्री और ब्राह्मणभी दीजे कि, बिधिपूर्वकदर्शन करें तब महाराजदशरथने शुभमुहूर्त्त देखाकर रामजीकोआज्ञादी॥ जब वे चलनेलगे तो पिता और माता के चरणोंपड़े और सबको कंठ लगाकर रुदन करनेलगे। इस प्रकार सबसे मिलकर लक्ष्मण आदि भाई, मंत्री और बशिष्ठ आदि ब्राह्मण जो बिधि

जाननेवाले थे और बहुतधन और सेना साथ ली और दानपुण्य करते हुये गृहके बाहर निकले। उससमय वहांके लोगों और स्त्रियोंने रामजीके ऊपर फूलों और कलियोंकी मालाकी, जैसे बरफ बरसतीहै, तैसीही बर्षाकी और रामजीकी मूर्त्ति हृदय में धरली। इसी प्रकार रामजी वहांसे ब्राह्मणों और निर्धनों को दान देते गंगा, यमुना, सरस्वतीआदि तीर्थोंमें बिधिपूर्वक स्नानकर पृथ्वीकेचारोंओर पर्यटनकरतेरहे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में दानकिया और चारों ओर समुद्र के स्नान किये। सुमेरु और हिमालय पर्वतपरभी गये और शालग्राम बद्री, केदार, आदि में स्नान और दर्शन किये। ऐसेही सब तीर्थ स्नान, दान,तप, ध्यान और विधिसंयुक्त यात्राकरते २ एकबर्ष में अपने नगरमें आये॥

इतिश्री योगवाशिष्ठेवैराग्यतीर्थयात्रावर्णनंनामद्वितीयस्सर्ग्गः॥ २॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जबरामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यापुरी में आये तो नगरबासी पुरुष और स्त्रियोंनेफूल और कलीकी वर्षाकी, जयजयशब्द मुख से उच्चारने लगे और बड़े उत्साह को प्राप्तभये जैसे इन्द्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आता है तैसेही रामचन्द्रजी अपने घरमें आये। रामजीने पहिलेराजा दशरथ और फिर बशिष्ठजीको प्रणाम किया और सब सभाके लोगोंसे यथायोग्य मिलके अन्तःपुर में आ कौशल्याआदि माताओं को यथायोग्य नमस्कारकिया और भाई, बान्धव, कुटुम्बसे मिले। हे भारद्वाज! इसप्रकार रामजीके आनेका उत्साह सातदिन पर्य्यन्त होता रहा। उस अन्तर में कोई मिलने आवे उससे मिलते और जो कोई कुछ लेने आवे उनको दान पुण्य करते थे अनेक बाजेबजतेथे और भाटआदि बन्दीजन स्तुति करते थे। तदनन्तर रामजी का यह आचरण हुआ कि, प्रातःकाल उठ के स्नान, सन्ध्यादिक सत्कर्म कर भोजन करते और फिरभाई बन्धुओं को मिल अपने तीर्थकी कथा और देवद्वार के दर्शनकी वार्त्ता करतेथे निदान इसीप्रकार उत्साह से दिनरात बिताते थे एकदिन रामजी प्रातःकाल उठके अपनेपिता राजादशरथ के निकटकि, जिनका तेज चन्द्रमा के समानथा, गये। उससमय वशिष्ठादिक की सभा बैठीथी वहां बशिष्ठजीके साथ कथा वार्त्ताकी और राजादशरथने उनसे कहाकि, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जायाकरो। उससमय रामजीकी अवस्था सोलह बर्षसे कई महीने कमथी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाईसाथथे परभरतजी नहानेकोगयेथे। निदानउन्हीं के साथ नितचर्चा हुलासकर और स्नान, सन्ध्यादिक नित्यकर्म कर के भोजन और शिकार खेलनें जातेथे। वहां जो जीवोंको दुःख देनेवाले जानवर देखते उनको मारते और और लोगों को प्रसन्न करतेथे। दिनको शिकार खेलनेजाते और रात्रि को बाजे निशान सहित अपने घरमें आतेथे इसी प्रकार बहुतदिन बीते एकदिन रामजी

बाहर से अपने अन्तःपुर में आके शोकसहित स्थित भये । हेभारद्वाज ! राजकुमार अपनी सब चेष्टा और रससंयुक्त इन्द्रियों के विषयोंको त्याग बैठे और उनका शरीर दुर्बल होकर मुखकी कान्ति घटगई । जैसे कमल सूखके पीत वर्ण होजाता है तैसेही रामजी का मुखपीला होगया और जैसे सूखे कमल पर भँवरे बैठते हैं तैसेही सूखे मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे । जैसे शरत्काल में ताल निर्मलहोता है तैसेही इच्छारूपी मलसे रहित उनका चित्तरूपी ताल निर्मल होगया और दिन पर दिन शरीर निर्बल होतागया वह जहां बैठें तहांही चिन्ता संयुक्त बैठेरहजावें और हाथपर चिबुकधरके बैठें । जबटहलुवे मंत्री बहुत कहें कि, हे प्रभो ! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआ है अब उठो तब उठकर स्नानादिक करें अर्थात् जोकुछ खाने,पीने, बोलने, चलने और पहिरनेकी क्रियाथी सोसब उन्हें बिरस होगईं। तब लक्ष्मण और शत्रुघ्नभी रामजीको संशययुक्त देखके उसीप्रकारहो बैठे और राजादशरथ यह वार्त्ता सुनके रामजी के पास आये तो क्या देखा कि रामजी महाकृश होगये हैं । राजाने इस चिन्तासे आतुर हो कि, हाय २ इनकी यह क्या दशाहुई रामजीको गोदमें बैठाया और कोमल सुन्दर शब्दसे पूछनेलगे कि, हेपुत्र ! तुमको क्या दुःख प्राप्तहुआहै जिससे तुमशोकवान् हुयेहो ? रामजीने कहा कि, हे पिता ! हमको तो कोई दुःखनहीं है ! और ऐसेकहके चुपहोरहे । जब इसीप्रकार कुछदिनबीते तो राजा और सब स्त्रियां बड़ीशोक-वान् हुईं । राजा राजमंत्रियोंसे मिलके विचार करनेलगे कि, पुत्रका किसीठौर विवाहकर-ना चाहिये और यहभी विचार किया कि,क्या कारणहै जो,मेरे पुत्र शोकवान् रहते हैं। तब उन्होंनेवशिष्ठजीसे पूछा कि, हेमुनीश्वर ! मेरे पुत्र शोकमें क्यों रहतेहैं ? वशिष्ठजीनेकहा हे राजन् ! जैसे पृथ्वी,जल, तेज, वायु और आकाश महाभूत अल्पकार्यमें बिकारवान् नहींहोते जब जगत् उत्पन्न और प्रलयहोताहै तब विकारवान् होतेहैं तैसेही महापुरु-षभी अल्पकार्य में विकारवान् नहींहोते । हे राजन् ! तुमशोक मतकरो । रामजीकिसी अर्थके निमित्त शोकवान्हुये होंगे;पीछेसे इनको सुखमिलेगा। इतनाकह वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! ऐसेही वशिष्ठजी और राजा दशरथ विचार करतेथे कि, उसीका-लमें विश्वामित्रने अपने यज्ञके अर्थ राजा दशरथके गृहपर आकर द्वारपालसे कहा कि, राजादशरथसे कहो कि,"गाधिके पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़ेहैं"।द्वारपालने आकर राजासे कहा कि,हेस्वामी ! एक बड़े तपस्वी द्वारपर खड़ेहैं और उन्होंने कहाहै कि, राजा दशरथके पास जाकेकहोकि, विश्वामित्र आयेहैं । हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार द्वारपालने आकर कहा तब राजा,जो मंडलेश्वरों सहित बैठाथा और बड़ातेजवान्था, सुवर्णके सिंहासनसे उठ खड़ाहुआ और पैदल चला । राजाकी एकओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी और सुभटकी नाईं मंडलेश्वर स्तुति करतेचले और

जहांसे विश्वामित्र दृष्टिआये वहांसेही प्रणाम करनेलगे । पृथ्वीपर जहां राजा का शीश लगताथा वहां पृथ्वी हीरे और मोतीकी सुन्दर होजातीथी । इसीप्रकारशीश नवाते राजाचले । विश्वामित्रजी कांधेपर बड़ी २ जटा धारणकिये और अग्निके समान प्रकाशमान परमशान्त स्वरूप हाथमें बांसकी तन्द्रीलिये हुयेथे । उनकेचरण कमलोंपर राजा इसभांति गिरा जैसे सूर्य्यपदा शिवजीके चरणारविन्दमें गिरे। और कहा हेप्रभो ! मेरे बड़ेभाग्यहैं जो आपका दर्शनहुआ आजमुझे ऐसाआनंदहुआजो आदि अन्त और मध्यसे रहित अविनाशीहै। हे भगवन् ! आज मेरे भाग्य उदयहुये कि,मैंभी धर्मात्माओंमें गिनाजाऊंगा क्योंकि आपमेरे कुशल निमित्त आयेहैं । हेभगवन् ! आपने बड़ी कृपाकी जो दर्शनदिया । आप सबसे उत्कृष्ट दृष्टि आतेहैं क्योंकि; आप में दोगुण हैं—एकतो यह कि, आप क्षत्रिय हैं पर ब्राह्मणका स्वभाव आप मेंहै और दूसरेयह कि शुभ गुणों से परिपूर्णहो । हे मुनीश्वर ! ऐसी किसीकी सामर्थ्य नहीं कि, क्षत्रियसे ब्राह्मणहो । आपके दर्शनसे मुझे अतिलाभ हुआ । फिर वशिष्ठ जी विश्वामित्रजीके कण्ठ लगके मिले और मंडलेश्वरों ने बहुत प्रणामकिये । तदनन्तर राजादशरथ विश्वामित्रजीको भीतरलेगये और सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर बिधिपूर्व्वक पूजाकी और अर्घ्यपादार्चन करके प्रदक्षिणाकी । फिर वशिष्ठजीने भी विश्वामित्रजी का पूजनकिया और विश्वामित्रजीने उनका पूजनकिया इसीप्रकारअन्योन्य पूजनकर यथायोग्य अपने२स्थानोंपर बैठे तब राजादशरथ बोले हेभगवन् ! हमारे बड़े भाग्य हुये जो आपका दर्शनहुआ । जैसे किसीको अमृत प्राप्तहो वा किसीका मराहुआ बांधव बिमानपर चढ़के आकाश से आवे और उसको मिलनेका आनन्द हो वैसाआनन्द मुझेहुआ । हे मुनीश्वर ! जिस अर्थकेलिये आपआयेहैंवह कृपा करके कहिये और अपना वह अर्थ पूर्णहुआ जानिये । ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझको देना कठिनहै, मेरेयहां सब कुछ बिद्यमानहै ॥ २

इतिश्रीयोगबाशिष्ठेबैराग्यप्रकरणेविश्वामित्रागमनवर्णनंनामतृतीयस्सर्ग्गः॥ ३ ॥

बाल्मीकिजी बोले हेभारद्वाज ! जब इसप्रकार राजानेकहा तो मुनियोंमें शार्दूल बिश्वामित्रजी ऐसे प्रसन्नहुये जैसे चन्द्रमाको देखकर क्षीरसागर प्रसन्नहोताहै। उनके रोम खड़ेहोआये और कहनेलगे हे राजशार्दूल ! तुमधन्यहो ! ऐसेतुम क्योंनकहो। तुम्हारे में दो गुणहैं—एकतो यह कि, तुम रघुबंशीहो और दूसरे यहकि बशिष्ठजी ऐसे तुम्हारे गुरूहैं जिनकी आज्ञामें चलतेहो। अब जो कुछ मेराप्रयोजनहै वहप्रकट करताहूं । मैंने दशगात्र यज्ञका आरम्भ कियाहै; जब यज्ञ करने लगताहूं तब खर और दूषण निशाचर आकर ध्वंस करजातेहैं और मांस,हाड़ और रुधिर डालजातेहैं जिससे वह स्थान यज्ञकरने योग्य नहीं रहता और जब मैं और जगह जाताहूं

तो वहांभी वे उसीप्रकार अपवित्र कर जातेहैं इसलिये उनके नाश करनेकेलिये मैं तुम्हारेपास आयाहूं । कदाचित् यह कहियेकि, तुमभी तो समर्थहो,तो हे राजन् ! मैंने जिस यज्ञका आरम्भ कियाहै उसका अङ्ग क्षमाहै । जोमैं उनको शापदूं तौ वह भस्महो-जावें पर शाप क्रोधविन नहींहोता । जोमैं क्रोधकरूं तो यज्ञ निष्फलहोताहै और जो चुपकररहूं तो राक्षस अपवित्र वस्तु डालजातेहैं । इससे अबमैं आपकी शरणआया हूं । हे राजन् ! अपने पुत्र रामजीको मेरे साथदो कि, वह राक्षसोंको भी मारें और यज्ञभी सुफलहो । यह चिन्ता तुम न करना कि, मेरा पुत्रअभी बालकहै । यह तो महा इन्द्र के समान शूरवीरहै । जैसे सिंहके सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहरसक्ता तैसेहीइ सके सन्मुखराक्षस न ठहर सकेंगे । इसको मेरेसाथ देनेसे तुम्हारा यश और धर्म्म दोनों रहेंगे और मेरा कार्य होगा इसमें सन्देहनहीं । हे राजन् ! ऐसाकार्य त्रिलोकीमें कोई नहीं जो रामजी न करसकें इसीलिये मैं तुम्हारे पुत्रको लियेजाताहूं यहमेरेहाथ से रक्षितरहेगा और कोईविघ्न न होनेदूंगा । जैसे तुम्हारे पुत्रहैं मैं और वशिष्ठजी जानतेहैं किन्तु और ज्ञानवान्भी जो त्रिकालदर्शीहों जानेंगे पर किसीकी सामर्थ्यनहीं जो इनको जानें । हे राजन् ! जो समयपर कार्य्य होताहै वह थोड़ेही परिश्रमसे सिद्ध होताहै और समयविना बहुत परिश्रम कियेसेभी नहींहोता । खर और दूषण बड़े दैत्यहैं और मेरे यज्ञको खंडित करतेहैं । जब रामजी जावेंगे तबवह भागजावेंगे इनके आगे खड़े न रहसकेंगे जैसे सूर्यके तेजसे तारागणका प्रकाश क्षीणहोजाताहै तैसेही रामजी के दर्शनसे वे स्थित न रहेंगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! जब विश्वामित्रजीने ऐसे कहा तब राजा दशरथ चुपहोकर गिरपड़े और एकमुहूर्त्त पर्य्यंत पड़ेरहे ॥

इतिश्री योगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथविषादोनामचतुर्थस्सर्ग्गः ॥ ४ ॥

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! एकमुहूर्त्त उपरांत राजाउठे और अधर्य्यहोकर बोले हे मुनीश्वर ! आपने क्याकहा ? रामजीतो अभीकुमार हैं । अभीतो उन्होंने शस्त्र और अस्त्र विद्या नहीं सीखी बल्कि फूलोंकी शय्यापर शयन करनेवाले; अन्तःपुर में स्त्रियों के पास बैठनेवाले और बालकों के साथ खेलनेवाले हैं । उन्होंने कभी भी रणभूमि नहीं देखी और न भृकुटीचढ़ाके कभी युद्धही किया वह दैत्यों से क्या युद्ध करेंगे ? कभी पत्थर और कमलका भी युद्धहुआहै ? हेमुनीश्वर ! मैंतो बहुत वर्षका हुआहूं । इस वृद्धावस्थामें मेरे घरमें चार पुत्रहुयेहैं; उन चारोंमें रामजी अभी सोल-हवर्षके हुयेहैं औरमेरे प्राणहैं । उनविना मैं एकक्षणभी नहींरहसक्ता, जो तुम उनको लेजावोगे तो मेरे प्राण निकलजावेंगे ! हेमुनीश्वर ! केवल मुझेही उनका इतना स्नेहनहीं किन्तु लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और माताओंकेभी प्राणहैं । जोतुम उनको

लेजावोगे तो सबही मरजावेंगे। जो तुम हमको रामजीकेबियोगसे मारनेआयेहो तो लेजावो ! हेमुनीश्वर! मेरेचित्तमें तो रामजी पूर्णहोरहेहैं उनको मैं आपकेसाथ कैसेदूं ? मैंतो उनको देखदेख प्रसन्न होताहूं रामजीके बियोग से मेरेप्राण कैसेबचेंगे ? हेमुनीश्वर ! ऐसी प्रीति मुझे स्त्री, धन तथा और पदार्थोंकी भी नहीं जैसी रामजीकी है। मैं आपकेबचन सुनकर अति शोकवान् हुआहूं। मेरे बड़े अभाग्य उदयहुये जो आपइस निमित्त आये ! मैं रामजीको कदापि नहीं देसक्ता। जो आप कहिये तो मैं एकअक्षौहिणी सेना, जो अति शूरवीर और शस्त्र अस्त्र विद्यासे सम्पन्नहै साथलेकर चलूं और उनको मारूं परजो कुबेरका भाई और बिश्रवाका पुत्र रावणहो तो उससे मैंयुद्धनहीं करसक्ता। पहिले मैं बड़ा पराक्रमीथा; ऐसा कोई त्रिलोकीमें न था जो मेरे सामने आता पर अब वृद्धावस्था प्राप्तहोकर देहजर्जर होगईहै। हेमुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्यहैं जो आप आये।मैंतोरावणसे कांपताहूं और केवल मैंहींनहींबरन इन्द्रआदि देवताभीउससेकांपते और भयपातेहैं और किसकीसामर्थ्यहै जो उससे युद्धकरे। इस कालमें वह बड़ा शूरबीरहै। जो मेरीही उसके साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्यनहीं तो राजकुमाररामजीकी क्यासामर्थ्यहै?जिनरामजीको तुम लेनेआयेहो वहतो रोगीपड़ेहैं। उनको ऐसी चिन्ता लगीहै जिससे महाकृश होगयेहैं और अन्तःपुर में एकान्त बैठे रहतेहैं। खाना पीना इत्यादि जो राजकुमारोंकी चेष्टाहैं वहभी सब उनको बिसरगईहैं और मैं नहीं जानता कि, उनको क्या दुःखहुआ। जैसे पीतवर्ण कमल होताहै तैसेही उनका मुख होगयाहै। उनको युद्धकी सामर्थ्य कहांहै ? उन्होंने तो अपने स्थानसे बाहरकी पृथ्वीभी नहीं देखीहै। हमारे प्राणवहीहैं उनके बियोगसे हमनहीं जीसक्ते॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथोक्तिवर्णनोनामपञ्चमस्सर्ग्गः ५ ॥

बाल्मीकिजी बोलेकि, जब इसप्रकार दशरथजीने महादीन और अधीर्य्य होकर कहा तो बिश्वामित्रजी क्रोधकरके कहनेलगे कि, हेराजा ! तुमअपने धर्मको स्मरण करो। तुमने कहाथा कि, तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूंगा पर अब तुम अपने धर्म्मको त्यागतेहो। जोतुम सिंहोंके समान होकर मृगोंकी नाईं भागतेहो तो भागो पर आगे रघुबंशी कुलमें ऐसा कोई नहीं हुआ कि, जिसने बचन फेराहो। जो तुम करतेहो सो करो हम चले जावेंगे परंतु यह तुमको योग्य नथा क्योंकि;शून्य गृहसे शून्यही होकर जाताहै। तुम बसतें रहो और राज्यकरतेरहो जैसा कुछहोगा हम समझलेंगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोलेकि, जब इस प्रकार बिश्वामित्रजीको क्रोध उत्पन्नहुआ तो पचासकोटि योजन पृथ्वी कांपनेलगी और इन्द्रादिक देवता भयमान हुये कि, यह क्याहुआ! तब वशिष्ठजी बोले हेराजा ! इक्ष्वाकुकुलमें सब परमार्थी हुयेहैं और तुम अपनाधर्म्म क्यों त्यागतेहो ? मेरे सामने तुमने बिश्वामित्रजी से कहाहै कि, तुम्हारा

अर्थ पूरा करूंगा पर अब क्यों भागतेहो। रामजी को तुम इनकेसाथ करदो; यह तुम्हारे पुत्रकीरक्षाकरेंगे। इसपुरुपके सामने किसीका बल नहीं चलता यह साक्षात् ही कालकी मूर्त्तिहैं जो तपस्वी कहिये तोभी इनके समान दूसरा नहीं है और शस्त्र और अस्त्र विद्याभी इनके सदृश कोई नहीं जानता क्योंकि; दक्ष प्रजापतिने अपनी दोपुत्रियां जिनका नाम जय और सुभगा था बिश्वामित्रजीकोदीथीं जिन्होंने पांच २ सौ पुत्रदैत्योंके मारनेकेलिये प्रकटकिये। वेदोनों इनके सन्मुख मूर्त्ति धारके स्थितहोती हैं इसमे इनको कौनजीत सक्ताहै? जिसकेसाथी बिश्वामित्रजीहों उसको किसीका भय नहीं। आप इनके साथ अपना पुत्र निस्संशयहो करदो किसीकी सामर्थ्य नहीं कि,इनके होते तुम्हारेपुत्रको कुछ कहसके। जैसे सूर्य्यके उदयसे अन्धकारका अभाव होजाता है तैसेही इनकी दृष्टिके देखने से दुःखका अभाव होजाताहै। हेराजन्! इनके साथ तुम्हारे पुत्रको कोई खेद न होगा। तुम इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुयेहो और दशरथ तुम्हारा नामहै; जो तुम ऐसे जब अपनेधर्ममें स्थित न रहे तो और जीवोंसे धर्मकी पालना कैसे होगी? जो कुछ श्रेष्ठपुरुष चेष्टा करतेहैं उनके अनुसार और जीव भी करतेहैं। जोतुम अपने ऐसे वचनोंकी पालना न करोगे तो और किसीसे क्याहोगा? तुम्हारे कुलमें अपने वचनसे कोई नहीं फिरा इससेअपनेधर्मका त्यागनायोग्यनहीं। जोतुम दैत्योंके भयसे शोकवान्हो तोभी न मत करना।कदाचित् मूर्त्तिधारीकालआकर स्थितहो तौभी बिश्वामित्रके होते तुम्हारे पुत्रको कुछ न होगा।तुम शोकमतकरो और अपने पुत्रको इनके साथ करदो। जो तुम अपने पुत्र न दोगे तो तुम्हारा दो प्रकारका धन नष्टहोगा-एक धन यहकि, कूप, वावली और ताल जो बन रहेहैं उनका पुण्य नष्ट होजावेगा और दूसरे यहकि तप,व्रत,यज्ञ,दान,स्नानादिक क्रियाका फलभी नष्ट होकर तुम्हारा गृह निरर्थ होजावेगा। इससे मोह और शोककोछोड़ और धर्मको स्मरणकरके रामजीको इनके साथ करदो तोतुम्हारे सबकार्य सुफलहोंगे। हेराजन्! इसप्रकार जो तुम्हें करनाथा तो प्रथमही विचारकर कहते क्योंकि; विचार विनाकाम करनेका परिणाम दुःख होताहै। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जबइस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तो राजादशरथ धैर्यवान् हुये और भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्यथा उसको बुलाकरकहा हेमहाबाहु!रामजीकोलेआवो। उनकेसाथ जो चाकर बाहर आनेजानेवाला और छलसे रहित था राजाकी आज्ञालेकर रामजीके निकटगया और एकमुहूर्त्त पीछे आकरकहनेलगा हेदेव! रामजी तो बड़ीचिन्तामेंबैठेहैं। जबमैंनेरामजीसेबारंबार कहाकिचालिये तब वे कहनेलगे कि, चलतेहैं। ऐसेहीकह२ चुप होरहतेहैं। दूतकायह वचनसुन राजाने कहाकि,रामजीके मंत्री और सबनौकरोंको बुलावो और जब वे सब निकटआये तो राजाने आदर और युक्तिपूर्वक कोमल और सुन्दरवचन मंत्रीसे इस

भाँति कहा कि हे रामजीकेप्यारे! रामजीकी क्यादशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है सो सबक्रमसे कहो? मंत्री बोला हे देव! हम क्या कहें? हम अतिचिन्तासे केवल आकार और प्राणमात्र दीखतेहैं किन्तु मृतकसमान हैं क्योंकि; हमारे स्वामी रामजी बड़ी चिन्तामें हैं। हे राजन्! जिसदिनसे रघुनाथजी तीर्थ करके आयेहैं उसदिनसे चिन्ताको प्राप्तभयेहैं। जबहम उत्तम भोजन और पान करने और पहिरने और देखनेके पदार्थ लेजातेहैं तो उनको देखके वे किसीप्रकार प्रसन्न नहींहोते। वे तो ऐसी चिन्तामें लीनहैं कि,देखते भी नहीं और जो देखतेहैं तो क्रोधकरके सुखदायी पदार्थों का निरादर करतेहैं। अन्तःपुरमें उनकी माता नानाप्रकारके हीरे और मणिके भूषण देतीहैं तो उनको भी डालदेतेहैं अथवा किसी निर्धन को देदेतेहैं; प्रसन्न किसी पदार्थ में नहीं होते। सुंदर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणों सहित महा मोह करनेवाली निकट आकर उनकी प्रसन्नताके निमित्त लीला और कटाक्ष करतीहैं वे उनको भी विषवत् जानतेहैं वरन जैसे पपीहा और जलको देखते भी नहीं तैसेही वे भी जब अन्तःपुर में जातेहैं तब उनको देखकर क्रोधवान् होतेहैं। हेराजन्!उनको कुछ भलानहीं लगता वे तो किसीबड़ी चिन्तामें मग्नहैं। तृप्तवत्होकर भोजन नहीं करत क्षुधावन्त रहतेहैं-उन्हें न कुछ पहिरने और खाने पीने की इच्छा है, न राज्यकी इच्छाहै और न किसी इन्द्रियोंके सुखकी इच्छाहै वे तो महाउन्मत्तकीनाईं बैठेरहतेहैं और जब हमकोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं तब क्रोधकरते हैं। हमनहीं जानते कि, क्या चिन्ता उनकोहुईहै जो एककोठरी में पद्मासनलगाय हाथपर मुखधरे बैठेरहते हैं। जो कोई बड़ामंत्री आके पूछताहै तो उससे कहते हैं कि,"तुम जिसको सम्पदा मानतेहो वह आपदाहै और जिसको आपदा जानतेहो वह आपदा नहींहै। संसारके नानाप्रकारके पदार्थ जो रमणीय जानतेहो वे सबझूठे हैं पर इसीमें सबडूबेहैं। ये सब मृगतृष्णा के जलवत्हैं; इनको सत्यजान मूर्ख हिरण दौड़ते और दुःखपाते हैं"। हे राजन्! वे कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कुछ उनको सुखदायी नहीं भासता। जो हम हँसीकी वार्ता करते हैं तो वे हँसते भी नहीं। जिसपदार्थको प्रीतिसंयुक्त लेतेथे उसपदार्थको अब डालदेते हैं और दिनपरादिन दुर्बल होतेजाते हैं। जैसे मेघकीबुन्दसे पर्वत चलायमान नहीं होते तैसेही वे भी चलायमान नहीं होते हैं और जो बोलते हैं तो ऐसे कहते हैं कि, न राज्यसत्यहै, न भोग सत्यहै, न यहजगत् सत्यहै, न भ्राता सत्यहै और न मित्र सत्यहै। मिथ्या पदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्नकरते हैं। जिनको सब सत्य और सुखदायक जानते हैं वे बन्धन के कारण हैं। जो कोई राजा अथवा पण्डित इनके पास जाताहै तो उनको देखकर कहतेहैं कि, ये "पशुहैं—आशारूपी फांसीसे बँधेहुये हैं"। हेराजन्! जो कुछ भोग्य पदार्थ हैं उनको देखकर उनका चित्त

प्रसन्न नहीं होता वल्कि देखके क्रोधवान् होते हैं। जैसे पपीहा मारवाड़में भी जावे तो मेघोंकी बुन्दोंको नहीं देखता और खेदवान् होताहै तैसेही रामजी विषयोंसे खेदवान् होते हैं। इससे हम जानते हैं कि, उनको परमपद पानेकी इच्छाहै परन्तु कदाचित् उनके मुखसे नहीं सुना। त्यागका भी अभिमान उन्हें कदाचित् नहीं है क्योंकि कभी गातेहैं और बोलतेहैं तो कहतेहैं "हाय! हाय! मैं अनाथ मारागया! अरेमूर्खो! तुम संसारसमुद्रमें क्यों डूबतेहो? यह संसार परम अनर्थका कारणहै। इसमें सुख कदापि नहीं है इससे छूटनेका उपायकरो"। वह किसीके साथ बोलते नहीं और न हँसते हैं; किसी परमचिन्ता में मग्न हैं। वह किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् भी नहीं होते। जो कोई कहे कि, आकाश में बाग लगाहै और उसमें फूल फूले हैं उनको मैं लेआया; तो उसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते सब भ्रममात्र समझते हैं। उनको न किसी पदार्थसे हर्षहोता न किसीसे शोक होताहै; किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं पर उस चिन्ताके निवारण करनेकी किसी में सामर्थ्य नहीं देखते। हे राजन्! हमको यह चिन्ता लगरही है कि, रामजीको खाने, पहिरने, बोलने और देखने की इच्छा नहीं रही है और न किसी कर्मकीउनको इच्छाहै ऐसा नहो कि, कहीं मृतकहोजावें? जो कोईकहता है कि, तुम चक्रवर्ती राजाहो; तुम्हारी बड़ी आयुर्बलहो और बड़ा सुखपावो तो उसके वचन सुनकर कठोरबोलते हैं। हे राजन! केवल रामजीकोही ऐसी चिन्ता नहीं वरन लक्ष्मण और शत्रुघ्न कोभी ऐसीही चिन्ता लगरहीहै। उनको देखकर जो कोई उनकी चिन्ता दूरकरनेवाला हो तो करे, नहीं तो बड़ी चिन्तामें डूबेरहेंगे। हे राजन्! अब क्या कहतेहो? तुम्हारे पुत्र सबसे विरक्त हो एकवस्त्र ओढ़े बैठेहैं। इससे अबतुम वही उपाय करो जिससे उनकी चिन्ता निवृत्तहो। इतनासुन विश्वामित्रजी बोले हे साधु! जोरामजीऐसेहैं तो हमारे पासलावो, हम उनका दुःख निवृत्त करेंगे। हे राजा दशरथ! तुमधन्यहो; जिनका पुत्र विवेक और वैराग्यको प्राप्तहुआहै। हमतुम्हारे पुत्रको परमपदवी प्राप्तकरेंगे और अभी उनके सबदुःखमिटजावेंगे। हम और वशिष्ठादि एकयुक्तिसे उपदेश करेंगे उससे उनको आत्मपदकी प्राप्ति होगी। तब वहदशा तुम्हारे पुत्रकी होगी कि, वह लोष्टपत्थर और सुवर्णको समान जानेंगे। जोकुछ तुम्हारी क्षत्रियों की प्रकृतिका आचारहै सोवह करेंगे और हृदयमें प्रेमसे उदासी होंगे और इससे तुम्हारा कुल कृतकृत्य रहेगा। तुमरामजीको शीघ्रबुलावो! इतना कहकर वाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! ऐसे मुनीन्द्रके वचन सुनके राजादशरथने मंत्री और नौकरों सेकहा कि, राम, लक्ष्मण औशत्रुघ्नको साथलेआवो! जबमंत्री और भृत्योंने रामजी के पासजाके कहा तो रामजी आये और राजादशरथ, वशिष्ठजी और विश्वामित्र को देखाकि, तीनोंपर चमरहोरहेहैं और बड़े बड़े मंडलेश्वर बैठे हैं। सबनेरामजीको

देखा कि, उनका शरीर कृश होरहाहै। जैसे महादेवजी स्वामिकार्तिकको आतेदेखें तैसेही राजादशरथने रामजी को आतेदेखा। रामजीने वहां आकर राजा दशरथजी के चरण पर मस्तकलगा नमस्कार किया और तैसेही वशिष्ठजी, विश्वामित्र और सभा में जो बड़े बड़े ब्राह्मण बैठेथे उनको भी नमस्कार किया। जो बड़े बड़े मंडलेश्वर बैठेथे उन्होंने उठकर रामजी को प्रणाम किया। राजा दशरथ ने रामजीको गोद में बैठाकर मस्तक चूमा और बहुत प्रेमसे पुलकितहो रामजीसे कहा हे पुत्र! केवल विरक्तता से परमपदकी प्राप्तिनहीं होती। गुरु वशिष्ठजीके उपदेशकी युक्तिसे परम पदको प्राप्तिहोगी। वशिष्ठ जी बोले हे रामजी! तुम धन्य हो और बड़े शूरहो कि, विषयरूपी शत्रु तुमने जीतेहैं। विश्वामित्रजी बोले हे कमलनयन राम! अपनेअन्तःकरण की चपलता को त्यागके जो कुछ तुम्हारा आशयहो प्रकटकर कहो कि, तुम को मोह कैसे हुआ, किस कारण हुआ है और कितनाहै एवं? अब जो कुछ तुमको वांछितहो सोभी कहो हमतुम को उसी पद में प्राप्त करेंगे जिस में कदाचित् दुःख न हो। जैसे आकाशको चूहा नहीं काटसक्ता तैसेही तुमको कदाचित् पीड़ानहोगी। हे रामजी हम तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखनाश करदेंगे। तुमसंशय मतकरो जो कुछ तुम्हारा वृत्तान्त हो सो हम से कहो। इतना कहकर वाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है तैसेही विश्वामित्र के वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुये और अपने हृदयमें निश्चय किया कि, अब मुझ को अभीष्ट पद की प्राप्तिहोगी

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामसमाजवर्णनोनामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

श्रीरामजी बोले हे भगवन्! जो वृत्तान्तहै सो तुम्हारे सन्मुख क्रमसे कहता हूं। मैं राजा दशरथके घरमें उत्पन्न होकर क्रमसे बड़ा हुआ और चारो वेद पढ़करब्रह्मचर्यादि व्रत धारण किये; तदनन्तर घरमें आया तो मेरे हृदय में विचार हुआ कि, तीर्थाटन करूं और देवद्वारोंमें जाके देवोंके दर्शन करूं। निदान मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थोंमें गया और गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान और शालग्राम और केदार आदि ठाकुरोंके विधिसंयुक्त दर्शन करके यहांआया। फिर उत्साहहुआ तब यह विचार आया कि, प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादिक कर्म करके भोजनकरता। जब इसप्रकारसे कुछ दिन व्यतीत हुये तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ जोमेरे हृदयको खैंच लेगया। जैसे नदीकेतटपर तृणवल्ली होतीहै उसको नदीकाप्रवाह खींच लेजाताहै तैसेहीमेरे हृदयमें जो कुछ जगत्की आस्थारूपी वल्लीथी उसको विचाररूपी प्रवाह खींचलेगया। तब मैंने जाना कि, राज्य करके क्याहै, भोगसे क्याहै और जगत् क्याहै—सब भ्रममात्रहैं—इसकी वासना मर्ख रखतेहैं; यह स्थावर जंगम जगत् सबमिथ्याहै। हेमुनीश्वर! जितनेकुछपदार्थहैं वहसब मनसे उत्पन्नहैं। सो मनभी

भ्रममात्रहै अनहोता मन दुखदाई हुआहै । मन जो पदार्थोंको सत्य जानकर दौड़ता है और सुखदायक जानताहै सो मृगतृष्णा के जलवत् है जैसे मृगतृष्णा के जलको देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते २ थकके गिरपड़तेहैं तौभी उनको जल प्राप्त नहीं होता तैसेही मूर्ख जीव पदार्थोंको सुखदाई जानकर भोगनेका यत्न करतेहैं और शांति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंके भोग सर्पवत् हैं जिनका माराहुआ जन्म मरण और जन्मसे जन्मांतर पाता है। भोग और जगत् सब भ्रममात्र हैं उनमें जो आस्था करते हैं वह महामूर्ख हैं मैं विचार करके ऐसा जानताहूं कि सब आगमापायी हैं अर्थात् आतेभी हैं और जातेभी हैं। इससे जिस पदार्थ का नाश न हो वहीपदार्थ पाने योग्य है और इसीकारण मैंने भोगोंका त्यागकियाहै। हे मुनीश्वर! जितने सम्पदारूप पदार्थ भासतेहैं वह सब आपदाहैं; इनमें रंचकभी सुख नहीं। जब इनका वियोग होताहै तब कण्टककी नाईं मनमें चुभतेहैं। जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होतेहैं तब जीव राग द्वेषसे जलता है और जब नहीं प्राप्तहोते तब तृष्णासे जलताहै-इससे भोग दुःखरूपही है जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रञ्चकभी सुख-रूपी छिद्र नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं विषयकी तृष्णामें बहुतकालसे जलता हूं। जैसे हरेवृक्षके छिद्रमें रञ्चक अग्नि धरीहो तो धुवां हो थोड़ा २ जलता रहता है तैसेही भोगरूपी अग्निसे मन जलता रहता है। विषयमें कुछभी सुख नहीं है और दुःख बहुतहै इससे इनकी इच्छाकरनी मूर्खताहै। जैसे खाईके ऊपर तृण और पान होते हैं और उससे खाई आच्छादित हो जातीहै उसको देख हरिण कूदके दुःखपाताहै तैसे-ही मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करताहै और जब भोगता है तब जन्मसे जन्मांतररूपी खाईमें जापड़ताहै और दुःखपाताहै। हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञानरूपी रात्रि में आत्मारूपी धन लूट लेजाताहै पर उसके वियोगसे जीव महादीन रहताहै। जिस भोगके निमित्त यह यत्न करताहै वह दुःख रूपहै उनसे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करताहै वह शरीर क्षणभङ्ग और असारहै। जिस पुरुषको सदाभोगकी इच्छा रहती है वह मूर्ख और जड़ है। उसका बोलना और चलनाभी ऐसाहै जैसे सूखेबांसके छिद्रमें पवनजाताहै और उसके वेगसे शब्द होताहै जैसे थकाहुआ मनुष्य मारवाड़के मार्गकी इच्छा नहीं क-रता तैसेहीदुःखजानकर मैंभोगकी इच्छानहींकरता। लक्ष्मीभी परमअनर्थकारीहै जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती तबतक उसकेपानेका यत्नहोताहै और यह अनर्थ करके प्राप्तहोतीहै। जब लक्ष्मी प्राप्तहुई तबसबसद्गुण अर्थात शीलता, सन्तोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचारदयादिकका नाशकरदेतीहै। जब ऐसेगुणोंका नाशहुआ तबसुख कहांसेहो तबतो परमआपदाही प्राप्तहोतीहै। इसको परमदुःखका कारण जानकर मैंने

त्याग कियाहै। हे मुनीश्वर! इसजीवमें गुणतबतकहै जबतक लक्ष्मी नहींप्राप्तहुई। जब लक्ष्मी की प्राप्तिहुई तब सबगुण नाशहोजाते हैं। जैसे बसन्तऋतुकी मञ्जरी तबतकहरी रहतीहै जबतक ज्येष्ठ आषाढ़ नहींआता और जब ज्येष्ठ आषाढ़आया तब मञ्जरी जलजातीहै तैसेही जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब शुभगुण जलजातेहैं। मधुरबचन तभी तक बोलताहै जबतक लक्ष्मीकी प्राप्तिनहींहै और जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब कोमलताका अभावही कठोरहोजाताहै। जैसे जलपतला तबतक रहताहै जबतक शीतलता का संयोगनहींहुआ और जब शीतलताका संयोगहोताहै तब बरफहोकर कठोर दुःखदायक होजाताहै; तैसे यहजीव लक्ष्मीसे जड़होजाताहै। हे मुनीश्वर! जोकुछ सम्पदाहै वह आपदाका मूलहै क्योंकि; जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहोतीहै तब बड़े २ सुख भोगताहै और जब उसका अभाव होताहै तब तृष्णासे जलताहै और जन्मसे जन्मान्तरपाताहै। लक्ष्मीकी इच्छाही मूर्खताहै। यहतो क्षणभङ्गहै, इससे भोग उपजते और नाशहोतेहैं। जैसे जलसेतरंग उपजते और मिटजातेहैं और जैसे बिजली स्थिरनहीं होती तैसेही भोगभीस्थिरनहीं रहते। पुरुषमें शुभगुण तबतकहैं जबतक तृष्णा का स्पर्शनहीं और जब तृष्णाहुई तब शुभगुणोंका अभाव होजाताहै। जैसेदूधमें मधुरता तबतकहै जबतक उसे सर्पने स्पर्शनहींकिया और जब सर्पने स्पर्शकिया तब वहीदूध विषरूप होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामेणवैराग्यवर्णनंनामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखने मात्रही सुन्दरहै। जब इसकी प्राप्तिहोती है तब सद्गुणोंकानाशकरदेतीहै। जैसे विषकी वल्ली देखनेमात्रही सुन्दरहोतीहै और स्पर्शकियेसे मारडालती है तैसेही लक्ष्मीकी प्राप्तिहुये से जीव आत्मपदसे मृतकहो महादीन होजाताहै। जैसे किसीके घरमें चिन्तामणि दबीहो तो उसको जबतक खोद कर यह नहींलेता तबतक दरिद्री रहताहै तैसेही अज्ञानसे ज्ञानबिना महादीनहोरहताहै और आत्मानन्दको नहींपासक्ता। आत्मानन्दपानेकी नाशकरनेवालीलक्ष्मीहै। इसकीप्राप्तिसे जीव महाअन्धहोजाताहै। हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलितहोताहै तब उसका बड़ाप्रकाश दृष्टिआताहै और जब बुझजाताहै तब प्रकाशका अभावहो जाताहै पर काजलकी समक्षता रहजातीहै; तैसेही जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहोतीहै तब बड़े भोग भुगातीहै और तृष्णारूपी काजल उससे उपजतारहताहै और जब लक्ष्मीका अभावहोताहै तब तृष्णाकी बासना समक्षताछोड़जातीहै। उस बासना तृष्णासे अनेक जन्म और मरण पाताहै कदाचित् शान्तिनहींपाता। हे मुनीश्वर! जब लक्ष्मीकीप्राप्तिहोतीहै तब शान्तिके उपजानेवाले गुणोंका नाशकरतीहै। जैसे जबतक पवननहीं चलता तबतक मेघरहताहै और जब पवनचलताहै तो मेघका अभाव होजाता है

तैसेही लक्ष्मीजीकी प्राप्तिहुये गुणोंका अभावहोताहै और गर्वकी उत्पत्तिहोतीहै । हे मुनीश्वर ! जो शूरहोके अपने मुखसे अपनीवड़ाई न करे सोदुर्लभहै और सामर्थ्य भरकिसीकी अवज्ञा न करे सबमें समबुद्धिराखे सोभी दुर्लभ है तैसेही लक्ष्मीवान् होकर शुभगुणसंयुक्तहोय सोभीदुर्लभहै। हेमुनीश्वर ! तृष्णारूपी सर्पकेविषके बढ़ाने कोलक्ष्मीरूपी दूधहै उसे पीते पवनरूपी भोग के आहार करते कभी नहीं अघाता और महामोहरूपी उन्मत्त हस्ती है उसके फिरनेका स्थानपर्वत की अटवीरूपी लक्ष्मी है और गुणरूपी सूर्य्यमुखी कमलकी लक्ष्मीरूपी रात्रि है और भोगरूपी चन्द्रमुखी कमलोंका लक्ष्मीरूपी चन्द्रमाहै और वैराग्य रूप कमालिनीका नाशकरने वाला लक्ष्मीरूपी वरफहै । और ज्ञानरूपी चन्द्रमाका आच्छादनकरनेवाली लक्ष्मी-रूपीराहुहै और मोहरूपी उलूककी लक्ष्मीरूपी रात्रिहै । दुःखरूपीविजुलीको लक्ष्मी आकाश है और तृणरूपी वल्ली को बढ़ानेवाली लक्ष्मी मेघ है । तृष्णारूपी तर-ङ्गको लक्ष्मी समुद्रहै,तृष्णारूपी भँवरको लक्ष्मी कमलिनी है और जन्मके दुःखरूपी जलका यहलक्ष्मी खड्ढाहै । हे मुनीश्वर ! देखनेमात्र यहसुन्दर लगतीहै यह दुःखका कारणहै । जैसे खड्गकी धारा देखनेमात्र सुन्दरहोतीहै और स्पर्शकियेसे नाशकरती है तैसेही यह लक्ष्मी विचाररूपी मेघका नाशकरनेमें वायुसीहै । हे मुनीश्वर ! यह मैंने विचार देखाहै कि, इसमें कुछभी सुख नहीं सन्तोषरूपी मेघका नाशकरनेवाली लक्ष्मी शरत्कालहै । इस मनुष्यमें गुण तबतक दृष्टिआतेहैं जबतक लक्ष्मीकी प्राप्ति नहींहोती जब लक्ष्मीकी प्राप्तिभई तब शुभगुण नाशहोजातेहैं । हेमुनीश्वर ! लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर इसकीइच्छा मैंनेत्यागदीहै । यहभोगमिथ्यारूपीहै जैसे विजुली प्रकट होके छिपजातीहै तैसेही लक्ष्मीभीप्रकटहोके छिपजातीहै । जैसे जलहै सो हिमहै तैसेही लक्ष्मीकी ज्योति है सो मूर्ख जड़के आश्रयसे है । इसकोछलरूप जानकर मैंने त्यागकियाहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेलक्ष्मीनैराश्यवर्णनंनामाष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

रामजीवोले हे मुनीश्वर ! जैसे पत्रके ऊपर जलकीबुंदनहीं रहती तैसेहीलक्ष्मीभी क्षणभंग है जैसे जलके तरंगहोके नाशहोते हैं तैसेही लक्ष्मीहोके नाशहोती है। हे मुनीश्वर ! पवनको रोंकना कठिनहै पर वह भी कोई रोंकताहै और आकाशका चूर्ण करना अति कठिन है वहभी कोई चूर्ण करडारताहै और विजुली का रोंकना अति कठिन है सोभी कोई रोंकताहै परन्तु लक्ष्मीको कोई स्थिर नहीं रख सक्ता जैसे शश की सींगोंसे कोई मार नहीं सक्ता और आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है जैसे तरंगकी गांठ नहीं पड़ती तैसेही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी विजुलीकी चमकसी है सो होतीहै और मिटभी जाती है और जो लक्ष्मीपाके अमर हुआचहा

उसे महामूर्ख जानना और लक्ष्मी पाकर जो भोगकी वांछा करता है वह महा आपदा का पात्रहै उस का जीनेसे मरना श्रेष्ठ है जीनेकी आशा मूर्ख करते हैं जैसे स्त्री गर्भ की इच्छा अपने नाश निमित्त करती है तैसेही जीनेकी आशा पुरुष अपने नाश निमित्त करते हैं और ज्ञानवान् पुरुष जिनकी परमपदमें स्थिति है और उससे तृप्त हुयेहैं उनका जीना सुखके निमित्तहै उनके जीनेसे औरके कार्य्य भी सिद्ध होते हैं और उनका जीना चिन्तामणिकी नाईं श्रेष्ठहै और जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है और आत्मपदसे विमुखहैं उनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं गर्दभहैं जैसे वृक्ष पक्षी पशु का जीनाहै तैसे उनकाभी जीनाहै। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्रपढ़ताहै और उसने अपने योग्यपद नहींपाया तो शास्त्र उसको भाररूपहै। जैसेऔर भारहोताहै तैसेही पढ़नेकाभी भारहै और जो पढ़के विचार-चर्चा करते हैं औरतिस के सारको नहींग्रहण करते तो यहविचार-चर्चा भी भारहै। हे मुनीश्वर! यह मन आकाश रूपहै। जोमनमें शान्ति न आई तोमनभी उसको भारहै और जो मनुष्य शरीरको पाकर उसका अभिमान नहीं त्यागता तो यह शरीरभी उसको भारही है। इसशरीरका जीना तभीश्रेष्ठहै जब आत्मपदकोपावै अन्यथा जीना व्यर्थहै। आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होतीहै। जैसेजल पृथ्वी खोदनेसे निकलताहै तैसेही आत्मपदकी प्राप्तिभी अभ्याससे होतीहै। जो आत्मपदसे विमुख हो आशा की फाँसीमें फँसेहैं वेसंसारमें भटकते रहतेहैं। हे मुनीश्वर! जैसे संसारके तरंग अनेककालसे उत्पन्नहोके नष्ट होजातेहैं तैसेही यहलक्ष्मी भी क्षणभंगहै। इसकोपाके जो अभिमान करताहै सोमूर्खहै। जैसे बिल्ली चूहेको पकड़नेके लिये पड़ीरहतीहै तैसेही लक्ष्मीउन को नरकमें डालनेके लिये घरमें पड़ीरहतीहै। जैसे अञ्जलीमें जलनहीं ठहरता तैसेही लक्ष्मीभी नहीं ठहरती। ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी और शरीरको पाके जोभोग की तृष्णा करताहै वह महामूर्ख है। वह मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ जीनेकी आशा करताहै। जैसे सर्पके मुखमें मूर्ख मेंडुक पड़के मच्छर खाने की इच्छाकरता है तैसेही जो जीव मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ भोगकी वांछाकरताहै वह महामूर्ख है। जबयुवा अवस्थानदी के प्रवाहकीनाईं चलीजातीहै तब वृद्धावस्था आती है। उसमें महादुःख प्रकट होते हैं और शरीर जर्जर होजाताहै और मरताहै। निदान एकक्षणभी मृत्युइसको नहीं बिसारती। जैसे महाकामी पुरुषको सुन्दर स्त्रीमिलती है तो उसके देखनेका त्याग नहीं करता तैसेही मृत्यु मनुष्यको देखेबिना नहीं रहता। हे मुनीश्वर! मूर्खपुरुषका जीना दुःखके निमित्तहै। जैसे वृद्ध मनुष्यका जीना दुःखका कारणहै तैसेही अज्ञानीका जीना दुःखकाकारणहै। उसके बहुतजीने से मरनाश्रेष्ठहै। जिस पुरुषने मनुष्य शरीर पाके आत्मपद पानेका यत्ननहीं किया उसने अपना आप नाश किया और वहआत्म-

हत्यारा है । हेमुनीश्वर ! यहमाया बहुत सुन्दर भासतीहै पर अंतमें नाशहोजातीहै। जैसे काष्ठको भीतरसे घुनखाजाताहै और बाहरसे बहुत सुन्दर दिखताहै तैसेही यह जीव बाहरसे सुन्दर दृष्टि आताहै और भीतरसे उसको तृष्णा खाजातीहै । जोमनुष्य पदार्थको सत्य और सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करताहै वह सुखीनहीं होताहै । जैसे कोई नदीमें सर्पको पकड़के पार उतराचाहे तो पार नहीं उतरता मूर्खतासे डूबेहीगा तैसेहीजो संसारके पदार्थोंको सुखरूप जानकर आश्रय करताहै सो सुखनहीं पाता संसार समुद्रमें डूबजाताहै। हेमुनीश्वर ! यह संसार इन्द्रधनुषकी नाईं है । जैसे इन्द्रधनुष बहुत रंगका दृष्टिमें आताहै पर उससे अर्थ कुछसिद्ध नहींहोता तैसेही यह संसार भ्रममात्रहै इसमें सुखकी इच्छारखनी व्यर्थहै। इसप्रकार जगत्को मैंने असतरूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा कीहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसंसारसुखनिषेधवर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामजीबोले हे मुनीश्वर ! अहङ्कार अज्ञानसे उदय हुआहै । यह महादुष्ट है और यही परम शत्रुहै । इसने मुझको दबाडालाहै पर मिथ्याहै और सब दुःखोंकी खानिहै । जबतक अहङ्कार है तबतक पीड़ाकी उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जोकुछ मैंने अहङ्कार से भजन और पुण्यकिया, जो कुछ लिया दिया और जो कुछ किया वहसब व्यर्थहै । इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहींहै । जैसे राख में आहुति धरी व्यर्थ होजातीहै तैसेही मैं इसे जानताहूं । जितने दुःख हैं उनका बीज अहंकारहै । जब इसका नाश हो तब कल्याण हो । इससे आप इसके निवृत्ति का उपाय कहिये । हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है उसके त्याग करनेमें दुःख होताहै और जो वस्तु नाशवान्है और भ्रमसे दिखतीहै उसके त्याग करनेमें आनन्द है । शान्तिरूप चन्द्रमाके आच्छादन करनेको अहंकाररूपी राहुहै जब राहु चन्द्रमा को ग्रहणकरताहै तो उसकी शीतलता और प्रकाश ढपजाताहै। तैसेही जब अहंकार उपजताहै तब समता ढपजातीहै । जब अहंकाररूपी मेघगरजके वर्षताहै तब तृष्णारूपी कंटकमञ्जरी बढ़ जातीहै और कदाचित् नहीं घटती। जब अहंकार का नाशहो तब तृष्णा का अभावहो । जैसे जबतक मेघ है तब तक बिजुली है ; जब विवेकरूपी पवन चले तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होके तृष्णारूपी बिजुली नाशहोजाती है और जैसे जबतक तेल और बाती है तबतक दीपक का प्रकाश है जब तेलबाती का नाशहोताहै तब दीपकका प्रकाश भी नाश होजाता है तैसेही जब अहंकार का नाशहो तब तृष्णा का भी नाशहोता है । हे मुनीश्वर ! परम दुःखका कारण अहंकार है। जब अहंकारका नाशहो तब दुःखका भी नाशहोजाय । हे मुनीश्वर ! यह जो मैं राम हूं सो नहीं और इच्छा भी कुछनहीं क्योंकि ; मैं नहीं तो इच्छा किसकोहो ? और

इच्छा हो तो यही हो कि, अहंकारके रहित पदकी प्राप्तिहो। जैसे जनेन्द्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ तैसा मैं होऊं ऐसी मुझको इच्छाहै। हे मुनीश्वर! जैसेकमलको बरफ नाश करताहै तैसेही अहंकार ज्ञानका नाशकरताहै। जैसे व्याधाजालसे पक्षी को फँसाता है और उससे पक्षी दीन होजातेहैं तैसेही अहंकाररूपीव्याधाने तृष्णा-रूपी जाल डालके जीवको फँसायाहै उससे वह महादीनहोगये हैं जैसे पक्षी अन्नके दाने सुखरूप जानकर चुगनेआताहै फिर चुगते२ जालमें फँस बन्धनसेदीन होजाता है तैसेही यह जीव विषयभोग की इच्छा कियेसे तृष्णारूपीजालमें फँसकर महादीन होजाता। इससे हेमुनीश्वर! मुझसे वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाशहो जब अहङ्कार का नाश होगा तब मैं परमसुखी हूंगा। जैसे विन्ध्याचलपर्वतके आश्रयसे उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं तैसेही अहङ्काररूपी विन्ध्याचल पर्वतकेआश्रयसे मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकार के सङ्कल्प विकल्परूपी शब्द करताहै इससे आपवही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाशहो जो अकल्याण का मलहै। जैसे मेघका नाश करनेवाला शरत्कालहै तैसेही वैराग्य का नाश करनेवाला अहङ्कार है। मोहादिक विकाररूप सर्पोंके रहनेका अहङ्काररूपी बिलहै और वह कामी पुरुषों की नाईं है। जैसे कामीपुरुष कामको भोगताहै और फूलकी माला गलेमें डालके प्रसन्न होताहै तैसेही तृष्णारूपी तागाहै और मनरूपी फूलहैं सो तृष्णारूपी तागेके साथ गुहेहैं सो अहङ्काररूपी कामीपुरुष उनको गलेमें डालता है और प्रसन्न होताहै। हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य्यहै उसका आवरण करनेवाला मेघरूपी अहङ्कारहै। जब ज्ञानरूपी शरत्काल आता है तब अहङ्काररूपी मेघ का नाश होजाताहै और तृष्णा-रूपी तुषारका भी नाशहोताहै। हेमुनीश्वर! यह निश्चयकर मैंने देखा है कि, जहां अहङ्कार है वहां सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे समुद्र में सब नदी आके प्राप्त होती हैं तैसेही अहङ्कार में सब आपदा की प्राप्तिहै। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कारका नाशहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेअहङ्कारदुराशावर्णनंनामदशमस्सर्गः॥ १०॥

श्री रामजी बोले हे मुनीश्वर! मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख से जर्जरीभूत होगया है और महापुरुषों के गुण जो वैराग्य, विचार, धैर्य्य और सन्तोष हैं उनकी ओर नहीं जाता-सर्वदा विषय की गरदमें उड़ताहै। जैसे मोरका पंख पवनके लगे नहीं ठहरता तैसेही यह चित्त सर्वदा भटकता फिरताहै पर कुछ लाभ नहीं प्राप्त होता। जैसे श्वान द्वार द्वार पर भटकता फिरता है तैसेही यह चित्त पदार्थोंके पानेके निमित्त भटकता फिरताहै पर प्राप्तकुछ नहीं होता और जो कुछ प्राप्त होताहै उससे तृप्त नहीं होता बल्कि अन्तःकरण में तृष्णा बनी रहतीहै। जैसे पिटारे

में जल भरिये तो वह पूर्ण नहीं होता क्योंकि; छिद्रसे जल निकल जाता है और पिटारा शून्यका शून्य रहताहै तैसेही चित्त भोग और पदार्थों से संतुष्ट नहीं होता सदा तृष्णा ही रहती है। हे मुनीश्वर ! यह चित्तरूपी महामोह का समुद्रहै; उसमें तृष्णारूपी तरङ्ग उठतीही रहती हैं और कदाचित् स्थिर नहीं होतीं। जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण तरङ्ग से तटके वृक्ष वहजाते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें विषय वहजाताहै। वासनारूपी तरङ्ग के वेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान होगया है; इसलिये इस चित्तसे मैं महा दीन हुआहूं। जैसे जलमें पड़ा हुआ पक्षी दीन होजाता है तैसेही चित्त धींवरके वासनारूपी जालमें बँधाहुआ मैं दीनहोगयाहूं। जैसे मृगके समूह से भूली मृगी अकेली खेदमान् होती है तैसेही मैं आत्मपदसे भूलाहुआ चित्तमें खेदवान् हुआहूं। हे मुनीश्वर ! यह चित्तसदा क्षोभवान् रहता है कदाचित् स्थिर नहीं होता। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से क्षोभवान् हुआथा तैसेही यह चित्त सङ्कल्प विकल्पसे खेद पाता है। जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेही में फिरता है तैसे वासना में आया चित्त स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर ! जैसे भारीपवनसे सूखा तृण दूरसे दूर जापड़ता है तैसेही इस चित्तरूपी पवन ने मुझको आत्मानन्दसे दूर फेंकाहै। जैसे सूखे तृणको अग्नि जलाती है तैसेही मुझको चित्त जलाता है। जैसे अग्निसे धूमनिकलता है तैसेही चित्तरूपी अग्निसे तृष्णारूपी धूम निकलता है उससे मैं परमदुःख पाताहूं। यह चित्त हंस नहीं वनता। जैसे राजहंस मिले दूध और जल को भिन्न भिन्न करता है उसकी नाईं मैं अनात्मासे अज्ञानके कारण एकसा होगयाहूं उसको भिन्ननहीं कर सक्ता और जब आत्मपदपानेका यत्न करताहूं तब अज्ञान उसे प्राप्त नहीं करनेदेता। जैसे नदीका प्रवाह समुद्र में जाता है उसको पहाड़ सूधे नहीं चलने देता और समुद्रकी ओर नहीं जाने देता तैसेही मुझकोचित्त आत्माकी ओरसे रोकताहै—वह परम शत्रुहै। हे मुनीश्वर ! वहीउपाय कहिये जिससे चित्तरूपी शत्रुका नाशहो। जैसेमृतक शरीरको श्वान और श्वाननी भोजन करतेहैं तैसेही तृष्णा मेराभोजन करतीरहतीहै। आत्माके ज्ञान विना मैं मृतकसमानहूं। जैसे वालक अपनी परछाहींको वैतालमान करभयपाताहै और जब विचारकरके समर्थहोताहै तब वैतालका भयनहींहोता तैसेही चित्तरूपी वैतालने मेरा स्पर्श कियाहै उससे मैं भयपाताहूं। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी वैताल नष्ट होजावे। हे मुनीश्वर ! अज्ञानसे मिथ्या वैताल चित्तमें दृढ़ होरहा है उसके नाशकरनेको मैं समर्थनहीं होसक्ताहूं। अग्निमें बैठना, बड़े पर्वतके ऊपरजाना और बड़े वज्रका चूर्ण करना मैं सुगम मानताहूं परन्तु चित्त काजीतना महाकठिनहै। चित्तसदाही चलायमान स्वभाववालाहै। जैसे थम्भमें बांधाहुआ वानर कदाचित् स्थिरहो नहीं बैठता तैसेही चित्तवासनाकेमारे कदाचित् स्थिर

नहीं होता। हे मुनीश्वर ! बड़े समुद्रका पान करजाना, अग्निका भक्षण करना और सुमेरुका उल्लघन करनासुगम है परन्तु चित्तका जीतना महाकठिन है जोसदा चल रूप है। जैसे समुद्र अपना द्रवी स्वभाव कदाचित् नहीं त्याग करता, महाद्रवीभूत रहता है और उससे नानाप्रकार के तरंग उठते हैं तैसेही चित्त भी चञ्चलस्वभाव कभीनहीं त्यागता और नाना प्रकार की वासना उपजती रहती हैं। चित्त बालक की नाईं चञ्चल है, सदा विषयकी ओर धाता है; कहीं २ पदार्थकी प्राप्ति होती है परन्तु भीतर सदा चञ्चल रहता है। जैसे सूर्यके उदयहुये दिनहोता है और अस्तहुये से दिननाश होता है, तैसेही चित्त के उदय हुये त्रिलोकीकी उत्पत्ति है और चित्त के लीनहुये से जगत्भी लीनहोजाता है। हे मुनीश्वर ! चित्तरूपी समुद्रहै और वासना रूपी जल है, उस में छलरूपी सर्पहै, जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है और तृष्णारूपी विष स्पर्श करता है उससे मरता है। हेमुनीश्वर ! भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौड़ता है परवह भोग दुःखरूप है। जैसेतृण से आच्छादित खाईं को देखकर मूर्खमृग खान दौड़ता है तो खाईं में गिरकर दुःख पाता है तैसेही चित्तरूपीमृग भोगको सुखजानकर भोगने लगताहै तब तृणरूपी खाईंमें गिरपड़ता है और जन्मजन्मान्तर दुःख भोगता रहता है। हे मुनीश्वर ! यह चित्तकभी २ बड़ागम्भीरभीहो बैठताहै। जैसे चीलपक्षी आकाशमें ऊँचफिरताहै पर जबपृथ्वीपर मांसदेखताहै तो वहांसे पृथ्वीपरआके मांसलेताहै तैसेही यहचित्त तबतक उदारहै जबतक भोगनहीं देखता और जब विषयदेखताहै तबआसक्तहो विषय में गिरजाता है। यहचित्त वासनारूपी शय्यामेंसोयारहताहै और आत्मपदकीओर नहींजागता इसचित्तके जालमें मैं पड़गयाहूं। वहकैसाजालहै कि उसमेंवासनारूपी सूतहै, संसारकी सत्यतारूपी गांठहै और भोगरूपी चूनहै जिसको देखके मैं फँसाहूं और कभी पाताल में और कभी आकाश में वासनारूपी रस्सीसे बंधा घटीयंत्रकी नाईं फिरताहूं इस से हे मुनीश्वर ! तुम वही उपायकहो जिससे चित्तरूपी शत्रुको जीतूं। अब मुझ को किसी भोगकी इच्छा नहीं और जगत्की लक्ष्मी मुझको विरस भासती है। जैसे चन्द्रमा बादलकी इच्छानहीं करता परचतुर्मास में आच्छादित होजाताहै तैसेही मैं भोगकी इच्छानहीं करता और जगत्की लक्ष्मीभी नहीं चाहता परमेरा चित्तही मेरा परमशत्रु है। महापुरुष जब इस के जीतने का यत्नकरते हैं तब परमपद पाते हैं, इससे मुझे वही उपाय कहो जिससे मन को जीतूं। जैसे पर्वतपरके वनपर्वत के आश्रय से रहते हैं तैसेही सबदुःख इसके आश्रयसेरहते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेचित्तदौरात्म्यवर्णनंनामएकादशस्सर्गः॥ ११ ॥

श्रीरामजीबोले हे ब्राह्मण ! चेतनरूपी आकाश में तृष्णारूपी रात्रिआईहै और

उस में काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक उल्लू विचरते हैं । जब ज्ञानरूपी सूर्य उदयहो तबतृष्णारूपी रात्रिका अभाव होजावे और जबरात्रि नष्टहोतब मोहादिक उलूकभी नष्टहों जैसे जब सूर्यका उदय होता है तब बरफ उष्णहो पिघल जाता है तैसेही सन्तोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता पिघलाजाती है। आत्मपद से शून्यचित्त भयानक वन है, उस में तृष्णारूपी पिशाचिनी मोहादिक परिवार अपने साथलिये फिरती रहती है और प्रसन्न होतीहै । हेमुनीश्वर ! चित्तरूपी पर्वतहै उसके आश्रयसे तृष्णारूपीनदीका प्रवाहचलताहै और नानाप्रकारके सङ्कल्परूपी तरङ्गकोफैलाताहै। जैसे मेघकोदेखकर मोर प्रसन्नहोताहै तैसेही तृष्णारूपी मोरभोगरूपी मेघकोदेखकर प्रसन्नहोताहै इससे परम दुःखका मूल तृष्णाहै । जब में किसीसन्तोषादि गुणकाआश्रयकरताहूं तबतृष्णा उसको नाशकरदेती है । जैसेसुन्दर सारङ्गीको चूहाकाटडालता है तैसेही सन्तोषादि गुणको तृष्णानाशकरतीहै । हेमुनीश्वर ! सबसेउत्कृष्ट पदमें विराजनेका में यत्न करताहूं परतृष्णा मुझे विराजने नहीं देती । जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाश में उड़नेका यत्नकरता है परन्तु उड़नहीं सक्ता तैसेही अनात्मपदसे आत्मपद को प्राप्तनहींहोसक्ता । स्त्री, पुरुष, पुत्र और कुटुम्बका उसने जालबिछाया है उसमें फँसाहूं निकलनहीं सक्ता । औरआशारूपी फांसीमें बँधाहुआ कभीऊर्ध्व को जाताहूं और कभी अधःपात होताहूं, घटी यंत्रकीनाई मेरी गतिहै । जैसे इन्द्रका धनुष मलिन मेघ में बड़ा और बहुत रङ्गों से भरा होता है परन्तु मध्य में शून्य है, तैसेही तृष्णा मलिन अन्तःकरण होतीहै सो बड़ीहै और गुणरूपी धागेसे रहितहै ; यह ऊपरसेही देखनेमात्र सुन्दर है परन्तु इस से कुछ कार्य्य नहींसिद्ध होता । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है उससे दुःखरूपी बूंदनिकलते हैं और तृष्णारूपीकाली नागिनहै उसका स्पर्शतो कोमलहै परन्तु विषसे पूर्णहै उसके डससे मृतक होजाताहै तृष्णारूपी बादलहै सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है । जब ज्ञानरूपी पवन चले तब तृष्णारूपी बादलका नाशहोकर आत्मपदका साक्षात्कारहो । ज्ञान रूपी कमलको सङ्कोच करनेवाली तृष्णारूपी निशाहै । उसतृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि में बड़े धीरवान्‌भी भयभीत होतेहैं और नयन वालोंको भी अन्धा कर डालती है। जब यह आतीहै तब वैराग्य और अभ्यासरूपी नेत्रको अन्धाकरडालतीहै । अर्थात् सत्य असत्य विचारने नहीं देती । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकिनीहै वह सन्तोषादिक पुत्रोंको मारडालती है। तृष्णारूपी कन्दराहै उसमें मोहरूपी उन्मत्त हाथी गर्जते हैं। तृष्णारूपी समुद्रहै उसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे तृष्णारूपी दुःखसे छूटूं । हे मुनीश्वर ! अग्नि और खड्गके प्रहार और इन्द्रके वज्रसे भी ऐसा दुःख नहींहोता जैसा दुःख

तृष्णासे होताहै सो तृष्णाके प्रहारसे घायलहुआ मैं बड़ेदुःखकोपाताहूं और तृष्णा-रूपी दीपकजलताहै उसमें सन्तोषादिक पतङ्ग जलजातेहैं जैसे जलमें मछलीरहती है सो जलमें कंकड़ रेत आदिको देख मांस जानकर मुखमें लेती है उससे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहींहोता तैसे तृष्णा भी जो कुछ पदार्थदेखती है उसकेपास उड़ती है और तृप्ति किसीसे नहीं होती तृष्णारूपी एक पक्षिणीहै सो इधर उधर उड़जाती है और स्थिर कभीनहीं होती तृष्णारूपी वानरहै वह कभी किसी वृक्षपर और कभी किसीके ऊपर जाताहै स्थिर कभी नहीं होताहै। जो पदार्थ नहीं प्राप्तहोता उसके निमित्त यत्न करताहै और भोगसे तृप्त कदाचित् नहीं होता जैसे घृतकी आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही जो पदार्थ प्राप्तयोग्य नहीं है उसकीओर भी तृष्णा दौड़-तीहै शान्ति नहीं पाती। हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी उन्मत्त नदीहै वह बहेहुये पुरुषको कहांसेकहां लेजाती है कभी तो पहाड़के बाजूमें लेजाती और कभी दिशामें लेजाती है और तृष्णारूपी नदीहै उसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं तृष्णारूपी नटिनी है और जगत्रूपी अखाड़ा उसने लगाया है उसको शिर ऊंचाकर देखती है और मूर्ख बड़े प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा होताहै तैसेही मूर्ख भी तृष्णाको देखकर प्रसन्न होता है तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है जो पुरुष इसका त्याग करता है तो उसके पीछे लगी फिर-तीही है कभी उसका त्यागनहीं करती तृष्णारूपी डोर है उसके साथ जीवरूपी पशु बँधेहुये भ्रमतेफिरते हैं। तृष्णा दुष्टिनीहै जब शुभ गुण देखतीहै तब उसको मार डालतीहै उसके संयोग से मैं दीन होताहूं जैसे पपीहा मेघको देखकर प्रसन्न होताहै और बूंद ग्रहण करने लगताहै और मेघको जब पवन लेजाता है तब पपीहा दीन होजाता है तैसेहीतृष्णा जबशुभगुणोंका नाशकरतीहै तबमैं दीनहोजाताहूं हेमुनीश्वर! जैसे सूखेतृणको पवन उड़ाकर दूरसेदूर डालताहै तैसेही तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरसेदूर डालदियाहै और आत्मपदसे दूरपड़ाहूं हेमुनीश्वर!जैसे भवँरा कमलकेऊपर औरकभीनीचे बैठताहै और कभी आसपासफिरताहै स्थिर नहीं होता तैसेही तृष्णारूपी भवँरा संसाररूपी कमलके नीचेऊपर फिरताहै कदाचित् नहींठहरता। जैसे मोतीके बांससे अनेकमोती निकलतेहैं तैसेही तृष्णारूपी बांससे जगत्रूपी अनेक मोती निकलतेहैं उससे लोभीकामन पूर्णनहीं होता। तृष्णारूपी डब्बे में अनेक दुःखरूपी रत्नभरेहैं इससे आप वहीउपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्तहो। हेमुनीश्वर ! यह विरागसे निवृत्तहोतीहै और किसीउपायसे नही निवृत्त होती। जैसे अन्धकारका प्र-काश से नाशहोताहै और किसी उपाय से नहीं होता तैसेही तृष्णा का नाश और उपायसे नहीं होता। तृष्णारूपी हल गुणरूपी पृथ्वीको खोदडालताहै और तृष्णा

रूपी वेलि गुणरूपी रसको पीती है । तृष्णारूपी धुर है वह अन्तःकरणरूपी जलमें उछलके मलीन करतीहै । हेमुनीश्वर ! जैसे वर्षाकाल में नदीबढ़तीहै और फिरघट जातीहै तैसेही जब इष्टभोग रूपी जल प्राप्तहोताहै तब हर्षसे बढ़तीहै और जब वह जल घटजाताहै तब सूखके क्षीणहोजातीहै। हेमुनीश्वर! इसतृष्णाने मुझको दीनकिया है । जैसे सूखेतृणको पवन उड़ालेजाताहै तैसेही मुझको भी तृष्णा उड़ातीहै इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णाका नाश होकर आत्मपदकी प्राप्तिहो और दुःखों कानाश होकर आनन्दहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेतृष्णागारुडीवर्णनंनामद्वादशस्सर्गः १२ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! यह अमङ्गलरूप शरीर, जो जगतमें उत्पन्न हुआ है, बड़ा अभाग्यरूपहै और सदा विकारवान् मांस मज्जासे पूर्ण और अपवित्र है । इससे कुछ अर्थ सिद्ध नहींहोता इसलिये इसविकाररूप शरीरकी मैं इच्छानहीं रखता । यह शरीर न अज्ञहै और न तज्ञहै—अर्थात् न जड़है और न चैतन्यहै। जैसेअग्निके संयोगसे लोहा अग्निवत् होताहै सो जलताभीहै परंतु आपनहीं जलता; तैसेही यह देह न जड़है न चैतन्यहै। जड़ इसकारणनहींहै कि, इससे कार्यभी होताहै और चैतन्य इसकारण नहीं कि,इसको आपसे कुछ ज्ञाननहीं होता । इसलिये मध्यमभाव में है क्योंकि; चैतन्य आत्मा इसमें व्यापरहा है पर आपतो अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठासे पूर्ण और विकारवान्है । ऐसीदेह दुःखका स्थान है । इष्टके पायेसे हर्षवान् और अनिष्टके पायेसे शोकवान् होती है इससे ऐसे शरीरकी मुझको इच्छा नहीं । यह अज्ञानसे उपजती है । हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपन फुरताहै सो दुःखका कारणहै । यह संसारमें स्थितहोकर नाना प्रकारके शब्दकरताहै । जैसे कोठरीमें बैठाहुआ बिलाव नानाप्रकार के शब्दकरताहै तैसेही अहंकाररूपीबिलाव देहमेंबैठाहुआ अहंअहंकरताहै चुप कदाचित्नहींरहता। हेमुनीश्वर ! जो किसीके निमित्त शब्दहो सोही सुन्दरहै अन्यथा सब शब्दव्यर्थ हैं । जैसे जयकेनिमित्त ढोलकाशब्द सुन्दरहोताहै तैसेही अहंकारसेरहित जो पदहै सोही शोभनीकहै और सब व्यर्थ हैं । शरीररूपी नौका भोगरूपी रेत में पड़ीहै इसलिये इसका पारहोनाकठिनहै । जबवैराग्यरूपीजलबढ़े और प्रवाहहो और अभ्यासरूपी पतवार का बललगे तब संसार के पाररूपी किनारेपर पहुंचे । शरीररूपी बेड़ाहै जो संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमेंपड़ाहै जिसका बड़ाप्रवाहहै और भोगरूपी उसमेंमगरहैं सो शरीररूपीबेड़ेको पारनहींलगनेदेते; जबशरीररूपीबेड़ेकोवैराग्यरूपी वायु और अभ्यासरूपी पतवारका बललगे तब शरीररूपी बेड़ापारहो । हेमुनीश्वर ! जिसपुरुषने उपायकरके ऐसे बेड़े को संसार समुद्र से पारकियाहै वही सुखीहुआ है

और जिसने नहींकिया वह परम आपदाको प्राप्तहोताहै—वहउस बेड़ेसे उलटाडूबेगा क्योंकि उसशरीररूपी बेड़ेका तृष्णारूपी छिद्रहै उससे संसारसमुद्रमें डूबजाताहै और भोगरूपी मगर इसको खालेताहै। यही आश्चर्यहै कि,बेड़ा अपने निकट नहींभासता और मनुष्य मूर्खता करके आपको बेड़ा मानताहै और तृष्णारूपी छिद्रकरके दुःखपाताहै। शरीररूपी वृक्ष है उसमें भुजारूपी शाखा, उँगली पत्र,जङ्घा थम्भ,मांसरूपी अन्दरका भोगबासना उसकी जड़ और सुख दुःख इसके फूलहैं। तृष्णारूपीघुन उसशरीररूपी वृक्षको खातारहताहै। जबउसमें श्वेतफूललगे तो नाशका समयआताहै अर्थात्मृत्युके निकटबर्ती होताहै। शरीररूपी वृक्षकी भुजारूपीशाखाहैं औरहाथ पांव पत्रहैं। पखने इसके गुच्छे और दांत फूलहैं; जंघा स्थंभ हैं और कर्म जलसेबढ़ जाताहै। जैसेवृक्षसे जल चिकटा निकलताहै तैसेही जल शरीरके द्वारानिकलता रहता है। इसमें तृष्णारूपी विषसेपूर्ण सार्पिणी रहतीहै जो कामनाके लियेइस वृक्षकाआश्रय लेताहै तो तृष्णारूपी सर्पिणी उसको डसतीहै और उसविषसे वह मरजाताहै। हे मुनीश्वर ! ऐसे अमङ्गलरूपी शरीर वृक्षकी इच्छा मुझको नहीं है। यह परम दुःख का कारणहै। जबयह पुरुष अपने परिवार अर्थात् देह, इन्द्रिय,प्राण,मन,बुद्धि और इनमें जो अहंभावहै इसका त्यागकरे तबमुक्तिहो अन्यथा मुक्तिनहीं होती। हे मुनीश्वर ! जो श्रेष्ठ पुरुषहैं वे पवित्र स्थानमेंही रहते हैं अपबित्र में नहीं रहते। वह अपबित्र स्थान यह देहहै और इसमें रहनेवालाभी अपवित्रहै। अस्थिरूपी इसघर मेंईंटेंहैं, रुधिर, मूत्र और विष्ठाका गारालगाहै और मांसकी कहगिलकी है। अहंकाररूपी इसमें श्वपचरहता है, तृष्णारूपी श्वपचिनी उसकी स्त्री और काम, क्रोध, मोह और लोभ इसके पुत्रहैं औरआंतों और विष्ठादिसे भराहुआहै। ऐसे अपवित्र स्थान अमङ्गलरूपी शरीरको मैंअंगीकार नहीं करता यह शरीररहे चाहे न रहे इसके साथ अब मुझे कुछप्रयोजन नहीं। हे मुनीश्वर ! शरीररूपीबड़ागृह है और उसमें इन्द्रियरूपीपशुहैं। जब कोई उसगृहमें पैठताहै तबबड़ी आपदाको प्राप्तहोताहै—तात्पर्य यह कि जो इसमें अहंभाव करताहैतो इन्द्रियरूपी पशु विषयरूपीसींगों से मारते हैं और तृष्णारूपी धूलि उसको मलीन करतीहै हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरको मैं अंगीकार नहीं करता जिसमेंसदाकलह पड़ीरहतीहै और ज्ञानरूपी सम्पदाप्रवेशनहीं होती। शरीररूपी गृहमें तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है; वहइन्द्रियरूपी द्वारसे देखती रहती और सदा कल्पना करती रहतीहै। उससे शम दमादिरूप संपदाका प्रवेश नहींहोता। उस घर में एक सुषुप्तिरूप शय्या है जब उसके ऊपर वह विश्राम करता है तब वह कुछ सुखपाता है परन्तु तृष्णाका परिवार अर्थात् काम, क्रोधादिक विश्राम नहीं करनेदेते। हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःखके मूल शरीररूपी गृहकी इच्छा मैंने त्यागदी है। यह परम

दुःख देनेवाला है, इसकी इच्छा मुझको नहीं । हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्षहै उसमें तृष्णारूपी कागिनी आ स्थित हुईहै । जैसे कागिनी नीच पदार्थ के पास उड़ती है तसेही तृष्णाभोग आदिक मलिन पदार्थोंके पास उड़ती है । तृष्णा बंदरी की नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलातीहै नहीं स्थिर होने देती और जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँसजाता है तब निकलनहीं सक्ता और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानरूपी मदसे उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसाहै सो निकल नहीं सक्ता है पड़ाहुआ दुःख पाताहै । ऐसा दुःख पानेवाला शरीर है उसको मैं अङ्गीकार नहीं करता। हेमुनीश्वर! यह शरीर अस्थि मांस रुधिरसे पूर्ण अपवित्र है । जैसे हाथीके कानसदा हिलते हैं तैसेही मृत्यु इसको हिलाता है । कुछकाल का विलम्ब है मृत्यु उसका ग्रासकरलेवेगा; इससे मैंइस शरीरको अङ्गीकारनहीं करताहूं । यह शरीर कृतघ्नहै । भोग भुगतता है औरबड़े ऐश्वर्यको प्राप्तकरता है परंतु मृत्यु इससे सखापन नहीं करता । जीव इसको अकेला छोड़कर परलोक जाता है । जीव इसके सुखके निमित्त अनेक यत्नकरता है परन्तु संगमें सदानहीं रहता ।ऐसे कृतघ्न शरीरको मैंने मनसे त्याग दियाहै। हेमुनी-श्वर ! और आश्चर्य देखिये कि,यह उसीकाभोग करताहै पर उसके साथ नहीं चल-ता । जैसे धूलिसे मार्गनहीं भासता तैसेहीयह जीव जब चलने लगताहै तब शरीर से क्षोभवान् होता और बासनारूपी धूलिसंयुक्त चलताहै परन्तु दीखतानहीं किकहां गया । जब परलोक जाताहै तब बड़ाकष्टहोताहै क्योंकि; शरीरके साथइसने स्पर्शकि-याहै । हे मुनीश्वर ! जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर क्षणमात्र रहतीहै तैसेही शरीर भी क्षणभंगहै । ऐसेशरीरमें आस्थाकरनी मूर्खताहै और ऐसे शरीरकेऊपर उपकारकरना भी दुःखके निमित्तहै-सुखकुछनहीं।धनाढ्य इसशरीरसे बड़ेभोगभोगतेहैं और निर्द्धन थोड़ेभोगभोगतेहैं परंतु जराअवस्था और मृत्युदोनोंको होतीहैं इसमें विशेषता कुछनहीं। शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना तृष्णाके कारण उलटा दुःखका कारणहै । जैसे कोई नागिनिको घरमें रखके दूध पिलावे तो अंतमें वह उसेकाटके मारेगी तैसे-ही जिसजीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथमित्रताकीहै वह मरेगा क्योंकिनाशवन्तहै। इसके निमित्त भोग भुगतनेका यत्नकरना मूर्खता है । जैसे पवनका वेगआता और जाता है तैसेही यह शरीरभी आता और जाताहै इससे प्रीति करनी दुःखका कारण है। जैसेकोई विरलामृग मरुस्थलकी आस्था त्यागताहै और सबपड़े भ्रमतेहैं तैसेही सबजीव इसकी आस्थामें बाँधेहुयेहैं इसकात्यागकोई विरलेहीने कियाहै।हेमुनीश्वर! बिजली और दीपकका प्रकाशभी आताजाता दीखता है परन्तु इसशरीरका आदि अन्त नहींदीखता किकहांसेआताहै और कहांजाताहै । जैसे समुद्रमें बुदबुदे उपजते और मिटजाते हैं उसकी आस्था करनेसे कुछ लाभ नहीं तैसेही यह शरीर है इसकी

आस्थाकरनी योग्यनहीं। यह अत्यन्त नाशरूपहै स्थिर कदाचित् नहीं होता है। जैसे बिजली स्थिरनहीं होती तैसेही शरीरभी स्थिरनहीं रहता इसलिये इसकीमें आस्था नहीं करता। इसका अभिमान मैंने त्यागदियाहै। जैसे कोई सूखे तृणको त्याग देता है तैसे मैंने अहंममता त्यागीहै। हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरको पुष्टकरना दुःखका निमित्त है। यह शरीर किसीअर्थ नहींआता जलाने योग्यहै। जैसे लकड़ी जलानेके सिवाय और काममें नहींआती तैसेहीयह शरीरभी जड़ और गूंगाजलानेके अर्थहै। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्निसे जलायाहै उसका परमअर्थ सिद्ध हुआहै और जिसने नहीं जलाया उसने परमदुःखपायाहै। हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूं, न मेरा शरीर है; न इसका मैंहूं, न यहमेरा है; अब मुझको कामना कोई नहीं मैं निराशी पुरुषहूं और शरीरसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं। इसलिये आपवही उपाय कहिये जिससे मैं परमपद पाऊं। हे मुनीश्वर! जिसपुरुषने शरीरका अभिमानत्यागा है वह परमानन्दरूपहै और जिसको देहका अभिमान है वह परमदुःखी है। जितने दुःखहैं वे शरीरके संयोगसे होतेहैं। मान–अपमान, जरा–मृत्यु; दम्भ–भ्रांति; मोह–शोक आदि सर्व विकार देहके संयोगसे होते हैं। जिनको देहमें अभिमान है उनको धिक्कारहै और सब आपदाभी उन्हींको प्राप्तहोतीहैं। जैसे समुद्रमें नदी प्रवेश करतीहै तैसेही देहाभिमानमें सर्वआपदा प्रवेशकरती हैं। जिसको देहका अभिमान नहींहै वह मनुष्योंमें उत्तम और वन्दना करनेके योग्यहै ऐसेको मेराभी नमस्कार है औरसर्व सम्पदाभी उसीको प्राप्तहोतीहैं। जैसे मानसरोवरमें सबहंस आयरहतेहैं तैसेहीजहां देहाभिमान नहीं रहा वहां सर्व सम्पदा आरहतीहैं। हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छाया मेंबालक बैताल कल्पताहै औरउससे भयपाताहै परजब उसको बिचारकी प्राप्तिहोती है तब बैतालका अभाव होजाताहै तैसेही अज्ञानसे मुझको अहङ्काररूपी पिशाचने शरीरमें दृढ़आस्था बताईहै। इसलिये आप वहीउपाय कहिये जिससे अहंकाररूपी पिशाचका नाशहो और आस्थारूपी फाँसीटूटे। हे मुनीश्वर! प्रथममुझको अज्ञान से अहंकाररूपी पिशाचका संयोगथा; उसकेअनन्तर शरीरमें आस्था उपजी। जैसे बीजसे प्रथम अंकुरहोताहै फिर अंकुर सेवृक्षहोताहै तैसेही अहंकारसे शरीरकी आस्था होतीहै। हे मुनीश्वर! जैसे बालक छायामें बैतालदेखकर दीनताको प्राप्तहोताहै तैसेही अहंकाररूपी पिशाच ने मुझको दीनकिया है। वह अहंकाररूपी पिशाच अविचारसे सिद्धहै। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नाशहो जाताहै तैसेही बिचार कियेसे अहंकारनाश होजाताहै। हे मुनीश्वर! जिसशरीरमें आस्थारक्खीहै वह जलके प्रवाहकी नाईंहै स्थिरनहीं होता जैसे बिजली का चमकना स्थिरनहीं और गन्धर्व नगरी की आस्थाव्यर्थहै तैसेही शरीरकी आस्था करनीव्यर्थहै। हे मुनीश्वर! जो शरीरकी

आस्थाकरके अहंकारकरते हैं और जगत्के पदार्थों के निमित्तयत्नकरते हैं वे महा-मूर्खहैं । जैसे स्वप्न मिथ्याहै तैसेही यह जगत् मिथ्याहै । जोउसको सत्यजानता है वह अपने बंधनके निमित्त यत्नकरताहै । जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपने वन्धन के निमित्त गुफावनाती है और पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करता है तैसेही अज्ञानी को अपने देहका अभिमान और भोग की इच्छा अपनेही नाशके निमित्तहै । हेमुनीश्वर ! मैंतो इसशरीरको अङ्गीकार नहीं करता। इसशरीरका अभि-मान परम दुःख देनेवाला है । जिसको देहका अभिमान नहीं रहा उसको भोगकी इच्छाभी न रहेगी । इससे मैं निराशहूं औरमुझे परमपदकी इच्छा है जिसके पाये से फिर संसार समुद्रकी प्राप्ति नहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदेहनैराश्यवर्णनन्नामत्रयोदशस्सर्गः १३ ॥

रामजीबोले हेमुनीश्वर ! इसजीवको संसार समुद्रमें जन्मपाकर प्रथम बाल अव-स्था प्राप्त होतीहै वहभी परम दुःख का मूलहै । उससे वह परमदीन होजाताहै और इतने अवगुण इसमें आ प्रवेशकरतेहैं अर्थात् असक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता, दुःख, संताप इतने विकार इसको प्राप्तहोते हैं। यह बाल्यावस्था महा विकारवान् है । बालक पदार्थकी ओर धाताहै और एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरीको चाहताहै स्थिरनहीं रहता फिर औरमें लगजाताहै । जैसे वानर स्थिर नहीं बैठता और जो किसीपर क्रोधकरताहै तो भीतरसे जलताहै। वह बड़ीबड़ी इच्छाकरताहै पर उसकी प्राप्तिनहीं होती सदातृष्णामें रहताहै और क्षणमें भयभीत होजाताहै शान्ति प्राप्त नहीं होती और जैसे कदलीवनकाहाथी जँजीरसे बँधाहुआ दीन होजाताहै तैसे-ही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन होजाताहै वह जो कुछ,इच्छा करताहै सो विचारविनाहै उससे दुःखपाताहै। यहमूढ़ गूंगी अवस्थाहै उससेकुछ सिद्धिनहीं होती और जो किसी पदार्थकी प्राप्ति होतीहै तो उसमें क्षणमात्र सुखीरहताहै फिर तपने लगताहै । जैसे तपती पृथ्वीपर जलडालिये तो एक क्षण शीतल होतीहै फिर उसी प्रकारसे तपतीहै तैसेहीवहभी तपतारहताहै । जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्य्यउदय होताहै उससे उलूकादि कष्टवान् होतेहैं तैसेही इसजीवको स्वरूप के अज्ञानसे बाल्यावस्था में कष्टहोता है । हेमुनीश्वर! जो बालकअवस्थाकी सङ्गति करताहै वहभी मूर्खहै क्योंकि; यह विवेक रहित अवस्थाहै और सदाअपवित्रहै और सदापदार्थकी ओर धावतीहै। ऐसी मूढ़ और दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं इसमें जिसपदार्थको देखताहै उसकी ओर धाताहै । जैसे कुत्ताक्षणक्षणमें द्वारकीओर जाताहै और अपमानपाताहै तैसेही बालक अपमान पाताहै । बालकको माता, पिता, बांधव और आपसेवड़े बा-लक और पशुपक्षीकाभी भय रहताहै । हेमुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकीमुझको

इच्छानहीं। जैसे स्त्रीके नयन और नदीका प्रवाह चञ्चलहै उससेभी मन और बालक चञ्चलहैं और सबचञ्चलता बालकसे कनिष्ठहैं। हेमुनीश्वर! जैसे वेश्याकाचित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता तैसेही बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता और उसको यह बिचारभी नहीं होता कि, इस पदार्थसे मेरानाश होगा वा कल्याण होगा बालक ऐसेही व्यर्थ चेष्टाकरताहै, सदादीनरहता है और सुख दुःखकी इच्छा से तपायमान रहता है। जैसे जेष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तपायमान होतीहै तैसेही बालक तपतारहताहै शान्ति कदाचित् नहीं पाता। वह जब विद्यापढ़ने लगता है तब गुरूसे ऐसे भयभीत होता है जैसे कोई यमको देखके भयपावे और जैसे गरुड़को देखके सर्पडरे। जब शरीर में कोई कष्ट प्राप्तहोता है तबभी वह बड़े दुःखको प्राप्तहोता है और उस दुःख को निवारण नहीं करसक्ता और सहनेकीभी सामर्थ्य नहीं होती; भीतरही भीतर जलताहै और मुखसे कुछबोलनहीं सक्ता। जैसे वृक्ष कुछनहीं बोलसक्ता और जैसे तिर्यक् योनि दुःखपाती हैं, न कुछ कहसक्ती हैं न दुःखका निवारण करसक्ती हैं और न संहारही करसक्तीं भीतरही भीतर जलती हैं तैसेही बालकभी गूंगा और मूढ़हुआ दुःख पाता है। हेमुनीश्वर! ऐसी बालक अवस्थाकी स्तुति करने वाला मूर्खहै। यह तो परम दुःखरूप अवस्था है। इसमें विवेक और बिचारभी कुछनहीं होता। बालक खानेको पाता है और रुदनकरता है। ऐसी अवगुण रूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती। जैसे बिजली और जलके बुद्बुदे स्थिरनहीं रहते तैसेही बालकभी कदाचित् स्थिर नहीं रहता। हेमुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है। इसमें कभीकहता है कि हे पिता! मुझको बरफका टुकड़ाभूनदे और कभी कहता है कि मुझको चन्द्रमा उतारदे। ये सब मूर्खताके वचन हैं इससे ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता। जैसे दुःखका अनुभव बालकको होताहै वहहमारे स्वप्नेमें भी नहीं आया। यह बाल्यावस्था अवगुण का भूषण है और अवगुणसे शोभितहै। ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता। इसमें गुणकोईभी नहीं है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यबाल्यावस्थावर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्गः॥ १४॥

रामजी बोले हेमुनीश्वर! दुःखरूप बाल्यावस्थाके अनन्तर युवावस्था आती है सो नीचेसे ऊंचे चढ़तीहै वहभी उत्तमनहीं अधिक दुःखदायक है। जब युवावस्था आतीहै तबकामरूपी पिशाच आ लगताहै। वह कामरूपी पिशाच युवावस्थारूपी गढ़ेमें आ स्थितहोता है, चित्तको फिराताहै और इच्छा पसारता है। जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्य्यमुखी कमल खिल आताहै और पंखुरियों को पसारता है तैसेही युवावस्था रूपी सूर्य्य उदयहोकर चित्तरूपी कमल और इच्छारूपी पंखुरीको पसारता है। फिर जैसे किसीको अग्निके कुण्डमें डालदियाहो और वह दुःखपावे तैसेही कामके बशहुआ

दुःखपाता है । हे मुनीश्वर ! जो कुछबिकार हैं सो सब युवावस्था में प्राप्त होते हैं । जैसे धनवान्को देखके सब निर्द्धन धनकी आशाकरते हैं तैसेही युवावस्था देखकर सब दोष इकट्ठेहोते हैं । जो भोगको सुखरूपजानकर भोगकी इच्छाकरता है वह परम दुःखका कारणहै । जैसेमद्यका घटभराहुआ देखनेमात्र सुन्दरलगताहै परन्तु जबउस को पानकरै तब उन्मत्त होकर दीनहोजाता है और निरादरपाता है तैसेही भोग देखने मात्र सुन्दर भासते हैं परन्तु जब इनको भोगताहै तबतृष्णासे उन्मत्त और पराधीन होजाता है । हेमुनीश्वर ! यहकाम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि सब चोर युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं और आत्मज्ञानरूपी धनको लेजाते हैंउस-से जीव दीनहोता है । आत्मानन्दके बियोगसेही जब दीनहुआहै । हेमुनीश्वर ! ऐसी दुःखदेने वाली युवावस्था का मैं अंगीकार नहीं करता । शान्ति चित्तके स्थिरकरने केलियेहै पर युवावस्था में चित्त बिषयकी ओर धावताहै।जैसे बाग लक्षकी ओरजाता है तब उसको बिषयका संयोगहोताहै और वहीबिषयकीतृष्णा निवृत्तनहींहोती और तृष्णाकेमारे जन्मसेजन्मान्तररूप दुःखपाताहै । हेमुनीश्वर!ऐसीदुःखदायकयुवावस्था की मुझको इच्छानहींहै । हेमुनीश्वर ! जैसे प्रलयकालमें सबदुःख आन स्थितहोतेहैं तैसेहीकाम,क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, चपलता इत्यादिक सब दुःख युवावस्था में स्थिरहोतेहैं जोसब बिजलीकी चमकसेहैं होकेमिटजाते हैं । जैसे समुद्रमें तरङ्गहोकर मिटजातेहैं तैसेहीयहक्षणभङ्गहै और तैसेही युवावस्थाहोके मिटजातीहै । जैसे स्वप्नमें कोईस्त्री विकारसे छलजातीहै तैसेही अज्ञानसे युवावस्था छलजातीहै । हे मुनीश्वर ! युवावस्था जीवकी परमशत्रुहै । जे पुरुष इस शत्रुके शस्त्रसे बचे हैं वही धन्यहैं । इस-केशस्त्र काम और क्रोधहैं । जोइनसे छुटा वहबज्रके प्रहारसेभी न छेदाजावेगा और जो इनसे बंधाहुआहै वहपशुहै । हे मुनीश्वर ! युवावस्था देखनेमें तो सुन्दरहै परन्तु भीतरसे तृष्णासे जर्जरीभूत है । जैसे वृक्षदेखनेमें तो सुन्दरहो पर भीतरसे घुनलगा हुआहो तैसेही युवावस्थाहै जोभोगोंके निमित्त यत्नकरतीहै वे भोग आपातरमणीय हैं कारणयह कि, जबतक इन्द्रियों और विषयका संयोगहै तबतक अबिचारसे भला लगताहै और जब बियोग होताहै तब दुःख होताहै । इसलिये भोगकरके मूर्खप्रसन्न और उन्मत्त होते हैं उनको शांति नहीं होती भीतर सदातृष्णारहती है और स्त्री में चित्तकीआसक्ति रहतीहै जब इष्टवनिताका वियोग होताहै तब उसको स्मरणकरके जलता है जैसेवनका वृक्ष अग्निसे जलताहै तैसेही युवावस्था में इष्ट बियोगसे जीव जलताहै । जैसेउन्मत्त हस्ती जञ्जीरसे बँधता तोस्थिरहोताहै कहींजा नहींसक्ता तैसे-हीकामरूपी हस्तीको जंजीररूपी युवावस्था बंधनकरतीहै । युवावस्थारूपी नदी है उसमें इच्छारूपी तरङ्ग उठतेहैं वे कदाचित् शांतिनहींपाते । हेमुनीश्वर ! यह युवा-

वस्था बड़ीदुष्टहै। बड़े बुद्धिमान्, निर्मल और प्रसन्न पुरुषकी बुद्धिकोभीमलिनकरडा-लतीहै। जैसे निर्मलजलकीवड़ीनदी वर्षाकाल में मलिन होजाती है तैसेही युवावस्था में बुद्धि मलिन होजाती है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै उसमें युवावस्थारूपी बल्ली प्रकट होती है सो पुष्ट होतीजाती है तब चित्तरूपी भँवरा आबैठता है और तृष्णारूपी उसकी सुगन्धसे उन्मत्त होताहै और सब विचार भूलजाताहै। जैसे जब प्रबलपवन चलताहै तब सूखेपत्रोंको उड़ालेजाताहै तैसेही युवावस्था वैराग्य, सन्तोषादिक गुणोंका अभाव करतीहै दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य्य है उसके उदयसे सब दुःख प्रफुल्लित होआते हैं। इससे सब दुःखोंका मूल युवावस्था है। जैसे सूर्य्यके उदयसे सूर्य्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसेही चित्तरूपी कमल संसार रूपी पँखुरी और सत्यतारूपी सुगन्धसे खिलआताहै और तृष्णारूपी भँवरा उसपर आ बैठता और विषयकी सुगन्ध लेताहै। हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रिहै उसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशतेहैं अर्थात् शरीर युवावस्थासे सुशोभित होताहै। जैसे धानके छोटे वृक्ष हरे तब तक रहते हैं जबतक उसमें फलनहीं आया। जब फूल आताहै तब वृक्ष सूखने लगते हैं और अन्नके कणपरिपक्व होतेहैं वृक्षकीहरियाली नहीं रहसक्ती तैसेही जबतक जवानी नहीं आई तबतक शरीर सुन्दर कोमल रहताहै जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाताहै और फिर परिपक्व होकर क्षीण और वृद्धहोताहै। इससे हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे समुद्र बड़े जलसे तरंगोंको पसारता और उछालताहै तोभी मर्यादा नहीं त्याग करता क्योंकि; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकी है और युवावस्थातो ऐसीहै कि शास्त्र और लोककी मर्यादा मेटके चलतीहै और उसको अपना विचार नहीं रहता। जैसे अन्धकारमें पदार्थकाज्ञान नहींहोता तैसेही युवावस्थामें शुभाशुभ का त्याग नहींहोता। जिसकोविचार नहीं रहा उसको शान्ति कहांसेहो; वहसदा व्याधि तापमें जलता रहताहै। जैसे जलबिना मच्छको शान्ति नहीं होती तैसेही विचार बिना पुरुष सदा जलता रहताहै। जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आके गरजता है और यही सङ्कल्प उठते हैं कि, कोई कामी पुरुष आवे तो उसके साथ में यही चर्चा करूं कि हे मित्र! यह स्त्री कैसी सुन्दरहै और उसके कैसे कटाक्षहैं। वह किस प्रकार मुझको प्राप्तहो? हे मुनीश्वर! इस इच्छासे वह सदाजलताही रहता है। जैसे मरुस्थलकी नदीकोदेख मृगदौड़ताहै और जल की अप्राप्तिसे जलताहै तैसेही कामी पुरुष विषयकीवासनासे जलताहै और शान्ति नहीं पाता। हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तमहै परंतु जिनके अभाग्य हैं उनको विषयसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे किसी को चिन्तामणि प्राप्तहो और

वह उसका निरादर करे उसकागुण न जानकर डालदे तैसेही जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया वह बड़ा अभागीहै और मूर्खतासे अपने जन्मको व्यर्थ खोडालताहै वह युवावस्थामें परमदुःखका क्षेत्र अपनेनिमित्त बोताहै और मान, मोह,मद इत्यादि विकारोंसे पुरुषार्थका नाश करताहै । हे मुनीश्वर ! युवावस्था ऐसे बड़े विकारोंको प्राप्तकरती है । जैसे नदी वायुसे अनेक तरङ्ग पसारती है तैसेही युवावस्था चित्तके अनेककामोंको उठातीहै। जैसे पक्षी पङ्खसे बहुत उड़ताहै और जैसे सिंह भुजाके बलसे पशुको मारने दौड़ता है तैसेही चित्तयुवावस्था से विक्षेपकी ओर धाता है। हे मुनीश्वर! समुद्रका तरना कठिनहै क्योंकि;उसमें जल अथाहहै, उसका विस्तार भी बड़ाहै और उसमें कच्छ मच्छ मगर भी बड़े देहधारी जीव रहते हैं परमैं उसका तरनाभी सुगम मानताहूं परंतु युवावस्थाकातरना महाकठिन है अर्थात् युवावस्था में निर्दोष रहना कठिनहै । ऐसी सङ्कटवाली युवावस्थामें जो चलायमान नहींहोते सो पुरुष धन्यहैं और बन्दना करने योग्यहैं । हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डालतीहै । जैसे जलकी बावलीके निकट राख और कांटे हों और पवन चलनेसे सब आ बावलीमेंगिरें तैसेही पवनरूपी युवावस्था दोषरूपीधूर औरकांटों को चित्तरूपीबावलीमें डालके मलीनकरदेताहै । ऐसे अवगुणोंसे पूर्ण युवावस्थाकी इच्छामुझको नहीं है । युवावस्थामुझपर यहीकृपाकर कि,तेरादर्शन न हो । तेराआना मैं दुःखका कारण मानताहूं । जैसे पुत्रके मरणका सङ्कट पिता नहीं सहसक्ता और सुखका निमित्त नहीं देखता तैसेही तेरा आनामैं सुखका निमित्त नहीं देखता। इससे मुझपर दयाकर कि, अपना दर्शन न दे । हे मुनीश्वर ! युवावस्था का तरना महा कठिनहै । यौवनवान् नम्रता संयुक्त नहीं होते और शास्त्र के गुण बैराग्य, बिचार, संतोष और शान्ति इनसेभी सम्पन्न नहीं हैं । जैसे आकाशमें वनहोना आश्चर्य है तैसेही युवावस्थामें वैराग्य , बिचार, शान्ति और संतोष होना भी बड़ाआश्चर्य है। इससे आप मुझसे वही उपायकहिये जिससे युवावस्थाके दुःखकी मुक्तिहोकर आत्मपदकी प्राप्तिहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणे युवागारुड़ीवर्णनन्नामपंचदशस्सर्गः ॥ १५ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! जिसकाम विलासके निमित्त पुरुष स्त्री की वाञ्छा करता है वह स्त्री अस्थि , मांस , रुधिर , मूत्र और बिष्ठासे पूर्णहै और इन्हीं की पुतली बनीहुई है । जैसे यंत्रीकी बनी पुतली तागेके द्वारा अनेक चेष्टा करती है वैसेही यह अस्थि , मांसादिक की पुतलीमें कुछ और नहीं है। जो विचारसे नहीं देखता उसको रमणीक दिखती है । जैसे पर्वतके शिखर दूरसे सुन्दर और गङ्गमालासहित भासते हैं और निकटसे असार हैं—पत्थरही पत्थर दिखते हैं तैसेही स्त्री बस्त्र और भूषणसे

सुन्दर भासती है और जो अंगको भिन्न भिन्न बिचारकर देखोतो सार कुछनहीं। जैसे नागिनि के अंग बहुत कोमल होतेहैं परंतु उसका स्पर्शकरे तो काटके मारडालतीहै तैसेही जो कोई स्त्रीको स्पर्शकरते हैं उनको वह नाशकरडालती है। जैसे विषकी वेल देखनेमात्र सुन्दर लगती है परन्तु स्पर्शकिये से मारडालती है और जैसे हाथी को जंजीर से बांधे तो जिस द्वारपै रहताहै वहांहीं स्थिर रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्तरूपी हाथी कामरूपी जंजीरसे बँधाहुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है वहांसे कहीं जा नहीं सक्ता। जबहाथी को महावत अंकुशका प्रहार करता है तबभी वह बन्धन को तोड़केनिकलजाताहै तैसेही इस चित्तरूपी मूर्खहाथीको जब महावत-रूपी गुरु उपदेशरूपी अंकुशका वारम्वार प्रहारकरताहै तब निर्बन्ध होजाताहै। हे मुनीश्वर! कामी पुरुष स्त्रीकी बांछा अपने नाशके निमित्त करताहै। जैसे कदलीबन का हाथी कागदकी हथिनी देखकर और छलपाके बन्धनमें आता है और उससेपर-म दुःख पाताहै तैसेही परमदुःखका मूल स्त्रीका सङ्गहै। हे मुनीश्वर! जैसे बनके दाह की अग्नि बनको जलाती है तैसेही स्त्रीरूपीअग्नि उससेभी अधिक है क्योंकि; उस अग्निके स्पर्शकियेसे तप्त होती है और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रसेही जलाती है। जो सुख रमणीय दिखताहै वह आपातरमणीय है; जब उसी सुखका बियोगहोता है तब मुरदेकी नाईं होजाताहै—हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस और रुधिरका पिंजराहै सो अग्निमें भस्म होजायगा अथवा पशु पक्षीके खानेका आहारहोगा और प्राण आकाशमें लीन होजावेंगे—इससे इस स्त्री की इच्छाकरनी मूर्खताहै। जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता होतीहै तैसेही स्त्रीके शीशके ऊपर श्यामकेश हैं और जैसे अग्निके स्पर्शकियेसे जलताहै तैसेही स्त्रीके स्पर्श करनेसे पुरुष जलताहै इससे जलनादोनोंमें तुल्यहै। हे मुनीश्वर! युवावस्था को नाश करनेवाली स्त्रीरूपी अग्नि है। जो स्त्री की इच्छा करते हैं वह महामूर्ख और अज्ञानी हैं। वह स्त्री की इच्छा अपने नाशके निमित्त करते हैं। जैसे पतङ्ग अपने नाशके निमित्त दीपक की इच्छाकरता है तैसेही कामीपुरुष अपने नाश के निमित्त स्त्री की इच्छाकरता है। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है, हाथ पांवके अग्रभाग उसके पत्र हैं, भुजा डाली हैं, अस्थिरूप गुच्छे हैं और नेत्र आदिक इन्द्रियां फूलहैं उसपर कामी पुरुषरूपी भँवरे आ बैठते हैं। कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसाराहै उसपर कामीपुरुषरूपी पक्षी आफँसते हैं। कामरूपी धीवर उनको फँसाकर परमकष्ट देता है। ऐसे दुःखके देनेवाली स्त्रीकी जो बांछा करतेहैं वह महामूर्ख हैं। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है जब उसका फूत्कार निकलताहै तब बैराग्यरूपी कमल जल जातेहैं और जब सर्पिणी डसती है तब विष चढ़ताहै। स्त्रीरूपी सर्पिणीका चिन्तन

करतेही भीतरसे आपही बिष चढ़जाताहै । हे मुनीश्वर ! जैसे व्याधाछलकर मछली को फँसाताहै तैसेही कामी पुरुष छलीके सदृश सुन्दर स्त्रीरूपी जाल देखके फँसता है और स्नेहरूपी तागेसे बन्धन पा खैंचा चला जाताहै, तब तृष्णारूपी छुरी से काम उसे मारडालताहै । हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःखके देनेवाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं । कामरूपी व्याध रागरूपी इन्द्रियों से जाल बिछा कामीपुरुषरूपी मृगोंको आसक्त कर डालताहै । स्त्रीकी स्नेहरूपी डोरीहै उससे कामीपुरुषरूप बैलबंधा है औ स्त्रीका मुखरूपी चन्द्रमा देखकर कामीपुरुषरूपी कमलिनी खिल आतीहैं । जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होतेहैं और सूर्य्यमुखी नहीं होते तैसेही कामीपुरुष भोगसे प्रसन्न होतेहैं और ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते । जैसे नेवला सर्पको बिलसे निकालके मारताहै तैसेही कामी पुरुषको स्त्री आत्मानन्दमेंसे निकालके मारडालतीहै । पुरुष जब स्त्रीके निकटजाताहै तबवह उसको भस्म करडालतीहै । जैसे सूखे तृण और घृतको अग्नि भस्म करडालतीहै तैसेही कामीपुरुषको स्त्रीरूपी नागिनि भस्म कर डालतीहै । हे मुनीश्वर ! स्त्री पी रात्रि का स्नेहरूपी अंधकारहै और काम, क्रोधादिक उसमें उलूक औरपिशाचहैं । हेमुनीश्वर ! जो स्त्रीरूपीखड्गके प्रहारसे युवारूपी संग्राममें बचाहै वहपुरुष धन्यहै; सको मेरानमस्कार है । स्त्रीका संयोग परमदुःखका कारणहै इस से मुझको सकी इच्छा नहीं । हे मुनीश्वर ! जो रो होताहै उसीके अनुसार जो औषधि करताहै तो रोग निवृत्तहोता है और कुपथ्य से उसका प्रलयहोताहै और रोगबढ़जाता है इससे मेरेरोगके अनुसार औषधिकरो । मेरा रोग सुनिये कि, जा और मृत्यु मुझको बड़ा रोगहै । उसके नाशकी औषधि मुझको दीजिये ी आदिक सब भो तो रोगके वृद्धिकर्त्ता हैं । जैसे अग्निमें घृत डालिये तो बढ़जातीहै तैसेही भोगसे जरा मृत्यु आदिरोग बढ़ते हैं । इससे इस रोग के निवृत्ति की औषधि करो नहीं तो सबका त्यागकर मैं ब ा रहूंगा । हे मुनीश्वर ! जिसके स्त्रीहै उसको भोगकी इच्छाभी होतीहै और जिसके स्त्री नहीं होती उसको स्त्रीकी इच्छाभी नहीं । जिसने स्त्रीका त्याग कियाहै उसने संसारकाभी त्यागकियाहै और वहीसुखीहै । संसारका बीजस्त्रीहै इससे मुझको स्त्रीकी इच्छानहीं । मुझको वही औषधिदीजिये जिससे जरामृत्यु आदिरोगकी निवृत्तिहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेस्त्रीदुराशावर्णनंनामषोडशस्सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामजीबोले हे मुनीश्वर ! बालकअवस्था तो महाजड़ और अशक्तहै । जब युवावस्था आतीहै तब बाल्यावस्था का ग्रहण करलेतीहै और उसकेअनन्तर जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत होजाताहै औ बुद्धिक्षीण होजातीहै फिर मृत्युपाताहै । हे मुनीश्वर ! इसप्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थहै कुछअर्थ की सिद्धि

नहीं। जैसे नदीके तटपरके वृक्ष जलके प्र ाहसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाताहै। जैसे पवनसे पत्र उड़जाते हैं तैसेही वृद्धावस्थामें शरीर नाशपाता है। जितनेकुछ रोग हैं वहसव वृद्धावस्थामें आ प्राप्तहोते हैं और शरीर कृशहोजात है। उसमय स्त्री, पुत्रादिकभी सव वृद्धका त्यागकरदेतेहैं। जैसेपकेफलको वृक्षत्याग ताहै तैसेही वृद्ध कुटुम्ब त्यागदेताहै और जैसे वावलेको देख केसव हँसके बोल हैं कि, इसकी बुद्धिजातीरही तैसेही इसकोभी देखके हँसतेहैं। जैसे कमलकाफूल बरफपड़ने से जर्जरीभूत होजाता है तैसेही जरावस्था में पुरुषजर्जरीभावको प्राप्तहोताहै, शरीर कुवड़ा होजाताहै; केशश्वेत होजातेहैंऔर शक्तिक्षीणहोजातीहै। जैसे चिरकालके वड़ेवृक्षमें घुनलगताहै तैसे इसमें कुछशक्तिनहीं रहती। हे मुनीश्वर! औरभी सव क्षीण ोजातीहै परन्तुएक आशक्तिमात्र रहती है। जैसे वड़ेवृक्षपरउलूक आरहतेहैं तैसेही इसमें क्रोधशक्ति आरहतीहै और वशक्ति क्षीण होजातीहैं। हे मुनीश्वर! जरावस्था दुःखका घरहै। जव जरावस्था आती है तवसब दुःखइकट्ठे होतेहैं उनसे पुरुषमहादीन होजातेहैं। युवावस्थाका जो कामकावल रह हैसोभी जरामेंक्षीण होजाताहै, इन्द्रियोंकी आशक्ति घटजातीहै और उनकी चपलता काअभाव होजात है। जैसे पिताके निर्द्धनहुये पु दीनहोजाताहै तैसेही शरीरकेनिर्व्वलहुये इन्द्रियांभीनिर्व्वल होजातीहैं केवल एकतृष्णाउन्मत्तहो वढ़जाती है। हेमुनीश्वर! जवजरारूपी रात्रिआती तव खांसीरूपी स्यार आशब्दकरतेहैं और आधिव्याधिरूपी उलूकआ निवासकरते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसीनीच वृद्धावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जैसे पके लसे वृ झुकजाताहै तैसेही जराके आनेसे देह कुवड़ीहोजाती है युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते और उसकी टहलकरतेथे परवहीसव उसकोवृद्धावस्थामेंजैसे वृद्धवैलको वैलवाला त्याग ताहै तैसेही त्यागदेतेहैं, देखके हँसते हैं और अपमानकरते हैं। उनकोवह तव ऊंटकीनाईं भासता है। हेमुनीश्वर! ऐसी नीच अवस्थाकी मुझको इच्छानहीं। अवजोकुछ कर्त्तव्यहो मुझसे कहिये मैं करूं? इस शरीरकी तीनों अवस्था में कोई सुखदाई नहीं क्योंकि; वाल्यावस्था महामूढ़है, युवावस्था महाविकारवान् है और जरावस्था महादुःखका प त्रहै। वाल्यावस्थाको युवावस्था ग्रास करलेती है; युवावस्थाको जरावस्था ग्रास करलेती है और जरावस्थाको मृत्यु ग्रास करलेती है। यह अवस्था सव अल्प कालकी हैं इनके आश्रयसे मुझको क्या सुख होगा? इससे आप मुझे वही उपाय वताइये जिससे इस दुःखसे मुक्त होजाऊं। हेमुनीश्वर! जव जरावस्था आतीहै तव मरनाभी निकट आता है। जैसे सन्ध्याके आये रात्रि तत्काल आजाती है और जो सन्ध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं वह मूर्ख हैं तैसेही जराके आये जीनेकी आशा रखनी महा मुर्खताहै। हे मुनीश्वर! जैसे

विल्ली चिन्तवन करती है कि, चूहाआवें तो पकड़ लूं तैसेही मृत्युभी चितवती है कि, जरावस्था आवे तो मैं इसका ग्रहणकरलूं । हे मुनीश्वर ! यह परम नीच अवस्था है। यह जब आती है तब शरीरको जर्जरीभूत करदेती है; कँपनी लगती है और शरीरको निर्वल और क्रूर करदेती है । जैसे कमलपर बरफकी वर्षाहो और वह जर्जरीभूत होजाय तैसेही यह शरीरको जर्जरीभूत कर डालती है । जैसे बन में बाघ आके शब्द करते हैं और मृगका नाश करते हैं तैसेही खांसी रूपी बाघ आ मृगरूपी वलका नाश करते हैं । हे मुनीश्वर ! जब जरा आती है तबजैसे चन्द्रमाके उदयसे कमलिनी खिलआती है तैसेही मृत्यु प्रसन्नहोती है । यह जरावस्था बड़ी दुष्टा है; इसने वड़े वड़े योधोंकोभी दीनकरदिया है । यद्यपि बड़े२शूरसंग्राम में शत्रुओंको जीते हैं पर उनको भी जराने जीतलिया है । जो बड़े२ पर्वतोंको चूर्णकर डालते हैं उनको भी जरा पिशाचिनीने महादीन करदिया है । इस जरारूपी राक्षसीने सबको दीनकरदिया है । यह सबको जीतने वाली है । हे मुनीश्वर ! जैसेवृक्षमें अग्नि लगती और उसमेंसे धूम निकलता है । तैसेही शरीररूपी वृक्षमेंसे जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुवां निकलता है । जैसे डिब्बेमें वड़े रत्न रहते हैं तैसेही जरारूपी डिब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं । जरारूपी बसन्तऋतु है; उससे शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रससे होता है । जैसे हाथी जंजीरसे बँधाहुआ दीन होजाता है तैसेही जरारूपी जंजीरसे बँधा पुरुष दीन होजाता है, उसके अङ्ग सबशिथिल होजाते हैं, बलक्षीण होजाता; इंद्रियांभी निर्बल होजाती हैं और शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होता है परंतु तृष्णा नहीं घटती वह तो नित्य बढ़तीही चली जाती है । जैसेरात्रि आती है तव सूर्यबंशी कमल सब मुंद जाते हैं और पिशाचिनी आ विचरने लगती है और प्रसन्न होती है तैसेही जरारूपी रात्रि के आयेसे सब शक्तिरूप कमल मुंदजाते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है । हे मुनीश्वर ! जैसे गङ्गातटके वृक्ष गङ्गाजलके बेगसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसे ही जो यह आयुरूपी प्रवाह चलता है उसके बेगसे शरीर जर्जरी भूत । जैसेमांसके टुकड़ेको देख आकाशसे उड़ती चील नीचे आ लेजाती है तैसेही जराव- स्थामें शरीररूपी मांसको काल लेजाता है । हे मुनीश्वर ! यहतो कालका ग्रास बना हुआ है । जैसे वृक्षको हाथी खाजाता है तैसे जरावाले शरीरको कालदेखके खाता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजरावस्थानिरूपणंनामसप्तदशस्सर्गः ॥ १७ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढ़ा है उसमें अज्ञानी गिरा है पर संसार रूपीगढ़ातो अल्प है और अज्ञानी बड़ाहोगया है । संकल्प, बिकल्पकी आधिक्यतासे वढ़ा है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह संसारको मिथ्याजानता है और संसाररूपी जालमें नहीं फँसता और जो अज्ञानी पुरुष है वह संसारको सत्यजानकर उसकी आस्था

रूपीजालमें फँसताहै औरभोगकी वांछाकरताहै वह भौंराऐसेहैं जैसेदर्पणमें प्रतिबिम्ब देखकर बालक पकड़नेकी इच्छा करताहै तैसेअज्ञानीसंसारको सत्यजानकर जगत्के पदार्थकीबांछा करताहै कि,य- मुझे प्राप्तहो और यह न हो। यहसबसुख नाशात्मकहैं-अभिप्राय यह कि,- तेहैं और जातेहैं स्थिर नहीं रहते; इनकोकालग्रास करताहै जैसे पक्केअनारको चूहाखाजाताहै तैसेही सवपदार्थोंको काल खाताहै। हेमुनीश्वर! यहसब पदार्थ कालग्रसितहैं जैसेनेवला सर्पको भक्षण करजाताहै तैसेही बड़ेबड़े बली सुमेरु ऐसे गंभीर पुरुषोंको कालने ग्रसित किया है। जगत्रूपी एकगूलरकाफल है ; उसमें मज्जा ब्रह्मादिकहैं और उसकाबन ब्रह्मरूपहै। उसब्रह्मरूपबनमें जितने वनहैं सोसब इसका आहारहैं। यहकाल सबको भक्षणकरजाताहै। हेमुनीश्वर!यहकालबड़ाबलिष्ठहै; जो कुछ देखनेमें आताहै सो सब इसने ग्रासकर लियाहै तो औरकाक्या कहनाहै और हमारे जोबड़े ब्रह्मादिकहैं उनकाभी कालग्रास करजाताहै।जैसेमृगका ग्राससिंह कर-लेताहै काल किसीसेजाना नहींजाता क्षण,घरी,प्रहर,दिन,मास और बर्षादिकसे जानिये सोईकालहै और कालकी मूर्त्ति प्रकट नहीं है। यह किसी को स्थित नहीं होने देता। एकवेलिकालने पसारी है उसकी त्वचा रात्रिहै और फूल दिनहै और जीवरूपी भौंरे उसपर आ बैठते हैं। हेमुनीश्वर! जगत्रूपी गूलरका फूलहै उसमें जीवरूपी बहुत मच्छर रहतेहैं। जैसे तोता अनारका भक्षण करताहै तैसेही काल उसफूलका भक्षण करताहै। जगत्रूपी वृक्षहै;जीवरूपी उसके पत्रहैं और कालरूपीहस्ती उसकाभक्षण करजाताहै। शुभ अशुभरूपी भैंसेको कालरूपी सिंहछेदछेदके खाताहै। हे मुनीश्वर! यहकालमहाक्रूरहै;किसीपर दया नहींकरता;सबका भोजनकरजाताहै। जैसे मृग सब कमलोंको खायजाताहै उससेकोई नहीं बचता तैसेही कालभी सबको खाता है परन्तु एककमल बचाहै। उसकमल केशान्ति और मैत्री अंकुरहैं और चेतनामात्र प्रकाशहै इसकारण वहबचाहै। कालरूपी मृगइसतक नहीं पहुँचसक्ता बल्किइसमें प्राप्तहुआ कालभी लीनहोजाताहै। जोकुछप्रपंचहैं सो सबकालके मुखमेंहैं।ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र,कुवेर आदि सब मूर्त्ति कालकी धरी -ई हैं।यह उनकोभी अन्तर्द्धानकरदेताहै। हेमुनीश्वर! उत्पत्ति,स्थिति और प्रलयसबकालसे होतेहैं। अनेक बेर इसने महाकल्पकाभी ग्रास कियाहै और अनेकबेर करेगा। कालको भोजन कियेसे तृप्तिकदाचित् नहींहोती और कदाचित् होनेवाली भी नहीं। जैसेअग्नि घृतकी आहुतिसे तृप्तनहींहोता तैसेहीजगत् और सब ब्रह्माण्डका भोजनकरकेभी कालतृप्त नहींहोता। इसका ऐसा स्वभावहै कि, इन्द्रको दरिद्री करदेताहै और दरिद्रीको इन्द्रकरदेताहै ;सुमेरुको राई बनाता है और ाईकोसुमेरु करताहै;सबसे बड़े ऐश्वर्य्यवान्को नीचकरडालताहै औरसबसे नीचको ऊंच करडालता और बूंदको समुद्र करडालताहै और समुद्रको बंद करता है। ऐसी

शक्तिकालमेंहै। यह जीवरूपी मच्छरों को शुभाशुभ कर्मरूपी छुरेसेछेदता रहताहै। कालकूपका चक्र जीवरूपी हड़ियाको शुभ अशुभ कर्मरूपी रस्सी से बांधकर फिराताहै और जीवरूपी वृक्षको रात्रि और दिनरूपी कुल्हाड़ेसे छेदताहै। हेमुनीश्वर! जितना कुछ जगत् विलास भासता है काल सबका ग्रहण करलेगा। जीवरूपी रत्न काकाल डब्बाहै सो सबको अपने उदरमें डालता जाताहै। कालयों खेलकरता है कि चन्द्र, सूर्य्यरूपी गेंदों को कभी ऊर्ध्वको उछालताहै और कभी नीचे डालता है। जो महापुरुष है वह उत्पत्ति और प्रलयके पदार्थों मेंसे किसीके साथ स्नेह नहीं करता और उसका कालभी नाशनहीं करसक्ता। जैसे मुण्डकी माला महादेवजी गलेमें धारे हैं तैसेही यहभी जीवोंकी मालागलेमें डालताहै। हे मुनीश्वर! जो वड़ेवड़े वलिष्ठ हैं उनकाभी काल ग्रहण करलेताहै। जैसे समुद्रवड़ाहै उसको वड़वानल पानकर लेताहै और जैसे पवन भोजपत्रको उड़ाताहै वैसाही कालकाभी बलहै, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके आगेस्थितरहै। हेमुनीश्वर! शांतिगुण प्रधान देवता, रजोगुण प्रधान वड़े राजा और तमोगुण प्रधान दैत्य और राक्षसहैं उनमें किसीको सामर्थ्यनहीं जोइसके आगे स्थितहो। जैसे तौलीमें अन्न और जलभरके अग्नि परचढ़ा देनेसे अन्न उछलता है और वह अन्नके दाने करछीसे कभीऊपर औरकभीनीचे फिरजातेहैं तैसेही जीवरूपी अन्नकेदाने जगत्‌रूपी तौली में पड़ेहुये रागद्वेषरूपी अग्निपर चढ़े हैं और कर्मरूपी करछीसे कभी ऊपरजातेहैं और कभी नीचेआते हैं। हे मुनीश्वर! यहकाल किसीको स्थिर नहीं होनेदेता यहमहाकठोर है दया किसीपर नहीं करता। इसकाभय मुझको रहताहै इससे वहीउपाय मुझसेकहिये जिससे मैं कालसे निर्भय होजाऊं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालनिरूपणंनामअष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! यहकाल बड़ाबलिष्ठहै। जैसेराजाकेपुत्रशिकार खेलने जातेहैं तो वनमें वड़े पशु पक्षी उनसे खेदपातेहैं तैसेही यहसंसाररूपी बनहैउसमें प्राणीमात्र पशुपक्षी हैं। जबकालरूपी राजपुत्र उसमें शिकार खेलने आताहै तबसब जीव भयपाते और जर्जरीभूत होते हैं और वह उनको मारताहै। हे मुनीश्वर! यह काल महाभैरवहै सबकाग्रास करलेताहै। प्रलयमें सबका प्रलय करडालता है और इसकी जो चंडिका शक्ति है उसका बड़ाउदर है। वह कालिका सबका ग्रासकरके पीछे नृत्यकरतीहै। जैसे बनके मृगको सिंह और सिंहनी भोजनकरके नृत्य करते हैं तैसेही जगत्‌रूपी वनमें जीवरूपी मृगको भोजनकरके काल और कालिकानृत्यकरतेहैं। फिरइन्हींसे जगत्‌का प्रादुर्भाव होताहै। नाना प्रकारके पदार्थोंको रचते हैं और पृथ्वी, बगीचे, बावली आदि सब पदार्थ इनहींसे उत्पन्न होतेहैं। सुन्दर जीवोंकी उत्पत्तिभी इनसे होतीहै और एकसमयमें उनकानाशभी करदेती है। सुन्दर समुद्र रचके

फिर उनमें अग्निलगादेती है और सुन्दर कमल को बनाके फिरउसके ऊपर बरफ की वर्षाकरती है। जहां बड़े बड़े स्थानबसते हैं उनको उजाड़डालती है और फिर उजाड़में बस्तीकरतीहै और नाशभी करतीहै; स्थिर रहने किसीको नहींदेती। जैसे बागमें बानरआके वृक्षको ठहरनेनहींदेता तैसेही कालरूपी बानर किसी पदार्थकोस्थिर रहने नहींदेता। हेमुनीश्वर! इसप्रकारसे सबपदार्थ कालसे जर्जरीभूतहोतेहैं। उनका आश्रय मैं किसरीतिसेकरूं? मुझको तो यहसब नाशरूप भासताहै इससे अबमुझको किसीजगत्‌के पदार्थकी इच्छानहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनन्नामएकोनविंशतितमस्सर्गः १९॥

रामजी बोले हेमुनीश्वर! इसकालका महापराक्रम है। इसके तेजके सन्मुख कोई नही रहसक्ता यह क्षणमें ऊंचकोनीच और नीचको ऊंच करडालताहै। उसका निवारण कोईनहीं करसक्ता सब उसीके भयसे कँपतेहैं। यह महाभैरवहै सब विश्वकाग्रास करलेताहै। इसकी चण्डिकारूप शक्तिहै वह अतिबलवान्‌है और नदीरूपहै उसका उल्लङ्घन कोईनहीं करसक्ता। महाकालरूप कालीहै उसका बड़ा भयानक आकारहै। कालरूप जोरुद्रहै उससे अभिन्नरूपी कालिकाहै वह सबकापान करके पीछे भैरव और भैरवी नृत्यकरतेहैं। उसकाल और कालिकाका बड़ा आकारहै। उसका आकाश शीश, पातालमें चरणहैं और दशोदिशा भुजाहैं। सप्तसमुद्र उसके हाथमें कङ्कण हैं; सम्पूर्ण पृथ्वीरूप उसके हाथमें पात्रहै; और उसपरजोजीव हैं वह भोजन योग्यहैं। हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कानोंमें कुण्डलहैं; चन्द्रमा और सूर्य्यउसके दोनों लोचनहैं और सबतारागण उसके मस्तकमें बिंदुहैं। कालकेहाथमेंत्रिशूल और मूसल आदिशस्त्रहैं और कालिकाकेहाथमें तन्द्रारूपीफांसीहै उससेजीवोंको मारतीहै। ऐसी कालिकादेवी सबजीवोंका ग्रासकरके महाभैरवकेआगे नृत्यकरतीहै,अट्टाट्टशब्द करती है और जीवोंको भोजन करके उनकी मुण्डमाला गलेमें धारणकरतीहै। भैरव जिनके सन्मुख रहने की किसीमें शक्तिनहीं जहां उजाड़है वहांक्षणमें बस्ती करडालताहै और जहांबस्तीहै वहां क्षणमें उजाड़करताहै। इसीसे उसकानाम देवकहतेहैं। वह बड़ेबड़े पदार्थोंका उत्पन्न और नाशकरताहै स्थिर किसीको रहने नहींदेता इससे इसकानाम कृतान्त है और नित्यरूपभी यहीहै क्योंकि; परिणाम जिसका अनित्यरूप है इसीसे इसकानामकर्महै। जबअभावरूपी धनुप हाथमेंधरताहै तो उससे राग द्वेषरूपी बाण चलाताहै और उसबाणसे जर्जरीभूत करके नाशकरता है। जैसे बालक मृत्तिकाकी सेनाबनाताहै और उठाकर नाशभी करदेताहै तैसेही कालको उपजाने और नाश करनेमें कुछ यत्ननहीं करना पड़ता। हेमुनीश्वर! कालरूपी धीवरहै और उसने क्रिया रूपी जालपसारा है। उससें जीवरूपी पक्षी फँसतेहैं सो फँसेहुये शान्ति नहीं पाते।

हेमुनीश्वर ! यहतो सब नाशरूप पदार्थहैं इनमें आश्रय किसका करूं कि जिसमें सुखहो। यहतो स्थावर जङ्गम जगत् सब कालके मुखमें है यह सब नाशरूप मुझको दृष्टि आवैहैं इससे जो निर्भय पदहोय सो मुझको कहिये॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालजुगुप्सावर्णनन्नामविंशातितमस्सर्गः २० ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! जितनेपदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं तो मैं किसकी इच्छाकरूं और किसका आश्रयकरूं? इनकी इच्छाकरनी मूर्खता है। जितनी चेष्टा अज्ञानी करताहै वह सब दुःखके निमित्त है और जीनेमें अर्थकी सिद्धि कुछ नहीं है क्योंकि; बालक अवस्था में मूढ़तारहतीहै, कुछविचार नहीं रहता। जब युवावस्था आती है तब मूर्खतासे विषयको सेवता है और मानमोहादि विकारोंसे मोहा जाता है-उसमेंभी कुछ विचार नहीं होता और स्थिरभी नहीं रहता दीनकादीन रहके विषयकी तृष्णाकरता है-शान्तिनहीं पाता। हेमुनीश्वर ! आयुष्य महाचञ्चलहै और मृत्युतो निकट है उसमें अन्यथा भावनहीं होता। हे मुनीश्वर ! जितने भोग हैं वे रोग हैं, जिसको सम्पदाजानते हैं वह आपदा है, जिसको सत्यकहते हैं वह असत्यरूपहै, जिन स्त्री, पुत्रादिकों को मित्रजानते हैं वह सब बन्धनके कर्त्ता हैं और इन्द्रियां महाशत्रुरूप हैं। वह सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, यहदेह विकाररूप है, मन महाचञ्चल और सदा अशान्तरूप है और अहङ्कार महानीचहै इसनेही दीनताको प्राप्त कियाहै। इससे जितनेपदार्थ इसको सुखदायक भासते हैं वहसब दुःखके देनेवाले हैं इससे कदाचित् शान्तिनहीं होती। इससे मुझको इनकी इच्छानहीं। यद्यपि यहदेखनेमात्र सुन्दर भासते हैं परइनमें सुखकुछनहीं और स्थिर न रहेंगे।जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके तरङ्गभासते हैं पर वहसब बड़वाग्निसे नाशहोते हैं तैसेही यह पदार्थभी नाशहोजाते हैं। मैं अपनी आयुमें कैसे आस्था करूं? हेमुनीश्वर ! बड़ेसमुद्र, सुमेरु, राक्षस, दैत्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, अग्नि, पवन,यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, ध्रुव, चन्द्रमा और बड़ेईश्वर जगत्के कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और काल जो सबको भक्षणकरता है, कालकीस्त्री, सबका आधार आकाश और जितना जगत् है यहसब नष्ट होजावेंगे तो हमारी कौनगिनती है। हम किसकी आस्थाकरें और किसका आश्रय करें ? यह सब जगत् भ्रममात्रहै; अज्ञानीकी इसमें आस्थाहोती है और हमारी नहीं कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्नहुआ है। मैं इतना जानताहूं कि, संसार में जीवको इतना दुःखी अहङ्कारने कियाहै। हेमुनीश्वर ! यह जीव अपने परमशत्रु अहङ्कार से भटकता फिरताहै। जैसे रस्सीसे बँधेहुये पतङ्ग कभीऊर्ध्व और कभीनीचेजाते हैं स्थिरकभी नहीं रहते-तैसेही जीव अहङ्कार से कभीऊर्ध्व औरकभी अधोजाता है स्थिर कभी नहीं होता। जैसे अश्वसे आरूढ़ रथके ऊपर बैठके सूर्य आकाशमार्ग में भ्रमते हैं तैसेही

यह जीव भ्रमताहै स्थिर कदाचित्नहीं होता। हेमुनीश्वर! यहजीव परमार्थ सत्य स्वरूपसे भूलाहुआ भटकता है, अज्ञानसे संसार में आस्था करता है और भोगको सुखरूप ज्ञानकर उसमें तृष्णा करताहै। पर जिसको सुखरूप जानताहै वहरोग समान है और विषसे पूर्णसर्प जीवका नाश करनेवालाहै जिसको सत्य जानताहै वह असत्यहै सबकालके मुखमें ग्रसेहुये हैं। हेमुनीश्वर! विचारविना जीव अपना नाश आपही करताहै क्योंकि; इसका कल्याण करनेवाला बोधहै। जब सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याणहो। जितने पदार्थ हैं वह स्थिर नहीं रहते। इनको सत्य जानना दुःख के निमित्तहै। हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है तब आनन्द और धीर्य्यको नाशकर देती है। जैसेवायु मेघका नाशकर डालता है तैसेही तृष्णा ज्ञानका नाश करडालती है। इससे मुझे वही उपाय कहिये जिससे जगत्का भ्रममिटजावे और अविनाशी पदकी प्राप्तिहो। इस भ्रमरूप जगत्की आस्थामैंनहीं देखता इससे जैसी इच्छाहो वैसाकरे परन्तु जो सुखदुःख इसको होनेहैं वहअवश्यहोंगे कभी न मिटेंगे। चाहे पहाड़की कन्दरामें बैठेचाहे कोटमें परन्तु जो होनेकोहै वह अवश्यहोगा। इस निमित्त यत्नकरना मूर्खता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनंनामएकविंशतितमस्सर्गः २१॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकार के सुन्दरपदार्थ भासतेहैं वहसब नाशरूप हैं। इनकी आस्था मूर्ख करते हैं। यहतो मनकी कल्पनासे रचेहुयेहैं उनमें से मैं किसकी आस्थाकरूं? हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीना व्यर्थहै क्योंकि;जीने से उनका कुछअर्थ सिद्धनहीं होता। जब कुमारअवस्था होतीहै तब बुद्धिमूढ़ होतीहै उसमें कुछ विचार नहींहोता। जब युवावस्था आती है तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्नहोते हैं ये सदाढांपे रहतेहैं। जैसे जालमें पक्षीबँधजाता है और आकाशमार्ग को देखभी नहींसक्ता तैसेही काम क्रोधादिकसे ढँपाहुआ जीव विचारमार्गको नहीं देख सक्ता। जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत और महादीन होजाता है और शरीर को भी त्याग देता है। जैसे कमल के ऊपरबरफ पड़ता है तब उसको भँवरा त्याग करता है तैसेहीजब शरीररूपी कमल को जराका स्पर्श होताहै तबजीवरूपी भँवरा त्यागकर देता है। हे मुनीश्वर! यह शरीर तबतक सुन्दरहै जबतकवृद्धावस्था नहीं प्राप्तहोती। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश जबतक राहु दैत्यने आवरण नहीं किया तबतक रहता है; जबराहु दैत्य आवरण करताहै तबप्रकाश नहींरहता;तैसेही जरावस्था के आये युवावस्था की सुन्दरता जाती रहती है। हे मुनीश्वर! जराके आने से शरीर कृश होजाताहै जैसे वर्षाकालमें नदी बढ़जाती है तैसेही जराअवस्था में तृष्णा बढ़जाती है और जिस पदार्थकी तृष्णा करताहै वह पदार्थ भी दुःखरूप

है इसलिये तृष्णा करके आपही दुःख पाता है । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र में चित्तरूपी वेड़ा पड़ा है और रागद्वेषरूपी मच्छोंसे कभी ऊर्ध्वको जाताहै औरकभी नीचेआता है स्थिर कदाचित् नहीं रहता हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष में तृष्णारूप लता और विषयरूपी फूल हैं; जबजीवरूपी भँवरा उसके ऊपर बैठता है तबविषयरूपी वेलसे मृतक होजाताहै । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी एकबड़ी नदी है उसमें राग द्वेषादिक बड़े २ मच्छरहते हैं । उसनदीमें पड़ेहुये जीव दुःख पातेहैं और जो संसार की इच्छा करता है वह नाशरूप है हे मुनीश्वर ! उन्मत्तहाथी और तरङ्गोंके समूहके रणरूपी समुद्रको तर जानेवालेको भी मैं शूरनहीं मानता परन्तु जो इन्द्रियरूपी समुद्र में मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं उस समुद्र के तर जानेवालेको मैं शूरमानताहूं ऐसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं कि , जिसके परिणाम में दुःखहो । जिसके परिणाम में सुखहै उसका आरंभ वे नहीं करते और कामके अर्थकी धारणाकरतेहैं । ऐसे आरंभ कियेसे शरीरकी शान्तिके पीछेभी सुखकीप्राप्ति नहींहोती । वेकामनाकरके सदा जलते रहतेहैं।जो अनात्म पदार्थकी तृष्णाकरते हैंउनको शान्ति कैसे प्राप्तहो ? हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी नदी में बड़ा प्रवाहहै ; उसके किनारेपर वैराग्य और संतोष दो वृक्ष खड़ेहैं सो तृष्णा नदीके प्रवाह से दोनोंका नाश होताहै । हे मुनीश्वर ! तृष्णा बड़ी चंचल है किसीको स्थिर नहीं होने देती । मोहरूपी एक वृक्ष है उसके चारो और स्त्रीरूपी वल्लीहै सो विषसेपूर्णहै;। उसपरचित्तरूपी भँवरा आबैठताहै तब स्पर्शमात्रसे नाशहोता है । जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्त चंचल रहता है इसलिये वह मनुष्य पशुके समान है । जैसे पशु दिनको जंगल में जा आहार करते और चलते फिरते हैं और रात्रिको घर में आय खूटेसे बाँधेजाते हैं तैसेही मूर्ख मनुष्य भी दिनको घर छोड़के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आ अपने घरमें स्थिर होतेहैं पर इससे परमार्थकीकुछ सिद्धि नहीं होती वे अपना जीवन वृथा गँवाते हैं बाल्यावस्थामें तो शून्य रहताहै और युवावस्था में कामसे उन्मत्त होताहै उस कामसे चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कन्दरामें जा स्थित होताहै पर वहभी क्षणभंगुर है । फिर वृद्धावस्था आतीहै उससे शरीर कृश होजाताहै । जैसे बरफ से कमल जर्जरीभाव को प्राप्त होताहै तैसेही जरासे शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता और सब अंग क्षीण होजाते हैं पर एक तृष्णा बढ़ जातीहै । हे मुनीश्वर ! यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आ आकाशके फूलरूपी जगत् के पदार्थोंकी इच्छा करता है सो नीचे गिर राग द्वेषरूपी कंटकके वृक्षमें जापड़ेगा । हे मुनीश्वर ! जितने जगत् के पदार्थ हैं वह सब आकाशके फूल की नाईं नाशवान् हैं । इनमें आस्था करनी मूर्खताहै । यह तो शब्दमात्रहैं । इनसे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता । जो ज्ञानवान्

पुरुष हैं उनको विषय भोगकी इच्छा नहीं रहती क्योंकि; आत्माके प्रकाशसे वे इनको मिथ्या जानते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसे ज्ञानवान् दुर्विज्ञेय पुरुष हमको तो स्वप्न में भी नहीं भासते। ऐसे विरक्तात्मा दुर्लभ हैं कि, जिनको भोगकी इच्छा नहीं और सर्वदा ब्रह्मकी स्थितिमें भासतेहैं। ऐसे पुरुषोंको संसारकी कुछ इच्छा नहीं रहती क्योंकि; यह पदार्थ नाशरूप हैं। हेमुनीश्वर! जैसे पर्वतको जिसओर देखिये पत्थरोंसे; पृथ्वी मृत्तिकासे; वृक्ष काष्ठसे और समुद्र जलसे पूर्णदृष्टि आतेहैं तैसेही शरीर अस्थि मांससे पूर्ण भासताहै। ये सब पदार्थ पंचतत्त्वसेपूर्ण और नाशरूप हैं। ऐसा जानके ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता हेमुनीश्वर! यह जगत् सब नाशरूप है; देखतेही देखते नाशहोजाताहै उस में मैं किसका आश्रय करके सुखपाऊं? जब युगोंकी सहस्र चौकड़ी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है। उसदिनके क्षय हुये से सब जगत्का प्रलय होता है और ब्रह्माभी काल पाकर नाशहोजाता है। ब्रह्माभी जितने होगये हैं उनकी संख्या नहीं होसक्ती; असंख्य ब्रह्मा नाशहोगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है! हम किसीभोगकी वासना नहीं करते क्योंकि; सब चलरूप हैं; स्थिर रहनेके नहीं, सब नाशरूपहैं इसलिये इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जैसे मरुथलको देख मृग जलपान करनेको दौड़ता और शान्ति नहींपाता तैसेही मूर्खजीव जगत्के पदार्थोंको सत्यमानकर तृष्णा करताहै परन्तु शान्ति नहीं पाता क्योंकि; सब असाररूपहैं। स्त्री,पुत्र, औरकलत्र जबतक शरीर नष्ट नहीं होता तभीतक भासतेहैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तो जाना न जावेगा कि कहांगये और कहांसे आयेथे। जैसे तेल और वत्तीसे दीपक बड़ा प्रकाशवान् दृष्टि आताहै; जब बुझजाताहै तब जाना नहीं जाता कि, कहांगया तैसेही वत्तीरूप बान्धवहैं और उसमें स्नेहरूपी तेलहै उससे जो शरीर भासताहै सो प्रकाशहै। जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बुझजाताहै तब जानानहीं जाता कि कहांगया। हे मुनीश्वर! बन्धुका मिलाप ऐसाहै जैसे कोई तीर्थयात्राको सङ्ग चलाजाताहो सो सब एकक्षण वृक्षकी छायाके नीचे बैठतेहैं फिर न्यारे न्यारे होजातेहैं। जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है तैसेही इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है। हे मुनीश्वर! अहंममताकी रस्सी के साथ बँधेहुये घटी यन्त्रकीनाईं सब जीव भ्रमते फिरते हैं उनको शान्ति कदाचित् नहीं होती। यह देखनेमात्र तो चेतनदृष्टि आताहै परन्तु पशु और बन्दर इनसे श्रेष्ठहैं जिनकी सम्मति देह और इन्द्रियोंके साथही बँधीहुईहै और आगमापायी हैं उनको आत्मपदकी प्राप्तिहोनी कठिनहै। जैसे पवनसे वृक्षके पातटूटके उड़जातेहैं फिर उन को वृक्षकेसाथ लगना कठिनहै तैसेहीजो देहादिकसे बँधेहुयेहैं उनको आत्मपदका पाना कठिन है। हे मुनीश्वर! जब आत्मपद से विमुख होता है तब जगत् के भ्रम

देखता है और जब आत्मपदकी ओरआता है तब संसार इसको बड़ा बिरसलगता है । ऐसापदार्थ जगत्में कोई नहींजो स्थिररहै, जो कुछ पदार्थहैं सोनाशको प्राप्तहोते हैं । इस से मैं किसकी आस्थाकरूं और किसका आश्रयकरूं सबतो नाशवन्तभासते हैं ? वहपदार्थ मुझसे कहिये जिसकानाश न हो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्वपदार्थाभाववर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः २२ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! जितना स्थावर–जङ्गम जगत् दिखता है वह सब नाशरूप है कुछभीस्थिर न रहेगा । जो खाईथी वह जलसे पूर्णहोगई है और जोबड़े जल से भरेहुये समुद्र दिखते थे वे खाईरूप होगये; जो सुन्दरबड़े बागीचे थे वे आकाश की नाई शून्यहोगये और जो शून्यस्थानथे वे सुन्दरवृक्षहुये बन में दृष्टि आतेहैं; जहां बस्तीथी वहां उजाड़होगई और जहां उजाड़थी वहांबस्तीहोगई; जहां गढ़ेथे वहां पर्वतहोगये और जहां बड़ेपर्वतथे वहां समानपृथ्वी होगई । हे मुनीश्वर ! इसप्रकार पदार्थ देखतेदेखते विपर्यय होजाते हैं स्थिर नहीं रहते तो फिर मैं किसका आश्रयकरूं औरकिसके पानेका यत्नकरूं ? ये पदार्थ तो सब नाशरूप हैं । जो बड़ेबड़े ऐश्वर्य्य से सम्पन्न और बड़ेकर्त्तव्य करते और बड़े वीर्यवान् तेजवान् हुये हैं वे भी मरणमात्र होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्यावार्त्ता है ? सबनाश होते हैं तो हमेंभीघड़ी पल में चलाजाना है । हे मुनीश्वर ! ये पदार्थ बड़े चञ्चलरूप हैं; एकरसकदाचित् नहीं रहते । एकक्षणमें कुछहोजाते और दूसरे क्षणमें कुछ होजाते हैं; एकक्षणमें दरिद्रीहोजाते और दूसरेक्षण में सम्पदावान् होजातेहैं; एकक्षण में जीतेदृष्टिआते हैं और दूसरे क्षणमें मरजाते हैं; और एकक्षणमें फिर वेभी जी उठतेहैं । इस संसारकीस्थिरता कभी नहीं होती । ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते एकक्षण में समुद्रके प्रवाह के ठिकाने मरुथल होजाते और मरुथल में जल के प्रवाह होजातेहैं । हे मुनीश्वर ! इस जगत्का आभास स्थिर नहीं रहता–जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता तैसेही जगत्का पदार्थ एकभी स्थिर नहीं रहता । जैसे नट नानाप्रकार के स्वांग धरता है तैसेही जगत् के पदार्थ और लक्ष्मी एकरस नहीं रहती । कभी पुरुष स्त्री होजाता और कभी स्त्री पुरुष होजातीहै; कभी मनुष्य पशु होजाता और कभी पशु मनुष्यहोजाताहै, स्थावरका जङ्गमहोजाताहै और जङ्गमका स्थावर होजाताहै, मनुष्यका देवता होजाता और देवताका मनुष्य होजाता है । इसी प्रकार घटीयंत्रकी नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहींरहती कभी ऊर्ध्वको जातीहै और कभी अधको जाती है स्थिर कभी नहीं रहती–सदा भटकतीरहतीहै । हे मुनीश्वर ! जितने कुछ पदार्थ दृष्टि आतेहैं वे सब नष्ट होजावेंगे; किसी भांति स्थिर न रहेंगे । ये सब नदियां बड़वाग्निमें लय होजावेंगी और जितने पदार्थहैं वे सब अभावरूपी बड़वाग्निको प्राप्तहोंगे । बड़े २

वलिष्ठभी मेरे देखतेही देखते लीन होगये हैं। जो बड़े २ सुन्दर स्थानथे वे शून्य होगये और सुन्दर ताल और बगीचे जो मनुष्यों से परिपूर्ण थे शून्य होगये। मरुथल की भूमि सुन्दर होगई और घट के पटहोगये हैं। वरके शाप होजाते हैं। और शाप के वर होजाते हैं। इसीप्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टिआताहै वह कभी सम्पत्तिवान् और कभी आपत्तिवान् दृष्टि में आता है और महाचपल है। हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थोंका विचार विना मैं कैसेआश्रय करूं और किसकी इच्छा करूं सबतो नाशरूप हैं? ये जो सूर्य प्रकाशयुक्त दृष्टि आते हैं वे भी अन्धकाररूप होजावेंगे, अमृत से पूर्ण चन्द्रमाभी शून्य होजायगा और सुमेरु आदिक पर्वत, सब लोक, मनुष्य, देवता, यक्ष और राक्षस सब नाशहोंगे। इससे हे मुनीश्वर! और किसीका क्या कहना है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जगत् के ईश्वरभी शून्य होजायँगे। जो कुछ जगत् दृष्टि आता है और स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्य्य और तेज से युक्त नाना प्रकारके जो जीव भासते हैं वे सब नाशरूप हैं फिर मैं किसपदार्थका आश्रय करूं और किसकी इच्छाकरूं? हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस होगये; वह किसी पदार्थकी इच्छानहीं करता क्योंकि; उसेतो सबपदार्थ नाशरूप भासतेहैं और वहअपनी आयुष्यको विजली के चमत्कारवत् देखता है। जिसको अपनी आयुष्यकी प्रतीति होतीहै सो किसीकी इच्छा नहीं करता जैसे किसी को वलिदान के अर्थ पालते हैं तो वह खाने पीने और भोगनेकी इच्छानहीं करता तैसेही जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती। ये सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रयकरके सुखीहों। जैसे कोई पुरुष समुद्रमें मच्छका आश्रय करके कहै कि, मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाऊंगा और सुखी होऊंगा तो वह मूर्खता से डूबही मरेगा; तैसेही जिस पुरुषने इनपदार्थोंका आश्रय लियाहै और उन्हें अपने सुखके निमित्त जानताहै वह नाशहोगा। हेमुनीश्वर! जो पुरुष जगतको विचारता रहताहै उसको यह जगत् रमणीय भासताहै और जो रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करताहै और नाना प्रकारके सङ्कल्प करके जगतमें भटकताहै उसीको यह भटकाताहै। जैसे पवनसे धूर कभी ऊंचे और कभी नीचे आती है स्थिरनहींरहती तैसेही यहजीव भटकता फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिसपदार्थकी इच्छा करताहै वह सब कालका ग्रासरूप है। ईंधनरूपी जगत् बनमें कालरूपी अग्नि लगीहै उसने सबको ग्रासलियाहै। जो इन पदार्थोंकी इच्छा करते हैं वे महामूर्ख हैं। जिनको आत्म विचारकी प्राप्तिहै उनको यह जगत् भ्रमरूप भासताहै और जिसको आत्मविचारकी प्राप्तिनहीं है उसको यह जगत् रमणीय भासताहै। जगत्तो देखतेही देखते नाशहोजाताहै इसस्वप्न

पुरीकी नाईं संसारकी मैं कैसे इच्छा करूं; यहतो दुःखकानिमित्त है ? जैसे विषमिली मिठाई के भोजन करने वाले मृत्युपातेहैं तैसेही विषय भोगनेवाले नाश होतेहैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजगद्विपर्ययवर्णनन्नामत्रयोविंशतितमस्सर्गः २३ ॥

श्रीरामजी बोले हेमुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी अग्नि लगीहै उससे सब जलतेहैं । जैसे तालमें हाथीके पांवसे कमलका चूर्ण होजाताहै तैसेही भोगसे मनुष्य दीन होजातेहैं । जैसे वायुसेमेघ नष्ट होजाताहै तैसेही काम, क्रोध और दुराचार से शुभगुण नष्ट होजाते हैं । जैसे भटकटैया के पत्ते और फलमें कांटे होजाते हैं तैसेही विषयकी वासनारूपी कंटक आलगतेहैं । हेमुनीश्वर ! यह सब जगत् नाशरूपहै, कोई पदार्थ स्थिर नहीं । वासनारूपी जल और इन्द्रियरूपी गांठहै उसमें पुरुष कालसे फँसाहै वह बड़े दुःख पावेगा । हेमुनीश्वर ! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती पिरोये हुये हैं और मनरूपी नटआय पिरोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गलेमें डालता है । जब वासनारूपी तागा टूटपड़ताहै तबयह सब भ्रमभी निवृत्त होजाताहै । हेमुनीश्वर! इस जीवको भोगकी इच्छाही बंधनका कारणहै उसीसे यह भटकता है और शान्ति नहीं पाता । इससे मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं; न राज्यकीही इच्छाहै और न घरकी, न वनकी इच्छाहै; न मरनेका दुःखही मानताहूं और न जीनेका सुख मानताहूं । मुझे किसी पदार्थका सुख नहीं; सुखतो आत्मज्ञानसे होताहै अन्यथा किसी पदार्थसे नहींहोता । जैसे सूर्यके उदयहुये विनाअन्धकारका नाशनहीं होता तैसेही आत्मज्ञान विना संसारके दुःखका नाशनहीं होता । इससे आपवहीउपाय कहिये जिससे मोह का नाशहो और मैं सुखी होऊं । हे मुनीश्वर ! भोगके भोगनेवाले अहङ्कारको मैंने त्यागदिया फिर भोगकी इच्छा कैसेहो ? हे मुनीश्वर ! विषयरूप सर्पने जिसका स्पर्श किया उसका नाशहोजाताहै । सर्पजिसकोकाटताहै वह एकहीबेर उसकोमारडालताहै परविषयरूपी सर्प जिसको काटताहै वह अनेकजन्म पर्यंत मारताही चलाजाता है । इससे परमदुःखका कारण विषय भोगही है और परमविषहै । हे मुनीश्वर ! आरेसे अङ्गका कटाना और वज्रसे शरीरका चूर्णहोना मैं सहूंगा परन्तु विषयका भोगना मुझसे किसीप्रकार सहानहीं जाता । यह तो मुझको दुःखदायकही दृष्टि आताहै । इससे वही मुझसे कहिये जिससे मेरे हृदयसे अज्ञानरूपी अन्धकारका नाशहो और जो न कहोगे तो मैं अपनी छाती पर धीर्य्यरूपी शिला धरके बैठारहूंगा परन्तु भोगकीइच्छा न करूंगा । हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ हैं वे सब नाशरूप हैं । जैसे बिजलीका चमत्कार होके छिप जाताहै और अंजलिमें जल नहीं ठहरता तैसेही विषयभोग और आयुष्य नाश होजाते हैं—ठहरतेनहीं । जैसे कंठीसे मछली दुःख पातीहै तैसेही भोगकी तृष्णासे जीव दुःख पातेहैं । इससे मुझे किसीपदार्थकी इच्छा

नहीं। जैसे कोई मरीचिकाके जलको सत्यजान जलपानकी इच्छा करे और दौड़े पर जल नहीं पाता। इसमे में किसीपदार्थ की इच्छा नहीं करता॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्व्वान्तप्रतिपादनन्नामचतुर्विन्शातितमस्सर्गः २४॥
श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! संसाररूपीगढ़े और मोहरूपी कीचमें मूर्खकामन गिरजाताहै उससे वह दुःखहीपाताहै शान्तिवान्कभीनहींहोता। जब जरावस्थाआती है तब जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनमे हिलतेहैं तैसेही अंग हिलतेहैं और तृष्णा बढ़ जातीहै। जैसे नीमकावृक्ष ज्यों२ वृद्धहोताहै त्यों२ कटुताबढ़तीहै तैसेही तृष्णाबढ़तीहै। हेमुनीश्वर! जिस पुरुषने देह इन्द्रियादिकोंका आश्रय अपने सुखनिमित्त लियाहै वह मूर्ख संसाररूपी अंधकूप में गिरताहै औरनिकल नहीं सक्ता। अज्ञानीका चित्त भोग कात्याग कदाचित् नहींकरता। हेमुनीश्वर! जगत्के पदार्थोंसे मेरीबुद्धिमलीन होगई है। जैसे वर्षा कालमें नदी मलीनहोतीहै। और जैसे मार्गशीर्ष मासमें मंजरी सूख जातीहै तैसेही जगत्की शोभा देखने २ मेरीबुद्धि विरस होजातीहै। जैसे जगत्का पदार्थ मूर्खको रमणीय भासताहै और जैसे पानीका गढ़ा तृणसे आच्छादित होता है और मृगका बालक उसतृणको रमणीयजानकर खानेजाता तो गिरजाताहै तैसेही यह मूर्खजीव भोगको रमणीय जान भोगके गिरपड़ता है फिर महादुःख पाताहै। हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थोंमे मेरीबुद्धि चञ्चल होगईहै इससे वहीउपाय कहिये जिस से मेरीबुद्धि पर्व्वतकी नाईं निश्चलहो और परमानन्द जो निर्भय निराकारहै और जिसके पायेसे किसी पदकी इच्छा नहींरहती पाऊं। हे मुनीश्वर! ऐसेपदसे मेरीबुद्धि शून्यहै इससे मैं शांतिवान् नहीं होता। यह संसार और संसारके कर्म मोहरूप हैं, इसमें पड़ेहुये शांति नहीं पाते। जनकादिक और शांतिवान् संसारमें रहे हुये कमल की नाईं निर्लेप रहतेहैं। उनकीक्या समझहै कृपाकरके कहिये और आप ऐसे सन्त-जन विषय भोगते दृष्टि आते और जगत्की सब चेष्टा करतेहैं पर निर्लेप कैसे रहतेहैं वह युक्ति कहिये। यह बुद्धि जैसे तालमें हाथी प्रवेश करताहै और पानी मलीन होजाताहै तैसेही मोहसे मलीन होजातीहै। इससे वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मलहो। यह सन्तोष बुद्धि स्थिर कभीनहीं रहती। जैसे कुल्हाड़ेका कटावृक्ष मूलसे स्थिर नहींहोता तैसेही वासनासे कटीबुद्धि स्थिर नहीं रहती। हे मुनीश्वर! संसाररूपी विशूचिका मुझको लगीहै इससे वही उपाय कहिये जिससे दृश्यकानाश हो—इसने मुझको बड़ादुःखदिया। आत्मज्ञान कब प्रकाशहोगा जिसके उदय हुये मोहरूपी अंधकारका नाशहो? हेमुनीश्वर! जैसे बादलसे चन्द्रमा आच्छादितहोजाता है तैसेही बुद्धिकी मलीनतासे मैं आच्छादित हुआहूं। इससे वही उपाय कहिये जिस से आवरण दूरहो और आत्मानन्दजो नित्यहै प्राप्तहो। इसके पायेसे फिर कुछपानेकी

आवश्यकता नहीं रहती और इससे सम्पूर्णदुःख नाश होजाते हैं और अंतःकरण शीतल होजाताहै । एसेपदकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहिये । हे मुनीश्वर ! आत्म ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी मुझको इच्छा है; जिसके प्रकाशसे बुद्धिरूपी कमलिनी खिल आतीहै और जिसकी अमृतरूपी किरणोंसे तृप्तवृत्तिहोती है । हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृहमें रहनेकी इच्छानहीं और वनमें जानेकी भी इच्छानहीं । मुझको तो उसी पदकी इच्छाहै जिसके पायेसे अंतःकरण शान्तहोजाय ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेवैराग्यप्रयोजनवर्णनन्नामपंचविंशतितमस्सर्गः२५॥

श्रीरामजीबोले हे मुनीश्वर ! जो जीनेकी आस्थाकरतेहैं वे मूर्ख हैं । जैसे पत्रपर जलकी बूंद नहीं ठहरती तैसेही आयुष्यभी क्षणभंगुरहै । जैसे वर्षाकालमें दादुरबोलतेहैं और उनका कट चंचल सदा फड़कता रहताहै तैसेही आयुर्दा क्षण२ में चंचल होजातीहै । जैसे शिवजीके कपालमें चन्द्रमाकी रेखा छोटीसी है तैसेही यह शरीर है हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्थाहै वह महा मूर्खहै—यहतो कालका ग्रासहै । जैसे बिल्ली चूहेको पकड़लेतीहै तैसेही सबको काल पकड़ लेताहै । जैसे बिल्ली चूहेको सँभलने नहीं देती तैसेही काल सबको अचानक ग्रहण कर लेताहै और किसीको नहीं भासता । हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तब लोभरूपीमोर प्रसन्नहोके नृत्य करताहै । जब अज्ञानरूपीमेघ वर्षाकरता है तब दुःखरूपी मंजरीबढ़ने लगतीहै, लोभरूपी बिजली क्षण २ में हो हो नष्टहोजाती हैं और तृष्णारूपी जालमेंफँसेहुये जीवरूपी पक्षी पड़े दुःख पातेहैं—शांतिकी प्राप्ति नहींहोती । हे मुनीश्वर ! यह जगत्‌रूपी बड़ा रोगलगा है उसके निवारण करनेका कौनसा पदार्थ है ? जोपाने योग्यहै और जिससे भ्रमरूपी रोग निवृत्तहो वही उपाय कहिये । यह जगत् मूर्खको रमणीय दिखताहै । ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोक और पातालमें भी नहीं जो ज्ञानवान्‌को रमणीय दीखें । ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप भासता है और अज्ञानी जगत्‌में आस्था करताहै । हे मुनीश्वर ! चन्द्रमामें जो कलङ्कहै उससे शोभा सुन्दर नहीं लगती । जब कलङ्क दूर होजाय तब सुन्दर लगे तैसेही मेरे चित्तरूपी चन्द्रमामें कामरूपी कलङ्क लगाहै इससे वह उज्ज्वल नहीं भासता । आप वही उपाय कहिये जिससे कलङ्क दूरहो । हे मुनीश्वर ! यहचित्त बहुत चञ्चलहै स्थिर कदाचित् नहीं होता । जैसे अग्निमें डालदिया पारा उड़ जाताहै तैसेही चित्तभीस्थिर नहीं होता विषयकी ओर सदाधाताहै । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्त स्थिरहो । संसाररूपी वनमें भोगरूपीसर्प रहते हैं और जीवकोकाटते हैं उनसे बचने का उपाय कहिये । जितनी क्रियाहैं वे राग द्वेषके साथ मिली हुई हैं; इससे वही उपायकहिये जिससे राग द्वेषका प्रवेशनहो और संसार समुद्रमें पड़के तृष्णारूपी जल

का स्पर्श नहो । और ऐसा उपायभी कहिये जिससे राग द्वेषका स्पर्श नहो । मन में जोमननरूपी सत्ताहै वह युक्तिसे दूरहोती है-अन्यथा दूरनहीं होती । उसकी निवृत्ति के अर्थ आपमुझसे युक्ति कहिये और आगे जिसको जिसप्रकार निवृत्तिहुई है और जिसप्रकार आपके अन्तःकरणमें शीतलता हुईहै वह कहिये।हेमुनीश्वर ! जैसे आप जानतेहैं सो कहिये और जो आपनेही वह युक्तिनहीं पाई तब मैंतो कुछनहीं जानता । मैं सब त्यागकर निरहंकार होरहूंगा और जबतक वहयुक्ति मुझको न प्राप्तहोगी तब-तकमैं भोजन, जलपान और स्नानादिक क्रिया और किसी सम्पदा और आपदा का कार्य्य न करूंगा-निरहङ्कार होऊंगा । यह न मेरीदेहहै, न मैं देहहूं; सबत्याग करके बैठरहूंगा । जैसे कागजके ऊपर मूर्त्ति चित्रित होती है तैसेही होरहूंगा । श्वास आते जाते आपही क्षीण होजायँगे।जैसे तेल बिना दीपक बुझजाता है तैसेही अनर्थवान् देह निर्वाण होजायगा तब महाशान्ति पाऊंगा । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! ऐसे कहकर रामजी चुपहोरहे । जैसे बड़े मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेअनन्यत्यागदर्शनन्नामषट्विंशतितमस्सर्गः २६ ॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; हे पुत्र ! जब इसप्रकार रघुवंशरूपी आकाश के रामचन्द्ररूपी चन्द्रमाबोले तब सब मौनहोगये और सबके रोम खड़े होगये-मानो रोमभी खड़ेहोकर रामजीके बचन सुनतेहैं और सभामें जितने बैठेथे वे सब निर्बा-सनारूपी अमृतके समुद्र में मग्नहोगये । वशिष्ठ , वामदेव , विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वरथे और दृष्टि आदिक मंत्री , राजा दशरथ और मण्डलेश्वर , चाकर, नौकर और माता कौशल्याआदिक सब मौनहोगये– अर्थात् अचलहोगये । पिंजड़ेमें जो तोते और बगीचेमें पशु आदिथे ; जो पक्षी आलयमें बैठेथे वे भी सुनकर मौनहोगये आकाश के पक्षी जो निकटथे वे भी स्थिरहोगये और आकाशमें देव, सिद्ध , गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरभी आके सुनने और फूलोंकी वर्षा करने तथा सब धन्यधन्य शब्द करनेलगे । उससमय फूलोंकी ऐसी वर्षाभई मानो बरफकी वर्षा होती है और क्षीरसमुद्रके तरङ्ग उछलते आतेथे मानो मोतीके मालाकी वृष्टि होनेलगी । जैसे माखनके पिण्ड उड़तेहों इसप्रकार आधीघड़ीपर्यन्त फूलोंकी वर्षाहुई और बड़ीसुगंध फैली । फूलोंपर भँवरे फिरनेलगे और बड़ा बिलास उसकालमें हुआ । सब नमोनमः शब्द करनेलगे और देव बोले हे कमलनयन ! रघुबंशी आकाशमें चन्द्रमारूप तुम धन्यहो । तुमने बड़े श्रेष्ठस्थान देखेहैं और बहुत प्रकारके बचन सुनेहैं । जैसे तुमने बचन कहेहैं वैसे हमने कभीनहीं सुने । यह बचनसुनके हमारा जो देवतोंका अभिमान था सो सब निवृत्तहोगया और अमृतरूपी बचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्णहोगई है ।

हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे बृहस्पतिभी नहींकहसक्के । तुम्हारे वचन परमानन्दके करनेवाले हैं इससे तुम धन्यहो ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसिद्धसमाजवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २७ ॥
वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! सिद्ध ऐसे वचन कहके विचारनेलगे कि, रघुबंश का कुल पूजने योग्यहै जिसमें रामजीने बड़े उदारवचन मुनीश्वरके सन्मुखकहेहैं । अब जो मुनीश्वर उत्तरदेंगे वहभी सुनाचाहिये । जैसे फूलके ऊपर भँवरा स्थिरहोताहै तैसेही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्यआदि सबसाधु सभामें स्थितहुये तब वशिष्ठ, विश्वामित्रआदि मुनीश्वर उठखड़ेहुये औरउनकीपूजाकरनेलगे । पहिलेराजादशरथने पूजाकी और फिर नानाप्रकारसे सबने उनकी पूजाकी और यथायोग्य आसनके ऊपरबैठे । उनमें नारदजी हाथमें बहुत सुन्दर वीणालिये और श्याममूर्त्ति व्यासजी नानाप्रकारके रङ्गसे रञ्जित वस्त्रपहिनेहुये मानो तारागणोंमें महाश्यामघटा आईहै विराजमान्थे । ऐसेही दुर्वासा, बामदेव, पुलह , पुलस्त्य , बृहस्पतिके पिता अङ्गिरा भृगु और मैंभी वहाँथा और ब्रह्मर्षि , राजर्षि , देवर्षि , देवता, मुनीश्वर सबआके उस सभामें स्थितहुये । किसीकी बड़ीजटा , कोई मुकुटपहिरे ,कोई रुद्राक्षकी माला और कोई मोतीकीमाला पहिनेथे , किसीके कण्ठमें रत्नकीमाला और हाथमें कमण्डलु और मृगछाला , किसीके महासुन्दरवस्त्र , किसीकीकटिपै कोपीन और किसीकीकटिपै सुवर्णकी जञ्जीरथी ऐसे बड़ेबड़े तपस्वी जो वहां आकेबैठेथे उनमें कोई राजसी और कोई सात्विकी स्वभावकेथे और सबविद्वान् वेदपढ़नेवाले प्राप्तहुये । कोई सूर्यवत्; कोई चन्द्रमावत्; कोई तारावत्; कोई रत्नवत् प्रकाशमान् और पुरुषार्थपर यत्नकरने वाले यथायोग्य आसनपर स्थितहुये । मोहनीमूर्त्ति और दीनस्वभाववाले रामजीभी हाथजोड़के सभामेंबैठे और उनकी सब पूजाकर कहनेलगे कि, हेरामजी ! तुम धन्य हो । नारद सबके सम्मुख कहनेलगे कि, हे रामजी ! तुमने बड़ेविवेक और वैराग्यके वचनकहे जो सबको प्यारेलगे और सबके कल्याणकरनेवाले और परम बोध के कारण हैं । हेरामजी ! तुमबड़े बुद्धिमान् और उदारात्मा दृष्टिआतेहो औरमहावाक्य का अर्थ तुम से प्रकट होता है । ऐसे उज्ज्वलपात्र साधु और अनन्त तपस्वियों में कोई बिरला होताहै । जितने मनुष्य हैं वे सब पशू से दृष्टिआते हैं क्योंकि; जिसको संसार समुद्र के पारहोने की इच्छा है और जो पुरुषार्थपर यत्नकरता है वही मनुष्य है । हे साधो ! वृक्षतो बहुत होतेहैं परन्तु चन्दनका वृक्षकोई होताहै; तैसेही शरीरधारी बहुत हैं परन्तु ऐसाकोई होताहै और सबअस्थिमांस रुधिर के पुतलेसे मिले हुये भटकते फिरते हैं । वे जैसे यंत्र की पुतली होती हैं तैसेही अज्ञानी जीव हैं । हाथी तो बहुतहैं परन्तु बिरले के मस्तकसे मोती निकलताहै तैसेही मनुष्यतो बहुत

हैं परन्तु पुरुषार्थपर यत्न करनेवाला कोई विरलाही होताहै। जैसे वृक्षबहुतेरे हैं परन्तु लवङ्ग का वृक्षकोई विरलाही होता है तैसेही मनुष्य बहुतहैं परन्तु ऐसाकोई विरलाही होताहै ऐसेपात्रसे थोड़ाअर्थ कहाभी बहुत होजाताहै। जैसे तेलकीबुंद थोड़ीही जलमें डालिये तो फैलजाती है तैसेही थोड़े वचन तुम्हारे हिये में बहुत होतेहैं। तुम्हारी बुद्धि बहुत विशेष है और दीपकसी प्रकाशवाली और बोधका परम पात्रहै। कहनेमात्र सेही तुमकोशीघ्र ज्ञानहोवेगा और जो हमारे सामने तुमको ज्ञान न हो तो जानना कि हमसब मूर्ख बैठे हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेमुनिसमाजवर्णनन्नामअष्टाविंशतितमस्सर्गः २८॥

समाप्तमिदम् वैराग्यप्रकरणम्॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथश्रीयोगवाशिष्ठे

द्वितीयमुमुक्षुप्रकरणप्रारम्भः ॥

वाल्मीकिजी बोले हे साधो ! ये वचन परमानन्दरूपहैं और कल्याणके कर्त्ता हैं। इनमें सुननेकी प्रीति तब उपजतीहै जब अनेक जन्मके बड़ेपुण्य इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्पवृक्षके फलको बड़े पुण्यसे पाते हैं तैसेही जिसके बड़े पुण्यकर्म इकट्ठे होते हैं उसकी प्रीति इनवचनोंके सुननेमें होती है- अन्यथा नहीं होती। ये वचन परमबोध के कारण हैं। वैराग्य प्रकरणके एकसहस्र पांचसौ श्लोकहैं। हेभारद्वाज! इसप्रकार जब नारदजीने कहा तब विश्वामित्र बोले कि हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जितना कुछ जानने योग्यथा सो तुममें है इससे अबतुम्हें जानना और नहीं रहा पर उसमें विश्राम पानेके लिये कुछ मार्जन करनाहै। जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करनेसे मुखस्पष्ट भासताहै तैसेही कुछउपदेशकी तुमको अपेक्षा है। हे रामजी ! आपहीके सदृश भगवान् व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीभी हुयेहैं। वह भी बड़े बुद्धिमान् थे ; उन्होंने जो जाननेयोग्यथा सो जानाथा पर विश्रामके निमित्त उनको भी अपेक्षा थी सो विश्रामको पाकर शान्तिवान् भये। इतना सुन रामजी ने पूंछा ; हे भगवन् ! शुकजी कैसे बुद्धिमान् और ज्ञानवान्थे और कैसी विश्रामकी अपेक्षा उनको थी और फिर कैसे उन्होंने विश्राम पाया सो कृपा करके कहो ? विश्वामित्रजी बोले ; हे रामजी! अंजनके पर्वतके समान और सूर्यके सदृश प्रकाशवान् भगवान् व्यासजी स्वर्ण के सिंहासनपर राजा दशरथके यहां बैठेथे। उनके पुत्र शुकजी सब शास्त्रोंके वेत्ताथे। और सत्यकोसत्य और असत्यको असत्य जानतेथे। उन्होंने शान्ति और परमानन्द रूपआत्मामें विश्राम न पाया तब उनको विकल्प उठा कि, जिसको मैंने जानाहै सो न होगा क्योंकि ; मुझको आनन्द नहीं भासता। यह संशय करके एककालमें व्यास-जी जो सुमेरुपर्वतकी कन्दरामें बैठेथे तिनके निकट आकर कहने लगे ; हेभगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसे भयाहै ; इसकी निवृत्ति कैसे होगी और आगे कभी इसकी निवृत्ति भईहै सो कहो ? हे रामजी ! जब इसप्रकार शुकजीने कहा तब विद्व-द्वेदशिरोमणि वेदव्यासजीने तत्काल उपदेश किया। शुकजीने कहा ; हे भगवन्! जो

कुछ तुम कहतेहो वह तो मैं आगेसेही जानताहूं ; इससे मुझको शान्ति नहीं होती। हे रामजी ! तब सर्वज्ञ वेदव्यासजी विचार करने लगे कि, इसको मेरे वचनसे शान्ति प्राप्त न होगी क्योंकि ; पिता पुत्रका सम्बन्ध है। ऐसा विचार करके व्यासजी कहने लगे, हे पुत्र ! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं ; तुम राजा जनकके निकट जाओ ; वे सर्वतत्त्वज्ञ और शान्तात्मा हैं उनसे तुम्हारा मोह निवृत्तहोगा। तब शुकदेव जी वहांसे चलकर मिथिला नगरीमें आये और राजा जनकके द्वारपर स्थित भये। द्वारपाल ने जाकर जनकजी से कहा कि, व्यासजी के पुत्र शुकजी खड़े हैं। राजाने जाना कि, इनको जिज्ञासा है। इसलिये कहा खड़े रहनेदो इसी प्रकार द्वारपने जा कहा और सातदिन उन्हें खड़ेही बीतगये। तब राजा ने फिर पूछा कि, शुकजी खड़े हैं कि, चलेगये हैं द्वारपालने कहा, खड़े हैं। राजाने कहा आगे लेआओ। तबवे उनको आगे लेआये। उस दरवाज़े पर भी वे सातदिन खड़े रहे। फिर राजाने पूछा कि, शुकजी हैं? द्वारपने कहा कि, हां खड़ेहैं। राजानेकहा कि, अन्तःपुरमें लेआओ और नानाप्रकारके भोग भुगताओ। तब वे उन्हें अन्तःपुरमें लेगये। वहां स्त्रियोंके पास भी वे सात दिनतक खड़ेरहे। फिर राजा ने द्वारपसे पूछा कि, उसकी अब कैसी दशा है और आगे कैसी दशाथी ? द्वारपने कहा कि, आगे वे निरादरसे न शोकवान् हुयेथे और न अब भोगसे प्रसन्न हुये ; वे तो इष्ट अनिष्टमें समान हैं। जैसे मन्दपवनसे मेरु चलायमान नहीं होता तैसेही यह बड़े भोगके निरादरसे चलायमान नहीं हुये। जैसे पपीहेको मेघके जलबिना नदी और तालआदिके जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं है तब राजाने कहा उन्हें यहांलेआओ और जब शुकजी आये तब राजा जनकने उठके खड़ेहो प्रणाम किया। फिर जब दोनों बैठगये तब राजाने कहा कि, हे मुनीश्वर ! तुम किसनिमित्त आयेहो ; तुमको क्यावांछा है सो कहो कि उसकी प्राप्ति मैं करदेऊं ? श्रीशुकजीबोले हेगुरो ! यह संसारकाआडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्तहोगा सो तुमकहो ? इतनाकह विश्वामित्रजी बोले हे रामजी ! जबइसप्रकार शुकदेवजीने कहा तब जनकने यथाशास्त्र उपदेश जोकुछ व्यासने कहाथा सोई कहा। यहसुन शुकजीने कहा कि, भगवन् ! जोकुछ तुम कहतेहो सोई मेरेपिता भी कहतेथे ; सोई शास्त्र भी कहताहै और विचारसे मैं भी ऐसाही जानताहूं कि, यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्नहोताहै और चित्तके निर्वेदहुये भ्रमकी निवृत्तिहोती है पर मुझको विश्राम नहीं प्राप्तहोताहै ? जनकजी बोले ; हे मुनीश्वर ! जो कुछ मैंने कहा और जो तुम जानतेहो इससे पृथक् उपाय न जानना और न कहनाही है। यहसंसार चित्तके संवेदनसेहुआहै ; जब चित्त फुरनेसे रहित होताहै तब भ्रम निवृत्त होजाता है। आत्मतत्त्व नित्यशुद्ध, परमानन्दस्वरूप केवल चैतन्य है; जब उसका अभ्यास

करोगे तब तुम विश्रामपावोगे । तुम मुक्तिस्वरूपहो क्योंकि; तुम्हारा यत्न आत्माकी ओरहै; दृश्यकी ओर नहीं; इससे तुमबड़ेउदारात्माहो । हेमुनीश्वर ! तुम मुझको व्यास जीसे अधिकजान मेरेपासआयेहो पर तुममुझसेभी अधिकहो क्योंकि; हमारीचेष्टा तो बाहरसेदृष्टिआतीहै और तुम्हारीचेष्टाबाहरसेकुछभीनहीं पर भीतरसे हमारीभीइच्छा नहींहै । इतनाकह विश्वामित्रजीबोले; हेरामजी! जब इसप्रकार राजाजनकने कहा तब शुकजीने निःसङ्ग निःप्रयत्न और निर्भय होकर सुमेरु पर्वतकी कन्दरामें जाय दशसहस्र वर्षतक निर्विकल्पक समाधि की । जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही वेभी निर्वाण होगये । जैसे समुद्र में बुंदलीन होजाती है और जैसे सूर्य्यका प्रकाश सन्ध्याकाल में सूर्य्य के पास लीन होजाता है तैसेही कलनारूप कलङ्क को त्याग कर वे ब्रह्मपदको प्राप्तहुये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेमुनिशुकनिर्वाणवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः १ ॥

विश्वामित्रजी बोले; हे राजादशरथ ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवालेथे तैसेही रामजी भीहैं । जैसे शान्ति के निमित्त उन को कुछ मार्जन कर्त्तव्यथा तैसेही रामजी कोभी विश्रामके निमित्त कुछमार्जन चाहिये क्योंकि;आवरण करनेवाले जो भोगहैं उनसे इन कीइच्छा निवृत्तभई है और जो कुछ जानने योग्यथा सोजाना है । अबहम कोई ऐसी युक्ति करेंगे जिससे इनको विश्रामहोगा जैसे शुकजीको थोड़े से मार्जन से शान्तिकी प्राप्तिहुईथी तैसेही इनकोभी होवेगी । हे राजन् ! जैसे ज्ञानवान्को अध्यात्मक आदि दुःखस्पर्श नहींकरते तैसेही रामजी कोभी भोगकी इच्छा नहींस्पर्श करती । भोगकी इच्छा सब को दीन करती है इसकाही नाम बन्धन है और भोगकी वासनाका क्षय करना इसकाही नाम मोक्षहै । ज्योंज्यों भोगकी इच्छाकरताहै त्योंत्यों लघुहोताजाता है और ज्योंज्यों भोगकी वासना क्षयहोती है त्योंत्यों गरिष्ठ होताहै । जबतक आत्मानन्द प्रकाशनहीं होता तबतक विषयकी वासना दूरनहीं होती और जब आत्मानन्द प्राप्तहोता है तब विषयवासना कोईनहीं रहती । जैसे मरुथल में वल्ली नहीं उत्पन्न होती तैसेही ज्ञानवान् को विषयवासना की उत्पत्ति नहींहोती । हे साधो ! ज्ञानवान् किसी फलकी इच्छा से विषय भोगका त्याग नहीं करता स्वभावसेही उसकी विषय वासना चली जाती है । जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही रामजी को अब किसीभोग पदार्थकी इच्छानहीं रही । अब तो वे विदितवेद हुयेहैं आपही विश्रामकी इच्छारखते हैं इससे जो कहो वहीकरूं जिससे वे विश्रामवान् हों । हे राजन् ! भगवान् वशिष्ठजी की युक्तिसे ये शान्त होंगे और आगेसे वही रघुवंश कुलके गुरु हैं । इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं । ये सर्व्वज्ञ और साक्षिरूप हैं और त्रिकाल और ज्ञान के सूर्य्य हैं । इनके उपदेश से

रामजी आत्मपदको प्राप्तहोंगे। हेवशिष्ठजी! जब हमारा तुम्हारा बिरोध हुआथा और ब्रह्माजीने मन्दराचल पर्वतपर, जो ऋषीश्वरों और अनेक वृक्षोंसे पूर्णथा, संसार बासना के नाश, हमारे तुम्हारे विरोधकी शान्ति और और जीवोंके कल्याणनिमित्त जो उपदेश कियाथा वह तुमको स्मरणहै? अब वहीउपदेश तुम रामजी को करो क्योंकि, ये भी निर्मल ज्ञानपात्रहैं। ज्ञान बिज्ञान और निर्मलयुक्ति वहीहै जो शुद्धपात्रमेंअर्पणहो और पात्र बिना उपदेश नहीं सोहता। जिसमें शिष्यभाव और बिरक्ततानहो ऐसे अपात्र मूर्खको उपदेश करना व्यर्थ है। कदाचित् बिरक्त हो और शिष्यभावना नहीं तौभी उपदेश न करना चाहिये। दोनोंसे सम्पन्नकोही उपदेश करना चाहिये। पात्र बिना उपदेश व्यर्थहै अर्थात् अपवित्र होजाताहै। जैसे गऊकादूध महापवित्रहै पर श्वान की त्वचामें डारिये तो अपवित्र होजाताहै तैसेही अपात्रको उपदेश करना व्यर्थहै। हेमुनीश्वर! जोशिष्य वैराग्यसेसम्पन्न और उदारआत्माहै वहतुम्हारे उपदेशकेयोग्यहै और तुमवीतराग और भयक्रोधसेरहित परमशान्तरूपहो, इसलिये तुम्हारेउपदेशके पात्र रामजीहैं। इतनाकहकर बाल्मीकिजीबोले कि, जबइसप्रकार विश्वामित्रजीनेकहा तब नारद और व्यासादिकने साधुसाधुकहा अर्थात् भलाभलाकहा कि ऐसेही यथार्थ है। उससमय राजादशरथकेपास बहुतप्रकारकेसाधु बैठेहुयेथे। ब्रह्माजीकेपुत्र वशिष्ठ जीनेकहा कि, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमनेआज्ञाकीहै वह हमनेमानी। ऐसी किसीकी सामर्थ्यनहीं कि, सन्तकीआज्ञा निवारणकरे। हे साधो! राजादशरथके जितने पुत्रहैं उनसबके हृदयमें जो अज्ञानरूपीतमहै वह मैं ज्ञानरूपीसूर्य से ऐसे निवारणकरूंगा जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार दूरहोताहै। हे मुनीश्वर! जो कुछ ब्रह्माजीने उपदेश कियाथा वह मुझको अखण्डस्मरणहै मैं वही उपदेशकरूंगा जिससेरामजी निःसंशयपनको प्राप्तहोंगे। इतनाकहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार वशिष्ठजी ने विश्वामित्रसे कह रामजीसे मोक्षका उपाय कहनेलगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुनिविश्वामित्रोपदेशोनामद्वितीयस्सर्ग्गः॥ २॥

वशिष्ठजीबोले हे रामजी! ब्रह्माजी ने मुझको जीवोंके कल्याणके निमित्त उपदेश कियाथा वह मुझेभलेप्रकारस्मरणहै और वही अब मैंतुमसेकहताहूं। इतनासुन श्री रामजीनेपूंछा; हे भगवन्! कुछ प्रश्नकरनेका अवसरआयाहै। एकसंशय मुझको है सो दूरकरो। मोक्ष उपाय जो संहिताकहतेहो सो तो तुम सब कहोगे परन्तु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेह मुक्त होगये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञथे सो विदेहमुक्त क्यों न हुये! वशिष्ठजीबोले हे रामजी! जैसे सूर्यके किरणकेसाथ त्रसरेणु उड़ती देखपड़ती हैं और उनकी संख्या कुछ नहीं होती तैसेही परमसूर्य्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूपी असंख्य त्रसरेणु हैं अनन्त होकर मिटजाते हैं और

अनन्तहोतेहैं । अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्रमेंहैं उनकी संख्या कुछनहीं । श्रीरामजी ने पूंछा, हे भगवन्! पीछे जो व्यतीतहोगयेहैं और आगे जो होवेंगे उनकी कितनी संख्या है? वर्त्तमानको तो मैं जानताहूं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अनन्तकोटि त्रिलोकीकेगण उपजेहैं और मिटगयेहैं । कितनेई होतेहैं और कितनेई होवेंगे इनकी कुछसंख्यानहीं है क्योंकि; जीव असंख्यहैं और जीवप्रति अपनी२ सृष्टिहै । जब ये जीव मृतकहोजाते हैं तब उसी स्थानमें अपने अन्तवाहक संकल्परूपी पुरमें इनका वन्धभासताहै और उसीस्थानमें परलोक भास आताहै । पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पंचभूत भासताहै और नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी२ सृष्टि भासआती है । फिर जब वहांसे मृतक होताहै तब भी वही सृष्टि भासआती है । नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत सत्य होकर भास आतीहै । फिर जब वहांसे मरता है तब इस पंचभूत सृष्टिका अभाव होजाता है । और २ भासती है और वहांके जो जीव होतेहैं उनको भी इसीप्रकार अनुभव होताहै । इसीप्रकार एक २ जीवकी सृष्टि होती है और मिटजाती है उसकी संख्या कुछ नहीं । तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्याकैसे हो ? जैसे मनुष्यघूमता है और उसको सर्वपदार्थ भ्रमसे दृष्टि आते हैं; जैसे नौका में वैठेहुये नदीकेवृक्ष चलते दृष्टिआते हैं ; जैसे नेत्रके दोपसे आकाश में मोतीकी माला दृष्टिआतीहै और जैसेस्वप्नेमें सृष्टि भासतीहै तैसेही जीवकोभ्रमसे यहलोक परलोक भासताहै ; वास्तवमें जगत्कुछ उपजाहीनहीं , एकअद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै तिसमें द्वैतभ्रम अविद्यासे भासताहै । जैसे वालकको अपनी परछाहीं में वैताल भासताहै औरभयपाताहै तैसेहीअज्ञानीको अपनीकल्पना जगत्रूप होकर भासतीहै । हेरामजी ! व्यासजीको वत्तीसआकारसे मैंनेदेखाहै।उनमें दशएक आकार औरक्रिया और निश्चयरूपहैं;दशसमसमानहुयेहैं और वारहआकारक्रिया और चेष्टा में विलक्षणहुयेहैं । जैसे समुद्रमेंतरङ्गहोतीहैं तोउनमेंकईसमऔरकईविलक्षणउपजती हैं तैसेही व्यासहुयेहैं । समजो दशहुयेहैं उनमें दशव्यास यहीहैं और आगेभी आठवेर यही होंगे और महाभारतकहेंगे । नवीं वेर ब्रह्माहोकरविदेहमुक्तहोंगे । हम और वाल्मीकि, भृगु और वृहस्पतिका पिताअङ्गिरा इत्यादि भी मुक्तहोवेंगे । हेरामजी ! एकसम होतेहैं और एक विलक्षण होतेहैं । मनुष्य,देवता, तिर्य्यगादिकजीव कईवेर समानहोते और कितनेवेर विलक्षण होतेहैं । कितनेजीव समान आकार आगेसे कुलक्रिया सहित होतेहैं और कितने संकल्पसे उड़ते फिरतेहैं । आना, जाना, जीना, मरना स्वप्नभ्रमकी भांति दीखताहै पर वास्तवमें न कोई आताहै, न जाता है, न जन्मता है, न मरताहै । यहभ्रम अज्ञानसे भासताहै विचारकियेसे कुछनहीं भासता । जैसे कदलीकाखंभ वड़ा पुष्टदीखताहै पर यदि खोदके देखो तो कुछ सार नहीं निकलता तैसेही जगत्भ्रम

अविचारसे सिद्धहै ; विचारकियेसे कुछनहीं भासता। हे रामजी ! जो पुरुष आत्मसत्तामें जगा है उसको द्वैतभ्रम नहीं भासता। वह आत्मदर्शी , सदा शांतआत्मा, परमानन्दस्वरूप और इच्छासे रहितहै। जैसे जीवन्मुक्तको कोईचला नहीं सक्ता तैसेही व्यासदेवजीको सदेहमुक्ति और विदेहमुक्तिकी कुछइच्छा नहीं वेतो सदा अद्वैतरूप हैं। हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सर्वत्र सर्वात्मा पूर्णभासताहै और स्वस्वरूपहै। वहतो स्वरूप, सार, शांतिरूप अमृतसे पूर्ण और निर्वाणमें स्थितहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेअसंख्यसृष्टिप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्तिमें कुछभेद नहींहै। जैसे जल स्थिरहै तौभी जलहै और तरङ्ग है तौभी जलहै तैसेही जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमें कुछभेद नहींहै। हेरामजी ! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका अनुभव तुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता क्योंकि; स्वसंवेद है और उनमेंजो भेद भासताहै सो असम्यक्‌दर्शीको भासताहै ज्ञानवान्‌को कुछ भेद नहीं भासताहै। हे मननकारियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जैसे वायु स्पंदरूप होतीहै तौभी वायुहै और निस्स्पंदरूप होतीहै तौभी वायुहै निश्चय करके कुछभेदनहीं पर और जीवको स्पंदहोतीहै तो भासती औरनिस्स्पंद होतीहै तो नहीं भासती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुषको जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमें कुछ भेद नहीं—वह सदा अद्वैत और इच्छासे रहितहै। जब जीवको उसकाशरीर भासताहै तब जीवन्मुक्ति कहतेहैं और जब शरीर अदृश्यहोता है तब विदेहमुक्ति कहते हैं पर उसको दोनोंतुल्यहैं। हे रामजी ! अब प्रकृत प्रसङ्गको जो श्रवणका भूषणहै सुनिये। जो कुछ सिद्धहोताहै सोअपने पुरुषार्थसे सिद्धहोता है। पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता। लोग जोकहतेहैं कि, दैवकरेगा सोहोगा यहमूर्खता है । चन्द्रमा जो हृदयको शीतल और उल्लासकर्त्ता भासताहै इसमें यह शीतलता पुरुषार्थसे हुईहै। हे रामजी ! जिस अर्थकी प्रार्थना और यत्नकरे और उससे फिरे नहीं तो अविस्मयकर जरूर पाताहै। पुरुषप्रयत्न किसकानामहै सोसुनिये। सन्तजन और सत्यशास्त्रकेउपदेशरूप उपायसे उसकेअनुसार चित्तका विचरना पुरुषार्थ प्रयत्नहै और उससे इतर जो चेष्टाहै। उसका नाम उन्मत्त चेष्टाहै। जिस निमित्त यत्नकरताहै सोई पाताहै। एकजीव पुरुषार्थ प्रयत्नकरके इन्द्रकी पदवी पाकर त्रिलोकी का पतिहो सिंहासनपर आरूढ़हुआ। हेरामचन्द्र ! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य सम्पत्ति है सो सम्पद्‌रूप होकर फुरती है और सोई अपने पुरुषार्थ से ब्रह्मा के पदको प्राप्तभई है। तिसे देख जिसको कुछ सिद्धता प्राप्तहुई है सो अपने पुरुषार्थसेही हुई है। केवल चैतन्य आत्मतत्त्वहै उसमें चित्तसंवेदन स्पन्द रूपहै यह चैतन्य सम्वेदन अपने पुरुषार्थसे गरुड़पर आरूढ़होकर विष्णुरूप होताहै और पुरुषोत्तमकहाताहै और यही चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थ से रुद्ररूपहो अर्द्धाङ्ग

में पार्वती, मस्तक में चन्द्रमा और नीलकंठ परमशांतिरूप को धारण करताहै इससे जो कुछ सिद्धहोताहै सो पुरुषार्थसेही होताहै। हे रामजी! पुरुषार्थसे सुमेरु का चूर्ण किया चाहे तो वह भी करसक्ता है। यदि पूर्व दिनमें दुष्कृत किया हो और अगले दिनमें सुकृत करे तो दुष्कृत दूरहोजाताहै। जो अपने हाथ से चरणामृतभी ले नहीं सक्ता वह यदि पुरुपार्थ करे तो वही पृथ्वी को खंड खंड करने को समर्थ होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपक्रमोनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित जो कुछ वांछा करता है और शास्त्रके अनुसार पुरुपार्थ नहीं करता सो सुख न पावेगा क्योंकि उसकी उन्मत्त चेष्टाहै। पुरुपार्थभी दो प्रकारकेहैं–एक शास्त्रके अनुसार और दूसरा शास्त्र विरुद्धहै। जो शास्त्रको त्याग करके अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है सो सिद्धता न पावेगा और जो शास्त्रके अनुसार पुरुपार्थ करेगा वह सिद्धताको प्राप्त होगा कदाचित् दुःख न पावेगा। अनुभवसे स्मरण होताहै और स्मरणसे अनुभव होताहै यह दोनों इसहीसे होतेहैं। दैव तो कुछ न हुआ। हे रामजी! और दैव कोई नहीं; इसका कियाही इसीको प्राप्त होता है परन्तु जो बलिष्ठ होताहै उसीके अनुसार विचरता है। जिसके पूर्व्व के संस्कारबली होतेहैं उसीकी जय होतीहै और जो विद्यमान पुरुपार्थ बलीहोता है तब उसको जीत लेते हैं। जैसे एक पुरुषके दो पुत्रहैं तो वह उन दोनोंको लड़ाता है पर दोनों मेंसे जो बली होताहै उसीकी जय होती है परन्तु दोनों उसीके हैं तैसेही दोनों कर्म्म इसके हैं जिसका पूर्व्वका संस्कार बलीहोताहै उसीकी जयहोती है। हे रामजी! यह जीव जो सत्सङ्ग करता है और सत्शास्त्र को भी विचारता है पर फिर भी पक्षी के समान जो संसार वृक्षकी ओर उड़ता है तो पूर्व्वका संस्कार बली है उससे स्थिर नहीं हो सक्ता। ऐसा जानकर पुरुष प्रयत्नका त्याग न करै। पूर्व्व के संस्कार से अन्यथा नहीं होता परन्तु पूर्व्वकासंस्कार बली भीहो। और सत्सङ्ग करे और सत् शास्त्रकाभी दृढ़अभ्यासहो तो पूर्व्वके संस्कारको पुरुप प्रयत्नसे जीतलेताहै। जैसे पूर्व्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है और आगे सुकृतकरे तो अगलेका अभाव होजाताहै सो पुरुप प्रयत्नसेही होताहै। पुरुपार्थक्या है और उससे क्यासिद्ध होताहै सो श्रवण करिये। ज्ञानवान् जो सन्तहैं और सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है उसके अनुसार प्रयत्न करनेकानाम पुरुपार्थ है और पुरुपार्थसे पानेयोग्य आत्माहै जिससे संसारसमुद्रसेपार होताहै। हेरामजी! जो कुछ सिद्धहोताहै सो अपने पुरुपार्थ सेही सिद्ध होताहै–दूसरा कोई दैवनहीं। जो शास्त्रके अनुसार पुरुपार्थ को त्यागकर कहताहै कि, जोकुछ करेगा सोदैव करेगा वह मनुष्योंमें गर्दभहै उसका सङ्ग करना दुःखका कारण है। मनुष्यको प्रथमतो यहकरना चाहिये कि, अपने वर्णाश्रमके शुभआचारों को ग्रहणकरै और

अशुभका त्यागकरे । फिर सन्तोंकासङ्ग और सत्शास्त्रोंको विचारना और उनको विचारकर अपने गुण दोषकोभी विचार करना चाहिये कि,दिन और रात्रिमें क्या शुभ अशुभ कियाहै । आगे फिरगुण और दोषोंकाभी साक्षीभूत होकर जो सन्तोष, धैर्य्य, विराग, विचार और अभ्यास आदि गुण हैं उनको बढ़ावे और जोदोष विपरीतहैं उनका त्याग करे । जब ऐसेपुरुषार्थको अङ्गीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको पावेगा । इससे हे रामजी ! जैसेवनका घायलहुआ मृग घास, तृणऔर पत्तोंको रसीला जानके खाताहै तैसेही स्त्री, पुत्र, बान्धव, धनादि में मग्न न होना चाहिये । इनसे विरक्तहोना और दाँतोंसे दाँतोंको चबाकर संसार समुद्रके पारहोनेका यत्नकरना चाहिये । जैसे केशरीसिंह बलकरके पिंजरेमें से निकलजाताहै तैसेही निकलजाना इसीकानाम पुरुषार्थहै । हेरामजी ! जिसको कुछ सिद्धताकी प्राप्तिहुईहै उसे पुरुषार्थ सेही हुई है; पुरुषार्थ विना नहीं होती । जैसे प्रकाश विना किसी पदार्थ का ज्ञाननहीं होता । जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागदियाहै और दैवके आश्रयहो यह समझता है कि, हमारा दैव कल्याण करेगा वह कभी सिद्ध न होगा। जैसे पत्थरसेतेल निकाला चाहे तो नहीं निकलता तैसेही उसका कल्याण दैवसे न होगा । इसलिये हे रामजी ! तुम दैवका आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो । जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै उसको सुन्दरकांति और लक्ष्मी त्यागजातीहै । जैसे वसन्तऋतु की मंजरी वसन्तऋतुके गयेसे विरसहोजातीहै तैसेही उनकी कांति लघुहोजातीहै । जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय कियाहै कि, हमारा पालनेवाला दैवहै वह पुरुष ऐसाहै जैसे कोई अपनी भुजाको सर्पजान भयखाके दौड़ताहै और भयपाताहै और पुरुषार्थ यहहै कि,सन्तकासङ्ग औरसत्शास्त्रोंका विचार करके उनके अनुसार विचरे। जो उनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरतेहैं सो सुख और सिद्धता न पावैंगे और जो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं वह इसलोक और परलोकमें सुख और सिद्धता पावेंगे । इससे संसाररूपी जालमें न गिरना चाहिये पुरुषार्थ वही है कि, सन्तजनोंका सङ्गकरना और बोधरूपी कलम और विचाररूपी स्याहीसे सत्शास्त्रोंके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जालमें न गिरोगे।हे रामजी ! जैसे यह पहले नियतहुआहै कि,जोपटहै सोपटहै;जोघटहै सो घटहीहै; जोघटहै सो पटनहीं और जो पटहै सो घटनहीं तैसेही यहभी नियत हुआहै कि,अपने पुरुषार्थविना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी ! जोसंतोंकी सङ्गति करताहै और सत्शास्त्रभी विचारताहै पर उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहीं करता उसको सिद्धता नहीं प्राप्त होती । जैसे कोई अमृतके निकट बैठाहो तो पानकियेविना अमर नहीं होता तैसेही अभ्यास कियेविना अमरनहीं होता और सिद्धताभी प्राप्त नहीं होती।हेरामजी ! अज्ञानीजीव अपनाजन्म व्यर्थखोतेहैं।

जब बालकहोते तबमूढ़ अवस्थामें लीनरहते;युवावस्थामें विकारको सेवतेहैं और जरामें जर्जरीभूत होतेहैं । इसीप्रकार जीनाव्यर्थखोतेहैं । और जो अपनापुरुषार्थ त्यागकर के दैवका आश्रय लेतेहैं सो अपनेहन्ताहोतेहैं वहसुख न पावेंगे।हेरामजी ! जो पुरुष व्यवहार और परमार्थमें आलसीहोके और परमार्थको त्यागके मूढ़होरहेहैं सो दीन होकर पशुओंके सदृशदुःखको प्राप्तहुयेहैं । यहमैंने विचारकरके देखा है । इससे तुम पुरुषार्थका आश्रयकरो और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी आदर्शकेद्वारा अपनेगुण कर और दोषको देखके दोषका त्यागकरो और शास्त्रोंके सिद्धांतोंपर अभ्यासकरो । जब दृढ़अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनन्दवान् होगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायङ्कालका समयहुआ तोसब सभा स्नानके निमित्त उठके खड़ीहुई और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घरकोगये और सूर्य्यकी किरणके निकलतेही सब आ फिर स्थिरभये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

वशिष्ठजी बोले हेरामजी! इसकाजोपूर्वका किया पुरुषार्थहै उसीकानाम दैवहै औरदैव कोईनहीं । जब यह सत्संग और सत्शास्त्रका विचार पुरुषार्थसेकरे तब पूर्वके संस्कार को जीतलेताहै । जिसइष्टपुरुषके पानेका यहशास्त्रद्वारा यत्नकरेगा उसकोअवश्यमेव अपने पुरुषार्थसे पावेगा अन्यथा कुछनहीं होता,नहुआहै और न होगा । पूर्वजोकोई पापक्रियाहोताहै उसका जबफल दुःखपाताहै तोमूर्खकहताहै कि,हादैव!हादैव !हाकष्ट ! हाकष्ट ! हे रामजी! इसका जो पूर्वका पुरुषार्थहै उसीकानाम दैवहै औरदैवकोई नहीं। जो कोईदैव कल्पतेहैं सो मूर्खहैं। जोपूर्वकेजन्ममें सुकृतकर आयाहैवही सुकृतसुखहोके दिखाईदेताहै और जिसकापूर्व का सुकृतबली होताहै उसहीकी जयहोतीहै। जो पूर्वका दुष्कृत बलीहोताहै और शुभका पुरुषार्थ करताहै और सत्संगऔर सत्शास्त्रको भी विचारता,सुनता और करताहै तो पूर्वके संस्कारको जीतलेताहै।जैसे पहिलेदिन पाप कियाहो औरदूसरेदिन बड़ा पुण्यकरेतो पूर्वकापाप निवृत्तहोजाताहै तैसेही जबयहांदृढ़ पुरुषार्थकरे तोपूर्वके संस्कारको जीतलेताहै । इससेजो कुछ सिद्धहोताहै सो पुरुषार्थसेही सिद्ध होता है। एकत्र भावसे प्रयत्न करनेका नाम पुरुषार्थ है । जो एकत्रभावसे यत्न करेगा उसको अवश्यमेव प्राप्त होगा और जो पुरुष और दैवको जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठेगा सो दुःखपाकर शान्तिवान् कभी न होगा। हे रामजी ! मिथ्या दैवके अर्थ को त्यागके तुम अपने पुरुषार्थको अङ्गीकारकरो ।सन्तजनों और सत् शास्त्रों के वचनों और युक्ति सहित यत्न और अभ्यास करके आत्मपदको प्राप्त होना इसीका नाम पुरुषार्थ है । जैसे प्रकाश से पदार्थका ज्ञानहोता है तैसेही पुरुषार्थ से आत्मपदकी प्राप्तिहोतीहै । जो पूर्व कर्मानुसार बड़ापापी होताहै तोयहां दृढ़पुरुषार्थ

करनेसे उसको जीतलेताहै। जैसे बड़ेमेघको पवन नाशकरतीहै और जैसे वर्षादिनके पके खेतको बरफ़नाश करदेतीहै तैसेही पुरुषका पूर्वसंस्कार प्रयत्नसे नाशहोता है। हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरनेका पुरुषार्थ कियाहै। जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहींकी और पुरुषार्थको त्यागबैठाहै वह पुरुष नीचसे नीचगतिको पावेगा जे श्रेष्ठ पुरुषहैं वे अपने पुरुषार्थसे परमानन्द पदको पावेंगे; जिसके पानेसे फिर दुःखी न होंगे। जो देखनेमें दीन होताहै वहभी सत्संगति और सत्शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करताहै तो उत्तमपदवीको प्राप्तहोता दीखताहै। हे रामजी! जिस पुरुषने पुरुष प्रयत्न कियाहै उसको सबसम्पदाप्राप्तहोतीहैं और परमानन्दसे पूर्णरहताहै। जैसे समुद्र रत्नसे पूर्ण है तैसेही वहभी परमानन्दसे पूर्णहोताहै। इससे जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थद्वारा संसारके बन्धनसे निकलजाते हैं—जैसे केशरीसिंह अपने बलसे पिंजरेमें से निकलजाताहै। हे रामजी! यहपुरुष और कुछ न करे तो यहतौ अवश्य करे कि, अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरे और सार पुरुषार्थ करे। जब सन्त और सत्यशास्त्रके आश्रयहोके उसके अनुसार पुरुषार्थ करेगा तब सबबन्धनसे मुक्तहोगा। जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै और किसी और देवको मानके कहता कि, वह मेरा कल्याण करेगा सो जन्म मरणको प्राप्तहोकर शान्तिवान् कभी न होगा हेरामजी! इसजीवको संसाररूपी विशूचिका रोगलगाहै। उसको दूरकरनेका उपाय मैं कहताहूं। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अर्थ में दृढ़ भावना करके जो कुछ सुना है उसका वारम्वार अभ्यास करके और सब कल्पना त्यागके एकान्त होकर उसका चिन्तवन करे तब परमपदकी प्राप्तिहोगी और द्वैतभ्रम निवृत्त होकर अद्वैतरूप भासेगा इसीका नाम पुरुषार्थ है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पुरुषार्थ से इसको अध्यात्मक आदि ताप आ प्राप्तहोते हैं उससे शान्ति नहीं पाता। तुमभी रोगी न होना अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरणके बन्धनसे मुक्तहोना और कोई दैव मुक्ति नहीं करेगा; अपने पुरुषार्थही द्वारा संसार बन्धन ते मुक्तहोताहै। जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै और किसी और देवको मानकर उसमें परायण हुआहै उसका धर्म, अर्थ और काम सभीनष्ट होजाता है और नीचसे नीचगतिको प्राप्तहोताहै। हे रामजी! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप और वास्तवरूप है उसके आश्रय जो आदिचित्त संवेदन स्फूर्त्तिहै सो अहंममत्व संवेदन होके फुरने लगती है। इन्द्रियांभी अहंस्फूर्त्ति हैं जब यह स्फुर्ना सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार हो तब पुरुष परमशुद्धताको प्राप्तहोताहै और

जो शास्त्रके अनुसार न हो तो बासनाके अनुसार भाव अभावरूप भ्रमजाल में पड़ा घटी यंत्र की नाईं भटककर शान्तिवान् कभी नहीं होता। हे रामजी ! जिस किसी को सिद्धता प्राप्तहुईहै अपने पुरुषार्थसेही हुईहै। बिना पुरु र्थ सिद्धताको प्राप्त न होगा। जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होताहै तो भुजा प रि सेही ग्रहण करना होताहै और जो किसी देशको जानाचाहै तो चलने सेही पहुंचता है अन्यथा नहीं। इससे पुरुषार्थ बिना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कहताहै कि, जो दैव करेगा सो होगा वह मूर्ख है। हे रामजी ! और दैव कोई नहीं है। इस पुरुषार्थकाही नाम दैवहै। यह दैव शब्द मूर्खों का प्रचार कियाहुआहै कि, जब किसी कष्टसे दुःख पातेहैं तो कहते हैं कि, दैवका किया है। पर कोई दैवनहीं है। हे रामचन्द्रजी ! जो अपना पुरुषार्थ त्याग के दैवके आश्रय होरहेगा वह कभी सिद्धताको न प्राप्तहोगा क्योंकि; अपने पुरुषार्थ बिना सिद्धता किसीको प्राप्त नहीं होती। जब बृहस्पतिने दृढ़पुरुषार्थ किया तब सर्व देवताओंके राजा इन्द्र के गुरू हुये और शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सब दैत्यों के गुरू हुये हैं एवम् और और जो समान जीव हैं उनमें जिस पुरुषने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआहै। जिसको जितनी सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थसेही हुई है और जिस पुरुषने सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया उसका बड़ा राज्य, प्रजा, धन और बिभूति मेरे देखतेही देखते क्षीण होगई और नरकमें जला। जिस से कुछ अर्थ सिद्धहो उसका नाम पुरुषार्थ है और जिससे अनर्थ की प्राप्तिहो उसका नाम अपुरुषार्थ है। हे रामजी ! मनुष्यको सत्शास्त्रों और सन्तसंग से शुभ गुणोंको पुष्ट करके दया, धैर्य्य, सन्तोष और वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये। जैसे बड़े तालसे मेघ पुष्ट होताहै और फिर बर्षा करके तालको पुष्ट करता है तैसेही शुभ गुणोंसे बुद्धि पुष्ट होतीहै और पुष्ट बुद्धिसे शुभगुण पुष्ट होतेहैं। हे रामजी ! जो बालक अवस्था से अभ्यास किये होताहै उसको शुद्धता प्राप्तहोतीहै अर्थात् दृढ़ अभ्यास बिना शुद्धता प्राप्त नहीं होती। जो किसी देश अथवा तीर्थ को जाना चाहे तो मार्ग में निरालस होके चलाजावे तभी जा पहुंचेगा, जब भोजनकरेगा तभी क्षुधा निवृत्त होगी-अन्यथा न होगी और जब मुखमें जिह्वा शुद्धहोगी तभी पाठस्पष्ट होगा-गूंगे से पाठ नहीं होता। इसलिये जो कुछ कार्य्य सिद्धहोताहै सो अपने पुरुषार्थसेही सिद्ध होता है; चुप होरहनेसेकोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता। यहां सब गुरु बैठे हैं इनसे पूंछदेखो; आगे जो तुम्हारी इच्छा है सो करो और जो मुझ से पूंछो तो मैं सब शास्त्रोंका सिद्धान्त कहताहूं जिससे सिद्धता को प्राप्तहोगे। हे रामजी ! सन्तों अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषों और सत्शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मबिद्याके अनुसार संवेदन, मन और इन्द्रियों का बिचार रखना और जो इनसे बिरुद्धहों उन

को न करना। इससे तुमको संसारका राग द्वेष स्पर्श न करेगा और सबसे निर्लेप रहोगे—जैसेजलसे कमल निर्लेप रहताहै तैसेही तुमभी निर्लेपरहोगे।हे रामजी! जिस पुरुषसे शान्ति प्राप्तिहो उसकी भली प्रकार सेवा करनी चाहिये क्योंकि; उसका बड़ा उपकार है कि, संसारसमुद्रसे निकाललेताहै। हे रामजी! सन्तजन और सत्शास्त्र भी वहीहैं जिनके बिचार और सङ्गतिसे संसारसे चित्त उसकीओरहो और मोक्षका उपाय वहीहै जिससे और सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अङ्गीकार करै जिससे जन्म—मरण काभय निवृत्त होजावे। हे रामजी! जिस वस्तुकी जीव वांछाकरताहै और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता तो अवश्यमेव वह उसको पाताहै। बड़ेतेज और बिभूतिसे सम्पन्न जो तुमको दृष्टि आता औरसुनाजाताहै वह अपनेपुरुषार्थसेही भया है और जो महानष्ट सर्प, कीट, आदिक तुमको दृष्टिआतेहैं उन्होंने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है तभी ऐसे हुये हैं। हे रामजी! अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो नहीं तो सर्प, कीटादिक नीच योनि को प्राप्त होगे। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्यागा और किसी दैवका आश्रय लियाहै वह महामूर्ख है क्योंकि; यह वार्ता व्यव-हारमें भी प्रसिद्धहै कि, अपने उद्यम किये विना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहींहोती तो परमार्थकी प्राप्ति कैसेहो। इससे परमपद पानेके निमित्त दैवको त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार यत्नकरो तब जेदुःखहैं ते मुक्तहोवेंगे। हे रामजी! जना-र्दन विष्णुजी अवतार धारणकरके दैत्योंको मारतेहैं और २ चेष्टा भी करते हैं परंतु उनको पापका स्पर्श नहीं होता क्योंकि; वे अपने पुरुषार्थसेही अक्षयपद को प्राप्त हुयेहैं। इससे तुमभी पुरुषार्थका आश्रय करो और संसारसमुद्रको तरजावो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपमावर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! यहजो शब्द है कि "दैव हमारी रक्षाकरेगा" सो किसी मूर्ख की कल्पनाहै। हमको तो दैवका आकार कोई दृष्टि नहीं आता और न कोई दैवका कालही जान पड़ताहै और न दैव कुछ करताहीहै। मूर्ख लोग दैव दैव कहते हैं पर दैव कोई नहींहै इसका पूर्व्वका कर्महीं दैवहै। हे रामजी! जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै और दैव परायण हुआहै कि; वह हमारा कल्याण करेगा वह मूर्खहै क्योंकि; अग्निमें जापड़े और दैव निकालले तब जानिये कि, कोई दैवभी है, पर सो तो नहींहोता और स्नान दान भोजन आदिक त्यागकरके चुपहोबैठे और आपही दैवकरजावे सोभी कियेविना नहींहोता इससे और दैव कोई नहीं; अपनापुरु-षार्थही कल्याण कर्त्ताहै। हे रामजी! जीवका किया कुछ नहीं होता और दैवही करने वाला होता तो शास्त्र और गुरूका उपदेशभी न होता। इससे स्पष्टहै कि, सत्-शास्त्रके उपदेश से अपने पुरुषार्थद्वारा इसको वांछितपदवी प्राप्त होती है। इससे

और जोकोई दैव शब्दहै सो व्यर्थहै। इस भ्रमको त्याग करके सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार पुरुषार्थ करे तब दुःखसे मुक्त होगा। हे रामजी! और दैव कोई नहींहै; इसका पुरुषार्थ जो स्पंद है सोई दैव है। हे रामजी! जो कोई और दैव करनेवाला होता तो जब जीव शरीरको त्यागता है और शरीर नाशहोजाताहै—कुछ क्रियानहीं होती क्योंकि; चेष्टा करनेवाला त्याग जाताहै तो सभी शरीरसे चेष्टा कराता सोतो चेष्टा कुछ नहीं होती; इससे जाना जाताहै कि, दैव शब्द व्यर्थहै। हे रामजी! पुरुषार्थ की वार्त्ता अज्ञानी जीवकोभी प्रत्यक्षहै कि, अपने पुरुषार्थ विना कुछ नहींहोता। गोपालभी जानताहै कि, मैं गौओंको न चराऊं तो भूखीही रहेंगी। इससे वह और दैवके आश्रय नहीं बैठ रहता आपही चरा लेआताहै। हे रामजी! दैवकी कल्पना भ्रमसेकरते हैं। हमको तो दैव कोई दृष्टि नहीं आता और हाथ, पांव, शरीरभी दैव का कोईदृष्टि नहीं आता—अपने पुरुषार्थसेही सिद्धता दृष्टि आतीहै और जोकोई आकारसे रहित दैव कल्पिये तोभी नहीं बनता क्योंकि; निराकार और साकारका संयोग कैसेहो। हे रामजी! और दैव कोई नहींहै केवल अपना पुरुषार्थही दैव रूप है। जो राजा ऋद्धि—सिद्धि संयुक्त भासताहै सोभी अपने पुरुषार्थसे हुआहै। हे रामजी! ये जो विश्वामित्रहैं; इन्होंने दैव शब्द दूरहीसे त्याग दियाहै। ये भी अपने पुरुषार्थसेही क्षत्रीसे ब्राह्मण हुयेहैं और और जोबड़े २ विभूतिवान् हुये हैं सो भी अपने पुरुषार्थ सेहीदृष्टि आतेहैं। हे रामजी! जो दैवपढ़ेबिना पंडितकरे तो जानिये कि, दैवने किया; परपढ़े विना तो पंडित नहींहोता और जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होतेहैं सोभी अपने पुरुषार्थसेही होतेहैं। इससे और दैवकोईनहीं। मिथ्याभ्रम को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार संसार समुद्र तरनेका प्रयत्नकरो। तुम्हारे पुरुषार्थ विना और दैव कोईनहीं। जो और दैव होता तो बहुतबेर क्रिया वलभी अपनी क्रियाको त्याग के सो रहता कि, आप दैवही करेगा परऐसे तो कोई नहीं करता। इस से अपने पुरुषार्थ विना कुछ सिद्धनहीं होता और जो कुछ इसका किया न होता तो पापकरनेवाले नरक न जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग न जाते; परंतु पापकरनेवाले नरकमेंजाते और पुण्य करनेवाले स्वर्गमें जातेहैं; इससे जो कुछ प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ सेही होता है। हे रामजी! जो कोई ऐसाकहे कि, और कोई दैव करता है तो उसका शिर काटिये जो वह दैवके आश्रय जीतारहे तो जानिये कि, कोई दैवहै; पर सोतो जीता कोईभी नहीं। इससे दैवशब्दको मिथ्याभ्रम जानके संतजनों और सत्शास्त्रोंकेअनुसार अपने पुरुषार्थसे आत्मपदमें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनंनामअष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतनासुनकर रामजीनेपूछा; हे भगवन्, सर्व धर्मकेवेत्ता! आप कहतेहैं कि, और

दैव कोईनहीं परंतुइसलोक में प्रसिद्ध है कि, ब्राह्मणभी दैवहै और दैवकाकिया सब कुछ होताहै ? बशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं तुमको इसलिये कहताहूं कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्तहोजावे। अपनेही कियेहुये शुभ अथवा अशुभकर्मका फल अवश्यमेव भोगनाहोताहै;उसे दैवकहो वा पुरुषार्थकहो और दैवकोईनहीं। कर्त्ता,क्रिया,कर्मआदिकमें तो दैव कोईनहीं और न कोई दैवकास्थानही है औरनरूपहीहै तो और दैव क्या कहिये। हे रामजी ! मूर्खोंके परचानेके निमित्त दैवशब्द कहाहै। जैसे आकाश शून्यहै तैसे दैव भी शून्यहै। फिर रामजीबोले,हेभगवन्,सर्वधर्मके वेत्ता! तुमकहतेहो कि,और दैवकोईनहीं और आकाशकी नाईशून्यहै सो तुम्हारेकहनेसेभी दैवसिद्धहोताहै। तुमकहतेहो कि,इसके पुरुषार्थका नाम दैवहै और जगत्में भी दैवशब्दप्रसिद्ध है। बशिष्ठजीबोले हे रामजी ! मैं इसलिये तुमको कहताहूं कि,जिससे दैवशब्दतुम्हारे हृदयसे उठजावे। दैवनाम अपने पुरुषार्थकाहै, पुरुषार्थ कर्मका नाम है और कर्मनाम बासनाकाहै। वासना मनसे होती है और मनरूपी पुरुष जिसकी वासना करताहै सोई उसको प्राप्तहोताहै। जो गांवके प्राप्तहोनेकी वासनाकरताहै सो गांवको प्राप्तहोताहै और जो पत्तनकी वासनाकरता सो पत्तनको प्राप्तहोता है। इससे और दैव कोई नहीं। पूर्वकाजो शुभ अथवा अशुभ दृढ़पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख दुःख अवश्यहोताहै और उसकाहीनाम दैवहै। हे रामजी ! तुमविचारकरकेदेखो कि,अपना पुरुषार्थकर्मसे भिन्ननहींहै तो सुखदुःख देनेवाला और लेनेवालाकोई दैव नहींहुआ। जीव जो पापकीवासना और शास्त्रविरुद्ध कर्मकरताहै सोक्योंकरता है ? पूर्वके दृढ़पुरुषार्थकर्मसेही पापकरताहै। जो पूर्वकापुण्य कर्मकियाहोता है तो शुभमार्ग में विचरता। फिर रामजीने पूछा;हे भगवन् ! जोपूर्वकी दृढवासना के अनुसार यह विचरताहै तो मैं क्याकरूं ? मुझको पूर्वकीवासनाने दीन कियाहै अब मुझकोक्याकरना चाहिये? वशिष्ठजीवोले;हेरामजी! जोकुछ पूर्वकी वासनादृढ़होरहीहै उसकेअनुसार जीव विचारताहै परजो श्रेष्ठ मनुष्यहै सोअपने पुरुषार्थसेपूर्वके मलिनसंस्कारों कोशुद्धकरताहै तो उसके मल दूरहोजातेहैं। जबतुम सत्शास्त्रों और ज्ञानवानोंके बचनोंकेअनुसार दृढ़पुरुषार्थ करोगे तब मलिनवासना दूर होजावेगी। हेरामजी! पूर्वके मलिन और शुभसंस्कारोंको कैसेजानिये सोसुनो। जो चित्त विषय और शास्त्रविरुद्ध मार्गकी ओरजावे और शुभकी ओर न जावे तो जानिये कि,कोईपूर्वका कर्म मलीनहै औरजोसंतजनों और सत्शास्त्रोंके अनुसार चेष्टाकरे और संसारमार्गसे विरक्तहोतो जानिये कि, पूर्वका शुद्धकर्म है। इससे हे रामजी ! तुमको दोनों से सिद्धता है कि, पूर्व का संस्कार शुद्ध है इससे तुम्हाराचित्त सत्संग और सत्शास्त्रों के वचनोंको ग्रहणकरके शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो तुम्हारा चित्त शुभमार्गमें स्थिर

नहीं होसक्ता तो दृढ़पुरुपार्थ करके संसारसमुद्रसेपारहो । हेरामजी ! तुम चैतन्यहो; जड़तोनहीं हो; अपनेपुरुपार्थका आश्रयकरो और मेराभी यही आशीर्वादहै कि तुम्हाराचित्त शीघ्रहीशुद्ध आचरण और ब्रह्मविद्याके सिद्धान्तसारमें स्थितहो। हेरामजी ! श्रेष्ठपुरुपभी वहीहै जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपिमलीनभीथा परन्तु संतों और सत्शास्त्रोंकेअनुसार दृढ़पुरुपार्थ करके सिद्धताको प्राप्तहुआहै और मूर्खजीव वहहै जिसने अपना पुरुपार्थ त्यागदियाहै जिससेसंसारसे मुक्तनहीं होता।पूर्वकाजो कोईपापकर्मकिया होताहै उसकी मलिनतासे पापमें धावताहै और अपने पुरुपार्थके त्यागनेसे अन्धा होजाता और विशेपकर औरभी धावताहै। जो श्रेष्ठपुरुपहै उसकोयह करनाचाहियेकि, प्रथमतो पांचोंइन्द्रियोंको वशकरे;फिर शास्त्रके अनुसार उनको वर्त्तावे और शुभवासना दृढ़करे,अशुभका त्यागकरे । यद्यपि त्यागनीय दोनोंवासनाहैं पर प्रथम शुभवासनाको इकट्ठीकरे फिर अशुभका त्यागकरे। जबशुद्ध वासनाकरके कपाय परिपक्कहोगा अर्थात् अन्तःकरण जबशुद्धहोगा तब सन्तों और सत्शास्त्रों के सिद्धांतका विचार उत्पन्नहोगा और उससे तुमको आत्मज्ञान की प्राप्तिहोगी।उसज्ञानकेद्वारा आत्मसाक्षात्कारहोगा फिर,क्रिया और ज्ञानकाभी त्यागहोजावेगा और केवलशुद्ध अद्वैतरूप अपनाआप शेपभासेगा । इससे,हेरामजी ! और सबकल्पनाका त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रोंके अनुसार पुरुपार्थकरो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! मेरेवचनका ग्रहणकरो । यह वचनबांधवकेसमानहैंअर्थात् तुम्हारे परममित्र होंगे और दुःखसेतुम्हारी रक्षाकरेंगे। हे रामजी ! यहजोमोक्ष उपाय तुमसेकहताहूं उसकेअनुसार तुमपुरुपार्थकरो तब तुम्हारा परमअर्थसिद्धहोगा। यह चित्तजो संसारके भोगकीओर जाताहै उसभोगरूपी खांड़मेंचित्त को गिरने मतदो। भोगकेविसरजानेके त्याग दो हैं। वहत्याग तुम्हारा परममित्रहोगा और त्याग भी ऐसाकरो कि,फिर उसका ग्रहण न हो । हे रामजी ! यह मोक्षउपाय संहिताहै इसको चित्तकोएकाग्रकरके सुनो;इससे परमानन्दकी प्राप्तिहोगी। प्रथम शम और दमको धारणकरोसम्पूर्ण संसारकी वासना त्यागकरके उदारतासे तृप्त रहने का नाम शमहै और बाह्यइन्द्रियोंके वशकरनेको दम कहतेहैं जब प्रथम इनको धारणकरोगे तब परम तत्त्वका विचार आपही उत्पन्नहोगा और विचारसे विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्तिहोगी। जिसपदको पाकर फिर कदाचित् दुःखनहोगा और अविनाशी सुखतुमको प्राप्तहोगा। इसलिये इस मोक्षउपाय संहिताके अनुसार पुरुपार्थकरो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे। पूर्वजो कुछ ब्रह्माजीने हमको उपदेशकियाहै सो में तुमसे कहताहूं। इतनासुनकररामजीबोले; हे मुनीश्वर ! आपको जो ब्रह्माजीने उपदेशकियाथा सो किसकारणकियाथा

और कैसेतुमने धारणकिया था सो कहो? बशिष्ठजी बोले हेरामचन्द्रजी ! शुद्ध चिदाकाशएकहै और अनन्त, अविनाशी,परमानन्दरूप, चिदानन्द—स्वरूप ब्रह्महै तिसमें संवेदनस्पन्दरूपहोताहै सोही विष्णुहोकर स्थितभया है। वे विष्णुजी स्पन्द और निस्स्पन्दमें एकरसहैं कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्तहोते। जैसे समुद्रमें तरंग उपजतेहैं तैसेही शुद्ध चिदाकाशसे स्पन्दकरके विष्णुउत्पन्नहुये हैं। उन विष्णुजी के स्वर्णवत्कीर्णनाभि कमलसे ब्रह्माजी प्रकटभये; उन ब्रह्माजीने ऋषि और मुनीश्वरों सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्नकी और उसमनोराजसे जगत्को उत्पन्न किया। उस जगत्के कोणमेंजो जम्बूद्वीप भरतखण्डहै उसमें मनुष्यको दुःखसे आतुरदेख उनके करुणाउपजी जैसे पुत्रकोदेखकर पिताके करुणा उपजती है। तब उनकेसुखकेनिमित्त तपउत्पन्नकिया कि, वेसुखीहों और आज्ञाकी कि, तपकरो ! तब वे तपकरनेलगे और उस तपकरनेसे स्वर्गादिकको प्राप्तहोनेलगे। परउनसुखोंको भोगकर वे फिर गिरे और दुःखी हुये तब ब्रह्माजीने ऐसे देखकर सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादनाकिया और उनके सुखके निमित्त आज्ञाकी। उसधर्मके प्रतिपादनसेभी लोगोंको सुखप्राप्त होने लगा और वहांभी कुछ काल सुख भोगकर फिर गिरे और दुःखीके दुःखीरहे। फिर ब्रह्माजीने दान, तीर्थादिक पुण्य क्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञादी कि, इनके सेवनेसे तुमसुखी रहोगे। जब वे जीव मनको सेवने लगे तब बड़े पुण्यलोकमें प्राप्त होकर उनके सुख भोगने लगे और फिर कुछकाल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगकर गिरे। तब उन्होंने तृष्णाकी कि, बहुत सुख दुःखभये और दुःखकर आतुरहुये। उससमय ब्रह्माजीने देखा कि, यह जीवन और मरणके दुःखसे महादीन होतेहैं इससेवह उपाय कीजिये जिससे उनका दुःखनिवृत्तहो। हेरामचन्द्रजी ! ब्रह्माजीने विचारा कि, इनका दुःख आत्मज्ञानविना निवृत्तनहींहोगा इससे आत्मज्ञानकोउत्पन्नकीजिये जिससे ये सुखी होवें। इसप्रकार विचार कर वे आत्मतत्त्वका ध्यान करने लगे। उस ध्यानके करनेसे शुद्ध तत्त्व ज्ञान की मूर्त्तिहोकर मैं प्रकटहुआ। मैंभी ब्रह्माजीके समानहूं। जैसे उनकेहाथमें कमण्डलु है तैसेमेरे हाथमें भी है; जैसे उनकेकण्ठ में रुद्राक्षकी मालाहै तैसे मेरे कण्ठमेंभी है और जैसे उनके ऊपर मृगछालाहै तैसेही मेरे ऊपरभीहै। मेरा शुद्धज्ञान स्वरूप है। और मुझको जगत् कुछनहीं भासता और भासता है तो सुषुप्तिकी नाईं भासता है। तब ब्रह्माजीने विचारकिया कि, इसको मैंने जीवोंके कल्याण के निमित्त उत्पन्नकिया है पर यहतो शुद्धज्ञान स्वरूपहै और अज्ञानमार्गका उपदेश तबहो जब कुछ प्रश्नोत्तरहो और तभी मिथ्याका विचार होवे। हेरामजी ! तब जीवों के कल्याण के निमित्त ब्रह्माजीने मुझको गोदमें बैठाया और शीशपर हाथफेरा। तब तो जैसे चन्द्रमाकी किरणसे शीतलता होतीहै तैसेही मैं उससे शीतल होगया। फिर

ब्रह्माजीने मुझको जैसे हंसको हंसकहे तैसे कहा; हेपुत्र ! जीवोंके कल्याणके निमित्त तुम एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त अज्ञानको अङ्गीकारकरो। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो औरोंकेनिमित्तभी अङ्गीकार करते आये हैं। जैसे चन्द्रमा बहुतनिर्मलहै परन्तु श्यामताको अङ्गीकार कियेहै तैसेही तुमभी एकमुहूर्त्त अज्ञानको अङ्गीकारकरो।हे रामजी ! इसप्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजीने शापदिया कि, तू अज्ञानीहोगा । तबमैंने ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी औ शापको अङ्गीकारकिया और मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आपथा सो अन्यकी नाईं होगया।मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण होगई और मेरामन जाग आया । तब भाव अभावरूप जगत् मुझको भासनेलगा और अपनेको मैं वशिष्ठ और ब्रह्माजीका पुत्र जाननेलगा और नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानकर उनकीओर चञ्चलहोनेलगा। फिरमैंने संसारजालको दुःखरूपजानकर ब्रह्माजीसेपूंछा; हे भगवन् ! यह संसार कैसे उत्पन्नहुआ और कैसे लीनहोताहै ? हे रामजी ! जब मैंने इसप्रकार पिता ब्रह्माजी से प्रश्नकिया तो उन्हों ने भलीप्रकार मुझको उपदेश किया तिससे मेरा अज्ञान नष्टहोगया। जैसे सूर्य्य के उदयहोनेसे तम निवृत्तहोजाताहै और जैसे आदर्शको मार्जन करनेसे शुद्ध होजाताहै तैसेहीमैंभी शुद्धहुआ। हे रामजी ! उस उपदेशसेमैं ब्रह्माजीसेभी अधिक होगया। उस समय मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञाकी कि, हेपुत्र ! जम्बूद्वीप भरतखण्डमें तुमको अष्टप्रजापतिका अधिकारहै वहां जाकर जीवोंको उपदेश करो। जिसको संसारके सुखकी इच्छाहो उसको कर्म्ममार्ग का उपदेश करना जिससे वे स्वर्गादिक सुख भोगें और जो संसारसे विरक्तहो और आत्मपदकी इच्छारखताहो उसको ज्ञानउपदेश करना । हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश और और उत्पत्ति हुई और इस प्रकार मेरा आना हुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशगमनन्नामदशमस्सर्ग्गः ॥ १० ॥

इतना सुनकर रामजी बोले, हेभगवन् ! उस ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनन्त जीवोंकी शुद्धि कैसे भई सो कृपाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है उसका स्वभाव रूप संवेदन-स्फूर्त्तिहै; वह ब्रह्मारूप होकर स्थिति भईहै। जैसे समुद्र अपनी द्रवतासे तरङ्गरूप होताहै तैसेही ब्रह्माजी हुये हैं। उन्होंने सम्पूर्णजगतको उत्पन्न करके तीनों काल उत्पन्न किये। जब कुछ काल व्यतीतहुआ तो कलियुग आया उससे जीवोंकी बुद्धि मलीन होगई और पापमें विचर कर शास्त्रवेदकी आज्ञा उल्लङ्घन करने लगे। जब इसप्रकार धर्म्मकी मर्य्यादा छिपगई और पाप प्रकट भया तो जितनी कुछ राजधर्म्मकी मर्य्यादाथी सोभी सब नष्ट होगई और अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचर कर कष्ट पाने लगे। उनको देखकर ब्रह्माजी के करुणा उपजी और दया करके मुझसे, सनत्कुमारसे और नारदसे बोले कि, हे

पुत्रो ! तुम भूलोकमें जाकर जीवोंको शुद्ध उपदेश कर धर्म्मकी मर्य्यादा स्थापनकरो। जिसजीवको भोगकी इच्छाहो उसको कर्म्मकाण्ड और जप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिकका उपदेश करना और जो संसारसे विरक्तहुयेहों और मुमुक्षुहों और जिन्हें परमपद पानेकी इच्छाहो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना। यह आज्ञा देकर हमको भूमिलोकमें भेजा। तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारने लगे कि, जगत्की मर्य्यादा किस प्रकारहो और जीव शुभ मार्गमें कैसे विचरें ? तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्यका स्थापनकरो कि, उसकी आज्ञानुसार जीव विचरें। निदान प्रथम दण्डकर्त्ता राज्य स्थापनकिया। जिनराजोंके बड़ेवीर्य्यवान्, तेजवान् और उदार आत्माथे उनको भी हमने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया जिससे वे परमपदको प्राप्तभये और परमानन्दरूप अविनाशीपद ब्रह्मविद्याके उपदेश से उनको हुआ तबवे सुखीहुये। इस कारण ब्रह्मविद्या का नाम राजविद्या है। तब हमने वेद, शास्त्र, श्रुति और पुराणोंसे धर्म्मकी मर्य्यादा स्थापनकर जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रियाप्रकटकी और उपदेशकिया कि, जीव इसके सेवनसेसुखीहोगा। तब सबफलको पाकर उसको सेवने लगे पर उन में कोई विरले निरहङ्कार हृदयकी शुद्धता के निमित्त सेवन करतेथे। हे रामजी ! जो मूर्खथे सो कामनाके निमित्त मन में फूलके कर्म्मकरते थे और घटी यंत्रकी नाईं भटककर कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे को जाते थे और जो निष्काम कर्म्म करतेथे उनका हृदय शुद्ध होताथा और ब्रह्मविद्या के अधिकारी होतेथे। उस उपदेश द्वारा आत्मपदकी प्राप्तिकर कितने तो जीवन्मुक्त हुये और कई राजा विदित वेद सिद्धहुये सो राज्यकी परम्परा चलाय हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानीहुये। राजादशरथ भी ज्ञानवान् हुये और तुमभी इसीदशाको प्राप्तहुये हो। जैसे तुमविरक्त हुयेहो वैसेही आगेभी स्वाभाविक विरक्तहुयेहैं सो स्वभावसे ही देहशुद्ध है इसी कारण तुम श्रेष्ठहो। जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होताहै तिससे विरक्तता उपजतीहै सो तुमको नहीं हुई तुम्हेंतो सबइन्द्रियोंके विषय विद्यमान होने पर वैराग्यहुआहै; इससेतुमश्रेष्ठहो। हेरामजी ! मसान आदिक कष्टके स्थानोंको देखके तो सबको वैराग्य उपजताहै कि, कुछनहीं; मरजानाहै पर उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होताहै सो वैराग्यको दृढ़रखताहै और मूर्खहै सो फिर विषयमें आसक्त होताहै। इससे जिनको अकारण वैराग्य उपजताहै सो श्रेष्ठहैं। हे रामजी ! जो श्रेष्ठ पुरुषहैं सो अपने वैराग्य और अभ्यासके बलसे संसारबंधन से मुक्तहोजातेहैं—जैसे हस्ती बंधनको तोड़के अपने बलसे निकलजाताहै और सुखी होताहै तैसेही वैराग्य अभ्यासके बलसे बंधनसे ज्ञानीमुक्त होतेहैं। हेरामजी! यहसंसार बड़ाअनर्थरूपहै। जिसपुरुषने अपने पुरुषार्थसे इसबंधनको नहींतोड़ा उसको राग—द्वेषरूपीअग्नि जलाती है और जिस

पुरुषने अपने पुरुषार्थसे शास्त्र और गुरुके प्रमाणसे ज्ञानसाधन कियाहै वह उस पदको प्राप्त हुआहै । जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा के होनेसे वनको दावानल नहीं जलासक्ता तैसेही ज्ञानीको अध्यात्मक, अधिदैविक और अधिभौतिक ताप कष्टनहीं देसक्ते । हे रामजी ! जिन श्रेष्ठपुरुषोंने संसारको विरस जानकर त्यागदियाहै उनको संसारके पदार्थ गिरानहींसक्ते और जोमूर्खहैं तिनको गिरादेतेहैं । जैसे तीक्ष्ण पवनके वेगसे वृक्ष गिरजातेहैं परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता तैसेही हे रामजी ! श्रेष्ठपुरुष वही है जो संसारको विरसजानकर केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके परायण हो । उसकोही ब्रह्मविद्याका अधिकारहै और वही उत्तमपुरुषहै । हे रामजी ! तुमभी वैसेही उज्ज्वल पात्रहो । जैसे कोमल पृथ्वीमें बीजबोतेहैं तैसेही तुमको में उपदेश करताहूं । जिसको भोगकी इच्छाहै और संसारकी ओर यत्नकरताहै सो पशुवत्‌है । श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसार तरनेका पुरुषार्थ होताहै । हे रामजी ! प्रश्नउससे कीजिये जिससे जानिये कि, यह प्रश्नके उत्तरदेनेमें समर्थहै और जिसको उत्तर देनेकी सामर्थ्य न हो उससे कदाचित् प्रश्न न करना । उत्तरदेनेको समर्थहो और उसके बचनमें भावना न हो तबभी प्रश्न न करे क्योंकि; दम्भसे प्रश्नकरनेमें पापहोताहै । गुरूभी उन्हींको उपदेश करताहै जो संसारसे विरक्तहों और जिनको केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा और आस्तिकभावहो । हे रामजी ! जो गुरू और शिष्य दोनों उत्तम होतेहैं तो वचन शोभतेहैं । तुम उपदेशके शुद्धपात्रहो । जितने शिष्यके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं सो सबतुममें पायेजातेहैं और मैंभी उपदेश करनेमें समर्थहूं इससे कार्य्य शीघ्रहोगा । हे रामजी ! शुभगुणोंसे तुम्हारी बुद्धि निर्मलहोरहीहै इसलिये मेरा सिद्धान्तका सारवचन तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करेगा । जैसे उज्ज्वल वस्त्रमें केशरका रंगशीघ्र चढ़जाता है तैसेही तुम्हारे निर्मल चित्तको उपदेशका रङ्गलगेगा । जैसे सूर्य्यके उदयसे सूर्य्यमुखी कमल खिलताहै तैसेही तुम्हारी बुद्धि शुभगुणसे खिल आईहै । हे रामजी ! जो कुछ शास्त्रका सिद्धान्त आत्मतत्त्व में तुमसे कहताहूं उसमें तुम्हारी बुद्धिशीघ्रही प्रवेश करेगी । जैसे निर्मल जलमें सूर्य्यकी क्रांति प्रवेश करतीहै तैसेही तुम्हारी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धतासेप्रवेश करेगी । हे रामजी ! मैं तुम्हारे आगे हाथजोड़के प्रार्थना करताहूं कि, जोकुछ में तुमको उपदेश करताहूं उसमें ऐसी आस्तिकभावना कीजियेगा कि, इनवचनोंसे मेरा कल्याण होगा । जो तुमको धारणा न हो तो प्रश्न मत करना । जिस शिष्यको गुरूके वचनमें आस्तिकभावना होती है उसका शीघ्रही कल्याण होताहै । अब जिससे तुमको आत्मपद प्राप्तहो सोमैं कहताहूं । प्रथम जो अज्ञानी जीवमें असत्य बुद्धिहै उसका सङ्ग त्यागकरो और मोक्ष द्वारके चारों द्वारपालोंसे मित्रभावना करो । जब उनसे मित्रभावहोगा तब वहमोक्षद्वारमें पहुंचादेंगे और तभी तुमको

आत्मदर्शन होवेगा। उनद्वारपालोंके नामसुनो—शम, सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग-यह चारों द्वारपालहैं जिसपुरुषने इनको वश कियाहै उसको यहशीघ्रही मोक्षरूपी द्वारके अन्दर करदेतेहैं। हेरामजी! जो चारों वशनहों तो तीनकोही वशकरो अथवा दोहीको वशकरलो अथवा एकको वशकरो। जो एकभी वशहोगा तो चारोंही वशहो जायँगे। इन चारोंका परस्पर स्नेहहै। जहां एकआताहै तहांचारों आकेरहतेहैं। जिन पुरुषोंने इनसे स्नेहकियाहै सो सुखीहुयेहैं और जिसनेइसका त्याग कियाहै सोदुःखी हैं। हे रामजी! यदि प्राणका त्यागहो तौभी एक साधनता बलसे वश करना चाहिये एकके वश कियेसे चारोंही वशीभूतहोंगे तुम्हारीबुद्धिमें शुभगुणोंने आके निवासकिया है जैसे सूर्य्यमें सब प्रकाशआजातेहैं तैसेही सन्तों और शास्त्रोंने जो निर्मल गुणकहे हैं सोसब तुममें पायेजातेहैं। हे रामजी! तुममेरे वचनोंके तैसे अधिकारीहुयेहो जैसे तन्त्रीके सुननेको अंदोरा अधिकारीहोताहै। चन्द्रमाके उदयसे जैसे चन्द्रवंशीकमल खिलआतेहैं तैसेही शुभगुणोंसे तुम्हारी बुद्धि खिलआईहै। हे रामजी! सत्सङ्ग और सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिको तीक्ष्णकरनेसे शीघ्रही आत्मतत्त्वमें प्रवेशहोता है। इससेश्रेष्ठ पुरुषवहीहै जिसने संसारको विरसजानके त्यागदियाहै औरसन्तों और सत्शास्त्रोंके वचनोंद्वारा आत्मपद पानेका यत्नकरताहै। वहअविनाशी पदकोप्राप्तहोताहै जोशुभ मार्ग त्यागकरके संसारकी ओर लगाहै वहमहामूर्ख जड़है जैसे शीतलतासे जलबर्फ होजाताहै तैसेहीअज्ञानी मूर्खतासे दृढ़आत्ममार्गसे जड़होजाताहै। हेरामजी! अज्ञा-नीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहताहै इससे वहकदाचित् शान्तिनहींपाता और कभी आनन्दसे प्रफुल्लित नहींहोता वह तैसेही आशासेसदा संकुचित रहताहै जैसे अग्निमें मांससकुचजाताहै। हे रामजी! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आव-रण आशाहीहै। जैसेसूर्य्यके आगे मेघका आवरण होताहै तैसेही आत्मतत्त्वके आगे दुराशा आवरण है। जब आशारूपी आवरण दूरहो तब आत्मपदका साक्षात्कार होवे। हेरामजी! आशा तब दूरहो जब सन्तोंकी सङ्गति और सत्शास्त्रोंका विचारहो हे रामजी! संसाररूपी एकबड़ा वृक्षहै सो बोधरूपी खड्गसे छेदा जासक्ता है। जब सत्सङ्ग और सत्शास्त्रसेबुद्धिरूपी स्वर्ग तीक्ष्ण हो तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट होजाताहै। जबशुभगुणहोतेहैं तब आत्मज्ञान आके विराजता है। जहां कमलहोतेहैं तहां भौंरेभी आके स्थित होते हैं। शुभगुणों में आत्मज्ञान रहता है। हे रामजी! शुभगुणरूप पवनसे जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है तब आत्मारूपी चन्द्रमाका साक्षात्कार होताहै। जैसे चन्द्रमाके उदय हुये आकाश शोभादेताहै तैसेही आत्माके साक्षात्कार हुयेसे तुम्हारीबुद्धि खिलेगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवाशिष्ठोपदेशोनामएकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अवतुम मेरे वचनके अधिकारी हो । मूर्ख मेरे वचन के अधिकारी नहीं क्योंकि; जप, तप, वैराग्य, विचार, सन्तोष आदि जिज्ञासुके शुभ गुण जो शास्त्रों और सन्तजनोंने कहे हैं उनसे तुम सम्पन्नहो और जितने गुरु के गुण शास्त्रमें वर्णनकिये हैं सो सब मुझमें हैं । जैसे रत्नसे समुद्र सम्पन्नहै तैसेहीगुणोंसे मैं सम्पन्नहूं । इससे तुम मेरे वचनको रजो और तमो आदि गुणोंको त्यागकर शुद्ध सात्त्विकवान् होकर सुनो । हे रामजी ! जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे चन्द्रकांतिमणि द्रवीभूत होताहै और उसमेंसे अमृत निकलताहै पर पत्थरकी शिलामेंसे नहीं निकलता तैसेही जो जिज्ञासु होताहै उसीको परमार्थ वचन लगताहै;अज्ञानीको नहींलगता। जैसे निर्मल चन्द्रमुखी कमलनी हो पर चन्द्रमा न हो तो वह प्रफुल्लित नहीं होती तैसेही जो शिष्य शुद्धपात्रहो और उपदेश करनेवाला ज्ञानवान् न हो तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होता । इसलिये तुम मोक्षके पात्रहो और मैंभी परमगुरु हूं । मेरे उपदेश से तुम्हारा अज्ञान नष्टहोजावेगा । अवमैं मोक्षका उपाय कहताहूं;यदि तुमउसको भलेप्रकार विचारोगे तो जैसे महाप्रलय के सूर्य्य से मन्दराचल पर्वत जलजाता है तैसेही तुम्हारे मलीन मनकी वृत्तिका अभाव होजावेगा । इससे हे रामजी ! वैराग्य और अभ्यास के बलसे इस मनको अपनेमें लीनकर शांतात्माहो । तुमने बाल्यावस्थासे अभ्यास कर रक्खाहै इससे मन उपशम पाके आत्मपदको प्राप्त होगे । हे रामजी ! जिन्होंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद पायाहै सो सुखी भयेहैं,फिर उनको दुःख नहींलगा क्योंकि; दुःख देहाभिमान से होताहै सो देहका अभिमान तो तुमने त्यागहीदियाहै । जिसने देहका अभिमान त्याग दियाहै और देहका आत्मतासे फिर ग्रहण नहीं करता सो सुखी रहताहै । हे रामजी ! जिसने आत्माकाबल धरके विचार द्वारा आत्मपद प्राप्त कियाहै वह लोक अकृत्रिम आनन्दसे सदापूर्णहै और सब जगत् उसको आनन्दरूप भासता है । जो असम्यग्दर्शी हैं उनको जगत् अनर्थरूप भासताहै । हे रामजी ! यह संसाररूप सर्प अज्ञानियोंके हृदयमें दृढ़होगया है वह योगरूपी गारुड़ मंत्र करके नष्ट होजाताहै, अन्यथा नहीं नष्ट होता । सर्पके विषसे एकजन्ममें मरता है और संसरणरूपी विषसे अनेक जन्म पाकर मरताचला जाता है—कदाचित् शांतिवान् नहीं होता । हे रामजी ! जिस पुरुषने सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के वचन द्वारा आत्मपदकोपाया है वह आनन्दित हुआहै उसको भीतर बाहर सब जगत् आनन्दरूप भासताहै और सब क्रिया करनेमें उसे आनन्दविलास है । जिसने सत्सङ्ग औ सत्शास्त्रोंका विचार त्यागाहै और संसारके सन्मुखहै उसको संसार अनर्थरूप दुःखदेताहै । कोई सर्पके दंशसे दुःखी होते हैं, कोई शस्त्रसे घायल होतेहैं, कितने अग्निमें पड़ेकी नाईं जलतेहैं कितने रस्सीकेसाथ बँधे होतेहैं और

कितने अंधकूपमें गिरके कष्ट पातेहैं। हे रामजी! जिन पुरुषोंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रोंद्वारा आत्मपद को नहीं पाया उनको नरकरूप अग्नि में जलना, चक्कीमें पीसाजाना; पाषाणकी वर्षासे चूर्ण होना; कोल्हूमें पेरा जाना और शस्त्रसे काटाजाना इत्यादिक जो बड़े २ कष्टहैं प्राप्त होते हैं। हे रामजी! ऐसा दुःख कोईनहीं जो इस जीव को प्राप्तनहीं होता; आत्माके प्रमादसे सब दुःख होते हैं। जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानताहै सो चक्रकी नाईं चञ्चलहैं; कभी स्थिर नहीं रहते। सत्मार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छाकरतेहैं सो महादुःखको प्राप्त होतेहैं और उनका दुःख इसलिये नष्टनहीं होता कि, वह ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ नहीं करते। जो पुरुष संसार को निरस जानकर पुरुषार्थकी ओर दृढ़हुआहै उसको आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै। हे रामजी! जिस पुरुषको आत्मपदकी प्राप्ति भईहै उसको फिर दुःखनहींहोता। अज्ञानीको संसार दुःखरूपहै और ज्ञानीको सब जगत् आनन्दरूप है–उसको कुछ भ्रम नहीं रहता। हे रामजी! ज्ञानवान्में नानाप्रकारकी चेष्टाभी दृष्टि आती हैं तौभी वह सदा शान्त और आनन्दरूप है। संसारका दुःख उसको स्पर्श नहींकर सक्ता क्योंकि; उसने ज्ञानरूपी कवच पहिनाहै। हे रामजी! ज्ञानवान्कोभी दुःखहोताहै। बड़े २ ब्रह्मर्षि और राजर्षि बहुत ज्ञानवान् भये हैं। वेभी दुःखको प्राप्त होतेरहेहैं परन्तु वे दुःखसे आतुर नहींहोतेथे वे सदा आनन्दरूपहैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रआदि नानाप्रकारकी चेष्टा करते जीवकी दृष्टि आतेहैं पर अन्तरसे वे सदाशान्तरूपहैं; उनको कर्त्ताका कुछ अभिमान नहीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी मेघसे उत्पन्न मोहरूपी कुहड़ों का वृक्ष ज्ञानरूपी शरत्काल से नष्ट होजाताहै। इससे स्वसत्ताको प्राप्त होताहै और सदाआनन्दसे पूर्ण रहताहै। वह जो कुछ क्रिया करते हैं सो तिनको विलासरूपहै सब जगत् आनन्दरूप है। शरीररूपी रथ और इन्द्रियरूपीअश्वहैं। मनरूपी रस्से से उन अश्वोंको खींचतेहैं। बुद्धिरूपी रथभी वहीहै जिसरथमें वह पुरुष बैठाहै और इन्द्रियरूपी अश्व उसको खोटे मार्गमें डालते हैं। ज्ञानवान् के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसेहैं कि, जहां जाते हैं वहां आनन्दरूप हैं; किसी ठौरमें खेद नहींपाते सब क्रियामें उनको विलासहै और सर्वदा आनन्दसे तृप्त रहतेहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेतत्त्वज्ञमाहात्म्यंनामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इसी दृष्टिका आश्रय करो कि, तुम्हारा हृदय पुष्टहो फिर संसारके इष्ट अनिष्ट से चलायमान न होगा। जिस पुरुषको इसप्रकार आत्मपदकी प्राप्तिहुई है सोआनन्दित हुआहै। वह न शोक करताहै, न यांचा करताहै और हेयोपादेयसेभी रहित परम शान्तिरूप, अमृतसे पूर्णहो रहा है। वह पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टाकरते दृष्टिआता है परन्तु वास्तवमें कुछनहीं करता। जहां उसके मनकी वृत्ति

जातीहै वहां आत्मसत्ता भासती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृतसे पूर्ण रहता है तैसेही ज्ञानवान् परमानन्द से पूर्णरहता है। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे अमृत-रूपी वृत्ति कहीहै इसको तब जानोगे जब तुमको साक्षात्कार होगा। जैसे चन्द्रमा के मण्डलमें तापनहीं होता तैसेही आत्मज्ञानकी प्राप्तिहोनेसे सब दुःख नष्ट होजाते हैं। अज्ञानीको कभी शान्ति नहीं होती; वह जो कुछ क्रियाकरता है उसमें दुःखपाता है। जैसे कक्करके वृक्षमें कण्टककीही उत्पत्ति होती है तैसेही अज्ञानी को दुःखकीही उत्पत्ति होती। हे रामजी! इसजीवको मूर्खता और अज्ञानता से बड़े २ अद्भुत दुःख प्राप्त होते हैं जिनके समान और दुःख नहीं। यदि आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा में हाथमें ठीक-राले चांडालके घरकी भिक्षा ग्रहणकरे वहभी और ऐश्वर्योंसे श्रेष्ठहै परमूर्खतासे जीना व्यर्थ है। उसमूर्खता के दूरकरनेका मैं मोक्ष उपाय कहताहूं। यह मोक्ष उपाय परम-बोधका कारण है। इसके लिये कुछ संस्कृतबुद्धिभी होनी चाहिये जिससे पदपदार्थ का बोधहो और मोक्षउपाय शास्त्र को विचारै तो उसकी मूर्खता नष्टहोकर आत्म-पदकी प्राप्तिहोगी। नानाप्रकारके दृष्टान्तों सहित जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है वैसा कोई शास्त्र त्रिलोकी में नहीं। इसे जब विचारोगे तब परमानन्दको पावोगे। यह शास्त्र अज्ञान तिमिर के नाशकरने को ज्ञानरूपी शलाका है। जैसे अन्धकार को सूर्य नाशकरताहै तैसेही अज्ञानको इस शास्त्रका विचार नाशकरताहै। हेरामजी! जिसप्रकार इसजीवका कल्याण है सो सुनिये। जब ज्ञानवान्गुरु सत्शास्त्रों का उप-देशकरे और शिष्य अपने अनुभवसे ज्ञानपावे अर्थात् गुरु अनुभव और शास्त्र जब ये तीनों इकट्ठे मिलें तब कल्याण होताहै। जबतक अकृत्रिम आनन्द न मिले तबतक दृढ़अभ्यास करे। उस अकृत्रिम आनन्दको प्राप्त करनेवाला मैं गुरु हूं। जीव-मात्रका मैं परममित्रहूं। हमारी सङ्गतिजीवको आनन्दप्राप्त करानेवाली है। इसलिये जोकुछ मैं कहताहूं सो तुमकरो। संसारके क्षणमात्रके भोगोंको त्यागकरो। क्योंकि, विष-यके परिमाण में अनन्तदुःख हैं और हमसे ज्ञानवानों का सङ्गकरो। हमारे वचनोंके विचारसे तुम्हारे सबदुःख नष्टहोजावेंगे। जिसपुरुषने हमारे साथ प्रीतिकीहै उसको हमने आनन्दकी प्राप्ति, जिससे ब्रह्मादिक आनन्दितभये हैं; करादी है। ज्ञानवान् आनन्दित हुये हैं और निर्दुःखपदको प्राप्तहुये हैं। हे रामजी! आत्माका प्रमाद जीवकोदीन करताहै। जिसनेसंतों और शास्त्रोंके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्यजानाहै वह निर्भयहुआ है। अज्ञानीका हृदय कमल तबतक सकुचारहताहै जबतक तृष्णा-रूपीरात्रि नष्टनहीं होजाती है और हृदयकमल आनन्दसे नहीं खिलआता। हे राम-जी! जिसपुरुषने परमार्थमार्ग त्यागदिया है और संसारके खान पान आदि भोगमें मग्नहुआहै उसको तुम मेडुकाजानो, जो कीचमें पड़ा शब्दकरताहै। हे रामजी! यह

संसार बड़ाआपदाका समुद्रहै। इसमें जोकोई श्रेष्ठपुरुषहै वह सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के विचारसे इससमुद्रको उलंघजाताहै और परमानन्द निर्भयपदको जो आदि, अन्त और मध्यसे रहित है प्राप्तहोताहै और जो संसारसमुद्रके सन्मुखहुआ है वह दुःखसे दुःखरूपपदको प्राप्तहोताहै और कष्टसे कष्टनरकको प्राप्तहोताहै। जैसे विपको विष जान उसका पानकरताहै और वह विपउसको नाशकरताहै तैसेहीजो पुरुष संसारको असत्य जानकर फिर संसारकी ओर यत्नकरताहै सोमृत्युकोप्राप्तहोताहै। हे रामजी! जो पुरुष आत्मपदसे विमुखहै पर उसे कल्याणरूप जानताहै और उसके अभ्यास कात्यागकर संसारकी ओर धावताहै वह वैसेहीनाशहोगा और जन्म मरणको पावेगा जैसे किसी के घरमें अग्नि लगे और वह तृणके घर और तृणही की शय्या में शयन करे तो वह नाशकोपावे। जो संसारके पदार्थ देखकर रागद्वेषवान् हुये हैं वे सुख विजुलीकी चमकसे हैं जो होके मिटजाते हैं–स्थिरनहीं रहते। संसारका दुःख आगमापायी है। हेरामजी! यहसंसार अविचारसे भासता है और विचारकिये से लीनहोजाता है। यदि विचार कियेसे लीन न होता तो तुमको उपदेश करनेका काम नहींथा। इसीकारण पुरुषार्थचाहिये–जैसे हाथमें दीपकहो और अन्धाहोकर कूप में गिरे सो मूर्खताहै तैसेही संसारभ्रमके निवारणवाले गुरुशास्त्र विद्यमानहैं जो उनकी शरण न आवे वहमूर्खहै। हेरामजी! जिसपुरुषने संतकीसंगति और सत्शास्त्रकेविचार द्वारा आत्मपदको पाया है सोपुरुष केवल कैवल्यभावको प्राप्त हुआ है अर्थात् शुद्ध चैतन्यको प्राप्तहुआहै और संसारभ्रम उनका निवृत्तहोगयाहै। हेरामजी! यह संसार मनके संसरनेसे उपजा है जीवका कल्याण बान्धव, धन, प्रजा, तीर्थ, देवद्वार और ऐश्वर्यसे नहींहोता केवल एकमनके जीतनेसे कल्याणहोता है। हे रामजी! जिसको ज्ञानपरमपद रसायनकहतेहैं;जिसकेपायेसे जीवकानाशनहो और जिसमें सर्वसुख की पूर्णताहो इसीकासाधन समता और संतोष है। इनसेज्ञान उत्पन्नहोता है। आत्मज्ञानरूपी एकवृक्षहै उसकाफूल शान्तिहै और स्थितिफल है जिसपुरुषको यह ज्ञान प्राप्तहुआहै सोशान्तिवान् होकर निर्लेपरहताहै। उसको संसारकाभावाभावरूप स्पर्श नहीं है। जैसे आकाश में सूर्य्यउदय होनेसे जगत् की क्रियाहोती है और जब वह अदृश्यहोताहै तब जगत्की क्रियाभी लीनहोजाती है; और जैसे उसक्रियाके होने और न होनमें आकाश ज्योंका त्यों है तैसेही ज्ञानवान् सदा निर्लेपहै उस आत्मज्ञान की उत्पत्तिका उपाययह मेराश्रेष्ठशास्त्रहै। हेरामजी! जोपुरुष इसमोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धासंयुक्तपढ़े अथवा सुनै तो उसीदिनसे वह मोक्षका भागीहो। मोक्षके चारद्वारपालहैं सो मैं तुमसेकहताहूं। जब इनमेंसे एकभीअपनेवशहो तब मोक्षद्वारमें शीघ्रहीप्रवेशहोगा उन चारोंकानाम सुनिये; हेरामजी! शमजीवकेपरम विश्रामका कारणहै। यहसंसार जो

दिखताहै सो मरुथलकी नदीवत् है इसकोदेखकर मूर्खअज्ञानी सुखरूप जलजान कर मृगके समान दौड़ताहै और शांतिको नहीं प्राप्तहोता । जबशमरूपी मेघकी वर्षा होतब सुखीहो। हेरामजी ! शमही परमआनन्द,परमपद और शिवपदहै। जिसपुरुष ने शमपायाहै सो संसार समुद्रसे पारहुआहै। उसकेशत्रुभी मित्रहोजातेहैं। हे रामजी ! जैसे चन्द्रउदय होताहै तब अमृतकी कणा फूटतीहैं और शीतलता होतीहै तैसेही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है उसके सबताप मिटजाते हैं और परम शान्तिवान् होता है। हे रामजी ! शमदेवता के अमृतसमान कोई अमृत नहीं शमसे परमशोभाकी प्राप्तिहोती है । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमाकी कान्ति परम-उज्ज्वल होती है तैसेही शमको पा के जीवकी उज्ज्वलकान्ति होतीहै । जैसे विष्णु के दो हृदयहैं—एकतो अपने शरीर में और दूसरा सन्तोंमें है तैसेही जीव के भी दो हृदय होतेहैं एक अपने शरीरमें और दूसरा शममें। जैसा आनन्दशमवान्कोहोता है तैसा अमृत के पिये से भी नहीं होता। हे रामजी ! कोई प्राणसे प्रिय अन्तर्द्धान होकर फिर प्राप्तहोतो जैसाआनन्द होताहै उसआनन्दसेभी अधिक आनन्द शम-वान् को होताहै।उसके दर्शनसे भी जैसाआनन्द होताहै ऐसा आनन्द राजा,मंत्री और सुन्दरस्त्रीकोभी नहीं। हेरामजी ! जिस पुरुषको शमकी प्राप्तिहुईहै वहवन्दना करने और पूजने योग्यहै। जिसको शमकी प्राप्ति हुईहै तिसको उद्वेग नहीं आता और और लोगोंसेभी उद्वेग नहीं पाता। उसकी क्रिया और वचन अमृतकी नाईं मीठे और चन्द्रमा की किरण समान शीतल और सबको हृदयारामहैं। हे रामजी ! जैसे बालक माता को पाके आनन्दित होता है तैसेही जिसको शमकी प्राप्तिभई है उसके संगसे जीव अधिक आनन्दवान् होता है। जैसे किसीका बांधव मुवाहुआ फिरआवे और उसको आनन्दप्राप्तहो उससेभी अधिक आनन्द शमसम्पन्न पुरुष को होताहै। हे रामजी ! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती और त्रिलोकी के राज्यपाये से भी नहीं होता। जिसको शमकी प्राप्ति हुईहै उसके शत्रुभी मित्र होजाते हैं; उसकोसर्प और सिंहका भयभी नहीं रहता बल्कि किसीकाभी भय नहीं रहता वह सदा निर्भय शांतरूप रहता है। हेरामजी ! जो कोईकष्टप्राप्तहो और कालकी अग्निभी आलगे तोभी वह चलायमान नहीं होता—सदा शांतरूप रहता। जैसे शीतल चांदनी चन्द्रमामें स्थितहै तैसेही जो कुछ शुभगुण और संपदाहै सब शमवान् के हृदय में आस्थित होतीहैं। हे रामजी ! जो पुरुष अध्यात्मकादि तापसे जलताहै उसके हृदयमें कदाचित् शमकी प्राप्तिहोतो सबताप मिटजाते हैं। जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा से शीतलहोजाती है तैसेही उसका हृदय शीतल होजाताहै। जिसको शमकी प्राप्तिहुई है सोसब क्रियामें आनन्द रूपहै—उसको कोई दुःखनहीं स्पर्शकरता। जैसेवज्र और

शिलाको बाणनहीं बेधसक्ता तैसेही जिसपुरुषने शमरूपी कवच पहिना है उसको अध्यात्मकादि ताप बेधनहीं सक्ते—वह सर्वदा शीतलरूप रहता है। हे रामजी! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक और धनाढ्य पूजामें मान करनेयोग्य हैं परन्तु जिसको शमकी प्राप्तिहुई है सो सबसे उत्तम और सबके पूजने योग्य है। उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है और सब क्रिया में सोहती है। जिसपुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध क्रियाके विषयोंके इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष नहीं होता उस को शान्तात्मा कहतेहैं। हे रामजी! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बध्यमान नहीं होता और आत्मानन्दसे पूर्ण है उसको शान्तिवान् कहते हैं। उसको संसारके शुभ अशुभका मालिनपना नहीं लगता वह तो सदा निर्लेप रहता है। जैसे आकाशसब पदार्थों से निर्लेप है तैसेही शान्तिवान् सदा निर्लेप रहता है। हे रामजी! ऐसा पुरुष इष्ट बिषयकी प्राप्तिमें हर्षवान् नहीं होता और अनिष्टकी प्राप्तिमें शोकवान् नहीं होता। वहअन्तःकरण से सदा शान्ति रहता है और उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता; वह अपने आप में सदा परमानन्द रूप रहताहै। जैसे सूर्य्य के उदय होतेही अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही शान्ति के पाये सबदुःख नष्ट होकर सदा निर्विकार रहता है। हे रामजी! वह पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आता है परन्तुसदा निर्गुणरूप है; कोई क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती। जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है तैसेही शान्तिवान् सदा निर्लेप रहताहै। हे रामजी! जो पुरुष बड़ी राज्य–सम्पदा और बड़ी आपदाको पाकर ज्योंका त्यों अलग रहता है उसे शान्तिवान् कहिये। हेरामजी! जो पुरुष शान्तिसे रहित है उसका चित्त क्षणक्षण राग द्वेष से तपताहै और जिसको शान्तिकी प्राप्ति भईहै सो भीतरबाहर शीतल और सदाएक रस है। जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है तैसेही वह सदा शीतल रहताहै। उस के मुखकी कान्ति बहुत सुन्दर होजातीहै। जैसे निष्कलङ्क चन्द्रमा है तैसेही शान्तिवान् निष्कलङ्क रहताहै। हे रामजी! जिसको शान्ति प्राप्तभईहै सो परम आनन्दित हुआहै और उसीको परमलाभ प्राप्तहोताहै। ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं। जिस को पुरुषार्थ करना है उसको शान्तिकी प्राप्तिकरनी चाहिये। हे रामजी! जैसे मैंने कहा है उस क्रमसे शान्तिका ग्रहणकरो तब संसार समुद्रके पारपहुंचोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेशमनिरूपणंनामत्रयोदशस्सर्ग्गः॥१३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब विचारका निरूपण सुनिये।जब हृदय शुद्ध होता है तब बिचार होताहै और शास्त्रार्थके बिचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होतीहै। हे रामजी! अज्ञान बनमें आपदारूपी बेलिकी उत्पत्ति होतीहै उसको बिचाररूपी खड्गसे जब काटोगे तब शान्तआत्मा होगे। मोहरूपी हस्ती जीवके हृदय कमलका खण्ड खण्ड

करडालताहै—अभिप्राय यहहै कि, इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषसे छेदाजाताहै। जब विचाररूपी सिंह प्रकटे तब मोहरूपी हस्तीकानाशकर शान्तात्मा हो। हे रामजी ! जिसको कुछ सिद्धता प्राप्तहुईहै उसे विचार और पुरुषार्थसेही हुईहै। जब प्रथमराजा विचारकर पुरुषार्थ करताहै तब उसीसे राज्यको प्राप्तहोताहै। प्रथम बल, दूसरे बुद्धि, तीसरेतेज, चतुर्थ पदार्थका आगमन और पञ्चम पदार्थकी प्राप्ति इन पांचोंकीप्राप्ति विचार से होतीहै अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, बुद्धि आत्माव्यापिनी और तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्तिविचार से होतीहै। हे रामजी ! जिस पुरुषने विचार का आश्रय लियाहै वह विचारकी दृढ़तासे जिसकी वांछा करताहै उसको पाताहै। इससे विचार इसका परममित्र है। विचारवान् पुरुष आपदामें नहीं मग्नहोता जैसे तुम्बी जलमें नहीं डूबती तैसेही वह आपदा में नहीं डूबता। हे रामजी ! वह जोकुछ करताहै विचार संयुक्त करताहै और विचार संयुक्तही देता लेताहै। उसकी सबक्रिया सिद्धता का कारणरूप होती है और धर्म अर्थ काममोक्ष विचारकी दृढ़तासेही सिद्धहोते हैं। विचाररूपी कल्पवृक्षमें जिसका अभ्यासहोताहै सोई पदार्थों की सिद्धिको पाताहै। हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकरके आत्मज्ञानको प्राप्तहोजाओ। जैसे दीपकसे पदार्थका ज्ञानहोता है तैसेही पुरुष विचारसे सत्य असत्य को जानता है। जो असत्यको त्याग कर सत्यकी ओर यत्नकरता है उसेही विचारवान् कहते हैं। हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रमें आपदाकी तरङ्गे उठती हैं। विचारवान् पुरुष उनके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होता। जो कुछ क्रिया विचार संयुक्त होती है उसका परिणाम सुखहै और जो विचार विना चेष्टाहोती है उससे दुःख प्राप्त होताहै। हेरामजी ! अविचाररूप कण्टक के वृक्षसे दुःखके बड़ेकण्टक उत्पन्न होतेहैं। अविचाररूपी रात्रि में तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरती है और जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि और तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट होजाती हैं। हेरामजी ! हमारा यही आशीर्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसे अविचाररूपी रात्रि नष्टहोजाय। विचाररूपी सूर्यसे अविचारित संसार दुःखका नाशहोता है। जैसे बालक अविचारसे अपनी परछाहीं को बैताल कल्पके भय पाताहै और विचार कियेसे भय नष्टहोजाता है तैसेही अविचारसे संसार दुःख देताहै और सत् शास्त्रद्वारा युक्तिकर विचार कियेसे संसार का भय नष्टहोजाता है। हेरामजी ! जहां विचारहै तहां दुःख नहींहै। जैसे जहां प्रकाशहै तहां अंधकार नहीं होता और जहां प्रकाश नहीं तहां अंधकार रहताहै; तैसेही जहां विचारहै वहां संसार भय नहीं है और जहां विचार नहीं तहां संसार भय रहताहै। जहां आत्मविचार उत्पन्न होताहै वहां सुखके देनेवाले शुभगुण स्थित होते हैं। जैसे मानसरोवर में कमलकी उत्पत्ति होती है तैसेही विचारमें शुभगुणों की उत्पत्ति होती है। जहां

विचार नहीं है तहांही दुःखका आगमन होताहै। हे रामजी! जोकुछ अविचारसे क्रिया करते हैं सोदुःखका कारणहोती है। जैसेचूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकालताहै वह जहां इकट्ठी होती है वहां बिलकी उत्पत्ति होतीहै तैसेही अविचारसे जीव मृत्तिकारूपी पाप क्रियाको इकट्ठी करताहै और उससे आपदारूपी बिल उत्पन्नहोती है। अविचाररूपी घुनकेखाये सूखेवृक्षसे सुखरूपी फल नहीं निकलतेहैं। अविचार उसका नामहै जिसमें शुभ और शास्त्रानुसार क्रिया नहो। हे रामजी! विवेकरूपी राजाहै और विचाररूपी उसकी ध्वजा है जहां विवेकरूपी राजा आता है वहां विचाररूपी ध्वजाभी उसकेसाथ फिरतीहै और जहां विचाररूपी ध्वजा आती है वहां विवेकरूपी राजा भी आता है। जो पुरुष विचारसे सम्पन्नहै सो पूजने योग्यहै। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब नमस्कार करते हैं तैसेही विचारवान्को सब नमस्कार करतेहैं। हे रामजी! हमारे देखते देखते अल्प बुद्धिभी विचारकी दृढ़तासे मोक्षपदको प्राप्तहुयेहैं। इससे विचार सबका परम मित्रहै। जैसे हिमालय पर्वत भीतर बाहरसे शीतल रहता है तैसेही वह भी शीतल रहताहै। देखो विचारसे जीव ऐसे पदको प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और परमानन्दरूपहै। उसको पाकर फिर उसकेत्यागकीइच्छा नहीं होती और न औरके ग्रहण कीही इच्छा होतीहै उसको इष्ट अनिष्ट सबसमानहैं जैसे तरङ्गके होने और लीनहोने में समुद्र समान रहता है तैसेही विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्टकी समता रहती है और संसार भ्रम मिटजाता है। आधाराधेयसे रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्तहोता है। हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोह से उपजताहै और अविचारसे दुःखदायी दीखताहै। जैसेअविचारसे बालकको बैताल भासताहै तैसेही इसको जगत् भासताहै। जब ब्रह्मविचारकी प्राप्ति हो तब जगत् का भ्रम नष्टहोजावे। हे रामजी! जिसके हृदयमें विचार होताहै उसके समताकी उत्पत्ति होतीहै। जैसे बीजसे अंकुर निकल आताहै तैसेही विचारसे समता हो आतीहै और विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उसओर आनन्द दृष्टआता है; दुःख नहींभासता। जैसे सूर्यको अन्धकार नहीं दृष्टि आता तैसेही विचारवान्को दुःख नहीं दृष्ट आता। जहां अविचारहै वहां दुःखहै; जहां विचारहै वहां सुखहै। जैसे अन्धकारके अभावहुये बैतालके भयका अभाव होजाताहै तैसेही विचार किये से दुःख का अभाव होजाताहै। हे रामजी! संसाररूपी दीर्घरोगके नाश करनेको विचार बड़ी औषधहै। जैसी पौर्णमासीके चन्द्रमाकी उज्ज्वल कांति होतीहै तैसीही विचारवान् के मुखकी उज्ज्वल कांति होतीहै। हे रामजी! विचारसेही परमपदकी प्राप्ति होतीहै। जिससे अर्थ सिद्धहो उसका नामविचारहै और जिससे अनर्थ सिद्धहो उसकानाम अविचारहै। जो अविचाररूपीमदिराको पान करता है सो उन्मत्त

होजाताहै उससे शुभ विचार कोईनहीं होता और शास्त्रके अनुसार क्रियाभी उससे नहीं होतीहै। हे रामजी ! इच्छारूपी रोग विचाररूपी औषधसे निवृत्त होताहै। जिस पुरुषने विचार द्वारा परमार्थ सत्ताका आश्रय लियाहै सो परम शांत होजाता है और हेयोपादेय बुद्धि उसकी नहीं रहती वह सवदृश्यको साक्षीभूत होकर देखता है और संसारके भाव अभावमें ज्यों का त्यों रहताहै । वह उदय अस्तसे रहित निस्सङ्गरूपहै। जैसे समुद्र जलसेपूर्ण है तैसेही विचारवान् आत्मतत्त्वसे पूर्णहै। जैसे अन्धे कूपमें पड़ाहुआ हाथके बलसे निकलताहै तैसेही संसाररूपी अन्ध कूपमें गिराहुआ विचारके आश्रय होकर विचारवान्ही निकलनेको समर्थ होताहै। हे रामजी ! राजाको जोकोई कष्टप्राप्त होताहै तो वह विचार करके यत्न करताहै तब कष्ट निवृत्तहोजाताहै; इससे तुम विचार करदेखो कि जो किसीको कष्टप्राप्त होताहै तो विचारसेही मिटताहै। तुमभी विचारका आश्रय करके सिद्धिको प्राप्तहो। वह विचार इस प्रकार प्राप्तहोता है कि, वेद और वेदान्तके सिद्धान्तको श्रवणकर पाठ करे और भलेप्रकार विचारे तब विचारकी दृढ़तासे आत्मतत्त्वको प्राप्तहोगा। जैसे प्रकाशसे पदार्थका ज्ञान होताहै तैसेही गुरु और शास्त्रके वचनोंसे तत्त्वज्ञान होताहै जैसे प्रकाशमें अन्धेको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती तैसेही गुरु, शास्त्र और विचार से जो शून्यहो उसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। हेरामजी ! जो विचाररूपी नेत्र से सम्पन्नहैं सोई देखतेहैं और जो विचाररूपी नेत्रसे रहितहैं वे अन्धेहैं। हेरामजी ! ऐसा विचार करे कि, "मैंकौनहूं"?"यह जगत् क्याहै"?"इसकी उत्पत्तिकैसे हुईहै"और "लीन कैसे होताहै" ? इसप्रकार सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार विचार करके सत्यको सत्य औ असत्यको असत्य जान जिसको असत्य जाने उसका त्यागकरे और सत्य में स्थितहो। इसीका नाम विचारहै। इस विचारसे आत्मपदकी प्राप्तिहोतीहै। हे रामजी ! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त हुईहै उसको सब पदार्थोंका ज्ञानहोता है और विचारसेही आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै, जिसके पायेसे परिपूर्ण होजाताहै और फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहींहोता—ज्योंकात्यों रहता है। जबतकप्रारब्धका वेगहोताहै तबतक शरीरकी चेष्टा होतीहै और जबतक अपनी इच्छाहोतीहै तबतक शरीरकी चेष्टा करताहै फिर शरीरको त्यागकर केवल शुद्धरूप होजाताहै। इससे; हे रामजी ! ब्रह्मविचारका आश्रय करके संसार समुद्रको तरजाओ। इतनारुदन रोगी और कष्टवान् पुरुप भी नहींकरता जितना विचाररहित पुरुप करताहै । हे रामजी ! जो पुरुष विचारसे शून्यहै उसको सब आपदा आ प्राप्त होतीहैं। जैसे सब नदी स्वभावसेही समुद्रमें प्रवेश करतीहैं तैसेही अविचारसे सब आपदा प्रवेशकरतीहैं। हे रामजी ! कीचका कीट, गर्त्तका कण्टक और अँधेरे बिलमें सर्प होना भला

है परन्तु बिचारसे रहितहोना तुच्छहै। जोपुरुष बिचारसे रहितहोकर भोगमें दौड़ता है वह श्वानहै। हे रामजी! बिचारसे रहित पुरुष बड़ा कष्ट पाताहै। इससे एकक्षण भी बिचार रहित नहीं रहना। बिचारसे दृढ़ होकर निर्भय रहना। "मैं कौनहूं" और दृश्य क्याहै ऐसा बिचारकरके और सत्यरूप आत्माको जानकर दृश्यका त्यागकरना। हे रामजी! जो पुरुष बिचारवान्‌है सो संसारके भोगमें नहींगिरता सत्यमेंही स्थित होताहै। जब बिचार स्थितहोताहै तब तत्त्वज्ञानहोताहै और जब तत्त्वज्ञानसे बिश्राम होताहै तब बिश्रामसे चित्तका उपशम होकर दुःखनाश होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेबिचारनिरूपणंनामचतुर्दशस्सर्ग्गः॥ १४॥

बशिष्ठजी बोले; हे अबिचार शत्रुके नाशकर्त्ता रामजी! जिस पुरुषको सन्तोष प्राप्तहुआहै वह परमानन्दित होकर त्रिलोकी के ऐश्वर्य को तृणकी नाईं तुच्छ जानताहै। हे रामजी! जो आनन्द अमृतके पानकिये और त्रिलोकके राज्यसे नहींहोता वह आनन्द सन्तोषवान्‌को होता है। हे रामजी! इच्छारूपी रात्रि हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है; जब सन्तोष सूर्य उदय होता है तब इच्छारात्रिका अभाव होजाताहै जैसे क्षीर समुद्र उज्ज्वलतासे शोभायमानहै तैसेही संतोषवान्‌की कांति सुशोभित होतीहै। हे रामजी! त्रिलोकीके राजाकीभी इच्छा निवृत्त न भई तो वह दरिद्रीहै और जो निर्द्धन सन्तोषवान्‌हैसो सबका ईश्वरहै। सन्तोष उसकाही नामहै जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करे और प्राप्तभी हो तो इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष न धरे। सन्तोषवान् सदा आनन्द पुरुषहै और आत्मस्थितिसे तृप्तहुआहै उसको और इच्छा कुछनहीं। सन्तुष्टता से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होताहै तैसेही सन्तोषवान् प्रफुल्लित होजाता है जो अप्राप्त बस्तुकी इच्छा नहीं करता और जो अनिच्छित प्राप्तहुई को यथाशास्त्र क्रमसे ग्रहण करता है उसका नाम संतोषवान्‌है। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृतसे पूर्णहोताहै तैसेहीसन्तोषवान्‌का हृदय सन्तुष्टतासे पूर्णहोताहै। जोसन्तोषसे रहितहै उसके हृदयरूपी बनमें सदा दुःख और चिन्तारूपी फूलफल उत्पन्नहोतेहैं। हेरामजी! जिसकाचित्त सन्तोष से रहितहै उसको नानाप्रकारकी इच्छा समुद्रकी नानाप्रकारकी तरंगोंके समान उपजतीहैं। सन्तुष्टात्मा परमआनन्दितहै। उसकोजगत्‌के पदार्थोंमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती। हेरामजी! जैसाआनन्द संतोषवान्‌कोहोताहै वैसाआनन्द अष्टसिद्धिकेऐश्वर्य और अमृतके पानकियेसेभी नहींहोता। संतोषवान् सदा शांतरूप और निर्मल रहताहै। इच्छारूपी धूर सर्वदा उड़तीरहतीहै सोसन्तोषरूपी बर्षासे शांत होजातीहै इस कारण सन्तोषवान् निर्मलहै। हेरामजी! जैसे आंबका परिपक्वफल सुन्दरहोता है और सबको प्यारालगताहै तैसेही संतोषवान्‌पुरुष सबको प्यारालगताहै और

स्तुतिकरनेके योग्यहै । जिसपुरुषको संतोष प्राप्तभयाहै उसको परमलाभ भयाहै । हे रामजी ! जहां सन्तोषहै वहांइच्छानहीं रहती औरसंतोषवान् भोगमें दीनहोकर नहीं रहता । वह उदारात्मा सर्वदा आनन्दसे तृप्त रहताहै । जैसे मेघ पवनकेआयेसे नष्ट होजाताहै तैसेही संतोषके आयेसे इच्छानष्ट होजातीहै । जो संतोषवान्पुरुषहै उस को देवता और ऋषीश्वर सब नमस्कार करते और धन्यधन्य कहतेहैं । हेरामजी ! जब इस संतोषको धरोगे तब परमशोभा पावोगे । ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसंतोषनिरूपणंनामपंचदशस्सर्गः॥ १५॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! जितने दान और तीर्थादिक साधनहैं उनसेआत्मपद की प्राप्तिनहीं होती; आत्मपद की प्राप्ति साधुसङ्गसेही होती है । साधुसङ्गरूपी एक वृक्षहै और उसकाफूल आत्मज्ञानहै । जिसपुरुषने फूलकी इच्छाकी है सो अनुभव- रूपी फलकोपाताहै । जोपुरुष आत्मानन्दसे रहितहै सोसत्सङ्गकरके आत्मानन्दसे पूर्णहोताहै, जोअज्ञानसे मृत्युपाताहै सो सन्तके सङ्गसे ज्ञानपाकर अमरहोताहै और जो आपदासे दुःखीहै सो सन्तकेसंगसे सम्पदापाताहै । आपदारूपी कमलका नाश करनेवाली सत्संगरूपी बरफकी वर्षाहै । सत्संगसेही आत्मबुद्धि प्राप्तहोती है जिससे मृत्युनहीं होती और सब दुःखोंसेछूटकर परमानन्दको प्राप्तहोताहै । हे रामजी ! संत की संगतिसे हृदय में ज्ञानरूपी दीपकजलताहै जिससे अज्ञानरूपी तमनष्टहोजाता और बड़े २ ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोताहै । फिरउसे किसी भोग्यपदार्थकी इच्छानहींरहती और बोधवान्होके सबसेउत्तमपदमें विराजताहै जैसेकल्पवृक्षके निकटगयेसे वांछित फलकी प्राप्तिहोती है तैसेही संसारसमुद्रके पारउतारनेवाले संतजन हैं । जैसे धीवर नौकासे पारलगाता है तैसेही संतजन युक्तिसे संसार समुद्र से पारकरते हैं । हे रामजी! मोहमेघका नाशकरनेवाला सन्तकासङ्ग पवनहै।जिसको अनात्म देहादिकसे स्नेहनष्टभयाहै और शुद्धआत्मामें जिसकी स्थितिहै वहउससे तृप्तभयाहै।फिरसंसार के इष्ट अनिष्टमें उसकीबुद्धि चलायमान नहीं होती;वह सदा समताभावमें स्थितरहता है । सन्तजन संसारसमुद्रके पारउतारनेमें पुलकेसमानहैं और आपदारूपी बेलिको जड़समेत नाशकरनेवाले हैं । हेरामजी ! सन्तजन प्रकाशरूपहैं; उनके सङ्गसे पदा- र्थोंकी प्राप्तिहोतीहै । जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रसे हीनहुयेहैं उनको पदार्थकीप्राप्ति नहीं होती । जिसपुरुषने सत्सङ्गकात्यागकियाहै वहनरकरूपी अग्निमें लकड़ीकी नाई जरैगा और जिसपुरुषने सत्सङ्गकिया है उसको नरककी अग्निका नाशकरनेवाला सत्सङ्गरूपी मेघहै । हेरामजी ! जिसने सत्सङ्गरूपी गंगाकास्नानकियाहै उसको फिर तप दान आदिक साधनोंका प्रयोजन नहीं । वह सत्सङ्गसेही परमगतिको प्राप्तहोगा

इससे और सबउपायोंको त्यागकर सत्सङ्गकोही खोजना चाहिये जैसे निर्द्धन मनुष्य चिन्तामणि आदिक धनको खोजताहै तैसेही मुमुक्षु सत्सङ्गको खोजताहै। जो अध्यात्मकादि तीनों तापसे जलताहै उसको शीतल करनेवाला सत्सङ्गही है! जैसे तपीहुई पृथ्वीमेघसे शीतलहोतीहै तैसेही हृदय सत्सङ्गसे शीतल होताहै। हेरामजी! मोहरूपी वृक्षकानाश करनेवाला सत्सङ्गरूपी कुल्हाड़ाहै। सत्सङ्गसेही मनुष्य अबिनाशी पदको प्राप्तहोताहै; जिसपदके पायेसे औरकुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती। इससे सबसे उत्तम सत्सङ्गही है। जैसे सब अप्सराओंसे लक्ष्मी उत्तम हैं तैसेही सत्सङ्गकर्त्ता सब से उत्तमहै। इससे अपने कल्याणके निमित्त सत्सङ्गकरनाही तुमको योग्यहै। हेरामजी! ये जो चारों मोक्षके द्वारपालहैं उनका वृत्तान्त तुमसे कहा। जिस पुरुषने इनके साथ प्रीतिकीहै वह शीघ्र आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको न प्राप्त होंगे। हे रामजी! इन चारोंमेंसे एकभी जहां आता है वहां तीनों और भी आजाते हैं। जैसे जहां समुद्र रहताहै वहां सब नदी आजाती हैं तैसेही जहां शमआता है वहां सन्तोष, विचार, और सत्सङ्ग ये तीनोंभी आजाते हैं और जहां साधुसंगम होताहै वहां सन्तोष, विचार और शम ये तीनों आजाते हैं। जहां कल्पवृक्ष रहता है वहां सब पदार्थ स्थित होतेहैं। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुण कला सब इकट्ठी होजातीहैं तैसेही जहां सन्तोष आताहै वहां और तीनोंभी आतेहैं और जहां विचार आता है वहां सन्तोष, उपशम और सत्संगभी आरहते हैं। जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसे राज्यलक्ष्मी आ स्थित होतीहै तैसेही जहां विचार होताहै वहां औरभी तीनों आते हैं। इससे हे रामजी! जहां ये चारों इकट्ठे होते हैं उसे परम श्रेष्ठ जानना। हे रामजी! यदि ये चारों न हों तो एकका तो अवश्य आश्रय करना। जब एकआवेगा तब चारों आ स्थित होंगे। मोक्ष की प्राप्ति होने के ये चार परम साधन हैं। और उपायसे मुक्ति न होगी। श्लोक। सन्तोषःपरमोलाभः सत्सङ्गःपरमंधनम्॥ विचारः परमंज्ञानं शमंचपरमंसुखम् ७॥ हे रामजी! ये परम कल्याण कर्त्ता हैं। जो इन चारों से सम्पन्न है उसकी ब्रह्मादिक स्तुतिकरते हैं। इससे दन्तको दन्तलगा इनका आश्रय करके मनको बशीभूतकरो। हे रामजी! मनरूपी हस्ती बिचाररूपी अंकुशसे बशहोताहै। मनरूपी बनमें वासनारूपी नदी चलती है उस के शुभअशुभ दो किनारेहैं। पुरुषार्थ करना यहहै कि, अशुभकी ओरसे मन को रोकके शुभकी ओर चलाना। जब अन्तर्मुख आत्माके सम्मुख वृत्तिका प्रवाह होगा तब तुम परमपदको प्राप्त होगे। हे रामजी! प्रथमतो पुरुषार्थ करना यही है कि, अबिचाररूपी उँचाई को दूर करे। जब अविचाररूपी बेंट दूर होगा तब आपही प्रवाह चलेगा। हे रामजी! दृश्य की ओर जो प्रवाह चलताहै सो बन्धन का कारणहै। जब आत्माकी ओर

अन्तर्मुख प्रवाहहोतव मोक्षका कारण होजाय। आगे जो तुम्हारी इच्छाहो सोकरो ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसाधुसङ्गनिरूपणंनामषोड़शस्सर्गः ॥ १६ ॥
वशिष्ठजीबोले ; हे रामजी ! ये मेरे वचन परम पावन हैं । विचारवान् शुद्ध अधिकारीको ये परम बोधके कारणहैं । शुद्ध पात्र पुरुष इन वचनोंको पाके सोहतेहैं और वचनभी उनको पाके शोभा पातेहैं । जैसे शरद कालमें मेघके अभाव से चन्द्रमा और आकाश शोभा देते हैं तैसेही शुद्ध पात्रमें ये वचन शोभते हैं और जिज्ञासू निर्मल वचनों की महिमा सुनके प्रसन्न होताहै । हे रामजी ! तुम परम पात्रहो और मेरे वचन अति उत्तमहैं । यह महा रामायण मोक्षोपायक शास्त्र आत्मबोधका परम कारण है । इसमें परम पावन वाक्य की सिद्धता और युक्ति युक्तार्थवाक्यहैं और नाना प्रकारके दृष्टांत कहे हैं । जिसके बहुत जन्मके पुण्य इकट्ठे होतेहैं उसको कल्पवृक्ष मिलताहै और फलसे झुकपड़ताहै तब उसको यह शास्त्र श्रवण होताहै । नीचको इसका श्रवण प्राप्त नहीं होता और न उसकी वृत्ति इसके श्रवणमें आतीहै । जैसे धर्मात्मा राजाकीइच्छा न्यायशास्त्र के सुननेमें होतीहै और पापात्माकीनहींहोती तैसेही पुण्यवान्की इच्छाइसके सुननेमेंहोती है और अधमकी इच्छानहींहोती । जो कोई इस मोक्षोपायक रामायणका आदिसे अन्त पर्यन्त अध्ययन करेगा अथवा निष्काम संतके मुखसे श्रद्धायुक्त सुनकर एकत्र भावहोकर विचारेगा उसका संसार भ्रम निवृत्त हो जावेगा । जैसे रस्सीके जाननेसे सर्पका भ्रम दूरहोजाताहै तैसेही अद्वैतात्मा तत्त्वके जाननेसे उसका संसारभ्रम नष्टहोजावेगा। इसमोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीससहस्र श्लोक और षट्प्रकरणहैं । पहिला वैराग्य प्रकरण वैराग्यका परमकारणहै । हेरामजी ! जैसे मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता और कदाचित् बड़ीवर्षाहो तो वहांभी वृक्षहोताहै तैसेही अज्ञानीकाहृदय मरुस्थलकी नाईंहै उसमें वैराग्यवृक्ष नहींहोता पर जो इसशास्त्रकी बड़ीवर्षाहो तो वैराग्यवृक्ष उसमें उत्पन्नहोताहै । इस वैराग्यप्रकरण के एकसहस्रपांच सौश्लोकहैं । उसकेअनन्तर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणहै; उसके परम निर्मल वचन हैं । जैसे मलीनमणि मार्जन किये से उज्ज्वल होजातीहै तैसेही इन वचनों से ज्ञानीका हृदय निर्मल होता है और विचारके बलसे आत्मपद पाने को समर्थ होताहै । इसके एकसहस्र श्लोक हैं । इसके अनन्तर उत्पत्ति प्रकरण के पांच सहस्र श्लोकहैं । उसमें बड़ीसुन्दरकथा दृष्टान्तों सहित कही है जिसके विचारसे जगत् की उत्पत्तिकाभाव मनसेचलायमान रहताहै-अर्थात् इसजगत्का अत्यन्त अभाव जानपड़ता है । हे रामजी ! इस जगत् में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि और स्वर्गलोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जङ्गम अज्ञानसे भासते हैं इनकी उत्पत्ति कैसेहुई ? जैसे रस्सीमें सर्प; सीपमेंरूपा; सूर्यकी किरणों में जल,

आकाशमें तारे और दूसरा चन्द्रमा; गन्धर्वनगर और मनोराज की सृष्टि भासती है और जैसे समुद्रमेंतरंग; आकाशमें नीलता और नौकामें बैठनेसे किनारेकेवृक्ष और पर्वतचलते दृष्टिआतेहैं एवम् जैसेबादलके चलनेसे चन्द्रमा धावतादीखताहै,स्तम्भ मेंपुतली भासतीहैं और भविष्यत नगरसेआदिले असत्यपदार्थ सत्यभासतेहैं तैसे-ही सबजगत्है। अज्ञानसे अर्थाकार भासताहै और अज्ञानसेही इसकी उत्पत्तिदी-खतीहै और ज्ञानसे लीनहोजाताहै। जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्तिहोती है और जागेसे निवृत्त होजातीहै तैसेही अविद्यासे जगत्की उत्पत्तिहोतीहै और सम्यक्ज्ञा-न से निवृत्त होजातीहै वह अविद्या कुछ वस्तुही नहींहै। सर्वब्रह्म,जो चिदाकाशरूप, शुद्ध, अनन्त और परमानन्द स्वरूपहै उससे न जगत् उपजताहै और न लीनहोता है-ज्योंकात्यों आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। उसमें जगत् ऐसाहै जैसे भीतमें चित्रहोताहै वा जैसे स्तम्भमें पुतलियांहोतीहैं जो हुयेबिना भासतीहैं तैसेही यहसृ-ष्टि मनमेंहै वास्तवमें कुछ बनीनहीं–सब आकाशरूप है जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होताहै तब नानाप्रकारका जगत् होके भासताहै औरजब निस्स्पन्द होताहै तब मिट जाताहै। इसप्रकारसे जगत्कीउत्पत्तिकही है। उसके अनन्तर स्थितिप्रकरणहै;उसमें जगत्की स्थिति कहीहै। जैसे इन्द्रके धनुषमें अविचार से रङ्गहै और जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल और रस्सीमें सर्प भासताहै और वह सब सम्यक् दृष्टिसे निवृत्तहोता है तैसेही अज्ञानसे जगत्की प्रतीति होतीहै। केवल मनोराजसे जगत्रचलेताहै-कुछ उत्पन्न नहीं हुआहै। यह जगत् सङ्कल्पमात्रहै जैसे जबतक मनोराजहै तबतक वह नगर होताहै जब मनोराजकाअभाव हुआ तब नगरकाभी अभाव होजाताहै तैसेही जबतक अज्ञान होता है तबतक जगत्की उत्पत्ति होतीहै जब सङ्कल्पका लय होता है तब जगत्काभी अभाव होजाताहै। जैसे ब्रह्माजीके दशपुत्रों की सृष्टि सङ्कल्पसे स्थितभईथी तैसेही यहजगत्भी है। कोई पदार्थ अर्थरूप नहीं। हेरामजी! इसप्रकार स्थितिप्रकरण कहाहै।उसके तीनि सहस्र श्लोक हैं; तिनके बिचार से जगत्की सत्य-ता जातीरहती है। उसके अनन्तर उपशम प्रकरणहै उसकेपांचसहस्र श्लोकहैं। जैसे स्वप्नसे जागेसे वासना जाती रहतीहै तैसेही इसके विचार कियेसे अहंत्वमादिक वा-सना लीनहोजातीहैं क्योंकि;उसके निश्चयमें जगत् नहीं रहता। जैसे एकपुरुष सोया है उसको स्वप्नेमें जगत्भासताहै और उसके निकटजो जाग्रतपुरुषहै उसकेस्वप्नका जगत् आकाशरूपहैतो जबआकाशरूपहुआ तब वासनाकैसेरहै और जब वासना नष्टहुई तब मनका उपशम होजाताहै। तब देखनेमात्र उसकीसब चेष्टा होतीहै और मनमें अर्थरूप इच्छानहीं होती। जैसे अग्निकी मूर्त्ति देखनेमात्र होती है–अर्थाकार नहीं होती–तैसेही उसकी चेष्टा होतीहै। हे रामजी! जैसे तेलसेरहित दीपक निर्वाण

होजाताहै तैसेही इच्छासे रहितमन निर्वाण होताहै ।उसके अनन्तर निर्वाण प्रकरणहै। उसमें परमनिर्वाण वचन कहेहैं।अज्ञानसेचित्त और चित्तका सम्बन्धहै;विचारकिये से निर्वाण होजाताहै । जैसे शरद कालमें मेघके अभावमे शुद्ध आकाशहोताहै तैसेही विचार से जीव निर्मल होताहै । हे रामजी! अहङ्कार पिशाच विचारसे नष्टहोता है और जितनी कुछ इच्छा फुरतीहै सो निर्वाण होजातीहै । जैसे पत्थरकी शिला फोरने से रहितहोतीहै तैसेही ज्ञानवान् इच्छासेरहित होताहै।तब जितनी कुछ उसकी जगत् की यात्रा है सो होचुकतीहै और जो कुछकरनाहै सो करचुकताहै ।हे रामजी! शरीर होतेही वहपुरुष अशरीरी होजाताहै । नानाप्रकारका जगत् उसको नहीं भासता ; जगत्की नेतिसे वह रहित होताहै और अहंत्वमादिक तमरूप जगत् उसको नहीं भासता । जैसे सूर्य्यको अन्धकार दृष्टि नहीं आता तैसेही उसकोजगत् दृष्टिमें नहीं आता और वड़े पदको प्राप्तहोताहै। जैसे सुमेरुपर्वतके किसीकोने में कमलहोता है और उसपर भँवरे स्थितरहते हैं तैसेही ब्रह्मके किसीकोनेमें जगत् तुषाररूपहै और जीवरूपीभँवरे उसपरस्थितहैं । वहपुरुष अचिन्त्य चिन्मात्रहै;रूप, अवलोकन और मन उसका आकाश रूप होजाता है । वहउसपदको प्राप्तहोता है जिसपदकी उपमा ब्रह्मा,विष्णु और रुद्रभी नहींकहसक्ते ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपट्प्रकरणविवरणन्नामसप्तदशस्सर्ग्गः ॥ १७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! ये परम उत्तमवाक्यहैं । इनको विचारनेवाला उत्तमपद को प्राप्तहोताहै । जैसे उत्तमखेतमें उत्तम बीजबोयेसे उत्तम फलकी उत्पत्ति होतीहै तैसे-ही इनका विचारनेवाला उत्तमपदको प्राप्तहोताहै । ये वाक्य युक्ति पूर्वकहैं ; कदाचित् युक्तिसे रहित वाक्य आर्षभीहों तो उनका त्यागकरना चाहिये और युक्ति पूर्वकवाक्य अंगीकारकरनाही चाहिये । हे रामजी ! जो ब्रह्माकेभी वचन युक्तिसे रहितहों तो उनकोभी सूखे तृण समान त्यागकरना चाहिये और यदि बालकके वचन युक्तिपूर्वक होंतो उनको अङ्गीकार करना चाहिये । जैसे पिताके कूपका खारीजल हो तो उसे त्यागकर निकटके मिष्ठकूपके जलको पान करते हैं तैसेही बड़े और छोटेका विचार न करके युक्तिपूर्वक वचनका अङ्गीकार करना चाहिये । हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक और बोधके परमकारण हैं । जो पुरुष एकाग्र होके इसशास्त्रको आदि से अन्त पर्य्यन्तपढ़ेगा अथवा पण्डितसे श्रवण करके विचारेगा तब उसकी बुद्धि-संस्कारित होगी । जबपहिले वैराग्य प्रकरणको विचारोगे तब वैराग्य उपजेगा । जितने जगत् के रमणीय भोगपदार्थ हैं उनको विरसजानकर किसीपदार्थ की वाञ्छा न करोगे । जब भोगमें वैराग्य होता है तब शान्तिरूप आत्मतत्त्व में प्रतीतहोती है आर जब विचारसे बुद्धिसंस्कारितहोगी तब शास्त्रका सिद्धान्त बुद्धि में स्थित

होगा। जैसे शरदकाल में बादलके अभाव हुये से आकाश सब ओरसे स्वच्छ होजाता है तैसेही संसारके विकार छूटकर बुद्धिनिर्मलहोगी औरफिर आधिव्याधिकी पीड़ा न होगी। हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ़होगा त्यों त्यों शान्तात्मा होगा। इससे जितने संसारके यत्न हैं उनको त्याग इस शास्त्रके बारंबार विचारसे चैतन्यसत्ता उदयहोगी और त्योंही त्यों लोभ,मोहादिक विकारकी सत्तानष्ट होगी। जैसे ज्यों ज्यों सूर्य उदय होताहै त्यों त्यों अंधकार नष्ट होताहै तैसेही विकार नष्टहोगा। तब उस पदकी प्राप्ति होगी जिसके पायेसे संसारके क्षोभ मिटजायँगे। जैसे शरद कालमें मेघ नष्टहोजाता है तैसेही संसारके क्षोभ मिटजाते हैं। हे रामजी! जिस पुरुषने कवच पहनाहो उसको बाण नहीं बेध सक्ते;तैसेही ज्ञानवान् पुरुषको संसारकेराग द्वेष नहीं बेध सक्ते। उसको भोगकीभी इच्छा नहीं रहती और जब विषय भोग आते हैं तब उनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर सेबाहर नहीं निकलती तैसेही उसकी बुद्धि भीतरसे बाहर नहीं निकलती। हेरामजी! बाहरसेतो वहभी प्रकृति जन्मके समान दृष्टिआते हैं और जो कुछ अनिच्छित प्राप्त होतेहैं उनको भुगतताहुआ दृष्टिमें आताहै पर अन्तरसे उसको राग द्वेष नहींफुरता। हेरामजी! जो कुछ जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका क्षोभहै वह ज्ञानवान्को नष्टनहीं करसक्ता। जैसे चित्रकी बेलिको आंधी नहीं चला सक्ती तैसेही उसको जगत्का दुःख नहीं चला सक्ता। वह संसार की ओरसे जड़ होजाताहै और वृक्षके समान गम्भीर पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमा के सदृश शीतल होजाताहै। हेरामजी! वह आत्म ज्ञानसे ऐसेपद को प्राप्त होता है जिसके पाये से और कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। आत्मज्ञान का कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है। इसमें नाना प्रकारके दृष्टान्त कहे हैं। जो वस्तु अपरिच्छिन्न हो और देखने में न आवे और उसका न्याय देखनेमें होतो उसको उपमासे विधिपूर्वक समुझाने का नाम दृष्टान्त है। हेरामजी! यह जगत् कार्य कारणसे रहितहै तो आत्मा जगत् की एकता कैसे हो। इससे मैं जो दृष्टान्त कहूंगा उसकाएकअंश अंगीकारकरना-सबदेश अंगीकार न करना। हेरामजी! कार्यकारणकी कल्पना मूर्खोंने की है। उसके मिटने के लिये मैं स्वप्न दृष्टान्त कहताहूं उसके समझने से तेरेमनका संशयनष्ट होजावेगा। दृग औरदृश्य का भेद मूर्खको भासताहै।उसकेदूर करनेके अर्थमें स्वप्नदृष्टांतकहूंगा जिसके विचारनेसे मिथ्याविभाग कल्पना का अभाव होताहै।हेरामजी! ऐसी कल्पना का नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्षउपाय शास्त्रहै। जोपुरुष आदिसे अन्तपर्यंत इसे विचारेगा सो संस्कारीहोगा। जोपद पदार्थको जानने वालाहो और दृश्यको बारम्बार विचारे तोउसका दृश्यभ्रम नाशहोगा। इस शास्त्रके विचार मेंकिसीतीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षनहीं है। जहांस्थानहो वहां बैठे और जैसा

भोजन गृहमेंहो वैसाकरे और वारम्वार इसका विचारकरे तो अज्ञाननष्ट होकर आत्मपदकीप्राप्तिहोवेगी । हे रामजी ! यह शास्त्र प्रकाशरूपहै । जैसे अन्धकारमें पदार्थनहीं दीखता और दीपकके प्रकाशसे चक्षु सहित दीखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित होतो आत्मपदकी प्राप्तिहो । हेरामजी ! आत्मज्ञान विचार विना वर और शापसे प्राप्त नहीं होता । जव विचार करके दृढ़ अभ्यास कीजिये तव प्राप्तहोता है । इससे इस मोक्षपावन शास्त्रके विचारसे जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा और जगको देखते२जगत् भाव मिटजावेगा । जैसे लिखीहुई सर्पकी मूर्त्तिसे विनाविचार भ्रमहोता है और जव विचारकर देखिये तव सर्पभ्रम मिटजाताहै तैसेही यह जगत्भ्रम विचार कियेसे नष्ट होजाता और जन्म मरणका भयभी नहीं रहता । हेरामजी ! जन्म मरण का भयभी वड़ा दुःखहै परन्तु इसशास्त्रके विचारसे वहभी नष्टहोजाता है । जिन्हों ने इसका विचार त्यागाहै वह माताके गर्भमें कीटहोकर भी कष्टसे न छूटेंगे और विचारवान् पुरुष आत्मपदको प्राप्तहोंगे । जो श्रेष्ठ ज्ञानी है उसको अनन्त सृष्टि अपनाही रूपभासता है; कोईपदार्थ आत्मसे भिन्ननहीं भासता । जैसे जिसको जलका ज्ञान है उसको लहर और आवर्त्त सव जलरूपही भासतीहै तैसेही ज्ञानवान्को सवआत्मरूपही भासताहै और वह इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा द्वेष नहीं करता-सदा एकरस मनके सङ्कल्पसे रहित शान्तरूपहोताहै । जैसे मन्दराचल पर्वतके निकलनेसे क्षीरसमुद्र शान्तहुआ है तैसेही सङ्कल्प विकल्परहित मनुष्य शांतिरूप होताहै । हे रामजी ! और तेजदाहक होता है परन्तु ज्ञानकातेज जिसघटमें उदय होता है सो शीतल और शांतिरूप होजाताहै और फिर उसमें संसारका विकार कोई नहीं रहता । जैसे कलियुग में शिखावालातारा उदय होताहै और कलियुगके अभावहुये नहीं उदय होता तैसेही ज्ञानवान्के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता । हे रामजी ! संसार भ्रम आत्मा के प्रमादसे उत्पन्नहोता है पर आत्मज्ञानके प्राप्तहुये वह यत्न विनाही शांत हो जाताहै । फूल और पत्रके काटनेमें भी कुछयत्नहोताहै परन्तु आत्माकेपानेमें कुछयत्ननहीं होता क्योंकि; वोधरूपी वोधहीसे जानताहै । हे रामजी ! जोजाननेमात्र ज्ञानस्वरूप है उसमेंस्थित होनेका क्यायत्नहै । आत्माशुद्ध और अद्वैतरूपहै और जगत्भ्रम मात्र है । जिसकी सत्यता पूर्वापर विचारकिये से न पाइये उसको भ्रममात्र जानिये और जिसका पूर्वापर विचारकियेसे सत्यहो उसका सत्यरूप जानिये । सो इस जगत्की सत्यता आदि अन्तमें नहीं है । इससे स्वप्नवत्है । जैसेस्वप्न आदि अन्तमें कुछनहीं होता तैसेही जाग्रतभी आदि अन्त में नहींहै इससे जाग्रत और स्वप्न दोनों तुल्यहैं । हे रामजी ! यहवार्त्ता वालकभी जानता है कि, जिसकी आदि अन्तमें सत्यता न पाइये सो स्वप्नवत् है । जिसका आदिभीनहो और अन्तभीनरहे

उसकामध्य भी असत्यजानिये । उसका दृष्टान्त यह है कि, सङ्कल्पपुरीवत्; ध्यान नगरकीनाईं; स्वप्नपुरीकी नाईं; वर और शापसे जो उपजताहै उसकीनाईं और औषधीसे उपजकीनाईं। इनपदार्थोंकी सत्यता न आदिमेंहोती है और न अन्तमें होतीहै और मध्यमें जोभासताहै सो भी भ्रममात्रहै। तैसेही यहजगत् अकारणहै औरकार्यकारण भावसंबंधमें भासता है तो कार्य कारण जगत् हुआ पर आत्मसत्ता अकारण है। जगत्साकार औरआत्मानिराकारहै। इसजगत्का दृष्टांत जोआत्मामेंदेंगे उसका तुमको एकअंशग्रहणकरना चाहिये। जैसे स्वप्नकी सृष्टिका पूर्वअपरभाव आत्मतत्त्व में मिलताहै क्योंकि; अकारण है और मध्यभावका दृष्टान्त नहीं मिलता क्योंकि; उपमेय अकारण है तो उसका इसके समान दृष्टांत क्योंकरहो। इस से अपने बोध के अर्थ दृष्टांतका एकअंश ग्रहणकरना। हे रामजी! जो विचारवान् पुरुषहैं सो गुरु और शास्त्रके वचन सुनके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक २ अंशग्रहण करतेहैं तो उनको आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोती है क्योंकि; वे सारग्राहक होतेहैं और जो अपने बोधकेअर्थ दृष्टांतका एकअंश ग्रहणनहीं करते और वादकरते हैं उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहींहोतीहै। इससे दृष्टान्तका एकअंश सारभूत ग्रहण करके दृष्टांतके सर्वभाव से न मिलनाचाहिये और पृथक्को देखकर तर्क न करना चाहिये। जैसे अन्धकारमें पदार्थ पड़ाहो तो दीपकके प्रकाशसे देखलेतेहैं क्योंकि; दीपकके साथ प्रयोजनहै; ऐसे नहीं कहतेकि,दीपक किसकाहै औरतेलबत्तीकैसीहै औरकिसस्थानकीहै। तैसेहीदृष्टान्तका एकअंश आत्मबोध के निमित्त अङ्गीकार करना। हेरामजी! जिससे वाक्अर्थ सिद्ध हो और जो अनुभवको प्रकटकरे वह वचन अङ्गीकार करना और जिससे वाक्यार्थ सिद्धनहो उसका त्यागकरना। जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहणकरता है वहीश्रेष्ठहै और जो वाद के निमित्त ग्रहण करताहै वह मूर्खहै। जो कोई अभिमान को लेकर ग्रहण करताहै वह हस्तीके समान अपने शिरपर मट्टी डालता है—उसका अर्थ सिद्धनहीं होता और जो अपने बोधके निमित्त वचन को ग्रहण करके विचारपूर्वक उसका अभ्यास करता है उसकाआत्मा शान्त होताहै। हे रामजी! आत्मपद पानेके निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिये। जब शम, विचार, सन्तोष, और सन्त समागम से बोधको प्राप्तहो तब परमपदको पाताहै। हेरामजी! जो कोई दृष्टांतदेताहै वह एकदेशलेकर कहता है; सर्वमुख कहनेसे अखंडताका अभाव होजाताहै। सर्वमुख दृष्टान्तमुख्य को जानिये वह सत्यरूप होता है। ऐसे तो नहीं होता कि,आत्मातो सत्य रूप, कार्य्य कारण से रहित, शुद्ध और चैतन्यहै उसके बतानेके लिये कार्य्य कारण जगत्का दृष्टान्त कैसे दीजिये जो कोई जगत्का दृष्टान्त देताहै वह केवल एक अंश लेके कहताहै और बुद्धिमान् भी दृष्टान्तके एक अंशको ग्रहणकरते हैं। श्रेष्ठ पुरुष

अपने बोधकेनिमित्त सारकोही ग्रहणकरते हैं । जैसे क्षुधार्थी को चावलपाक प्राप्तहो तो भोजनकरनेका प्रयोजनहै तैसेही जिज्ञासूको भी यही चाहिये कि, अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहणकरके वाद न करे क्योंकि, उसकी उत्पत्ति और स्थितिका वाद करना व्यर्थ है। हेरामजी ! वाक्य वही है जो अनुभवको प्रकटकरे और जो अनुभव को प्रकट न करे उसका त्याग करना चाहिये । कदाचित् स्त्रीका वाक्य आत्मअनुभव को प्रत्यक्ष करनेवालाहो तो उसका भी ग्रहणकरना चाहिये और जो परमगुरु के वेदवाक्य हों और अनुभवको प्रकट न करे तो उसका त्यागकरना चाहिये । जबतक विश्रामको न पावे तबतक विचारकरना चाहिये । विश्रामकानाम तूर्य्यपदहै । जैसे मन्दराचल पर्व्वतके क्षोभसे क्षीरसमुद्र शान्तहुआथा तैसेही विश्रामकी प्राप्तिहोनेसे अक्षयशान्ति होतीहै । हेरामजी ! तूर्य्यपदसंयुक्त पुरुषको श्रुति-स्मृति उक्तकर्म्मोंके करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और न करनेसे कुछ प्रत्युवायनहीं होता। वह सदेहहो चाहे विदेहहो गृहस्थहो चाहे विरक्तहो उसको कुछ नहींकरना है । वह पुरुष संसार समुद्रसे पारही है । हेरामजी ! उपमेयकी उपमा एकअंशसे ग्रहणकर जानता है तब बोधकीप्राप्ति होती है और बोधके बिना मुक्ति को प्राप्त नहीं होता वह केवल व्यर्थ वादकरताहै ।हेरामजी ! जिसकेघटमें शुद्धस्वरूप आत्मसत्ता विराजमानहै वहजो उसको त्यागकर और विकल्प उठाताहै तो वह चोग चुश्च और मूर्ख है ।हे रामजी ! प्रत्यक्ष प्रमाण माननेयोग्य है क्योंकि, अनुमान और अर्थापत्ति आदि प्रमाणोंसेउसकी सत्ताप्रत्यक्ष की होतीहै । जैसे सबनादियोंका अधिष्ठान समुद्रहै तैसेही सब प्रमाणोंका अधिष्ठानप्रत्यक्ष प्रमाणहै । वह प्रत्यक्ष क्या है सो सुनिये । हे रामजी ! चक्षुरूपीज्ञान सम्मत संवेदन है; जो उस चक्षुसे विद्यमान होताहै उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन प्रमाणोंको विषय करनेवाला जीवहै। अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानसे अनात्मारूपी दृश्यबनाहै। उसमें अहंकृतिसे अभिमान हुआहै और अभिमान सब दृश्यहै उससे हेयोपादेय बुद्धिहोतीहै जिससेराग-द्वेष करके जलताहै और आपको कर्त्ता मानकरवहिर्मुख हुआ भटकताहै। हे रामजी ! जब विचारकरके संवेदन अन्तर्मुखी हो तब आत्मपद प्रत्यक्ष होकर निजभाव को प्राप्त होताहै और फिर प्रच्छिन्नभाव नहीं रहता शुद्ध शान्तिको प्राप्त होताहै । जैसे स्वप्नसे जगकर स्वप्नकाशरीर और दृश्यभ्रम नष्ट होजाताहै तैसेही आत्माके प्रत्यक्षहुये से सबभ्रम मिटजाताहै और शुद्ध आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी ! यह दृश्य और द्रष्टा मिथ्या है। जो द्रष्टाहै सो दृश्यहोता औरजो दृश्यहै सो द्रष्टाहोताहै-यह भ्रममिथ्या आकाशरूपहै। जैसे पवनमें स्पन्दशक्ति रहती है तैसेही आत्मामें संवेदन रहती है। जब संवेदन स्पन्दरूप होती है तबदृश्यरूपहोके स्थित होतीहै । जैसे स्वप्नमें अनुभवसत्ता दृश्यरूप होके स्थितहोती है तैसेहीयह

दृश्यहै। सबआत्मसत्ताहीहै ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्तहोजावो और जोऐसे विचारकरके आत्मपदको प्राप्त न होसको तो अहङ्कार जो उल्लेख फुरताहै उसका अभावकरो। पीछेजो शेषरहेगा सोशुद्धबोध आत्मसत्ताहै। जब तुम शुद्धबोधको प्राप्त होगे तब ऐसीचेष्टा होगी जैसे जंत्रीकी पुतली संवेदन विना चेष्टाकरतीहै तैसेही देह-रूपीपुतलीका चलानेवाला मनरूपी संवेदन है उसविनापड़ीरहेगी और अहंकृतका अभावहोगा। इससे यत्न करके उसपदके पानेका अभ्यासकरो जो नित्य, शुद्ध और शान्तरूपहै। हे रामजी! "दैव"शब्दको त्यागकर अपनापुरुषार्थकरो औरआत्मपदको प्राप्तहो। जो कोईपुरुषार्थमें शूरमाहै सो आत्मपदकोप्राप्त होताहै और जो नीचपुरु-षार्थकाआश्रय करताहै सो संसारसमुद्रमें डूबता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेदृष्टान्तप्रमाणंनामअष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! जब सत्सङ्ग करके मनुष्य शुद्धबुद्धिकरै तब आत्मपद पानेको समर्थहोताहै। प्रथम सत्सङ्ग यहहै कि, जिसकीचेष्टा शास्त्रके अनुसार हो उसकासंगकरे और उसकेगुणोंको हृदयमेंधरे। फिर महापुरुषोंकेशम और संतोषादि-कगुणोंका आश्रयकरे। शम संतोषादिकसे ज्ञानउपजताहै। जैसे मेघसे अन्नउपजताहै; अन्नसे जगत्होताहै और जगत्से मेघहोताहै तैसेही शम,संतोष और शमादिकगुण और आत्मज्ञान परस्परहोतेहैं। शमादिकगुणोंसेज्ञानउपजताहै और आत्मज्ञानकरने से शमादिकगुण स्थितहोतेहैं। जैसे बड़ेतालसेमेघ और मेघसेताल पुष्टहोताहै तैसेही शमादिकगुणोंसे आत्मज्ञानहोता और आत्मज्ञानसे शमादिगुणपुष्टहोतेहैं। ऐसेविचार करके शम सन्तोषादिक गुणोंका अभ्यासकरो तब शीघ्रही आत्मतत्त्व को प्राप्तहोगे। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक प्राप्तहोते और जिज्ञासूको अभ्यासकरके प्राप्तहोतेहैं। जैसे धान्यकी पालना जब स्त्रीकरतीहै और ऊँचेशब्दसे पक्षियोंकोउड़ातीहै तबफलको पातीहै और उससे पुष्टहोतीहै, तैसेही शम संतोषादिक के पालनेसे आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोतीहै। हे रामजी! इसमोक्ष उपाय शास्त्रको आदि से लेकर अन्त पर्य्यन्त विचारे तो भ्रान्ति निवृत्तिहोके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थसे सिद्धहोतेहैं। यह शास्त्रमोक्षउपायका परमकारणहै। जो शुद्धबुद्धिवान्पुरुष इसको विचारेगा उसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। इससे इस मोक्षउपाय शास्त्र का भलीप्रकार अभ्यासकरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेआत्मप्राप्तिवर्णनन्नामएकोनविंशतितमस्सर्गः १९॥

समाप्तमिदम् मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम्॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथश्रीयोगवाशिष्ठे

तृतीयउत्पत्तिप्रकरणप्रारम्भः ॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! ब्रह्म और ब्रह्मवेत्तामें "तुम" "इदं" "सः" इत्यादिक सर्व शब्दआत्मसत्ताके आश्रयसे स्फुरतेहैं। जैसे स्वप्नेमें सबअनुभव सत्तामें शब्द होतेहैं तैसेही यहभीजानो और जो उसमें यहविकल्पहोतेहैं कि, "जगत्क्याहै" "कैसे उत्पन्न हुआहै" और किसकाहै" इत्यादिक चोगचर्चाहैं। हे रामजी! यहसबजगत् ब्रह्मरूपहै यहां स्वप्नका दृष्टांत विचारलेनाचाहिये। इसकेपहिले मुमुक्षुप्रकरण मैंने तुमसेकहाहै, अब क्रमसे उत्पत्ति प्रकरणकहताहूं सोसुनिये—जोज्ञानवस्तु स्वभावहै। हेरामजी! जो पदार्थ उपजताहै वही बढ़ता, घटता, बन्ध, मोक्ष और नीच—ऊंच होताहै और जो उपजतानहो उसकाबढ़ना, घटना, बंध, मोक्ष और नीच, ऊंच होनाभीनहींहोता। हेरामजी! स्थावर—जङ्गम जो कुछ जगत् दीखताहै सोसब आकाशरूपहै। द्रष्टाका जो दृश्यके साथ संयोगहै इसीकानाम बन्धनहै। और उसीसंयोगके निवृत्तहोनेका नाम मोक्षहै। उस निवृत्तकाउपाय में कहताहूं। देहरूपी जगत् चिन्मात्ररूपहै और कुछ उपजा नहीं और जो उपजा भासताहै सो ऐसेहै जैसे सुषुप्तिमें स्वप्न। जैसे स्वप्ने में सुषुप्ति होतीहै तैसेही जगत्का प्रलय होताहै और जो प्रलयमें शेषरहताहै उसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त रखताहै। नित्य, सत्य, ब्रह्म, आत्मा, सच्चिदानन्द इत्यादिक जिसके नामरक्खेहैं वहसबका अपना आपरूपहै। चेतनतासे उसकानाम जीवहुआहै और शब्द अर्थोंका ग्रहणकरनेलगाहै। हे रामजी! चेतनमें जोस्पन्दताहुईहै सो संकल्प विकल्परूपी मनहोकर स्थितहुआहै। उसके संसरनेसे देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर और जङ्गमरूप जगत्हुआहै। जैसे सुषुप्तिसे स्वप्नहो तैसेही जगत्हुआहै। उसको कोई अविद्या; कोई जगत्; कोई माया; कोई सङ्कल्प और कोई दृश्यकहतेहैं; वास्तवमें सबब्रह्मस्वरूपहै—इतरकुछनहीं। जैसे स्वर्णसे भूषणबनताहै तो भूषण स्वर्णरूपहै; स्वर्णसे इतरभूषण कुछवस्तुनहींहै; तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछ भेदनहींहै। भेद तो तब हो जब जगत् उपजाहो; जो उपजाही नहीं तो भेद कैसे भासे और जो भेद

भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत्‌है—अर्थात् जैसे मृगतृष्णाकी नदीकेतरंग भासते हैं पर वहां सूर्य्यकी किरणेंही जलके समान भासती हैं; जलका नामभी नहीं; तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। चेतनके अणुअणु प्रति सृष्टि आभासरूपहै कुछउपजी नहीं। चित्सत्ता सर्व्वदा अपने आपमें स्थितहै फिरउसमें जन्म, मरण और बन्ध, मुक्त कैसे हो? जितनी कल्पना बन्धमुक्त आदिक भासती हैं सो वास्तविक कुछ नहीं हैं आत्माके अज्ञानसे भासतीहैं। हे रामजी! जगत् कोई नहीं उपजा; अपनी कल्पनाही जगत्‌रूप होकर भासती है और प्रमादसे सत होरही है निवृत्त होना कठिन है। अनियत और नियत शब्द जो कहेहैंसो भाव्यर्थहैं ऐसे वचनोंसे तो जगत् दूरनहीं होता। हे रामजी! अर्थयुक्त वचनों विना दृश्यभ्रम नहीं निवृत्त होता। जो तर्कों करके और तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करके जगत्‌के भ्रमको निवृत्तकिया चाहै वह मूर्खहै। इसप्रकारसे तो औरभी दृढ़होताहै। क्योंकि, जहां जावेगा वहांदेश, काल, और क्रियासहित नित पञ्चभौतिक सृष्टिही दृष्टि आवेगी और कुछ दृष्टि न आवेगा इससे इसका नाश न होगा और जो जगत्‌से उपरान्त होकर समाधि लगा के बैठेगा तबभी चिर कालमें उतरेगा और फिरभी जगत्‌का शब्द और अर्थ भास आवेगा। जो फिरभी अनर्थरूप संसार भासा तो समाधिका क्या सुखहुआ क्योंकि, जबतक समाधिमेंरहेगा तभीतकवह सुखरहेगा। निदान इनउपायोंसेजगत्‌निवृत्तनहीं होता। जैसे कमलके डोड़ेमें बीज होताहै और जबतक उस बीजका नाश नहीं होता तबतक फिर उत्पन्न होता रहता है और जैसे वृक्षके पात तोड़िये तौभी बीजकानाश नहीं होता तैसेही तप, दानादिकोंसे जगत् निवृत्त नहींहोता औरतभी तक अज्ञानरूपी बीजभी नष्ट नहीं होता। जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होगा तब जगत्‌रूपी वृक्षका अभाव होजावेगा। और उपायकरनामानों पत्तोंका तोड़नाहै। इनउपायोंसे अक्षयपद और अक्षयसमाधि नहीं प्राप्तहोती। हे रामजी! ऐसी समाधितो किसीको नहीं प्राप्त होती कि, शिलाके समान होजावे। मैं सबस्थानदेख रहाहूं कदाचित् ऐसेभी समाधीहो तौभी संसार सत्ता निवृत्त न होगी क्योंकि, अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं हुआ। समाधि ऐसीहै जैसे जाग्रतसे स्वप्न होताहै क्योंकि, अज्ञानरूपी वासनाके कारण सुषुप्तिसे फिर जाग्रत आतीहै; तैसेही अज्ञानरूपी वासनासे समाधिमें भी जागआता है क्योंकि उसको वासना खैंच लेआतीहै। हेरामजी! तप, समाधि आदिकोंसे संसार भ्रम निवृत्त नहींहोता। जैसे कांजीसे क्षुधा किसीकीनिवृत्त नहींहोती तैसेही तप और समाधिसे चित्तकी वृत्ति एकाग्र होतीहै परन्तु संसार निवृत्तनहीं होता। जबतक चित्त समाधिमें लगा रहताहै तबतक सुख होताहै और जब उच्चाट होताहै तब फिरनाना प्रकारकेशब्द और अर्थासंयुक्त संसार भासताहै। हे रामजी! अज्ञानसेजगत्‌भासता

है और विचार कियेसे निवृत्त होताहै । जैसे बालकको अपनी अज्ञानतासे परछाहीं में वैतालकी कल्पना होती है और ज्ञानसे निवृत्त होतीहै तैसेही यह जगत् अविचारसे भासताहै और विचारसे निवृत्त होताहै । हे रामजी ! वास्तवमें जगत् उपजा नहीं—असत्रूपहै । जो स्वरूपसे उपजा होता तो निवृत्त न होता परन्तु तो विचार से निवृत्त होताहै इससे जाना जाताहै कि, कुछनहींवना । जो वस्तुसत्यहोतीहै उसकी निवृत्ति नहीं होती और जो असत्है सो थिरनहीं रहती। हे रामजी ! सत्स्वरूप आत्माकाअभाव कदाचित् नहीं होता और असत्रूप जगत्स्थिर नहींहोता । जगत् आत्मामें आभासरूपहै आरम्भ और परिणामसे कुछउपजा नहीं । जहां चेतन नहीं होताहै वहांसृष्टिभी नहीं होती क्योंकि; आभासरूपहै । आत्मारूप आदर्शहै उसमें अनन्त सृष्टिप्रतिविम्वित होतीहै । और आदर्शमें प्रतिविम्वभी तवहोताहै जव दूसरा निकट होताहै पर आत्माके निकट दूसरा कोई नहीं और प्रतिविम्व होताहै क्योंकि, आभासरूपहै । एकही आत्मसत्ता चैत्यतासे द्वैतकी नाईं होकर भासती है पर कुछ वनानहीं । जैसेफूलमें सुगन्धहोतीहै तिलोंमें तेलहोताहै और अग्नि में उष्णताहोती और जैसे मनोराजकी सृष्टिहोतीहै; तैसेही आत्मामेंजगत्है । जैसेमनोराजसे मनोराज की सृष्टिभिन्ननहीं होती तैसेही यहजगत् आत्मासे भिन्ननहीं वना ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेवोधहेतुवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

वशिष्ठजी वोले; हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान जो श्रवणका भूषण और बोधका कारणहै उसकोसुनिये । आकाशज नामक एकव्राह्मण शुद्धचिदंशसे उत्पन्न हुये । वह धर्मनिष्ठ सदाआत्मामें स्थित रहतेथे, भलेप्रकार प्रजाकी पालनाकरते थे और चिरंजीवी थे । तव मृत्युविचार करनेलगी कि, मैं अविनाशीहूं और जो जीव उपजते हैं उनको मारतीहूं परन्तुइस व्राह्मणको मैं नहीं भोजनकरसक्ती । जैसेखड्ग की धार पत्थरपर चलायेसे कुण्ठित होजाती है तैसेही मेरी शक्ति इस व्राह्मणपर कुण्ठित होगई है । हे रामजी ! ऐसे विचारके मृत्यु व्राह्मणके भोजनकरनेके निमित्त उठी और जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मको नहीं त्यागकरते तैसेही मृत्युभी अपने कर्मोंको विचारकरचली । जवव्राह्मणके गृहमेंमृत्युने प्रवेशकिया तो जैसे प्रलयकालमें महातेजसंयुक्त अग्नि सवपदार्थोंको जलानेलगतीहै तैसेहीअग्निइसकेजलानेकोउड़ी और आगे दौड़ के जहां व्राह्मण वैठाथा अन्तःपुरमें जाकर पकड़नेलगी पर जैसे वड़ावलवान् पुरुषभी औरके संकल्प रूप पुरुषको नहीं पकड़सक्ता तैसेही मृत्युव्राह्मणको न पकड़सकी । तव उसने धर्मराजके गृहमें जाकरकहा; हे भगवन् ! जो कोई उपजाहै उसको मैं अवश्य भोजन करतीहूं परन्तु एकव्राह्मण जो आकाशसे उपजा है उसको मैं वशनहीं करसकी । यह क्या कारणहै ? यमवोले; हेमृत्यु ! तुम किसीको

नहीं मारसक्ती; जो कोई मरताहै वह अपनेकर्मोंसे मरता है। जो कोई कर्मोंकाकर्त्ताहै उसके मारनेको तुमभी समर्थहो पर जिसका कोई कर्म नहीं उसके मारनेको तुम समर्थ नहीं हो। इससे तुम जाकर उस ब्राह्मणके कर्म खोजो; जब कर्म पावोगी तब उसके मारनेको समर्थ होगी–अन्यथा समर्थ न होगी। हे रामजी! जब इसप्रकार यमने कहा तब कर्म खोजने के निमित्त मृत्युचली। कर्म वासनाका नाम है। वहां जाके ब्राह्मण के कर्मोंको ढूंढ़ने लगी और दशोंदिशामें ताल, समुद्र, वगीचे और द्वीपसे द्वीपांतर इत्यादिक सब स्थान देखते फिरी परन्तु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रतिमा कहीं न पाई। हे रामजी! मृत्यु वड़ी वलवन्त है परन्तु उस ब्राह्मणके कर्मोंको उसने न पाया तब फिर धर्मराजके पासगई–जो सम्पूर्ण संशयोंको नाश करनेवाले और ज्ञानस्वरूप हैं–और उनसे कहने लगी; हे संशयों के नाशकर्त्ता! इसब्राह्मणके कर्म मुझको कहीं नहीं दृष्टि आते मैंने वहुत प्रकारसे ढूंढ़ा। जो शरीरधारीहैं सो सब कर्म संयुक्तहैं पर इसकातो कर्म कोईभी नहीं है इसका क्या कारण है? यमबोले; हे मृत्यु इस ब्राह्मणकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशसे हुईहै जहां कोई कारण नथा। जो कारण बिनापदार्थमें भासताहै सो ईश्वररूपहै। हेमृत्यु! शुद्ध आकाशसे जो इसका होना हुआहै तो यहभी वहीरूपहै। यह ब्राह्मणभी शुद्ध चिदाकाश रूपहै और इसका चेतनही वपुहै। इसका कर्म कोईनहीं और न कोई क्रियाहै। अपने स्वरूपसे आपही इसका होनाहुआहै इसकारण इसकानाम स्वयम्भूहै और सदाअपने आपमेंस्थितहै। इसको जगत् कुछ नहीं भासता–सदा अद्वैतरूपहै। मृत्युबोली; हेभगवन्! जो यह आकाश स्वरूपहै तो साकाररूप क्यों दृष्टिआताहै? यमजी बोले; हेमृत्यु! यह सदा निराकार चैतन्यवपुहै और इसके साथ आकार और अहंभावभी नहींहै इससे इसका नाश कैसेहो। यहतो अहंत्वं जानताही नहीं और जगत्का निश्चयभी इसकोनहींहै। यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्रहै। जिसके मनमें पदार्थोंका सद्भाव होताहै उसका नाशभी होताहै और जिसको जगत् भासताही नहीं उसका नाशकैसेहो? हेमृत्यु! जो बड़ा कोई वलिष्ठभी हो और सैकड़ों जञ्जीरेंभी हों तौभी आकाशको बांध न सकेगा तैसेही ब्राह्मण आकाशरूपहै इसका नाश कैसेहो? इससे इसके नाश करनेका उद्यमत्याग कर देहधारियोंको जाकर मारो–यह तुमसे न मरेगा। हेरामजी! यह सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् हो अपने गृह लौटआई। रामजी बोले; हे भगवन्! यहतो हमारे बड़े पितामह ब्रह्मा की वार्त्ता तुमने कहीहै। वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! यह वार्त्ता तो मैंने ब्रह्माकी कहीहै परन्तु मृत्यु और यमके विवादनिमित्त यहकथा मैंने तुमको सुनाई है। इसप्रकार जब वहुतकाल व्यतीतहोकर कल्पका अन्तपात हुआ तब मृत्युसर्व भूतों को भोजनकर फिर ब्रह्माको भोजनकरने गई। जैसे किसीका कामहो और यदि

एकबार सिद्ध न भया तौ यहउसे छोड़नहीं देता फिर उद्यमकरताहै तैसेहीमृत्युभी ब्रह्मा के सम्मुखगई । तब धर्मराजने कहा ; हेमृत्यु ! यह ब्रह्माहै । यह आकाशरूपहै और आकाशही इसका शरीरहै । आकाश के पकड़नेको तुम कैसे समर्थ होगी ? यह तो पंचभूतके शरीरसेरहितहै । जैसे सङ्कल्पपुरुषहोताहै तो उसका आकाशही वपुहोता है तैसेही यह आकाशरूप आदि,अन्त,मध्य और अहंत्वंके उल्लेखसे रहित और अचेत चिन्मात्रहै इसके मारनेको तूकैसे समर्थहोगी ? यहजो इसका वपुभासताहै सो ऐसेहै जैसे शिल्पीके मनमेंथम्भकी पुतलीहोतीहै पर वह कुछहुईनहीं तैसेही स्वरूप से इतर इसका होनानहींहै यहतो ब्रह्मत्वरूपहै हमारे तुम्हारे मनमेंइसकी प्रतिमा हुई है यहतो निर्वपुहै । जो पुरुष देहवन्त होताहै उसको ग्रहणकरना सुगमहोता है और वन्ध्याकेपुत्रके ग्रहणमें श्रमहोताहै क्योंकि निर्वपुहै तैसे यहभी निर्वपुहै; इसके मारने की कल्पनाको त्याग देहधारियोंको जाकर मारो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणे प्रथमसृष्टिवर्णनन्नामद्वितीयस्सर्गः २ ॥

वशिष्ठजीबोले:हे रामजी ! शुद्धचिन्मात्र सत्ताऐसी सूक्ष्महै कि उसमें आकाशभी पर्वतकेसमान स्थूलहै । उस चित्तमें जोअहंअस्मि चैत्योन्मुखत्व हुआहै उससे अपने साथ देहकोदेखा । पर वह देहभी आकाशरूपहै । हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रमें चैत्यका उल्लेख किसीकारणसे नहींहुआ स्वतः स्वाभाविकही ऐसेउल्लेख आय फुराहै उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्माहै । उसब्रह्माको सदा ब्रह्महीका निश्चयहै । ब्रह्मा और ब्रह्ममें कुछ भेदनहींहै । जैसे समुद्र और तरङ्गमें;आकाश और शून्यतामें और फूल और गन्धमें कुछ भेदनहींहोता तैसेही ब्रह्मा और ब्रह्ममें भेदनहीं। जैसे जलद्रवताकेकारणतरङ्गरूप होकर भासताहै तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे ब्रह्माहोकर भासती है। ब्रह्मा दूसरीवस्तु कुछनहीं है सदा चैतन्यआकाशहै और पृथ्वी आदिक तत्त्वोंसे रहित है। हेरामजी ! न कोई इसका कारणहै और न कोई कर्महै । रामजीबोले ;हे भगवन् ! आपने कहा कि, ब्रह्माजीका वपु पृथ्वी आदितत्त्वोंसे रहितहै और सङ्कल्पमात्रहै तो इसकाकारण स्मृतिका संस्कार क्योंनहुआ । जैसे हमको और और जीवोंकी स्मृतिहै तैसेही ब्रह्मा कोभी होनी चाहिये ? वशिष्ठजी बोले: हेरामजी ! स्मृति संस्कार उसीका कारणहोता है जो आगेभी देहवान् हो । जो पदार्थ आगेदेखा होता है उसकी स्मृति संस्कारसे होतीहै और जो देखानहीं होता उसकी स्मृति संस्कारसेभी नहीं होती । ब्रह्माजीअद्वै-त,अज और आदि,मध्य, अन्तसे रहितहैं; इनकी स्मृति कारण कैसेहो ? वहतो शुद्ध बोधरूपहै और आत्मतत्त्व ब्रह्मारूपहोकर स्थितहुयेहैं । अपने आपसे जो इसकाहो-नाहुआहै इसीसे इसकानाम स्वयम्भू है । शुद्ध बोधमें चैत्य उल्लेखहुआ है—अर्थात चित्चैतन्य स्वरूपकानामहै । अपना चित्संवित्ही कारणहै और दूसरा कोई कारण

नहीं—सदा निराकार और संकल्परूप इसका शरीरहै और पृथ्वी आदिक भूतोंसेशुद्ध अन्तवाहक वपुहै। रामजीबोले;हे मुनीश्वर! जितनेजीव हैं तिनके दो दो शरीर हैं—एक अन्तवाहक और दूसरा आधिभौतिक। ब्रह्माका एकही अन्तवाहकशरीरकैसेहै, यह वार्त्ता स्पष्टकर कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो सकारणरूप जीवहैंउनके दो दो शरीरहैं पर ब्रह्माजी अकारणहैं इसकारण उनका एक अन्तवाहकही शरीरहै। हे रामजी! सुनिये; जीवोंका कारण ब्रह्माहैं इसकारण यहजीव दोनों देहोंको धरते हैं और ब्रह्माजीका कारण कोईनहीं यह अपने आपसेही उपजेहैं—इनकानाम स्वयम्भूहै। आदि जो इसका प्रादुर्भाव हुआहै सो अन्तवाहक शरीरहै। इनको अपने स्वरूपका विस्मरण नहींहुआ सदा अपने वास्तवस्वरूप में स्थितहैं इससे अन्तवाहक हैं और दृश्यको अपना संकल्पमात्र जानतेहैं। जिनको दृश्यमें दृढ़ प्रतीतहुईहै उनको अधिभूत कहतेहैं। जैसे जड़तासे जलकी वरफ होतीहै तैसेही दृश्यकीदृढ़तासे आधिभौतिकहोतेहैं।हे रामजी! जितना जगत् तुमको दृष्टिआताहै सोसब आकाशरूपहै,किसी पृथ्वी आदिक भूतोंसे नहींहुआ केवलभ्रमसे आधिभौतिक भासतेहैं। जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है किसीकारणसे नहींउपजता और न किसीपृथ्वीआदिक तत्त्वों से उपजता है केवलआकाशरूप है और निद्रादोषसे आधिभौतिक होकर भासता है; तैसेही यह जाग्रत जगत्भी अज्ञानसे आधिभौतिकआकाशभासताहै। जैसे अज्ञान से स्वप्नअर्थाकार भासताहै तैसेही जगत् अज्ञानसे अर्थाकार भासताहै। हेरामजी! यहसम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्रहै औरकुछ वनानहीं। जैसेमनोराजके पर्व्वत आकाशरूप होतेहैं; तैसेही जगत्भी आकाशरूपहै। वास्तवमें कुछ वनानहीं सब पुरुष के संकल्प हैं और मनसे उपजे हैं। जैसे वीजसे देशकालके संयोगसे अंकुर निकलताहै; तैसेही सब दृश्य मनसे उपजताहै। वह मनरूपी ब्रह्माहै और ब्रह्मादि मनरूप हैं। उनके संकल्पमें जो संपूर्ण जगत् स्थित है वह सबआकाशरूप है-आधिभौतिक कोईनहीं। हे रामजी! आधिभौतिक जो आत्मामें भासताहै सो भ्रांति मात्रहै। जैसे वालकको परछाहीं में वैताल भासताहै; तैसेही अज्ञानीको जो आधिभौतिक भासतेहैं सो भ्रांतिमात्रहै - वास्तव कुछ नहीं है। हे रामजी! जितने जीव हैं वे सब अन्तवाहक हैं परन्तु अज्ञानीको अन्तवाहकता निवृत्त होकर आधिभौतिकता दृढ़होगई है। जो ज्ञानवान् पुरुषहैं सो अन्तवाहकरूपहीहैं। हे रामजी! जिन पुरुषों को प्रमाद नहीं हुआ व सदाआत्मामें स्थित औरअन्तवाहकरूपहैं औरसबजगत् आकाशरूपहै। जैसेसंकल्प पुरुष,गन्धर्व्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं तैसेही यह जगत् है। जैसे शिल्पी कल्पताहै कि, इस थम्भमें इतनी पुतलियां हैं सो पुतलियां उपजी नहीं थम्भा ज्योंका त्यों स्थितहै पुतलीका सद्भाव केवल शिल्पीके मनमें होताहै; तैसेही सब विश्वमनमें स्थितहै उसका

स्वरूप कुछ नहीं बना । जैसे तरङ्गही जलरूप और जलही तरङ्गरूपहै तैसेही दृश्य भी मनरूपहै और मनही दृश्यरूपहै । हे रामजी ! जबतक मनका सद्भावहै तबतक दृश्यहै - दृश्यका बीजमनहै जैसे कमलके डोड़ेका सद्भाव उसके बीजमें होताहै और उससे कमलके डोड़ेकी उत्पत्ति होतीहै तैसेही जगत्का बीज मनहै - सब जगत् मनसे उत्पन्न होताहै । हे रामजी ! जब तुमको स्वप्नआताहै तब तुम्हाराही चित्त दृश्यको चेतताजाताहै और तो कोई कारणनहींहोता तैसेही यह जगत्भी जानना।यह तुम्हारे अनुभवकी वार्ता कही है क्योंकि ; यह तुमको नित अनुभव होताहै । हे रामजी ! मनहीं जगत्का कारणहै और कोईनहीं । जब मन उपशम होगा तब दृश्यभ्रम मिट जावेगा । जब तक मन उपशम नहीं होता तब तक दृश्य भ्रमभी निवृत्त नहीं होता और जब तक दृश्य निवृत्त नहीं होता तब तक शुद्धबोध नहीं होता एवम् जब तक शुद्धबोध नहीं होता तब तक आत्मानन्दभी नहीं होता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार मुनि शार्दूल वशिष्ठजी कहकरतूष्णी हुये और सर्वश्रोता वशिष्ठजीके वचनोंको सुनके और उनके अर्थमें स्थितहो इन्द्रियों की चपलता को त्याग वृत्तिको स्थित करते भये तरङ्गोंके वेग स्थिर होगये; पिञ्जरों में जो तोते थे सोभी सुनकर तूष्णी होगये ; ललना जो चपलथीं सोभी उस कालमें अपनी चपलता को त्याग करती भई और वनके पशु पक्षी जो निकट थे सो भी सुनकर तूष्णी हुये । निदान मध्याह्नका समयहुआ तब राजाके बड़े भृत्योंनेकहा; हेराजन् ! अब स्नान सन्ध्याका समयहुआ उठकर स्नान सन्ध्या कीजिये । तब वशिष्ठजीबोले; हे राजन् ! अब जो कुछ कहनाथा सोहम कहचुके, कल फिर कुछ कहेंगे । राजाने कहा बहुतअच्छा और उठकर अर्घ्य पाद्य नैवेद्य से वशिष्ठजी का पूजन किया और और जो ब्रह्मर्षिथे उनकीभी यथायोग्य पूजाकी । तब वशिष्ठ जी उठ खड़े हुये और परस्पर नमस्कार कर अपने २ स्थानों को चले । आकाशचारी आकाश को, पृथ्वीपर रहनेवाले ब्रह्मर्षि और राजर्षि पृथ्वीपर, पातालवासी पाताल को और सूर्य्य भगवान् दिन रात्रिकी कल्पनाको त्यागकर स्थिरहो रहे और मन्दमन्द पवन सुगन्ध सहित चलनेलगी मानो पवन भी कृतार्थ होने आयाहै । इतनेमें सूर्य्य अस्तहोकर और ठौरमें प्रकाशनेलगे क्योंकि; सन्तजन सबठौरमें प्रकाशतेहैं । इतने में रात्रिहुईतो तारागण प्रकट होगये और अमृतकी किरणों को धारणकिये चन्द्रमा उदयहुआ । उससमय अन्धकारका अभाव होगया और राजा का द्वारभी चन्द्रमा की किरणोंसे शीतल होगया—मानों वशिष्ठजीके वचनों को सुनकर इनकी तप्तता मिटगई । निदान सब श्रोताओं ने विचार पूर्वक रात्रिको व्यतीत किया; जब सूर्य्य

की किरण निकली तो अन्धकार नष्ट होगया—जैसे सन्तोंके वचनोंसे अज्ञानी के हृदयका तम नष्ट होताहै— और सब जगत्की क्रिया प्रकट हो आई तब खेचर, भूचर और पाताल के वासी सबश्रोता स्नान सन्ध्याकर अपने अपने स्थानोंमें आये और परस्पर नमस्कार कर पूर्वके प्रसङ्गको उठाकर रामजी सहित बोले; हे भगवन्! ऐसे मनका रूपक्याहै जिससे कि, संसाररूपी दुःखों कीमञ्जरी बढ़तीहै? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इसमनकारूप कुछ देखनेमें नहीं आता। यह मन नाममात्र है। वास्तवमें इसकारूप कुछनहींहै और आकाश की नाईं शून्यहै। हे रामजी! मन आत्मा में कुछ नहीं उपजा। जैसे सूर्य्य में तेज; वायु में स्पन्द; जलमें तरङ्ग; सुवर्ण में भूषण; मरीचिकाजल है और आकाश में दूसरा चन्द्रमा है तैसेही मनभी आत्मामें कुछ वास्तव नहीं है। हे रामजी! यह आश्चर्य्य है कि, वास्तवमें कुछ उपजा नहीं पर आकाशकी नाईं सब घटोंमें वर्त्तता है और सम्पूर्ण जगत् मनसे भासताहै। असतरूपी जगत् जिससे भासताहै उसीका नाम मनहै। हे रामजी! आत्मा शुद्ध और अद्वैत है; द्वैतरूप जगत् जिसमें भासताहै उसका नाम मन है और सङ्कल्प विकल्प जो फुरताहै वह मनका रूपहै। जहां२ संकल्प फुरता है वहां वहां मनहै। जैसे जहां जहां तरङ्ग फुरते हैं तहां तहां जलहै तैसेही जहां जहां सङ्कल्प फुरता है वहां वहां मन है मनके औरभी नाम हैं-स्मृति, अविद्या, मलीनता और तम ये सब इसीके नाम ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं। हे रामजी! जितना जगत् जाल भासता है सो सब मन से उत्पन्न हुआ है और सब दृश्य मनरूपहै क्योंकि; मनका रचाहुआ है वास्तवमें कुछ नहीं है। हे रामजी! मनरूपी देहका नाम अन्तवाहक शरीर है। वह संकल्प रूप सब जीवोंका आदि वपुहै। उस सङ्कल्पमें जो दृढ़ आभास हुआ है उससे आधिभौतिक भासनेलगा है और आदिस्वरूपका प्रमाद हुआ है। हे रामजी! यह जगत् सब सङ्कल्प रूपहै और स्वरूप के प्रमादसे पिण्डाकार भासताहै। जैसे स्वप्न देह का आकार आकाश रूपहै उसमें पृथ्वी आदितत्त्वोंका अभाव होताहै परन्तु अज्ञानसे आधिभौतिकता भासती है सो मनहीं का संसरनाहै तैसेही यह जगत्है; मनकेफुरनेसे भासता है। हे रामजी! जहां मनहै वहां दृश्यहै औरजहां दृश्यहै वहांमनहै। जबमन नष्टहो तब दृश्य भीनष्टहो। शुद्ध बोधमात्रमें जो दृश्यभासताहै सोई मनहै। जब तक दृश्यभासताहै तबतक मुक्त न होगा; जब दृश्य भ्रमनष्ट होगा तब शुद्धबोधप्राप्तहोगा हे रामजी! "द्रष्टा, दर्शन, दृश्य" यह त्रिपुटी मनसे भासती है। जैसे स्वप्नमें त्रिपुटी भासतीहै और जब जाग उठा तब त्रिपुटीकाअभाव होजाताहै और आपही भासता है तैसेही आत्मसत्तामें जागेहुये को अपना आप अद्वैतही भासता है। जबतक शुद्ध बोध नहीं प्राप्त हुआ तबतक दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता। वह बाह्य देखताहै तोभी

सृष्टिही दृष्टि आतीहै; अन्तर देखेगा तौभी सृष्टिही दृष्टिआतीहै और उसको सत्यजान कर राग द्वेष कल्पना उठतीहै । जब मन आत्मपदको प्राप्त होताहै तब दृश्य भ्रम निवृत्त होजाताहै । जैसे जब वायुकी स्पन्दता मिटी तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिट जाताहै । इससे मनरूपी दृश्यही बन्धनका कारणहै । रामजी बोले; हे भगवन्! यह दृश्यरूपी विशूचिका रोगहै उसकी निवृत्ति कैसेहो सो कृपा करके कहो? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! संसाररूपी वैताल जिसको लगाहै उसकी निवृत्ति अकस्मात् होतीहै । प्रथमतो विचार करके जगत्का स्वरूप जानो; उसके अनन्तर जबआत्म-पदमें विश्रान्त होंगे तब तुम सर्व आत्मा होगे । हे रामजी ! दृश्य भ्रम जो तुम को भासता है उसको मैं उत्तर ग्रन्थसे निवृत्त करूंगा; इसमें सन्देह नहीं। सुनिये, यह दृश्य मनसे उपजाहै और इसका सद्भाव मनमेंहीहुआहै। जैसे कमलके डोडे का उप-जना कमलके डोडेके बीज में है तैसेही संसार का उपजना स्मृति से होता है। वह स्मृति अनुभव आकाशमेंहोती है । हे रामजी ! स्मृति उसपदार्थको होती है जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होताहै । जितना कुछ जगत् तुमको भासताहै सो संकल्प रूपहै—कोई पदार्थ सत्रूपनहीं । जो वस्तु असत्रूप है उसकी स्थिरता नहीं होती और जो वस्तु सत्रूप है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता। जितना कुछ प्रपंच भासताहै सो असत्रूपहै मनके चिन्तनसे उत्पन्नहुआहै । जब मन फुरनेसे रहितहो तब जगत् भ्रम निवृत्त होताहै । हे रामजी ! पृथ्वी, पर्वत आदिक जगत् असत्रूप न होते तो मुक्त भी कोई न होता। मुक्त तो दृश्य भ्रमसे होताहै; जो दृश्य भ्रम नष्ट न होता तो मुक्त भी कोई न होता; पर ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुयेहैं इसकारण कहताहूं कि, दृश्य असत्यरूप मनके संकल्पमें स्थितहै । हे रामजी! एक मनको स्थिरकरदेखो फिर अहं त्वं आदिक जगत् तुमको कुछ न भासेगा। चित्त-रूपी आदर्शमें संकल्परूपी दृश्य मलीनताहै । जब मलीनता दूर होगी तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। हे रामजी ! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदयहुआहै। जैसे गन्धर्व्व-नगर और स्वप्नपुर तैसेही यह जगत् भी है। जैसे शुद्धआदर्शमें पर्वतका प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही चित्तरूपी आदर्श में यह दृश्य प्रतिबिम्ब है। मुकुर में जो पर्व्वतका प्रतिबिम्बहोताहै सो आकाशरूपहै उसमें कुछ पर्वतका सद्भावनहीं तैसेही आत्मा में जगत्का सद्भाव नहीं। जैसे बालकको भ्रमसे परछाहींमें पिशाच बुद्धि होतीहै तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है—वास्तवमें जगत् कुछनहीं है। हे रामजी ! न कुछ मन उपजाहै और न कुछ जगत् उपजाहै—दोनों असत्रूप हैं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै । जैसे आकाश अपनी शून्यता और समुद्र जलसे पूर्ण है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित और पूर्ण है और

उसमें जगत्का अत्यन्त अभावहै। इतनासुन रामजीनेपूछा; हे भगवन्! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं जैसे कहिये कि, वन्ध्याके पुत्रने पर्वत चूर्णकिया; शशेके शृङ्ग अतिसुन्दर हैं, रेतमें तेल निकलताहै और पत्थरकी शिला नृत्य करती वा मूत्तिका मेघ गरजता और पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं। तुम कहतेहो कि, दृश्य कुछ उपजाही नहीं और हैही नहीं और मुझको ये, जरा मृत्यु आदिक विकारों सहित प्रत्यक्ष भासते हैं इससे मेरे मनमें तुम्हारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थितहोता।कदाचित् तुम्हारे निश्चयमें इसीप्रकार है तो अपना निश्चय मुझको भी बतलाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! हमारे वचन यथार्थ हैं। हमने असत् कदाचित् नहीं कहा! तुम विचार के देखो यह जगत आडम्बर विना कारण है। जब महाप्रलय होता है तब शुद्धचैतन्य सम्वित रहजाता है और उसमें कार्य-कारण कोई कल्पना नहीं रहती हैं-उसमें फिर यह जगतकारण विना फुरताहै। जैसे सुषुप्तिमें स्वप्न सृष्टि फुरआती है और जैसे स्वप्न सृष्टि अकारणहै तैसेही यह सृष्टि भी अकारणहै। हे रामजी! जिसका समवाय कारण और निमित्त कारण न हो और प्रत्यक्षभासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिरूपहै। जैसे तुमको नित्य स्वप्नका अनुभव होताहै और उसमें नाना प्रकारके पदार्थ कार्य कारण सहित भासते हैं परकारण विनाहैं तैसेही यहजगत भीकारणविनाहै। इससे आदिकारण विनाही जगत उपजाहै। जैसे गन्धर्वनगर, सङ्कल्पपुर और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही यह जगत भासताहै-कोई पदार्थ सत नहीं। जैसे स्वप्नमें राजपति और नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं सो किसी कारणसे तो नहीं उपजे केवल आकाशरूप मनके संसरनेसे सब भासते हैं; तैसेही यह जगत चित्तके संसरनेसे भासताहै। जैसे स्वप्नमें और स्वप्न भासता है और फिर उसमें और स्वप्न भासताहै तैसे यह जगत भासताहै और तैसेही जाग्रत जगतजाल मनकी कल्पनासे भासताहै। हे रामजी! चलना, दौड़ना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिकविषय औरराग द्वेषादिक विकार सब मनके फुरनेसे होते हैं-आत्मा में कोई विकार नहीं जब मन उपशम होता है तब सब कल्पना निवृत्त होजातीहैं इससे संसार का कारण मनहीहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनंनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

रामजी बोले; हे भगवन्! मनका रूप क्या है? वहतो मायामयहै इसका होना जिससे है सो कौन पदहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत्का अभाव होजाताहै और पीछे जो शेष रहताहै सो सत्रूप है। आदि सर्गका भी सत्रूप होताहै उसकानाश कदाचित् नहीं होता वह सदा प्रकाशरूप, परमदेव, शुद्ध, परमात्मतत्त्व, अज, अविनाशी और अद्वैतहै। उसको वाणी नहीं कहसक्ती। वहपद जीवन्मुक्त पाताहै। हे रामजी! आत्म आदिक शब्द उद्देश

में कल्पित हैं; स्वाभाविक कोई शब्द नहीं प्रवर्त्तता । शिष्यको बतानेके लिये शास्त्रकारोंने देवके बहुत नाम कल्पे हैं । मुख्य तो देवको " पुरुष " कहते हैं । वेदांतवादी उसी को "ब्रह्म" कहते और विज्ञानवादी उसीको विज्ञान से "बोध" कहते। कोई कहते हैं कि "निर्मलरूप" है,शून्यवादी कहतेहैं "शून्य" ही शेप रहताहै;कोई कहते हैं "प्रकाशरूप" हैं जिसके प्रकाशसे सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको "वक्ता" कहते कि, आदिवेदका " वक्ता " वही है और स्मृतिकर्त्ता कहते कि, सबकुछ वह स्मृतिसे करनेवालाहै और सब कुछ उसकी इच्छासे हुआहै इससे सबकाकर्त्ता सर्व " आत्मा " है । हे रामजी ! इसी तरह अनेक नाम शास्त्रकारोंने कहे हैं ।इनसबका अधिष्ठान परमदेव है और अस्तिआदि षट्विकारोंसे रहित शुद्ध, चैतन्य और सूर्यवत् प्रकाशरूप है । वही देव सब जगत्में पूर्णहोरहाहै । हे रामजी ! आत्मारूपी सूर्य है और ब्रह्मा,विष्णु, रुद्रादिक उसकी किरणें हैं । ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन होते हैं और सब पदार्थ उस आत्माके प्रकाशसे प्रकाशते हैं । जैसे दीपक अपने आपसे प्रकाशताहै और औरोंको भी प्रकाश देताहै तैसेही आत्मा अपने प्रकाशसे प्रकाशताहै और सबको सत्तादेनेवाला है । हे रामजी ! वृक्ष आत्मसत्तासे उपजताहै, आकाशमें शून्यता उसीकीकीहै और अग्निमेंउष्णता, जलमेंद्रवता और पवनमें स्पर्श उसीकीकी है । निदान सब पदार्थोंकी सत्तावहीहै । मोरोंकेपङ्खोंमें रङ्ग आत्मसत्तासेही हुआहै; पत्थरमेंमूंगा और पत्थरोंमें जड़ताउसीकीकी है। और स्थावर-जङ्गम जगत् का अधिष्टानरूप वहीब्रह्म है । हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे ब्रह्मांडरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होती है । वह चन्द्रमाशीतलता और अमृतसे पूर्णहै । ब्रह्मरूपी मेघहै उससे जीवरूपी बूंदियां टपकती हैं । जैसे बिजलीका प्रकाश होता है और छिपजाताहै तैसेही जगत् प्रकटहोताहै और छिपजाताहै। सबका अधिष्टान आत्मसत्ताहै और वह नित्य, शुद्धबुद्ध और परमानन्दरूप है । सब सत्य असत्यरूप पदार्थ उसी आत्मसत्ता से होते हैं । हे रामजी ! उसदेवकीसत्तासे जड़पुर्यष्टक चैतन्यहोकर चेष्टाकरती है । जैसे चुम्बक पत्थरकी सत्तासे लोहा चेष्टा करता है तैसेही चैतन्यरूपी चुम्बकमणिसे देहचेष्टा करती है । वह आत्मानित्य चैतन्य और सब का कर्त्ता है; उसका कर्त्ता और कोई नहीं वह सबसे अभेदरूप समानसत्ता है और उदय अस्तसे रहित है । हे रामजी ! जो पुरुष उसदेवको साक्षात् करताहै उसकी सब क्रिया नष्ट होजातीहैं और चिद्जड़ ग्रन्थि छिदजाती हैं और केवल बोधरूप होते हैं । जब स्वभावसत्तामें मनस्थित होताहै तब मृत्युको सम्मुख देखकरभी विह्वल नहीं होता। इतना कहकर फिरवशिष्ठजी बोले , हे रामजी ! वहदेव किसीस्थानमेंनहीं रहता और कहीं दूर भी नहीं है वह तो अपने आपहीमें स्थितहै।हे रामजी ! घटघट

में वह देवहै पर अज्ञानी को दूरभासता है । स्नान, दान, तप आदि से वह प्राप्त नहीं होता केवल ज्ञानसेही प्राप्त होताहै—कर्त्तव्यसे प्राप्तनहींहोता। जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है वह कर्त्तव्यतासे निवृत्त नहीं होती केवल ज्ञातव्यसेही निवृत्त होती है तैसेही जगत्की निवृत्ति आत्मज्ञानसेही होतीहै। हे रामजी! कर्त्तव्यभी वही है जो प्राप्तहोनेका ज्ञातव्यरूपहै— अर्थात् यहकि जिससे ज्ञातव्यस्वरूपकी प्राप्ति होती है। रामजीबोले; हे भगवन्! जिसदेवके जानने से पुरुष फिर जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता वहकहांरहताहै और किसतप और क्लेशसे उसकी प्राप्तिहोती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! किसी तपसे उस देवकी प्राप्ति नहीं होती केवल अपनेपुरुष प्रयत्न सेही उसकी प्राप्तिहोती है। जितना कुछ राग,द्वेष, काम,क्रोध, मत्सर और अभिमान सहिततप है वह निष्फल दंभ है। इनसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! इसकी परमऔषधि सत्सङ्ग और सत्शास्त्रोंका विचारहै जिससे दृश्यरूपी विशूचिका निवृत्त होती है। प्रथमइसका आचारभी शास्त्र और लौकिक अविरुद्धहो अर्थात् शास्त्रोंके अनुसारहो और भोगरूपी गढ़ेमें न गिरे। दूसरे सन्तोष संयुक्त यथालाभ सन्तुष्टहोकर अनिच्छित भोगोंको प्राप्तहो और जो शास्त्र अविरुद्धहो उसको ग्रहण करे और विरुद्धहो उसकात्यागकरे—इनसे दीननहो। ऐसे उदार आत्मको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै। हे रामजी! आत्मपद पानेका कारण सत्सङ्ग और सत्-शास्त्रहै। सन्त वहहै जिसको सबलोग भलासाधुकहतेहैं और सत्शास्त्र वहीहै जिस में ब्रह्म निरूपणहो। जब ऐसे सन्तोंका सङ्ग और सत्शास्त्रोंका विचारहो तो शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोतीहै। जबमनुष्य श्रुति विचारद्वारा अपने परमस्वभावमें स्थित होताहै तब ब्रह्मा विष्णु और रुद्रभी उसपर दयाचाहतेहैं और कहतेहैं कि,यहपुरुष परब्रह्महुआहै। हे रामजी! सन्तोंका सङ्ग और सत्शास्त्रोंका विचार निर्मल करता और दृश्यरूप मैलको नाशकरताहै। जैसे निर्मलीरेतसे जलका मैल दूरहोताहै तैसेही यह पुरुष निर्मल और चैतन्य होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रयत्नोपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः॥ ५॥

इतनासुन, रामजीने पूछा; हे भगवन्! वहदेव जोतुमनेकहा कि, जिसके जाननेसे संसारबन्धन से मुक्तहोता है कहांस्थितहै और किसप्रकार मनुष्य उसको पाताहै? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! वहदेव दूरनहीं शरीरमेंही स्थितहै। नित्य, चिन्मात्र सब में पूर्ण और सर्वविश्वसे रहितहै। चन्द्रमाको मस्तकमें धरनेवाले सदाशिव, ब्रह्माजी और विष्णु और इन्द्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं। बल्कि सब जगत् चिन्मात्ररूप है रामजीबोले, हे भगवन्! यहतोअज्ञान बालक भी कहतेहैं कि, आत्मा चिन्मात्र है; तुम्हारे उपदेशसे क्यासिद्धहुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस विश्वके चिन्मात्र

जाननेसे तुम संसारसमुद्रको नहीं लंघसक्ते इस चैतन्यका नाम संसारहै । यहचैतन्य जीवपशुहै; संसार नामरूपहै इससे जरामरणरूप तरङ्ग उत्पन्नहोतेहैं क्योंकि,हेयरूप दुःखपाताहै । हे रामजी ! चैतन्य होकर जोचैतन्यताहै सो अनर्थका कारण है और चैतन्यसे रहित जो चैतन्यहै वह परमात्माहै । उस परमात्माको जानकर मुक्तिहोती है तब चैतन्यता मिटिजाती है । हे रामजी ! परमात्माके जानने से हृदयकी चिद्जड़ ग्रन्थि टूट पड़ती है अर्थात् अहंमम नष्टहोजाताहै, सब संशयछेदे जाते हैं,और सब कर्म क्षीणहोजातेहैं । रामजीने पूछा; हेभगवन् ! चित्त चैतन्योन्मुख होताहै तब आगे दृश्यस्पष्टभासताहै; इसके होते चित्तके रोकने को क्योंकर समर्थ होताहै और दृश्य किसप्रकार निवृत्तहोताहै ? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! दृश्यसंयोगी चेतन जीवहै,वह जन्मरूपी जङ्गलमें भटकता२ थकजाताहै।इस चेतनको जोचैतन अर्थात् चिदाभास जीव प्रकाशीकहतेहैं सो पण्डितभी मूर्ख हैं।यहतो संसारीजीवहै इसके जानेसे कैसे मुक्तिहो।मुक्ति परमात्माकेजाननेसे होतीहै और सर्वदुःख नाशहोतेहैं । जैसे विशूचिका रोगउत्तम औषधिसेही निवृत्त होताहै तैसेही परमात्माके जाननेसे मुक्तहोताहै। रामजी नेयहपूछा,हेभगवन् ? परमात्माका क्यारूपहै कि,जिसके जाननेसे जीव मोहरूपी समुद्र को तरताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! देशसे देशान्तरको दूर जो संवित निमेषमें जाताहै उसकेमध्यजो ज्ञानसंवितहै सो परमात्माकारूपहै और जहां संसारका अत्यन्त अभाव होताहै उसके पीछे जो बोधमात्रशेषरहता वह परमात्माकारूप है। हेरामजी ! ऐसा आकाशजहांद्रष्टा दर्शनदृश्यका अभावहोताहै वह भी परमात्माकारूप है और जो अशून्यहै और शून्यकीनाईं स्थितहै और जिसमें सृष्टिकासमूह शून्यहै ऐसी अद्वैत सत्ता परमात्माकारूपहै हे रामजी ? महाचेतनरूप बड़ेपर्वतकी नाईंजो स्थितहै और अजड़है पर जड़के समान स्थितहै वह परमात्माकारूपहै और जो सबकेभीतर बाहर स्थितहै और सबको प्रकाशताहै सो परमात्माकारूपहै। हेरामजी !जैसे सूर्य प्रकाशरूप और आकाश शून्यरूप है तैसेही यह जगत् आत्मरूपहै। रामजीने पूछा, हेभगवन्! जोसब परमात्माहीहै तोक्यों नहीं भासता और जो सबजगत् भासताहै इसका निर्वाण कैसेहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यहजगत् भ्रमसे उत्पन्नहुआहै—वास्तवमें कुछनहीं है।जैसे आकाशमें नीलता भासतीहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै । जब जगत्का अत्यन्तअभावजानोगे तब परमात्माका साक्षात्कारहोगा और किसीउपायसे न होगा। जब दृश्यका अत्यन्त अभावकरोगे तब दृश्य उसीप्रकार स्थितरहेगा पर तुमको परमार्थ सत्ताही भासेगी। हे रामजी ! चित्तरूपी आदर्श दृश्यके प्रतिबिम्ब बिना कदाचित् नहीं रहता।जबतक दृश्यका अत्यन्तअभावनहीं होता तब तक परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता इतना सुनकर रामजीने फिर पूछाकि,हेभगवन् !यहदृश्यजाल आडम्बरमनमें कैसे

स्थितहुआहै? जैसे सरसोंके दानोंमें सुमेरुका आना आश्चर्य है तैसेही जगत्का मनमें आनाभी आश्चर्यहै वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! एकदिन तुम वेदधर्मकी प्रवृत्ति सहित सकाम यज्ञ योगादिक त्रिगुणसेरहितहोकर स्थितहो और सत्सङ्गति और सत्शास्त्र परायणहो तबमें एकही क्षणमें दृश्यरूपी मैलदूर करूंगा। जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेसे जलका अभाव होजाताहै तैसेही तुम्हारे भ्रमका अभाव होजावेगा।जबदृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टाभी शान्तहोवेगा और जब दोनोंका अभावहुआ तब पीछेशुद्ध आत्मसत्ताही भासेगी।हे रामजी! जबतक द्रष्टाहै तबतक दृश्यहै और जबतक दृश्य है तबतक द्रष्टाहै जैसे एककी अपेक्षासे दो होतेहैं–दोहैं तोएकहै और एकहै तब दोभी हैं–एकनहो तब दोकहांसेहों–तैसेही एकके अभावहुये दोनोंका अभाव होताहै। द्रष्टा की अपेक्षासेही दृश्यकी अपेक्षा करके द्रष्टाहै। एकके अभाव से दोनोंका अभाव होजाताहै। हेरामजी! अहन्तासे आदिलेकर जोदृश्यहै सो सबदूर करूंगा। हेरामजी! अनात्मासे आदिलेके जो दृश्यहै वहीमैलहै। इससे रहित होकर चित्तरूपीदर्पण निर्मलहोगा। जोपदार्थ असत्है उसका कदाचित् सत् नहीं होता और जोपदार्थसत्है सोअसत् नहींहोगा। जो वास्तवसत् नहो उसकामार्ज्जन करना क्याबातहै;हेरामजी! यह जगत् आदिसे उत्पन्न नहीं हुआ। जोकुछ दृश्यभासताहै वहभ्रान्तिमात्र है।सर्व निर्मल ब्रह्मचैतन्य है। जैसे सुवर्णसे भूषण होता है तो वह सुवर्ण भूषणसे भिन्ननहीं तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछभेदनहीं।हे रामजी! दृश्यरूपी मलके मार्जन के लिये में बहुत प्रकारकी युक्ति तुमसे विस्तारपूर्वक कहूंगा उससे तुमको अद्वैत सत्ताका भासहोगा। यहजगत् जो तुमको भासताहै वह किसीकेद्वारा नहींउपजा। जैसे मरुथलकी नदीभासती है और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही यहजगत्बिना कारणभासता है। जैसे मरुथलमें जलनहीं; जैसे वन्ध्याका पुत्रनहीं और जैसे आकाश में वृक्षनहीं तैसेही यह जगत्है। जो कुछ देखतेहो वह निरामयब्रह्महै। यह वाक्य तुमको केवल वाणीमात्र नहींकहे किन्तु युक्तिपूर्वक कहेहैं। हे रामजी! गुरूकी कही युक्तिको जे मूर्खतासे त्यागकरतेहैं उनको सिद्धांत नहीं प्राप्तहोता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदृश्यअसत्यप्रतिपादनंनामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

इतनासुन रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर! वहयुक्ति कौनहै और कैसेप्राप्त होतीहै जिसके धारणाकियेसे पुरुष आत्मपदको प्राप्तहोताहै? वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! मिथ्या ज्ञानसे जो विशूचिकारूपी जगत् बहुत कालका दृढ़ होरहाहै वह विचाररूपी मंत्रसे शान्तहोता है। हे रामजी! बोधकी सिद्धताके लिये में तुमसे एकआख्यानकहताहूं उसको सुनकेतुम मुक्तात्माहोगे और जो अर्द्धप्रबुद्ध होकर तुम उठजावोगे तब तिर्यगादिक धर्मको प्राप्तहोगे। हेरामजी! जिसअर्थके पानेकी जीव इच्छा करताहै उसके

पानेके अनुसार यत्नभी करे और थककर फिरेनहीं तो अवश्य उसको पाताहै इससे सत्सङ्गति और सत्शास्त्रपरायणहो जबतुम इनके अर्थमें दृढ़अभ्यास करोगे तबकुछ दिनोंमें परमपद पावोगे । फिररामजीने पूछा; हे भगवन् ! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्रहै और शास्त्रोंमें श्रेष्ठकौनहै कि, उसके जाननेसे शोक न रहे ? वशिष्ठजी बोले;हे महामते रामजी ! महाबोधका कारण शास्त्रोंमें परमशास्त्र महारामायणहै। उसमेंबड़े२ इतिहासहैं जिनसे परमबोधकी प्राप्ति होतीहै । हे रामजी ! सर्व इतिहासों का सार मैं तुमसे कहताहूं जिसकोसमझकर जीवन्मुक्त हो तुमको जगत् न भासेगा, जैसे स्वप्न में जागेहुयेको स्वप्न के पदार्थ भासतेहैं । जो कुछसिद्धान्तहैं उनसबका सिद्धान्त इस मेंहैऔरजोइसमेंनहीं वहऔरमेंभीनहींहैइसको बुद्धिमान सबशास्त्रविज्ञान भंडारजानते हैं। हे रामजी ! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको सुने औरनित्यसुनके विचारेगा उसकी बुद्धि उदार होकर परमबोधको प्राप्तहोगी—इसमें संशय नहीं । जिसको इसशास्त्र में रुचिनहीं है वह पापात्माहै । उसको चाहिये कि, प्रथम और शास्त्रोंको विचारे उसके अनन्तर इसको विचारे तो जीवन्मुक्त होगा । जैसे उत्तम औषधिसे रोगशीघ्रही निवृत्त होताहै तैसेही इसशास्त्र के सुनने और विचारनेसे शीघ्रही अज्ञान नष्टहोकर आत्मपदको प्राप्तहोगा । हे रामजी ! आत्मपदकी प्राप्ति वर और शापसे नहीं होती जब विचारसे अभ्यासकरे तो आत्मज्ञान प्राप्तहोताहै । हे रामजी ! दानदेने, तपस्या करने और वेदके पढ़नेसे भी आत्मपदकी प्राप्ति नहींहोती केवल आत्मविचारसेही होतीहै । संसार भ्रमभी अन्यथा नष्ट नहीं होता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसच्छास्त्रनिर्णयोनामसप्तमस्सर्गः ॥ ७ ॥

वशिष्ठजी बोले ; हे रामजी ! जिस पुरुषके चित्त और प्राणोंकी चेष्टा और परस्पर बोध आत्माका है और जो आत्माको कहता भी है ; आत्मासे तोषवान्भी है और आत्माहीमें रमताभी है ऐसा ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त होकर फिर विदेहमुक्तहोताहै। रामजीबोले; हे मुनीश्वर ! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तका क्या लक्षणहै कि, उस दृष्टि को लेकर मैंभी वैसेही विचरूं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पुरुष सब जगत्के व्यवहार करता है और जिसके हृदय में अद्वैतभ्रम शांतहुआ है वह जीवन्मुक्त है; जो शुभक्रिया करता है और हृदय से आकाशकी नाईं निर्लेप रहता है वह जीवन्मुक्त है ; जो पुरुष संसारकी दशासे सुषुप्तहोकर स्वरूप में जाग्रत हुआ है और जिसका जगत् भ्रम निवृत्त हुआ है वह जीवन्मुक्त है । हे रामजी ! इष्टकी प्राप्तिमें जिसके मुखकी कांति नहीं बढ़ती और अनिष्टकी प्राप्तिमें न्यून नहीं होती वहपुरुष जीवन्मुक्त है और जो पुरुष सब व्यवहार करता है और हृदय से द्वेषरहित शीतल रहताहै वह जीवन्मुक्तहै । हे रामजी ! जो पुरुष रागद्वेषादिक संयुक्त दृष्टि आता है;

इष्टमें रागवान् दिखता है और अनिष्ट में द्वेषवान् दृष्टिआता है परहृदय से सदा शांतरूप है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषको अहंममताका अभाव है और जिसकी बुद्धि किसीमें लेपायमान नहीं होती वह कर्म्मकरे अथवा नकरे परन्तु जीवन्मुक्तहै। हे रामजी! जिस पुरुषको मानापमान, भय और क्रोधमें कोई विकार नहीं उपजता और आकाशकी नाईं शून्य होगया है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोगता भी पर हृदयसे अभोक्ताहै और संचित दृष्टिआता है पर अचित है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषसेकोई दुःखीनहीं होता और लोगोंसे वह दुःखीनहीं और राग,द्वेष,भय,और क्रोध से रहित है वह जीवन्मुक्तहै। हे रामजी! जो पुरुष चित्तके फुरनेसे जगत्की उत्पत्ति जानताहै और चित्तके अफुर हुये जगत्का प्रलय जानताहै और सबमें समबुद्धि है वह जीवन्मुक्तहै। जो पुरुष भोगोंसे जीता दृष्टिआताहै और मृतककीनाईं स्थित और चेष्टाकरता दृष्टिआताहै पर पर्व्वतके सदृश अचलहै वह जीवन्मुक्तहै। हेरामजी! जो पुरुषव्यवहार करता दृष्टिआता है और जिसकेचित्तमें इष्टअनिष्ट विकार कोईनहीं है वह जीवन्मुक्तहै। जिस पुरुष को सब जगत् आकाशरूप दीखता है और जिसकी निर्वासनिक बुद्धि भईहै वह जीवन्मुक्त है क्योंकि वह सदा आत्मस्वभाव में स्थित है और सबजगत् को ब्रह्मस्वरूप जानता है। इतना सुनकर रामजी बोले; हेभगवन्! जीवन्मुक्तकी तो तुमने कठिन गतिकही। इष्टअनिष्टमें सम और शीतल बुद्धिकैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानीको सब आकाशरूप भासताहै उसे राग द्वेष किसीमें नहीं होता। औरकी दृष्टिमें वह चेष्टाकरता दृष्टिआताहै परन्तु जगत्की वार्त्तासे सुषुप्तहै।हेरामजी!जीवन्मुक्त कुछकाल रहकर जब शरीरको त्यागताहै तब ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै।जैसे पवन स्पन्दको त्यागकर निस्पन्द होता है तैसेही वह जीवन्मुक्तपदको त्यागकर विदेहमुक्त होता है। तब वह सूर्य्यहोकर तपता है; ब्रह्मा होकरसृष्टि उत्पन्नकरताहै; विष्णु होकर प्रतिपालनकरताहै; रुद्रहोके संहारकरताहै; पृथ्वीहोके सब भूतोंको धरता और ओषधि अन्नादिकोंको उत्पन्न करताहै, पर्व्वतहोके पृथ्वीकोरखताहै ;जलहोकेद्रवता रसदेताहै, अग्निहोके उष्णताको धारताहै, पवनहोके पदार्थोंको सुखाताहै; चन्द्रमाहोके ओषधियोंको पुष्टकरताहै, आकाशहोके सब पदार्थोंको ठौरदेताहै, मेघहोके वर्षाकरता है और स्थावर जंगम जितनाकुछजगत है सबमें आत्माहोके स्थित होताहै। रामजीने पूछा; हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणसे क्षोभवान्होकर जगत्में आताहै तो त्रैलोकी का भ्रमक्यों नहीं मिटता? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जगत् आडम्बर अज्ञानी के हृदय में स्थित है और ज्ञानवान्को सब चिदाकाशरूप है। विदेहमुक्त वही रूपहोता है जहां उदय अस्तकी कल्पना कोईनहीं केवल शुद्धबोधमात्रहै। हे रामजी! यह

जगत् आदिसेउपजानहीं केवल अज्ञानसे भासताहै। मैं तुम और सब जगत् आकाश रूपहैं । जैसे आकाशमेंनीलता और दूसराचन्द्रमा भासतेहैं। औरजैसेमरुस्थलमेंजल भासताहै तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै । हे रामजी ! जैसे स्वर्णमेंभूषण कुछ उपजा नहीं और जैसे समुद्रमें तरङ्ग होतीहैं तैसेही आत्मामें जगत् उपजानहीं। यह सब जगत् जाल मनके फुरनेसे भासताहै स्वरूपसे कुछनहीं बना। ज्ञानीको सदायहीनिश्चय रहताहै फिर जगत्का क्षोभ उसको कैसे भासे ? हे रामजी ! यहभी मैंने तुम्हारे जानने मात्रको कहाहै; नहीं तो जगत् कहाँहै जगत् का तो अत्यन्त अभावहै । इतना सुन रामजीने पूछा ; हे भगवन् ! जगत्के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध की प्राप्ति नहीं होती । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! दृश्य द्रष्टाका मिथ्याभ्रम उदय हुआहै। जब दोनोंमेंसे एकका अभावहो तब दोनों का अभाव हो और जब दोनों का अभाव हो तब शुद्धबोधमात्र शेषरहे । जिसप्रकार जगत्का अत्यन्त अभाव हो वह युक्ति में तुमसे कहताहूं । हे रामजी ! चिरकालका जो जगत् दृढ़ होरहाहै वह मिथ्याज्ञान विशूचिका है । वह विचाररूपी मंत्रसे निवृत्त होता है ! जैसे पर्वतपर चढ़ना और उतरना शनैः शनैः होताहै तैसेही अविद्धकभ्रम चिरकालका दृढ़ होरहाहै विचार करके अनुक्रमसे उसकी निवृत्तिहोतीहै । जगत्के अत्यन्त अभावहुये विना आत्मबोधनहीं होता । उसकेअत्यन्त अभावके निमित्त मैं युक्ति कहताहूं उसके समझने से जगत् भ्रमनष्ट होगा और जीवन्मुक्त होकर तुम विचरोगे । हे रामजी ! बन्धनसे वही बँधता है जो उपजाहो और मुक्तभी वही होताहै जो उपजाहो । यहजगत्जो तुमको भासताहै वह उपजा नहीं । जैसे मरुस्थलमें नदीभासतीहै वहभी उपजीनहीं है भ्रमसे भासतीहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै पर उपजा नहीं । जैसे अर्द्ध मीलित नेत्र पुरुषको आकाशमें तरुवरे भासतेहैं तैसेही भ्रमसे जगत् भासताहै । हे रामजी ! जब महाप्रलय होताहै तब स्थावर, जङ्गम, देवता,किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होताहै । इसके अनन्तर जो रहताहै सोइन्द्रिय ग्राहक सत्ता नहीं और असत्यभी नहीं और न शून्य, न प्रकाश, न अन्धकार, न द्रष्टा, न दृश्य, न केवल, न अकेवल, न चेतन, न जड़,न ज्ञान, न अज्ञान,न साकार,न निराकार, न किञ्चन,और न अकिञ्चनहीहै । वहतो सर्व शब्दोंसे रहितहै उसमें वाणीकी गम नहीं और जोहै तो चैतन्यसे रहित चेतन आत्मतत्त्व मात्र है जिसमें अहं त्वं की कोईकल्पना नहीं । ऐसे शेष रहताहै और पूर्ण, अपूर्ण, आदि, मध्य, अन्तसे रहित है। सोई सत्ता जगत् रूप होकर भासतीहै और कुछ जगत् बनानहीं । जैसेमरीचिका में जल भासता तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै । हे रामजी ! जब चित्तशक्तिस्पन्दरूपहो भासतीहै तब जगदाकार भासता है और जब निस्पंद होतीहै तब जगत्क

अभाव होताहै पर आत्म सत्ता सदा एकरस रहतीहै। जैसे वायु स्पंदरूप होताहैतो भासताहै। और निस्पंदरूप नहीं भासता परन्तु वायु एकहीहै तैसेही जब चित्त सम्वेदन स्पंदरूप होताहै तब जगत्रूपहोकरभासताहै और जबनिस्पंदरूपहोता है तब जगत् मिट जाता है। हे रामजी! चेतन तब जानाजाताहै जब सम्वेदन स्पन्द रूप होताहै। जैसे सुगन्धका ग्रहण आधारभूत से होताहै और आधारभूत द्रव्य बिना सुगन्धका ग्रहण नहींहोता। जैसे वस्त्र श्वेत होताहै तब रंगको ग्रहण करता है अन्यथा रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही आत्मा का जानना स्पंद से होताहै; स्पंदबिनाजानने की कल्पनाभी नहीं होती। जैसे आकाशमें शून्यता और अग्निमें उष्णता भासतीहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै—वह अनन्यरूपहै। जैसे जलद्रवतासे तरङ्गरूपहोके भासताहै तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप होके भासती है। वह आकाशवत् शुद्ध है और श्रवण, चक्षु, नासिका, त्वचा, देह और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे रहितहै और सब ओरसे श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्शकरता औररसलेता भी आपहीहै। आत्मरूपी सूर्य्यकी किरणोंमें जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती हैं। जैसेजल में चक्र आवृत फुरते भासते सो जलसे इतर कुछ नहीं, जलरूपहीहैं तैसेही जगत् आत्मासे भिन्न नहीं आत्मरूपहीहै। आत्माही जगत् रूप होकर भासताहै। रसना नहीं पर बोलताहै; अभोक्ता है पर भोक्ताहोके भासताहै;अफुरहै पर फुरता भासताहै; अद्वैतहै पर द्वैतरूपहोकर भासताहै, और निराकारहै परसाकार रूपहोके भासताहै। हे रामजी! आत्मसत्ता सबशब्दों से अतीतहै पर वही सब शब्दोंको धारती है और अनद्रष्टाहोके भासती है,इतरकुछ है नहीं। कईसृष्टि समान होतीहैं और कईविलक्षण होतीहैं परन्तु स्वरूपसे कुछ भिन्न नहीं सदा आत्मरूपहैं। जैसे सुवर्णमें भूषणसमान आकारभी होते और विलक्षणभी होते हैं और कङ्कणसे आदिलेके जो भूषण हैं सो सुवर्णसे इतर नहींहोते—सुवर्णरूपीही हैं तैसेही जगत् आत्मस्वरूप है और शुद्ध आकाशसे भी निर्मल बोधमात्रहै। हे रामजी! जब तुम उसमें स्थित होगे तबजगत् भ्रम मिट जावेगा। जगत् वास्तवमें कुछ नहीं है सदा ज्योंकात्यों अपनेआपमें स्थित है;और केवल मनके फुरनेसेही जगत् भासताहै मनके फुरनेसे रहित हुये सब कल्पना मिटजाती हैं और आत्म सत्ता ज्योंकीत्यों भासती है। वह सत्ता ज्योंकी त्योंही है और सबका अधिष्ठान रूपहै। यह सब जगत् उसीसे हुआहै और वहीरूपहै। सब का कारण आत्म सत्ताहै और उसका कारण कोई नहीं। अकारण, अद्वैत, अजर, अमर और सब कल्पनासे रहित शुद्ध चिन्मात्र रूपहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमकारणवर्णनन्नामअष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतना सुनकर रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब महाप्रलय होताहै और सब पदार्थ

नष्ट होजातेहैं उसके पीछे जो रहताहै उसे शून्य कहिये वा प्रकाश कहिये क्योंकि तमतो है नहीं; चेतनहै अथवा जीवहै; मनहै वा बुद्धिहै;सत्,असत्; किञ्चन, अकिञ्चन, इनमें कोईतो होवेगा;आप कैसे कहतेहैं कि, बाणीकी गमनहीं ? वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! यह तुमने बड़ा प्रश्न कियाहै । इस भ्रमको मैं विना यत्न नाश करूंगा । जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार नष्टहोजाताहै तैसेहीतुम्हारे संशयका नाशहोगा । हे रामजी ! जब महाप्रलय होताहै तब सम्पूर्ण दृश्यका अभाव होजाता है पीछे जो शेषरहताहै सो शून्य नहीं क्योंकि; दृश्याभास उसमें सदा रहताहै और वास्तव में कुछ हुआ नहीं । जैसे थम्भमें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै कि, इतनी पुतलियां इसथम्भ में निकलेंगी सो उसथम्भमेंही शिल्पी कल्पताहै जो थम्भ न हो तो शिल्पी पुतलियां किसमें कल्पता ? तैसेही आत्म रूपीथम्भेमें मन रूपी शिल्पी जगत् रूपी पुतलियां कल्पताहै; जो आत्मा न हो तो पुतलियां किसमें कल्पै । जैसे थम्भेमें पुतलियां थम्भा रूपहैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्म रूपहै–ब्रह्मसे इतर जगत्का होनानहीं । जैसेपुतलियों का सद्भाव और असद्भाव थम्भमें है क्योंकि, अधिष्ठानरूप थम्भाहै–थम्भेविना पुतलियां नहीं होतीं; तैसेही जगत् आत्माविना नहीं होता । हे रामजी ! सद्भाव होजाता है वह सत्सेहोता है असत्से नहीं और असद्भाव सिद्धहोताहै वह सत्हीमें होताहै असत्में नहींहोता । इससे सत् शून्य नहीं जो शून्य होता तो किसमेंभासता जैसे सोम जलमें तरङ्गका सद्भाव और असद्भावभी होताहै । असद्भाव इसकारणहोताहै कि, तरङ्गभिन्न कुछनहीं और सद्भाव इसकारणसे होताहै कि, जलहीमेंतरङ्ग होताहै;तैसेही जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्मामें होताहै शून्यमेंनहीं । जैसेसोमजलमें कहनेमात्रको तरङ्गहैं नहींतो जलहीहै; तैसेही जगत् कहनेमात्रको है; हुआकुछनहीं-एकसत्ताही है । और शून्य और अशून्यभी नहीं क्योंकि;शून्य औरअशून्य ये दोनोंशब्द उसमें कलिपत हैं । शून्य उसको कहतेहैं जो सद्भावसेरहित अभावरूपहो औरअशून्य उसकोकहते जो विद्यमानहो । पर सत्तासे इन दोनोंसे रहितहै अशून्यभी शून्यका प्रतियोगीहै; जो शून्य नहीं तो अशून्य कहांसे हो । ये दोनोंहीं अभावमात्र हैं । हे रामजी! यह सूर्य्य, तारा, दीपक आदिक भौतिक प्रकाश भी वहां नहीं क्योंकि; प्रकाश अन्धकार का विरोधी है । जो यह प्रकाशहोता तो अन्धकार सिद्ध न होता । इससे वहां प्रकाशभी नहीं है और तमभी नहीं है क्योंकि; सूर्य्यादिक जिससे प्रकाशते हैं वह तम कैसे हो ? आत्मा के प्रकाश बिना सूर्य्यादिक भी तमरूपहैं । इससे वह न शून्यहै; न अशून्य है; न प्रकाशहै; न तमहै; केवल आत्मतत्त्व मात्रहै । जैसे थम्भमें पुतलियां कुछहैं नहीं तैसेही आत्मामें जगत् कुछ हुआ नहीं । जैसे बिल्ली और बिल्लीकी मज्जा में कुछ भेदनहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछभेद नहीं और जैसे जल और तरङ्ग में

और मृत्तिका और घटमें कुछभेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछभेद नहीं; नाम-मात्र भेदहै। हे रामजी! जल औरमृत्तिकाका जो दृष्टान्तदियाहै ऐसेभीआत्मामें नहीं। जैसे जलमें तरङ्ग होताहै और मृत्तिका में घटहोताहै सो भी परिणाम रूपहोताहै। आत्मामें जगत् भाननहीं है और जो मानसिकहै तो आकाश रूपहै। इससे जगत् कुछ भिन्ननहींहै रूप,अवलोकन, मनसा, कार्य्यता जो कुछ भासताहै वह सब आकाश-रूपहै। आत्मसत्ताही चित्तके फुरनेसे जगत्रूपहो भासतीहै-जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं है जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जलाभास होताहै तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै। हे रामजी! थम्भे में जो शिल्पाकार पुतलियां कल्पताहै सोभी नहीं होती और यहां कल्पनेवालाभी बीचकी पुतलीहै वहभी होने बिना भासती है। हे रामजी! जिस से यह जगत् भासता है उसको शून्य कैसे कहिये और जो कहिये कि, चैतन्य है तौभी नहीं क्योंकि; चैतन्यभी तब जानना होता है जब चित्कला फुरतीहै; जहां फुरना न हो वहां चेतनता कैसेरहे? जैसे जबकोई मिरचको खाताहै तब उसकी तिखाई भा-सतीहै खानेबिना नहीं भासती; तैसेही चैतन्य जाननाभी स्पन्दकलामेंहोताहै आत्मा में जाननाभी नहींहोता चैतन्यतासे रहित चिन्मात्र अक्षय सुषुप्ति रूपहै उसको जो तुरीय कहता है वह ज्ञेय ज्ञानवान् से गम्यहै। हे रामजी! जो पुरुष उसमें स्थित हुआहै उसको संसाररूपी सर्प नहीं डससक्ता; वह अचैत्य चिन्मात्र होताहै। और जिसकी आत्मा में स्थिति नहीं होती उसको दृश्यरूपीसर्प डसता है। आत्मसत्ता में तो कुछद्वैत नहींहुआ आत्मसत्ता तो आकाशसेभी स्वच्छ है। इनका द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, स्वतः अनुभवसत्ता आत्माकारूप है और वह अभ्यास करनेसे प्राप्तहोतीहै। हे रामजी! उसमें द्वैतकल्पना कुछनहींहै वह अद्वैतमात्रहै। वह न द्रष्टाहै न जीवहै न कोई विकार और न स्थूल,न सूक्ष्म है-एकशुद्धअद्वैतरूप अपने आपमें स्थित है जो यह चैत्यका फुरनाही आदिमें नहींहुआ तो चेतनकलाका जीवकैसेहो और जोजीव-ही नहीं तो बुद्धिकैसेहो?जो बुद्धिहीनहो तो मन औरइन्द्रियां कैसेहों;जो इन्द्रियां नहीं तो देहकैसेहो और जो देहनहो तो जगत्कैसेहो? हे रामजी! आत्मसत्तामेंसब कल्पना मिटजाती है;उसमें कुछकहना नहीं बनता वहतो पूर्ण, अपूर्ण,सत्,असत् से न्यारा है, भाव और अभावका कभी उसमें कोई विचार नहीं; आदि,मध्य,अन्तकी कल्पनाभी कोईनहीं वह तो अजर,अमर, आनन्द, अनन्त, चित्स्वरूप,अचेत,चिन्मात्र और अवाच्यपदहै।वहसूक्ष्मसेभी सूक्ष्म आकाशसेभी अधिक शून्य और स्थूलसेभी स्थूल एक अद्वैत और अनन्त चिद्रूपहै। इतनासुन रामजीने पूछा, हेभगवन्!यह अचि-न्त्य,चिन्मात्र और परमार्थसत्ता जो आपने कही उसकारूप बोधके निमित्त मुझसे फिरकहो। वशिष्ठजी बोले;हे रामजी! जब महाप्रलय होताहै तब सब जगत् नष्ट हो-

जाताहै पर ब्रह्मसत्ता शेष रहती है उसकारूप में कहताहूं । मनरूपी ब्रह्मा है मन की वृत्ति जो क्षीणहोती है वह एक प्रमाण; दूसरी विपर्य्यय ; तीसरी विकल्प; चौथी अभाव और पांचवीं स्मरणहै । प्रमाणवृत्ति तीन प्रकारकीहैं—एक प्रत्यक्ष; दूसरीअ-नुमान जैसे धुवाँसे अग्नि जानना और तीसरी शब्दरूप ये तीनों प्रमाणवृत्ति आप्त कामिकाहैं। द्वितीय विपर्य्यय वृत्तिहै-हाव और भावसे तृतीय विकल्पवृत्ति है। जिससे शब्दज्ञान और अर्थज्ञानहोताहै । जैसेचेतनपुरुषकहा तो इससेयहज्ञानहुआ कि,जो एकपुरुषहो और उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूपहो तो यहचैतन्यपुरुष कहाजाताहै । चेतन ईश्वररूपहै और साक्षीपुरुषरूपहै अर्थात् जैसेसीपपड़ीहो और उसमें संशय वृत्ति चांदीकी होकर साक्षीसीपीभासे तो उसका नाम विकल्पहै। चतुर्थनिद्रा-अभाव वृत्तिहै औरपंचमस्मरण वृत्तिहै।यहीपांचोवृत्तिहैं औरइनका अभिमानी मनहै जब तीनों शरीरोंका अभिमानी अहङ्कार नाशहो तवपीछे जो रहताहै सो निश्चलसत्ता अनन्त आत्माहै । मैंअसत्नहींकहताहूं । हे रामजी ! जाग्रतकेअभावहुये पर जवतक सुषुप्ति नहींआती वहरूप परमात्माकाहै। अंगुष्ठको जोशीत उष्णका स्पर्शहोताहै उसकोअनु-भव करनेवाला परमात्मसत्ताहै जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य उपजताहै और फिर लीनहोताहै वहपरमात्माका रूपहै। उससत्तामें चैतन्यताभीनहींहै। हेरामजी !जिसमें चेतन अर्थात् जीव और जड़ अर्थात् देहादिक दोनोंनहीं हैं वहअचेत चिन्मात्र पर-मात्मरूपहै। जो सव व्यवहार होताहै और जिसके अन्तर आकाशरूप है—कोई क्षोभनहीं ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै।वह शून्यहै परन्तु शून्यतासेरहितहै । हेरा-मजी ! जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्यतीनों प्रतिविम्वितहैं औरआकारहै—ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै ।जोस्थावरमें स्थावरभाव और चेतन में चेतनभावसे व्यापरहा है और मन बुद्धि । इन्द्रियां जिसको नहीं पासक्तीं ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै। हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका जहां अभाव होजाताहै उसकेपीछेजो शेषरहताहै और जिसमें कोई विकल्पनहीं ऐसी अचेत चिन्मात्र सत्ता परमात्माका रूपहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमात्मस्वरूपवर्णनन्नामनवमस्सर्गः ९ ॥

इतनासुन रामजी वोले; हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्टभासताहै सो महा प्रलय में कहाजाताहै?वशिष्ठजीवोले, हेरामजी! वन्ध्यास्त्रीका पुत्र कहांसे आताहै और कहां जाताहै और आकाशका वन कहांसेआता-और कहांजाताहै ! जैसे आकाशकावन है तैसेहीयह जगत्है । फिर रामजीने पूछा, हेमुनीश्वर ! वन्ध्याकापुत्र और आकाशका वनतो तीनोंकालमें नहींहोता,शब्दमात्रहै और उपजा कुछनहीं पर यह जगत्तोस्पष्ट भासताहै वन्ध्याकेपुत्रके समान कैसेहो ? वशिष्ठजी वोले; हेरामजी!जैसेवन्ध्याकापुत्र और आकाशका वनउपजानहीं तैसेही यहजगत्भी उपजानहीं। जैसेसंकल्पपुर होताहै

और जैसे स्वप्न नगरप्रत्यक्ष भासताहै और आकाशरूपहै; इनमें से कोई पदार्थ सत् नहीं तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है और कुछ उपजा नहीं। जैसे जल और तरङ्गमें; काजल और श्यामतामें; अग्नि और उष्णता में; चन्द्रमा और शीतलता में; वायु और स्पन्दमें और आकाश और शून्यतामें भेदनहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेदनहीं–सदा अपने स्वभावमें स्थित है। हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं, आत्म सत्ताही अपने आपमें स्थितहै और उसमें अज्ञानसे जगत् भासताहै। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थलमें जल और आकाशमें तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मामें अज्ञानसे जगत् भासताहै। इतनासुन फिर रामजीने पूछा; हे भगवन्! दृश्यके अत्यन्त अभाव विना बोधकी प्राप्ति नहींहोती और जगत् स्पष्टरूप भासता है। द्रष्टा और दृश्य जो मनसे उदयहुये हैं सो भ्रमसेहुयेहैं। जो एकभीहै तो दोनों बन्धहुये हैं और जब दोनोंमें एकका अभावहो तो दोनों मुक्तहों क्योंकि; जहां द्रष्टाहै वहां दृश्यभी है और जहां दृश्यहै वहां द्रष्टाभी है। जैसे शुद्ध आदर्शविना प्रतिविम्ब नहीं होता तैसेही द्रष्टाभी दृश्यविना नहीं रहता और दृश्य द्रष्टा विना नहीं। हे मुनीश्वर! दोनोंमें एक नष्टहो तो दोनों निर्वाणहों। इससे वहीयुक्तिकहो जिससे दृश्यका अत्यन्त अभाव होकर आत्मबोध प्राप्तहो। कोई ऐसेभी कहतेहैं कि, दृश्य आगेथा अवनाशहुआहै तो उसको भी संसारभाव देखावेगा और जिसकोविद्यमान नहींभासता और उसका अन्त सद्-भावहै तो फिर संसार देखेगा। जैसे सूक्ष्मवीजमें वृक्षका सद्भाव होताहै तैसेही स्मृति फिर संसारको देखावेगी और आप कहते हैं कि, जगत्का अत्यन्त अभाव होता है और जगत्काकारणकोईनहीं-आभासमात्र है-और उपजा कुछनहीं? हे मुनीश्वर! जिस-काअत्यन्त अभाव होताहै वह वस्तु वास्तवमें नहींहोती और जो हैहीनहीं तो बन्धन किसको हुआ तबतो सब मुक्तस्वरूपहुये पर जगत्तो प्रत्यक्ष भासताहै? इससे आप वहीयुक्तिकहो जिससे जगत्का अत्यन्त अभावहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्यके अत्यन्त अभावके निमित्त में एक कथा सुनाताहूं; जिसके अर्थ निश्चय कर समझने से दृश्य शान्त होकर फिर संसार कदाचित् न उपजेगा। जैसे समुद्रमें धूर नहीं उड़-ती तैसेही तुम्हारे हृदयमें संसार न रहेगा। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासता है सो अकारण रूपहै; इसका कारण कोई नहीं। हेरामजी! जिसका कारण कोई न हो और भासे उसको जानिये कि, भ्रम मात्रहै-उपजा कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेमें सृष्टि भास-तीहै वह किसी कारणसे नहीं उपजी केवल संवित्रूपहै तैसेही सर्ग आदि कारणसे नहीं उपजा केवल आभासरूप है-परमात्माका कुछ नहीं। हे रामजी! जो पदार्थ कारण बिनाभासे तो जिसमें वह भासता है वही वस्तु उसका अधिष्ठान रूपहै। जैसे तुमको स्वप्नेमें स्वप्नका नगर होकर भासताहै पर वहां तो कोई पदार्थ नहीं केवल

आभासरूपहै और सम्वित् ज्ञानही चैतन्यतासे नगर होकर भासताहै, तैसेही विश्व अकारण आभास आत्मसत्तासे होके भासताहै। जैसे जलमें द्रवता; वायुमें स्पन्द; जलमें रस और तेजमें प्रकाशहै तैसेही आत्मामें चित्त संवेदनहै। जब चित्त संवेदन स्पन्द रूप होताहै तब जगत् रूप होकर भासता है-जगत् कोई वस्तुनहीं है। हे रामजी ! जैसे और तत्त्वोंके अणु और ठौरभी पायेजाते हैं और आकाशके अणु और ठौरनहीं पायेजाते क्योंकि, आकाश शून्यरूपहै; तैसेही आत्मासे इतर इस जगत्का भावकहीं नहीं पाते क्योंकि; यह आभासरूप है और किसी कारणसे नहीं उपजा। कदाचित् कहो कि,पृथ्वी आदिक तत्त्वोंसे जगत् उपजाहै तो ऐसे कहनाभी असम्भव है। जैसे छायासे धूप नहीं उपजती तैसेही तत्त्वोंसे जगत् नहीं उपजता क्योंकि; आदि आपही नहीं उपजे तो कारण किसकाहो ? इससे ब्रह्मसत्ता सर्वदा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी ! आत्मसत्ता जगत्का कारण नहीं क्योंकि; वह अभूत और अजड़ रूपहै सो भौतिक और जड़का कारण कैसेहो ? जैसे धूप परछाहीं का कारण नहीं तैसेही आत्मसत्ता जगत्काकारण नहीं। इससे जगत्कुछ हुआनहीं वही सत्ता जगत् रूपहोकर भासतीहै। जैसेस्वर्ण भूषण रूपहोताहै और भूषणकुछ उपजानहीं तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकर भासतीहै। जैसे अनुभव सम्वित् स्वप्न नगररूपहो भासता है तैसेही यहसृष्टि किञ्चनरूप है दूसरी वस्तुनहीं ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है और जितना कुछजगत् स्थावर जंगमरूप भासता है वह आकाशरूपहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनंनामदशमस्सर्गः १०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आत्मसत्ता नित्य, शुद्ध, अजर, अमर और सदा अपने आप में स्थितहै। उसमें जिसप्रकार सृष्टि उदय हुई है वह सुनिये। उसके जानेसे जगत् कल्पना मिट जावेगी। हे रामजी ! भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग;स्थूल-सूक्ष्म; जन्म- मरण आदि पदार्थों से जीव छेदाजाता है उससे तुम मुक्तहोगे। जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्णनहीं करसक्ते तैसेही तुमको संसार के भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करसकेंगे। हे रामजी ! आदिशुद्ध - देव अचेत चिन्मात्रहै; उसमें चेत्यभाव सदा रहता है क्योंकि; वह चैतन्य रूप है। जैसे वायु में स्पन्दशक्ति सदा रहती है तैसेही चिन्मात्रमें चैत्यका फुरना रहकर"अहंअस्मि"भावको प्राप्तहुआहै। इसकारण उसका नामचैतन्य है। हे रामजी ! जबतक चैतन्य-सम्वित् अपने स्वरूपकी ठौर-नहीं आता तबतक इसका नाम जीवहै और सङ्कल्पका नाम बीज चित्-सम्वित्है उसीसे सर्वभूत जाति उत्पन्न हुईहै। इससे सबका जीव चित्-सम्वित् है। जबजीव सम्वित् चैत्यको चेतता है तब प्रथम शून्यहोकर उसमें शब्दगुणहोता है। उस आदि शब्द तन्मात्रा से पद, वाक्य और प्रमाणसहित वेदउत्पन्न हुये। जितना कुछ

जगत्‌मेंशब्दहै उसकाबीज तन्मात्राहै जिससे सर्ववायु अरस्परस होताहै। फिररूप-तन्मात्राहुई; तिससे सूर्य, अग्नि आदिक प्रकाशहुये। फिर रसतन्मात्राहुई जिससे जलहुआ और सब जलोंका बीजवही है। फिरगन्ध तन्मात्राहुई जिससे पूर्णपृथ्वी हुई और सबपृथ्वीका बीजवही है। हे रामजी ! इसी प्रकार पांचोभूत हुये हैं फिर पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशसे जगत्‌हुआ है सोभूत पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत है। यहभूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं क्योंकि; सङ्कल्पमेंल युक्तहुये हैं। इस प्रकार चिद्‌अणु में सृष्टि भासी है। जैसे वटबीज मेंसे वटका विस्तार होता है तैसेही चिद्‌अणु में सृष्टिहै। कहीं क्षणमें युग और कहीं युगमें क्षण भासता है। चिद्‌अणु में अनन्तसृष्टि फुरती हैं। जब चित् सम्वित् चैत्योन्मुख होताहै तब अनेक सृष्टि होकर भासती हैं और जब चित् सम्वित् आत्माकी ठौर आता है तब आत्माके साक्षात्कार होनेसे सब सृष्टि पिण्डाकार होकर जातीहै—अर्थात् सब आत्म-रूप होतीहै। इससे इसजगत्‌का बीज सूक्ष्मभूत है और इनका बीज चिद्‌अणु है। हे रामजी ! जैसा बीज होताहै तैसाही वृक्ष होताहै। इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। संकल्पसे यह जगत् आडम्बर होताहै और संकल्पके मिटेसे सब चिदाकाश होताहै। जैसे संकल्प आकाशरूपहै तैसेही जगत् भी आकाशरूपहै; जो सब आत्म अनुभव आकाशरूप है और जिससे क्षणमें एकरूप होताहै। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर होता तैसेही यह जगत्‌है। हे रामजी ! इसजगत्‌का मूल पंचभूतहै जिसका बीजसम्वित् और स्वरूप चिदाकाशहै। इसीसे सब जगत् चिदाकाश है; द्वैत और कुछ नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगदुत्पत्तिवर्णनन्नामएकादशस्सर्गः ११॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! परब्रह्म सम, शान्त, स्वच्छ, अनन्त, चिन्मात्र और सर्वदा काल अपने आपमें स्थितहै। उसमें सम—असमरूप जगत् उत्पन्नहुआ है। सम अर्थात् सजातीयरूप और असम अर्थात् भेदरूप कैसे हुये सो भी सुनिये। प्रथम तो उसमें चैत्यका फुरना हुआहै; उसकानाम जीवहुआ और उसने दृश्यको चेता उससे तन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उपजे। उन्हींसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, और आकाश पंचभूतरूपी वृक्षहुआ और उसवृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फललगा। इससे जगत्‌का कारण पञ्चतन्मात्राहुई हैं और तन्मात्राकाबीज आदि सम्वित् आकाश है और इसीसे सर्व्व जगत् ब्रह्मरूपहुआ। हे रामजी ! जैसा बीज होताहै वैसाही फल होताहै। इसका बीज परब्रह्महै तो यहभी परब्रह्महुआ। जो आदि अचेत चिन्मात्र स्वरूप परमाकाश है और जिसचैतन्य सम्वित्‌में जगत् भासताहै वह जीवाकाशहै। वहभी शुद्धनिर्मल है क्योंकि; वह पृथ्वी आदिक भूतों से रहितहै। हे रामजी ! यह

जगत् जो तुमको भासताहै सो सब चिदाकाशरूप है और वास्तवमें द्वैत कुछ नहीं बना। यह मैंने तुमसे ब्रह्माकाश और जीवाकाशकहा। अब जिससे इसको शरीर ग्रहणहुआ सो सुनिये।हेरामजी! शुद्ध चिन्मात्रमें जो चैत्योन्मुखत्व "अहं अस्मि" हुआ और उस अहंभाव से आपको जीव अणु जाननेलगा। आप वास्तव स्वरूप अन्य भावकी नाईं होकर जीव अणुमें जो अहंभाव दृढ़हुआ उसीकानाम अहंकार हुआ। उस अहंकारकी दृढ़तासे निश्चयात्मक बुद्धिहुई और उससे सङ्कल्परूपी मनहुआ। जबमन इसकी ओर संसरनेलगा तब सुननेकी इच्छाकी इससे श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब रूप देखने की इच्छा की तब चक्षु इन्द्रियप्रकटहुई; जब स्पर्शकी इच्छाकी तो त्वचा इन्द्रिय प्रकटहुई और जब रसलेनेकी इच्छाकी तो जिह्वाइन्द्रिय प्रकटहुई। इसीप्रकार से देह इन्द्रिय चेततासे भासीं और उनमें यहजीव अहंप्रतीत करने लगा।हेरामजी! जैसे दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब होताहै वह पर्वतसे बाह्य है तैसेही देह और इन्द्रियां बाह्यदृश्य हैं पर अपनेमें भासींहैं इससे उनमें अहंप्रतीत होतीहै। जैसे कूपमें मनुष्य आपको देखे तैसेही देहमें आपको देखता है जैसे डब्बे में रत्नहोता है तैसेही देहमें आपको देखताहै। वही चिद् अणुदेहके साथ मिलकर दृश्यको रचता है।उसअहंसे रूपमें क्रिया भासनेलगी। जैसे स्वप्नेमें दौड़े और जैसे स्थित में स्पन्द होतीहै तैसेही आत्मामें जो स्पन्दक्रिया हुई वह चित्त संवितसेही हुईहै और उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा हुआ। जैसे सङ्कल्प से दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही मनोमय जगत् भासताहै। जैसे शशेके शृंग होतेहैं तैसाही यहजगत् है। कुछउपजानहीं केवल चित्तके स्पन्दमें जगत् फुरता है। जैसे २ चित्त फुरता तैसे २ देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जंगम, जगत् की मर्यादाहुई हैं। इससे सबजगत् सङ्कल्परूपहै; सङ्कल्पसे इतर जगत् का आकार कुछ नहीं। जब सङ्कल्प फुरताहै तब आगे जगत् दृश्य भासता है और जब सङ्कल्प निस्पन्द होताहै तब दृश्यका अभाव होताहै। हे रामजी! इसप्रकार से यह ब्रह्मा निर्वाण हो फिर और उपजतेहैं इससे सब सङ्कल्पमात्रही हैं। जैसेनटवा नानाप्रकारके पटके स्वांग करके बाहर निकलआता है तैसेही देखो यह सब माया मात्रहै। हे रामजी! जब चित्तकी ओर संसरताहै तब दृश्यका अन्त नहीं आता और जब अन्तर्मुख होताहै तब सब जगत् आत्मरूप होताहै। चित्तके निस्पन्द होनेसे एक क्षणमें जगत् निवृत्त होताहै क्योंकि; सङ्कल्परूपहीहै इससे यह जगत् आकाशरूपहै उपजा कुछ नहीं और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपनेआप में स्थित है। जैसे स्वप्नेमें पर्वत और नदियां भ्रमसे दिखते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रमसे भासताहै। जैसेस्वप्ने में आपको मुआ देखताहै सो भ्रममात्र है तैसेही यहजगत् भ्रममात्र है। हे रामजी! यह स्थावर, जंगम, जगत् सब चिदाकाश है। हमकोतो सदा चिदाकाशही भासता

है। आदि विराटरूप में ब्रह्माभी वास्तवमें कुछ उपजे नहीं तो जगत् कैसे उपजा। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकार के देशकाल और व्यवहार दृष्टि आते हैं सो अकारणरूपहैं; उपजे कुछ नहीं और आभासमात्र हैं; तैसेही यह जगत् आभासमात्रहै। कार्य कारण भासते हैं तोभी अकारणहै। हे रामजी! हमको जगत् ऐसाभासताहै जैसे स्वप्नसेजागेमनुष्यको भासताहै। जोवस्तु अकारण भासी है सो भ्रान्तिमात्रहै। जो किसीकारणद्वारा जगत् नहीं उपजा तो स्वप्नवत्है। जैसे सङ्कल्पपुर और गन्धर्वनगर भासते हैं तैसेही यह जगत्भीजानो। आदिविराट आत्मा अन्तवाहकरूपहै और वह पृथ्वी आदितत्त्वोंसे रहित आकाशरूपहै तो यहजगत् अधिभूतसे कैसे हो। सब आकाशरूपहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणे स्वयम्भूउत्पत्तिवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः १२॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! यह दृश्य मिथ्या असत्रूपहै। जो है सो निरामय ब्रह्म है। वह ब्रह्म आकाशजीवकी नाईंहुआहै। जैसे समुद्रद्रवतासे तरङ्गरूपहोताहै तैसेही ब्रह्मजीवरूपहोताहै आदिसम्वितस्पन्दरूप ब्रह्माहुआ है और उसब्रह्मासे आगेजीबहुयेहैं जैसेएकदीपकसे बहुतदीपकहोते और जैसे एकसङ्कल्पके बहुतसङ्कल्प होतेहैं तैसेही एक आदिजीवसे बहुतजीव हुयेहैं। जैसे थम्भेमेंशिल्पी पुतलियां कल्पताहै पर वह पुतलियां शिल्पीके मनमें होतीहैं, थम्भाज्योंका त्योंही स्थितहै; तैसेही सब पदार्थ आत्मामें मन कल्पेहै; वास्तवमें आत्मा ज्योंकात्यों ब्रह्महै। उन पुतलियों में बड़ी पुतली ब्रह्माहै और छोटी पुतली जीवहै। जैसे वास्तवमें थम्भाहै, पुतली कोई नहीं उपजी; तैसेही वास्तवमें आत्मसत्ता है जगत् कुछ उपजा नहीं; संकल्पसे भासता है और संकल्प के मिटे से जगत् कल्पना मिट जाती है। इतना सुनरामजीने पूछाः हे भगवन्! एक जीवसे जो बहुतजीव हुये हैं तोक्या वे पर्वतमें पाषाणकी नाईंउपजते हैं वा कोईजीवोंकी खानहै कि,इसप्रकार इतनेजीव उत्पन्नहोआतेहैं; अथवा मेघकीबूंदों वा अग्निसे विस्फुलिङ्गों की नाईं उपजतेहैं सो कृपा कर कहिये? और एक जीव कौनहै जिससे सम्पूर्णजीव उपजते हैं? वशिष्ठजी बोलेः हे रामजी! न एकजीवहै और न अनेकहै। तेरे ये वचन ऐसेहैं जैसे कोई कहे कि, मैंने शशेके शृङ्ग उड़ते देखेहैं। एक जीव भी तो नहीं उपजा मैं अनेक कैसे कहूं? शुद्ध और अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। वह अनन्त आत्मा है; उसमें भेदकी कोई कल्पना नहीं है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासताहै सो सब आकाशरूपहै कोई पदार्थउपजा नहीं, केवल संकल्पकेफुरनेहीसे जगत्भासताहै। जीवशब्द और उसका अर्थ आत्मा में कोई नहीं उपजा यह कल्पना भ्रमसे भासतीहै। आत्मसत्ताही जगत् की नाईं भासतीहै; उसमें न एक जीवहै और न अनेकजीवहैं। हे रामजी! आदि विराटआत्मा आकाशरूपहै, तिससे और जगत् उपजा है। मैं तुमकोक्याकहूं? जगत्विराटरूपहै,

विराट जीवरूपहै और जीव आकाशरूप है, फिर और जगत् क्या रहा और जीवक्या हुआ?सब चिदाकाशरूपहै। येजितने जीव भासतेहैं वेसब ब्रह्मस्वरूपहैं, द्वैत कुछनहीं और न इनमें कुछभेदहै। राम जीने पूछा, हे मुनीश्वर! आप कहतेहैं कि, आदिजीव कोईनहीं; तो इनजीवोंको पालनेवाला कौन है? वह नियामक कौनहै जिसकी आज्ञा में ये विचरते हैं? जो कोई हुआही नहीं तो ये सर्वज्ञ और अल्पज्ञ क्योंकर होते हैं और एकमें कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले? हे रामजी! जिसको तुम आदि जीव कहतेहो वह ब्रह्मरूपहै। वह नित्य, शुद्ध और अनन्तशक्तिमान् अपने आपमें स्थितहै और उसमें जगत् कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनन्तशक्ति में आदिचित्त किञ्चन हुआहै वहीशुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ता जीवकी नाईं भासने लगी है। स्पंदद्वारा हुयेकी नाईं भासतीहै परअपने स्वरूपसे इतरकुछ हुआ नहीं चैतन्य सम्वितआदि स्पन्दसे विराट आत्मा ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआहै और उससे सङ्कल्प करके जगत् रचाहै। उसीमें शुभ अशुभ कर्मरचेहैं और उनसे नीतिरचीहै-अर्थात् यह शुभहै और यह अशुभ है; वही आदिनीति महाप्रलय पर्यन्त ज्योंकी त्यों चली जातीहै। हे रामजी! वह अनन्तशक्तिमान्देव जिससे आदि फुरनाहुआ है वैसेही स्थितहै।जो आदिसर्वशक्ति फुरीहै वहतैसेई है-जो अल्पज्ञफरा है सो अल्पज्ञही है। हे रामजी! संसारके पदार्थोंमें नीतिशक्ति प्रधानहै; उसके लङ्घनेको कोईभी समर्थ नहींहै। जैसे रची है तैसेही महाप्रलय पर्यन्तरहती है। हे रामजी! आदि-नित्य-विराटपुरुष अन्तवाहकरूप पृथ्वीआदिक तत्त्वोंसे रहित है और यह जगत् भी अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से नहीं उपजा-सब सङ्कल्परूपहै। जैसे मनोराजका नगर शून्य होता है तैसेही यह जगत् शून्यहै। हे रामजी! इससर्ग का निमित्त कारण और समवाय कारण कोई नहीं। जो पदार्थ निमित्त कारण और समवाय कारण विना दृष्टिआवे उसे भ्रममात्र जानिये; वह उपजा नहीं। जो पदार्थ उपजताहै वह इन्हीं दोनों कारणोंसे उपजताहै पर वह जगत्का कारण इनमेंसे कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता नित्य, शुद्ध और अद्वैत सत्ता है उसमें कार्य्य कारणकी कल्पना कैसेहो? हे रामजी! यह जगत् अकारणहै केवल भ्रांतिसे भासता है। जब तुमको आत्मविचार उपजेगा तब दृश्यभ्रम मिटजावेगा। जैसे दीपक हाथमें लेकर अन्धकारको देखिये तो कुछ दृष्टि आता तैसेही जो विचारकरके देखोगे तो जगत्भ्रम मिट जावेगा। जगत्भ्रम मनके फुरनेसेही उदयहुआहै; इससे संकल्पमात्र है। इसको अधिष्ठान ब्रह्महै, सब नामरूप उस ब्रह्मसत्तामें कल्पितहै और षटबिकार भी उसी ब्रह्मसत्तामें फुरेहैं पर सबसे रहित और शुद्ध चिदाकाशरूपहै और जगत् भी वही रूपहै। जैसे समुद्रमें द्रवतासे तरंग, बुदबुदे और फेन भासते हैं तैसेही आत्मसत्तामें

चित्तकेफुरनेसे जगत् भासताहै। जैसे आदिचित्तमें पदार्थसत्ता दृढ़हुईहै, तैसेही स्थित है और आत्माके साथ अभेदहै, इतर कुछनहीं; सब चिदाकाशहै। इच्छा, देवता, समुद्र, पर्वत ये सब आकाशरूपहैं। हे रामजी! हमको सदा चिदाकाशरूपही भासताहै और आत्मसत्ताही मन, बुद्धि, पर्वत, कन्दरा,सब जगत् होकर भासताहै। जब चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जगत् भासताहै। जैसे वायु स्पन्दरूप होताहै तो भासताहै और निस्पन्दरूप होताहै तो नहीं भासता, तैसेही जब चित्तसम्वेदन स्पन्द-रूप होताहै तो जगत् भासताहै और जब चित्त सम्वेदन स्फुरणरूप होताहै तो जगत् कल्पना मिटजातीहै। हे रामजी? चिन्मात्रमें जो चैत्यभाव हुआहै इसीका नाम जगत्है; जब चैत्यसे रहित हुआ तो जगत् मिटजाताहै। जब जगतही न रहा तो भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्मामें कैसेहो? इससे न कोई कार्य्य है, न कारण है और न जगत्है—सब भ्रममात्र कल्पनाहै। शुद्ध चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रमें चित्त सदा किञ्चन रहताहै। जैसे मिरचों के बीजमें तीक्ष्णता सदा रहतीहै परन्तु जब कोई खाताहै तब तीक्ष्णता भासतीहै, अन्यथा नहीं भासती; तैसेही जब चित्तसम्वेदन चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जीवको जगत् चैतन्यभासता है और सम्वेदनसे रहित जीवको जगत् कल्पना नहींभासती। हे रामजी! जब सम्वे-दनके साथ परिछिन्न सङ्कल्प मिलताहै तब जीव होताहै और जबइससे रहितहोता है तो शुद्धचिदात्मा ब्रह्महोताहै। जिसपुरुषकी अशेष कल्पना मिटगईहै औरजिसको शुद्धनिर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआहै वहपुरुष संसारभ्रमसे मुक्तहुआहै। हे रामजी! यहसब जगत् आत्माका आभासरूपहै। वह आत्मा अछेद्य, अदाह्य; अक्लेद्य, नित्य, शुद्ध, सर्वगत स्थानकी नाईं अचल अहंरूपहै और सब जगत् चिदाकाशरूप है। हमकोतो सदा ऐसेही भासताहै पर अज्ञानी वाद विवाद किया करते हैं। हमको वादविवाद कोई नहीं क्योंकि, हमारा सब भ्रम नष्ट होगयाहै। हे रामजी! यह सब जगत ब्रह्मरूप है और द्वैतकुछ नहीं। जिसको यह निश्चयभयाहै उसके सब अङ्ग अपना स्वरूपहीहै तो निराकार और निर्वपुसत्ताके अङ्ग अपना स्वरूप क्योंनहो। ये सब प्रपञ्च चिदाकाशरूपहैं परन्तु अज्ञानीको भिन्न भिन्न और जन्म मरण आदिविकार भासते हैं और ज्ञानवान्को सब आत्मरूपही भासते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश सब आत्माके आश्रय फुरतेहैं और चित्तशक्ति-ही ऐसेहोकर भासतीहै। जैसे वसन्तऋतु आतीहै तो रसाशक्तिसे वृक्ष और बेलें सब प्रफुल्लित होकर भासती हैं तैसेही चित्तशक्ति—स्पन्दता ही जगत्रूप होकर भासतीहै। हेरामजी! जैसे वायु स्पन्दता से भासताहै तैसेही जगत् फुरने में भासता है और तैसेही चित्तसम्वित जगत्रूप होकर भासताहै। इस फुरनेसे ही जगत् है

और कोई वस्तु नहींहै; इसीसे जगत् कुछ नहींहै । जैसे समुद्र तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मा जगत् रूपहो भासताहै । इससे जगत् दृश्यभावसे भासताहै पर सम्वितसे कुछनहीं । वायुजड़है और आत्मा चैतन्यहै औरजलभी परिणामसे तरङ्ग-रूप होताहै; आत्माच्युत और निराकारहै । हे रामजी ! चैतन्यरूप रत्नहै और जगत् उसका चमत्कारहै अथवा चैतन्यरूपी अग्निमें जगत्रूपी उष्णताहै । हे रामजी ! यह चैतन्य प्रकाशही भौतिक प्रकाशरूप होकर भासताहै, इससे जगत् हैं; और वस्तुसे नहीं । चैतन्य सत्ताही शून्य आकाशरूप होकर भासताहै । इसभावसे जगत् है, वास्तव नहीं हुआ । इससे जगत् कुछनहीं चेतनसत्ताही पृथ्वीरूपहोकर भासती है, दृश्यमें आताहै इससे जगत् है पर आत्मसत्तासे इतर कुछनहीं हुआ । चैतन्य विन घनअन्धकार में जगत्रूपी कृष्णताहै; अथवा चैतन्यरूपी काजल का पहाड़है और जगत्रूपी उसका प्रमाण भ्रमहै और चैतन्यरूपी सूर्य्यमें जगत्रूपी दिनहै; आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्गहै; आत्मरूपी कुसुम में जगत्रूपी सुगन्ध है आत्मरूपी बरफ में शुक्लता और शीतलतारूपी जगत् है; आत्मरूपी वेलि में जगत्रूपी फूलहै; आत्मरूपी स्वर्ण में जगत्रूपी भूषण है; आत्मरूपी पर्वत में जगत्रूपी जड़ सघनताहै; आत्मरूपी अग्नि में जगत्रूपी प्रकाशहै; आत्मरूपी आकाश में जगत्रूपी शून्यताहै; आत्मरूपी ईख में जगत्रूपी मधुरताहै; आत्म-रूपी दूधमें जगत्रूपी घृतहै, आत्मरूपी मधुमें जगत्रूपी मधुरताहै अथवा आत्म-रूपी सूर्य्य में जगत्रूपी जलाभासहै और नहीं है । हेरामजी ! इसप्रकार देखो कि जो सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, परमानन्द स्वरूपहै वह सर्वदा अपने आपमें स्थितहै—भेद कल्पना कोई नहीं । जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूपहोके भासताहै; तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होके भासतीहै । न कोई उपजताहै और न कोई नष्टहोताहै । हे रामजी ! आदिजो चित्तशक्ति स्पंदरूपहै वह विराटरूप ब्रह्म है और चिदाकाशरूपहै; आत्म-सत्तासे इतरभावको नहीं प्राप्तहुआ । जैसे पत्रके ऊपर लकीरेंहोतीहैंसो पत्रसे भिन्न वस्तु नहीं पत्ररूपही हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् है कुछइतर नहीं है वल्कि; पत्रके ऊपर लकीरेंतो आकार हैं पर ब्रह्ममें जगत् कोई आकारनहीं । सब आकाशरूप मनमें फुरताहै; जगत् कुछहुआ नहीं । जैसे शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै तैसेही आत्मामें मनने जगत् कल्पनाकी है । वास्तवमें कुछ हुआ नहीं शिलावज्रकी नाईं पीनहै और सब जगत्को धरि रहीहै और आकाशकी नाईं विस्ताररूपहोकर शांत रूपहै । निदान हुआ कुछनहीं जो कुछहै सो परब्रह्मरूपहै और जो ब्रह्महीहै तो कल्प-ना कैसेहो ? इतनाकहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब मुनिशार्दूल वशिष्ठ जीनेकहा तब सायंकालका समयहुआ और सबसभापरस्पर नमस्कारकरके अपने२

आश्रमकोगई। फिरसूर्यकी किरणोंके निकलतेही सबअपने २ स्थानों पर आबैठे॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादननामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥
वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आत्मामें कुछउपजा नहीं भ्रमसे भासरहा है। जैसे आकाशमें भ्रमसे तरवरे और मुक्तमाला भासतीहैं तैसेही अज्ञानसे आत्मामें जगत् भासताहै। जैसे थम्भेकी पुतलियां शिल्पीके मनमें भासतीहैं कि, इतनी पुतलियां इसथम्भेमें हैं सो पुतलियां कोई नहीं क्योंकि, किसीकारणसे नहींउपजीं; तैसेहीचेतनरूपी थम्भेमें मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पताहै परन्तु किसीकारण से नहीं उपजीं—ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्योंही स्थितहै। जैसे सोमजलमें त्रिकाल तरङ्गोंका सद्भाव होताहै। वास्तवमें जगत्का होनाकुछनहीं चित्तकेफुरनेसेही जगत् भासताहै। जैसे सूर्यकी किरणेंझरोखोंमें आतीहैं और उसमें सूक्ष्म त्रिसरेणु होतेहैं उनसेभीचिद्-अणु सूक्ष्म हैं जैसे त्रिसरेणुसे सुमेरु पर्वतस्थूलहै तैसेही चिद्अणुसे त्रिसरेणुस्थूल है। ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुसे यहजगत् फुरताहै सोवह आकाशरूपहै; कुछ उपजा नहीं और फुरनेसे भासताहै। हे रामजी! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जो कुछ जगत् भासताहै सो कुछउपजा नहीं तो और पदार्थ कहां उपजाहो? निदान सब आकाशरूपहै वास्तवमें कुछ उपजा नहीं और जो कुछ अनुभवमें होताहै वहभीअसत् है। जैसेस्वप्नसृष्टि अनुभवसे होतीहै वह उपजी नहीं, असत्रूपहै? तैसेही यह जगत्भी असत्रूपहै। शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपमें स्थितहै; उससत्ताको त्यागकरके जो अवयव अवयवीके विकल्प उठातेहैं उनको धिक्कारहै। यहसब जगत् आकाशरूपहै और अधिभौतिक जगत् जोभासताहै सो गन्धर्व नगर और स्वप्न सृष्टिवत्है। हे रामजी! पर्वतों सहित जो यह जगत् भासताहै सो रत्तीमात्रभी नहीं। जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रतकी रत्तीभरभी नहींहोते क्योंकि, कुछ हुयेनहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपहै और भ्रांतिकरकेभासताहै। जैसे सङ्कल्पका मेघ सूक्ष्महोताहै तैसेहीयह जगत् आत्मामें तुच्छहै। जैसे शशेकेशृंग असत्होतेहैं तैसेहीयहजगत्असत्है और जैसे मृगतृष्णाकी नदीअसत्होतीहै तैसेहीयह जगत् असत्है; असम्यक्ज्ञानसेही भासताहै और विचार कियेसे शान्तिहोजातीहै। जबशुद्ध चैतन्यसत्तामें चित्तसम्वेदन होताहै तब वही सम्वेदन जगत्रूप होकर भासता है परन्तु जगत्हुआ कुछ नहीं। जैसे समुद्र अपनी द्रवताके स्वभावसे तरंगरूप हो भासताहै परन्तु तरंग कुछ और वस्तुनहींहै जलरूपहीहै तैसेहीब्रह्मसत्ता जगत्रूपहोकर फुरतीहै। सो जगत् कोईभिन्न पदार्थनहींहै ब्रह्मसत्ताही किंचनद्वारा ऐसे भासतीहै। जैसाबीज होताहै तैसाही अंकुर निकलताहै इसलिये; जैसी आत्मसत्ताहै तैसेही जगत्है दूसरीवस्तु कोई नहीं आत्मसत्ता अपने आपमेंही स्थितहै पर चित्तसम्वेदनके स्पंदसे जगत् रूपहोताहै। हे राम

जी ! इसीपर एक आख्यान तुमको सुनाताहूँ,वह श्रवणकाभूषणहै और उसके समझनेसे सब संशय मिटजावेंगे और विश्राम प्राप्तहोगा।इतनासुन रामजीवोले, हे भगवन् ! मेरे बोधकी वृद्धिके निमित्त मण्डपाख्यान जिसविधिसे हुआहै सो संक्षेपसे कहो। वशिष्ठजी वोले;हे रामजी ! इसपृथ्वीमें एकमहातेजवान् राजापद्म हुआथा ।वहलक्ष्मीवान्, सन्तानवान्, मर्य्यादा के धारनेवाला, अतिसतोगुणी और दोषोंका नाशकर्त्ता, एवम् प्रजापालक, शत्रुनाशक और मित्रप्रियथा और सम्पूर्ण राजसी और सात्विकी गुणोंसे सम्पन्न मानो कुलका भूषण था । लीला नाम उसकी स्त्री वहुत सुन्दर और पतिव्रताथी । मानो लक्ष्मीने अवतार लियाथा । उसके साथ राजा कभी वागों और तालों और कभी कदम्बवृक्षों और कल्पवृक्षोंमें जायाकरताथा, कभी सुन्दर २ स्थानोंमेंजाके क्रीड़ाकरताथा;कभीवरफका मन्दिरवनवाके उसमेंरहताथा और कभीरत्नमणिके जड़ेहुये स्थानोंमें शय्या विछवाके विश्राम करताथा । निदान इसी प्रकार दोनों दूर और निकटके ठाकुरद्वारों और तीर्थोंमें जाके क्रीड़ाकरते और राजसी और सात्विकी स्थानोंमें विचरतेथे वे दोनों परस्पर श्लोकभी वनातेथे एकपद कहे दूसरा उसको श्लोक करके उत्तर दे और श्लोक भी ऐसेपढ़ें कि पढ़ने में तो भाषा और अर्थमें संस्कृतहों । इसीप्रकार दोनोंका परस्पर अतिस्नेहथा । एक समय रानीने विचारकिया कि, राजा मुझको अपने प्राणोंकी नाईं प्यारे और बहुत सुन्दरहैं इसलिये कोई ऐसा यत्न, यज्ञ वा तप-दान करूँ कि, किसीप्रकार इसकी सदा युवावस्था रहे और अजर अमर हो इसका और मेरा कदाचित् वियोग न हो । ऐसे विचारकर उसने ब्राह्मणों, ऋषीश्वरों और मुनीश्वरोंसे पूछा कि, हे विप्रो ! नर किसप्रकार अजर-अमरहोताहै? जिसप्रकार होताहो सो हमसे कहो ? विप्रवोले, हे देवि ! जप, तप आदिसे सिद्धता प्राप्तहोतीहै परन्तु अमरनहींहोता । सब जगत् नाशरूप है इस शरीरसे कोई स्थिर नहीं रहता । हे रामजी ! इसप्रकार ब्राह्मणोंसे सुन और भर्त्ताकेवियोगसे डरकर रानी विचार करनेलगी कि, भर्त्तासे मैं प्रथममरूँ तो मेरे बड़ेभागहो और सुखवानहूँ और जो यहप्रथममृतकहो तो वही उपायकरूँ जिससे राजाकाजीव मेरे अन्तःकरणमेंहीरहे-वाह्यनजावे-और मैं दर्शन करतीरहूँ । इससे मैं सरस्वतीकी सेवाकरूँ । हे रामजी ! ऐसाविचारकर शास्त्रानुसार तपरूप सरस्वतीका पूजन करनेलगी । निदान त्रिरात्र और दिनपर्य्यन्त निराहार रह चतुर्थदिनमें व्रतपारणकरे और देवतों, ब्राह्मणों, पण्डितों, गुरू और ज्ञानियोंकी पूजाकर, स्नान, दान, तप, ध्यान, नित्यप्रतिकीर्त्तन करे पर जिसप्रकार आगे रहतीथी उसीप्रकाररहि भर्त्ताको न दिखावे । इसीप्रकार नेमसंयुक्त क्लेशसेरहित तप करनेलगी।जवतीनसौ दिनव्यतीतहुये तवप्रीतियुक्तहो सरस्वतीकी पजाकी और वागीश्वरीने प्रसन्नहोकर दर्शनदिया और कहा; हेपुत्री !

तूने भर्त्ताके निमित्त निरन्तरतप कियाहै इससे मैं प्रसन्नहुई; जो वर तुझे अभीष्टहो सो मांग। लीला बोली, हेदेवी! तेरी जयहो! मैं अनाथ तेरी शरणहूं, मेरीरक्षाकर। इस जन्मको जरारूपी अग्नि जो बहुत प्रकारसे जलातीहै उसके शान्त करने को तुम चन्द्रमाहो और हृदयके तम नाश करनेको तुम सूर्य्यहो। हे माता! मुझको दो वरदो–एक यहकि, जब मेराभर्त्ता मृतकहो तब उसका पुर्य्यष्टक वपु बाह्य न जावे अन्तःपुरहीमेंरहे और दूसरा यह कि, जब मेरीइच्छा तुम्हारे दर्शनकी हो तब तुम दर्शनदो। सरस्वतीनेकहा ऐसेहीहोगा। हे रामजी! ऐसा वरदान देकर; जैसेसमुद्र में तरङ्ग उपजके लीन होतेहैं; तैसेही देवीअन्तर्द्धान होगई और लीला वरदान पाकर बहुत प्रसन्नभई। कालरूपी चक्रमें क्षणरूपी आरे लगेहुयेहैं, और उसकी तीनसौसाठ कीलें हैं वह चक्र वर्षपर्य्यन्त फिरकर फिर उसीठौर आताहै। ऐसे कालचक्र के वेग से राजापद्म रणभूमिकासे विषयरूपी घरमें पड़ाहुआ मृतक हो ऐसा होगया जैसे सूखेपत्रसे रसनिर्मल होजाताहै। पुर्य्यष्टकके निकलनेसे राजाका शरीर कुम्हिलागया और रानी उसके मरनेसे वहुतशोकवान् भई। जैसे कमालिनीजल विना कुम्हिलाजाती है तैसेही उसके मुखकी कान्ति दूर होगई और विलाप करनेलगी। कभी ऊँचेस्वरसे रुदनकरे और कभी चुप रहजावे। जैसे चकवेके वियोगसे चकवी शोकवान् होती है और जैसे सर्पकी फुत्कार लगेसे कोई मूर्च्छित होताहै तैसेही राजाके वियोगसे लीला मूर्च्छित होगई और व्याकुलहोके प्राण त्यागने लगी। तब सरस्वतीजीने दया करके आकाशवाणीकी कि, हे सुन्दरि! यहजो तेरा भर्त्ता मृतक भयाहै इसको तू सर्वओरसे फूलोंसे ढांपकररख; तुझको फिर भर्त्ताकी प्राप्ति होवेगी और यह फूल न कुम्हिलावें-गे। तेरेभर्त्ताकी ऐसीअवस्थाहै जैसे आकाशकी निर्मल कांतिहै और वहतेरेहीमंदिर मेंहै कहीं गया नहीं। हे रामजी! इस प्रकार कृपा करके जब देवीने वचन कहे तोजैसे जलविना मछली तड़पती हुई मेघकी वर्षासे कुछ शांतिवान्होतीहै; तैसेही लीला कुछ शांतिवान्हुई। फिर जैसे धनहो और कृपणतासे धनकासुख न होवे तैसेहीवच-नोंसे उसे शांति हुई और भर्त्ताके दर्शन विना जब शांति न हुई तब उसने ऊपर नीचे फूलोंसे भर्त्ताको ढांपा और उसके पास आप शोकवान् होकर बैठी रुदनकरने लगी। फिर देवीकी आराधनाकी तो अर्द्धरात्रिकेसमय देवीजी आ प्राप्तहुई औरकहा; हे सुन्दरि! तैंने मेरा स्मरण किस किस निमित्त कियाहै और तू शोक किस कारण करती है? यह तो सब जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है; तैसेही यह जगत्है। अहंत्वं इदंसे ले आदिक जो जगत् भासताहै सो सब कल्पनामात्रहै और भ्रम करके भासताहै। आत्मामें कुछ नहीं तुम किसका शोककरतीहो। लीला बोली, हे परमेश्वरि! मेराभर्त्ता कहांस्थित है और उसने क्यारूप धारणकियाहै? उसको

मुझे मिलाओ ; उसविना मैं अपना जीना नहीं देखसक्ती । देवीबोली, हे लीले ! आकाश तीनहैं—एक भूताकाश, दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश। भूताकाश चित्ताकाशके आश्रयहैं और चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रयहै तेरा भर्त्ता अबभूताकाशको त्यागकर प्रत्यक्ष चित्ताकाशकोगयाहै। चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रयस्थितहै इससे जब तू चिदाकाशमें स्थित होगी तब सब ब्रह्माण्ड तुझको भासेगा। सब उर्म्मीमें प्रतिबिंबित होतेहैं वहां तुझकोभर्त्ताका और जगत्का दर्शन होगा। हे लीले! देशसे क्षणमें संवित देशांतरको जाताहै उसके मध्य जो अनुभव आकाशहै वह चिदाकाशहै। जब तू सङ्कल्पको त्यागदे तो उससे जो शेषरहेगा सो चिदाकाशहै। हेलीले! यहां जो जीव विचरतेहैं सो पृथ्वीके आश्रयहैं और पृथ्वी आकाशके आश्रयहै, इससे ये सबजीव जो विचरते हैं सो भूताकाशके आश्रय विचरतेहैं और चित्त जिसकेआश्रय से एक क्षणमें देश देशान्तर भटकताहै सो चित्ताकाशहै। हे लीले ! जब दृश्यका अत्यन्त अभावहोताहै तब परमपदकी प्राप्तिहोती है सो चिरकाल के अभ्याससे होतीहै और मेरा यह वर हैकि, तुझको शीघ्रही प्राप्तहो। हेरामजी ! जब इसप्रकार कहकर ईश्वरी अन्तर्द्धान होगई तब लीला रानी निर्विकल्प समाधिमें स्थितभई और चितसहित देहका अहङ्कार त्यागकर पक्षीसमान अपने गृहसे उड़करएकक्षणमें आकाशको पहुंची जो नित्यशुद्ध, अनन्त, आत्मा, परमशांतिरूप और सर्वका अधिष्ठान है उस में जाकर भर्त्ताको देखा। रानी स्पन्द कल्पना लेगईथी उससे अपने भर्त्ता को वहां देखा और बहुत मंडलेश्वरभी सिंहासनोंपर बैठे देखे। एकबड़े सिंहासन परबैठे अपनेभर्त्ता कोभी देखा जिसके चारोंओर जयजय शब्द होताथा। उसने वहां बड़ेसुन्दर मन्दिर देखे और देखाकि, राजाके पूर्वदिशा में अनेक ब्राह्मण, ऋषीश्वर और मुनीश्वर बैठे हैं और बड़ी ध्वनिसे पाठ करतेहैं; दक्षिणादिशामें अनेक सुन्दरी स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणों सहित बैठीहुईहैं उत्तरदिशामें हस्ती, घोड़े, रथ, प्यादे और चारों प्रकार की अनन्तसेना देखी और पश्चिममें मण्डलेश्वर देखे। चारों दिशा में मण्डलेश्वर उसके जीवके आश्रय विराजते देखके आश्चर्य में हुई। फिर नगर और प्रजादेखी कि, सब अपने व्यवहार में स्थित हैं और राजाकी सभामें जा बैठी पररानी सबको देखतीथी और रानीको कोई न देखताथा। जैसे और के संकल्पपुरको और नहींदेखसक्ता तैसेही रानीको कोई देख न सके। तब रानीने उसका अन्तःपुर देखा जहां ठाकुरद्वारे बने हुये देवताओंकी पूजाहोतीथी । वहांकी गन्धधूप और पवन त्रिलोकीको मग्नकरती थी और राजाकायश चन्द्रमाकी नाईं प्रकाशितथा। इतनेमें पूर्वदिशा से हलकारेने आके कहा कि, हे राजन् ! पूर्व दिशामें और किसी राजाका क्षोभ हुआहै; फिर उत्तर दिशासे हरकारेने आकहा कि, हे राजन् ! उत्तर दिशा में और राजाका क्षोभ हुआहै

और तुम्हारे मण्डलेश्वर युद्धकरते हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसेभी हर-कारा आया और उसनेभी कहा कि, और राजाका क्षोभ हुआहै और पश्चिम दिशा से हरकारा आया उसने कहा कि, पश्चिम दिशामें भी क्षोभ हुआहै। एक और हर-कारा आया उसने कहा कि, सुमेरु पर्वतपर जो देवतों और सिद्धों के रहनेके स्थान हैं वहां क्षोभ हुआहै और अस्ताचल पर्वत क्षोभ हुआहै। तव जैसे वड़े मेघ आवें तैसेही राजाकी आज्ञासे वहुतसी सेना आई। रानीने वहुतसे मंत्री, नन्द आदिक टहलुये, ऋषीश्वर, और मुनीश्वर वहां देखे। जितने भृत्यथे वे सव सुन्दर और वर्षासेरहित श्वेतवादरोंकी नाईं श्वेतवस्त्र पहिने देखे और वड़े वेदपाठी ब्राह्मण देखे जिनके शब्दसे नगारेके शब्दभी सूक्ष्मभासतेथे। हे रामजी! इसप्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टहलुये और वालक उसमें देखे सो पूर्व और अपूर्व दोनों देखती भई और आश्चर्यवान् हो चित्तमें यह शङ्का उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मुआहै वा सम्पूर्ण नगर मृतक भयाहै जो ये सव परलोक में आये हैं। तव क्या देखा कि, मध्याह्नकासूर्य शीशपर उदितहै और राजा सुन्दर षोड़शवर्ष का प्रथमकी जरावस्था को त्यागकर नूतन शरीरको धारे वैठा है। ऐसे आश्चर्य्यको देखके रानी फिर अपने गृहमें आई। उससमय आधीरात्रिका समय था अपनी सहेलियोंको सोई हुई देख जगाया और कहा जिस सिंहासन पर मेरा भर्त्ता वैठता था उसको साफकरो मैं उसके ऊपर वैठूंगी और जिसप्रकार उसके निकटमंत्री और भृत्य आनवैठतेथे उसीप्रकार आवें। इतना सुनकर सहेलियों ने जा वड़े मंत्रीसे कहा और मंत्रीने सवको जगाय और सिंहासन झड़वाकर मेघकी नाईं जलकी वर्षा की। सिंहासन पर और उसके आसपास वस्त्र विछाये और मशालेंजगाकर वड़ा प्रकाश किया। जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पान कियाथा तैसेही अन्धकारको प्रकाशने जव पान कर लिया तव मंत्री, टहलुये, पण्डि-त, ऋषीश्वर, ज्ञानवान्, जितने कुछ राजाके पासआतेथे वे सव सिंहासनके निकट आकर वैठे और इतने लोग आये मानो प्रलयकालमें समुद्रका क्षोभ हुआ है और जलसे पूर्ण प्रलयहुई सृष्टि मानो अनन्त उत्पन्न भई हैं। लीला इसप्रकार मंत्री टह-लुये, पण्डित और वालकोंको भर्त्ता विना देख वड़े आश्चर्यको प्राप्तभई कि, एक आ-दर्शको अन्तरवाहर दोनोंओर देखतीहैं। इसप्रकार देखके हृदयकी वार्त्ता किसी को न वताई और भीतर आकर कहने लगी कि, वड़ा आश्चर्य है; ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती कि, यह क्या है। इसप्रकार आश्चर्यमान होकर उसने सरस्वती जीकी आराधना की और सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धरके आन प्राप्तभई। तव लीलाने कहा; हे भगवति! मैं वारम्वार पूछतीहूं, तुम उद्वेगवान् न होना; वड़ोंकायह स्वभाव होता है कि जो शिष्यवारम्वार पूछे तौभी खेदवान् नहीं होते। अव मैं पूछ-

तीहूं कि, यहजगत् क्याहै और वह जगत् क्याहै ? दोनोंमें कृत्रिम कौनहै और अकृ-
त्रिम कौनहै ! देवी बोली; हे लीले ? तूने पूछाकि, कृत्रिम कौनहै और अकृत्रिम कौन
है सो मैं पीछे तुझसे कहूंगी। लीला बोली; हे देवि ! जहां तुमहम बैठेहैं वह अकृ-
त्रिमहै और वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्गहै सो कृत्रिमहै क्योंकि; सूर्य्यस्थान में वहसृष्टि
हुईहै । देवी बोली; हे लीले ! जैसा कारण होता है तैसाही कार्य्य होताहै । जो
कारण सत्होता है तो कार्य्य भी सत् होताहै और सत्से असत् नहीं होता और
असत् से सत् भी नहीं होता और न कारण से अन्यकार्य्य होता है । इससे जैसे
यह जगत्है तैसाही वह जगत्भी है । इतना सुन फिर लीलाने पूछा; हे देवि !
कारणसे अन्यकार्य्य सत्ताहोतीहै क्योंकि; मृत्तिका जलके उठाने में समर्थनहीं और
जब मृत्तिका का घट बनताहै तब जलको उठाता है तो कारणसे अन्यकार्य्य कीभी
सत्ताहुई। देवी बोली; हे लीले ! कारणसे अन्यकार्य्यकी सत्ता तब होती है जब
सहायकारी भिन्नभिन्न होते हैं। जहां सहायकारी नहीं होता वहां कारणसे अन्यकार्य्य
की सत्तानहीं होती। तेरे भर्त्ताकी सृष्टिभी कारण बिना भासीहै। उसका जीव पुर्य्यष्टक
आकाशरूप था, वहां न कोई समवायकारणथा और न निमित्तकारण था इससे
उसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका कियाहो तो कृत्रिमहो पर वहतो आकाश
रूप पृथ्वीआदिक तत्त्वोंसे रहित है। जो समवाय कारणही न हो तो उसका निमित्त
कारण कैसेहो। इससे तेरे भर्त्ताका सर्गअकारणहै । लीलाने पूछा; हे देवि ! उस सर्ग
की जो स्मृति संस्कारहै सो कारण क्यों न हो ! देवी बोली; हे लीले ! स्मृति तो कोई
वस्तुनहींहै। स्मृति आकाशरूपहै। स्मृति सङ्कल्पकानामहै सो वहभी सङ्कल्पआकाश
रूपहै और कोई वस्तु नहीं वह मनोराजरूपहै इससे उसकी सत्ताभी कुछनहींहै केव-
ल आभासरूपहै लीलाबोली ; हे महेश्वरि ! जो वह सङ्कल्पमात्र आकाशरूपहै तौभी
आकाशरूपहै और जहां हम तुम बैठे हैं वहभी वहीहै तो दोनों तुल्यहै देवी बोली;
हे लीले ! जैसेतुम कहतीहो तैसेही है। अह,त्वं,इदं,यह,वह,सम्पूर्ण जगत् आकाश
रूपहै और भ्रान्तिमात्र भासताहै। उपजा कुछनहीं सब आकाशमात्रहै और स्वरूप
से इनका कुछ सद्भाव नहीं होता जो पदार्थ सत्य न हो उसकी स्मृति कैसे सत्हो ?
लीला बोली; हे देवि ! अमूर्त्तिवत्मेरा भर्त्ताथा सो मूर्त्तिवत्हुआ और उसको जगत्
भासनेलगा सो कैसे भासा ? उसका स्मृति कारण है वा किसी और प्रकार से यह
मेरे दृश्यभ्रम निवृत्ति के निमित्त मुझको वहीरूपक हुआहै। देवी बोली, हे लीले ! यह
और वह सर्ग दोनों भ्रमरूप हैं। जो यह सत्हो तो इसकी स्मृतिभी सत्हो परयह
जगत् असत्रूप है। जैसे यह भ्रम तुमको भासाहै सो सुनो। एक महाचिदाकाश है
जिसका किञ्चन चिद्अणुहै और उसके किसी अंशमें जगत्रूपी वृक्षहैं। सुमेरु उस

वृक्षके थम्भहैं सप्तलोक डालीहैं; आकाश शिखा हैं सप्तसमुद्र उसमेंरसहैं और तीनों लोक फलहैं। सिद्ध,गन्धर्व, देवता, मनुष्य और दैत्यरूप मच्छर उसमें रहतेहैं और तारागण उसके फूलहैं। उसी वृक्षके किसी छिद्रमें एकदेश है और उस में एक पर्वत है जिसके नीचे एक नगर बसताहै। वहां एकनदीका प्रवाह चलता है और वशिष्ठ नामएक ब्राह्मण जो बड़ा धार्मिक है वहां सदा अग्निहोत्र करता है धन, विद्या, पराक्रम और कर्मोंमें वशिष्ठजी ऋषीश्वरों के समानथा परन्तु ज्ञानमें भेदथा। जो खेचर वशिष्ठका ज्ञानहै तैसाभूचर वशिष्ठका ज्ञाननथा। उसकी स्त्रीकाभी नामअरुन्धतीथा। वह पतिव्रता और चन्द्रमाके समानसुंदरथी और उसी अरुन्धतीके समान विद्या, कर्म, क्रान्ति, धन, चेष्टा और पराक्रम उसकाभीथा और चैतन्यता अर्थात् ज्ञान और सब लक्षण एकसमान थे। वह आकाश की अरुन्धती थी और यह भूमि की अरुन्धतीथी। एक काल में वशिष्ठ ब्राह्मण पर्वत के शिखरपर बैठाथा। वह स्थान सुन्दर हरे तृणोंसे शोभायमान था। एक दिन एक अतिसुन्दरराजा नानाप्रकार के भूषणोंसे भूषित परिवारसहित उस पर्वतके निकट शिकार खेलने के निमित्त चला जाताथा। उसके शीशपर दिव्यचमर होता ऐसा शोभा देताथा मानो चन्द्रमाकी किरणें प्रसर रहीहैं और शिरपर अनेकप्रकारके छत्रोंकीछाया मानोरूपे का आकाश विदितहोता था। रत्नमणि के भूषण पहिरेहुये मंडलेश्वर उस के साथथे और हस्ती, घोड़े, रथ और पैदल चारों प्रकार की सेनाजोआगे चलीजाती थी उनकी धूरबादल होकर स्थितभई। निदान नौबत नगारे बजतेहुये राजाकी सवारी जाती देखके वशिष्ठ ब्राह्मण मनमें चिन्तवन करनेलगा कि, राजा को बड़ासुख प्राप्तहोता है क्योंकि, सब सौभाग्य से राजा सम्पन्नहोताहै। इसप्रकार राज्य मुझको भी प्राप्तहो। तबतो वह यह वांछा करनेलगा कि, मैं कब दिशाओं को जीतूंगा और मेरे यश से कब दशोंदिशा पूर्णहोंगी। ऐसेछत्र मेरे शिरपर कबढरेंगे और चारों प्रकारकी सेना मेरे आगे कब चलेगी। सुन्दर मन्दिरों में सुन्दरी स्त्रियोंके साथ में कबविलास करूंगा और मन्दमन्द शीतल पवन सुगन्धताके साथ कब परसहोगा। हे लीले! जबइसप्रकार ब्राह्मणने सङ्कल्प को धारण किया और जो अपने स्वकर्मथे सोभी करतारहा कि, इतनेही में उसको जरावस्था प्राप्तहुई; जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तो कुम्हिला जाता है तैसेही ब्राह्मणका शरीर कुम्हिला गया और मृत्युका समय निकट आया। जब उसकी स्त्री भर्त्तारकी मृत्यु निकट देखके कष्टवान् हुई तो उसने मेरी आराधना, जैसे तूनेकीहै, की और भर्त्ताकी अजर अमरता को दुर्लभ जानके मुझसे वरमांगा कि; हे देवि! मुझको यह वरदे कि, जबमेरा भर्त्ता मृतकहो तबइसका जीव बाहरनजावे। तब मैंने कहा ऐसेही होगा। हे लीले! जब बहुत काल व्यतीतहुआ तो ब्राह्मण मृतक

हुआ पर उसका जीव मन्दिर मेंही रहा । जैसे मन्दिर में आकाशही रहता है तैसेही मन्दिरमें रहा । हे लीले ! जबवह आकाशरूप होगया तब उसकी पुर्यष्टकमें जो राजा का दृढ़ सङ्कल्पथा इसालिये जैसे बीजसे अंकुर निकल आता है तैसेही वह संकल्प आनफुरा और उससे वह अपने को त्रिलोकी का राजा और परमसौभाग्य सम्पन्न देखने लगा कि, दशोंदिशा मेरे यशसे पूर्णहो रहीहैं; मानो यशरूपी चन्द्रमाकी यह पूर्णमासी है । जैसे प्रकाश अन्धकार को नाशकरता है तैसेही शत्रुरूपी अन्धकारका नाशकर्त्ता प्रकाशहुआ और ब्राह्मणों के चरणोंका सिंहासनहुआ अर्थात् ब्राह्मणोंको बहुत पूजनेलगा । निदान अर्थियोंको कल्पवृक्ष और स्त्रियों को कामदेव इत्यादिक जो सात्विकी और राजसी गुणहैं उनसे सम्पन्नहुआ । पर उसकीस्त्रीउसको मृतकदेख के बहुत शोकवान्हुई । जैसे जेठ आषाढ़की मंजरी सूखजाती है तैसेही वह सूखगई और शरीरको छोड़के अन्तबाहक शरीरसे अपने भर्त्ताको वैसेही जामिली जैसे नदी समुद्रको जामिलती हैं और ब्राह्मण के पुत्र धन संयुक्त अपनेगृहमें रहे । उसब्राह्मण को मृतकहुये अब आठदिन हुये हैं कि, वही बशिष्ठ ब्राह्मण तेराभर्त्ता राजापद्महुआ अरुन्धती उसकी स्त्री तू लीलाहुई । जितना कुछ आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और त्रिलोकी है सो बशिष्ठ ब्राह्मणके अन्तःपुरमें एक खुर्णमें स्थितहै । वहां तुमको आठदिन व्यतीत भये हैं और अभी सूतकभी नहींगया पर यहां तुमने साठसहस्र वर्ष राज्य करके नानाप्रकारके सुन्दर भोग भोगे हैं । हे लीले ! जिसप्रकार तूने जन्मलिया है सो मैंने सबकहा है । पर वह क्याहै ? सब भ्रममात्र है । जितना कुछजगत् तुझको भासता है सो आभासमात्र है सङ्कल्प से फुरता है वस्तुगत कुछ नहीं है । हे लीले ! जो यहजगत् सत् न हुआ तो इसकी स्मृति कैसे सत्यहो । तुम, हम और सब उसी ब्राह्मण के मन्दिर में स्थित हैं । लीला बोली; हे देवि ! तुम्हारे वचनको मैं असत्कैसे कहूं ? पर जो तुम कहतीहो कि उसब्राह्मणका जीव अपने गृहमेंही रहा; वहां हमतुम बैठेहैं और देशदेशांतर, पर्वत, समुद्रलोक और लोकपालकसब जगत्उसीही गृहमें हैं तो वह उसमें समाते कैसे हैं ? ये वचन तुम्हारे ऐसेहैं जैसे कोईकहे कि, सरसोंके दानेमें उन्मत्तहाथी बांधेहुयेहैं; सिंहोंके साथमच्छर युद्ध करतेहैं; कमलके डोड़ेमें सुमेरुपर्वतआयाहै; कमलपर बैठकर भ्रमर रसपानकर गया और स्वप्नेमें मेघ गर्जताहै, चित्रामणिके मोर नाचतेहैं और जाग्रतकी मूर्त्तिके ऊपर लिखाहुआ मोर मेघको गर्जता देखके नृत्य करता है । जैसे ये सब असम्भव वार्त्ता हैं तैसेही तुम्हारा कहना मुझको असम्भव भासताहै । देवी बोली; हे लीले ! यह मैंने तुझसे झूठनहीं कहा । हमारा कहना कदाचित् असत्नहीं क्योंकि; यह आदि परमात्माकी नीतिहै कि, महापुरुष असत् नहीं कहते । हमतो धर्मके प्रति-

पादन करनेवाली हैं; जहांधर्मकी हानिहोती है वहांहम प्रतिपादनकरती हैं और जो हम धर्मका प्रतिपादन न करें तो धर्मको औरकैसेमानें। हे लीले! जैसे सोये हुयेके स्वप्नेमें त्रिलोकी भास आती है सो अन्तःकरण मेंही होती है और स्वप्नेसे जाग्रत होती है तैसेही मरना भी जान। जबजहां मृतक होता है तहांही जीव पुर्यष्टक आकाशरूप होजाताहै और फिरबासनाके अनुसार उसको जगत् भासि आता है। जैसे स्वप्नेमें जगत् भासआताहै वह क्या रूप है? आकाशरूपही है तैसेही इसको भी जान। हे लीले! यह सब जगत् तेरे उसी अन्तःपुरमेंहै क्योंकि; जगत् चित्ताकाशमें स्थितहै। जैसे आदर्शमें प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही चित्तमें जगत्है और आकाशरूपहै इससे जो चित्त अन्तःपुरमें हुआ तो जगत्भी हुआ। हे लीले! यह जगत् जो तुझको भासताहै सो आकाशरूपहै। जैसे स्वप्न और सङ्कल्पनगर और कथाके अर्थभासते हैं तैसेही यह जगत्भीहै और जैसे मृगतृष्णाका जल भासताहै तैसेही यह जगत् भी जान। हे लीले! वास्तवमें कोई पदार्थ उपजा नहीं भ्रमसे सब भासतेहैं। जैसे स्वप्नेमें स्वप्नान्तर फिर उससे और स्वप्नादिखताहै तैसेही तुमको भी यह सृष्टि भ्रम भासितहै। हे लीले! यह जगत् आत्मरूप है। जहां चिद्अणु है वहां जगत्भी है परन्तु क्या रूपहै; आभासरूप है। जैसे वह आकाशरूप है तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है। जिस प्रकार यह चैत्यता है उस प्रकार हो भासता है इससे संकल्पमात्रहै। जैसे स्वप्नपुर भासताहै और जैसे सङ्कल्पनगर होता है तैसेही यह जगत् है। जैसे मरुथल की नदीके तरङ्ग भासते हैं तैसेही यहजगत् भासता। इससे इसकी कल्पना त्यागके रहो। इतना सुन फिर लीलाने पूछा; हे देवि! उस वशिष्ठ ब्राह्मणको मरे आठदिन बीते हैं और हमको ये साठसहस्र वर्ष बीते हैं यह वार्त्ता कैसे सत् जानिये? थोड़ेकालमें बड़ाकाल कैसे हुआ? देवीबोली; हे लीले! जैसे थोड़े देशमें बहुत देश आते हैं तैसेही थोड़ेकालमें बहुत कालभी आता है। अहन्ता ममताआदिक जितना कुछ जगत् है सो आभासमात्र है उसे क्रमसे सुन। जब जीव मृतक होताहै तब मूर्च्छा होतीहै और फिर मूर्च्छासे चैतन्यता फिर आती है; उसमें यह भासता है कि, यह आधार है तो यह आधेयहै; यह मेरा हाथ; यह मेरा शरीर है; यह मेरा पिता है; इसका मैं पुत्रहूं; अब इतने वर्षका मैं हुआ; ये मेरे बांधव हैं; इनके साथ मैं स्नेह करता हूं; यह मेरा गृह है और यह मेराकुल चिरकालका चलाआता है। मरनेके अनन्तर इतने क्रमको देखताहै। हे लीले! जिसप्रकार वह देखताहै तैसेही यहभी जान। एक क्षणमें औरका और भासने लगताहै। यह जगत् चैतन्य का किंचनहै। जैसे चेतनसम्वित्में चैत्यता होती है तैसेही यह जगत् भी भासताहै और जैसे स्वप्नेमें द्रष्टा,दर्शन,दृश्य तीनों भासतेहैं; तैसेही आत्मसत्तामें यह

जगत्किंचन होताहै और भ्रमसे भासताहै, वास्तवमें नानात्व कुछ हुआ नहीं । जैसे स्वप्नेमें कारण विना नाना प्रकार का जगत् भासताहै तैसेही परलोकमें नाना प्रकार का जगत् कारण विनाही भासताहै सो आकाश रूपहै और मनके भ्रमसे भासताहै तैसेही यह जगत्भी मनके भ्रमसे भासताहै । स्वप्न जगत;परलोक जगत् औरजाग्रत जगतमें भेदकुछ नहीं । जैसे वह भ्रममात्रहै तैसेही यहभी भ्रममात्रहै—वास्तवमें कुछ उपजा नहीं । जैसे समुद्रमें तरङ्ग कुछ वास्तव नहीं तैसेही आत्मामें जगत् कुछ वास्तव नहीं; असत्ही सत्की नाईं भासताहै । किसी कारणसे उपजा नहीं इसकारणसे अविनाशी है । हेलीले ! जैसे चैत्योन्मुखत्वहुये चेतन आकाशभासताहै तैसेही चैत्यतामें चेतन आकाशहै क्योंकि; कुछ हुआ नहीं । जैसे समुद्रमें तरङ्गहोताहै तो वह तरङ्ग कुछ जलसे इतरहै नहीं, जलही है; तैसेही आत्मामें जगत् कुछ इतर नहीं बल्कि; जलमें तरङ्गकी नाईं भी आत्मामें जगत् नहीं । जैसे शशेके शृंग असत्हैं तैसेही जगत् असत्है—कुछ उपजा नहीं । हे लीले ! जब जीव मृतक होताहै तब उसको देश, काल, क्रिया, उत्पत्ति, नाश, कुटुम्ब, शरीर, वर्ष आदिक नानारूप भासते हैं पर वे सब आभासरूप हैं । जिसप्रकार क्षणक्षणमें इतनेभासआतेहैं तैसेही कारण विना यह जगत् भासित है तो दृश्य और द्रष्टा भी कोई न हुआ । देश, काल, क्रिया, द्रव्य, इन्द्रियां, प्राण,मन और बुद्धि सब भ्रमसे भासतेहैं । आत्मा उपाधिसे रहित आकाश रूपहै और उसके प्रमादसे जगत् भ्रम उदय हुआ है । हे लीले ! भ्रममें क्यानहीं होता ? जैसे एक रात्रि में हरिश्चन्द्रको द्वादशवर्ष भ्रम से भासे थे तैसेही यहां भी थोड़े कालमें बहुतकाल भासाहै । दो अवस्थामें औरका और भासता है । स्वप्नेमें औरका और भासताहै और उन्मत्ततासे भी औरका और भासताहै । अभोक्ता आपको भोक्तामानताहै और भ्रमसे उत्साह और शोकको इकट्ठा देखताहै । किसी को उत्साहहोताहै और स्वप्नेमें मृतकभाव शोकको देखताहै । बिछुड़ाहुआ स्वप्नेमें मिला देखताहै और जोमिला है सो आपको बिछुड़ाजानताहै । कालहै और भ्रम करके और कालदेखताहै । इससे देखो यह सब भ्रमरूपहै । जैसे भ्रमसे यह भासताहै तैसेही यह जगत् भी भ्रमसेभासताहै परन्तु ब्रह्मसे इतर कुछनहीं । इससे न बन्धहै और न मोक्ष है । जैसे मिरचमें तीक्ष्णता है तैसेही आत्मामें जगत्है; जैसे थम्भे में पुतलियां होती हैं तैसेही आत्मामें जगत्है और जैसे थम्भेमें पुतलियांकुछहुई नहीं ज्योंका त्योंहै और शिल्पीके मनमें पुतलियां हैं तैसेहीब्रह्ममें जगतहै नहीं पर मनरूपी शिल्पीनेजगत्रूपी पुतलियांकल्पी हैं । आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों नित्य,शुद्ध, अज, अमर अपनेआपमें स्थितहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमण्डपाख्यानेपरमार्थप्रतिपादनंनाम चतुर्दशस्सर्गः १४ ॥

देवी बोली; हे लीले! जब जीवको मृत्युसे मूर्च्छाहोतीहै तब शीघ्रही उसको फिर कुछ जन्म और देश, काल, क्रिया, द्रव्य और अपना परिवार आदि नानाप्रकार का जगत् भास आताहै पर वास्तव कुछनहीं—स्मृति भी असत्है। एक स्मृति अनुभव से होती है और एक स्मृति अनुभव बिना भी होती है पर दोनों स्मृति मिथ्या हैं। जैसे स्वप्नेमें अपना देह देखता है तो वह अनुभव असत् है क्योंकि, वह कुछ अपने मरनेकी स्मृतिसे नहीं भासा और उस मनकी स्मृति भी असत्है। स्वप्नेमें कोईपदार्थ देखा तो जाग्रतमें उसको स्मरण करनाभी असत्है क्योंकि, वास्तवमें कुछहुआ नहीं। इससे यह जगत् अकारणरूपहै और जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूपहै। नकुछ विदूरथ की सृष्टि सत्है और न यह सृष्टि सत्है—सब सङ्कल्पमात्रहै। इतना सुन लीलाने पूछा; हे देवि! जो यह सृष्टि भ्रममात्रहै तो वह जो विदूरथकी सृष्टिहै सो इस सृष्टिके संस्कार से हुईहै और यह सृष्टि उस ब्राह्मण और ब्राह्मणकी स्मृति संस्कारसे हुईहै तो ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृति में हुईहै। देवीबोली; हे लीले! वह जो वशिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिहै सो ब्राह्मण के सङ्कल्प में हुई है और ब्रह्मा ब्राह्मणमें फुरा है परन्तु वास्तवमें ब्रह्माभी कुछ नहीं हुआ तो उसकी सृष्टि क्या कहों। यह जितनी कुछ सृष्टि है सो उसी ब्राह्मणके मन्दिरमें है; वास्तवमें कुछ हुईनहीं सब सङ्कल्परूप है। और मनके फुरनेसे भासती है। जैसे जैसे सङ्कल्प फुरता है तैसेही तैसे होकर भासता है। यह सृष्टि जो तेरेभर्त्ताको भासिआई है वह दृढ़सङ्कल्पके भावसे भासिआई है। थोड़े कालमें बहुतभ्रम होकर भासताहै। लीलाने पूछा; हे देवि! जहां ब्राह्मणको मृतकहुये आठदिन व्यतीतभयेहैं उस सृष्टिको हम किसप्रकार देखें? देवीबोली; हे लीले! जब तू योगाभ्यास करे तब देखे। अभ्यास बिना देखनेकी सामर्थ्य न होगी क्योंकि, वह सृष्टि चिदाकाशमें फुरतीहै। जब तू चिदाकाशमें अभ्यास करके प्राप्तहोगी तब तुझको सब सृष्टि भासिआवेगी। वह जो सृष्टिहै सो औरके सङ्कल्पमेंहै जब उसके सङ्कल्पमें प्रवेशकरे तो उसकी सृष्टिभासे; अन्यथा नहीं भासती। जैसे एकके स्वप्नेको दूसरा नहीं जानसक्ता तैसेही औरकी सृष्टि नहीं भासती। जब तू अन्तवाहकरूपहो तबवह सृष्टि देखे। जबतक आधिभौतिक स्थूल पंचतत्वों के शरीरमें अभ्यास है तबतक उसको न देखसकेगी क्योंकि, निराकारको निराकार ग्रहणकरताहै आकार नहीं ग्रहण करसक्ता। इससे यह आधिभौतिक देह भ्रमहै; इसको त्यागकर चिदाकाश सत्ता में स्थितहो। जैसे पक्षी आलयको त्यागकर आकाशमें उड़ता है और जहां इच्छाहोतीहै वहां चलाजाताहै; तैसेही चित्तको एकाग्र करके स्थूल शरीरको त्यागदे और योगअभ्यासकर आत्मसत्तामें स्थितहो। जब आधिभौतिकको त्यागकर अभ्यासके बलसे चिदाकाशमें स्थितहोगी तब आवरणसे रहितहोगी और फिर जहां इच्छाकरेगी वहां

चलीजावेगी और जोकुछ देखाचाहेगी वह देखेगी । हे लीले! हमसदा उस चिदाकाशमेंस्थितहैं। हमारावपु चिदाकाशहै इस कारण हमको कोई आवरण रोकनहींसक्ता हमसे उदारोंकी सदा स्वरूपमें स्थितिहै और हम सदा निरावरणहैं कोईकार्य्य हमको आवरण नहींकरसक्ता; हम स्वइच्छितहैं—जहां जायाचाहैं वहांजातेहैं और सदाअन्तवाहकरूप हैं । तू जबतक आधिभौतिक रूपहै तबतक वहसृष्टि तुझको नहीं भासती और तू वहां जाभीनहींसक्ती । हे लीले ! अपनाही सङ्कल्प मनोराज होताहै । उसमें जबतक चित्तकी वृत्तिलगीहै उसकालमें यह अपनाशरीर नहीं भासता तो औरका कैसे भासे? जबतुझको अन्तवाहकता का दृढ़ अभ्यासहो और आधिभौतिक स्थूल शरीरकी ओरसे वैराग्यहो तब आधिभौतिकता मिटजावेगी क्योंकि; आगेही सबसृष्टि अन्तवाहकरूपहै पर सङ्कल्पकी दृढ़ता से आधिभौतिक भासतीहै।जैसे जल दृढ़शीतलतासे बरफरूप होजाताहै तैसेही अन्तवाहकतासे आधिभौतिक होजातेहैं—प्रमादरूप सङ्कल्प वास्तवमें कुछहुआनहीं । जब वही सङ्कल्प उलटकर सूक्ष्म अन्तवाहककी ओर आताहै तब आधिभौतिकता मिटजातीहै और अन्तवाहकताआउदय होतीहै । जब इसप्रकार तुझको निरावरणरूप उदयहोगा तब देखनेमात्र औरजानने में कुछ यत्न न होगा । साकारसे निराकारको ग्रहण नहीं करसक्ता । निराकारकी एकता निराकारके साथही होतीहै—अन्यथा नहींहोती । जब तू अन्तवाहकरूप होगी तब उसकी सङ्कल्प सृष्टिमें तेराप्रवेशहोगा । हे लीले ! यह जगत् संकल्प भ्रममात्रहै, वास्तवमें कुछ हुआनहीं;एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और द्वैतकुछहै नहीं । लीलाबोली; हेदेवि ! जोएक अद्वैत आत्मसत्ता है तो कलना यह दूसरीवस्तु क्याहै सोकहो ? देवीबोली;हेलीले ! जैसेस्वर्णमें भूषण कुछवस्तुनहीं;जैसे सीपीमेंरूपा दूसरी वस्तु कुछनहीं और जैसे रस्सीमें सर्प दूसरी वस्तुनहीं तैसेही कलनाभीकुछदूसरी वस्तुनहींहैएक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्यों स्थितहै; उसमें नानात्व भासताहै परवह भ्रममात्र है—वास्तवमें अपनाआप एक अनुभवसत्ताहै इतनासुन फिर लीलाने पूछा; हेदेवि ! जो एक अनुभवसत्ता और मेरा अपनाआप है तो मैं इतनाकाल क्योंभ्रमतीरही ? देवीबोली; हेलीले ! तू अविचार भ्रमसे भ्रमतीरहीहै । विचार कियेसे भ्रमशांतहोजाता है भ्रमऔर विचारभी दोनों तेरेही स्वरूप हैं और तुझसेही उपजे हैं । जब तुझको अपना विचारहोगा तब भ्रमनिवृत्त होजावेगा।जैसे दीपकके प्रकाशसे अन्धकार नष्टहोजाता है तैसेहीविचारसे द्वैतभ्रम नष्टहोजावेगा और जैसे रस्सीके जानेसेसर्पभ्रम नष्ट होजाताहै और सीपके जानेसे रूपेका भ्रमनष्ट होजाताहै तैसेही आत्माके जानेसे आधिभौतिक भ्रम शान्त होजावेगा । जब दृश्य की अत्यन्ताभाव जानकेदृढ़ वैराग्य करिये और आत्मस्वरूपका दृढ़अभ्यास हो

तब आत्माका साक्षात्कर होकर भ्रम शांतहोजाता है और इसीसे कल्याण होताहै। हे लीले! जब दृश्यजगत् से वैराग्य होताहै तब वासनाक्षय होजाती है और शांति प्राप्त होती है। हे लीले! तू आत्मसत्ताका अभ्यासकर तो तेरा जगत् भ्रमशांतहो जावेगा। भ्रमभी कुछ वस्तुनहीं है क्योंकि; देह आदिक भ्रमभी कछ हुआ नहीं। जैसे रस्सी के जाने से सांपका अभाव विदित होता है तैसेही आत्माके जानेसे देहादिकोंका अत्यन्त अभाव होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविश्रान्तिवर्णनन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

देवीबोली; हे लीले! जितने कुछ शरीर तुझको भासते हैं सो सब स्वप्नपुरकी नाईहैं। जैसे स्वप्नेमें शरीर भासताहै पर जब निज स्वरूपमें स्मृति होतीहै तबस्वप्ने का शरीर वास्तव नहीं भासता।जैसे सङ्कल्पके त्यागसे सङ्कल्प शरीर नहीं भासता तैसेही बोधकालमें यह शरीरभी नहीं भासता और जैसे मनोराजके त्यागसे मनोराजकाशरीर नहीं भासता तैसेही यह शरीरभी नहीं भासता। जब स्वरूपका ज्ञान होगा तब यहभी वास्तव न भासेगा। जैसे स्वरूपके स्मरण हुये स्वप्नशरीर शान्त होताहै तैसेही वासनाके शान्त हुये जाग्रत् शरीरभी शान्त होजाताहै। जैसे स्वप्नका देह अभावज्ञानसे असत् होताहै तैसेही जाग्रत् शरीरकी भावना त्यागेसे यहभीअसत् भासताहै इसके नष्ट हुये अन्तवाहक देह उदय होवेगा। जैसे निद्रासे स्वप्नमें राग द्वेष होताहै और जब पदार्थोंकी वासना बोधसेनिर्वीज होतीहै तबउनसे मुक्तहोताहै तैसेही जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थोंमें नष्ट हुईहै सो पुरुष जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होताहै। और यदि उसमें फिरभी वासना दृष्ट आवे तो वह वासनाभी निर्वासनाहै। जो सर्व कल्पनाओंसे रहितहै तिसका नाम सत्तासामान्यहै। हे लीले! जिस पुरुषने वासना रोकी है और ज्ञाननिद्रासे आवर्याहुआहै उसको सुषुप्तिरूप जान उसकी वासना सुषुप्तिहै और जिसकी वासनाप्रकटहै और जाग्रत् रूपसे विचरताहै उसको अधिक मोहसे आवर्या जानिये। जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आताहै और जिसकी अन्तःकरणकी वासनानष्ट भईहै उसको तुरिया जान। हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करताहै और अन्तःकरणकी वासनासे रहितहै वह जीवन्मुक्तहै। जिस पुरुषका चित्त सत्पदको प्राप्त भयाहै उसको जगत्की वासना नष्ट होजातीहै और जो वासनाफुरती भासतीहै तोभी सत्यजानके नहीं फुरती। जब शरीरकी वासनानष्ट होतीहै तब आधिभौतिकता नष्टहोजाती है और अन्तवाहकता आन प्राप्त होतीहै। जैसे बरफ की पुतली सूर्य्यके तेजलगेसे जलरूप होजाती है तैसेही आधिभौतिकता क्षीणहोकर अन्तवाहकता प्राप्तहोतीहै। जब अन्तवाहकता प्राप्तहोती है तब शरीर अभासमय चित्तरूपहोता है और अपने जन्मान्तरों, व्यतीत सृष्टि और सर्वज्ञान

होआता है । तब वह जहां जानेकी इच्छा करताहै वहां जा प्राप्त होता है और यदि किसी सिद्धके मिलने अथवा किसीके देखनेकी इच्छाकरे सो सब कुछ सिद्धहोता है; परन्तु अन्तवाहक विना शक्ति नहीं होती । जब इस देहसे तेरा अहंभाव उठेगा तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासेगा । हे लीले ! जब अधिभौतिक शरीर की बासना नष्टहोतीहै तब अन्तवाहक देह होती है और जब अन्तवाहकमें वृत्ति स्थित होती है तब और के संकल्पकी सृष्टि भासती है । इससे तू बासना घटाने का यत्नकर । जब वासना नष्टहोगी तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्तहोगी । हे लीले ! जबतक तुझको पूर्णबोध नहीं प्राप्त होता तबतक तू अपनी इस देहको यहां स्थापनकर वह सृष्टिचल कर देख जैसे अन्तवाहक शरीरसे मांसमय स्थूल देहका व्यवहार नहीं सिद्ध होता तैसेही स्थूल देहसे सूक्ष्मकार्य्य नहीं होता । इससे तू अन्तवाहक शरीरका अभ्यास कर; जब अभ्यासकरेगी तब वह सृष्टि देखनेको समर्थ होगी । हे लीले ! जैसे अनुभवमें संस्थिति होतीहै सो मैंने तुझसे कही । यह वार्त्ता बालकभी जानते हैं कि यह वर और शापकी नाईं नहीं है । जब अपना आपही अभ्यास करेगी तब बोधकी प्राप्तिहोगी । हे लीले ! सब जगत् अन्तवाहक रूपहै अर्थात् संकल्परूप और अबोधरूप है । सङ्कल्पके अभ्यास से अधिभौतिक उत्पन्न हुआहै; इससे संसारकी बासना दृढ़भई है और जन्ममरण आदिक विकार चित्तमें भासते हैं । जीव न मरता है और न जन्मता है । जैसे स्वप्ने में जन्म मरण भासते हैं और जैसे सङ्कल्पसे भ्रम भासताहै तैसेही जन्म-मरण भ्रमसे भासताहै । जब तुम आत्मपदका अभ्यास करोगी तब यह विकार मिटजावेगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी । लीलाने पूछा; हे देवी ! तुमने मुझसे परमनिर्मल उपदेश कहाहै जिसके जानने से दृश्य विशूचिका निवृत्ति होतीहै; परवह अभ्यास क्याहै; बोधका साधन कैसेहोताहै; अभ्यास पुष्ट कैसेहोताहै और पुष्टहोने से फलक्या होता है ? देवीबोली; हे लीले ! जोकुछ कोई करताहै सो अभ्यासविना सिद्धनहीं होता । सबका साधक अभ्यासहै । इससे तू ब्रह्मअभ्यासकर । हे लीले ! चित्त में आत्मपदकी चिन्तना; कथन; परस्परबोध; प्राणोंकी चेष्टा और आत्मपदके मननकानाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं । बुद्धिमान् चिन्तना किसको कहते हैं सोभी सुन । शास्त्र और गुरुसे जो महावाक्य श्रवणकियेहैं उनको युक्तिपूर्वक विचारना और कथन करना चिंतना कहताहै । शिष्यको अन्योन्य उपदेश करना; परस्पर बोध करना और समान धर्मचर्चा और निर्णय निश्चयकर करना; इनतीनों के परायण रहने को बुद्धिमान् ब्रह्मअभ्यास कहतेहैं । जिन पुरुषों के पाप अन्तको प्राप्तभये हैं और पुण्य बचे हैं वे रागद्वेष से मुक्तहुये हैं; उनको तू ब्रह्मसेवक जान । हे लीले ! जिन पुरुषों को रात्रिदिन अध्यात्म शास्त्रके चिन्तनमें व्यतीत होतेहैं और बासनाको नहीं प्राप्त

होते उनको ब्रह्माभ्यासी जान—वे ब्रह्माभ्यासमें स्थित हैं। हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण हुई है और संसारके अभावकी भावना करते हैं वे विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्ति शीघ्रही आत्मपद को प्राप्तहोतेहैं और जिनकी बुद्धिवैराग्यरूपी रङ्ग से रँगीहै और आत्मानन्दकी ओर वृत्तिधातीहै ऐसेउदार आत्माओं को ब्रह्माभ्यासी कहतेहैं। हे लीले! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यन्त अभाव जानाहै कि, यह आदि मे उत्पन्न नहीं हुआ और दृश्यको असत्जानके त्यागते हैं; परमतत्त्वको सत्य जानतेहैं और इसयुक्ति में अभ्यास करतेहैं वे ब्रह्माभ्यासी कहातेहैं। जिस पुरुषको असम्भव दृश्य का बोधहुआ है और रागद्वेषसे रहित है-वह जगत् में होहै—इस बुद्धिकाभीजो अभावकरके परमात्मपद में प्राप्ति करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं हे लीले! दृश्यके अभाव जानेविना रागऔर द्वेष निवृत्त नहीं होते। रागद्वेष बुद्धि इस लोकमें दुःखोंको प्राप्तकरतीहै और जिसको दृश्यकी असम्भव बुद्धि प्राप्तभई है उसको ज्ञेय अर्थात् परमात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्तहोताहै। जब उसपदमें दृढ़ अभ्यास होता है तब परमानन्द निर्वाण पदको प्राप्तहोताहै और जो इस निमित्त यत्नकरताहै वह प्राकृतहै। हे लीले! बोधका साधन अभ्यासहै; अभ्यास शास्त्रसे होताहै; प्रयत्नसे पुष्ट होताहै और पुष्टहुयेसे आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोतीहै। हे लीले! जिनकानाम ब्रह्माभ्यासी वा ब्रह्मके सेवक कहते हैं वे तीनप्रकारके हैं-एक उत्तम, दूसरे मध्यम और तीसरे प्राकृत। उत्तम अभ्यासी वहहै जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है और दृश्यका असम्भव बोध हुआहै। जिसको दृश्यका असम्भव बोधहुआहै पर बोधकला नहीं उपजी और वह उसके अभ्यासमें है वह मध्यमहै। जिसको दृश्यका असम्भव बोध नहीं हुआ और सदा यही हृदयमें रहताहै कि, दृश्यका असम्भवहो यह प्राकृत है। इससे जिसप्रकार मैंने तुझको अभ्यास कहाहै तैसेही अभ्यास कियेसे तू परमपदको प्राप्तहोगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे अज्ञानरूपी निद्रामें जीव शयनकर रहाहै तिससे जगत्को नानाप्रकारका देखताहै तैसेही अविद्यारूपी निद्रामें विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षाकरके जब देवीने लीलाको जगाया तब उसकी अज्ञान रूपी निद्रा ऐसे नष्टहोगई जैसे शरत्कालमें मेघकी कुहड़ नष्टहोजातीहै। वाल्मीकिजी बोले, जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा तो सायंकालका समयहुआ और सर्वसभा परस्पर नमस्कार करके स्नानको गई और जब सूर्यकी किरणें उदयहुईं तब फिरसब आस्थितभये॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविज्ञानअभ्यासवर्णनन्नामषोडशस्सर्गः १६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार अर्द्धरात्रिके समय देवी और लीलाका सम्वाद हुआ। उससमय सबलोग और सहेलियां बाहर पड़ी सोतीथीं और लीलाका

भर्त्ता फूलोंमें दवा हुआथा उसके पास दिव्यवस्त्र पहिरेहुये चन्द्रमाकी कांतिके समान सुन्दर देवियां सर्वकलनाओं को त्यागके और अङ्गों को सङ्कोचकर ऐसी समाधिमें स्थितभई मानोंरत्नके थम्भे से पुतलियां उत्कीर्णाकिये स्थित हैं। अन्तःपुर भी उनके प्रकाशसे प्रकाशमान भया और वे ऐसी शोभादेतीथीं मानों कागज़के ऊपर मूर्त्तियां लिखी हैं। इस प्रकार सव दृश्य कलनाको त्यागके वे निर्विकल्प समाधिमें स्थितभईं। जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आयेसे अगले रसको त्यागके दूसरी ऋतुके रसको अङ्गीकार करती है तैसेही वे सव दृश्य भ्रमको त्यागके आत्मतत्त्वमें स्थितहुईं और अहंसत्तासे आदिलेकर उनका दृश्य भ्रम शांतिहोगया। दृश्यरूपी पिशाचके शांतहुये, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै; तैसेही वे निर्मल भावको प्राप्त भईं। हे रामजी! यह जगत् ससेके शृंगकी नाईं असत्है। जो आदि नहो; अन्तभी न रहे और वर्त्तमानमें दृष्टिआवे वहभी असत् जानिये। जैसेमृगतृष्णाका जलअसत्यहै तैसेही यह जगत् भी असत्यहै। ऐसे जव स्वभावसत्ता उनके हृदय चिदाकाश में स्थितभईं तव अन्य सृष्टिके देखनेका जो सङ्कल्पथा सो आन फुरा। उस फुरनेसे वे आकाशरूप देहसे चिदाकाशमें उड़ीं औरसूर्य और चन्द्रमाके मण्डलोंको लंघकर दूरसे दूर जाकर अनन्त योजन पर्य्यन्त स्थानलांघे। फिर भूतोंकी सृष्टिदेखी उसमें प्रवेश किया ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनन्नाम सप्तदशस्सर्ग्गः ॥ १७ ॥

वशिष्ठजी वोले; हे रामजी! इसप्रकार परस्पर हाथ पकड़कर वे दूरसेदूर गईं; मानों एकही आसनपर दोनों चलीजातीहैं। जहां मेघोंके स्थान और अग्नि और पवन के वेग नदियोंकी नाईं चलतेथे और जहां निर्मल आकाशथा वहांसेभी आगे गईं। कहीं चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाशही न था औरकहीं चन्द्रमा और सूर्यप्रकाशमानथे; कहीं देवता विमानोंपर आरूढ़थे; कहीं सिद्ध उड़तेथे और कहीं विद्याधर, किन्नर और गंधर्व गानकरतेथे। कहीं सृष्टि उत्पन्नहोती;कहीं प्रलय होती और कहीं शिखाधारी तारे उपद्रव करते उदयहुयेथे। कहीं प्राणी अपने व्यवहारमें लगेहुये; कहीं अनेक महापुरुष ध्यानमें स्थित;कहीं हस्ति,पशु-पक्षी और दैत्य-डाकिनी विचरते और योगिनियां लीला करतीथीं। कहीं अन्धे गूंगे रहतेथे, कहीं गीध पक्षी; सिंह और घोड़ेके मुखवालेगण विचरते और कहीं वरुण,कुवेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल वैठे थे। कहीं वड़े पर्वत सुमेरु, मंदराचल आदिक स्थित; कहीं अनेक योजनों पर्य्यन्त वृक्षही चलेजाते; कहीं अनेक योजन पर्य्यन्त अविनाशी प्रकाश; कहीं अनेक योजन पर्य्यन्त अविनाशी अंधकार; कहीं जलसे पूर्ण स्थान; कहीं सुन्दर

पर्वतोंपर गङ्गाके प्रवाह चलेजाते और कहीं सुन्दर बगीचे, बावड़ी, ताल और उनमें कमल लगेहुयेथे। कहीं भूत भविष्यत् होता; कहीं कल्पवृक्षों के वन; कहीं अनन्त चिन्तामणि; कहीं शून्यस्थान; कहीं देवता और दैत्योंके बड़ेयुद्ध होते और नक्षत्रचक्र पड़े फिरते और कहीं प्रलयहोताथा। कहीं देवता विमानोंमें फिरते; कहीं स्वामिकार्त्तिकके रक्खे हुये मोरोंके समूह विचरते; कहीं कुक्कुट, मोर आदिक पक्षी विद्याधरों के वाहन विचरते और कहीं यमके वाहन महिषों के समूह विचरते थे। कहीं पाषाणसंयुक्त पर्वत; कहीं भैरवके गण नृत्य करते; कहीं विद्युत् चमकती;कहीं कल्पतरु; कहीं मन्दमन्द शीतल पवन सुगन्ध समेत चलता और कहीं पर्वत रत्न और मणि शोभतेथे निदान इसी प्रकार अनेक जगतोंकी जाल उन देवियोंने देखी। जीवरूपी मच्छड़ त्रिलोकरूपी गूलरोंके अनन्त वृक्षोंमें देखे। इसके अनन्तर उन्हों-ने भूमण्डल को देखके महीतल में प्रवेश किया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेआकाशगमन
वर्णनन्नामअष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब देवियों ने भूतल ग्राममें आकर ब्रह्माण्ड खप्परमें प्रवेशकिया। वह ब्रह्माण्ड त्रिलोकिरूपी कमलहै और उसकी अष्ट पखुड़ियां हैं। उस में पर्वतरूपी डोड़ाहै; चेतनता सुगन्धहै और नदियां समुद्र अम्बुकणहैं। जब रात्रि रूपी भँवरे उसपर आन विराजते हैं तब वे कमल सकुचाय जाते हैं। वे पाताल-रूपी कीचड़में लगे हैं; पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं; दैत्य राक्षस उसके कण्टक हैं और डोड़ी उसकी शेषनाग है। जब वह हिलताहै तब भूचालन होताहै और दिनकर से प्रकाशताहै। इसका विस्तार इस प्रकार है कि, एक लाख योजन जम्बुद्वीप है और उसके परे दुगुना खारा समुद्रहै। जैसे हाथका कङ्कण होताहै तैसेही उस जलसे वह द्वीप आवरण किया है। उससे आगे दुगुना शाकद्वीपहै और उससेदुगुने क्षीर समुद्रसे वेष्टित है। उस के आगेउससेदुगुनीपृथ्वी है जिसका नाम कुशद्वीप है और उस से दूने घृतके समुद्र से वेष्टित है। उसकेआगे उस से दूनी पृथ्वी का नाम क्रौंच द्वीप है वह अपनेसे दूने दधिके समुद्रसे वेष्टितहै। फिर शाल्मली द्वीपहै और उससे दूना मधुकासमुद्र उसके चारो ओर है। फिर प्लक्षद्वीप है तिससे दूना इक्षुरसका समुद्र है। फिर उससे दूना पुष्कर द्वीपहै और उससे दूना मीठे जलका समुद्र उसे घेरे है इस प्रकार सप्त समुद्र हैं। उससे परे दशकोटि योजन कञ्चन की पृथ्वी प्रकाशवान् है और उससे आगे लोकालोक पर्वत है और उनपर बड़ाशून्य वन है। उससे परे एक बड़ा समुद्र है समुद्र से परे दशगुणी अग्नि है; अग्नि से परे दशगुणी वायु है; वायुसे परे दशगुणा आकाश है और आकाश से परे लक्ष

योजन पर्य्यन्त घनरूप ब्रह्मांडका कन्ध है। उस को देखके दोनों फिर आईं॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेभूलोकगमनवर्णन
न्नामएकोनविंशस्सर्गः॥ १९॥
वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वहांसे फिरके उन्होंने वशिष्ठ ब्राह्मण और अरुन्धती का मण्डल, ग्राम और नगरको देखा कि शोभाजाती रही है। जैसे कमलोंपर धूलकी वर्षाहो और कमलकी शोभा जातीरहै; जैसे वनको अग्निलगे और वनकी लक्ष्मी जातीरहीहै; जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्र को पानकरलिया और समुद्रकी शोभाजाती रहीथी; जैसे तेल और वातीके पूर्ण भयेसे दीपकका प्रकाशअभाव होजाताहै और जैसे वायुके चलनेसे मेघका अभाव होताहै तैसेही ग्रामकी शोभाका अभाव देखा जो कुछ प्रथम शोभाथी सोसब नष्ट होगईथी और दासियां रुदन करतीथीं। तब लीला रानीको, जिसने चिरकाल तप और ज्ञानका अभ्यास कियाथा, यह इच्छाउपजी कि; मुझे और देवीकोमेरे बांधव देखें। तब लीलाके सत सङ्कल्पसे उसके बांधवों ने उनको देखकर कहा कि; यह वनदेवी गौरी और लक्ष्मी आई हैं इनको नमस्कार करना चाहिये। वशिष्ठके बड़े पुत्र ज्येष्ठशर्माने फूलोंसे दोनोंके चरण पूजे औरकहा; हे देवि! तुम्हारी जय हो। यहां मेरे पिता और माता थे वहअब दोनों कालके वश स्वर्गको गयेहैं इससे हम बहुत शोकवान् भयेहैं। हमको त्रैलोक शून्य भासतेहैं और हम सबही रुदन करते हैं। वृक्षोंपर जो पक्षी रहतेथे सोभी उनको मृतक देखके वनको चले गये; पर्वतकी कन्दरासे पवन मानों रुदन करता आताहै; और नदी जो वेगसे आतीहै और तरङ्ग उछलतेहैं मानों वहभी रुदन करतेहैं। कमलोंपर जो जल के कण हैं मानों कमलोंके नयनोंसे रुदन करके जल चलता है और दिशासे जो उष्ण पवन आताहै मानों दिशाभी उष्ण श्वासें छोड़तीहै। हेदेवियो! हम सबही शोकको प्राप्त भयेहैं। तुम कृपा करके हमारा शोक निवृत्त करो क्योंकि; महापुरुषों का समागम निष्फल नहींहोता और उनका शरीर परोपकारके निमित्तहै। हे रामजी! जब इस प्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा तब लीलाने कृपा करके उसके शिर पर हाथरक्खा और उसके हाथ रखनेही उसकासब ताप नष्टहोगया। और जैसे ज्येष्ठ—आषाढ़ के दिनोंमेंतपीहुई पृथ्वी मेघकी वर्षा होनेसे शीतल होजातीहै तैसेही उसका अन्तःकरण शीतलहुआ जो वहांके निर्द्धनथे वह उनके दर्शन करनेसे लक्ष्मीवान्होकर शांतिको प्राप्त भये और शोक नष्ट होगया और सूखे वृक्ष सफल होगये। इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन्! लीलाने अपनेज्येष्ठशर्माको मातारूप होकर दर्शन क्यों न दिया इसका कारण मुझको कहो? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्तामें जो स्पन्द संवेदन हुई है सो संवेदन भूतोंका पिण्डाकारहो भासतीहै और वास्तव में आकाश-

रूपहै भ्रांतिसे पृथ्वीआदिक भूत भासतेहैं। जैसे बालकको छायामें भ्रमसे बैताल भासताहै तैसेही संवेदनके फुरने से पृथिव्यादिक भूतभासतेहैं। जैसे स्वप्नमें भ्रमसे पिण्डाकार भासतेहैं और जागेसे आकाशरूप भासतेहैं तैसेही भ्रमकेनष्ट हुये पृथ्वी आदिकभूत आकाशरूप भासतेहैं। जैसे स्वप्नेके नगर स्वप्नकालमें अर्थाकार भासते हैं और अग्निजलातीहै पर जागेसे सब शून्यहोजातीहै; तैसेही अज्ञानके निवृत्त हुयेसे यह जगत् आकाशरूप होजाताहै। जैसे मूर्च्छामें नानाप्रकारके नगर; परलोक जगत्; आकाशमें तरवरे और मुक्तमाला और नौकापरबैठे तटकेवृक्षचलते भासते हैं; तैसेही यह जगत् भ्रमसे अज्ञानीको भासताहै और ज्ञानवान्को सब चिदाकाश भासताहै-जगत्की कल्पना कोई नहीं फुरती। इससे लीला उसको पुत्रभाव और आपको माताभाव कैसेदेखती। उसका अहं और ममभाव नष्टहोगया था। जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होताहै तैसेही लीलाका अज्ञानभ्रम नष्टहोगया था और सब जगत् उसको चिदाकाश भासताथा। इसकारण यह आपको माताभाव न जानतीभई। जो उसमें कुछ ममत्वहोता तो उसकोमाताभावसे देखती परन्तु उसको यह अहंममभाव न था इस कारण माताभाव और देवीरूपमें दिखाया और शिर परहाथ इसलिये रक्खा कि, सन्तोंका दयालु स्वभावहै। माता पुत्रकी कल्पना उसमें कुछ न थी इसकारण उसके शिरपर हाथरक्खा। और कल्पना कुछ न थी-केवल आत्मारूप जगत् उसको भासता था॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसिद्धदर्शनहेतुकथन न्नामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर वहांसे देवी और लीलादोनों अन्तर्द्धानहोगईं। तब वहांके लोग कहनेलगे कि, वनदेवियोंने हमारे ऊपर बड़ीकृपा करके हमारे दुःख नाशकिये और अन्तर्द्धान होगईं। हे रामजी! तबदोनों आकाशमें आकाशरूप अन्तर्द्धान भईं और परस्परसम्वाद करनेलगीं। जैसे स्वप्नेमें सम्वाद होताहै तैसेही उनका परस्पर सम्वादहुआ। देवीनेकहा, हे लीले! जोकुछ जाननाथा सो तूनेजाना और जोकुछ देखनाथा सोभी देखा-यह सब ब्रह्मकी शक्तिहै। और जो कुछ पूछनाहो सो पूछो। लीला बोली; हे देवि! मैं अपने भर्त्ता विदूरथ के पासगई तो उसने मुझे क्यों न देखा और मेरीइच्छासे ज्येष्ठशर्मा आदिने मुझे क्योंदेखा इसका कारणकहो? देवी बोलीं; हेलीले! तब तेराद्वैतभ्रम नष्टहुआ न था और अभ्यास करके अद्वैतको न प्राप्तभई थी। जैसे धूपमें छायाका सुखनहींअनुभवहोता तैसेही तुझको अद्वैतका अनुभव न था। हे लीले! जैसेऋतुकाफल मधुर होताहै। जैसे ज्येष्ठआषाढ़ विदित हो और वर्षानहींआई तैसेही तुथी-अर्थात् यह कि;संसार मार्गको लंघीथी पर अद्वैत

तत्वको न प्राप्तभईथी इससेआत्मशक्तितुझको न प्रत्यक्षभईथी।आगेतेरा सत्सङ्कल्प नथा और अव तू सत्सङ्कल्पहुईहै। अवतैंनेसत्सङ्कल्प कियाहै कि, तुझकोज्येष्ठशर्माने देखाऔर इसीसे वेसवतुझको देखतेभये। अव तू विदूरथके निकटजा तो पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहारहो। लीला वोली;हेदेवि ! इस मण्डप आकाशमें मेराभर्त्ता वशिष्ठब्राह्मणहुआ और फिर जव मृतकहुआ तव इसीलोक मण्डपआकाशमें उसको पृथ्वी लोक फुरिआया जिससे पद्मराजाहो उसने चिरकाल पर्यंत चारों द्वीपोंका राज्य किया और जव फिर मृतक हुआ तव इसी मण्डप आकाशमें उसको जगत् भासित होकर पृथ्वीपति हुआ तिसका नाम विदूरथ हुआ। हेदेवि! इसी मण्डप आकाशमें जर्जरीभाव और जन्म मरण हुआ और अनन्त ब्रह्माण्ड इसमें स्थित हैं। जैसे सम्पुट में सरसोंके अनेक दाने होते हैं तैसेही इसमें सव ब्रह्मांडमुझको समीपही भासते हैं और भर्त्ताकी सृष्टिभी मुझको अव अनन्तर भासती है। अवजो कुछ तुमआज्ञा करो सोमैं करूं ? देवी वोली; हे भूतल अरुन्धती ! तेरे जन्मतो वहुतभयेहैं और अनेक तेरे भर्त्ताहुयेहैं पर उन सवमें यहभर्त्ता इस मण्डपमेंहै।एक वशिष्ठब्राह्मणथा सो मृतक हो उसका शरीरतो भस्म होगया है और फिर पद्मराजाहुआ उसका शव तेरे मण्डप में पड़ाहै और तीसरा भर्त्ता संसारमण्डपमें वसुधापतिहुआ वह संसारसमुद्रमें भोगरूपी कलोलकर व्याकुलहै। वह राजमें चतुर हुआहै पर आत्मपदसे विमुखहुआहै। आज्ञासे जानताथा कि, मैं ईश्वरहूँ; मेरीआज्ञा सवकेऊपर चलतीहै और मैं वड़ेभोगों का भोगनेवाला और सिद्ध वलवान्हूँ। हे लीले ! वह सङ्कल्प विकल्परूपी रस्सीसे वांधाहुआहै। अव तू किसभर्त्ताकेपास चलती है। जहांतेरी इच्छाहो वहांमें तुझको लेजाऊँ। जैसे सुगन्ध को वायु लेजाता है तैसेही मैं तुझको लेजाऊँगी। हे लीले ! जिस संसारमण्डलको तू समीप कहती है सो वह चिदाकाशकी अपेक्षासे समीप भासताहै और सृष्टिकीअपेक्षासे अनन्तकोटि योजनोंका भेदहै। इसकावपु आकाशरूपहै। ऐसीअनन्त सृष्टिपड़ीफुरतीहै। समुद्र और मन्दराचल पर्वत आदिक अनन्त हैं उनके परमाणमें अनन्तसृष्टि चिदाकाशके आश्रयफुरतीहै। चिदअणुमें रुचिके अनुसार सृष्टिवड़े आरम्भसे दृष्टि आती है और वड़ेस्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टिआते हैं परविचारकर तौलिये तो एकचावलके समानभी नहीं होते। हेलीले ! नानाप्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण पर्वतभी दृष्टिआतेहैं पर आकाशरूपहैं। जैसे स्वप्नेमें चैतनका किञ्चन नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आताहै तैसेही यह जगत् चैतनका किञ्चनहै। पृथ्वी आदिक तत्वोंसे कुछउपजा नहीं। हेलीले ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आप में स्थित है। जैसे नदी में नानाप्रकार के तरङ्ग उपजते हैं और लीनभी होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् जाल उपजता और नष्टभी होजाताहै पर आत्मसत्ता इनके उपजने

और लीन होने में एक रसहै । यह सब केवल आभासरूप है-वास्तव कुछ नहीं। लीलाबोली; हेमातः! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृतिहुईहै। प्रथम मैंने ब्रह्मासे राजसी जन्म पाया और उससे आदि लेकर नाना प्रकारके जो अष्टशत जन्म पायेहैं वे सब मुझको प्रत्यक्ष भासते हैं। प्रथम जो चिदाकाशसे मेरा जन्म हुआ उसमें मैं विद्याधर की स्त्रीभई और उस जन्मके कर्मसे भूतल में आकर मैंदुःखी हुई। फिर पक्षिणी भई और जाल में फँसी और उसके अनन्तर भीलनी होकर कदम्बवन में बिचरनेलगी। फिर बनलता भई; वहांगुच्छे मेरेस्तन और पत्र मेरे हाथथे। जिसकी पर्णकुटी में मैं लताथी वह ऋषीश्वर मुझको हाथसे स्पर्श किया करताथा इससे मैं मृतक होकर उसके गृहमें पुत्री भई। वहां जो मुझसे कर्महो सो पुरुषही का कर्महो इससे मैं बड़ी लक्ष्मीसे सम्पन्न राजा भई।वहां मुझसे दुष्टकर्महुये इससे में कुष्ठरोग ग्रसित बन्दरी होकर आठवर्ष वहां रही। फिर मैं बैलहुई; मुझको किसीदुष्टनेखेती के हलमें जोड़ा और उससे मैंने दुःख पाया। फिर मैं भ्रमरी भई और कमलोंपर जाकर सुगन्ध लेतीथी। फिर मृगीहोकर चिर पर्यंत वनमें विचरी। फिर एक देशका राजाभई और सौ वर्ष पर्यन्त वहां सुख भोगे और फिर कछुये का जन्म लेकर; राजा हंसका जन्म लिया। इसी प्रकार मैंने अनेक जन्मों को धारण करके बड़ेकष्ट पाये। हे देवि! आठसौ जन्म पाकर मैं संसार समुद्रमें वासनासे घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमीहूं। अबमैंने निश्चय किया है कि, आत्मज्ञान बिना जन्मोंका अन्त कदाचित् नहीं होता सो तुम्हारी कृपासे अब मैंने निःसङ्कल्प पदको पाया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेजन्मान्तरवर्णनन्नाम एकविंशतितमस्सर्ग्गः॥ २१॥

इतनीकथासुन रामजीने पूछा; हेभगवन्! वज्रसारकी नाईं वह ब्रह्माण्ड खप्पर जिसका अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त विस्तारथा उसे ये दोनों कैसे लंघती गईं? वशिष्ठजी बोले; हें रामजी! वज्रसार ब्रह्माण्ड खप्पर कहां है और वहां तक कौनगया है? न कोई वज्रसार ब्रह्माण्ड है और न कोई लांघगयाहै सब आकाशरूप है। उसी पर्वतके ग्राममें जिसमें वशिष्ठ ब्राह्मणका गृहथा उसी मण्डप आकाशमें वह सृष्टिका अनुभव करता भया। हे रामजी! जब वशिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया तब उसी मंडपाकाशके कोनेमें आपको चारों ओर समुद्रों पर्यन्त पृथ्वी का राजा जाननेलगा कि, मैं राजापद्महूं और अरुन्धती को लीलाकरके देखा कि, यह मेरी स्त्रीहै। फिरवह मृतक हुआ तो उसको उसी आकाशमण्डपमें और जगत् का अनुभवभया और उसने आपको राजा विदूरथ जाना इससे तुम देखो कि, कहांगया और क्यारूपहै? उसी मण्डप आकाशमें तो उसको सृष्टिका अनुभवहुआ; इससे जो सृष्टिहै वह उसी वशिष्ठकेचित्तमें

स्थितहै । तब ज्ञप्तिरूप देवी की कृपासे अपनेही देहाकाशमें लीला अन्तबाहक देहसे जो आकाशरूपहै, उड़ी और ब्रह्माण्डको लांघके फिर उसी गृहमें आई। जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर को प्राप्तहो तैसेही देखआई । पर वह गई कहां और आई कहां ? एकही स्थानमें होके एकसृष्टिसे अन्य सृष्टिको देखा। इनको ब्रह्माण्डके लंघजाने में कुछ यत्न नहीं क्योंकि;उनका शरीर अन्तवाहकरूपहै।हे रामजी !जैसे मनसे जहां लङ्घना चाहे वहां लङ्घजाताहै तैसेही वह प्रत्यक्ष लंघी है।वह सत्यसङ्कल्परूपहै और बस्तु से कहे तो कुछनहीं। हेरामजी! जैसे स्वप्नेकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारों सहित बड़ीगम्भीर भासतीहै पर आभासमात्रहै तैसेही यह जगत् देखतेहैं पर न कोई ब्रह्माण्डहै, न कोई जगत्है और न कोई कुण्डहै केवल चैतन्यमात्रका किञ्चनहै औरबनाकुछ नहीं। जैसे चित्तसंवेदन फुरताहै तैसेही आभासहो भासताहै । केवल बासना मात्रही जगत् है; पृथ्वी आदिक भूतकोई उपजा नहीं-निरावरण ज्ञान आकाश अनन्तरूप स्थितहै । जैसे स्पन्द और निस्स्पन्द दोनोंरूप पवनहीहैं तैसेही स्फुर और अफुररूप आत्माही है कि, वनमें भी ज्योंका त्यों है और शान्त और सर्वरूप चिदाकाशहै । जब चित्त किञ्चन होताहै तब आपही जगत्रूप हो भासताहै-दूसरा कुछनहीं । जिन पुरुषों ने आत्माको जानाहै उनको जगत् आकाशसे भी शून्यभासता है और जिन्होंने नहीं जाना उनको जगत् वज्रसार की नाईदृढ़ भासताहै । जैसे स्वप्नेमेंनगर भासत;तैसेही यह जगत्है । जैसे मरुस्थलमें जल और सुवर्णमें भूषण भासतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै । हे रामजी ! इसप्रकार देवी और लीलाने सङ्कल्पसे नानाप्रकारके स्थानोंको देखा जहां झरनोंसेजल चला आताथा;बावली और सुन्दरताल औरबगीचे देखे जहांपक्षी शब्द करतेथे और सुन्दरमेघ पवनसंयुक्त देखे मानों स्वर्गयहांहीथा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेगिरिग्रामवर्णन न्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः ॥ २२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसप्रकार देखके वे दोनों शीतलचित्त ग्राम में बास करती भई और चिरकाल जो आत्म अभ्यास कियाथा उससे शुद्ध ज्ञानरूप और त्रिकालज्ञानसे सम्पन्नहुई । उससे उन्हें पूर्वकी स्मृतिहुई और जो कुछ अरुन्धती के शरीर से कियाथा सो देवीसे कहा कि, हे देवि ! तुम्हारी कृपासे अबमुझको पूर्व की स्मृति भई । जो कुछ इसदेशमें मैंने कियाथा सो प्रकट भासता है कि; यहां एक ब्राह्मणी थी; उसका शरीर;वृद्धथा और नाड़ियां दीखतीथीं और भर्त्ताको बहुत प्यारी और पुत्रोंकी माताथी वह मैंहीहूं । हे देवी ! मैं यहां देवतों और ब्राह्मणोंकी पूजा करती थी, यहां दूध रखती, यहां अन्नादिकों के बासन रखती थी यहां मेरे पुत्र, पुत्रियां, दमाद और दुहिते बैठेनेथे; यहां मैं बैठतीथी और भृत्योंको कहती थी कि,

शीघ्रही कार्यकरो। हे देवि! यहांमें रसोई करतीथी और भर्त्तामेरा शाक और गोवर लेआताथा और सर्व मर्यादा कहता था। ये वृक्ष मेरे लगायेहुयेहैं; कुछ फल मैंने इनसे लियेहैं और कुछरहेहैं वो येहैं। यहां में जलपान करतीथी। हे देवि? मेराभर्त्ता सब कर्मोंमें शुद्धथा पर आत्मस्वरूपसे शून्यथा। सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं। यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहमें रुदन करताहै। यह वेल मेरे गृहमें विस्तरीहै और सुन्दर फूल लगेहैं। इनके गुच्छे छत्रोंकी नाईं हैं और झरोखे वेलसे आवरेहुये हैं। यह मेरा मण्डप आकाशहै; इस में मेरे भर्त्ताका जीवआकाशहै। देवी वोली; हे लीले! इस शरीरके नाभिकमलसे दशअंगुलऊर्ध्व हृदयाकाशहै और सौअंगुष्ठमात्रहृदयहै; उसमें उसका संवित आकाश है। उसमें जो राजसी वासना थी उससे उसको चारों समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वीका राज्यफुरआया कि," मैं राजाहूं,"। यहां उसे आठदिन मृतकहुये बीते हैं और यहां चिरकाल राज्यका अनुभव करताहै। हे देवि! इसप्रकार थोड़ेकाल में वहुत काल अनुभव होताहै और हमारेही मण्डपमें वहसव पड़ाहै। उसकी पुर्यष्टकमें जगत् फुरताहै उसमें आपका राजा विदूरथहै। इस राज्यके सङ्कल्पसे उसकी संवित इसी मण्डप आकाशमें स्थितहै। जैसे आकाशमें गन्धको लेके पवन स्थितहो तैसेही उसकी चैतन संवित सङ्कल्पको लेकर इसी मण्डपाकाशमें स्थितहै। उसकी संवित इस मंडप आकाशमें है उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनों पर्यन्त भासती है। यदि मैं पर्वत और मेघ अनेक योजनों पर्यन्त लंघती जाऊं तव भर्त्ता के निकट प्राप्त होऊं और चिदाकाशकी अपेक्षासे अपने पासही भासता है। अब व्यवहारदृष्टिसे वह कोटि योजनों पर्यन्तहै इससे चलो जहां मेरा भर्त्ता राजा विदूरथ है वह स्थान दूरहै तौ भी निश्चयहै। इतना कह वशिष्ठजी वोले; हे रामजी! इसप्रकार कहकर वे दोनों; जैसे खड्गकीधारा श्यामहोतीहै; जैसे विष्णुजी का अङ्ग श्यामहै; जैसे काजर श्यामहोता और जैसे भ्रमरेकी पीठ श्यामहोतीहै तैसेही श्याम मंडपाकाशमें पखेरू के समान अन्तवाहक शरीरसे उड़ीं और मेघों और वड़े वायुके स्थान; सूर्य, चन्द्रमा और ब्रह्मलोक पर्यन्त देवतोंके स्थानोंको लंघकर इसप्रकार दूरसेदूर गईं और शून्य आकाशमें ऊर्ध्व जाके ऊर्ध्वको देखती भईं कि, सूर्य और चन्द्रमा आदिक कोई नहीं भासता। तव लीलाने कहा; हे देवि! इतना सूर्य आदिकका प्रकाशथा वह कहांगया? यहां तो महा अन्धकार है; ऐसा अन्धकारहै कि; मानों सृष्टिमें ग्रहण होताहै। देवी वोली; हे लीले! हम महाआकाशमें आईं हैं। यहां अन्धकारका स्थानहै सूर्य आदिक कैसे भासें? जैसे अन्धकूपमें त्रसरेणु नहीं भासते तैसेही यहां सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते हम वहुत ऊर्ध्वको आयेहैं। लीलाने पूछा; हे देवि! वड़ा आश्चर्यहै कि; हम दूरसे दूर आयेहैं जहां सूर्यादिकों का प्रकाशभी नहीं भासता इससे आगेअब कहां

नानाहै? देवी बोली; हे लीले! इसके आगे ब्रह्मांड कपाट आवेगा। वह बड़ा वज्रसार है और अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त उसका विस्तारहै और उसकी धूरकी कणिका भी इन्द्रके वज्रसमानहैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार देवी कहतीही थी कि, आगे महावज्रसार ब्रह्माण्ड कपाट आया और अनन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार देखकर उसकोभी वे लांघगईं पर उन्हें कुछभी क्लेश न भया क्योंकि; जैसा किसीको निश्चय होताहै वैसाही अनुभव होताहै। वह निरावरण आकाशरूप देवियां ब्रह्मांड कपाटको लांघगईं। उसके परे दशगुणा जलका आवरण; उसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व; उसके परे दशगुणा वायु; उसके परे दशगुणा आकाश और उसकेपरे परमाकाशहै। उसका आदि, मध्य और अन्त कोई नहीं। जैसे वन्ध्याके पुत्रकी कथाकी चेष्टाकाआदि अन्त कोई नहीं होता तैसेही परमआकाश है वह नित्य, शुद्ध और अनन्तरूप है और अपने आपमें स्थितहै। उसका अन्त लेनेको यदि सदाशिव मनरूपी वेगसे और विष्णुजी गरुड़पर आरूढ़ होके कल्प पर्यन्त धावें तौभी उसका अन्त न पावें और पवन अन्त लिया चाहे तो न यह भी पावे। वहतो आदि, मध्य और अन्तकलनासे रहित बोधमात्र है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपुनराकाशवर्णनंनामत्रयोविंशतितमस्सर्ग्गः २३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब ये पृथ्वी, अप्, तेज आदिक आवरणोंको लांघ गईं तब परमाणुसे रहित परमआकाश उनको भासित हुआ उसमें उनको धूरकी कणिका और सूर्य्यके त्रसरेणुके समान ब्रह्माण्ड भासे। वह महाशून्यको धारनेवाला परम आकाश है और आप कणाचिद् अणुसृष्टि जिसमें फुरती है वह ऐसा महासमुद्रहै कि, कोई उसमें अधको जाताहै और कोई ऊर्ध्वको जाता और कोई तिर्य्यक् गतिको जाता है। हे रामजी! चित् सम्वित् में जैसा २ स्पन्द फुरताहै तैसाही तैसा आकार हो भासता है; वास्तवमें न कोई अधहै, न कोई ऊर्ध्व है, न कोई आता है और न कोई जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें ज्योंकी त्यों स्थित हैं। फुरने से जगत् भासता है और उत्पत्ति हो फिर नष्ट होता है। जैसे बालका संकल्प उपज के नष्ट होजाताहै तैसेही चैतन सम्वित् में जगत् फुरके नष्ट होजाता है। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! अध और ऊर्ध्व क्या होतेहैं तिर्य्यक् क्या भासतेहैं और यहां क्या स्थित है सो मुझसे कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परमाकाश सत्ता आवरण से रहित शुद्ध बोधरूप है। उसमें जगत् ऐसे भासता है जैसे आकाशमें भ्रान्ति से तरुवरे भासते हैं। उसमें अध और ऊर्ध्व कल्पनामात्र है। जैसे हलों के बेटेके चौं-गिर्द चींटियां फिरती हैं और उनको मनमें अध ऊर्ध्व भासता है सो उनके मन में अध ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है। हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभासरूप है।

जैसे मन्दराचल पर्व्वतके ऊपर हस्तियों के समूह विचरतेहैं तैसेही आत्मामें अनेक जगत् फुरते हैं जैसे मन्दराचल पर्व्वतके आगे हस्तिहो तैसेही ब्रह्मके आगे जगत् है और वास्तवमें सर्व ब्रह्मरूप है । कर्त्ता, कर्म्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण सर्व ब्रह्महीं हैं और ये जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरङ्ग हैं। उन जगत् ब्रह्माण्डों को देवियों ने देखा । जैसे ब्रह्माण्ड उन्होंने देखे हैं वे सुनिये । कई सृष्टि तो उन्होंने उत्पन्नहोती देखीं और कई प्रलयहोती देखीं। कितनों के उपजनेका आरम्भ देखा–जैसे नूतन अंकुर निकलताहै; कहीं जलहीजल है कहीं अन्धकारहीहै-प्रकाश नहीं; कहीं सर्व व्यवहार संयुक्तहैं और कहीं वेदशास्त्रके अपूर्व कर्म्म हैं। कहींआदि ईश्वर ब्रह्मा हैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं; कहीं आदि ईश्वर विष्णुहैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं और कहीं आदि ईश्वर सदाशिव हैं । इसी प्रकार कहीं और प्रजापति से उपजते हैं; कहीं नाथको कोई नहीं मानते सब अनीश्वर वादी हैं; कहीं तिर्य्यक्ही जीव रहते हैं; कहीं देवताही रहते हैं और कहीं मनुष्यही रहते हैं। कहीं बड़े आरम्भ करके सम्पन्नहैं और कहीं शून्य रूपहैं। हे रामजी ! इसी प्रकार उन्होंने अनेक सृष्टि चिदाकाशमें उत्पन्न होती देखीं जिनकी संख्या करनेको कोई समर्थ नहीं चिदात्माके आभासरूप फुरती हैं और जैसी फुरना होतीहैं उसके अनुसार फुरती हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेब्रह्मांडवर्णनन्नामचतुर्विंशतितमस्सर्ग्गः२४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसप्रकार दोनों देवियां राजाके जगत्में आकर अपने मंडप स्थानोंको देखती भई।जैसे सोया हुआ जागके देखताहै तैसेही जब अपने मंडपमें उन्होंने प्रवेश किया तब क्या देखा कि; राजाका शव फूलोंमें ढांपा हुआ पड़ाहै। अर्द्ध रात्रिका समयहै; सबलोग गृहमें सोयेपड़े हैं और राजा पद्म केशवके पास लीला का शरीर पड़ाहै। और अन्तःपुरमें धूप, चन्दन, कपूर और अगरकी सुगन्धभरीहै । तब वे विचारनेलगीं कि, वहां चलें जहांराजा राज्यकरताहै । उसकी पुर्यष्टक में विदूरथका अनुभव हुआथा उस सङ्कल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टिदेखनेको देवीके साथ लीला चली और अन्तवाहक शरीरसे आकाश मार्ग्गको उड़ीं । जातेजाते ब्रह्माण्डकी बाटको लांघगईं तब विदूरथके सङ्कल्पमें जगत्को देखा। जैसे तालावमें सेवार होती है तैसेही उन्होंने जगत्को देखा । सप्तद्वीप, नवखण्ड, सुमेरुपर्व्वत, द्वीपादिकसबरचना देखीं और उसमें जम्बूद्वीप और भरतखण्ड और उसमें विदूरथ राजा का मण्डपस्थान देखती भईं। वहां उन्होंने राजा सिंधको भी देखा कि, राजा विदूरथ की पृथ्वी की कुछ हद उसके भाइयोंने दबाईथी और उसके लिये सेना भेजी राजा विदूरथनेभी सुनके सेनाभेजी और दोनोंसेनामिलके युद्धकरनेलगीं। फिर उन्होंनेदेखा कि, त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखनेको आई है; देवता बिमानों पर आरूढ़ और सिद्ध,

चारण, गन्धर्व्व और विद्याधर शास्त्रों को छोड़के देखनेको स्थितभये हैं। विद्याधरी और अप्सराभी आईहैं कि,जो शूरमा युद्धमेंप्राणोंको त्यागेंगे हमउनको स्वर्गमेंलेजा-वेंगी। रक्त और मांस भोजन करनेको भूत, राक्षस,पिशाच,योगिनियां भी आन स्थित भई हैं। हे रामजी! शूरपुरुपतो स्वर्गकेभूपणहैं और अक्षयस्वर्गकोभोगेंगे और जिनका मरना धर्मपक्षसे संग्राममेंहोगा वहभी स्वर्गकोजावेंगे। इतनासुन रामजीने पूंछा; हे भग-वन्! शूरमाकिसकोकहते हैंऔरजो युद्धकरके स्वर्गकोनहीं प्राप्तहोते वे कौनहैं ? वशिष्ठ जी वोले; हेरामजी! जोशास्त्रयुक्त युद्धनहींकरते और अनर्थरूपी अर्थकेनिमित्त युद्धकर-ते हैं सो नरक को प्राप्तहोतेहैं और जो धर्म,गौ, ब्राह्मण,मित्र,शरणागत और प्रजाकी पालनाके निमित्त युद्धकरते हैं वे स्वर्गके भूपण हैं। वेही शूरमा कहाते हैं और मरके स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग में उनका यश वहुत होताहै। जोपुरुप धर्मके अर्थ युद्ध करते हैं वे अवश्य स्वर्ग लोकको प्राप्तहोते हैं और जो अधर्मसे युद्धकरते हैं वे मृतक हो नरकको प्राप्तहोतेहैं। हे रामजी ! जो पुरुप कहतेहैं कि, संग्राममें मरे सव स्वर्ग को प्राप्तहोते हैं वे मूर्ख हैं। स्वर्गको वही जाते हैं जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है। जो किसी भोगके अर्थयुद्ध करते हैं सो नरकको ही प्राप्तहोते हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेगगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनन्नाम पञ्चविंशतितमस्सर्ग्गः ॥ २५ ॥

वशिष्ठजी वोले; हेरामजी ! दोनों देवियोंने रण संग्राममें क्या देखा कि, एक महा शून्य वनहै उसमेंजैसे दो वड़े समुद्र उछलकर परस्पर मिलने लगें तैसेही दोनोंसेना जुड़ी हैं। तव उन्होंने क्या देखा कि, सव योधा आन स्थित हुये हैं और मच्छव्यूह, गरुड़व्यूह और चक्रव्यूह भिन्न २ भाग करके दोनोंसेनाके योधा एकएक होकर युद्ध करने लगे हैं। प्रथम परस्पर देख एकने कहा कि, यहवाण चलावे और दूसरेने कहा कि, नहीं तू चला;उसने कहा नहीं तूही प्रथम चला। निदान दोपदृष्टि करके सव स्थिर होरहे-मानों चित्र लिख छोड़े हैं। इसके अनन्तर दोनों सेनाके और योधा आये मानों प्रलयकालके मेघ उछले हैं। उनके आनेसे एक एक योधाकी मर्यादा दूर होगई सवइकट्ठे युद्ध करने लगे और वड़ेशस्त्रों के प्रवाहके प्रहार करनेलगे। कहीं खड्गोंके प्रहार चलतेथे और कहीं कुल्हाड़े, त्रिशूल, भाले, वरछियां, कटारी, छूरी, चक्र, गदादिक शस्त्र वड़ेशव्दकरके चलाने लगे। जैसे वर्पा कालमें मेघवर्पा-करते हैं तैसेही शस्त्रों की वर्पा होनेलगी। हेरामजी ! प्रलय कालके जितने उपद्रव थे सो सव इकट्ठे हुये। योधा युद्धकी ओर आये और कायर भागगये। निदान ऐसा संग्रामहुआ कि, अनेकों योधाओंके शिरकाटेगये और उनकेहस्ती घोड़े मृत्युको प्राप्त भये। जैसे कमल के फूल काटे जाते हैं तैसेही उनके शीश काटे जातेथे। तव दोनों

सेनाओंके राजा चिन्ताकरने लगे कि, क्या होगा । हे रामजी ! इसयुद्ध में रुधिरकी नदियांचलीं; उनमें प्राणी वहते जातेथे और वड़ेशब्द करते थे जिनके आगे मेघोंके शब्दभी तुच्छ भासतेथे। हे रामजी !दोनों देवियां सङ्कल्पके विमान कल्पके आकाश में स्थित हुईं तो क्या देखा कि, ऐसायुद्ध हुआहै जैसे महाप्रलय में समुद्र एकरूप होजातेहैं। और विजुली की नाईं शस्त्रोंका चमत्कार होताथा। जो शूर वीर हैं उनके रक्तकी जो बूंदियां पृथ्वीपर पड़ती हैं उन बूंदोंमें जितने मृतिकाके कणके लगे होते हैं उतनेही वर्ष वे स्वर्गको भोगेंगे । जो जो शूरमा युद्धमें मृतकहोतेथे उनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजातीथीं और देवगण स्तुति करतेथे कि, ये शूरमा स्वर्गको प्राप्त भये हैं और अक्षय अर्थात् चिरकाल स्वर्ग भोगेंगे। हे रामजी ! स्वर्गलोकके भोग मनमें चिन्तन करके शूरमा हर्षवान् होतेथे और युद्धमें नानाप्रकारके शस्त्र चलाते और संहन करतेथे और फिर युद्धके सन्मुख धीरजधरके स्थितहोते थे। जैसे सुमेरु पर्वत धैर्य्यवान् और अचल स्थितहै उससेभी अधिकवे धैर्य्यवान्थे।संग्राम में योधा ऐसेचूरणहोतेथे जैसे कोई वस्तु उखलीमें चूरणहोतीहै परंतु फिरसन्मुखहोते और वड़े हाहाकार शब्द करतेथे। हस्तिसे हस्तिपर परस्पर युद्धकरते शब्दकरतेथे।हे रामजी ! इसीप्रकार अनेक जीव नाशको प्राप्तभये। जोजो शूरमा मरतेथे तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजाती थीं । निदान परस्पर वड़े युद्धहुए खड्गवाले खड्गवाले से और त्रिशूलवाले त्रिशूलवाले से युद्धकरते थे । जैसा जैसा शस्त्र किसीके पासहो तैसेही उसके साथ युद्धकरें और जब शस्त्र पूर्णहोजावें तो मुष्टिकेसाथ युद्धकरें । इसीप्रकार दशों दिशा युद्धसे पूर्ण हुईं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेरणभूमिवर्णनन्नामषड्विंशतितमस्सर्ग्गः॥ २६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार वड़ायुद्धहुआ तो गङ्गाजीके समान शूरमोंके रुधिरका तीक्ष्ण प्रवाह चला और उस प्रवाहमें हस्ती, घोड़े, मनुष्य, रथ सव वहेजातेथे और सेना सृष्टि नाशको प्राप्तहोती जातीथी । हे रामजी ! उससमय वड़ाक्षोभ उदयहुआ और राक्षस,पिशाचादिक तामसी जीव मांस भोजन करते और रुधिर पानकरते उत्साहक्रिया प्राप्तभई। जैसे मन्दराचल पर्वतसे क्षीरसमुद्रकोक्षोभ हुआथा तैसेही युद्ध संग्राममें योद्धाओंका क्षोभहुआ और रुधिरका समुद्रचलाउसमें हस्ती, घोड़े, रथ और शूरमा तरङ्गों की नाईं उछलते दृष्टिआतेथे । रथवालोंसे रथ वाले; घोड़ेवालोंसे घोड़ेवाले; हस्तिवाले से हस्तिवाले और प्यादेसे प्यादे युद्धकरते थे। हे रामजी ! जैसे प्रलयकालकी अग्निमें जीवजलतेहैं तैसेही जो योद्धारणभूमिमें आवें सो नाशको प्राप्तहों। जैसे दीपकमें पतङ्ग प्रवेशकरताहै और जैसे समुद्रमें नदियां प्रवेश करती हैं तैसेही रणभूमिमें दशोंदिशाके योद्धा प्रवेशकरतेथे । किसीका शीश

काटाजावे और धड़युद्धकरे; किसीकी भुजाकाटीजावें और किसीके ऊपर रथचलेजावें और हस्ती, घोड़े, उलटउलट पड़ें और नाशहोजावें। हे रामजी! दोनों राजाओंकी सहायताके निमित्त पूर्वदिशा, काशी, मद्रास, मीला , मालव, सकला, कवटा, किरात, म्लेच्छ,पारसी, काश्मीर, तुरक, पञ्जाब, हिमालयपर्वत, सुमेरुपर्वत इत्यादि के अनेक देशपाल, जिनके बड़ेभुजदण्ड, बड़ेकेश और बड़े भयानकरूपथे, युद्धकेनिमित्तआये। बड़ीग्रीवावाले, एकटँगे, एकाचल, एकाक्ष, घोड़ेकेमुखवाले, श्वानके मुखवाले, और सुमेरु और कैलासके राजा और जितनेकुछ पृथ्वीके राजाथे सो सबही आये। जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलतेहैं और दिशास्थान जलसे पूर्णहोतेहैं तैसेही सेनासे सब स्थान पूर्णभये और दोनोंओरसे युद्धकरनेलगे। चक्रवाले चक्रवालेसे और खड्ग, कुल्हाड़े, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाणादिक शस्त्रोंसे परस्पर युद्धकरने लगे। एककहै कि; प्रथममैं जाताहूं, दूसराकहै कि, मैं प्रथम जाताहूं। हे रामजी! उसकालमें ऐसा युद्ध होनेलगा कि, कहनेमें नहीं आता। दौड़दौड़के योद्धा रणमें जावें और मृत्युको प्राप्तहों। जैसे अग्निमें घृतकी आहुति भस्महोतीहै तैसेहीरणमें योद्धानाशको प्राप्तहोतेथे। ऐसायुद्धहुआ कि, रुधिरका समुद्रचला उसमेंहस्ती, घोड़े, रथ और मनुष्य तृणोंकीनाई वहतेथे और सम्पूर्णपृथ्वी रक्तमय होगई। जैसेआंधीसे फल, फूल और वृक्ष गिरतेहैं तैसेही पृथ्वीपर कटकट शब्दकरते शिरगिरतेथे। हे रामजी! जो उसकालमें युद्धहुआ वह कहानहीं जाता। सहस्रमुख शेषनागभी उस युद्धके कर्मोंको सम्पूर्ण वर्णन न करसकेंगे तब और कौन कहेगा। मैंने वह संक्षेप से कुछ सुनायाहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेद्वंद्वयुद्धवर्णनंनामसप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार युद्धहुआ तो सूर्य्य अस्तहुआ मानों उसकी किरणेंभी शस्त्रोंके प्रहारसे अस्तताको प्राप्तहुईं। तब विदूरथने सेनापति और मंत्रीको बुलाकर कहा कि, हे मंत्रियो! अब युद्धको शान्तकरो क्योंकि; सूर्य अस्त भयाहै और योद्धाभी सब युद्धकरके थकेहैं। रात्रिको सब आरामकरें दिनको फिरयुद्ध करेंगे। इससे आज्ञाफेरो कि, अब युद्ध शान्तहो। तब मन्त्रीने दोनोंसेनाके मध्यमें ऊंचेचढ़के वस्त्रफेरा कि, अब युद्धको शान्तकरो; दिनको फिरयुद्धकरेंगे। निदान दोनों सेनाओंने युद्धका त्यागकिया और अपनी अपनी सेनामें नौबत नगारे बजानेलगे और राजाविदूरथभी अपनेगृहमें आ स्थितभया। जैसे शरद्कालमें मेघोंसेरहित आकाश निर्मल होताहै तैसेही रणमें संग्रामशान्तहुआ। रात्रिको राक्षस,पिशाच, गीदड़,भेड़िये और डाकिनी मांसका भोजनकरने और रुधिर पान करने लगे। कितनोंके शिर और अङ्ग काटेगयेपर जीतेथे और पड़े हायहाय करतेथे वे निशाचरोंको देखके डरने

लगे और कितने लोगोंने भाई और मित्रोंको देखा । हे रामजी ! तबराजा विदूरथने स्वर्णके मन्दिरमें जो फूलों सहित चन्द्रमाकी नाईं शीतल और सुन्दर शय्यापर सब किवाड़ चढ़ाके विश्रामकिया और मंत्रियोंकेसाथ विचारकिया कि,प्रातःकाल उठकेऐसे करेंगे। ऐसे विचार करके राजाने शयनकिया पर एकमुहूर्त्त पर्यंतसोया और फिरचिन्ता से जग उठा इधर इन दोनों देवियों ने आकाशसे उतरके; जैसे संध्याकालमें कमल के मुख मूंदते हैं और उनमें वायुप्रवेशकरजाता है तैसेही मन्दिरोंमें सूक्ष्मपरमाणुके मार्गसे प्रवेश किया। इतनासुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! शरीरसे परमाणुके रंध्रमें देवियोंने कैसे प्रवेशकिया वहतो कमलके तंतु और बालके अग्रसेभी सूक्ष्महोतेहैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! भ्रांतिसे जो अधिभौतिक शरीर हुआ है उस अधिभौतिक शरीरसे आपसे सूक्ष्मरंध्रमें प्रवेश कोईनहीं करसक्ताहै परन्तु मनरूपी शरीरको कोईनहीं रोकसक्ता। हे रामजी ! देवी और लीलाका अन्तवाहक शरीरथा उससे सूक्ष्म परमाणुके मार्गसे उनको प्रवेशकरनेमें कुछ विचार न हुआ। जो उनका अधिभौतिक शरीर होता तो यत्नभीहोता। जहां अधिभौतिक नहो वहां यत्नकी शङ्का कैसे हो ? हे रामजी ! औरभी सबशरीर चित्तरूपीहैं पर जैसा निश्चय अनुभव संवितमें होताहै तैसेही सिद्धता होतीहै अन्यथा नहीं होती। जिसके निश्चय में ये शरीरादिक आकाशरूपहैं उसको अधिभौतिकताका अनुभव नहीं होता और जिसके निश्चयमें अधिभौतिकता दृढ़ होरहीहै उसको अन्तवाहकताका अनुभव नहीं होता। जिसपुरुष को पूर्वार्द्धका अनुभवनहीं उसको उत्तरार्द्धमें गमन नहीं होता—जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वको नहीं होता,तिरछा स्पर्श होताहै; अग्निका चलना अधको नहीं होता और जलका ऊर्ध्वको नहीं होता। जैसे आदि चेतनसंवितमें प्रवृत्ति भईहै तैसेही अबतक स्थितहै। इससे जिसको अन्तवाहक शक्ति उदय भई है उसको अधिभौतिकता नहीं रहती और जिसको अधिभौतिकता दृढ़ है उसको अन्तवाहक शक्ति उदयनहीं होती। हे रामजी ! जो पुरुष छायामें बैठाहो उसको धूपका अनुभव नहीं होता और जो धूपमें बैठाहै उसको छायाका अनुभव नहीं होता । अनुभव उसीको होताहै जिसके चित्तमें दृढ़ता होता है अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होता। हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्तसंवित में होता है तो जबतक और प्रतीति नहीं होती तबतक तैसेही सिद्धता होतीहै। जैसे रस्सीमें भ्रमसे सर्प भासता है और मनुष्य भयसे कंपायमान होताहै; सो कंपनाभी तबतक है जबतक सर्पका अनुभव अन्यथानहीं होता; जब रस्सीका अनुभव उदय होताहै तब सर्पभ्रम नष्टहोताहै; तैसेही जैसा अनुभव चित्त संवितमें दृढ़होताहै उसीका अनुभव होताहै। यह वार्त्ता बालकभी जानताहै कि,जैसी जैसी चित्तकी भावनाहोती है तैसाहीरूप भासताहै। निश्चय औरहो और अनुभव

और प्रकारहो ऐसा कदाचित् नहींहोता । हे रामजी ! जिनको ये आकार स्वप्नसङ्क-
ल्पपुरकी नाईं हुयेहैं सो आकाशरूपहैं । जिनको ऐसा निश्चयहो उनकोकोई रोंकन-
हीं सक्ता । औरोंकाभी चित्तमात्र शरीरहै पर जैसा जैसा संवेदन दृढ़भया है तैसाही
तैसाआपको जानताहै । हे रामजी ! आदिमें सब कुछआत्मा से स्वाभाविक उपजाहै
सो अकारणरूप है और पीछेसे प्रमादसे द्वैतकार्य्य अकारणरूप होके स्थितभयाहै ।
हे रामजी ! आकाशतीनहैं—एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाशहै और तीसरा भूता-
काश । उनमें वास्तव एक चिदाकाशहै और भावनाकरके भिन्नभिन्न कल्पनाहुईहैं ।
आदि शुद्ध अचेत,चिन्मात्र चिदाकाशमें जो संवेदन फुराहै उसकानाम चित्ताकाश
है और उसीमें यह सम्पूर्ण जगत्हुआहै । हे रामजी ! चित्तरूपी शरीर सर्वगत हो-
कर स्थितभयाहै । जैसाजैसा उसमें स्पन्दहोताहै तैसाहीतैसाहोके भासताहै । जित-
नेकुछ पदार्थहैं उन सभोंमें व्यापरहाहै; त्रसरेणुके अन्तरभी सूक्ष्मभावसे स्थितभया
और आकाशके अन्तरभी व्यापरहाहै । पत्रफल उसीसे होतेहैं;जलमें तरङ्गहोके स्थि-
तभयाहै;पर्वतके भीतरयही फुरता, मेघहोकेभी यहीवर्षता और जलसे बरफभी यह
चित्तहीहोताहै । अनन्त आकाश परमाणुरूप भीतर बाहर सर्वजगत्में यहीहै । जित-
ना जगत्है वह चित्तरूपहीहै और वास्तवमें आत्मा से अनन्यरूपहै । जैसे समुद्र
और तरङ्गमें कुछभेदनहीं तैसेही आत्मा और चित्तमें कुछभेदनहीं । जिस पुरुषको
ऐसे अखण्डसत्ता आत्माका अनुभव हुआहै और जिसका सर्गके आदि में चित्तही
शरीरहै और अधिभौतिकताको नहीं प्राप्तभया वह महाआकाशरूपहै उसको पूर्वका
स्वभाव स्मरणरहाहै इसकारण उसका अन्तवाहकशरीरहै । हेरामजी ! जिसपुरुषको
अन्तवाहकतामें अहंप्रत्ययहै उसको सब जगत्सङ्कल्पमात्र भासताहै वह जहांजाने
की इच्छाकरताहै वहांजाताहै औरउसको कोईआवरणनहींरोकसक्ता । जिसको अधि-
भौतिकतामें निश्चयहै उसको अन्तवाहक शक्तिनहीं होती । हे रामजी ! सबहीअन्त-
वाहकरूपहैं और भ्रमसे अनहोता अधिभौतिकदेखतेहैं । जैसे मरुथल में जलभास-
ताहै और जैसे स्वप्नमेंवंध्याके पुत्रकासद्भावहोताहै तैसेही अधिभौतिकजगत् भासता
है । जैसेजल शीतलतासे बरफ होजाताहै तैसेहीजीव प्रमादसे अन्तवाहकसे अधि-
भौतिक शरीरहोता है । इतनासुन रामजीने पूछा; हे भगवन् ! चित्तमेंक्याहै; कैसेहो-
ताहै और कैसे नहींहोता; यह जगत् कैसे चित्तरूपहै और क्षण में अन्यथा कैसेहो-
जाताहै ? वशिष्ठजी बोले;हेरामजी ! एकएक जीवप्रति चित्त होताहै । जैसाजैसा चि-
त्तहै तैसीही तैसी शक्तिहै । चित्तमें जगत्भ्रम होताहै क्षणमेंकल्प औरसम्पूर्णजगत्
उदय होआताहै और क्षणमेंसम्पूर्ण लयहोताहै । किसीको निमेषमें कल्प होआता है
और किसीको क्रमसे भासताहै सो मन लगाकर सुनिये । हे रामजी ! जब मरने

मूर्च्छाहोतीहै तो उस महाप्रलयरूप मृत्युमूर्च्छाके अनन्तर नानाप्रकारका जगत् फुर आताहै जैसे स्वप्नेमें सृष्टिफुरआतीहै और जैसे सङ्कल्पका पुरभासताहै तैसेही मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर सृष्टि भासती है जैसे महाप्रलय के अनन्तर आदि विराटरूप ब्रह्मा होताहै तैसेही मृत्युके अनन्तर इसको अनुभवहोता है यह भी विराट होता है क्योंकि; इसका मनरूपी शरीरहोता है। रामजी बोले; हे भगवन्! मृत्युके अनन्तर जो सृष्टिहोती है वह स्मृति से होती है; स्मृति विना नहीं होती. इसलिये मृत्युके अनन्तर जो सृष्टिहुई तो सकारणरूप हुई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब हरिहरादिक सबही विदेह मुक्त होते हैं। फिर स्मृतिका सम्भव कैसेहो ? हमसे आदिले जो बोधआत्मा हैं जब विदेह मुक्तहुये हैं तब स्मृति कैसे सम्भव हो? अबके जो जीवहैं उनका जन्म मरण स्मृति कारणसे होताहै क्योंकि; मोक्ष नहीं होता– मोक्षका उनको अभावहै। हे रामजी! जब जीव मरतेहैं तब उन्हें मृत्यु मूर्च्छा होती है पर कैवल्यभावमें स्थितनहीं होते; मूर्च्छासे उनका संवित आकाशरूप होताहै तिससे फिर चित्तसम्वेदन फुरआताहै। तब उन्हें क्रमकरके जगत् फुरआताहै पर जब बोधहोताहै तब तन्मात्रा और काल, क्रिया, भाव, अभाव, स्थावर–जङ्गम जगत् सब आकाशरूप होजाताहै। जिसका सम्वेदन दृश्यकीओर धावता है उनको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर अज्ञान सम्वेदन फुरताहै उससे उन्हें शरीर और इन्द्रियां भासआतीहैं। वह अन्तवाहक शरीरहै परन्तु चिरकालकी प्राप्तिकरके अधिभौतिक हो भासताहै। तब देश, काल, क्रिया, आधार, आधेय उदय होकर स्थितहोतेहैं। जैसे वायु स्पन्द और निस्पन्दरूप है पर जब स्पन्दहोताहै तब भासताहै और निस्पन्द हुयेसे नहीं भासता; तैसेही सम्वेदनसे जब जगत् भासता है तब जानता है कि, मैं यहां उपजाहूं। जैसे स्वप्नमें अङ्गनाके स्पर्शका अनुभव होताहै वह मिथ्या है तैसेही भ्रमसे जो आपको उपजा देखताहै वहभी मिथ्याहै। हे रामजी! जहां यहजीव मृतकहोताहै वहीं जगत् भ्रम देखताहै। वास्तवमें जीवभी आकाशरूपहै और जगत् भी आकाशरूपहै। अज्ञानसे जीव आपको उपजामानताहै और नानाजगत् भ्रमदेखताहै कि, यह नगर है; यह पर्वतहै; ये सूर्य्य और चन्द्रमा हैं; ये तारागण हैं और जरा–मरण, आधि–व्याधि सङ्कटसे व्याकुल होताहै। वह भाव–अभाव, भय, स्थूल, सूक्ष्म, चर–अचर, पृथ्वी, नदियां, पर्वत, भूत–भविष्य–वर्त्तमान; क्षय-अक्षय और भूमिकोभी देखताहै और समझताहै कि; मैं उपजाहूं, मैं अमुककापुत्रहूं, यह मेरा कुल है; यह मेरी माताहै; ये मेरे बांधवहैं; इतना धन हमको प्राप्तभयाहै इत्यादि अनेक वासना जालोंमें दुःखीहोताहै और कहताहै कि; यह सुकृतहै और यह देहाकृतहै; प्रथममें बालकथा; अब मेरी यह अवस्था हुई और यह मेरा वर्ण है इत्यादिक अनेक

जगत् कल्पना हरएक जीवको उदयहोतीहै । हे रामजी ! संसाररूपी एकवृक्ष उगाहै; चित्तरूपी उसका बीजहै; तारागण उसके फूलहैं और चञ्चल मेघ पत्रहैं । जङ्गम जीव, मनुष्य, देवता, दैत्यादिक पक्षी उसपर बैठनेवाले हैं औररात्रि उसकेऊपर धूरहै; समुद्र उसकी तलावड़ी हैं; पर्वत उसमें शिलवट्टेहैं और अनुभवरूप अंकुरहैं । जहांजीव मरताहै तहीं क्षणमें ये सब देखताहै । इसीप्रकार एक २ जीवको अनेकजगत् भासते हैं । हेरामजी ! कितनेकोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, पवन और सूर्य्यादिक हुये हैं । जहां सृष्टिहै वहीं ये होते हैं इससे चिदणुमें अनेक सृष्टिहैं जीवभी अनन्त हुये हैं और उन्हींमें सुमेरु, मण्डल, द्वीप और लोकभी बहुतेरे हुयेहैं । जो चिदणुमेंही सृष्टिका अन्तनहीं तो परब्रह्ममें अन्त कहांसे आवे ? वास्तवमें है नहीं; जैसे पर्व्वतकीदीवारमें शिल्पी पुतलियां कल्पेतो कुछ हैंनहीं तैसेही जगत् चिदाकाशमें नहीं है केवल मनोमात्रहीहै । हे रामजी ! मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप है और चिदाकाशमें मनन और स्मरणहै । जैसे तरङ्गभी जलरूपहैं और जलहीमें होते हैं; जलसे इतर तरङ्ग कुछवस्तु नहीं हैं; तैसेही मनन और स्मरणभी चिदाकाशरूप जानो । हेरामजी! दृश्य कुछ भिन्नवस्तुनहींहै; द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होकर भासताहै। जैसे मनाकाश नाना प्रकार हो भासताहै; तैसेही चिदाकाशका प्रकाश नाना प्रकार जगत् होकर भासता है । यह विश्व सब चिदाकाशरूपहै; हमको तो ऐसेही भासताहै परतुमको अर्थाकार रूप भासताहै इसी कारण कहाहै कि; लीला और सरस्वती आकाशरूप, सर्वज्ञ, स्वच्छरूप और निराकारथीं । वे जहां चाहतीथीं तहां जाय प्राप्तहोतीथीं और जैसी इच्छाकरतीथीं तैसी सिद्धि होतीथी क्योंकि; जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है उसको कोई रोक नहीं सकताहै । सर्वरूप होके जो स्थितहुआ उसेगृहमें प्रवेश करना क्याआश्चर्य्यहै । वहतो अन्तवाहक रूपहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्मृत्यनुभववर्णनन्नामअष्टाविंशतितमस्सर्ग्गः ॥ २८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब दोनोंदेवियां जिनकी चन्द्रमाके समानकान्तिथी राजाके अन्तःपुर में सङ्कल्प से प्रवेशकर सिंहासन पर स्थित भईं तो बड़ा प्रकाश अन्तःपुरमें हुआ और शीतलतासे व्याधि ताप शांतहुआ । जैसे नन्दनवन होताहै तैसेही अन्तःपुर होगया और जैसे प्रातःकालमें सूर्यका प्रकाश होताहै तैसेही देवियों के प्रकाशसे अन्तःपुर पूर्णभया; मानों देवियोंके प्रकाशसे राजापर अमृतकी सींचना हुई तब राजाने देखाकि मानों सुमेरुके शृंगसे दो चन्द्रमा उदयहुये हैं । ऐसे देखके वह विस्मयको प्राप्तहुआ और चिन्तनाकी कि, ये देवियां हैं । इसलिये; जैसे शेष नागकी शय्यासे विष्णु भगवान् उठतेहैं; तैसेही उसने उठके और वस्त्रोंको एक ओर

करके हाथोंमें पुष्पलिये और हाथजोड़के देवियोंके चरणोंपर चढ़ाये और माथा टेकके पद्मासन बांध पृथ्वीपर बैठगया और कहनेलगा; हे देवियो! तुम्हारी जयहो। तुम जन्म दुःख तपके शांतकरनेवाले चन्द्रमाहो और अपूर्व सूर्यहो—अर्थात् पूर्व सूर्य के प्रकाशसे बाह्यतम नष्टहोताहै और तुम्हारे प्रकाशसे अन्तर अज्ञानतमभी नष्टहोता है; इससे अपूर्व सूर्यहो। इसके अनन्तर देवीनेमंत्रीको जो राजाकेपास नदीके तटके फलों के वृक्षों के समान सोया था जन्म और कुलके कहावनेके निमित्त संकल्प से जगाया और मंत्री उठके फलों से देवियों का पूजनकर राजाके समीप जा बैठगया। तब सरस्वती कहनेलगीं; हे राजन्! तू कौनहै; किसकापुत्रहै और कबका तूने जन्म लियाहै? हे रामजी! जब इसप्रकार देवीनेपूछा तब मंत्री, जो निकट बैठाथा, बोला; हे देवि! तुम्हारी कृपासे राजाका जन्म और कुल में कहताहूं। इक्ष्वाकु कुलमें एक राजाहुआथा जिसके कमलकी नाईं नेत्रथे और वह श्रीमान्था उसका नाम कुन्दरथ था। निदान उसकापुत्र बुधरथहुआ; बुधरथके सिंधुरथ हुआ; उसकापुत्रमहारथ हुआ; महारथका पुत्र विष्णुरथ हुआ; उसकापुत्र कलारथ हुआ; कलारथकापुत्र; सयरथ हुआ; सयरथकापुत्र नभरथहुआ और उस नभरथके बड़े पुण्यकरके यह विदूरथ पुत्र हुआ। जैसे क्षीर समुद्र से चन्द्रमा निकला है तैसेही सुमित्रा मातासे यह उपजाहै। जैसे गौरीजी से स्वामिकार्त्तिक उत्पन्न भये हैं तैसेही यह सुमित्रा से उत्पन्न हुये हैं। हे देवि! इसप्रकार तो हमारे राजाका जन्म हुआ है। जब यह दश वर्षका भया तब पिता इसको राज्यदेकर आप वनको चलागया और उस दिनसे इसने धर्मकी मर्यादासे पृथ्वीकी पालनाकी और बड़े पुण्यकिये हैं। उन्हीं पुण्यों का फल तुम्हारा दर्शन अब इसको भया है। हे देवि! जो तुम्हारे दर्शन के निमित्त बहुत वर्षों तप करतेहैं उनकोभी तुम्हारा दर्शनपाना कठिनहै; इससेइसके बड़ेपुण्यहैं कि, तुम्हारा दर्शन प्राप्तहुआ। हे रामजी! इसप्रकार कहके जबमंत्री तूष्णीहुआ तब देवीजीने कृपाकरके राजाविदूरथ के शीशपर हाथरखकर कहा; हेराजन्! तुमअपने पूर्व्वजन्मको विवेकदृष्टि करकेदेखो कि, तुमकौनहो? देवी के हाथरखने से राजाके हृदय का अज्ञानतम निवृत्त होगया; हृदय प्रफुल्लितहुआ और देवीके प्रसादसे राजा को पूर्व्वकीस्मृतिफुरआई। लीला और पद्मका सम्पूर्णवृत्तान्त स्मरणकरके कहनेलगा, हे देवि! बड़ा अचरज है कि, यहजगत् मनसे रचा है। यह मैंने तुम्हारे प्रसाद से जाना कि, मैं राजापद्मथा और लीला मेरीस्त्रीथी। मुझको मृतकहुये एकदिन ऐसेमें भासा और यहांमें सौ वर्षकाभयाहूँ सो अबतकभ्रमसे मैंने नहीं जाना; अब प्रत्यक्ष जानताहूँ। सौ वर्षोंमें जो अनेक कार्यमैंने कियेहैं वहसब मुझको स्मरण होतेहैं और अपने प्रपितामह और अपनी बाल्यावस्था व यौवन अवस्था, मित्र और बांधव भी

स्मरण आते हैं—यह बड़ा आश्चर्य्य हुआहै। सरस्वती बोली; हे राजन्! जबजीव मृतक होतेहैं तब उनको बड़ी मूर्च्छा होतीहै। उसमूर्च्छाके अनन्तर और २ लोक भासआतेहैं और एकमुहूर्त्त में वर्षोंका अनुभव होता है। जैसे स्वप्नमें एक मुहूर्त्त में अनेक वर्षोंका अनुभव होताहै तैसेहीतुझको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर यह लोक भ्रम भासाहै। हे राजन्! जहांतुम पद्मराजथे उस गृहमें मृतकहुये तुमको एकमुहूर्त्त बीता है और यहां तुमको बहुतेर वर्षोंका अनुभव हुआहै। इससे भी जो पिछला वृत्तान्त है वह सुनिये। हे राजन्! पहाड़के ऊपर एक ग्रामथा उसमें एकवशिष्ठ ब्राह्मण रहता था और अरुन्धती उसकी स्त्रीथी। वह दोनों मन्दिरमें रहतेथे। अरुन्धतीने मुझसे वरलिया कि, जब मेराभर्त्ता मृतक हो तब उसका जीव इसही मण्डपाकाश में रहे। निदान जब वह मृतकहुआ तब उसकी पुर्य्यष्टक उसही मन्दिर में रही पर उसके संवितमें राजाकी दृढ़वासना थी इसलिये उस मण्डपाकाशमें उसको पद्मराजा की सृष्टि फुरआईऔर अरुन्धती उसकी स्त्री लीला होकर उसको प्राप्तभई। राजा पद्मका मण्डप उस ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें स्थितहुआ और फिर उसमण्डपमें जब तू राजा पद्ममृतक हुआ तब तेरे संवितमें नाना प्रकारके आरम्भ संयुक्त यहजगत् फुरआया। हेराजन्! यह तेराजगत् पद्मराजाके हृदयमें फुरआयाहै और पद्मराजाके मण्डपाकाश में स्थित है पद्मराजाकाजगत् उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है और वही वशिष्ठ ब्राह्मण तुम विदूरथराजा हुयेहो। हे राजन्! यहसब जगत् प्रतिभामात्र है और मनकी कल्पनासे भासताहै—उपजा कुछनहीं। इतना सुन विदूरथबोले, बड़ा आश्चर्य्यहै कि; जैसे मेरा यहजन्म भ्रमरूप हुआ तैसेही इक्ष्वाकुका कुल और मेरे मातापिता सबभ्रमरूपहुयेहैं तिसमें मैं जन्मलेकेबालकहुआ और जबदशवर्षका था तब पिताने मुझको राज्यदेके वनवासलिया। फिर मैंनेदिग्विजयकरके प्रजाकी पालना की और शतवर्षोंका मुझको अनुभव होता है। फिर मुझको दारुण अवस्था युद्धकी इच्छाहुईहै और युद्धकर के रात्रिकोमें गृहमेंआया। अबतुमदोनों देवियां मेरेगृहमें आईं और मैंने तुम्हारी पूजाकी तबतुम दोनोंमें से एकदेवीने कृपाकरके मेरेशीशपर हाथरक्खाहै उसीसे मुझकोज्ञानप्रकाश भयाहै। जैसेसूर्यके प्रकाशसेकमल प्रफुल्लित होताहै तैसेहीमेरा हृदय देवीके प्रकाशसे प्रफुल्लित भयाहै। इनकी कृपासे मैंकृतकृत्य हुआ और अबमेरा सब सन्तापनष्ट होकर निर्वाण, समता, सुख और निर्मलपदको प्राप्तहुआहूं। सरस्वती बोली; हेराजन्! जोकुछ तुझको भासाहै वह भ्रममात्र है और नानाप्रकार के व्यवहार और लोकान्तर भी भ्रममात्र हैं क्योंकि; वहां तुझ को मृतकहुये अभी एकमुहूर्त्त व्यतीतहुआ है और इसी अनन्तर में उसी मण्डप आकाशमें तुझकोयहजगत् भासा। पद्मराजाकी वह सृष्टि ब्राह्मण के मण्डपमें स्थित है

और यहांतुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत सम्पूर्ण जगत् भासि आये हैं। हे राजन्! मृत्युमूर्च्छा के अनन्तर कभी वही जगत् भासता है, कभी और प्रकार भासता है और कभी पूर्व–अपूर्व भी भासता है। यह केवल मनकी कल्पना है पर वास्तव में असत् रूपहै और अज्ञान से सत्की नाईं भासता है। जैसे एकमुहूर्त्त शयनकरके स्वप्ने में बहुतेरे वर्षों का क्रमदेखता है; तैसेही जगत्का अनुभव होता है। जैसे सङ्कल्पपुर में अपना जीना, मरना और गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है; जैसे नौकामें बैठेहुये मनुष्य को तटकेवृक्ष चलतेहुये भासते हैं; भ्रमण करने से पर्वत, पृथ्वी और मन्दिर भ्रमते भासतेहैं और स्वप्ने में अपनाशिर कटा भासता है तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। हे राजन्! अज्ञानसे तुझको मिथ्या कल्पना उपजी है; वास्तव में न तू मृतकहुआ और न तूने जन्मलिया तेरा अपना आप जो शुद्ध विज्ञान शांतिरूप आत्मपदहै उसीमें स्थित है। नानाप्रकारका जगत् अज्ञानसे भासताहै और सम्यक्ज्ञान से सर्वात्मसत्ता भासती है। आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासती है। जैसे बड़ी मणिकी किरच नाना प्रकार हो भासतीहै सोवह मणिसे भिन्ननहीं; तैसेही आत्मसत्ताका किञ्चन आकाशरूपजगत् भासताहै। गिरि औरग्राम और किञ्चनरूपहो जितना जगत् विस्तार तुमको भासता है वहलीला और पद्मराजाके मण्डपाकाशमें स्थितहै और लीला और पद्मकी राजधानी उस वशिष्ठब्राह्मणके मण्डपाकाशमें स्थितहै। हे राजन्! यह जगत् वशिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मण्डपाकाशमें फुरताहै। वह मण्डपाकाश जो आकाशमें स्थितहै उसमें न पृथ्वीहै न पर्वतहै। न मेघहैं;न समुद्रहै और न कोई मुमुक्षुहै। केवल शून्य शून्यस्थितहै और नकोईजगत्है,न कोई देखनेवालाहै–यहसब भ्रान्तिमात्रहै। हे राजन्! यहसब तेरेउस मण्डपाकाशमें फुरतेहैं। विदूरथ बोले; हेदेवि! जो ऐसे हैं तो यहमेरे भृत्यभी अपने आत्ममें सत्है या असत्है कृपाकर कहिये? देवीबोली, हे राजन्! विदित वेदजो पुरुष है वह शुद्ध बोधरूपहै। उसको कुछभी जगत् सत्यरूप नहींभासता; सब चिदाकाशरूपही भासताहै। जैसे भ्रम निवृत्तहुये रस्सीमेंसर्प नहींभासता; तैसेही जिन पुरुषोंकोआत्मबोध हुआहै और जिनका जगत्भ्रम निवृत्तहुआहै उनको जगत् सत्नहींभासता जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलको असत्जाने तो फिर जलसत्ता नहीं भासती; तैसेही जिनको आत्मबोध हुआहै और जगत्को असत् जानते हैं उनको सत्नहीं भासता। हे राजन्! जैसे स्वप्नेमें कोई भ्रमसे अपना शिश कटादेखे और जागेसे स्वप्नकामरना नहीं देखता तैसेही ज्ञानवान्को जगत् सत्नहींभासता। जैसे स्वप्नेका मरना भ्रमसे देखताहै तैसेही अज्ञानीको जगत् सत् भासताहै परन्तु वास्तवमें कुछनहींशुद्धबोधमें जगत् भ्रम भासता है। जैसे शरत्कालमें मेघसे रहित शुद्धआकाश होता है तैसेही

शुद्धबोधवालोंको अहंत्वं आदिक व्यर्थशब्दका अभावहोताहै । हे राजन्! तुम और तुम्हारे भृत्य इत्यादिक जोयह सृष्टिहै वहसब आत्मामेंफुरे हैं और वास्तवमेंकुछनहीं हुआ । केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और असे और कुछ भासताहै पर शुद्धविज्ञान घनरूपही उसकाशेपरहताहै । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकारजब देवी और विदूरथका सम्वाद वशिष्ठजीने रामजीसे कहा तब सूर्य्यअस्त होकर सायङ्कालका समयहुआ और सब सभा परस्पर नमस्कारकरके स्नानको गई। जबरात्रि बीतगई सूर्य्यकी किरणोंके निकलतेही सब अपने २ स्थानोंपर आके बैठे ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेभ्रान्तिविचारोनामएकोनात्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २९ ॥
वशिष्ठजी बोले: हे रामजी! जो पुरुष अबोधहैं अर्थात् परमपदमें स्थित नहींहुये उनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ़है । जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहीं में बैताल भासताहै तैसेही अज्ञानीको असत्रूप जगत् सत्हो भासताहै और जैसे मरुस्थलमें मृगको असत्रूप जलाभास सत्यहो भासताहै; स्वप्ने में क्रिया अर्थ भ्रमकरके भासतीहै; जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती उसको भूषणबुद्धि सत् भासतीहै और जैसे नेत्र दूषणसे आकाशमें मुक्तमाला भासती हैं तैसेही असम्यक्दर्शीको असत्रूप जगत् सतहो भासताहै । हे रामजी! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्नाहै; अहंतासे दृढ़ जाग्रत् रूप हो भासताहै और वास्तवमें कुछ उपजानहीं परमचिदाकाश सर्वदा शान्ति और अचिन्त्य चिन्मात्रस्वरूप सर्वशक्ति सर्व आत्माहीहै; जहां जैसा स्पन्दफुरता है वैसाही जगत् होकर भासताहै । जैसे स्वप्नसृष्टिभासती है वह स्वप्नभ्रम चिदाकाशमें स्थितहै । उस चिदाकाशमें एकस्वप्नपुर फुरताहै और वही द्रष्टाहोदृश्यको देखता है। वह द्रष्टा और दृश्य दोनों चैतन संवित्में आभासरूप हैं तैसेही यह जगत् भी आभासरूप है । हे रामजी! सर्ग की आदि जो शुद्ध आत्मसत्ताथी उसमें आदि संवेदन स्पंद हुआहै-वही ब्रह्माजी है और उसी के संकल्पमें यह संपूर्ण जगत् स्थितहै । यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी नाईं है; उस स्वप्नरूप में तुम्हारा सद्भाव हुआ है । जैसे तुमहो तैसेही और भी हैं । जैसे स्वप्नेमें स्वप्ननरको और स्वप्नाहो और जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जो दृष्टि आता है भ्रममात्र है । जैसे स्वप्नेमें असत्ही सत् होके भासता है तैसेही यहभी अहंत्वं आदिक भासते हैं और जैसे स्वप्ने में सब कर्म होते हैं तैसेही यहभी जानो । इतनासुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! स्वप्नसे जब मनुष्य जागता है तब स्वप्न के पदार्थ उसे असत्रूपहो भासते हैं पर ये तो ज्योंकेत्यों रहते हैं और जब देखिये तब ऐसेही हैं; फिर आप जाग्रत् और स्वप्नको कैसे समान कहते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसा स्वप्न है वैसेही जाग्रत् है; स्वप्न और जाग्रत्में कुछ भेदनहीं । स्वप्नको भी असत् तब जा-

नता है जब जागता है; जब तक जागानहीं तब तक असत् नहीं जानता; तैसेही मनुष्य भी जबतक आत्मपद में नहीं जागता तबतक असत् नहीं भासता और जब आत्मपदमें जागता है तब यह जगत्भी असत्रूप भासताहै। हे रामजी! यह जगत् असत्रूप है और भ्रमसे सत्की नाईं भासता है। जैसे स्वप्ने की स्त्री असत्रूप होती है और उसको पुरुष सत्रूप जानता है; तैसेही यह जगत् भी असत्रूप सत्हो दिखाई देताहै। केवल आभासरूप जगत् है और आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है; जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसेही होके भासता है। जैसे डिब्बेमें अनेक रत्न होते हैं उसमें जिसको चाहता है लेताहै; तैसेही सर्वगत चिदाकाशहै जहां जैसा चिन्तता है वहांवैसा हो भासता है। हे रामजी! अब पूर्वका प्रसङ्ग सुनो जब देवीने विदूरथ पर अमृतके समान ज्ञान वचनों की वर्षा की तब उसके हृदय में विवेकरूप सुन्दर अंकुर उत्पन्न हुआ तब सरस्वती ने कहा; हे राजन्! जो कुछ कहनाथा वह मैं तुझसे कहचुकी। अब तुम रण संग्राममें मृतक होगे—यह मैं जानती हूं। अब हम जाती हैं; लीलादि को देखाने के लिये हम आईथीं सो सब दिखाचुकीं। इतना कहकर वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार मधुरवाणी से सरस्वती ने कहा तब बुद्धिमान् राजा विदूरथ बोला। हे देवि! बड़ेका दर्शन निरर्थक नहीं होता वह तो महाफल देनेवाला है। हे देवि! जो अर्थी मेरेपास आताहै उसे मैं निरर्थक नहीं जानेदेता और सबका अर्थ पूरा करता हूं। तुमतो साक्षात् ईश्वरी हो इसलिये मुझे यह वर दो कि, देहको त्यागकर मैं लोकान्तरमें पद्मके शवमें प्राप्त होऊं और मेरे मंत्री और लीला भी मेरे साथहों। हे देवि! जो भक्त शरण में प्राप्तहोता है उस को बड़े लोग त्याग नहीं करते बल्कि उसके सर्व अर्थ सिद्ध करते हैं। सरस्वती बोली हे राजन्! ऐसेही होगा। तू पद्मराजाके शरीर में प्राप्तहोगा और बोध सहित निश्शङ्कहोकर राज्यकरेगा। हमारी आराधना किसीको व्यर्थ नहीं होती जैसी कामना करके कोई हमको सेवता है तैसेही फलको प्राप्तहोता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्वप्नपुरुषसत्यता वर्णनंनामात्रिंशतितमस्सर्गः ३०॥

सरस्वती बोली; हे राजन्! अबतुम रणमें मृतकहोके पूर्वके पद्मराजाके शरीर में प्राप्तहोगे और यह तुम्हारी भार्या और मंत्रीभी तुम्हे वहां प्राप्तहोंगे। हे राजन्! तुम ऐसे चले जावोगे जैसे वायु चलीजातीहै। जैसेअश्व और खर; मृग और ऊंट हाथी का संगनहीं करते तैसेही तुम्हारा हमारा क्यासंगहै—इससेहम जाती हैं। इतनाकहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनेकहा तब एक पुरुष ने आकर कहा; हे राजन्! जैसे प्रलय कालमें मन्दराचल औरअस्ताचल आदिक पर्वत वायु

में उड़ने हैं तैसेही शत्रुचले आते हैं और चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षाकरते हैं । जैसे महाप्रलय में सब स्थान जलसे पूर्ण होजाते हैं तैसेही सेनासे सब स्थान पूर्ण हुये हैं और उन्हों ने अग्निभी लगाई है उससे स्थान जलने लगे हैं । वे शब्द करते हैं और नदी के प्रवाह की नाईं बाण चले आते हैं । अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलय की बड़वाग्नि समुद्र को सोखती है । तब दोनों देवियां और राजा और मंत्री ऊंचे चढ़के और झरोखे में बैठ के क्या देखने लगे कि, जैसे प्रलयकाल में मेघ चले आते हैं तैसेही सेना चली आती है और जैसे प्रलयकी अग्नि से दिशा पूर्ण होती हैं तैसेही अग्निकी ज्वालासे सब दिशा पूर्ण हुई हैंऔर उससे ऐसी चिनगारियां उड़ती हैं मानों तारागण गिरते हैं और अङ्गारों की वर्षाहोती है उससे जीव जलते हैं सुन्दर स्त्रियां जो नाना प्रकारके भूषणों से पूर्ण थीं वह तृणों की अग्निमें जलती हैं और पुरुषोंकी देह और वस्त्रभी जलते हैं । सब हाय हाय शब्दकरते हैं और जलते जलते बांधव, पुत्र और स्त्रियोंको ढूंढ़ते हैं । हे रामजी ! यह आश्चर्य्य देखो कि,ऐसे स्नेहसे जीव बांधे हुये हैं कि,मृत्युकाल में भी स्नेह नहीं त्याग सक्ते पर सेना के लोग दूसरे लोगों को मारके स्त्रियों को लेजाते हैं । हे रामजी ! उस काल रणभूमिका में चहुंओर शब्द छागया; कोई कहताथा हाय पिता; कोई कहता था हाय माता; हाय भाई, हाय पुत्र, हाय स्त्री । घोड़े, गौ, बैल, ऊंट आदिक पशु इकट्ठे मिलगये और अग्निकी ज्वाला वृद्धि होतीजातीहै और बड़ा क्षोभ उदयहुआ । जैसे महाप्रलय की अग्नि होती है तैसेही सब स्थान अग्निसे पूर्ण हुये और उनमें अनेक जीव और स्थान दग्ध होने लगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेअग्निदाहवर्णनंनाम एकत्रिंशतितमस्सर्गः ३१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार राजा नगर को देखताथा कि, लीला सहेलियों सहित अपने दूसरे स्थानसे जहां राजा विदूरथथा आई; उसके महासुन्दर भूषण कुछ टूटेहुये और कुछ शिथिलथे । एक सहेली ने कहा; हे राजन् ! तुम्हारे अन्तःपुर में जो स्त्रियां थीं उन्हें शत्रु ले गये हैं पर इस लीलाराणी को हम बड़े यत्न से चुराकर लेआई हैं ; और दूसरे लोगों को उन शत्रुओं ने बड़ा कष्टदिया है । तुम्हारे द्वारे पर जो सेना बैठी है उसको भी वह चूर्ण करते हैं और समस्त नगरको जलाकर लूटलियाहै । हे रामजी !जब इस प्रकार सहेलीने राजासे कहा तब राजाने सरस्वतीजी से कहा; हे देवीजी ! यहलीला तुम्हारी शरण आईहै और तुम्हारेचरण कमलोंकी भ्रमरी है; इसकी रक्षाकरो और मैं अब युद्ध करने जाताहूं । जब इस प्रकार कहकर राजा क्रोध संयुक्त युद्धकरने को रणकी ओर मत्तहाथी के समान चला

तब देवी के साथ जो प्रथम लीला थी उसने क्या देखा कि, उस लीला का अपनीही मूर्त्तिसा सुन्दर आकार है। जैसे आरसी में प्रतिविम्ब होता है तैसेही देखके कहने लगी; हे देवि! इसमें मैं क्योंकर प्राप्त हुई? जब मैं प्रथम आई थी तब तो मुझको मन्त्री, टहलुये और अनेक पुरवासी दीखते थे और वह संशय मैंने तुम से निवृत्त कियाथा; फिर अब मैं इस प्रकार कैसे आन स्थित हुई? यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है जिस के भीतर बाहर प्रतिविम्ब होताहै? यह मन्त्री और टहलुये और मेरा यह स्वरूप क्या है और दृश्यभाव हो क्योंकर भासता है? मेरा यह संशय दूरकरो। देवी बोली; हे लीले! जैसे चित्त संवित् में स्पन्द फुरता है तैसेही तत्काल सिद्ध होताहै। जिस अर्थ को चिन्तन करनेवाला चित्त संवित् शरीर को त्यागता है उसी अर्थको प्राप्तहोता है और उसी क्षण में देश,काल और पदार्थ की दीर्घताहोती है। जैसे स्वप्न सृष्टि फुरआती है तैसेही परलोक सृष्टि भासआती है। हे लीले! जबतेरा भर्त्ता मृतकहोनेलगाथा तब तुझमें और मन्त्रियोंमें इसका बहुत स्नेहथा इससे वही रूप सत्होकर अपनी वासना के अनुसार उसे भासाहै जैसेसङ्कल्पपुर और स्वप्नसेना भासती है तैसेही यह "देश,काल और पदार्थ" भासे हैं। हेलीले! जो कोई असत्पदार्थ सत्रूप होकर भासते हैं वह अज्ञानकाल मेंही भासते हैं, ज्ञानकाल में सब तुल्य होजाते हैं, न्यूनाधिक कोई नहीं रहता; जाग्रत् में स्वप्न मिथ्याभासता और स्वप्नमें जाग्रत्का अभाव होजाता है। जाग्रत् शरीर मृतक में नाश होजाता है; मृतकजन्ममें असत् होजाताहै और मृतकमें जन्मअसत् होजाता है। हे लीले! जब इसप्रकार इनको विचारकर देखिये तो सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं; वास्तव में कोईसत्य नहीं। हेलीले! सर्गसे आदि महाप्रलय पर्य्यन्त कुछनहीं हुआ। सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्म सत्ता अपने आपमें स्थित है; जगत् कल्पना आभासमात्र है और अज्ञानसे भासता है। जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है और वास्तव में कुछभी नहीं है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर लीन होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् उपजकर लीनहोते हैं। इससे 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं। हे लीले! यह जगत् मृगतृष्णा के जलवत् है। इसमें आस्थाकरनी अज्ञानता है और भ्रान्तिभी कुछनहीं। जैसे घनतममें यक्ष भासताहै पर वह यक्ष कोईवस्तु नहीं है; ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; तैसेही भ्रांतिभी कुछवस्तु नहीं। जन्म, मृत्यु और मोह सब असत्रूप हैं। 'अहं' 'त्वं' आदिक जितने शब्द हैं उनका महाप्रलयमें अभाव होजाता है; उसकेपीछे जो शुद्ध शान्तरूप है अबभी वहीजान कि, ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता है। हेलीले! यह जो पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं सोभी संवित्रूप हैं क्योंकि; जब चित्त संवित् स्पन्दरूप होता है तबयह जगत् होके भासता है और इसी कारण सं-

चिनरूप है। हे लीले! जीवरूपी समुद्र में जगत्रूप तरङ्ग उत्पन्न होते हैं और लीनभी होतेहैं पर वास्तव में जलरूप हैं; और कुछनहीं। जैसे अग्नि में उष्णता होतीहै तैसेही जीवमें सर्गहै। जो ज्ञानवान्है उसको सर्वात्मा भासताहै और अज्ञानी को भिन्न भिन्न कल्पना होती है। हे लीले! जैसे सूर्य्यकी किरणों में त्रसरेणु भासते हैं पवनमें स्पन्दहोता है और उसमें सुगन्धहोती है सो सब निराकारहैं; तैसेही जगत्भी आत्मामें निरूपहै। भाव–अभाव; ग्रहण–त्याग; सूक्ष्म–स्थूल; चर–अचर इत्यादिक सब ब्रह्मके अवयव हैं। हेलीले! यह जगत् जो साकाररूप भासताहै सो आत्मासेभिन्न नहीं। जैसे वृक्षके अङ्गपत्र, फल, टासरूप होभासतेहैं; तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्रूप होकर भासती है और कुछ नहीं। जैसे चेतन संवित् में जैसा स्पन्द फुरताहै तैसेही होकर भासता है परवह आकाशरूप संवित् ज्यों की त्यों है उसमें और कल्पना भ्रम मात्र है। हे लीले! यह तो जगत् भासता है वह न सत्है और न असत् है। जैसे रस्सीमें भ्रमसेसर्प भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। जिसको असम्यक्ज्ञान होताहै उसको रस्सीमें सर्पभासताहै तोवह असत् न हुआ और जिसको सम्यक्बोध होता है उसको सर्प सत्नहीं। ऐसेही अज्ञानसे जगत् असत् नहीं भासता और आत्मज्ञानहुये सत् नहीं भासता क्योंकि; कुछ वस्तुनहीं है। हे लीले! जैसे जिस के अन्तःकर्ण में स्पन्द फुरता है उसका वह अनुभव करता है। जब यह जीव मृतक होता है तब इसको एकक्षण में जगत् फुरआताहै। किसीको अपूर्वरूप फुरआताहै; किसीको पूर्वरूप फुरआता है और किसीको पूर्वअपूर्व मिश्रित फुरआता है। इस कारण तेरे भर्त्ताकोभी वही मन्त्री, स्त्री और सभा वासना के अनुसार फुरआये हैं क्योंकि; आत्मा सर्वत्ररूप है; जैसाजैसा इसमें तीव्र स्पन्द फुरता है तैसाही होकर भासता है। हे लीले! जैसे अपने मनोराज में जो प्रतिभा उदय होआती है वह सत्रूप हो भासती है; तैसेही यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठीहै सो यहीहुई है और तेरे भर्त्ताकी जो तेरे में तीव्रवासना थी इससे उसको तेराप्रतिबिम्ब रूपहोकर यह लीलाप्राप्तहुई और तेरासा शील, आचार, कुल, वपु इसको प्रतिबिम्बित हुआ है। हे लीले! सर्वगत संवित् आकाश है। जैसाजैसा उस में फुरना होता है तैसाही २ चिद्रूप आदर्श में प्रतिबिम्ब भासताहै। इस सब जगत् का चेतन दर्पणमें प्रतिबिम्ब होता है; वास्तव में तू और मैं, जगत्, आकाश, भवन, पृथ्वी, राजाआदिक सब आत्म रूप हैं। आत्माही जगत्रूपहो भासता है। जैसे विल्लीसे मज्जा भिन्न नहीं तैसेही यह जगत् ब्रह्मस्वरूप है॥

इतिश्रीयोगवा०उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपा०अग्निदाहवर्णनंनामद्वात्रिंशस्सर्ग्गः ३२॥

देवी बोली; हे लीले! तेराभर्त्ता राजाविदूरथ रण में संग्रामकरके शरीर त्यागेगा

और उसी अन्तःपुरमें प्राप्तहोकर राज्यकरेगा। इतना कहकर वशिष्ठजीबोले; हेराम जी! जब इसप्रकार देवीने कहा तब विदूरथ के पुरवाली लीलाने हाथजोड़ के देवी को प्रणाम किया और कहा; हे देवि! भगवति! मैंने ज्ञप्तिरूपका नित्य पूजन किया और उसने स्वप्नमें मुझको दर्शन दिया। जैसे वह ईश्वरीथी तैसेही तुमभी मुझको दृष्टि आती हो। इससे मुझपर कृपाकरके मनवांछित फलदो! तब देवी अपने भक्त पर प्रसन्न होकर बोलीं; हे लीले! तूने अनन्य होकर मेरीभक्तिकी है और उससे तेरा शरीरभी जीर्णहोगयाहै; अब मैं तुझपर प्रसन्नहूं जो कुछ तुझको वांछितहो वह वरमांग! लीलाबोली; हे भगवति! जब मेराभर्त्ता रणमें देहत्यागदे तो मैं इसी शरीरसे उसकी भार्याहोऊं! देवीबोली तूने भावनासहित भली प्रकार पुण्यादिकों से निर्विघ्न मेरीसेवाकीहै इससे ऐसाही होगा। तब पूर्व लीलाने, कहा हे देवि! तुम तो सत्यसङ्कल्प, सत्यकाम और ब्रह्मस्वरूप हो, मुझको उसी शरीर से तुम विदूरथ के गृह में वशिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि में मुझे क्यों न लेगईं? देवीबोली, हे लीले! मैं किसीका कुछ नहीं करती। सब जीवोंके सङ्कल्पमात्र देहहैं और मैं ज्ञप्तिरूपहूं। एक एक जीवके अन्तर चेतनमात्र देवता होकर मैं स्थित हूं; जोजो जीव जैसी जैसी भावना करता है तैसीही तैसी उसको सिद्धता होती है। हे लीले! जब तूने मेरा आराधन कियाथा तब तूने यहप्रार्थना कीथी कि, मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मण्डपमेंरहे और मुझको ज्ञानकीभी प्राप्तिहो। उसीके अनुसार मैंने तुझको ज्ञानका उपदेशदिया और तुझको ज्ञानप्राप्त भया। इसी निमित्त तूने पूजनकिया था इस से तुझको यही प्राप्तहुआ है कि, देहसहित भर्त्ता के साथ जावेगी। जैसाजैसा चित्त संवित् में स्पन्द दृढ़होता है तैसीही तैसी सिद्धता होतीहै। हेलीले! जो तप करते हैं उनकी दृढ़ता से चिदात्माही देवतारूप होके फलको देतेहैं। जैसे जैसे सङ्कल्पकी तीव्रता किसीको होती है चैतनसंवित् से उसको वैसाही फल होता है। चित्तसंवित् से भिन्न किसीसे किसीको कदाचित् कुछ फलनहीं प्राप्तहोता। आत्मा सर्वगत और सर्व के अन्तःकर्ण में स्थित है। जैसे उसमें चैत्यताका यत्नहोता है उसको वैसाही शुभाशुभ भाव प्राप्तहोता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्यकामसङ्कल्पवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशस्सर्गः ३३॥

रामजीबोले, हे भगवन्! राजाविदूरथ जब देवीसे कहकर संग्राममेंगया तो उस ने वहां क्याकिया? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! जब राजा गृहसे निकला तो तारोंमें चन्द्रमाके सदृश सम्पूर्ण सेनासे सुशोभितहुआ और रथपर आरूढ़ होकर सभासहित संग्राममें आया। वह रथ मोती और माणिकों से पूर्ण था और उसमें आठ घोड़े लगे थे जो वायुसेभी तीक्ष्ण चलतेथे और उसमें पांचध्वजाथीं। उस रथपर आरू-

दृहो राजा इसभांति संग्राममें आया जैसे सुमेरु पर्वत पङ्खोंसे समुद्रमें जापड़े। तब जैसे प्रलयकाल में समुद्र इकट्ठे होजातेहैं वैसेही दोनोंसेना इकट्ठी होगई और बड़ा युद्धहोनेलगा और मेघोंकीनाईं योधों के शब्द होनेलगे। जैसे मेघसे बूंदोंकी वर्षा होती है और अग्निसे चिनगारियां निकलती हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होनेलगी। जैसे प्रलयकालकी वड़वानल अग्निहोतीहै तैसेही शस्त्रोंसे अग्निनिकलतीथी और उनशस्त्रों से अनेक जीवमरे। इसप्रकार जब बड़ायुद्ध होनेलगा तब विदूरथकी सेना कुछ निर्बलहुई और ऊर्द्ध में जो दोनोंलीला देवीकी दिव्यदृष्टिसे देखतीथीं उन्होंने कहा; हे देवि! तुमतो सर्व शक्तिमान् हो और हमारेपर तुम्हारी दयाभी है हमारे भर्त्ताकी जय क्यों नहीं होती इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! विदूरथ के शत्रु राजा सिद्ध ने जयके निमित्त चिरकाल पर्य्यंत मेरी पूजाकी है और तुम्हारे भर्त्ता ने जयके निमित्त पूजा नहीं की मोक्षके निमित्त की है इससे जीत सिद्धराजाकी होगी और तेरे भर्त्ता को मोक्षकी प्राप्ति होगी। हे लीले! जिसाजिस निमित्त कोई हमारी सेवा करताहै हम उसको वैसाही फल देती हैं। इससे राजासिद्ध विदूरथको जीतकर राज्यकरेगा। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! फिर सेनाको सब देखनेलगीं और दोनों राजोंका परस्पर तीव्रयुद्ध होनेलगा दोनोंराजों ने ऐसे बाण चलाये मानों दोनों विष्णु हो खड़े हैं। विदूरथने एकबाण चलाया उसके सहस्र होगये और उसके आगे जाकर लाखहोगये और परस्पर युद्ध करते २ टुकड़े टुकड़े होके गिरपड़े। ऐसे दूरसे दूरबाण चलेजाते थे कि, जैसे निर्वाण किया दीपक नहींभासता। तब राजासिद्धने मोहरूपी अस्त्रचलाया और उसके आनेसे विदूरथके सिवा सब सेना मोहित हुई। जैसे उन्मत्ततासे कुछ सुधि नहीं रहती तैसेही उनको कुछसुधि न रही और परस्पर देखतेही रहगये मानो चित्र लिखे हैं। तब राजाविदूरथ कोभी मोहका आवेश होनेलगा तो उसने प्रबोधरूपी शस्त्रचलाया उससे सबका मोह छूटगया और जैसे सूर्य्यके उदय हुये सूर्य्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही सबके हृदय प्रफुल्लित होगये। तब सिद्धराजाने नागास्त्रबाण चलाया उससे अनेक ऐसे नाग निकल आये मानों पर्वत उड़े आते हैं। निदान सब दिशा नागोंसे पूर्णहोगई और उनके मुखसे विष और अग्निकी ज्वालानिकली जिससे विदूरथकी सेनाने बहुत कष्टपाया। तब राजा विदूरथने गरुड़ास्त्र चलाया उससे अनेक गरुड़ प्रकटहुये और जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाताहै तैसेही सर्प्प नष्टहुये और नागोंको नष्ट करके गरुड़भी अन्तर्द्धान होगये। जैसे सङ्कल्पके त्यागे से सङ्कल्प सृष्टिका अभाव होजाताहै तैसेही गरुड़ अंतर्द्धान होगये और जैसे स्वप्नसे जागेहुये को स्वप्न नगर का अभाव होजाता है तैसेही गरुड़ोंका अभाव होगया फिर जब कोईबाण सिद्ध

चलावे तो विदूरथ उसको नष्टकरे-जैसे सूर्य्यतमको नाशकरे और उसने बड़ी बाणोंकी बर्षाकी उससे सिद्धभी क्षोभको प्राप्तहुआ। तब पिछली लीलाने झरोखे से देखके देवीजीसे कहा; हेदेवि! अब मेरे भर्त्ताकी जयहोती है। देवी सुनके मुसकराई पर मुखसे कुछ न कह हृदयमें विचारा कि, जीवका चित्त बहुतचञ्चलहै। ऐसे देखतेहीथे कि, सूर्य्यउदय हुये-मानों सूर्य्य भी युद्ध का कौतुक देखने आये हैं-और सिद्धने तमरूप अस्त्र चलाया जिससे सर्वदिशा श्याम होगई और कुछभी न भासित होताथा-मानों काजलकी समष्टिता इकट्ठीहुई है। तब विदूरथने सूर्य्यसा प्रकाशरूपी अस्त्रचलाया जिससे सर्वतम नष्ट होगया। जैसे शरदकालमें सब घटा नाशहोजाती हैं केवल शुद्ध आकाशही रहताहै; जैसे आत्मज्ञानसे लोभादिक का ज्ञानी को अभाव होजाता और जैसे लोभ रूपी कज्जलके निवृत्तहुये ज्ञानवान्की बुद्धि निर्मल होतीहै तैसे प्रकाशसे तमनष्ट होगया और सर्वदिशा निर्मल हुई। जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पानकरगये थे तैसेही प्रकाश तमका पानकरगया। तब सिद्धने वैताल रूपी अस्त्रचलाया जिससे विदूरथकी सेना मोहितहोगई और उसमेंसे महाविकराल और परछाहीं समानमूर्त्ति धारणकिये ऐसे श्यामरूप वैताल भासनेलगे; जो ग्रहणन किये जावें और जीवके भीतर प्रवेश करजावें और जिनके रहनेका स्थान शून्यमन्दिर, कीचड़ और पर्वत हैं शस्त्रसे निकलकर विदूरथ की सेनाको दुःख देनेलगे। पिशाच वह होते हैं जिनकी शास्त्रोक्त क्रिया नहीं होती और जो मरके भूत, पिशाच और वैताल होते हैं और राग, द्वेष, तृष्णा और भूखसे जलते रहते हैं। उनका कोई बड़ा सरदार विदूरथके निकट आनेलगा तब विदूरथने रूपका नामक अस्त्रचलाया और उससे महा भयानकरूप बड़े नख, केश, जिह्वा उदर और होठ सहित नग्नरूप भैरव प्रकटहोकर वैतालोंको भोजनकरने और खप्पर में रक्त भरकर पीने और नृत्य करनेलगे औरसबों कोदुःख देनेलगे। तब सिद्धने क्रोधकरके राक्षसरूपी अस्त्रचलाया जिससे एक कोटि भयानकरूप और काले राक्षस पाताल और दिशाओंसे निकले जिनकी जिह्वा निकली हुई और ऐसा चमत्कार करतेथे जैसे श्याममेघमें बिजली चमत्कार करती है। वे जिसको देखें उसको मुखमें डालके लेजावें और उनको देखके विदूरथकी सेना बहुत डरगई क्योंकि, जिसके सन्मुख वे हँसके देखें वह भयसे मरजावे। तब राजा विदूरथ ने अपनी सेना को कष्टवान् देख विष्णुअस्त्र चलाया जिससे सब राक्षस नष्टहोगये। फिर राजा सिद्धने अग्निनामक अस्त्र चलाया जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में अग्नि फैलगई और लोग जलनेलगे; तब राजा विदूरथने वरुण रूपी बाणचलाया जिससे, जैसे सन्तोंके सङ्गसे अज्ञानी के तीनोंताप मिटजाते हैं तैसेही अग्निका ताप मिटगया। जलसे सब स्थान पूर्णहोगये और सिद्धकी बहुत सेना जल में बहगई।

तब सिद्धने शोषणमय अस्त्रचलाया जिससे सब जल सूखगया पर कहीं२ कीचड़ रह-गई इसमें उसने फिर तेजोमय बाण चलाया जिससे कीचड़भी सूखगई और विदूरथ की सेना गरमीसे व्याकुलहोकर ऐसी तपनेलगी जैसे मूर्खका हृदय क्रोधसे जलताहै। तब विदूरथ ने मेघनामक अस्त्रचलाया जिससे मेघ वर्षनेलगे और शीतल मन्दमन्द वायुचलने लगा। जैसे आत्माकी ओर आये जीवका संसरना घटता जाताहै तैसेही विदूरथकी सेना शीतल हुई। फिर सिद्धने वायुरूपी अस्त्रचलाया जिससे सूखेपत्रकी नाईं विदूरथ फिरने लगा। तब विदूरथने पहाड़रूपी अस्त्रचलाया जिससे पहाड़ोंकी वर्षाहोनेलगी और वायु का मार्ग रुकगया और वायुकेक्षोभ मिट जानेसे सब पदार्थ स्थिरभूत होगये। जैसे संवेदन से रहित चित्तशान्त होताहै तैसेही सब शान्तहोगये। जब पहाड़ उड़ २ के सिद्धकी सेनापर पड़े तब सिद्धने वज्र रूप अस्त्र चलाया जिससे पर्व्वतनष्ट हुये। जब इसप्रकार वज्र वर्षे तब विदूरथने ब्रह्म अस्त्रचलाया जिससे वज्र नष्टहुये और ब्रह्मअस्त्र अन्तर्द्धान होगये। हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर इनका युद्ध होताथा। जो अस्त्र सिद्ध चलावे उसको विदूरथ विदारणकरे और जो विदूरथचलावे उसको सिद्ध विदारण करडाले। निदान विदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्रचलाया कि, राजा सिद्धका रथ चूर्ण होगया और घोड़ेभी सब चौपटकर डाले। तब सिद्धराजा ने रथसे उतर ऐसा अस्त्र चलाया कि, विदूरथ कारथ और घोड़े नष्टहुये और दोनों ढाल और तरवारलेकर युद्धकरने लगे। फिर दोनोंके रथवाहक और रथ लेआये उसके ऊपर दोनों आरूढ़होकर युद्धकरने लगे। विदूरथ ने सिद्ध पर एक बरछी च-लाई जो उसके हृदय में लगी और रुधिर चला। तब उसको देख लीलाने देवीसे कहा; हे देवि ! मेरे भर्त्ताकी जयहुईहै। हे रामजी ! इसप्रकार लीला कहतीहीथी कि, सिद्धने बरछी चलाई सो विदूरथ के हृदयमें लगी और उसको देखके विदूरथ की लीला शोकवान् होकर कहनेलगी; हेदेवि ! मेराभर्त्ता मरताहै; सिद्धदुष्टने बड़ा कष्ट दियाहै। हे रामजी ! फिर सिद्धने एक ऐसा खड्ग चलाया कि जिससे विदूरथके पांव कटगये और घोड़ेभी काटेगये पर तौभी विदूरथ युद्धकरता रहा। फिर सिद्धने विदूरथ के शिरपर खड्गका प्रहारकिया तो वह मूर्च्छाखाके गिरपड़ा। ऐसे देखके उसके सा-रथी रथको गृहमें लेआनेलगे तो सिद्ध उसके पीछे दौड़ाकि, शीशमें इसका ले आऊं परन्तु पकड़ न सका। जैसे अग्नि में मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता तैसेही देवी के प्रभाव से विदूरथ को वह न पकड़ सका॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविदूरथमरणवर्णनंचतुस्त्रिंशस्सर्गः ३४॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! तब सारथी राजा को गृहमें लेआया तो स्त्रियां, मंत्री, बांधव और कुटुम्बी रुदन करनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे। सिद्धकी सेना लूटने

लगी और हाथी, घोड़े, स्वामीबिना फिरतेथे फिर ढिंढोरा फिरायागया कि, राजासिद्ध की जयहै। निदान सर्वओर से शान्तिहुई सिद्ध राजा के ऊपर छत्र होनेलगा और सब पृथ्वीका राजा वही हुआ। जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकल के शान्तहुआ तैसेही सर्वओर शान्तिहुई। हे रामजी! जब राजा विदूरथ गृहमें आया तब उसकी और दूसरी लीलाको देखके प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवि! यह लीला इस शरीर से वहां क्योंकर जा प्राप्तहोगी? यह तो भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप होगई है और राजाभी मृत्युके निकट पड़ाहै केवल कुछश्वास आते जाते हैं। देवी बोली; हे लीले! यह जितने आरम्भ तू देखती है कि, युद्धहुआ और नानाप्रकार का जगत् है सो सब भ्रान्तिमात्र है और तेरा भर्त्ता जो पद्मथा उसका हृदय जो मण्डपाकाशमें था वहीं यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। पद्मका मण्डपाकाश वशिष्ठ ब्राह्मणके मण्डपाकाश में स्थितहै और वशिष्ठ ब्राह्मणका मण्डपाकाश चिदाकाशके आश्रय स्थितहै। हे लीले! यह सम्पूर्ण जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश की पुर्य्यष्टक में स्थित है सो आकाशमेंही आकाश स्थित है। किञ्चन है इससे सम्पूर्ण जगत् फुरता है पर वास्तव में किञ्चनभी कुछवस्तुनहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। उस आत्मसत्ता में 'अहं' 'त्वं' जगत् भ्रमसे भासता है; कुछ उपजा नहीं। हे लीले! उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में नानाप्रकार के स्थान हैं और उन में प्राणी आते, जाते और नाना व्यवहार करते भासते हैं। जैसे स्वप्न सृष्टिमें नानाप्रकारके आरम्भ भासते हैं सो असत्‌रूपहैं तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूप है। हे लीले! न यह द्रष्टा है और न आगेदृश्य है; सब भ्रमरूप है। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटी पदार्थों में हैं। जो दृश्यनहीं तो द्रष्टा कैसेहो? सब असत्‌रूप है। इनसे रहित जो परमपद है वह उदय–अस्त से रहित, नित्य, अज, शुद्ध, अविनाशी और अद्वैतरूप अपने आप में स्थित है। जब उसको जानता है तब दृश्यभ्रम नष्ट होजाता है। हे लीले! दृश्य भ्रमसे भासता है। वास्तव में न कुछ उपजा है और न उपजेगा। जितने सुमेरु आदिक पर्व्वत जाल और पृथ्वीआदिक तत्त्व भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं जैसे स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष भासती है परन्तु वास्तव में कुछनहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे लीले! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि है परन्तु उसमें सार कुछनहीं। जैसे केलेके थम्भे में सार कुछनहीं निकलता तैसेही इस सृष्टि में विचार कियेसे सार कुछनहीं निकलता–चित्तसंवेदन के फुरनेसे भासतीहै। हे लीले! तेरेभर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है सो वशिष्ठ ब्राह्मणके मण्डपाकाश में स्थित है अर्थात् विदूरथ का जगत् पद्मके हृदय में स्थित है वहां तेरा शरीर पड़ाहै और राजा पद्मकाभी शवपड़ा है। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्मकी सृष्टि हमको प्रादेशमात्र है। उस प्रादेशमात्र में अंगुष्ठ

प्रमाण हृदय कमलहै; उसमें तेरे भर्त्ताका जीवाकाश है और उसीमें यहजगत् फुरता है सो प्रादेशमात्रभी है और दूरसेदूर कोटि योजनों पर्य्यन्त है । मार्गमें वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है उसको लांघ के तेरेभर्त्ता की सृष्टि है । जहां वह शवपड़ाहै उसकेपास यह लीला जाय प्राप्तहुई है । लीलाने पूछा; हेदेवि ! ऐसे मार्गको लांघके वह अपमें कैसे प्राप्तहुई और जिस शरीर से जानाथा वह शरीर तो यहांहीं पड़ा है वह किसरूप से वहांगई और वहांके लोगोंने उसको देखके कैसे जाना है सो संक्षेप मात्रसे कहो ? देवीबोली; हे लीले ! इस लीलाके वृत्तान्तकी महिमा ऐसीहै जिस के धारेसे यह जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है । उसे मैं संक्षेपमात्र से कहतीहूं । हे लीले ! जो कुछ जगत् भासता है वह सब भ्रममात्र है । यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदय में फुरता है । उसमें विदूरथका जन्मभी भ्रममात्र है; लीलाका प्राप्तहोनाभी भ्रमहै; संग्रामभी भ्रमरूपहै; विदूरथका मरनाभी भ्रमरूपहै और उसके भ्रमरूप जगत् मेंतुम हम बैठेहैं । लीला तूभी और राजाभी भ्रमरूप है और मैं सर्वात्माहूं—मुझको सदा यही निश्चय रहताहै । हे लीले ! जब तेराभर्त्ता मृतक होनेलगाथा तब तुझसेउसका स्नेह बहुत था इसलिये तू महासुन्दरभूषण पहिने हुये वासनाके अनुसार उसको प्राप्तहुई । हे लीले ! जब जीव मृतकहोताहै तब प्रथम उसका अन्तवाहकशरीर होता है; फिर वासना से आधिभौतिक होताहै । उसीके अनुसार तेराभर्त्ताजबमृतक हुआ तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर था; उससे आधिभौतिक होगयाऔरजब आधिभौतिकहुआतब प्रथम उसको जन्मभीहुआ और मरणभी हुआ । जब तेराभर्त्ता मृतक हुआतबउसको अपनाजन्म और कुललीलाका जन्म, माता,पिता और लीलाकेसाथ विवाहभासआये । जैसे तू पद्मको भासीआई थी तैसेही वह सब विदूरथकोभासआये । हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है; जैसाजैसा उसमें तीव्र स्पन्द होताहै तैसेही सिद्धहोताहै। मैं ज्ञप्तिरूप चेतन शक्तिहूं मुझको जैसी इच्छाधरके लोग पूजते हैं तैसेही फलकी प्राप्तिहोती है । हे लीले ! जैसीजैसी इच्छाधरके कोई हमको पूजताहै उसको वैसेही सिद्धता प्राप्तहोती है । लीलाने जो मुझसे वरमांगाथा कि,' मैं विधवा न होऊं और इसी शरीरसे भर्त्ताके निकट जाऊं' और मैंने कहाथा कि, ऐसेही होगा इसलिये मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर उसको अपना शरीर भासआया और अपने शरीर सहित जहां तेरे भर्त्ता पद्मका शव पड़ा था वहां मण्डप में वैसेही शरीरसे उसके निकट तू भी जा प्राप्तहुई है । हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा कि, मैं उसी शरीरसे आई हूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेमृत्युमूर्च्छानन्तरप्रतिमावर्णनं नामपञ्चत्रिंशतितमस्सर्ग्गः ३५ ॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी ! जिसप्रकार वहलीला पद्मराजाके मण्डपमें जा प्राप्त

हुई है वह सुनिये। जब वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्तहुई तो उसके अनन्तर उस को पूर्वके शरीरकीनाईं वासनाके अनुसार अपना शरीर भासआया और उसने जाना कि, मैं देवीका वर पाके उसही शरीरसे आईहूं। वह अन्तवाहक शरीरसे आकाशमें पक्षीकीनाईं उड़ती जाती थी तब उसको अपने आगे एककन्या दृष्टिआई उससे लीलाने कहा; हे देवि! तू कौन है? देवीने कहा मैं ज्ञप्तिदेवीकी पुत्रीहूं और तुझेपहुंचानेके लिये आई हूं। लीला ने कहा; हे देवीजी! मुझे मेरे भर्त्ता के पास लेचलो। हे रामजी! तब वह कन्या आगे और लीला पीछे हो दोनों आकाश में उड़ीं और चिरकालपर्यंत आकाश में उड़ती गईं। पहिले मेघों के स्थान मिले:फिर वायुके स्थान मिले;फिर सूर्यका मण्डल और तारामण्डल मिला;फिर और लोकपालों के स्थान; ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके लोकआये। इन सबको लांघ महा वज्रसारकी नाईं ब्रह्माण्ड कपाट आया उसको भी लांघ गईं। जैसे कुम्भ में बरफ डालिये तो उसकी शीतलताबाहर प्रकट होती है तैसेही वह ब्रह्माण्डसे बाह्य निकलगई। उस ब्रह्माण्डसे दशगुणा जल तत्त्व आया; इसीप्रकार वह अग्नि, वायु और आकाशतत्त्व आवरणको भी लांघगईं। उसके आगे महाचैतन्य आकाश आया उसका अन्त कहीं नहीं-वह आदि, अन्त और मध्यसे रहितहै। हे रामजी! जो कोटि कल्प पर्यन्त गरुड़उड़तेजावें तौभी उस का अन्त न पावें; ऐसे परमाकाश में वह गईं और वहां इनको कोटि ब्रह्माण्ड दृष्टि आये। जैसे बनमें अनेक वृक्षोंके फल होतेहैं और परस्पर नहीं जानते तैसेही वह सृष्टि आपको न जानतीथीं फिर एक ब्रह्माण्डरूपी फलमें दोनों प्रवेशकरगईं जैसे फलको मुखमार्ग में प्रवेश करजाती हैं। उसमें फिर उन्हों ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित त्रिलोकी देखी उनके भी लोक लांघगईं और उनके नीचे और लोकपालों के स्थान लांघे। फिर वे चन्द्रमा, तारा, वायु और मेघ मण्डलों को लांघके उतरीं और राजा के नगर और उस मण्डपाकाश में जहां पद्मराजाका शवफूलों से ढँपा पड़ाथा प्रवेशकरगईं। इसके अनन्तर वह कुमारी इसभांति अन्तर्द्धान होगई जैसे कोई मायावी पदार्थ हो और अन्तर्द्धान होजावे। लीला पद्मके पास बैठगई और मनमेंविचारनेलगी कि; यह मेरा भर्त्ताहै। वहां इसने संग्रामकियाथा, अब शूरमाकी गतिको प्राप्त भयाहै और इसपरलोक में आयके सोयाहै। उसके पास मैंभी अपने शरीरसे देवीजीके वरसे आनप्राप्त हुईहूं। मेरे ऐसा अबकोई नहीं और मैं बड़े आनन्दको प्राप्त हुईहूं। हे रामजी! ऐसे विचारके पास एक चमर पड़ाथा उसको हाथमें लेके भर्त्ताके हिलानेलगी। जैसे चन्द्रमा किरणों सहित शोभापाताहै तैसेही उसके उठानेसे वह चमर शोभापानेलगा। देवी से लीलाने पूछा; हे देवि! यहराजा तो अब मृतक होता है। इसके श्वास अब थोड़ेसे रहे हैं। जबयहांसे मृतक होके पद्मके शरीरमें जावेगा

तब राजाके जागेहुये मंत्री और नौकर कैसे जानेंगे ? देवी बोली; हे लीले ! तब मंत्री और नौकर जो होवेंगे उनको द्वैतकलना कुछ न भासेगी कि, यह क्या आश्चर्य हुआहै। इसवृत्तान्तको तू, मैं और पूर्व लीला जानेगी और कोई न जानेगा क्योंकि; इसके सङ्कल्पको और कोई कैसे जाने? लीलाने फिर पूछा; हे देवि ! पूर्व लीला जो वहां जाय प्राप्त हुईथी उसका शरीर तो यहाँ पड़ाहै और तुम्हारा उसको वरभीथा तो फिर इसदेहके साथ वह क्यों न प्राप्तहुई? देवी बोली; हे लीले ! छायाभी कदाचित् धूप में गईहो और सच झूठभी कदाचित् इकट्ठा हुआहो, यह आदिनीति है। जैसे जैसे आदिनीति हुईहै तैसेही होताहै-अन्यथा नहीं होता। हे लीले ! जो परछाहीं में वैताल कल्पना मिटी तो परछाहीं और वैताल इकट्ठे नहीं होते तैसेही भ्रमरूप जगत्का शरीर उसजगत्में नहींजाता और दूसरेके सङ्कल्पमें दूसरा अपने शरीरसे नहींजासक्ता क्योंकि; वह और शरीरहै और यह और शरीरहै; तैसेही राजाके जगत् दर्पण में लीलाके सङ्कल्पका शरीर नहीं प्राप्तहुआ मेरेवरसे तब उसदेहसे प्राप्तहोई कि, जब उसको मृत्यु मूर्च्छा प्राप्तभई तब उसको उसकासाही अपना शरीरभी भास आया। उसका शरीर सङ्कल्पमें स्थित था सो अपना सङ्कल्प वह साथलेगई है इस से अपने उसी शरीरसे वह गई है उसने आपको ऐसे जाना कि मैं वही लीलाहूं। हे लीले ! आत्मसत्ता सर्व्वात्मरूप है। जैसीजैसी भावना उसमें दृढ़होती है वैसाही वैसारूप होजाता है। जिसको यह निश्चय हुआहै कि, मैं पञ्चभौतिकरूपहूं उसको ऐसेही दृढ़होताहै कि, मैं उड़नहींसक्ता। हे लीले ! यह लीला तो अविदितवेद न थी अर्थात् अज्ञानसहित थी और उसका आधिभौतिक भ्रमनहीं निवृत्तहुआथा परन्तु मेरावरथा इसकारणसे उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर भासआया कि, मैं देवीके वरसे चलीजाऊंगी। इस वासनाकीदृढ़तासे वह प्राप्तहुईहै। हे लीले ! यहजगत् भ्रांतिमात्रहै।जैसे भ्रमसे जेवरीमें सर्प्प भासता है तैसेही आत्मामेंभी भ्रमसे जगत् भासता है। सब जगत् आत्मामें आभासरूपहै। सर्व्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपनेही अज्ञानसे दूरभासता है। हे लीले ! ज्ञानवान् पुरुष सदाशान्तरूप और आत्मानन्दसे तृप्तरहते हैं पर अज्ञानी शान्ति कैसेपावें ? जैसे जिसको तपचढ़ाहोताहै उसका अन्तष्करण जलता है और तृपाभी बहुत लगती है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी तप चढ़ाहुआ है उसका अन्तरराग द्वेपसे जलताहै और विपयोंकी तृष्णारूपी तृपाभी बहुत होतीहै। जिसका अज्ञानरूपी तमनष्टहुआ है उसका अन्तरराग द्वेषादिकसे नहीं जलता और उसकी विपय की तृष्णारूपी तृष्णाभी नष्टहुई है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेमण्डपाकाशगमन
बर्णनन्नामपट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

देवीवोली; हे लीले ! जो पुरुष अविदितवेद है अर्थात् जिसने जाननेयोग्य पद नहीं जाना वह बड़ा पुण्यवान्‌भी हो तौभी उसको अन्तवाहकता नहीं प्राप्त होती । अन्तवाहक शरीरभीभूठ है क्योंकि; सङ्कल्परूप है । इससे जितना जगत् तुझको भासता है वह कुछ उपजानहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपनेआप में स्थितहै । फिर लीलाने पूंछा; हे देवि ! जो यह सब जगत् सङ्कल्पमात्र है तो भाव और अभावरूप पदार्थ कैसे होते हैं ? अग्नि उष्णरूप है; पृथ्वी स्थिररूप हैं; वरफ शीतलहै; आकाशकी सत्ता है; कालकी सत्ताहै; कोई स्थूल है; कोई सूक्ष्म पदार्थ हैं; ग्रहण, त्याग, जन्म, मरण होताहै; और मृतकहुआ फिर जन्मता है इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं ? देवी बोली हे लीले ! जब महाप्रलय होताहै तब सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होतेहैं और कालकी सत्ताभी नष्टहोजाती है । उसकेपीछे अनन्त चिदाकाश; सब कलनाओं से रहित और वोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है । उस चेतनमात्रसत्तासे जब चित्‌सम्वित् चैत्यता होती है तब चेतन सम्वित् में आपको तेज अणु जानताहै । जैसे स्वप्नेमें कोई आपको पक्षीरूप उड़ता देखे तैसेही देखताहै । उससे स्थूलता होतीहै; वही स्थूलता ब्रह्माण्डरूप होतीहै उस से तेज अणु आप को ब्रह्मारूप जानता है । फिर ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचताहै । जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जाता है तैसेही तैसे स्थिरतारूप होता जाता है । आदि रचना से जैसा निश्चय धारण कियाहै कि 'यह ऐसे हो' और'इतने काल रहे, उसका नाम नीति है । जैसे आदि रचना नियत की है वह ज्योंकी त्यों होती हैं; उसके निवारण करनेको किसीकी सामर्थ्य नहीं वास्तवमें आदि ब्रह्माभी अकारणरूपहै अर्थात् कुछ उपजा नहीं तो जगत् का उपजना में कैसे कहूं ? हे लीले ! कोई स्वरूप नहीं उपजा परन्तु चेतन सम्वेदन के फुरने में जगत् आकारहोके भासताहै । उसमें जैसे निश्चय है तैसेही स्थित है । अग्नि उष्णही है; वर्फ शीतलही है और पृथ्वी स्थित रूपही है । जैसे उपजे हैं तैसेही स्थित हैं । हे लीले ! जो चेतन है उसपर भी नीति है कि,वह उपदेशका अधिकारी है और जो जड़ है उसमें वही स्वभावहै । जो आदि चित् सम्वित्‌में आकाशका फुरना हुआ तो आकाशरूप होकरही स्थित हुआ । जब कालका स्पन्द फुरता है तब वही चेतन सम्वित् कालरूप होकर स्थित होताहै; जब वायुकी चैतन्यता होती है तब वहीसम्वित् वायुरूप होकर स्थित होताहै । इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी नानारूप होकर स्थित हुये हैं । स्थूल, सूक्ष्मरूप होकर चेतन सम्वित्‌ही स्थित होरहाहै । जैसे स्वप्नमें चेतन सम्वित्‌ही पर्वत वृक्षरूप हो कर स्थित होता है तैसेही चेतन सम्वित् जगत्‌रूप होकर भी स्थित हुआ है । हे लीले ! जैसे आदिनीति में पदार्थोंके संकलपरूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं उसके नि-

वारण करने की किसी की सामर्थ्य नहीं क्योंकि; चेतन का तीव्र अभ्यास किया है। जब वही संवित् उलटाकर और प्रकार स्पन्दहो तब औरही प्रकार हो; अन्यथा नहीं होता। हे लीले ! यह जगत् सत्नहीं। जैसे संकल्पनगर भ्रम सिद्धहै और जैसे स्वप्नपुरुष और ध्याननगर असत्रूप होता है; तैसेही यह जगत्भी असत्रूप है और अज्ञानसे सत्की नाईं भासता है। जैसे स्वप्न सृष्टि के आदिमें सन्मात्र सत्ता होती है और उस सन्मात्रसत्ताका आभास किंचित् स्वप्नसृष्टि का कारण होता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् के आदि सन्मात्रसत्ता होती है और उससे किंचन अकारण रूप यह जगत् होता है। हे लीले ! यह जगत् वास्तव में कुछ उपजा नहीं; असत्ही सत्की नाईं होकर भासता है। जैसे स्वप्ने की अग्नि स्वप्नेमें असत्ही सत् रूपहो भासती है; तैसेही अज्ञानसे यह असत् जगत् सत् भासता है और जन्म, मृत्यु और कर्म्मों का फल होता है सो तू श्रवणकर। हे लीले ! बड़ा और छोटा जो होता है सो देशकाल और द्रव्यहोता है। एक बाल्यावस्था में मृतक होते हैं और एक यौवन अवस्था में मृतक होते हैं जिसकी देशकाल और द्रव्यकी क्रिया चेष्टा यथाशास्त्र होती है उसकी क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है और जो चेष्टा शास्त्र से विरुद्ध होतीहै तो आयुर्बल भी वैसीही होती है। एक क्रिया ऐसी है जिससे आयु वृद्धि होती है और एक क्रियासे घटजाती है। इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयु के घटाने बढ़ाने वाली हैं उन्होंमें जीवों के शरीर बड़ी सूक्ष्म अवस्था में सोये हैं। यह आदि नीति रची है। युगोंकी मर्य्यादा जैसे है तैसेही है। एक सौ दिव्य वर्ष कलियुग के; दोसौ दिव्य वर्ष द्वापरके; तीनसौ त्रेताके और चार सौ सतयुगके--यह दिव्य वर्ष हैं। लौकिक वर्षों के अनुसार चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग है; आठलाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापरयुग है; बारहलाख छानवे हजार वर्ष त्रेता है और सत्रहलाख अट्ठाइसहजार वर्ष सतयुग है। इस प्रकार युगों की मर्य्यादा है जिनमें जीव अपने कर्म्मों के फलसे आयु भोगते हैं। हे लीले ! जो पाप करनेवाले हैं वह मृतक होतेहैं और उनको मृत्युकालमेंभी बड़ा कष्ट होताहै। फिर लीलाने पूछा; हे देवि ! मृतकहुये सुख और दुःख कैसे होते हैं और कैसे उन्हें भोगते हैं ? देवी बोली, हे लीले ! जीवकी तीनप्रकार की मृत्यु होती है एक मूर्ख की दूसरी धारणाभ्यासी की और तीसरी ज्ञानवान् की। उनका भिन्न भिन्न वृत्तान्त सुनो। हे लीले ! जो धारणाभ्यासी हैं वह मूर्ख भी नहीं और ज्ञानवान्भी नहीं; वह जिस इष्टदेवता की धारणा करते हैं शरीरको त्यागके उसही देवता के लोकको प्राप्तहोते हैं और जो ब्रह्माभ्यासी हैं पर उनको पूर्णदशा नहीं प्राप्तहुई उनका सुखसे शरीर छूटता है। जैसे सुषुप्तिहो जाती है तैसेही धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है और फिर सुखभोगकर आत्मतत्त्व

को प्राप्तहोता है। ज्ञानवान् का शरीरभी सुख से छूटता है; उसको भी यत्न कुछनहीं होता और उसज्ञानी के प्राणभी वहांहीं लीन होते हैं और यह विदेह मुक्त होता है। जब मूर्ख की मृत्यु होने लगती है तो उसे बड़ाकष्ट होता है। मूर्ख वही है जिसकी अज्ञानियों की संगति है;जो शास्त्रों के अनुसार नहीं विचरता और सदा विषयोंकी ओर धावता और पापाचार करता है। ऐसे पुरुषको शरीर त्यागने में बड़ा कष्टहोताहै। हे लीले! जब मनुष्य मृतक होने लगताहै तब पदार्थों से आवरण अर्थ बुद्धि जो सम्बन्धी थी उससे वियोग होने लगता है और कण्ठ रुकजाता है; नेत्र फटजाते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी विरूप होजाती है जैसे कमलका फूल कटाहुआ कुम्हिलाजाता है। अङ्ग टूटने लगते हैं और प्राण नाड़ियोंसे निकलते हैं। जिन अङ्गों से तदात्म सम्बन्ध हुआथा और पदार्थों में बहुत स्नेहथा उनसेवियोग होने लगता है इससे बड़ा कष्ट होता है। जैसे किसी को अग्निके कुण्डमें डालने से कष्टहोता है तैसेही उसकोभी कष्ट होता है। सब पदार्थ भ्रमसे भासते हैं; पृथ्वी आकाशरूप और आकाश पृथ्वीरूप भासतेहैं। निदान महाविपर्य्यय दशामें प्राप्तहोताहै और चित्तकी चेतनता घटती जाती है। ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है त्यों त्यों पदार्थ के ज्ञानसे अन्धा होजाता है। जैसे सायङ्काल में सूर्य्य अस्त होता है तो भ्रांतिवान् नेत्र को दिशाका ज्ञान नहीं रहता तैसेही इसको पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता और कष्टका अनुभव करता है। जैसे आकाशसे गिरता है और पाषाणमें पीसाजाता है, जैसे अन्धकूप में गिरताहै और कोल्हूमें पेराजाता है जैसे रथसे गिरता है और गले में फांसीडालके खींचाजाता है;और जैसे वायुसे तरङ्गों में उछलता और बड़वाग्नि में जलताकष्टपाताहै; तैसेही मूर्ख मृत्युकालमें कष्टपाताहै। जब पुर्य्यष्टकका वियोगहोताहै तब मूर्च्छासे जड़सा होजाताहै और शरीर अखण्डित पड़ा रहता है। लीला ने पूछा; हे देवि! जबजीव मृतक होनेलगताहै तब इसको मूर्च्छा कैसेहोती है? शरीरतो अखण्डित पड़ारहता है कष्टकैसे पाताहै? देवी बोली; हेलीले! जो कुछजीवने अहङ्कारभावको लेकर कर्मकिये हैं वे सब इकट्ठे होतेजाते हैं और समयपाके प्रकट होते हैं जैसे बोया बीजसमयपाके फलदेताहै तैसेही उसको कर्म वासनासहित फल आन प्रकटहोताहै। जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है तब शरीर को तादात्म्यता और पदार्थों के स्नेहके वियोगसे इसको कष्टहोता है। प्राण अपानकी जो कलाहै और जिसके आश्रय शरीर होताहै सो टूटनेलगताहै। जिन स्थानोंमें प्राण फुरतेथे उन स्थानों और नाड़ियोंसे निकल जाते हैं और जिन स्थानों से निकलते हैं वहां फिर प्रवेश नहींकरते। जब नाड़ियां जर्जरीभूत होजाती हैं और सबस्थानों को प्राण त्यागजातेहैं तब यह पुर्य्यष्टक शरीरको त्याग निर्वाण होताहै।जैसे दीपकनिर्वाण होजाता और पत्थर

ऋशिला जड़ीभूत होतीहै तैसेही पुर्य्यष्टक शरीरको त्यागकर जड़ीभूत होजाती है और प्राण अपान की कला टूटपड़ती है। हे लीले ! मरना और जन्मभी भ्रान्ति से भासताहै– आत्मामें कोईनहीं। सम्वित्मात्र में जो सम्वेदन फुरता है सो अन्यस्वभावमें सत्ताकी नाईं होकर स्थित होता है और मरण और जन्म उसमें भासते हैं और जैसीजैसी वासना होतीहै उसके अनुसार सुखदुःखका अनुभवकरता है। जैसे कोई पुरुष नदीमें प्रवेशकरता है तो उसमें कहीं बहुत जल और कहीं थोड़ाहोताहै, कहीं बड़ेतरङ्गहोते हैं और कहीं सोमजल होताहै पर वे सब सोमजलमें होते हैं;तैसेही जैसी वासना होतीहै उसीके अनुसार सुखदुःख का अनुभव होताहै और अध, ऊर्ध्व,मध्य, वासनारूपी गढ़ेमें गिरते हैं। शुद्ध चेतनमात्र में कोई कल्पनानहीं अनेक शरीर नष्टहोजाते हैं और चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है। जो चेतनसत्ताभी मृतक होतो एकके नष्टहुये सब नष्टहोजावें पर ऐसे तो नहींहोता चैतन्यसत्ता सबकुछ सिद्ध होतीहै ; जो यह न हो तो कोई किसीको न जाने। हे लीले ! चेतनसत्ता न जन्मती है और न मरतीहै; यह तो सर्व कल्पनासे रहित केवल चिन्मात्र है उसका किसीकालमें कैसे नाशहो ? जन्ममरणकी कल्पना सम्वेदन में होती है अचेत चिन्मात्रमें कुछ नहींहुआ। हे लीले ! मरता वहीहै जिसके निश्चयमें मृत्युका सद्भाव होताहै। जिसके निश्चयमें मृत्युका सद्भावनहीं वह कैसे मरे? जब जीवको दृश्यका अत्यन्त अभाव हो तब बन्धनोंसे मुक्तहो वासनाही इसके बन्धनका कारण है; जब वासनासे मुक्तहोताहै तब बन्धन कोई नहींरहता। हे लीले ! आत्म विचार से ज्ञानहोता है और ज्ञानसे दृश्यका अत्यन्ताभाव होताहै। जब दृश्यका अत्यन्ताभाव हुआ तब सब वासना नष्ट होजाती हैं यह जगत् उदयहुआ नहीं परन्तु उदयहुये की नाईं वासनासे भासताहै। इससे वासनाका त्यागकरो ! जब वासना निवृत्तहोगी तब बन्धन कोई न रहेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमृत्युविचारवर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३७ ॥

लीलाने पूछा;हेदेवी! यहजीव मृतककैसे होताहै और जन्मकैसे लेताहै,मेरे बोधकी दृढ़ताके निमित्त फिरकहो? देवीबोली;हेलीले ! इसके अनन्तर पान अपानकी कलाके आश्रय यह शरीररहता है और जब मृतकहोने लगताहै तब प्राणवायु अपने स्थानको त्यागताहै औरजिसजिस स्थानकी नाड़ीसे वहनिकलताहै वहस्थान शिथिल होजाता है। जब पुर्य्यष्टकशरीरसे निकलताहै तब प्राणकला टूटपड़तीहै और चैतन्यता जड़ीभूत होजातीहै। तब परिवारवाले लोग उसको प्रेतकहतेहैं। हेलीले ! तब चित्तकी चैतन्यता जड़ीभूत होजातीहै और केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ताहै सो ज्योंकी त्योंरहती है जो स्थावर–जंगम सर्व जगत् और आकाश,पहाड़,वृक्ष,अग्नि,वायु आदिक सर्व पदार्थोंमें व्यापरहाहै और उदयअस्त से रहितहै। हेलीले ! जब मृत्यु मूर्च्छाहोती है

तब प्राण पवनआकाशमें लीन होतेहैं। उसप्राणमें चैतन्यता होतीहै और चैतन्यता में वासनाहोतीहै। ऐसीजो प्राण और चैतन्यसत्ताहै सो वासनाको लेकर आकाशमें आकाशरूप स्थितहोतीहै। जैसे गन्धको लेकर आकाशमें वायुस्थित होताहै तैसेही वासनाको लेकर चैतन्यता स्थितहोतीहै। हेलीले! उस अपनी वासनाके अनुसार उसे देवस्थान सहित फिर जगत् फुरआताहै उससे वह देश, काल क्रिया और द्रव्य करकेदेखताहै। मृत्युभी दोप्रकारकी है एक पापात्माकी और दूसरी पुण्यात्माकी। पापी तीनप्रकारकेहैं एक महापापी; दूसरे मध्यमपापी और तीसरेअल्पपापी। ऐसेही पुण्यवान्भी तीनप्रकारकेहैं—एक महापुण्यवान्; दूसरा मध्यम पुण्यवान्है और तीसरा अल्प पुण्यवान्। प्रथम पापियोंकी मृत्यु सुनिये। जब बड़ापापी मृतकहोताहै तबवह जर्जरीभूत होजाताहै और घनपाषाणकीनाईं सहस्रों वर्षोंतक मूर्च्छामें पड़ारहताहै। कितने ऐसेजीवहैं जिनको उस मूर्च्छामेंभी दुःखहोताहै। जैसे बाहर इन्द्रियोंको दुःखहोताहै तब उसके रागद्वेषकोलेकर चित्तकी वृत्तिहृदयमें स्थितहोतीहै तैसेही पापवासना का दुःख हृदयमें होताहै और भीतरसे जलताहै। इसप्रकार जड़ीभूत मूर्च्छामें रहताहै। इसके अनन्तर उसको फिर चैतन्यता फुरआतीहै तब अपनेसाथ शरीर देखताहै। फिर नरक भोगताहै और चिरकाल पर्य्यन्तनरक भोगके बहुतेरे जन्म पशु आदिकों केलेताहै और महानीच और दरिद्री निर्धनोंके गृहमें जन्मलेकर वहांभीदुःखोंसे तप्त रहताहै। हेलीले! यह महापापियोंकी मृत्युतुझसे कही। अब मध्यम पापीकी मृत्यु सुन। जब मध्यमपापी की मृत्युहोतीहै तबवहभी वृक्षकी नाईं मूर्च्छासे जड़ीभूतहोजाताहै और भीतर दुःखसे जलताहै। जड़ीभूतसे थोड़ेकालमें फिर चेतनता पाता है। फिर नरक भुगतताहै और नरकभोगके तिर्य्यगादिक योनि भुगतताहै। तिसकेपीछे वासनाके अनुसार मनुष्य शरीरपाताहै। अब अल्पपापीकी मृत्युसुनो। हे लीले! जबअल्पपापी मृतकहोताहै तबमूर्च्छित होजाताहै और कुछकालमें उसको चेतनता फुरतीहै। फिर नरक जाकर भुगतताहै; फिर कर्मोंके अनुसार और जन्मोंको भुगतता है और फिर मनुष्य शरीर धारताहै। हे लीले! यह पापात्माकी मृत्युकही अब धर्मात्माकी मृत्युसुन। जोमहा धर्मात्माहै वहजब मृतकहोताहै तब उसके निमित्त विमान आतेहैं उनपर आरूढ़ कराके उसे स्वर्गमें लेजातेहैं। जिस इष्टदेवताकी वासना उस केहृदयमें होतीहै उसके लोकमेंउसे लेजातेहैं औरवहांवह कर्म्मानुसार स्वर्ग सुख भुगतताहै। स्वर्गसुख जो गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा आदिक भोगहैं तिनको भोगके फिर गिरताहै और किसीफलमें स्थित होताहै। जब उस फलको मनुष्यभोजन करताहै तब वीर्यमें जास्थित होताहै और उसवीर्यसे माताकेगर्भमें स्थित होताहै। वहांसेवासनाके अनुसारफिर जन्म लेताहै; जो भोगकी कामना होतीहै तो श्रीमान् धर्मात्माके गृहमें

जन्महोता है और जो भोगसे निःकाम होताहै तब सन्तजनोंके गृह में जन्मलेताहै । अवमध्यम धर्मात्माकी मृत्युसुनो । हे लीले ! जोमध्यम धर्मात्मा मृतक होताहै उसको शीघ्रही चैतन्यता फुरआतीहै और वहस्वर्गमें जाकर अपने पुण्यकेअनुसार स्वर्गभोग के फिर गिरकर किसी फलमें स्थित होताहै । जब फिर उस फलको कोई पुरुषभोजन करताहै तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भमें आताहै और वासनाके अनुसार जन्म लेताहै । अल्प धर्मात्मा जब मृतक होताहै तब उसको यह फुरआताहै कि, मैं मृतक हुआहूं; मेरे बान्धवों और पुत्रोंने मेरी पिण्डक्रियाकीहै और मैं पितर लोकको चला जाताहूं । वहां वह पितर लोकका अनुभव करताहै और वहांके सुखभोगके गिरता है तबधान्यमें स्थित होताहै । जब उसधान्यको पुरुष भोजन करताहै तबवीर्य्यरूप होके स्थित होताहै । फिर उस वीर्यद्वारा माताके गर्भमें आताहै औरवासनाके अनुसार जन्म लेताहै । हे लीले ! जबपापी मृतक होताहै तब उसको महाक्रूर मार्गभासताहै और उसमार्ग पर चलताहै जिसमें चरणोंमें कंटक चुभतेहैं; शीशपर सूर्य तपताहै और धूपसे शरीर कष्टवान् होताहै । जो पुण्यवान् होताहै-उसको सुन्दर छायाका अनुभवहोताहै और वावली और सुन्दरस्थानोंके मार्गसे यमदूत उसको धर्मराजके पास ले जातेहैं । धर्मराजचित्रगुप्तसे पूछतेहैं तो चित्रगुप्तपुण्यवानोंके पुण्य और पापियोंके पाप प्रकट करतेहैं और वह कर्मोंके अनुसार स्वर्ग और नरकको भुगततेहैं फिर वहांसे गिरके धान्य अथवा और किसीफलमें आनस्थित होताहै।जब उसअन्नको पुरुषभोजन करताहै तब वह स्वप्नवासनाको लेकर वीर्य्यमें आन स्थित होताहै । जब पुरुषका स्त्रीकेसाथ संयोग होताहै तब वीर्य्यद्वारा माता के गर्भमें आताहै । वहांभी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भको प्राप्तहोताहै और उस माता के गर्भमेंइसको अनेक जन्मोंकास्मरण होताहै।फिर बाहरनिकलके महामूढ़ वालअवस्था धारणकरताहै;तब उसेपछिलीस्मृति विस्मरणहोजातीहै और परमार्थकी कुछसुधनहीं होती केवल क्रीड़ामें मग्नहोताहै । उससेआगे यौवन अवस्था आतीहै तो कामादिक विकारोंमें अन्धाहोजाताहै और कुछ विचार नहीं रहता। फिर वृद्ध अवस्था आतीहै तोशरीर महाकृश होजाताहै वहुतरोगउपजते हैं और शरीर कुरूप होजाताहै । जैसे कमलोंपर वरफपड़ती और वे कुम्हिला जातेहैं तैसेही वृद्धअवस्थामें शरीर कुम्हिला जाताहै और सब शक्ति घटकर तृष्णा बढ़ती जातीहै । फिर कष्टवान् होकर मृतक होताहै तब वासनाके अनुसार स्वर्ग नरकके भोगोंको प्राप्तहोताहै। इसप्रकार संसार चक्रमें वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है—स्थिर कदाचित् नहीं होता।हे लीले ! इसप्रकार जीव आत्मपदके प्रमादसे जन्म मरण पाताहै और फिर माताके गर्भमें आके वाल, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्थाको प्राप्त होताहै । फिर वासनाके

अनुसार परलोक देखताहै और जाग्रत स्वप्नेकी नाईं भ्रमसे फिर देखता है । जैसे स्वप्नेमें स्वप्नान्तर देखताहै तैसेही अपनी कल्पनासे जगत् भ्रमफुरताहै । स्वरूप में किसीको कुछ भ्रमनहीं; आकाशरूप आकाशमें स्थितहैं भ्रमसे विकार भासतेहैं।लीलाने पूछा; हेदेवी ! परब्रह्म में यह जगत् भ्रमसे कैसे हुआहै ? मेरे बोधकी दृढ़ताके निमित्त कहो। देवीबोली; हे लीले ! सबआत्मरूपहैं; पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी,आकाशादिक स्थावर–जङ्गम जोकुछ जगत्है वहसब परमार्थ घनहै और परमार्थ सत्ताही सर्व आत्माहै। हेलीले!उससत्तासम्वित् आकाशमें जब सम्वेदनआभास फुरताहै तबजगत् भ्रमभासताहै। आदि सम्वेदन जो सम्वित्मात्रमें हुआहै सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआहै और जैसे वह चेततागयाहै उसीप्रकार स्थावर जङ्गम जगत् होकर स्थित हुआहै। हे लीले ! शरीरके भीतर नाड़ीहैं; नाड़ीमें छिद्रहैं और उन छिद्रोंमें स्पन्दरूप होकर प्राण विचरताहै उसको जीव कहतेहैं। जब वह जीव निकलजाताहै तब शरीर मृतक होताहै। हेलीले ! जैसे२ आदिसम्वित्मात्रमें सम्वेदनफुराहै तैसेही तैसे अब तक स्थितहै। जब उसनेचेता कि, मैं जड़होऊं तब वह जड़रूप पृथ्वी, अप, तेज,वायु आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये और जब चेतन की भावनाकी तब चेतनरूप होकर स्थित हुआ। हे लीले ! जिसमें प्राणक्रिया होतीहै वह जङ्गमरूपबोलतेचलते हैं और जिसमें प्राण स्पन्द क्रिया नहीं पाईजाती सो स्थावर रूपहैं पर आत्मसत्तामें दोनोंतुल्यहैं; जैसेजङ्गमहैं तैसेहीस्थावरहैं और दोनों चैतन्यहैं जैसे जङ्गममें चैतन्यता है तैसेही स्थावरमें चैतन्यताहै। यदि तू कहे कि, स्थावरमें चेतनता क्योंनहीं भासती तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिण दिशाके समुद्र वाले नहीं जानते और दक्षिण दिशाकेसमुद्रवालेकी बोली उत्तरदिशा के समुद्रवाले नहीं समझसक्ते; तैसेही स्थावरों की बोली जङ्गमनहीं समझसक्ते और जङ्गमोंकी बोली स्थावर नहीं समझसक्ते परंतु परस्पर अपनी अपनी जातिमें सब चेतन हैं–उसका ज्ञान उसको होता है और उसकाज्ञान उसको होता है। जैसे एक कूपका दर्दुर और कूप के दर्दुर को नहीं जानता और और कूपकादर्दुर उसकूप के दर्दुर को नहीं जानता तैसेहीजङ्गमों की बोली स्थावर नहीं जानसक्ते। और स्थावरों की बोली जङ्गम नहीं जानसक्ते। हे लीले ! जो आदि सम्वित् में सम्वेदन फुरा है वैसाही रूप होकर महाप्रलयपर्य्यन्त स्थित है–अन्यथा नहीं होता । जब उस सम्वित् में अवकाशका सम्वेदन फुरता है तब आकाशरूप होकरस्थितहोता है; जब स्पन्दताको चेतता है तब वायुरूप होकर स्थित होता है; जब उष्णता को चेतता है तब अग्निरूप होकर स्थितहोता है; जब द्रवताको चेतता है तब जलरूप होकर स्थितहोता है और जब गन्धकी चिन्तवना करता है तब पृथ्वीरूप होकर स्थित

होताहै इसीप्रकार जिसजिसको चेतताहै सोसो पदार्थ प्रकट होते हैं । आत्मसत्तामें सब प्रतिविम्बितहै । वास्तवमें न कोई स्थावरहै न जङ्गमहै केवल ब्रह्मसत्ताज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थितहै और उसमें भ्रमसे जगत् भासतेहैं और दूसरीकुछ वस्तु नहीं। हेलीले ! अब राजा विदूरथको देख कि, मृतक होताहै ? लीलाने पूछा; हेदेवी ! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मण्डपमें किस मार्गसे जावेगा और इसके पीछे हमकिस मार्गसे जावेंगे ? देवीबोली;हेलीले ! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्य मार्ग के राह जावेगा । हैतो यह चिदाकाशरूप परन्तु अज्ञानकेवश इसको दूर स्थान भासेगा और हमभी इसहीके मार्ग इसके सङ्कल्पके साथ अपना सङ्कल्प मिलाके जावेंगे। जबतक सङ्कल्पसे सङ्कल्प नहींमिलता तबतक एकत्वभाव नहींहोता। इतनाकह वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! इसप्रकार देवीजीने लीलाको परमबोधका कारण उपदेशकिया कि,इतनेमें राजा जर्जरीभूत होनेलगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसंसारभ्रमवर्णनोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! इसप्रकार देवी और लीला देखतीथीं कि,राजाकेनेत्र फटगये और शरीर निरसहो गिरपड़ा और श्वास नासिकाके मार्गसे निकलगया। तब जैसे रससे रहितपत्र और कटाहुआ कमल विरस होजाताहै तैसेही राजाका शरीर निरसहोगया;जोकुछ चित्तकी चैतन्यताथी वहजर्जरीभूत होगई;मृत्यु मूर्च्छारूपी अन्धकूपमें जा पड़ा और चेतना और वासना संयुक्त प्राण आकाशमेंजा स्थितहुये। प्राणोंमेंजो चेतनाथी और चेतनामें वासनाथी उस चेतना और वासना सहितप्राण जैसे वायु गन्धको लेकर स्थित होताहै आकाशमें जा स्थितहुआ । हे रामजी !राजा की पुर्यष्टकतो जर्जरीभूत होगई परन्तु दोनों देवियां उसको दिव्यदृष्टिसे ऐसेदेखतीथीं जैसे भ्रमरी गन्धको देखतीहै। राजाएकमुहूर्त्तपर्यन्त तो मूर्च्छामें रहा फिर उसको चेतनता फुरआई और अपने साथ शरीर देखनेलगा उसनेजाना कि मेरे बान्धवोंने मेरी पिण्डक्रियाकीहै उससेमेरा शरीर भयाहै और धर्म्मराजके स्थानको मुझेदूत लेचलेहैं हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करतावह धर्मराजके स्थानको चला और उसकेपीछे देवी,जैसे वायुकेपीछे गन्ध चलीजातीहै, चली जैसे गन्धकेपीछे भ्रमरीजातीहैं तैसेही राजा विदूरथ धर्मराजके पास पहुंचगया । धर्मराजने चित्रगुप्तसे कहा कि,इसके कर्म विचारकेकहो ! चित्रगुप्तने कहा; हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया बल्कि बड़े बड़े पुण्यकियेहैं और भगवती सरस्वतीका इसको वरहै । इसका शवफूलोंसे ढपाहुआहै; उस शरीरमें यह भगवतीके वरसे जाकर प्रवेशकरेगा । इससे अब और कुछ कहना पूछनानहीं;यहतो देवीजीके वरसे बँधाहै । हे रामजी ! ऐसे कहकर यमराज

ने राजाको अपने स्थानसे चलादिया तब राजा आगेचले और उसके पीछे दोनों देवियांचलीं। राजाको यह देवियां देखतीथीं पर राजा इनको न देखसकताथा। तबतीनों उस ब्रह्मांडकोलांघ जिसका राज्य विदूरथने कियाथा दूसरे ब्रह्मांडमें आये और उसकोभी लांघके पद्मराजाके देशमें आकर उसके मन्दिरमें जहां फूलसे ढपाशवथा आये। जैसे मेघसे वायु आन मिलताहै तैसेही एकक्षणमें देवियां आनमिलीं। रामजीनेपूछा;हे भगवन्! वह राजातो मृतकहुआथा;मृतकहोकर उसने उसमार्गको कैसे पहिचाना? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह विदूरथजो मृतकहुआथा उसकी बासना नष्ट न हुईथी। अपनीउस बासनासे यह अपने स्थानको प्राप्तहुआ। हेरामजी! चिदूअणु जीवके उदरमें भ्रान्तिमात्र जगत्है—जैसे वटके बीजमें अनन्त वट वृक्षहोतेहैं तैसेही चिदूअणुमें अनन्त जगत्हैं—जो अपने भीतर स्थितहै उसको क्योंन देखे? जैसे जीव अपनेजीवत्वका अंकुर देखताहै तैसेही स्वाभाविक चिदूअणु त्रिलोकीको देखताहै। जैसे कोईपुरुष किसीस्थानमें धन दबारक्खे और आप दूर देशमें जावे तो धन की बासनासे देखताहै तैसेही बासनाकी दृढ़तासे विदूरथने देखा और जैसे कोईजीव स्वप्नभ्रमसे किसीबड़े धनवान्के गृहमें जा उपजताहै और भ्रमकेशान्त हुये उसका अभाव देखताहै तैसेही उसको अनुभवहुआ। रामजीने पूछा,हे भगवन्! जिसकी वासना पिण्डदान क्रियाकी नहींहोती वह मृतकहुये अपनेसाथकैसे देहको देखताहै? वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! पुरुषजो मातापिताके पिण्डकरताहै उनकी बासना हृदय में होतीहै और वही फलरूप होकर भासतीहै कि,मेरा शरीरहै;मेरेपीछे मेरे बान्धवों ने पिण्डदान कियाहै उससे मेरा शरीरहुआ है। हे रामजी! सदेहहो अथवा विदेह अपनी वासनाही के अनुसार अनुभव होताहै—भावनासे भिन्न अनुभव नहींहोता। चित्तमय पुरुषहै; चित्तमें जो पिण्डकी वासना दृढ़होतीहै तो आपको पिण्डवान्ही जानताहै और भावनाकेवशसे असत्भासित होजाताहै। इससे पदार्थोंका कारण भावनाही है; कारणबिना कार्य्यका उदयनहीं होता। महाप्रलय पर्य्यन्त कारण बिनाकार्य होता नहींदेखा और सुनाभीनहीं। इससे कहाहै कि,जैसी वासनाहोतीहै तैसाही अनुभव होताहै। रामजीनेपूछा;हे भगवन्! जिस पुरुषको अपने पिण्डदान आदिक कर्म्मों की वासनानहीं वहजब मृतकहोताहै तब क्या प्रेतवासना संयुक्त होताहै कि,मैं पापी और प्रेतहूं? अथवा पीछेउसके बान्धव जो उसके निमित्त क्रियाकर्म करते हैं और जो बान्धवोंने पिण्डक्रियाकी है उससे उसे यह भावनाहोती है कि, मेराशरीर हुआहै वहक्रिया उसको प्राप्तहोतीहै वा नहींहोती? अथवा उसकेबान्धवोंके मनमेंयह दृढ़ भावनाहुई कि इसको सबक्रिया प्राप्तहोगी और वह अपने मनमें धन अथवा पुत्रादिकोंके अभावसे निराशहै और किसीप्रभावसे किसीने पिण्डादिक क्रियाकी वह उसको

प्राप्त होतीहै अथवानहीं होती?आपतो कहतेहैं कि,भावनाके वशसे असत्‌भी सत्‌हो-जाताहै—यहक्याहै ? वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! भावना; देश,काल, क्रिया,द्रव्य और सम्पदा इन पांचोंसे होतीहै । जैसी भावनाहोतीहै वैसीही सिद्धहोतीहै;जिसकी कर्त्त-व्यता बलीहोतीहै उसकी जयहोतीहै । पुत्र, दारादिक बान्धव सब वासनारूपहैं । जो धर्मकी वासना होतीहै तो बुद्धिमें प्रसन्नता उपजआतीहै और पुण्यकर्मोंसे पूर्व भावना नष्टहो शुभगतिको प्राप्तहोताहै । जो अतिबली वासनाहोती है उसकी जयहोती है । इससे अपने कल्याणके निमित्त शुभकाअभ्यास कियाचाहिये । रामजी बोले; हे भग-वन्!जो देश,काल,क्रिया,द्रव्य और सम्पदा इनपांचोंसे वासनाहोतीहै तो महाप्रलय सर्ग की आदिमें देश,काल,क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहींहोती तो जहां पांचो कारण नहीं होते और उनकी वासनाभी नहीं होती उस अद्वैतसे जगत् भ्रम फिर कैसेहोताहै ?वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! महाप्रलय और सर्गकी आदिमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं रहती और निमित्त कारणऔर समवाय कारण का अभावहोताहै । चिदात्ममें जगत् कुछउपजा नहीं और हैभीनहीं;वास्तवमेंदृश्यका अत्यन्त अभावहै और जो कुछ भासताहै वह ब्रह्मका किञ्चनहै । वह ब्रह्मसत्ता सद अपने आपमें स्थितहै । ऐसेही अनेक युक्तियोंसे मैंतुमसे कहूंगा अब तुम पूर्वकथा सुनो । हे रामजी ! जब वे दोनों देवियां उस मन्दिर में पहुंचीं तो क्यादेखा कि, फूलोंसे सुंदर शीतल स्थान बनेहुयेहैं—जैसे वसन्त ऋतुमें बनभूमिका होतीहै—और प्रातः-काल का समय है; सुवर्णके मङ्गलरूपी कुम्भ जलसे भरे रक्खे हैं; दीपकोंकी प्रभा मिटगई है; किवाड़ चढ़ेहुये हैं, मन्दिरों में लोग सोयेहुये मनुष्यों के श्वास आते जाते हैं और महासुन्दर झरोखे हैं । ऐसे बनेहुये स्थान शोभादेते हैं जैसे सम्पूर्ण कलासे चन्द्रमा शोभताहै और जैसे इन्द्रके स्थान सुन्दर हैं । जिस सुन्दरकमलसे ब्रह्माजी उपजे हैं तैसेही वे कमल सुन्दर हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमरणानंतरावस्थावर्णनंनामएको-
नचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब दोनों देवियोंने उसशवकेपास विदूरथकी लीला को देखा कि, वह उसकी मृत्युसे पहिले वहां पहुंचीहै और पूर्वकेसे वस्त्रभूषण पहिरेहुये; पूर्वका साआचार किये;पूर्वकीसी सुन्दरहै और पूर्वकासाही उसका शरीरहै।एवम् उसका सुन्दरमुख चन्द्रमाकीनाई प्रकाशताहै और महासुन्दर फूलोंकी भूमिपरबैठीहै। निदान लक्ष्मी के समानलीला और विष्णुकेसमान राजाकोदेखा पर जैसे दिनकेसमय चन्द्रमा की प्रभामध्यमहोतीहै तैसे उन्होंने लीलाको कुछचिन्तासहित राजाकी बांईओर एक हाथ चिबुक हाथपर रक्खे और दूसरे हाथसे राजाको चमर करती देखा । लीलाने

इनको नदेखा क्योंकि; ये दोनोंप्रबुध आत्मा और सत् सङ्कल्पथीं और लीला इन के समान प्रबुध न थी। रामजीने पूछा; हेभगवन्! उसमण्डपमें पूर्वलीलाजो देहको स्थापन कर और ध्यानमें विदूरथ की सृष्टि देखनेको सरस्वती के साथगई थी उसदेहका आपने कुछवर्णन न किया कि, उसकी क्या दशाहुई और कहांगई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! लीलाकहांथी, लीलाका शरीर कहांथा और उसकीसत्ता कहांथी ? वहतो अरुन्धतीके मनमें लीलाके शरीरको भ्रान्तिप्रतिभा हुईथी । जैसे मरुस्थलमें जलकी प्रतिभा होतीहै तैसेही लीलाके शरीरकी प्रतिभा उसे हुईथी। हे रामजी ! यह अधिभौतिक अज्ञानसे भासताहै और बोधसे निवृत्त होजाताहै। जब उसलीलाको बोधमें परिणामहुआतबउसका अधिभौतिक शरीर निवृत्तहोगया—जैसे सूर्य्यकेतेजसे बरफका पुतला गलजाताहै—और अन्तवाहकता उदयहुई।हे रामजी ! जो कुछ जगत् है वहसब आकाशरूपहै। जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही अन्तवाहकतामें अधिभौतिकता भ्रमसे भासतीहै। आदिशरीर अन्तवाहकहै अर्थात् सङ्कल्पमात्र है उसमें दृढ़भावना होगई उससे पृथ्वी आदि तत्त्वों का शरीर भासने लगा।वास्तव में न कोई भूत आदिक तत्त्वहै और न कोई तत्त्वोंका शरीरहै। उसका शश शशेकी शृंगोंकी नाईं असत्है। हे रामजी ! आत्मामें अज्ञानसे अधिभौतिक भासेहैं। जब आत्माका बोधहोताहै तब अधिभौतिक नष्ट होजातेहैं। जैसे किसी पुरुषने स्वप्नमें आपको हरिणदेखा और जब जागउठा तब हरिण का शरीर दृष्टिनहीं आया तैसेही अज्ञानसे अधिभौतिकता दृष्टिआईहै और आत्मबोधहुये अधिभौतिकता दृष्टि नहीं आती। जब सत्यकाज्ञान उदयहोता तब असत्काज्ञान लीनहोजाता है। जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्पभासताहै और रस्सीके ज्ञानसे सर्पकाज्ञान लीनहोता है तैसेही सम्पूर्ण जगत् मनसे उदयहुआहै और अज्ञानसे अधिभौतिकताको प्राप्त हुआहै। जैसे स्वप्नेमेंजगत् अधिभौतिक हो भासता है और जागेसे स्वप्नशरीर नहीं भासता तैसेही आत्मज्ञानसे अधिभौतिकता निवृत्तहोजातीहै और अन्तवाहकशरीर भासताहै। रामजी बोले; हे भगवन् ! योगीश्वर जो अन्तवाहक शरीरसे ब्रह्मलोकपर्यन्त आतेजाते हैं उनके शरीर कैसेभासतेहैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अन्तवाहक शरीर ऐसेहैं जैसे कोई पुरुष स्वप्नमें हो उसको पूर्वके जाग्रत् शरीरका स्मरण हो तब स्वप्न शरीर दृष्टिभी आताहै पर उसको आकाशरूप जानताहै; तैसेही अधिभौतिकताबोधसे नष्ट होजातीहै। जैसे शरत्कालकामेघ देखनेमात्र होताहै तैसेही ज्ञानवान् योगीश्वरोंका शरीर देखनेमात्र होताहै और अदृश्यरूप है; औरको शरीर भासताहै पर उसको आकाशरूपही भासताहै। हे रामजी ! यहदेहादिक आत्मामेंभ्रान्तिसे दृष्टिआतेहैं और आत्मज्ञानसे निवृत्त होजाते हैं। जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प

भासता है; जब रस्सीका सम्यक् ज्ञानहोताहै तब सर्पभाव उसका नहीं रहता तैसेही तत्त्वबोधके हुये देह कहांहो और देहकीसत्ता कहांरहै दोनोंका अभावही हो केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता भासती है। रामजी बोले;हे भगवन्! अन्तवाहक से अधिभौतिकरूप होता है वा अधिभौतिक से अन्तवाहक रूपहोता है यह मुझसेकहिये? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! मैंनेतुमको बहुत बेर कहाहै तुम मेरे कहे को धारण क्यों नहीं करते? मैंने आगे भी कहाहै कि, जो कुछ जीवहैं वह सब अन्तवाहकहैं अधिभौतिक कोई नहीं। आदिमें जो शुद्ध संवितमात्र से संवेदन आभास उठाहै उससे इस जीवका सङ्कल्परूप अन्तवाहक आदिशरीर हुआ। जब उसमें दृढ़ अभ्यास होताहै तब वह सङ्कल्परूपी शरीर अधिभौतिक होकर भासनेलगताहै। जैसे जल दृढ़ जड़तासे बरफरूप होजाता है तैसेही प्रमादसे सङ्कल्पके अभ्याससे अधिभौतिक रूप होजाताहै। उस अधिभौतिकके तीनलक्षण होते हैं भारीशरीर होताहै; कठोर भावहोताहै और शिथिल होताहै उससे अहंप्रतीत होती है इस कारण अधिभौतिक कहाताहै। जब तत्त्वका बोध होताहै तब अधिभौतिकता आकाशरूप होजातीहै। जैसे स्वप्नेमें देहसे आदिलेकर जगत् बड़ास्पष्टरूप भासताहै और जब स्वप्नेमें स्वप्न का ज्ञान होता है कि, यह स्वप्ना है तब वह स्वप्नेका शरीर लघुहोजाता है अर्थात् सङ्कल्परूप होजाता है; तैसेही परमात्माके बोधसे अधिभौतिक शरीर निवृत्त होजाता है और सङ्कल्परूप भासताहै। हे रामजी! आधिभौतिकता अबोध के अभ्यास से प्राप्त होती है। जब उलटके उसीही अभ्यासका बोध हो तब आधिभौतिकता नष्टहोजावे और अन्तवाहकता उदयहो। हे रामजी! जीव एक शरीरको त्यागके दूसरेका अङ्गीकार करताहै—जैसे स्वप्नेसे स्वप्नान्तर प्राप्तहोताहै और जब बोधहोता है तब शरीर औरकुछ वस्तुनहीं वही आधिभौतिक शरीर शान्त होजाता है जैसे स्वप्नेसे जागके स्वप्नशरीर शान्त होजाताहै। हे रामजी! जोकुछ जगत् तुम को भासता है वहसब भ्रममात्रहै अज्ञानसे सत्कीनाईं भासताहै। जब आत्मबोध होगा तब सब आकाशरूपहोगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्वप्ननिरूपणोनामचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले;हेरामजी! जब वह दोनों देवियां अन्तःपुरमेंगईं तब प्रबुधलीला कहनेलगी;हेदेवीजी! समाधिमेंलगे मुझको कितनाकाल व्यतीतहुआ? मैं ध्यानसे भूपालकी सृष्टिमेंगईथी और मेरा शरीरयहां पड़ाथा वह कहांगया? देवी बोली; हे लीले! तुझको समाधिमें लगे इकतीस दिन व्यतीतहुये हैं। जब तू ध्यानमें लगी तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टिमें विचरता फिरा जबइस शरीरकी वासना तेरी निवृत्त

होगई तब जैसे रससे रहित पत्र सूखजाताहै तैसेही तेरा शरीर निर्जीवहोकर गिरपड़ा और जैसे काष्ठ पाषाण होता है तैसेहीहो बरफकीनाई शीतल होगया। तब देखके सबने विचारकिया कि,यहमरगई इसको जलाइये और चन्दन और घृतसे लपेटके जलादिया।बान्धवजन रुदनकरनेलगे और पुत्रोंने पिण्डक्रियाकी।हेलीले! जो तूध्यान से उतरती तो तुझको देखके लोग आश्चर्य मानहोते और अबभीदेखके सबआश्चर्य्यमान होवेंगे कि,रानी परलोकसे फिरआईहै। हे लीले ! अब तुझको बोध उदय हुआहै इससे इस शरीरकी वासना नष्टहोगई और अन्तवाहकमें दृढ़ निश्चयहुआ इस कारण वह शरीर जीवितहुआ। अबजो उसकेसमान तेराशरीर हुआ है वह इस कारणहै कि,तुझको लीलाकी वासनामें बोधहुआहै कि,मैं लीलाहूं इसकारण तेराशरीर तैसाहीरहा। यहलीला शरीरकी तेरी वासना नष्ट न हुईथी इस कारण तू निर्वाण न हुई नहींतो विदेहमुक्तहोजाती। अब तू सत् सङ्कल्पहुईहै जैसे तेरीइच्छाहोगी तैसेहीअनुभवहोगा। हे लीले ! जैसीवासना जिसकोहोतीहै उसके अनुसार उसको प्राप्तहोता है। जैसे बालकको अन्धकारमें जैसी भावनाहोतीहै तैसाही भानहोता है—जो बैताल की भावनाहोतीहै तो बैतालहो भासताहै परन्तु वास्तवमें बैतालकोई नहीं। तैसेजितनी आधिभौतिकता भासतीहै वहभ्रममात्रहै। सब जीवोंका आदि शरीर अन्तवाहकहै सो प्रमादसे आधिभौतिक भासताहै। हेलीले ! एक लिंगशरीरहै;एक अन्त वाहकशरीरहै—यह दोनों सङ्कल्पमात्रहैं और इनमें इतनाभेदहै कि,लिंगशरीर सङ्कल्परूपी मनहै उसमें जिसको अधिभौतिकता का अभिमान होता है उसको गोरत्व और कठोररूप और वर्णाश्रमका अभिमान होताहै। जिसपुरुषको ऐसे अनात्मामें आत्माभिमान हुआहै जिसकी आधिभौतिक लिंगदेहहै उसकी चिन्तना सत्यनहींहोती। जिसको आधिभौतिक का अभिमान नहींहोता वह अन्तवाहक शरीर है। वह जैसा चिंतवन करताहै वैसीही सिद्धिहोतीहै। हेलीले! तूअब अंतवाहकमें दृढ़स्थित हुई है इसकारण तेराफिर वैसाहीशरीर हुआहै। तेरी आधिभौतिक बुद्धिनष्ट होगई और वह स्थूल शरीर शवहोकर गिरपड़ाहै जैसे जलसेरहित मेघहो और जैसे सुगन्धसे रहितफूल हो तैसेहीतेरा शरीर होगयाहै और अब तू सत्यसङ्कल्प हुईहै। जैसी चिन्तवनकर तैसाहीहोगा। हेलीले! यह कमलनयनी लीलातेरे भर्त्ताके पासबैठी है और उसको इस अन्तःपुरके लोग और सहेलियां जाननहीं सक्तीं क्योंकि; मैंने इनको निद्रामें मोहित कियाथा। जबतक मेरा दर्शनइसको न होवेगा तबतक इसको और कोई न जानसकेगा अब यह हमको देखेगी। इतना कहकर वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! ऐसे विचारके देवी उसको अपने सङ्कल्पसे ध्यान करनेलगी तबउस लीला ने देखा कि, अन्तःपुरमें बहुत से सूर्योंका प्रकाश इकट्ठाहुआहै और चन्द्रमाकी नाईं

शीतल प्रकाशहै । ऐसेदोनों देवियोंको देखके उसने नमस्कारकर मस्तकनवाया और दोनोंको स्वर्णके सिंहासनपर बैठाके कहनेलगी;हे जीवकीदाता ! तुम्हारीजय हो ! तुमने मुझपर बड़ीकृपाकी । तुम्हारेही प्रसादसे मैं यहांआई । देवीबोली;हेपुत्री ! तू यहां कैसेआई और क्या वृत्तान्त तूने देखासो कह ? विदूरथकी लीलाबोली ;हेदेवी ! जब मेराभर्त्ता संग्राममें घायलहुआ तब उसको देखके मैं मूर्च्छितहो गिरपड़ी परन्तु मृतकल्प भई । इसके अनन्तर फिर मुझको चेतनाफुरी तो मैंने अपना वही शरीर देखा और उस शरीरसे मैं आकाशमार्गको उड़ी । जैसेवायु गंधलेकर उड़ताहै तैसेही एक कुमारी मुझे उड़ाकर परलोकमें भर्त्ताके पासबैठा आप अन्तर्द्धान होगई । मेरा भर्त्ता जो संग्राममें थकाथा वह आके सोरहाहै और मैं सँभालती देखतीमार्गमें आई हूं परन्तु मुझको तुमदृष्टि कहींनआई । यहां कृपाकर तुमने दर्शनदियाहै । इतनाकह कर वशिष्ठजी बोले;हेरामजी ! इसप्रकार सुनके देवीने प्रबुध लीलासे कहा कि; अब मैं राजाकी जीवकलाको छोड़तीहूं । ऐसे कहके देवीने नासिकाके मार्गसे जीवकला को छोड़दिया और जैसेकमलके भीतरवायु प्रवेशकरजावे अथवा शरीरमें वायुप्रवेश करजावे तैसेही शरीरमें जीवकला प्रवेश करगई।जैसे समुद्रजलसे पूर्णहोताहै तैसेही पुर्य्यष्टक वासनासे पूर्णथी।शरीरकी क्रांति उज्ज्वल होगई और जैसे वसन्तऋतुमें फूल और वृक्षोंमें रस फैलताहै अंगोंमें प्राणवायु फैलगई । तब सबइन्द्रियां खिलआईं जैसे वसन्त ऋतुमें फूल खिलआतेहैं । तब राजाफूलों की शय्यासे इसभांति उठखड़ा हुआ जैसे रोकाहुआ विन्ध्याचल पर्वत उठआवे । तबदोनोंलीला राजाके सन्मुख आ खड़ीहुईं और राजाने कहा मेरे आगे तुमकौन खड़ीहो?प्रबुध लीलाने कहा;हेस्वामी! मैं तुम्हारी पूर्व पटरानी लीलाहूं ;जैसे शब्दकेसङ्ग अर्थ रहताहै तैसेसदा तुम्हारे सङ्ग रहीहूं ! जबतुम यहां शरीरत्यागके परलोकमें गयेथे तब मुझमें तुम्हारा अतिस्नेहथा इससे मेरा प्रतिबिम्ब यहलीला तुमकोभासीथी । अबजो और कथाका वृत्तान्तहै सो मैंतुमसे कहतीहूं । हे राजन् ! हमारे ऊपर इसदेवीने कृपाकीहै जो हमारे शीशपर स्वर्णकेसिंहासन परबैठीहै।यह सरस्वती सर्वकीजननीहै; इसनेहमारेऊपर बड़ीकृपाकी है और परलोकसे तुम्हें ले आईहै । हे रामजी ! ऐसे सुनके राजा प्रसन्नहो उठखड़ा हुआ और सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नवाकर बोला;हे सरस्वती तुमको मेरा नमस्कारहै । तुम सबकी हितकारीहो और तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह कियाहै । अब कृपाकर के मुझको यह वरदो कि, मेरी आयुर्बल बड़ीहो; निष्कण्टक राज्य करूं; लक्ष्मी बहुतहो;रोग कष्ट न हो और आत्मज्ञानसे सम्पन्न होऊं अर्थात् भोग और मोक्ष दोनोंदो । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इसप्रकार राजानेकहा तब देवीने उसके शीशपर हाथधरके आशीर्वाद दिया कि, हे राजन् ! ऐसेही होगा ।

तेरी आयुर्बल बड़ीहोगी; तेरा शत्रुभी कोई न होगा; निष्कण्टक राज्य करेगा;आपदा तुझको नहोगी;लक्ष्मी संपदासे सम्पन्न होगा;तेरी प्रजाभी बहुतसुखी रहकर तुझको देखके प्रसन्न होगी; तेरी प्रजामें आपदा किसीको न होगी और तू आत्मानन्द से भी पूर्णहोगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवजीवन्वर्णनंनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहके देवीतो अन्तर्द्धान होगई औरप्रातःकालका समयहुआ; सबलोग जागउठे; सूर्य भी उदय हुआ और सूर्यमुखी कमल खिलआये। राजा दोनोंलीलाको कण्ठलगाप्रसन्न और आश्चर्यमान हुआ मन्दिर में नगारे बजने लगे और नाना शब्द होनेलगे मन्दिर में बड़ाहुलास और आनन्द हुआ अनेक अंगना नृत्य करने लगीं और बड़ाउत्साह हुआ। विद्याधर, सिद्ध, देवता फूलों की वर्षा करनेलगे और लोग बड़े आश्चर्यवान् हुये कि, लीला परलोकसे फिर आईहै और अपने भर्ता और एक आपसी दूसरी लीला ले आईहै।हे रामजी ! यहकथा देशसे देशान्तर चलीगई और सबलोग सुनकेआश्चर्यवान् हुए। जब इसप्रकार यहकथा प्रसिद्धहुई तब राजानेभी सुना कि, मैं मरकेफिर जियाहूं और विचारा कि, फिर मेरा अभिषेक हो निदान मंत्री और मण्डलेश्वरोंने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओरसे सब समुद्र और सर्व तीर्थोंका जल मँगा राजाको राजका अभिषेक किया और चारों समुद्रों पर्यन्त राजा निष्कण्टकराज्य करने लगा। राजा और लीला यह पूर्वकी कथाको विचारते और आश्चर्यमान होते थे। सरस्वतीके उपदेश और प्रसादसे अपना पुरुषार्थ पाके राजा और दोनोंलीलाने इसभांति सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन्मुक्त होके राजक्रिया और मनसहित षट्इन्द्रियोंको वशकरके यथालाभ संतुष्टरहे और दृश्यभ्रम उनकानष्टहोगया। ऐसा सुन्दर राजा थाकि, उसकी सुन्दरताकी कणिका मानों चन्द्रमाथी और उसके तेजकी कणिका मानों सूर्य्यथी निदान उसने प्रजाको भलीप्रकार संतुष्टकिया और सबप्रजा राजाको देखकेप्रसन्नहुई और विदेहमुक्तहोदोनोंलीला और तीसराराजानिर्वाणपदकोप्राप्तहुये॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेनिर्वाणवर्णनं नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह दोनोंकथा एक आकाशज ब्राह्मणकी और दूसरी लीलाकी मैंने तुमको दृश्यदोषके निवृत्तिअर्थ विस्तारपूर्वक सुनाईहै।हेरामजी! दृश्यकी दृढ़ता जो होरहीहै उसको त्यागकरो। अब तुम इन दोनों इतिहासों को संक्षेप मात्रसे सुनो। यह जगत् जो तुमको भासताहै आभासरूपहै—आदिसे कुछउपजा नहीं जो वस्तु सतहोती है उसके निवारणमें प्रयत्न होताहै और जोवस्तु असतही हो उसके

निवृत्ति होनेमें कुछ यत्ननहीं। इस कारणज्ञानवान्को सब आकाशरूप भासताहै और आकाशकी नाईं स्थित होताहै। हे रामजी! आदिजो ब्रह्मसत्तामें आभास सम्वेदन फुराहै सोब्रह्मरूप होकर स्थितहुआहै। वह ब्रह्म पृथ्वी आदिक भूतोंसे रहितहै। जो आपही आभासरूपहो उसके उपजाये जगत् कैसे सत्हो? हेरामजी! ज्ञानवान्पुरुष आकाश रूपहै। जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआ उसको दृश्यभ्रमका अभाव होजाताहै और जो अज्ञानीहै उसको जगत् भ्रमस्पष्टभासताहै। शुद्ध चिदाकाशका एक अणुजीवहै और उसजीव अणुमें यहजगत् भासताहै,उसजगत्की सृष्टिमेंतुमको क्याकहूं;नीती क्याकहूं;वासनाक्याकहूं और पदार्थोंको क्याकहूं?हे रामजी!जगत् कुछ उपजा नहीं केवल सम्वेदनके फुरनेसे जगत् भासताहै। शुद्ध संवितमें संवेदनरूपी नदी चलीहै और उसमें यहजगत् फुरताहै। जब संवेदनको यत्नकरके रोंकोगे तब दृश्यभ्रम नष्टहोजावेगा। प्रयत्न करना यहीहै कि, संवेदनको अन्तर्मुखकरे और जब तकआत्माका साक्षात्कारनहो तबतक श्रवण,मनन और निदिध्यासनसे दृढ़ अभ्यास करना चाहिये। जबसाक्षात्कार होताहै तब दृश्यनष्ट होजाताहै। हे रामजी! यहसर्व जगत् जो तुमको भासता है सो हमको अखण्ड ब्रह्मसत्ताही भासता है। जगत्माया-मयहै परन्तु मायाभी कुछ और वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै।रामजी बोले; बड़ा आश्चर्य्य है! बड़ाआश्चर्य्य है! हे मुनीश्वर! आपने मुझसे परमदशा कही है। आपका उपदेश दृश्यरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता दावाग्निहै और अध्यात्मक, अधि-भौतिक और अधिदैविक तापोंका शांत कर्त्ता चन्द्रमाहै। हे मुनीश्वर! आपके उप-देशसे अबमैं ज्ञातज्ञेय हुआहूं और पांचविकल्प मैंनेविचारेहैं।प्रथम यहकि,यहजगत् मिथ्याहै और इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है; दूसरे यहकि, आत्मामें आभास है; तीसरे यहकि,इसका स्वभाव परिणामीहै चौथेयह कि,अज्ञानसे उपजाहै और पांचवें यहकि,यह अनादि अज्ञान पर्यन्तहै।ऐसे जानके मैं ज्ञानवानों और निर्वाण मुक्तोंकी नाईं शान्तात्मा हुआ। हे मुनीश्वर! और शास्त्रोंसे यह आपका उपदेश आश्चर्य है। श्रवणरूपी पात्र आपके वचनरूपी अमृत से तृप्तनहीं होते। इससे मेरा यह संशय दूरकरो कि, लीलाके भर्त्ताकोप्रथम वशिष्ठ, फिर पद्म और फिर विदूरथकी सृष्टिका अनुभव कैसेहुआ और उनमें उसको कहीं दिन हुआ, कहीं मास, कहीं वर्षोंका अनुभवभया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुआ? हे मुनीश्वर! इससे स्पष्टकरके कहिये कि, आपके वचन मेरे हृदय में स्थितहों।एकबेर कहने से हृदय में स्थितनहीं होते इससे फिर कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुद्धसंवित सबका अपना आप है। उससे जैसा संवेदन फुरता है तैसा रूपहो भासता है। कहीं क्षणमें कल्पोंके समूह बीते भासतेहैं और कहीं कल्प में क्षणका अनुभवहोताहै। हे रामजी!

जिसको विषमें अमृत भावनाहोती है उसको अमृतहीहो भासताहै और जिसकोअ-मृतमें विषकी भावनाहोती है तबवही विषरूप हो भासताहै। किसी पुरुषका कोई शत्रुहोताहै पर उसमें वह मित्रकी भावना करताहै तोवह मित्ररूपही भासता है और जिसको मित्रमें शत्रुभावना होतीहै तबवही शत्रुहोभासताहै। हे रामजी! जैसासंवेदन फुरताहै तैसाही स्वरूपहो भासता है। जिसका संवेदन तीव्रभावके अभ्याससे नि-र्मल भावको प्राप्तहोताहै उसका सङ्कल्प सत्होता है और जैसे चेतता है तैसेही सिद्धहोताहै। इससे संवेदनकी तीव्रताहुईहै। हे रामजी! रोगीको एकरात्रि कल्पके समान व्यतीत होतीहै और जो आरोग्य होताहै उसको रात्रि एकक्षणकी नाईं व्य-तीत होती है। एक मुहूर्त्तके स्वप्नेमें अनेक वर्षोंका अनुभव करताहै और जानता है कि, मैं उपजाहूं; ये मेरे मातापिता हैं; अब मैं बड़ाहुआ और ये मेरे बान्धव हैं। हे रामजी! एक मुहूर्त्त में इतने भ्रमदेखताहै और जागे पर एक मुहूर्त्तभी नहीं बीतता। हरिश्चन्द्रको एक रात्रि में बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था और राजा लवणको एक क्षणमें सौवर्षका अनुभव हुआ था। इससे जैसा जैसा रूप होकर संवेदन फुरता है तैसाहीतैसा होकर भासताहै। हे रामजी! ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त में मनुष्य की आयुर्बल व्यतीत होजाती है। ब्रह्मा जितने कालमें एक मुहूर्त्तका अनुभव करता है मनुष्य उत-नेहीमें पूर्ण आयुर्बलका अनुभव करता है और ब्रह्मा जितने काल में अपनी सम्पूर्ण आयुर्बलका अनुभव करता है सो विष्णुका एक दिनहोता है। ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होजाताहै और विष्णुको एक दिनका अनुभव होताहै। इससे जैसे जैसे संवेदनमें दृढ़ता होती है तैसा २ भानहोता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमदेखते हो सो संवेदन फुरनेमें स्थित है। जब संवेदन स्थित होताहै तब न दिन भासताहै; न राति भासती है; न कोई पदार्थ भासते हैं और न अपना शरीर भासता है केवल आत्मतत्त्व मात्र सत्तारहती है। इससे तुमदेखो कि; सब जगत्मनके फुरनेमें होताहै। जैसा जैसा मन फुरताहै तैसातैसा रूपहो भासता है। कडुवेमें जिसको मीठेकी भाव-ना होती है तो कडुवा उसको मीठा होजाता है और मीठे में जिसको कटुक भावना होतीहै तब मधुर भी उसको कटुकरूप होजाताहै। स्वप्ने और शून्यस्थानमें नाना प्रकारके व्यवहार होते भासतेहैं और स्थिर पड़ा स्वप्नेमें दौड़ता फिरता है। इससे जैसा फुरना मनमें होता तैसाही होभासता है। हे रामजी! नौकामें बैठेहुये पुरुषको नदीके तट वृक्षों सहित दौड़ते भासते हैं। जो विचारवान् हैं वे चलते भासनेमें उन्हें स्थिरही जानते हैं। और जो पुरुष थमताहै उसको स्थिरभूत मन्दिर भ्रमतेभासते हैं और जो विचारमें दृढ़है उसको भ्रमते भासनेमें भी अचल बुद्धि होती है। इससे जैसा २ निश्चय होता है तैसाही तैसा हो भासता है। हे रामजी! जिसके नेत्र में

तृपण होता है उसको श्वेत पदार्थ भी पीतवर्ण भासता है और जिस के शरीर में वात, पित्त, कफ का क्षोभ होता है उसको सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं । इसी प्रकार पृथ्वी आकाशरूप भासती है और आकाश पृथ्वीरूपहो भासता है; चल पदार्थ अचलरूप भासता है और अचलपदार्थ चलताभासताहै । हे रामजी ! जैसे स्वप्नेमें अंगना असत्‌रूप होती है परन्तु भ्रान्तिसे उसकोस्पर्श करके प्रसन्न होताहै तो उसकाल में प्रत्यक्षही भासती है और जैसे बालकको परछाहीं में वैताल भासता है सो असतही सत्‌रूपहो भासताहै । हे रामजी ! शत्रुमें जो मित्रभावना होती है तो वह शत्रुभी मित्र सुहृद्‌हो भासता है और जो मित्रमें शत्रुभाव होताहै तो वह सुहृद शत्रुरूप हो भासताहै । जैसे रस्सीमें सर्प हैनहीं परन्तु भ्रम से सर्प भासता है और भयदेताहै तैसेही बांधवोंमें जो बांधवकी भावना न करे तो बांधवभी अबांधवहो भासता है और अबांधवभी भावनाके अभावसे बांधव होजाते हैं । हे रामजी! शून्यस्थान में और स्वप्ने में बड़े क्षोभ भासतेहैं और निकटवर्त्ती को जागे से कुछ नहीं भासता । स्वप्नेवालेको सुननेका अनुभव होताहै और जाग्रतवालेको जाग्रतका अनुभव होताहै इत्यादिकपदार्थ विपर्यय भ्रमसेभासते हैं । जब मन फुरताहै तबहीं भासताहै । तैसेही लीलाके भर्त्ताकोभी ऐसी सृष्टि काअनुभव हुआ। जैसे जाग्रतकी एकमुहूर्त्तका स्वप्ने में बहुतकाल का अनुभव होताहै तैसेही लीलाके भर्त्ताकोभी हुआथा । जैसीजैसी मन की स्फूर्त्तिहोतीहै तैसाही तैसारूप चैतन्य संवित में भासताहै । हमको सदा ब्रह्मका निश्चय है इससे हमको सबजगत् ब्रह्मस्वरूपही भासताहै और जिसको जगत्‌भ्रमदृढ़है उसको जगतही भासताहै । हेरामजी ! जोकुछ जगत् भासताहै सोकुछ आदिसे उपजानहीं – सब आकाशरूपहै । रोंकनेवाली कोई भीतिनहींहै बड़े विस्तारसे जगत्‌है परन्तु स्वप्नवत्‌है । जैसे थम्भे में बनानेविना पुतली शिल्पीके मनमें भासतीहै और थम्भेमें कुछबनी नहीं तैसेही आत्मारूपी थम्भाहै उसमें जगत्‌रूपी पुतलियों को संवेदन रचताहै परन्तु वहकुछ पदार्थनहीं है आत्मसत्ताही ज्योंकीत्योंहै । हेराम जी ! जैसे एकस्थानमें दो पुरुष लेटेहों और उनमें एक जागताहो और दूसरास्वप्ने मेंहो तो जो स्वप्नेमेंहै उसको बड़े युद्धहोते भासतेहैं और जागेहुये को आकाशरूपहै तैसेहीजो प्रबोध आत्मज्ञानवान्‌है उसको जगत्‌का सुषुप्तिकी नाईं अभावहै औरजो अज्ञानीहै उसको नाना प्रकारके व्यवहारों सहित स्पष्टभासताहै । जैसे बसन्तऋतुमें पत्र,फल,और गुच्छे रससहित भासतेहैं तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे जगत्‌रूपभासतीहै । जैसे स्वर्णमें द्रवता सदारहतीहै परन्तु जब अग्निकासंयोगहोताहै तभीभासतीहै । हेरामजी ! आत्मा औरजगत्‌में कुछ भेदनहीं । जैसे अवयवी और अवयवों में और पृथ्वी और गन्धमें कुछ भेदनहीं तैसेही आत्मा औरजगत् में कुछभेदनहीं ।

ब्रह्मसत्ताही संवेदनसे जगत्रूप होकर भासतीहै और दूसरी कोईवस्तुनहीं।जब महाप्रलय होताहै और सर्गनहींहोता तब कार्यकारणकी कल्पना कोईनहीं होती केवल चिन्मात्र सत्ताहोती है और उसमें फिर चिदाकाश जगत् भासता है तो वहीरूप हुआ। जो तुम कहो कि, इसजगत्का कारण स्मृतिहै तोसुनो; जब महाप्रलय होताहै तब ब्रह्माजी तो विदेहमुक्त होते हैं फिर वह जगत्के कारण कैसेहों और जो तुम स्मृतिका कारण मानो तो स्मृतिभी अनुभवमें होतीहै जो स्मृतिसे जगत्हुआ तौभी अनुभवरूप हुआ। रामजीने पूछा;हे भगवन्!पद्मराजाके मंत्री,नौकर और सबलोग विदूरथको कैसे जाकर मिले? यहवार्त्ता फिर कहिये। वशिष्ठजी बोले,हे रामजी!केवल चेतनसंवित सबकाअपनाआपहै उससंवितके आश्रयसे जैसासम्वेदनफुरताहै तैसाही रूपहो भासताहै। हेरामजी! जब राजाविदूरथ मृतकहोनेलगा तब उसकी वासना उनमेंथी और मंत्री, नौकर आदिक राजाके अंगहैं इसकारणवैसेही मंत्री और नौकर राजाकोमिले।हे रामजी! जैसी भावना सम्वेदनमें दृढ़होतीहै तैसाहीरूप हो भासता है। एक चलपदार्थ होतेहैं और एक अचल होतेहैं। जो अचल पदार्थ हैं उनका प्रतिविम्ब आदर्शमें भासताहै और चलपदार्थ रहता नहीं भासता इससे उसकाप्रतिविम्ब नहीं भासता। तैसेही जिसपदार्थकी तीव्रसंवेगभावना होतीहै उसीका प्रतिविम्ब चेतनदर्पणमें भासताहै अन्यथा नहीं भासता। जैसे तीव्रवेगवान् बड़ानद समुद्रमें शीघ्रही जामिलताहै और दूसरे नहीं प्राप्त होसक्ते तैसेही जिसकी दृढ़वासना होतीहै वह उसके अनुसार शीघ्र जाकर पाताहै। हेरामजी! जिसके हृदयमें अनेकवासना होती हैं और अच्छी तीव्रताहोतीहै उसीकी जय होतीहै। जैसेसमुद्रमें अनेक तरंगहोते हैं तो कोई उपजताहै औरकोई नष्टहोजाता;कोई सदृशहोताहै कोई विपर्यय होताहै उसके सदृश मंत्री और नौकरभाहुये। हेरामजी! एकएक चिद्अणुमें अनेक सृष्टिस्थितहोती हैं पर वास्तवमें कुछनहीं केवल चिदाकाशही चिदाकाशमें स्थितहै।यह जो जगत् भासताहै सो आकाशहीरूपहै जोजाग्रतरूपहोकर असतही सत्रूपकीनाईं भासताहै।जैसे पत्र, फल, फूल सब वृक्षरूपहैं और वृक्षही ऐसेरूप होकर स्थितहैं तैसेही अनन्तशक्ति परमात्मा अनेकरूप होकर भासताहै। हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रिपटीज्ञानी को अजन्मापद भासताहै और अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होकर भासताहै। कहीं शून्य भासताहै; कहीं तम भासताहै और कहीं प्रकाशभासताहै। देश, काल, क्रिया, द्रव्यआदिक सबजगत् आदि,अंत और मध्यसेरहित स्वच्छआत्मसत्ता अपनेआपमें स्थितहै जैसे सोमजलमें जो तरङ्ग होतेहैंसो जलहीरूपहैं तैसेही अहं,त्वं आदिक जगत् भी बोध रूपहै और सदाअपने आपमें स्थित है-उसमें द्वैतकल्पनाका अभावहै॥
इतिश्रीयोगवा॰उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपा॰प्रयोजनवर्णनन्नामात्रिचत्वारिंशत्तमःसर्गः४३

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अहंत्वं आदिक दृश्य भ्रांति कारण बिना परमात्मा से कैसे उदयहुई है? जिस प्रकार मैं समझूं उसी प्रकार मुझको फिर समझाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ कारण कार्य्य जगत् भासता है वह परमात्मा से उदय हुआ है अर्थात् संवेदन के फुरने से इकट्ठे हो पदार्थ भास आये हैं और सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वात्मा, अजरूप अपने आपमें स्थित हैं। हे रामजी! यह सर्व शब्द और अर्थ रूप कलना जो भासी है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं और ब्रह्मसत्ता सर्वशब्द अर्थ की कलना से रहित अपने आपमें स्थित है। जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं और तरंग जलसे भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्मसे भिन्न जगत् नहीं–ब्रह्मस्वरूपही है। हे रामजी! ईश्वरजो आत्मा है सो जगत् रूप है जगत् ईश्वररूप है। जैसे सुवर्ण भूषण रूप है और भूषण स्वर्ण रूप है अर्थात् सुवर्ण में भूषण शब्द और अर्थ कल्पित हैं–वास्तव नहीं–तैसेही जगत् आत्माका आभास रूप है–वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ जगत् है सो ब्रह्मरूप है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे अवयव अवयवी से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जो कुछ अवयवी जगत्है सो भिन्न नहीं। आत्मामें संवेदनके फुरने से तन्मात्रा फुरी है और आत्मामेंही इनका उपजना समहुआ है; पीछे विभागकल्पना हुई है इसलिये उनसेजो भूत हुये हैं वे आत्मासे अन्य नहीं। जैसे शिलामें चितेरा भिन्न भिन्न पुतली कल्पता है सो शिला रूपही हैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहंत्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्मामें मनरूपी चितेरे ने कल्पाहै सो चिद्घन रूपही है कुछ भिन्ननहीं। जैसे जलमें तरंग स्थित होते हैं सो जलरूपही हैं; तरंगों का शब्द और अर्थ जलमें कोई नहीं; तैसेही आत्माजगत् स्थित है पर जगत् के शब्द और अर्थ से रहित है। हे रामजी! जगत् परमपदसे भिन्न नहीं और परमपद जगत् बिना नहीं; केवल चिद्रूप अपने आप में स्थित है। जैसे वायु और स्पंद में कुछभेद नहीं है; स्पंद और निस्स्पंद दोनोंरूप वायुकेही हैं। जब स्पन्दरूप होता है तब स्पर्शरूपहोकर भासता है और निस्स्पंद हुये स्पर्श नहीं भासताः तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं; जब संवेदन किंचित्रूप होता है तब जगत्रूप हो भासता है और संवेदन के निस्स्पंद हुये से जगत् नहीं भासता पर आत्म सत्ता सदा एक रूपहै। हे रामजी! जब संवेदन फुरने से रहितहोकर आत्मपदमें स्थितहो तबयदि संकल्परूप जगत् फिरभी भासे तो आत्मरूपही भासे। जैसे वायुके स्पंद और निस्स्पंद दोनोंरूप अपनेआपही भासते हैं तैसेही इसकोभी भासताहै। जैसेवायुमें स्पंदता वायुरूप स्थितहै तैसेही आत्मामें जगत् आत्मरूपसे स्थित है। जैसे तेज अणुका प्रकाश जब मंदिर में होता है तब बाहरभी प्रगट होता है तैसेही जब केवल संवित् मात्रमें संवेदन स्थितहोता है तब

फुरने में भी संवित् मात्रही भासताहै। हे रामजी! जैसे रस तन्मात्रामेंजलस्थित होता है तैसेही आत्मामें जगत्स्थितहै। जैसे गंधतन्मात्राके भीतर संपूर्णपृथ्वीस्थितहैं तैसे ही किञ्चनरूप जगत्आत्मामें स्थितहै। वहनिराकार और चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता उदय और अस्त से रहित अपने आपमें स्थित है; प्रपंचभ्रम उसमें कोई नहीं। हे राम जी! जे ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको दृढ़ी भूत जगत् भीआकाशरूप भासता है और जे अज्ञानी हैं उनको असत्रूप जगत्भी सत्रूपहोभासताहै। हेरामजी! जैसा जैसा संवेदन चित्त संवित् में फुरता है तैसाही तैसारूप जगत् हो भासता है। ये जितने तत्त्व और तन्मात्राहैं वे सब चित्त संवेदनके फुरनेसे स्थितहुये हैं; जैसी २ उससे स्फूर्त्ति होती है तैसी २ होकर भासती हैक्योंकि; आत्मा सर्व शक्तिवान् है इसलिये जिस २ पदार्थ का फुरना फुरता है वहीअनुभव में सत्रूप होकर भासता है। पंचज्ञानेन्द्रिय और छठे मनका जोकुछ विषयहोताहै वहसब असत्रूपहै और आत्मसत्ता इनसे अतीतहै। विश्वभी क्यारूपहै;जैसे समुद्रमें तरंगहोतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् स्थितहै। जैसेतेज और प्रकाश अनन्यरूपहैं तैसेही आत्मा और जगत् अनन्यरूपहैं। जैसे थम्भेमें शिल्पी पुतलियां देखताहै;जैसे मृत्तिकाके पिंडमें कुम्हार वर्तन देखताहै और जैसेभीतपर चितेरा रंगकीमूरतें लिखताहै सो अनन्यरूपहैं तैसेही परमात्मामें सृष्टि अनन्यरूपहै। हे रामजी! जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल और तरंगें असत्हैं पर सत्रूपहो भासतीहैं; तैसेही आत्मामें असत्रूप जगत् त्रिलोकी भासतीहै। जब चित्तसंवित्में संवेदन फुरताहै तब जगत् भासताहै और जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत्भी नहीं भासता। जगत्कुछ ब्रह्मसे भिन्ननहीं। जैसेबीज और वृक्षमें;क्षीर और मधुरतामें; मिरच और तीक्ष्णतामें; समुद्र और तरंगमें और वायु और स्पंदमें कुछ भेदनहीं होता तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेदनहीं। जैसे अग्निमें उष्णता स्वाभाविक स्थितहै तैसेही निराकार आत्मामें सृष्टि स्वाभाविक ही स्थितहै। हेरामजी! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किञ्चनहै;जैसा जैसा किञ्चनहोता है तैसाही तैसा होकर भासता है। अकारण पदार्थ अकारणही होता है और जिस अधिष्ठानमें भासताहै उससे अनन्यरूप होताहै; अधिष्ठानसे भिन्न उसकी सत्तानहीं होती;तैसेही यह जगत् आत्मामें अनन्यरूप होताहै—कुछ उपजानहीं परन्तु संवेदन फुरनेसे भासताहै। जितने जगत् और वासनाहैं उनका बीज संवेदनहै इससे वेभ्रम हैं। इसलिये संवेदनके अभावका पुरुषार्थकरो; जब संवेदनका अभावहोगा तब जगत् भ्रम नष्टहोगा। वास्तवमें कुछन उपजाहै और न कुछ नष्टहोताहै;सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकीनाईं अपनेआपमें स्थितहै। हे रामजी! चित्परमाणुमें चैत्यतासे अनेकसृष्टि भासतीहैं। उन सृष्टियोंमें जो परमाणुहैं उन परमाणुओंके भीतर

और सृष्टि स्थित हैं उनकीकुछ संख्यानहीं। जैसे जलमें अनेक तरंगहोते हैं उनमेंसे कोईगुप्त और कोई प्रकटहोतेहैं पर वे सब जलकी शक्तिरूपहैं और जैसे जाग्रत,स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जीवोंके भीतर स्थितहैं परकोई गुप्तहै कोई प्रकटरूपहै। हेराम-जी! जबतक संवेदन द्वैतकेसाथ मिलाहुआहै तबतक सृष्टिका अन्तनहीं। जब चित्त उपशमहोगा तब जगत्भ्रम मिटजावेगा। जब भोगोंमें कुछभी वृत्ति न उपजे तब जानिये कि,आत्मपद प्राप्तहोगा। यह श्रुतिका निश्चयहै। हे रामजी! ज्यों २ ममत्वदूर होताहै त्यों २ बन्धनोंसे मुक्तहोताहै। जब अहंभाव अर्थात् जीवत्वभाव निर्वाणहोता है तब जन्मोंकी संपदा नष्ट होजातीहैं केवल शुद्धरूपही होताहै और तब स्थावरजंगमरूप जगत् सब आत्मरूप प्रतीतहोताहै। जैसे समुद्रको तरङ्ग और बुद्बुदे सब अपने आपरूप भासतेहैं तैसेही ज्ञानवान्को सबजगत् आत्मरूप भासताहै। हेराम जी! शुद्ध आत्मसत्तामें जो संवेदन फुराहै उसने आपको ब्रह्मरूप जाना और भावनाकरके संकल्परूप नाना प्रकारका जगत्रचाहै पर उसको अन्तर अनुभव असत्य रूप किया। उसमेंकहीं निमेषमें अनेक युगोंका अन्तभासता है और कहीं अनेक युगोंमें एक निमेषका अनुभव होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगत्किञ्चनवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४

वशिष्ठजी बोले;हेरामजी! चिद्परमाणुमें जो एक निमेषहोताहै उसके लाखवेंभागमें जगतोंके अनेक कल्पफुरतेहैं। और उन सृष्टियोंमें जो परमाणुहैं उनमें सृष्टिफुरतीहैं। जैसे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं सोजल रूपहीहैं-तरङ्ग शब्द और उसका अर्थभ्रमरूपहै – तैसेही आत्मामें भ्रमरूप अनेक सृष्टिफुरतीहैं। जैसे मरुथलमें मृगतृष्णाकी नदी चलती दृष्टिआतीहै तैसेही आत्मामें यहजगत् भासताहै। जैसे स्वप्नसृष्टि और गंधर्वनगर भासतेहैं;जैसे कथाके अर्थचित्तमें फुरतेहैं और सङ्कल्पपुर भासताहै;तैसेही जगत् असत्रूप सत्होभासताहै। इतनासुन रामजीने पूछा;हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ! जिस पुरुषको विचार द्वारा सम्यक्ज्ञानहुआ और निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्तिहुई है उसको अपनेसाथ देह कैसे भासतीहै;उसकी देहकैसे रहतीहै और देह प्रारब्ध से उसका शरीर कैसे रहताहै? वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! आदिजो ब्रह्मशक्तिमें संवेदन फुराहै उसकानाम नीतिहुआहै। उसमें जो संभावना की है कि,यह पदार्थ ऐसेहोगा; इनसे होगा और इतनेकाल रहेगा वैसेही अनेक कल्पपर्यन्त होताहै। जितनाकाल उसनेधाराहै उतने कालकानाम नीतिहै। महासत्भी उसीको कहतेहैं और महाचेतनाभी उसीको कहते हैं। महाशक्तिभी उसीकानामहै और महाअदृष्ट वा महा कृपाभी वही है और महा उद्भवभी उसीकोकहते हैं। अर्थयह कि, वहनीति अनन्त ब्रह्मांडोंकी उपजानेवालीहै। जैसा फुरना दृढ़हुआहै तैसाहीरूपहोकर स्थितहै। यह स्थावररूपहै

यहजंगमहै; यह दैत्यहै;यह देवताहै;यहनागहै; यहनागिनीहै; ब्रह्मासे तृणपर्यन्त जैसी उसमें अभ्यास है उसीप्रकार स्थितहै। स्वरूपसे ब्रह्मसत्ता का व्यभिचार कदाचित् नहींहुआ वह तो सदाअपने आपमें स्थितहै। जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सबब्रह्मस्वरूप भासताहै और जो अज्ञानी हैं उसको जगत् और नीतिभी भिन्नभासती हैं। ज्ञानवान्को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासतीहै और अज्ञानियोंको चलनरूप जगत् भासताहै। वह जगत् ऐसाहै जैसे कि; आकाशमें वृक्षभासते हैं और शिलाके उदरमें मूर्त्ति होतीहै। जो ज्ञानवान्हैं उनको सर्ग और निमित्त सब ज्ञानरूपही भासते हैं। जैसे अवयवीके अवयव अपनाहीरूप होतेहैं तैसेही ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्मनित्य सर्गादिक अपनाहीरूपहैं। हे रामजी! उसीनीतिको दैवभी कहतेहैं। जोकुछ किसीको प्राप्त होताहै वह उसी दैवकी आज्ञासे प्राप्तहोताहै क्योंकि; आदिसे यही निश्चयधराहै कि, इससाधनसे यहफल प्राप्तहोगा। जैसा साधनहोताहै तैसाहीफल अवश्यसबको उसदैवसे प्राप्तहोता है। इसकारण नीतिको दैव कहते हैं और दैवको नीतिकहते हैं। हे रामजी! पुरुष जो कुछ पुरुषार्थ करता है उसके अनुसार फलप्राप्त होताहै। इसी कारण इसकानाम नीति है और इसीका नाम पुरुषार्थ है। तुमने जो मुझसे दैव और पुरुषों का निर्णय पूछा और मैंने कहा उसीकी तुम पालना करो। इसीका नाम पुरुषार्थहै। और इसका जो फल तुमकोप्राप्तहो उसकानाम दैवहै। हे रामजी! जोपुरुष ऐसा दैवपरायण हुआहै कि; मुझको जोकुछ दैवभोजनकरावेगा सोहीकरूंगा और मौनधारीहो के अक्रियहोबैठे उसको जो आयप्राप्तहो सोभीनीतिहै औरजो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थकरताहै वह भोगोंकोभोगकर मोक्षपर्यन्त अनेकशरीरोंको धारेगा; यहभी नीतिहै। हे रामजी! जो आदि संवित्में संवेदन फुरकर भवितव्यता धरीहै उसही प्रकारस्थितहै उसकानामभी नीतिहै। उसनीतिको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रभी उल्लंघननहीं करसक्ते तो और कैसेउल्लंघिसके। हे रामजी! जो पुरुष पुरुषार्थको त्यागबैठेहैं उनकोफल नहीं प्राप्तहोता-यहभी नीतिहै और जो पुरुषफलके निमित्त पुरुषार्थ करताहै उसकोफल प्राप्तहोताहै-यहभी नीतिहै। जो पुरुष प्रयत्नको त्यागकर निष्क्रियहो बैठे हैं और मनसे विषयोंकी चित्तमेंवासनाकरते हैं वे निष्फलही रहते हैं और जो पुरुष कर्त्तव्यको त्यागकर चित्तकी वृत्तिसे शून्य दैवपरायणहो रहेहैं और विषयोंकी चित्तमेंवासना नहीं करते उनको सफलताही होतीहै क्योंकि; फुरनेसे रहितहोनाभी पुरुषार्थहै। यहभी नीतिहै कि, अर्थ चिंतवन करनेवालेको प्राप्त नहीं होती और अयाचकको प्राप्तहोती है। हे रामजी! पुरुषार्थ सफलभी नहीं है जो आत्मबोधके निमित्तनहो। जबब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्रअभ्यास होताहै तब परमपदकी अवश्यप्राप्ति होतीहै और जब परमपद पाया तब सब जगत् चिदाकाशरूप

हो भासताहै । नीतिआदिक जो विस्तार कहेहैं सो सर्व भ्रमरूपहैं केवल ब्रह्मसत्ताही ऐसे हो भासतीहै । जैसे पृथ्वीमें रस सत्ताहै और वह तृणवत, गुच्छे और फूलरूप होकरस्थितहै तैसेहीनीति आदिक सबजगत् होकर ब्रह्मही स्थितहै; और कुछवस्तुनहीं॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदेवशब्दार्थविचारोनामपंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुमको भासताहै सो सर्वप्रकार, सर्वदा और सर्वओरसे ब्रह्मतत्त्वही सर्वात्मा होकरस्थित हुवाहै। वह अनन्तआत्माहै; जब उसमें चित्तशक्ति प्रकट होतीहै अर्थात् शुद्धचैतन्यमात्रमें अहंस्फूर्त्तिहोतीहै तब जगत् भासताहै; कहीं उपजताहै; कहीं नष्टहोताहै; कहीं हुलासकरताहै; कहीं चित्त भासताहै; कहीं किंचनहै; कहीं प्रकटहै और कहीं अप्रकट भासताहै । निदान नानाप्रकारका जगत् है जहां जैसातीव्र अभ्यास होताहै वहांवैसा होकर भासताहै क्योंकि; आत्मासर्वशक्ति और सर्वरूपहै; जैसा २ फुरना उसमें दृढ़होताहै वहीरूपहोकर भासताहै। हेरामजी ! ये जो नानाप्रकारकी शक्तियां कही हैं सो वास्तव में आत्मासे कुछभिन्न नहीं; बुद्धिमानोंने समझानेके निमित्त नानाप्रकारके विकल्प जालकहे हैं आत्मामें विकल्पजाल कोई नहीं । जैसे जल और उसकी तरङ्गमें; सुवर्ण और भूषणोंमें और अवयवोंमें और अवयवमें कुछ भेदनहीं तैसेही आत्मा और शक्तिमें कुछ भेदनहीं । हे रामजी! एक संवित् है और एक संवेदन है; संवित् वास्तव है और संवेदन कल्पना है । जब संवित् में चिन्मात्र संवेदन फुरता है तो वह जैसे चेतता जाता है तैसेही होकर स्थित होता है । शुद्धचिन्मात्र संवित् में भीतर और बाहर कल्पना कोईनहीं । जब स्वभाव से किञ्चनरूप संवेदन होताहै तब आगे कुछ देखताहै और उस देखनेसे नानाप्रकार के आकार भासते हैं पर वह और कुछनहीं सर्व ब्रह्मही है। हे रामजी ! शक्ति और शक्तिमानमें भेद अज्ञानी देखते हैं और अवयवी और अवयव भेदभी कल्पते हैं। परमार्थ में कुछभेद नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है उसके आश्रय सङ्कल्प आभास होता है। जब सङ्कल्पकी तीव्रता होती है तब वह सत्हो अथवा असत् परन्तु उसहीका भानहोता है ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजावतारोनामपट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव, परमात्मा महेश्वरहै यह स्वच्छ अनुभव, परमानन्दरूप और आदिअन्तसे रहित है। उस शुद्धचिन्मात्र परमानन्दसे प्रथम जीव उपजा; उससे चित्त उपजा और चित्तसे जगत् उपजा है। रामजीनेपूछा; हे भगवन् ! अनुभव परिणामसे जो शुद्धब्रह्मतत्व; सर्वव्यापी, द्वैतसे रहित स्थित है उसमें तुच्छरूपजीव कैसे सत्यताको पाताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ब्रह्म सदा भास है अर्थात् असत्रूप जगत् उससे सत्भासता है और स्वच्छ है अर्थात्

आभासरूपी जगत्सेभी रहित है। बृहत् है अर्थात् बड़ा है। बड़ाभी दो प्रकारका है; अविद्याकृत जगत् से जो बड़ाहै सो अविद्याकी बड़ाई मिथ्याहै। ब्रह्मबड़ाई सर्वात्मकरूपहै सो सर्वदेश, सर्वकाल और सर्ववस्तुसे पूर्ण है और अविद्याकृत बड़ाई देश, काल वस्तुसेरहित निराकारहै सो ज्ञानीका विषयहै इससे बृहत् है और परम चेतनहै। भैरवहै अर्थात् जिसकेभयसे चन्द्रमा, सूर्य्य, अग्नि, वायु और जल अपनीमर्य्यादामें चलते हैं। परमानन्द है, अविनाशी है सर्वओरसे पूर्ण है; समहै; शुद्धहै और अचिन्त्य है अर्थात् वाणीसे नहीं कहाजाता और क्षोभसेरहित चिन्मात्र है ऐसी आत्मसत्ता ब्रह्मका जो स्वभाव सम्पत् है उसीकानाम जीव है अर्थात् जो शुद्ध चिन्मात्रमें अहंफुरनाहै उसीका नामजीवहै। उस अनुभवरूपी दर्पणमें अहंरूपी प्रतिबिम्बफुरने को जीव कहतेहैं। जीव अपनेशांतपदको त्यागेकीनाईं स्थितहोता है सो चिदात्माही फुरनेकेद्वारा आपको जीवरूप जानता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप होताहै पर समुद्र और तरंगमें कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्मही जीवरूपहै। जैसे वायु और स्पन्द और बरफ और शीतलता में कुछभेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जीव में कुछ भेदनहीं। हे रामजी ! चित्तरूपी आत्मतत्त्वकोही अपने स्वभाव वश से मायाकरके संवेदनसहित जीवरूप कहतेहैं। वहजीव आगे फुरने से बड़े विस्तार धारणकरता है। जैसे इन्धन से अग्नि के बहुत अणु होते हैं और बड़े प्रकाशको प्राप्तहोता है तैसेही जीव फुरने से जगत्रूपको प्राप्त होता है। जैसे आकाशमें नीलताभासती है सो नीलता कुछ भिन्न वस्तुनहीं है तैसेही अहंभाव ते ब्रह्ममें जीवरूप भासता है और अहंकृतको अङ्गीकार करके कल्पितरूपकी नाईं स्थित होता है। जैसे घनकी शून्यतासे आकाश में नीलता भासती है तैसेही स्वरूप के प्रमादसे देश, काल वस्तुके परिच्छेद सहित अहंकाररूपी जीवभासते हैं पर वास्तवमें चिदाकाशही चिदाकाशमें स्थित है। जैसे वायु से समुद्र तरङ्गरूप होता है तैसेही सम्वेदन फुरने से आत्मसत्ता जीवरूप होतीहै। जीवकी चैत्योन्मुखत्वताके कारण इतनी संज्ञाहैं-चित्त, जीव, मन, बुद्धि, अहंकार, मायाप्रकृति सहित ये सब उसहीकेनामहैं। उसजीवने सङ्कल्पसे पंचभूत तन्मात्रा कोचेता तो उन पंचतन्मात्राके आकारसे अणुरूपहोकर स्थितहुआ; उससे अणुअनउपजेही उपजेकी नाईं स्थितहुये और भासने लगे। फिर उसी चित्तसंवेदनने अणु अङ्गीकार करके जगत् को रचा और जैसे बीजसे सत्अंकुर वृक्ष होता है तैसेही संवेदन ने विस्तारपाया। प्रथम वह एकअण्डरूपी होकर स्थितहुआ और फिर उस ने अण्डकोफोड़ा। जैसे गन्धर्व्व नगरऔर स्वप्नसृष्टि भासतीहै तैसेही उसमें जगत् भासनेलगा। फिर उस में भिन्नभिन्न देह और भिन्नभिन्न नाम कल्पे। जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना कल्पताहै और उनका भिन्नभिन्न नाम रखताहै तैसेही स्थावर, जंगम

आदिकनाम। कल्पनाकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं–इनपांचों भूतों की सृष्टि संकल्पसे उपजी है। हे रामजी! आदि ब्रह्म से जो जीवफुराहै उसका नाम ब्रह्माहै। वह ब्रह्माआत्मामें आत्मरूपहोकर स्थितहै और उससे क्रमकरके जगत्हुआ है। जैसे वह चेतताहै तैसेही होकर स्थित होताहै। जैसे समुद्रमें द्रवतासे तरंगहोतेहैं तैसेही ब्रह्ममें चित्तस्वभावसे जीव होताहै। वह जीव जब प्रमादसे अनात्मभाव को धारणकरताहै तब कर्म्मों से बन्धमान होताहै। जैसे जल जबदृढ़ जड़ताको अंगीकार करताहै तब बरफरूप होकर पत्थरके समान होजाताहै; तैसे जीव जब अनात्म में अभिमान करता है तब कर्म्मों के बन्धन में आताहै। हे रामजी! कर्म्मोंका बीज सङ्कल्पहै और सङ्कल्प जीवसे फुरताहै। जीवत्वभाव तब होताहै जब शुद्धचेतनमात्र स्वरूपसे उत्थान होताहै। उत्थान के अर्थ ये हैं कि, जब प्रमादहोताहै तब जीवत्वभाव होताहै और जब जीवत्वभाव होताहै तब अनेक सङ्कल्प कल्पना फुरती हैं। उन सङ्कल्प कल्पनाओंसे कर्महोते हैं; और कर्मोंसे जन्म, मरण आदिक नानाप्रकार के विकार होते हैं। जैसे बीजसे अंकुर और पत्रहोते हैं; फिर आगे फूल, फल और टास होतेजाते हैं तैसेही संकल्प कर्मोंसे नानाप्रकारके विकार होते हैं। जैसे २ कर्म जीवकरताहै उनकेअनुसार जन्म, मरण और अध–ऊर्ध्वको प्राप्तहोता है। हेरामजी! मनके फुरनेका कर्म्मनाम है; फुरनेकाही नामचित्त है; फुरनेकाही नाम कर्म्म है और फुरनेकाही नाम दैवहै। उसहीसे जीव को शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है। सबका आदि कारण ब्रह्महै; उससे प्रथम मन उत्पन्न हुआ फिर उस मनही ने सम्पूर्ण जगत्की रचनाकी है। जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै और फिर पत्र, फूल, फल और टासहोते हैं तैसेही ब्रह्मसे मन और जगत् उपजा है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजांकुरवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! आदिकारण ब्रह्मसे मन उत्पन्न हुआहै। वह मन संकल्प रूपहै और मनसेही सम्पूर्ण जगत् हुआहै। वह मन आत्मामें मनत्वभाव से स्थितहै और उस मननेही भाव अभावरूपी जगत् कल्पाहै। जैसे गन्धर्वकी इच्छासे गन्धर्व नगर होता है तैसेही मनसे जगत् होता है। हे रामजी! आत्मामें द्वैतभेद की कुछ कल्पना नहीं। इसमनसेही ऐसी संज्ञाहुई है। ब्रह्म, जीव, मन, माया, कर्म, जगत् और द्रष्टा आदि सबभेद मनसे हुये हैं; आत्मामें कोई भेद नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उछलते और बड़े विस्तार धारणकरते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें सम्वेदन से जो नानाप्रकार जगत् विस्तार पाताहै सो असत्‌रूपी है क्योंकि; स्थित नहीं रहता और सदा चलरूप है। और जो अधिष्ठान स्वरूपभावसे देखिये तो सत्‌रूप है। इससे द्वैत कुछ न हुआ। जैसे स्वप्नेका जगत् सत् असत्‌रूप चित्तसे

भासता है तैसेही सत् असत्रूप यह जगत् भासता है। वास्तव में कुछउपजा नहीं चित्तके भ्रमसे भासता है। जैसे इन्द्रजाली की बाजी में जो नानाप्रकार के वृक्ष और ओषधि भासतेहैं सो भ्रममात्र हैं तैसे यह जगत् भ्रममात्र है। हे रामजी! यह जगत् दीर्घकालका स्वप्ना है और मनके भ्रमसे सत्होकर भासता है। जैसे बालक भ्रमसे परछाहीं में भूतकल्पताहै और भय पाता है तैसेही यह पुरुप चित्त के संयोगसे द्वैत कल्पके भय पाता है। जैसे विचारकिये से बैताल का भय नष्टहोता है तैसेही आत्म-ज्ञानसे भयआदिक विकार नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! आत्मा, अनादि, दिव्यस्वरूप और अंशांशी भावसे रहित, शुद्ध चैतन्यरूप है। जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होताहै तब चित्त अर्थात् जो चेतनताका लक्षणहै उससे जीव कल्पना होती है। उस जीव में जब अहंभाव होता है कि, 'मैंहूँ' तब उससे चित्त फुरताहै; चित्तसे इन्द्रियां होतीहैं; उन इन्द्रियों से देहभाव होता है और उस देह भ्रम से मलिन हुआ नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्षआदिकी कल्पना होती है। जैसे बीजसे अंकुर, पत्र, फूल, फल और टासहोतेहैं तैसेही अहंभावसे जगत् बिस्तार होताहै। हे रामजी! जैसे देह और कर्मों में कुछभेद नहीं तैसेही ब्रह्म और चित्तमें कुछभेदनहीं। जैसे चित्त और जीवमें कुछभेद नहीं तैसेही चित्त और देहमें कुछभेद नहीं। जैसे देह और कर्मोंमें कुछभेद नहीं तैसेही जीव और ईश्वरमें कुछ भेदनहीं और तैसेही ईश्वर और आत्मा में कुछ भेदनहीं। हेरामजी! सर्व ब्रह्म स्वरूपहै; द्वैतकुछनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवविचारोनामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! यह जो नानात्व भासता है सोवास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यतासे एकका अनेक रूपहो भासताहै। जैसे एक दीपसे अनेक दीप होते हैं तैसेही एक परब्रह्मसे अनेकरूपहो भासते हैं। हे रामजी! यह असत्रूपी जगत् जिस में आभासहै उस आत्मतत्वका जब पदार्थ ज्ञान होताहै तब चित्तमें जो अहं-भावहै सो नष्ट होजाताहै और उस अहंभावके नष्ट हुये सब शोकनष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जीव चित्तरूपीहै और चित्तमें जगत् हुआहै। जब चित्तनष्ट हो तब जगत् भ्रमभी नष्टहोजावेगा। जैसे अपने चरणमें चर्मकीजूती पहनते हैं तोसर्वपृथ्वी चर्मसे लपेटी प्रतीत होतीहै और तापकण्टक नहींलगते हैं तैसेही जब चित्तमें शांतिहोतीहै तब सर्व जगत् शांतरूप होताहै। जैसे केलेके थम्भमें पत्रोंके सिवा अन्य कुछ सार नहीं निकलता तैसेही सब जगत् भ्रममात्र है और इससे सारकुछ नहीं निकलताहै। हेरामजी! इतनाभ्रम चित्तसे होताहै। बाल्यावस्था में क्रीड़ा करता फिरताहै; यौवन अवस्था धारणकरके विषयों को सेवताहै और वृद्धावस्था में चिन्तासे जर्जरीभूत होताहै फिर मृतक होकर कर्मोंके अनुसार नरकस्वर्ग में चलाजाताहै। हे रामजी!

यहसबमनका नृत्यहै।मनहींभ्रमताहै जैसे नेत्रदूषणसे आकाशमें दूसराचन्द्रमा भासताहै तैसेही अज्ञानसे जगत् भ्रम भासताहै । जैसे मद्यपानकरके वृक्षभ्रमते भासते हैं तैसेही चित्तके संयोगसे भ्रमकरके जगत्द्वैत भासते हैं।जैसे बालक लीलाकरके भ्रमसे जगत्को चक्रकीनाई भ्रमता देखताहै तैसेही चित्तकेभ्रमसे जीव जगत्भ्रम देखताहै । हेरामजी! जब चित्त द्वैतनहीं चेतता तबयह द्वैतभ्रम मिटजाताहै । जबतक चित्तसत्ता फुरतीहै तबतक नानाप्रकारका जगत्भासताहै और शांतिनहींपाता और जबघनचेतनता पाता है तब शान्तिपाकर जगत्भ्रम मिटजाताहै । जैसे पपीहा बकताहै और शान्तिवान् नहींहोतापर घनवर्षासे तृप्तहोकर शान्तहोताहै तैसेही जब जीव महाचैतन्य घनताकोप्राप्त होताहै तब शांतिवान् होताहै तबवह चाहे व्यवहारमेंहो अथवा तूष्णीरहे सदा शांतिवान् होताहै । हेरामजी ! जब चित्तकी चैतन्यता फुरतीहै तब जगत् भ्रमसे नानाप्रकारके विकारदेखताहै और भ्रमसेही ऐसे देखताहै कि, मैंउपजाहूं, अबबड़ा हुआहूं और अब मैंमरूंगा। पर वास्तवमें जीव चेतनब्रह्मसे अनन्यस्वरूपहै।जैसे वायु और स्पन्दमें कुछभेदनहीं तैसेहीब्रह्म और चैतन्यतामें कुछभेदनहीं जैसे वायु सदारहताहै पर जबस्पन्दरूप होताहै तब स्पर्शकरताभासताहै तैसेही चैतन्यता मिटतीनहीं । ब्रह्मकी चेतनाहो तब जगत्भ्रम मिटजाताहै और केवल ब्रह्मसत्ताही भासतीहै । जैसे रस्सीकेअज्ञानसे सर्प भ्रमहोताहै और रस्सीके यथार्थ जानेसे सर्प भ्रम मिटजाताहै तो रस्सीही भासतीहै;तैसेही ब्रह्मके अज्ञानसे जगत् भ्रम भासता है और जब चित्तसे दृढ़चैत्यता भासतीहै तबभ्रम पदार्थकाज्ञानहोताहै और तभीजगत्भ्रमभी मिटजाताहै केवल ब्रह्मसत्ताही भासतीहै । हे रामजी! दृश्यरूपी व्याधिरोग लगाहै और उसरोगका नाशकर्त्ता संवित्मात्र है जबतक चित्तबहिर्मुख होकर दृश्यको चेतताहै तबतक शांतनहींहोता और जब सर्ववासनाको त्यागकर अपनेस्वभावमें स्थित अन्तर्मुख होगा तबउसही कालमें मुक्तिरूप शान्तहोगा—इसमें कुछसंशयनहीं । जैसेरस्सी दूरके देखनेसे सर्प भासतीहै और जब निकटहोकर देखे तब सर्पभ्रम मिटजाताहै रस्सीही भासतीहै;तैसेही आत्माकानिवृत्तरूप जगत्है;जब बहिर्मुखहोके देखताहै तब जगतही भासताहै और जब अन्तर्मुख होके देखताहै तबजगत् भ्रम मिटकर आत्माही भासताहै । हे रामजी ! जिसमें अभिलाषाहो उसकोत्याग दे । ऐसे निश्चयसे मुक्ति प्राप्तहोतीहै त्यागका यत्नकुछ नहीं । महात्मा पुरुप प्राणोंको तृणकीनाई त्यागदेतेहैं और बड़ेदुःखको सहरहतेहैं। तुमको अभिलाषा त्यागनेमेंक्या कठिनताहै? हेरामजी ! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरणहै। अभिलाषा के होते आत्मानहीं भासताहै । जैसे बादलोंके आवरणसे सूर्य्य नहीं भासता और जब बादलोंका आवरण नाशहोताहै तबसूर्य भासताहै; तैसेही अभिलाषाके निवृत्तहुये आत्मा

भासताहै। इससे जोकुछ अभिलाषा उठे उसको त्यागो और निरभिलाषा होकर आत्मपदमें स्थितहो। प्रकृत आचार देह और इन्द्रियोंमें ग्रहणकरो और जोकुछ त्याग करनाहो उसको त्यागकरो परदेहमें ग्रहणत्यागकी बुद्धिनहो। हे रामजी! जोतुम सम्पूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागोगे तो जैसे हाथमें बेलफल प्रत्यक्ष होताहै और जैसे नेत्रों केआगे प्रतिविम्ब प्रत्यक्ष भासताहै तैसेही अभिलाषाकेत्यागसे आत्मपद तुमको प्रत्यक्ष भासेगा और सब जगत्भी आत्मरूपही भासेगा। जैसे महाप्रलयमें सब जगत् जलमें भासताहै और कुछ दृष्टिहीनहीं आता तैसेही आत्मपदसे भिन्न तुमको कुछन भासेगा। आत्मतत्वको नजानने काहीनाम बन्धनहै और आत्मपदका जाननाही मोक्ष है और मोक्षकोई नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसंश्रितउपशमयोगोनामएकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ४९

रामजीने पूछा;हे भगवन्! मन क्योंकर उत्पन्नहुआहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्मअनन्तशक्तिहै और उसमें अनेक प्रकारका किञ्चनहोताहै। जहांजहां जैसीजैसी शक्तिफुरतीहै तहां २ तैसाही तैसा रूपहोकर भासताहै। जब शुद्धचिन्मात्र सत्ता चेतन मेंफुरतीहै कि,'अहंअस्मि,तबउस फुरनेसे जीवकहाताहै। वहीचित्तशक्ति संकल्पककारणभासतीहै। जब वह दृश्यकी ओर फुरतीहै तब जगत्दृश्य होकर भासताहै और नानाप्रकारकेकार्य–कारणहो भासतेहैं। रामजीने फिरपूछा कि,हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! जो इस प्रकारहै तो देव किसकानामहै; कर्मक्याहै और कारण किसकोकहतेहैं? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! फुरना अफुरना दोनों चिन्मात्रसत्ताके स्वभावहैं। जैसे फुरना अफुरना दोनों वायुकेस्वभावहैं परन्तु जब फुरताहै तब आकाशमें स्पर्शहोकर भासताहैऔर जब चलनेसे रहितहोताहै तबशान्त होजाताहै; तैसेहीशुद्ध चिन्मात्रमें जब चैत्यताका लक्षण'अहंअस्मि' अर्थात् 'मैंहूं' होताहै तब उसकानाम 'स्पन्द बुद्धीश्वर' कहतेहैं। उससे जगत् दृश्यरूपहो भासताहै। उस जगत् दृश्यसे रहित होनेको निस्पन्द कहते हैं। चित्तके फुरनेसे नानाप्रकार जगत्हो भासताहै और चित्तके अफुरहुये जगत्भ्रम मिटजाताहै और नित्यशांत ब्रह्मपदकी प्राप्तिहोतीहै। हे रामजी! जीव, कर्म और कारणयेसब चित्तस्पन्दके नामहैं और चित्तस्पन्दमें भिन्न अनुभव नहीं, अनुभवही चित्तस्पन्द हुयेकी नाईं भासताहै। जीव,कर्म और कारणका बीजरूप चित्तस्पन्दहीहै। चित्तस्पन्दसे दृश्यहोकर भासताहै,फिर चिदाभासद्वारादेहमें अहंप्रतीत होती है और उसदेहमें स्थित होकर चित्त संवेदन दृश्यकीओर संसरताहै। संसरना दो प्रकार काहै–एकबड़ा और दूसराअल्प। कितनोंको संसरनेमेंअनेक जन्मव्यतीतहोते हैं और कितनोंको एकजन्म होता है। आदिही फुरकर जो स्वरूप में स्थित हैं उनको प्रथमजन्म होताहै और जो आदि उपजकर प्रमादी हुये हैं सोफुरकर दृश्यकी ओर

चलेजातेहैं और उनके बहुतेरे जन्महोते हैं । चित्तके फिरनेसे ऐसा अनुभव करते हैं । पुण्यक्रिया करके स्वर्गमेंजातेहैं और पापक्रियाकरके नरकमें जातेहैं । इसप्रकार दृश्यभ्रम देखतेहैं और अज्ञानसे बन्धनमें रहतेहैं। जबज्ञानकी प्राप्तिहोती है तब मोक्षका अनुभव करतेहैं सोबड़ा संसरनाहै और जोएकही जन्मपाकर आत्माकी ओर आतेहैं वह अल्पसंसरनाहै। हेरामजी ! जैसे स्वर्णही भूषणरूप धारणकरताहै तैसेही संवेदनही काष्ठलोष्ट आदिकरूप होके भासताहै । इसचित्तके संयोगसेही अज और अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देहप्राप्तहोतेहैं और जानताहै कि, मैं अबउपजा, अबजीताहूं फिर मरजाऊंगा। जैसे नौकामें बैठे भ्रमसे तटके वृक्षभ्रमते दीखतेहैं तैसेही भ्रमसे अपनेमें जन्मादि अवस्था भासती हैं । आत्माके अज्ञानसे जीवको 'अहं' आदि कल्पना फुरती हैं । जैसे मथुराके राजालवणको स्वप्नेमें चाण्डाल का भ्रमहुआथा तैसेही चित्तके फुरनेसे जीव जगत् भ्रम देखतेहैं । हे रामजी ! यह सबजगत् मनके भ्रमसे भासता हैं । शिवजो परमतत्त्व है सो चिन्मात्रहै; उसमें जब चैत्योन्मुखत्व होता है कि,'मैंहूं' उसकाहीनाम जीवहै । जैसे सोमजलमें द्रवता होताहै, इससे उसमें चक्र फुरतेहैं और तरङ्ग होतेहैं; तैसेही ब्रह्मरूपी सोमजल में जीवरूपी चक्र फुरतेहैं; और चित्तरूपी तरङ्ग उदय होते हैं और सृष्टिरूपी बुद्बुदे उपजकर लीनहोजाते हैं । हे रामजी ! चेतन स्फूर्त्तिद्वारा जीव की नाईं भासताहै । जैसे समुद्रही द्रवता से तरङ्गरूपहो भासता है ; तैसेही चित्तचैत्यके संयोगसे जीव कहाता है । उसजीवमें जब सङ्कल्पकाफुरना होताहै तबमन कहाताहै; जब संकल्प निश्चयरूप होताहै तब बुद्धि होकर स्थित होताहै और जब अहंभाव होताहै तब अहंप्रतिकार कहाता है । उस अहंभावको पाकर तन्मात्रा की कल्पना होतीहै और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सूक्ष्म भूत होते हैं—उनके पीछे जगत् होता है । हे रामजी ! असत्रूपी चित्तके संसरने सेही जगत्रूपहो भासताहै। जैसे नेत्रदूषणसे आकाशमें मुक्तमाला; भ्रममात्रगन्धर्व नगर और स्वप्नभ्रमसे स्वप्न जगत् भासते हैं तैसेही चित्तके संसरने से जगत् भ्रम भासताहै । हे रामजी ! शुद्धआत्मा नित्य, तृप्त, शान्तरूप, सम और अपने आपही में स्थित हैं । उसमें चित्तसंवेदन ने जगत् रचाहै और उस को भ्रम से सत्यकी नाईं देखताहै। जैसे स्वप्नसृष्टिको मनुष्य भ्रमसे देखताहै; तैसेही यह जगत् फुरनेसे सत्य भासताहै । हेरामजी ! मनकेसंसरने का नाम जाग्रतहै; अहंकारकानाम स्वप्ना है; चित्तजो सजातीयरूप चेतनेवाला है उसका नाम सुषुप्ति है और चिन्मात्र कानाम तुरीयपद है । जबशुद्ध चिन्मात्र में अत्यन्त परिणाम हो तब उसका नाम तुर्यातीत पदहै । उसमें स्थित हुआ फिर शोकवान् कदाचित् नहीं होता । उसी ब्रह्म सत्तासे सब उदय होते हैं और उसहीमें सबलीन होते हैं और वास्तवमें न कोई

उपजा है और न कोई लीन होताहै; चित्तके फुरनेसेही सबभ्रमभासता है। जैसे नेत्र दूषणसे आकाशमें मुक्तमाला भासतीहैं तैसेही चित्तके फुरनेसे यह जगत् भासताहै। हे रामजी! जैसेवृक्षके वढ़नेको आकाशठौरदेताहै कि, जितना बीजका सत्ताहो उतनाही आकाशमें बढ़ता जावे तैसेही सबको आत्मा ठौरदेता है। अकर्त्तारूपभी संवेदन से कर्त्ता भासताहै। हेरामजी! जैसे निर्मल कियाहुआ लोहा आरसी कीनाई प्रतिबिंब ग्रहण करताहै तैसेही आत्मामें संवेदन से जगत्का प्रतिबिंब होता है पर वास्तवमें जगत्भी कुछ दूसरी वस्तुनहीं है। जैसे एकही बीज, पत्र, फूल, फल और टास हो भासताहै तैसेही आत्मा संवेदन से नानारूपजगत्हो भासता है। जैसे पत्र और फूल वृक्षसे भिन्ननहीं होते तैसेही अबोधरूप जगत्भी बोधरूप आत्मासे भिन्न नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको अखण्डसत्ताही भासती है। जैसे समुद्रही तरङ्ग और बुद्बुदे होकर और बीजही पत्र,फूल,फल और टास होकर भासतेहैं; तैसेही अज्ञानी को भिन्न २ नामरूपसत्ता भासती है। 'मूर्ख' जो देखता है तो उनके नामरूपसत्मानता है और ज्ञानवान् देखके एकरूपही जानता है। ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही अनन्त भासती है और जगत्भ्रम उनको कोई नहीं भासताहै। इतनासुन रामजीने कहा; बड़ाआश्चर्य है कि; असत्रूपी जगत् सत्होकर बड़ेविस्तारसे स्पष्टभासता है। यह जगत् ब्रह्मका आभासहै; अनेकतन्मात्रा उसके जल और बूँदोंकीनाईं हैं और अविद्याकरके फुरती हैं। ऐसाभी मैंने सुनाहै। हे मुनीश्वर! यह स्फूर्त्ति बहिर्मुख कैसे होतीहै और अन्तर्मुख कैसे होतीहै? वशिष्टजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार दृश्यका अत्यन्त अभावहै। अनहोते दृश्यके फुरनेसे अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्तामें फुरनेसे जो जीवत्व हुआहै वह जीवत्वअसत्है और सत्की नाईं होताहै। जीव ब्रह्मसे अभिन्न है पर फुरनेसे भिन्नकी नाईं स्थित होताहै। उस जीवमें जब संकल्प कलना होती है तब मनरूप होके स्थित होता है; स्मरण करके चित्त होता है, निश्चय करके बुद्धिहोती है और अहंभाव करके अहंकारहोता है। फिर काकतालीकी नाईं चिद्अणुमें तन्मात्रा फुर आतीहैं। जब शब्द सुनने की इच्छाहुई तब श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब देखनेकी इच्छाहुई तबनेत्र इन्द्रिय प्रकटहुई; गंधलेने की इच्छासे नासिका इन्द्रिय प्रकट हुई; स्पर्शकी इच्छासे त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और रसलेनेकी इच्छासे रसना इन्द्रिय प्रकटहुई। इसप्रकार पाँचों इन्द्रियां प्रकट हुई हैं और भावना से सत्ही असत्की नाईं भासनेलगीं। हे रामजी! इसप्रकार आदि जीवहुये हैं और उसकी भावना से अन्तवाहक शरीर हो आये हैं। चलते भासते हैं पर अचलरूपहैं। इससे जो कुछ जगत् भासताहै वह सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न कुछ नहीं। प्रमाता, प्रमाण औरप्रमेय ब्रह्महै और संवेदन ब्रह्म सेही अनेकरूप

नानाप्रकारके भासते हैं। जैसा २ संवेदन फुरताहै तैसा २ रूपहोकर भासता है। जब दृश्यको चेतताहै तब नानाप्रकारका दृश्य भासताहै और जब अन्तर्मुख ब्रह्म चेतताहै तब ब्रह्मरूपहोकर भासताहै । हे रामजी ! दृश्य कुछ उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपमें स्थित है। जब दृश्य असंभव हुआ तब बन्धन और मोक्ष किस को कहिये और विचार किसका कीजिये ? सर्वकल्पनाका अभावहै। यह जो तुम्हारा प्रश्नहै उसका उत्तर सिद्धान्तकाल में होगा यहां न बनेगा । जैसे कमलके फूलोंकी माला अपने कालमें बनती है और विनासमय शोभा नहीं देती तैसेही तुम्हारा प्रश्न सिद्धान्तकालमें शोभापावैगा। समयविना सार्थक शब्दभी निरर्थक होताहै। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं उनका फलभीसमयपाके होताहै; समय विना नहीं होता इससे अब पूर्वप्रसङ्ग सुनो। हे रामजी ! ब्रह्ममें चैत्योन्मुखत्व से आदि जीवने आप को पितामाताजाना। जैसे स्वप्नेमें आपको कोई देखे तैसेही ब्रह्माजीने आपको जाना। उन ब्रह्माने प्रथम 'ॐ' शब्द उच्चारणकिया; उस शब्दतन्मात्रासे चारों वेददेखे और उसके अनन्तर मनोराज से सृष्टिरची । तब असत्रूप सृष्टि भावना से सत्य होकर भासनेलगी। जैसे स्वप्नेमें सर्प और गन्धर्व नगर भासते हैं तैसेही असत्यरूप सृष्टि सत्यभासने लगी। हे रामजी ! ब्रह्मसत्तामें जैसे ब्रह्माआदिक उपजेहैं तैसेही और जीव, कीट आदिभी उत्पन्नहुये। जगत्का कारण संवेदनहै । संवेदन भ्रमसे जीवोंका जगत् भासताहै। उनको भौतिक शरीरमें जो अहंप्रतीति हुईहै उससे अपने निश्चयके अनुसार शक्तिहुई। ब्रह्मामें ब्रह्माकी शक्तिका निश्चयहुआ और चींटीमें चींटीकी शक्तिका निश्चयहुआ। हेरामजी ! जैसी २ वासना संवित्में होतीहै उसके अनुसारही अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्रमें जो चैत्योन्मुखत्व हुआ उसीकानाम जीवहुआ। उसमें जो ज्ञानरूप सत्ताहै सोई पुरुषहै और जो फुरनाहै सोई कर्महै। जैसे जैसे फुरताहै तैसेही तैसे भासताहै। हे रामजी ! आत्मसत्तामें जो अहंहुआहै उसीकानाम चित्तहै। उससे जो जगत् रचाहै वहभी अविचार सिद्धहै; विचार कियेसे नष्ट होजाताहै। जैसे अविचार से अपनी परछाहीं में भूत पिशाच कल्पताहै और उससे भय उत्पन्न होताहै पर विचार कियेसे पिशाच और भय दोनों नष्ट होजातेहैं; तैसेही हेरामजी ! आत्मविचारसे चित्त और जगत् दोनों नष्टहोजातेहैं। हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै; उसमें चित्त कल्पना कोईनहीं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, भी ब्रह्मसे भिन्ननहीं तो द्वैतकी कल्पना कैसेहो ? जैसे ससेके शृंग असत्हैं; तैसे आत्मामें द्वैत कल्पना असत्यहै। हे रामजी ! यह ब्रह्माण्ड भावना मात्रहै। जिस को सत्य भासताहै उसको बन्धनका कारण है। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपना गृह अपने बन्धनका कारण बनातीहै और उसमें फंसमरतीहै;तैसेही

जो जगत्को सत्य मानतेहैं उनको अपना माननाही वन्धन करताहै और उससे जन्ममरण देखतेहैं। जिसको जगत्का असत्य निश्चयहुआहै उसको वन्धन नहीं होता—उसको उल्लासहै। हे रामजी! अनुभवसत्ता सबका अपना आपहै। उसमें जो जैसा निश्चयकिया उसको अपने अनुभवके अनुसार पदार्थ भासतेहैं। वास्तवमें तो जगत् उपजाही नहीं। जगत्का उपजनाभी मिथ्याहै; बढ़ना भी मिथ्याहै; रसभी मिथ्याहै और रसलेनेवालाभी मिथ्याहै। शुद्धब्रह्म सर्वगत, नित्य और अद्वैत सदाअपने आपमें स्थितहै परन्तु अज्ञानसे शुद्धभी अशुद्ध भासताहै; सर्व जगत्भी परिच्छिन्न भासताहै; ब्रह्मभी अब्रह्मभासताहै; नित्यभी अनित्यभासताहै और अद्वैतभी द्वैतसहितभासताहै। हेरामजी! अज्ञानसे ऐसाभासताहै। जैसे जल और तरङ्गमें मूर्ख भेदमानतेहैं परन्तु भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेदअज्ञानी देखतेहैं। जैसे सुवर्णमें भूषण और रस्सीमें सर्प मूर्ख देखतेहैं; तैसेही ब्रह्ममें नानात्व मूर्ख देखते हैं; ज्ञानीको सब चिदाकाश हैं। हे रामजी! जब आत्मसत्तामें अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यताहोतीहै तब कल्पना उत्पन्नहोती है और मनरूप होके स्थितहोतीहै। उसके अनन्तर अहंभावहोताहै और फिरतन्मात्रकी कल्पना होकर शब्दअर्थकी कल्पना होतीहै। इसीप्रकार चिदसत्तामें जैसी जैसी चैत्यता फुरतीहै तैसाही तैसारूप भासने लगताहै। सत्असत् पदार्थ वासनाके वश फुर आतेहैं। जैसे स्वप्न सृष्टिफुर आतीहै सोअनुभव रूपहीहोतीहै तैसेही यहजगत् फुर आयाहै सो अनुभव रूपहै। इससे सृष्टिमेंभी चिन्मात्रहै और चिन्मात्रहीमें सृष्टि है। सबको सत्तारूपी भीतर बाहर ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय सब पद चिन्मात्रहीमें धारेहैं नित्यउपशान्त रूपहै समसत् जगत्की सत्ता उसहीसे होतीहै सो एकही समहै और तुरीया अतीतपद नितहीस्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्योपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५०॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इस प्रसङ्गपर एक पुरातन इतिहासहै और उसमें महा प्रश्नोंका समूहहै सो सुनो। काजलकेपर्व्वतकी नाईं कर्कटीनाम एक महा श्याम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरपर हुई। विशूचिकाभी उसका नामथा। अथिर वीजलीकी नाईं उसके नेत्र और अग्निकी नाईंबड़ी जिह्वाचमत्कारकरतीथी और उसके बड़ेनख और ऊंचाशरीरथा। जैसेबड़वाग्नि तृप्तनहींहोता तैसेही वहभी भोजनसे तृप्ति नहोतीथी। उसके मनमें विचार उपजा कि जम्बूद्वीपके सम्पूर्णजीवोंको भोजनकरूं तो तृप्तहोऊं अन्यथा मेरी तृप्ति नहींहोती। आपदा उद्यमकियेसे दूरहोतीहै इससे मैं अखण्डचित्त होकर तपकरूं। हे रामजी! ऐसाविचार कर वह एकान्त हिमालय पर्वतकी कन्दरामें एक टांगसे स्थितहुई और दोनों भुजाओंको उठाके नेत्र आकाशकी ओरकिये-मानो मेघको पकड़तीहै। शरीर और प्राणोंको स्थितकरके मूर्त्तिकीनाईं होगई। शीत और

उष्णके क्षोभसे रहितहुई और पवनसे शरीर जर्जरीभाव हुआ। जब इसप्रकार सहस्र वर्ष दारुण तपकिया तब ब्रह्माजी आये। और राक्षसीनेउन्हें देखके मनसे नमस्कार किया और मनमें विचारा कि, मेरे वरदेनेके निमित्त यहआयेहैं। तवब्रह्माजीने कहा, हे पुत्री! तूने बड़ातपकिया। अबउठ खड़ीहो और जोकुछ चाहतीहै वहबर मांग। कर्कटी बोली, हे भगवन्! मैं लोहेकी नाईं वज्रशूचिका होऊं जिससे जीवोंके हृदय में प्रवेश करजाऊं। हे रामजी! जब ऐसेउलमूर्ख राक्षसीने वरमांगा तब ब्रह्माजीनेकहा ऐसेहीहो। तेरानामभी प्रसिद्ध विशूचिका होगा। हे राक्षसी! जो दुराचारीजीव होंगे उनकेहृदयमें तू प्राणवायुके मार्गसे प्रवेश करेगी और जो गुणवान्तेरे निवृत्तकरनेकेनिमित्त ॐ मन्त्र पढ़ेंगे और यहपढ़ेंगे कि 'हिमालयके उत्तर शिखरमें कर्कटीनाम राक्षसी विशूचिकाहै सो दूरहो और विशूचिकाका दुःखी चन्द्रमाकेमण्डलमें चितवे कि,अमृतके कुण्डमेंबैठाहै और राक्षसी हिमालयके शिखरकोगई' तब तू उनको त्यागजाना। उनमें तू प्रवेश न करसकेगी। हे रामजी! इसप्रकार कहके ब्रह्माजी आकाशको उड़े और इन्द्र और सिद्धोंके मार्गसे गये और वहीमन्त्र उनकोभीसुनाया। जब उन्होंने उसमन्त्र को प्रसिद्धकिया तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होनेलगा। जैसे सङ्कल्पका पहाड़ सङ्कल्पके क्षीणहुयेसे क्षीणहोजाताहै तैसेही क्रमसेप्रथम जो उसका मेघवत् आकारथा सो घटकर वृक्षवत् होगया। फिर वह पुरुष रूपहोगई; फिरहस्तमात्र; फिर प्रादेशमात्र औरफिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्महोगई। हे रामजी! ऐसे रूपको कर्कटीने धारा जिसको देखमूर्ख अविचारीपुरुष तृणकीनाईं शरीरको त्यागतेहैं। जो पुरुष परस्परकी विचारतेहैंसो पीछेसेकष्टनहींपाते औरजो पूर्वापर विचारसेरहितहैं सो पीछेकष्टपाते हैं और अनर्थकरके औरोंको कष्टदेतेहैं। वे एकपदार्थको केवल भलाजानके उसके निमित्त यत्नकरतेहैं; न धर्मकी ओर देखतेहैं और न सुखकी ओरदेखतेहैं। इसप्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बड़े गम्भीर शरीरको त्यागकर तुच्छशरीरको अङ्गीकारकिया। उसके एकशरीरतो सूक्ष्महुआ और दूसरा पुर्यष्टकहुआ। कहींतो सूक्ष्म शरीरसे जिसको इन्द्रियांभी न ग्रहण करसकें प्रवेशकरे और कहीं पुर्यष्टकसे जा प्रवेशकरे। कहीं प्राणवायुके साथ प्रवेशकरके दुःख दे और कहीं प्राणोंको विपर्ययकरे तब प्राणी कष्ट पावें और कहींरक्त आदिकरसोंका पानकर एकबूंदसे उदर पूर्णहोजावे परन्तु तृष्णा निवृत्त नहो। शरीरसे बाहर निकले तबभी कष्टपावे और वायुचले उससे गढ़े और कीचड़में गिरे और चरणोंकेतले आवे। निदानकभी देशोंमें रहे और कभी घास और तृणोंमें रह जो नीच पापी जीवहैं उनको कष्टदे और जो गुणवान्हों उनको कष्ट न दे सके। मंत्रपढ़ेसे निवृत्तहोजावे। जो आपाकिसीछिद्रमें भी गिरे तो जानेकिमैं बड़े कूपमें गिरी। हे रामजी! मूर्खतासे उसने इतने कष्टपाये। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि,

इसप्रकार जब वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकालका समयहुआ तब सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान कोगई और बिचार संयुक्तरात्रि व्यतीत करके सूर्यकी किरणों के निकलतेही फिरआ स्थित हुई॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविशूचिकाव्यवहारवर्णन न्नामएकपंचाशत्तमस्सर्गः ५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबइस प्रकार प्राणियोंको मारते उसे कुछवर्ष बीते तब उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआकि, बड़ाकष्टहै!बड़ाकष्ट!! यह विशूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्तहुआहै!!! मैंने मूर्खतासे यहवर ब्रह्माजीसे मांगाथा। मूर्खता बड़े दुःखकोप्राप्त करती है! कैसा मेघकी नाई मेराशरीरथा कि, सूर्यादिकको ढांकलेतीथी। हाय मंदराचल पर्वतकी नाई मेरा उदर और बड़वाग्नि की नाई मेरीजीभ कहांगई? जैसेकोई अभागी पुरुष चिन्तामणिको त्यागदे और कांच अङ्गीकार करे तैसेही मैंने बड़ेशरीरको त्यागके तुच्छ शरीर का अङ्गीकार किया जो एक बूंदसेही तृप्त होजाताहै परंतु तृष्णा पूरी नहीं होती। उसशरीरसे मैं निर्भय विचरती थी यह शरीर पृथ्वीकेकणसे भी दबजाताहै। अबतो मैं बड़े कष्टपातीहूं यदि मैं मृतक होजाऊं तो छूटूं; परन्तु मांगीहुई मृत्युभी हाथनहीं आती इससेमैं फिर शरीरके निमित्त तपकरूं। वह कौन पदार्थहै जो उद्यम कियेसे हाथनआवे। हे रामजी! ऐसे विचारकर वह फिर हिमालय पर्वतके निर्ज्जन स्थानवनमें जा एकटांगसे खड़ीहुई और ऊर्द्धमुख करके तप करने लगी। हे रामजी! जब पवन चलेतो उसके मुखमें फल,मांस और जलकेकणकेपड़ेंपरन्तु वहन खाय बल्कि मुखमूंदले। पवन यह दशादेखकेआश्चर्य्यवान् हुआ कि, मैंने सुमेरु आदिकोभी चलायमान कियाहै परन्तु इसका निश्चय चलायमाननहीं होता। निदान मेघकी वर्षासे वह कीचड़ में दबगई परन्तु ज्योंकी त्योंही रही और मेघके बड़े शब्दसे भी चलायमानहुई। हे रामजी! इसप्रकार जब सहस्रवर्ष उसको तप करते बीतेतब दृढ़ वैराग्य से उसका चित्त निर्मलहुआ और सब सङ्कल्पोंके त्यागसे उसको परम पदकी प्राप्तिहुई; बड़े ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ और परब्रह्मका उसको साक्षात्कार हुआ उससे परमपावनरूप होकर चित्तसूची हुई अर्थात् चैतनमें एकत्व भावहुआ। जब उसके तपसे सातोंलोक तपायमान हुये तबइन्द्रनेनारदजीसे प्रश्नकियाकि, ऐसा तप किसने कियाहै जिससे लोकजलने लगे हैं? तब नारदजीने कहा; हे इन्द्र! कर्कटी नाम राक्षसीने सातहजारवर्ष बड़ाकठिन तपकिया। जिससे वह शूचिकाहुई। वह शरीर पा उसनेबहुत कष्टपाया और लोगोंकोभी कष्टदिया जैसे विराट आत्मा और चित्तशक्ति सबमें प्रवेश कर जातीहै तैसेहीवहभी सबकी देहमें प्रवेश करजातीथी। जो मंत्रजाप न करें उनके भीतर प्रवेश करके रक्तमांस भोजन करे परन्तु तृप्त न हो मनमें तृष्णारहे

और सूक्ष्मशरीर धूड़में दवजावे। इसप्रकारउसनेवहुतकष्टपाके विचारकिया कि,उद्यम से सव कुछप्राप्त होताहै इससे पूर्वशरीर के निमित्त फिर एकान्तस्थानमें जाकर तप करूं इतनेमें एकगीध पक्षीवहां आकरकुछ भोजन करनेलगाकि, उसकी चोंचके मार्ग से विशूचिका भीतर चलीगई। जव वहपक्षी कष्टपाके उड़ा तो वहविशूचिका उसकी पुर्यष्टकसे मिलके और उसको प्रेरके हिमालय पर्वतकी ओर इसभांति लेचली जैसे वायुमेघकोलेजाताहै। उस गीधने वहां पहुंचकर वमन करके विशूचिकाको त्यागदिया और आप सुखीहोकर उड़गया। तवउसीशरीरसे विशूचिकावहांतपकरने लगी। हेराम जी! इसप्रकार इन्द्रने सुनकर उसके देखनेके निमित्त पवनचलाया। तव पवन आकाश छोड़के भूतलमें उतरा और लोकालोक पर्वत, स्वर्णकी पृथ्वी, समुद्रों और द्वीपों को लांघके क्रमसे हिमालयके वनमें सूक्ष्म शरीरसे आया और क्यादेखाकि, पवन चलरहाहै और सूर्य्यतपरहे हैं परन्तु वह चलायमान नहींहोती और प्राणवायुकाभी भोजन नहीं करती तवपवन ने भी आश्चर्य्यमानहोकेकहा। हेतपस्विनी! तू किसलिये तपकरतीहै? पर विशूचिका तवभी न वोली। पवनने फिर कहा भगवती विशूचिका ने वड़ातप कियाहै-अव इसको कोई कामना नहीं रही ऐसे कहके पवन उड़ा और क्रमसे इन्द्रके पासगया। इन्द्र विशूचिकाके दर्शनके माहात्म्यसे पवनको कंठलगाय मिले और वड़ा आदर किया कि, तू वड़े पुण्यवान्का दर्शन करके आया है। पवनने भी सव वृत्तान्त कह सुनाया और कहा, हे राजन्! उसके तपके तेजसे हिमालयकी शीतलता दवगईहै। आप व्रह्माजीके पास चलिये नहीं तो उसकेतपसे सवजगत् जलेगा। तवइन्द्र पवन और देवतागणों सहित व्रह्माजीके पास आये और प्रणामकरके वैठे। व्रह्माजीनेकहा तुम्हारी जो अभिलाषाहै वहमैंनेजानी। इसप्रकार इन्द्रसे कहकर व्रह्माजी विशूचिकाकेपास जिसकानाम शूचीथा आये और उसको देखके आश्चर्य्यमानहुयेकि,तृणकी नाईंविशूचिकाने सुमेरुसेभी अधिक धीर्य्य धारणकियाहै जैसेमध्याह्नकासूर्य तेजवान्होताहै तैसेही इसका तपसे तेजहुआहै और परव्रह्ममें स्थितहुई है। अव इसका जगत्भ्रम शांतहोगयाहै इससेवन्दना करनेयोग्यहै। हेरामजी! फिरआकाशमें स्थितहोकर व्रह्माजीने कहा;हेपुत्री! तू अववरले तव विशूचिका विचारकर कहनेलगी कि,जोकुछ जानने योग्यथा सो मैंनेजाना और शांतरूपहुईहूं संपूर्णसंशय मेरे नष्टहुये अव वरसे मुझे क्या प्रयोजन है! यह जगत् अपने सङ्कल्प से उपजा है। जैसे वालकको अपनी परछाहींमें वैताल वुद्धिहोतीहै और उससे भयपाताहै तैसे हीमैं स्वरूपके प्रसादसे भटकतीफिरी। अवइष्ट अनिष्ट जगत्की मुझकोकुछ इच्छानहीं। अवमैं निर्विकारशान्तिमें स्थितहूं। हे रामजी! ऐसे कहकरजव शूची तूष्णी होरही तव वीतराग और प्रसन्नवुद्धि व्रह्माजी उसके भावकोदेखके कहनेलगे;हे कर्क-

टी! तू कुछ वरलेक्योंकि;कुछकाल तुझेभूतलमें विचरनाहै । भोगोंकोभोगके तू विदेह मुक्तहोगी । अवतू जीवनमुक्त होकर विचरेगी । नीतिके निश्चयको कोई नहींलांघसक्ता । जव तू तप करनेलगीथी तवपूर्वदेहके पानेका सङ्कल्पकियाथा । तेरावह सङ्कल्प अव सफलहुआहै । जैसे बीजमें वृक्षका सद्भाव होताहै सो कालपाकर होताहै तैसे ही तेरेमें पूर्वशरीरका जो सङ्कल्पथा सोअव प्राप्तहोवेगा अर्थात् वैसाही शरीरपाके तू हिमालयके वनमें विचरेगी । हेपुत्री ! तुझेतो अनिच्छित योगहुआहै । जैसे कोई छायाके निमित्त आंवकेवृक्षके निकटआन वैठे औरउसे छाया और फलदोनों प्राप्तहों तैसेही तूने शरीरकी वृद्धिकेलिये यत्नकियाथा वह तुझे तृप्ति करनेवालाहुआहै और ब्रह्मतत्त्व भी प्राप्तहुआ । हे पुत्री ! राक्षसी शरीर में जीवन्मुक्त होके तू विचरेगी और दूसरा जन्मतुझको नहोगा।इसजन्ममें तूपरमशान्त रहेगी और शरत्कालकेआकाश की नाईं निर्मलहोगी । जव तेरीवृत्ति वहिर्मुख फुरेगी तव सव जगत् तुझको आत्मरूपभासेगा;व्यवहारमें समाधिरहेगी और समाधिमेंभी समाधिरहेगी । पापीजीवोंको तू भोजनकरेगी; न्यायवान्धव तेरा नामहोगा और विवेकपालक तेरीदेहहोगी । इससे पूर्वके शरीरको अङ्गीकार कर । इतनाकह फिर वशिष्ठजी वोले; हे रामजी ! ऐसेकहकर जव ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तव शूचीने कहा ऐसेही हमको दोनोंतुल्यहैं । तव जैसे वीजसे वृक्षहोताहै तैसेहीक्रम से शरीर वढ़गया । प्रथम प्रादेशमात्रहुआ,फिरहस्तमात्र हुआ;फिर वृक्षमात्रहुआ और फिर योजनमात्र होगया । जैसे सङ्कल्पकवृक्ष एक क्षणमें वढ़जाताहै तैसे उसका शरीर वढ़गया ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेशूचीशरीरलाभोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५२ ॥

वशिष्ठजी वोले,हे रामजी ! जैसे वर्षाकालका वादल सूक्ष्मसे स्थूलहोजाताहै तैसे शूची सूक्ष्मशरीरसे फिरकर्कटी राक्षसीहोगई । जैसे सर्प कंचुकीत्यागके फिर ग्रहण नहींकरता तैसेही राक्षसीने आत्मतत्त्वकेकारण शरीर न ग्रहणकिया।छःमहीनेतक पहाड़के शिखरकी नाईं खड़ीरही और फिर पद्मासन वांध संवित्सत्ता और निर्विकल्पपद में स्थितहुई । जव प्रारव्धकेवेगसे जागी तव वृत्ति वहिर्मुखहुई और क्षुधालगी क्योंकि;शरीरके स्वभाव शरीर पर्यंत रहतेहैं । तव विचारनेलगी कि,जो विवेकीहैं उनका मैं भोजन नकरूंगी; उनके भोजनसे मेरा मरना श्रेष्ठहै परजो न्यायसे भोजन करने योग्यहै उसकोखाऊंगी और जो शरीरभी नष्टहो तौभी न्यायविना भोजन न करूंगी । देहादिक सव सङ्कल्पमात्रहैं;मुझे न मरनेकीइच्छाहै और न जीनेकी।हेरामजी ! जव ऐसे विचारकर शूची तूष्णीहो वैठी और राक्षसी स्वभावका त्यागकिया तव सूर्य भगवान्ने आकाशवाणीसे कहा; हे कर्कटी ! तूजाके मूढ़जीवोंका भोजनकर । जव तू उनकाभोजन करेगी तवउनका कल्याणहोगा।मूढ़ोंका उद्धार करनाभी सन्तोंका स्वभा-

वहै।जो विवेकी पुरुषहैं उनको न खाना और जोतेरे उपदेशसे ज्ञानपावें उनकोभी न मारनाजो उपदेशसेभी बोधात्मानहों उनकाभोजनकरना—यहन्यायहै।तवराक्षसीनेकहा, हेभगवन्! तुमने अनुग्रहकरके जो कहा है वहीमुझसे ब्रह्माजीने भीकहाथा। ऐसेकहकर शूची हिमालयके शिखरसेउतरी और जहां किरातदेशथा और वहुतमृग और पशुरहतेथे उनमेंविचरनेलगी।रात्रिमें श्यामराक्षसी औरश्यामही तमालवृक्षभीमहाअन्धकार भासतेथे—मानों कज्जलका मेघ स्थितभयाहै । ऐसी श्यामतामें किरातीदेशके राजा मंत्री और वीरोंसहित यात्राको निकलेतो उनको आतेदेख राक्षसीने विचारा कि; मुझे भोजनमिला । यहमूढ़ अज्ञानीहैं और इनको देहाभिमानहै;इनमूर्खोंके जीनेसे न यह लोक न परलोक कुछअर्थ सिद्धनहीं होता । ऐसे जीवोंका जीनादुःखके निमित्तहै इसलिये इनको यत्नकरकेभी मारनायोग्यहै और इनकापालना अनर्थके निमित्तहै क्योंकि, यह पापको उदयकरतेहैं । ब्रह्माकीआदि नीतिहै कि,पापीमारने योग्यहैं और गुणवान् मारने योग्यनहीं । कदाचित् येगुणवान्हों तो मैंइन्हेंन मारूंगी । गुणवान्भी दोप्रकार के होतेहैं ।जो अमानी,अदंभी,अहिंसक,शांतिवान् और पुण्यकर्म करनेवालेहैं वे भी गुणवान्हैं पर महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ताहैं जिनके जीनेसे वहुतोंके कार्य्य सिद्धहोते हैं इसलिये जो मेराशरीर भोजन विनानष्टभी होजावे तौभी मैं गुणवान्को न मारूंगी । जो उदार पुरुषहै वह पृथ्वीका चन्द्रमाहै;उसकी संगतिसे स्वर्ग और मोक्षहोताहै । जैसे संजीवनी वूटीसे मृतकभी जीताहै तैसेही सन्तोंके सङ्गसे अमृतहोताहै । इससे मैं प्रश्न करके इनकीपरीक्षालूं; कदाचित् यहभी गुणवान्हों । यह कमलनयन ज्ञानवान् भासतेहैं; यदि यथार्थ ज्ञानवान् पुरुषहैं तो पूजनेयोग्यहैं औरजो मूर्ख हैं तोदण्ड देने योग्यहैं और मैं उनको अवश्य भोजन करूंगी ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३ ॥

वशिष्ठजी वोले;हेरामजी ! तववह राक्षसी उनको देखके मेघकी नाईं गरजनेलगी और कहा;अरे आकाशके चन्द्रमा और सूर्य्य !तुमकौनहो?बुद्धिमान्होअथवा दुर्वुद्धि हो?कहांसेआयेहो और तुम्हारा क्या आचारहै?तुमतोमुझको ग्रासकीनाईं आनप्राप्त हुयेहो इससे अवमैं तुमकोभोजन करूंगी । राजा वोले; अरी! इसभौतिक तुच्छ शरीर को पाकरतू कहांरहतीहै ? हमको देखके जोतू गरजती है सो तेराशब्द हमको भ्रमरोंके शब्दवत् भासताहै; हमको कुछ भयनहीं! हे राक्षसी ! यह शरीरतेरा मायामात्रहै इसलिये इस तुच्छ स्वभावको त्यागके जोकुछ तेरा अर्थहै वहकहहमपूर्णकरदेंगे । तव राक्षसीने उनके डरानेको ग्रीवा और भुजाको उंचेकरके प्रलयकालके मेघोंकीनाईं फिरवड़ा शब्दकिया कि,जिसके नादसे पहाड़भी चूर्ण होजावें।निदान सवदिशा शब्दसे भरगईं और वह बीजलीकी नाईं नेत्रोंको चमकाने लगी।उसकी मूर्त्तिदेख राक्षस और

पिशाचभी शङ्कायमान हों पर ऐसे भयानक स्वरूपको देखके भी उनदोनोंने धीरज रक्खा।मंत्रीनेकहा; अरी राक्षसी ! ऐसे शब्दतू व्यर्थकरतीहै। इससेतोतेरा कुछ प्रयोजन न सिद्ध होगा इसलिये इसआरम्भको त्यागके अपना अर्थकह। बुद्धिमान् पुरुष उस अर्थको ग्रहण करतेहैं जो अपना विषय भूतहोताहै और जो अपना विषय भूत नहींहोता उसकेनिमित्तवेयत्न नहींकरते हमतेरा विषयभूतनहीं तुझऐसेतो हज़ारों हमने मारडाले हैं।हेराक्षसी ! हमारे धीरज रूपी पवनसे तुझ ऐसी अनन्त मक्खियां तृणवत् उड़ती फिरतीहैं।इससे अपने नीचस्वभावको त्याग स्वस्थचित्तहोके जो कुछ तेरा प्रयोजनहो सो कह।बुद्धिवान् स्वस्थचित्त होके व्यवहार करते हैं;स्वस्थहुये विना व्यवहारभी सिद्ध नहीं होता;यह आदिनीति है। हमारे पाससे स्वप्नेमेंभी कोई-अर्थीव्यर्थ नहीं गया। हम सबकाअर्थ पूर्णकरते हैं इसलिये तूभी हमसे अपना प्रयोजनकहदे । तब राक्षसी समझी कि, यह कोई बड़े उदार आत्मा और उज्ज्वल आचारवान् हैं और जीवोंके समाननहीं । यह बड़े प्रकाशवान् और धीरजवान् जानपड़ते हैं उदारता कैसे इनके वचन ज्ञानवानोंसे मिलते हैं । अबमैंने इनको जाना है और इन्होंने मुझको जानाहै इससे मुझसे इनका नाशभी न होगा । अविनाशी पुरुष ब्रह्मसत्तामें स्थितहैं इससे ज्ञानवान् हैं । ऐसानिश्चय ज्ञानविना किसीको नहीं होता परन्तु कदाचित् अज्ञानी हों तो फिर सन्देहको अंगीकार करके पूछतीहूं । जो सन्देहवान् होकर बोधवान्से नहीं पूछते वे भी नीच बुद्धि हैं । हे रामजी ! ऐसेमनमें विचार फिर उसने पूछा;तुम कौनहो और तुम्हारा आचार क्याहै ? निष्पाप महापुरुषोंको देखके मित्रभाव उपज आता है ! मंत्रीबोला; किरातदेशका यह राजाहै और मैं इसका मंत्रीहूं । रात्रिमें तुमसे दुष्टोंके मारनेके निमित्त उठेहैं । रात्रिदिनमें हमारा यही आचार है कि, जो जीव धर्मकी मर्यादा त्यागनेवाले हैं उनका हमनाश करतेहैं । जैसे अग्नि ईंधनका नाशकरताहै । राक्षसीबोली; हे राजन् ! यहतेरा दुष्टमंत्रीहै। जिसराजाका मंत्रीभला नहीं होता वह राजाभी भला नहीं होता और जिसराजाका मंत्री भला होताहै उस की प्रजाभी शान्तिवान् होती है।भला मंत्री वह कहाता है जो राजाको न्याय और विवेकमें लगावे । जो राजा विवेकी होताहै वह शान्तात्मा होता है और जो राजा शान्तिवान् हुआ तब प्रजाभी शान्तिवान् होती है । सब गुणोंसे जो उत्तमगुणहै वह आत्मज्ञानहै।जो आत्मा को जानता है वहीराजा और जिसमें प्रभुता और समदृष्टि हो वही मंत्री है जो प्रभुता और समदृष्टिसे रहितहै वह न राजा है न मंत्रीहै। हे राजन् ! जो तुमआत्मज्ञानवान् पुरुषहोतो तुमकल्याण रूपहो । जो ज्ञानसे रहित होताहै उसको मैं भोजन करतीहूं। तुम्हारे छूटनेका उपाय यही है कि, जो मैं प्रश्नों का समूह पूछतीहूं उसका उत्तर दो । जो तुमने प्रश्नोंका उत्तर दियातो मेरे पूजने

योग्यहो और जो मेरा अर्थ होगा सो कहूंगी तुम पूर्णकरना और जो तुमने प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा भोजन करूंगी ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५४ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार राक्षसी ने कहा तब राजा बोला तू प्रश्नकर हमतुझको उत्तरदेंगे। राक्षसी बोली, हे राजन् ! वह एक कौन अणुहै जिस से अनेक प्रकार हुये हैं और एकके अनेकनामहैं और वह कौन अणुहै जिसमें अनेक ब्रह्माण्ड होतेहैं और लीन होजाते हैं ? जैसे समुद्रमें अनेक बुदबुदे उपजकर लीन होते हैं। वह कौन आकाशहै जो पोलसे रहितहै और वहकौन अणुहै जो न किञ्चित् है न अकिञ्चितहै ? वह कौन अणुहै जिसमें तेरा और मेरा अहंफुरताहै और वह कौन है जो अहंत्वं एकमें जानता है ? वहकौन है जो चला जाता है और कदाचित् नहीं चलता और वह कौनहै जोतिष्ठितभी है और प्रतिष्ठित भी है ? वहकौन है जो पाषाणवत्है और वहकौन है जिसने आकाशमें चित्र किये हैं ? वह कौन अग्निहै जोदाहक शक्तिसे रहित है और अग्निरूपहै और वह अग्नि कौन है जिससे अग्नि उपजी है ? वहकौन अणु है जो सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके प्रकाशसे रहित और अविनाशीहै और वहकौनहै जो नेत्रोंसे देखानहीं जाता और सब प्रकाशोंको उत्पन्न करताहै? वहकौन ज्योतिहै जो फूल,फल और वेलको प्रकाशतीहै और जन्मान्ध कोभी प्रकाशतीहै ? वहकौन अणुहै जो आकाशादिक भूतोंको उपजाताहै और वह कौन अणुहै जो स्वाभाविकप्रकाशमानहै ? वहभण्डार कौन है जिससेब्रह्माण्डरूपी रत्न उपजतेहैं ? वहकौनअणुहै जिसमेंप्रकाश औरतमइकट्ठे रहतेहैं और वहकौन अणुहै जिसमें सत् असत् दोनों इकट्ठे रहतेहैं ? वहकौन अणु है जो दूरहै परन्तु दूरनहीं और वह कौन अणुहै जिसमें सुमेरु आदिक पर्वत भी समाय रहेहैं ? वहकौन अणु है जिसमें निमेषमें कल्प और कल्पमें निमेषहै और वहकौन है जो प्रत्यक्ष और असद्रूपहै ? वहकौनहै जो सत् और अप्रत्यक्ष रूपहै ? वहकौन चैतनहै जो अचैतनहै और वह कौनवायुहै जो अवायु रूपहै ? वहकौनहै जो अशब्द रूपहै और वहकौनहै जो सर्व और निष्किञ्चित्है ? वहकौन अणुहै जिसमें अहंनहीं है? वह कौनहै जिसको अनेक जन्मोंके यत्नसे पाताहै और पाके कहताहै कि,कुछनहींपाया और सबकुछ पाया? वहकौन अणुहै जिसमें सुमेरुआदिक तीनोंभुवन तृणसमानहैं और वहकौन अणुहै जो अनेक योजनोंको पूर्णकरताहै ? वहकौन अणुहै जिसके देखनेसे जगत् फुरआता है और वहकौन अणुहै जो अणुताको त्यागेबिना सुमेरुआदिक स्थूल आकारको प्राप्तहोताहै ? वहकौन अणुहै जो बालका सौवांभाग और सुमेरुसेभी ऊंचाहुआहै ? वहकौन अणुहै जिसमें सबअनुभव स्थितहै और वहकौन अणुहै जो अत्यन्तनिस्वाद

है और आपही सबस्वाद होताहै ? वहकौन अणुहै जिसको अपने ढांपनेकी सामर्थ्य नहीं और सबको ढांपरहाहै और वहकौन अणुहै जिससे सबजीतेहैं ? वहकौन अणु है जिसका अवयव कोईनहीं और सब अवयवको धारण कररहाहै ? वहकौन निमेष है जिसमें बहुतेरे कल्पस्थित हैं ? वहकौन अणुहै जिसमें अनन्त जगत्स्थित हैं जैसे बीजमें वृक्षहोता है ? वह कौन अणु है जिसमें बीजसे आदि फल पर्यन्त अनउदय हुयेभी भासतेहैं ? वह कौनहै जो प्रयोजन और कर्तृत्वसे रहितहै और प्रयोजनवान् और कर्तृत्ववान्की नाईं स्थितहै ? वह कौन द्रष्टाहै जो दृश्यसे मिलकर दृश्यहोताहै और वहकौनहै जो दृश्यके नष्टहुयेभी आपको अखण्ड देखताहै ? वह कौनहै जिसके जानेसे द्रष्टा–दर्शन–दृश्य तीनों लयहोजातेहैं;जैसे सोनेके जानेसे भूषण भाव लीनहोजातेहैं और वहकौनहै जिससे भिन्नकुछनहीं;जैसे जलसे भिन्नतरङ्गों का अभावहै ? वह एकहीकौनहै जो देश,काल,वस्तुके परिच्छेदसे रहित सत् असत् कीनाईं स्थितहै और वहकौन अद्वैतहै जिससे द्वैतभी भिन्ननहीं–जैसे समुद्रसे तरङ्ग भिन्ननहीं ? वहकौन है जिसके देखेसे सत्ता असत्ता सब लीनहोता है और वह कौन है जिसमें भ्रमरूपी अनन्त जगत् स्थित है – जैसेबीजमें वृक्ष होताहै ? वह कौनहै जो सबके भीतरहै-जैसे वृक्षमें बीजहोते हैं और वहकौनहै जो सत्ता असत्ता रूपी आपही हुआहै–जैसे बीज वृक्षरूपहै और वृक्षबीजरूपहै ? वह अणु कौनहै जिसमें तांतभी सुमेरुकी नाईं स्थूल है और जिसके भीतर कोटि ब्रह्माण्डहैं ? हे राजन्! उस अणुको देखाहो तोकहो ! यही मुझको संशयहै इसको तुमअपने मुखसे दूरकरो। जिससे संशय निवृत्त नहो उसको पण्डित न कहनाचाहिये। जो ज्ञानवान् हैं उनको इनप्रश्नोंका उत्तर कहना सुगमहै। इन संशयोंको वह शीघ्रही निवृत्तकर देतेहैं। जो अज्ञानीहैं उनको उत्तरदेना कठिनहै। हे राजन् ! जो तुमने मेरे प्रश्नोंका उत्तरदिया तो तुम मेरे पूजनेयोग्यहो और जो मूर्खतासे प्रश्नोंका उत्तर नदोगे और प्रश्नोंके विपर्य्यय जानोगे तोतुम दोनोंको भोजनकरजाउंगी और फिर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रासकरलूंगी क्योंकि;मूर्ख पापियोंका मारना श्रेष्ठहैकि, आगेको पापकरनेसे छूटेंगे। इतनाकहकर वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! इसप्रकार राक्षसीकहकर और शुद्ध आशयको लेकर तूष्णीहुई और जैसे शरत्कालमें मेघमण्डल निर्मल होता है तैसे निर्मल हुई॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नवर्णनन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ५५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अर्धरात्रि के समय महाशून्य वनमें जबउस राक्षसी ने ये महाप्रश्न किये तब महामन्त्रीने उससे कहा; हे राक्षसी ! ये जो तुमने संशय प्रश्न कियेहैंउनका मैं क्रमसे उत्तर देताहूं। जैसेउन्मत्त हाथीको केसरीसिंह नष्टकरता

है तैसे मैं तेरे संशयोंको निवृत्तकरताहूं। तूने सबप्रश्न परमात्माहीके विषय किये हैं इससे तेरे सबप्रश्नों का एकही प्रश्नहै परन्तु तूने अनेक प्रकारसे किये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं। हे राक्षसी! जो अनामाख्य है अर्थात् सर्व इन्द्रियों का विषयनहीं और अगमहै और मनकी चिन्तनासे रहित है ऐसीसत्ता चिन्मात्र है और उसका आकारभी सूक्ष्महै इसकारण सूक्ष्मकहाताहै। सूक्ष्मतासेही उसकी अणुसंज्ञाहै। उस अणुमें सत्असत्की नाईं जगत्स्थितहै और उसही चिद्अणु में जबकुछ संवेदन फुरता है। वहीसंवेदन सत्य असत्य जगत्की नाईं भासता है इससे उसे चित्तकहते हैं। सृष्टिसे पूर्व उसमें कुछ न था इससे निष्किञ्चन कहाताहै। और इन्द्रियोंका विषय नहीं इससे नकिञ्चित्है। उसी चिद्अणु में सबका आत्माहै इससे वहअनन्तभोक्ता पुरुष किञ्चनहै और उससे कुछ भिन्ननहीं इससे किञ्चननहीं। वही चिद्अणु सबका आत्मा है और एकही अभाससे अनेक रूपभासता है—जैसे सुवर्ण से नानाप्रकारके भूषणभासते हैं। वही चिद्अणु परमाकाशरूपहै जो आकाशसेभी सूक्ष्म और मन वाणीसे अतीतहै। वह सर्वात्माहै शून्य कैसेहो? सत्को जो शून्यकहते हैं वहउन्मत्त हैं क्योंकि; असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता। जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होताहै सोसत्है। वह चिद्अणु पंचकोशोंमें नहींछिपता। जैसे कपूरकीगंधनहींछिपती तैसेही पंचकोश में आत्मा नहीं छिपता अनुभवरूप है। वही चिन्मात्र सर्वरूप से किञ्चित् है और अचेतन चिन्मात्रहै इससे अकिञ्चित् इन्द्रियों से रहित और निर्मल है। उसही चिद्अणु में फुरनेसे अनेक जगत् स्थितहैं। जैसे समुद्र में फुरनेसेतरङ्ग उपजतेहैं और फिरलीन होतेहैं तैसेही चिद्अणुमें फुरनेसे अनेक जगत् उपज के लीनहोते हैं वहमन और इन्द्रियों से अतीत है इससे शून्यकहाताहै और अपने आपहीप्रकाशताहै इससे अशून्यहै। हे राक्षसी! मेरा और तेराअहंएकही आत्माहै। अहंकी अपेक्षासे त्वंहै और त्वंकी अपेक्षा से मैं परिच्छिन्न हूं परन्तु दोनोंका उत्थान एक आत्मतत्त्वसेही है। उसही चिद्अणुके बोधसे ब्रह्मरूप होताहै और उसहीबोध में अहंत्वं सबलीन होतेहैं अथवा सर्व आपही होताहै। त्रिपुटिरूपभी वही है। वही चिद्अणु अनेक योजनोंपर्यन्तजाताहै और कदाचित् चलायमाननहींहोता क्योंकि; संवित् अनन्त रूपहै। योजनों के समूह उसके भीतर हैं वास्तवमें न कोई आता है और न जाताहै, अपने आकाश कोशमें सबदेशकाल स्थितहै। जिसमें सबकुछहो उसकीप्राप्ति वास्तवमें क्याहोय? यह जितना जगत्है वह तो आत्मामेंहै फिर आत्मा कहांजावे? जैसे माताकीगोदमेंपुत्रहो तो फिर वह उसनिमित्त कहांजावे तैसेहीआत्मा में यहजगत् स्थितहै फिर आत्मा कहां जाय; देहकी अपेक्षासे चलता भासताहै वह कदाचित् चलानहीं। जैसे आकाशमें घटादिक स्थितहैं तैसेही चिद्अणुमेंदेशकाल

स्थितहै। जैसेघटएक देशसे देशान्तरको जावेतो घटजाताहै आकाश नहींजातापर घटकी अपेक्षासे आकाशजाता भासताहै वास्तवमें घटाकाश कहीं नहींगया क्योंकि; आकाश में सबदेश स्थितहैं यहकहांजावे; तैसेही आत्माभी जाताहै और नहींजाता। उसही चिन्मात्र परमात्ममें संवेदन आकार रचेहैं और आदि अन्तसे रहित विचित्र रूपी जगत् रचाहै। वहीचिदूअणु अग्निकीनाईं प्रकाशरूपहै और जलानेसे रहित है। ज्ञानअग्निसे प्रकाशमान है; अग्नि भी उससे उपजी है और सर्वगत् वही है। द्रव्योंको पचाताभी वहीहै; प्रलयमें सबभूत उसमेंही लीनहोते हैं और पुष्कलमेघ इकट्ठाहो तोभी उसको आवरणनहीं करसकते। वह सदाप्रकाश और ज्ञानरूप है; आकाशसेभीनिर्मलहै और अग्निभी उससेउत्पन्नहोतीहै। सबकोसत्तादेनेवाला वही है और सूर्यादिकभी उसके प्रकाशसे प्रकाशते हैं वह अनुभवरूपहै और नेत्रों विना भासताहै।ऐसा हृदयरूपीमंदिरकादीपक आत्मा अनंत और परमप्रकाशरूपहै और मन और इन्द्रियोंका विषयनहीं। वहलता, फूल, फल आदिक सबको आत्मत्व से प्रकाशताहै; सबका अनुभवकर्त्ता वहीहै और काल, आकाश, क्रियाआदिक पदार्थोंको सत्ता देनेवालाभी वहीचिदूअणुहै। सबका स्वामीकर्त्ता वही है; सबका पिताभोक्ताभी वहीहै और सदाअकर्त्ता अभोक्ता रूपहै। जैसेस्वप्नेमें कर्त्ताभोक्ताभासताहै पर अकर्त्ताअभोक्ताहै; उससे भिन्ननहीं; इस कारण किञ्चनरूपहै और जगत्को धारण करने वालाहै। स्वरूपसे मातृ, मान, मेय जिससे प्रकाशतेहैं और कुछ उपजानहीं। चिदात्माका किञ्चनहै; किञ्चनसे जगत्की नाईं भासताहै। तूनेजो पूछाथा कि, 'दूर और निकट कौनहै' सो अलखभावसे दूरभीवहीहै और चिद्रूपभावसे निकटभी वहीहै अथवा ज्ञानसे निकटहै और अज्ञानसे दूरसे दूरहै। अज्ञानसे तमरूपहै और ज्ञानसे प्रकाशरूपभी वहीहै और उसही चिदूअणुमें संवेदनसे सुमेरु आदिक स्थितहैं। हे राक्षसी! जोकुछ जगत् भासताहै वह सब संवेदनरूपहै। सुमेरु आदिक पदार्थकुछ उपजेनहीं, चिद्सत्ता ज्योंकीत्यों स्थितहै; उसमें जैसासंवेदन फुरताहै तैसा आकार हो भासताहै। जहां निमेषका संवेदन फुरताहै वहां निमेष कहाताहै और जहां कल्पका संवेदन फुरताहै वहांउसे कल्पकहतेहैं। कल्प, क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषमें फुरआयेहैं। जैसे मनके फुरनेसे बहुत योजनों पर्यन्त पुरुष देख आताहै और जैसे छोटे शीशेमें बड़े विस्तार नगरका प्रतिबिम्ब समाजाताहै तैसेही एक निमेषके फुरनेमें सब जगत् फुरआताहै। एकनिमेषमें कल्प, समुद्र, पुरइत्यादिक अनन्त योजनों काविस्तार चिदूअणुमें स्थितहै और एकदोके क्रमसे रहितहै। हे राक्षसी! इस जगत् का स्वरूप कुछनहीं, संवेदनसे भासताहै; जैसा २ संवेदनमें दृढ़प्रतीत होताहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै। देखकि, क्षणके स्वप्नेमें सत् असत् जगत् फुरआताहै और

वहुत कालका अनुभव होताहै। जो दुःखी होते हैं उनको थोड़े कालमें वहुतकाल भासता और सुखी जनों को वहुतकालमें थोड़ाकाल भासता है । जैसे हरिश्चन्द्रको एक रात्रिमें द्वादश वर्षका अनुभव हुआथा । इससे जितना जितना संवेदन दृढ़ होता है उतने देशकालहो भासते हैं और सत्भी असत्की नाईं भासता है । जैसे सुवर्ण में भूषण बुद्धि होती है तो भूषण भासते हैं और समुद्र में तरङ्गोंकी दृढ़ता से तरङ्ग भिन्न भासते हैं; तैसेही निमेषमें कल्प भासते हैं पर वास्तवमें न निमेष है; न कल्प है; न दूरहै और न निकट है; चिद्अणु आत्माका सव आभासहै। हे राक्षसी! प्रकाश और तम; दूर और निकट सब चैतन संपुटमें रत्नोंकी नाईं है और वास्तव में अनन्यरूप है; भेदाभेद कुछ नहीं । हे राक्षसी ! जवतक दृश्यका सद्भाव दृढ़ होता है तवतक द्रष्टा नहीं भासता–जैसे जबतक भूषण बुद्धि होती है तवतक स्वर्ण नहीं भासता और जव स्वर्ण जानागया तव भूषणबुद्धि नहीं रहती स्वर्णही भासता है; तैसेही जवतक दृश्यका स्पंदभाव होताहै तवतक द्रष्टानहीं भासता और जव आत्मज्ञान होता है तब केवल ब्रह्मसत्ताही निर्मल हो सद्रूप से सर्वत्र भासती है । दुर्लक्षता अर्थात् मन और इंद्रियों के अविषय से असत्रूप कहते हैं; चैत्यतासे उसको चैतन कहते हैं और चैत्यके अभाव से अचैतनरूप कहते हैं अर्थात् चैत्यके अभावसे अचैत्य चिन्मात्र कहतेहैं। चैतन चमत्कार से जगत् की नाईं हो भासता है। हे राक्षसी ! और जगत् उससे कोई नहीं–जैसे वायुका गोला वृक्षाकारहो भासता है और सघनधूप से मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसेही एक अद्वैत चैतनघन चैतन्यता से जगत्की नाईं हो भासता है। जैसे सघन शून्यता से आकाशमें नीलता भासती है तैसेही दृढ़सघन चैतनतासे जगत् भासता है। जैसे सूर्य्यकी सूक्ष्म किरणों का किञ्चन मृगतृष्णाका जल होता है; उस नदी का प्रमाण कुछनहीं तैसेही इस जगत्की आस्था भासती है पर सव आकाशरूप है। जैसे भ्रमसे धूलिके कणमें स्वर्ण की नाईं चमत्कार होताहै तैसेही जगत् कल्पना चित्तके फुरनेसे भासती है। जैसे स्वप्नपुर और गन्धर्व्व नगर आकार सहित भासते हैं सो न सत् हैं न असत् हैं तैसेही यह जगत् दीर्घस्वप्न है; न सत् है और न असत् है। हे राक्षसी ! जव आत्मा में अभ्यासहो तव यह कुण्डादिक ऐसेही रहें और आकाशरूप हो भासें । कुण्डादिकभी आकाश रूप हैं; आकाश और कुण्डादिकों में भेद कुछ नहीं मूढ़ता से भेद भासता है । ज्ञानी को सव चिदाकाश रूप भासता है। हे राक्षसी ! ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त के संवेदन में जैसी कल्पना दृढ़ होरही है तैसेही भासती है और वास्तव में वही चिदाकाश प्रकाशता है। घन चेतनता से वही चिदाकाश आकारोंकी नाईं प्रकाशता है और उसीका यह प्रकाश है। जैसे वीज और वृक्ष अनन्यरूपहैं तैसेही असंख्यरूप

जगत् जो ब्रह्मसत्ता में स्थित है वह अनन्य रूपहै। जैसे बीज में वृक्षका भाव स्थित है सो आकाशरूप है तैसेही ब्रह्ममें जगत् स्थित है सो अक्षोभ रूप है-अन्यभाव को नहीं प्राप्त हुये। ब्रह्मसत्ता सब ओर से शान्तरूप, अज, एक और आदि-मध्य-अन्त से रहितहै। उसमेंएक और द्वैतकी कल्पना नहीं। वह अनउदयही उदयहुआ है और निर्मल स्वप्रकाश आत्मा है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नभेदोनामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ५६॥

वशिष्ठजी बोले; बड़ा आश्चर्य्य है २ कि,मंत्रीने तो यह परमपावन परमार्थवचन कहे और कमलनयन राजाने भी कहा;हे राक्षसी! यह जो जाग्रत जगत्की प्रतीतिहोती है इसका जब अभाव हो तब आत्मप्रतीत होतीहै। जब सब सङ्कल्पकी चैत्यता का नाशहो तब आत्माका साक्षात्कारहो। उस आत्मसत्ता में संवेदन फुरनेसे जगत् भासताहै और संवेदन के सङ्कोचसे सृष्टिका प्रलय होताहै। सबका अधिष्ठानरूप वही आत्मसत्ताहै तिसको वेदान्त वाक्य जतावने के अर्थ कुछ कहते हैं क्योंकि; वाणी से अतीतपद है। हेराक्षसी! यह जो द्रष्टा, दर्शन और दृश्य हैं इसके अन्तर जो अनुभवसत्ता है सो परमात्मा है। वह परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होकर भासताहै। उसीमें यह सब जगत् लीला है; नानात्वभाव से भी वह कुछ खण्डित भावको नहीं प्राप्तहुआ; अखण्डही है। उसी सन्मात्रसत्ताको ब्रह्म कहतेहैं। हे भद्रे! वही चिद्अणु संवेदनसे वायुरूप हुआ है और वायु उसमें अत्यन्त भ्रांतिमात्र है क्योंकि; केवल शुद्ध चिन्मात्र है। जब उसमें शब्दका संवेदन फुरता है तब शब्दरूप हो भासता है और शब्दरूप उसमें भ्रान्तिमात्र है। उसमें शब्द और शब्दका अर्थ देखना दूरसे दूरहै क्योंकि; केवल चिन्मात्र है। उसमें अहंत्वं कुछनहीं। वह निष्किञ्चनहै ऐसे रूप होकर भासताहै क्योंकि; शक्तिरूप है। उसमें जैसी प्रतिभा फुरती है तैसाही होकर भासता है इससे फुरनाहीं इसजगत्का कारणहै। जो अनेक यत्नों से मिलता है सो भी आत्मसत्ता है। जब उसको कोई पाता है तब उसने कुछनहीं पाया और सब कुछ पायाहै। पाया तो इसकारण नहींकि, आगे भी अपना आपथा और सब कुछ इसकारण पाया कि, आत्माकोपायेसे कुछ और पाना नहीं रहता। हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसन्तऋतु में जन्मों की परम्परावेलि तबतक बढ़तीजाती है जब तक इसके काटनेवाला बोधरूपी खड्ग नहीं प्राप्त हुआ। जबबोधरूपी खड्ग प्राप्त होता है तब जन्मरूपी वेलिको काटता है। हे राक्षसी! चिद्अणु संवेदन द्वारा आपको दृश्य में प्रीति करताहै-जैसे किरणों का चमत्कार जलरूप होकर स्थित होताहै-सो शुद्धही आपको संवेदन द्वारा फुरता देखता है। चिद्अणु द्वारा जो जगत् हुआ है सो मेरुसे आदिलेकर तीनों भुवनों में किरणों की नाईं स्थित होता है और वास्तव

में सब मायामात्रहैं भ्रमसे भासते हैं। जैसे स्वप्नेमें रागीको स्वप्न स्त्रीका आलिङ्गन होता है तैसेही यह जगत् मनके फुरने से भासताहै सो भ्रममात्र है । हे राक्षसी ! सर्व शक्तिरूप आत्मामें जैसे सृष्टिका आदि फुरना हुआहै तैसाही रूप होकर भासने लगाहै । और जैसे सङ्कल्प कियाहै तैसेही स्थित हुआ है । इससे सब जगत् सङ्कल्प मात्रहै ।जैसे जिसमें बालक का मन लगताहै तैसाही रूप उसका हो भासता है ; तैसेही संवित्के आश्रय जैसा संवेदन फुरताहै तैसाही रूपहो भासताहै। हे राक्षसी ! चिद्अणु परमाणुसेभी सूक्ष्महै और उसनेही सब जगत्को पूर्णकियाहै और सब जगत् अनन्तरूप आत्माहै उसमें संवेदनसे जगत्की रचनाहुईहै। जैसे नट नायक जैसे जैसे बालकको नेत्रोंसे जताताहै तैसेही तैसे वह नृत्यकरताहै और जब वह ठहर जाता तब यहभी ठहरजाताहै; तैसेही चित्तके अवलोकनसे सुमेरुसे तृण पर्यन्त जगत् नृत्यकरताहै । जैसे चित्तसंवेदन अनन्तशक्ति आत्मा में फुरताहै तैसेही तैसे हो भासताहै । हे राक्षसी ! देश, काल और वस्तुके परिच्छेदसे आत्मसत्ता रहित है, इसकारण सुमेरु आदिकसेभी स्थूलहै;उसके सामने सुमेरु आदिक तृणके समानहैं और बालके अग्रके सहस्रवें भागसेभी सूक्ष्महै। अल्पतासे ऐसासूक्ष्म नहीं जिस में सरसोंका दानाभी सुमेरुवत् स्थूलहै । मायाकीकला बहुत सूक्ष्महै उससेभी चिद्अणु सूक्ष्महै क्योंकि; निर्मायिक पद परमात्माहै । जैसे सुवर्ण और भूषणकी शोभासमान नहीं अर्थात् स्वर्णमें भूषण कल्पितहै समान कैसेहो; तैसेही माया परमात्माके समान नहीं क्योंकि; कल्पितहै । हेराक्षसी ! जैसे कुछ सूर्यआदिक सब अनुभवसे प्रकाशतेहैं इनका सद्भाव कुछ न था उस सत्तासेही इनका प्रकटहोना हुआहै और फिर जर्जरी-भूत होते हैं शुद्ध चिन्मात्र सत्ता प्रकाशरूप है और वह सदा अपने आपमें स्थितहै। उस चिद्अणुके भीतर बाहरप्रकाशहै और यहजो सूर्य,चन्द्रमा,अग्नि आदिक प्रका-शहैं सोतमसे मिलेहुये हैं अर्थात् भेदरूपहैं । ये भी तमरूपहैं क्योंकि; प्रकाशकी अपेक्षा रखते हैं । इनमें इतनाभेदहै कि,प्रकाश शुक्लरूपहै और तमकृष्णरूपहै इस से रङ्गकाभेदहै प्रकाशरूप कोई नहीं । जैसे मेघका कोहिरा श्याम होताहै और बरफ का शुक्ल होता है पर दोनों कुहिरेहैं; तैसेही तम और प्रकाश दोनों तुल्य हैं और आत्मसत्ता दोनोंको प्रकाशती है इससे दोनोंका आश्रयभूत आत्मसत्ताहीहै । हे राक्षसी ! रात्रि, दिन, भीतर, बाहर, नदियां, पहाड़ आदिक सब लोक आत्मसत्ताके प्रकाशसे प्रकाशतेहैं—जैसे कमल और नीलोत्पल दोनोंको सूर्य प्रकाशता है। कमल श्वेत है और नीलोत्पल श्यामहै; जहां श्वेतकमलहै वहां नीलोत्पलका अभाव है और जहां नीलकमलहै तहां श्वेत कमल का अभावहै पर दोनोंका प्रकाशकसूर्य है; तैसेही तम और प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्माहै । जैसे रात्रि और दिन दोनों

सूर्य से सिद्धहोतेहैं तैसेहीतम और प्रकाश दोनों आत्मासे सिद्धहोते हैं। जैसें दिन तब कहाताहै जब सूर्यउदय होताहै और जब सूर्य अस्तंहोताहै तब रात्रिहोतीहै आत्मा तैसेभी नहीं। आत्मप्रकाश सदा उदयरूपहै और उदय अस्तसे रहितभीहै। उसबिना कुछसिद्ध नहीं होता सबका प्रकाशक चिद्अणुही है। हे राक्षसी! उस अणु के भीतर विचित्र अनुभव अणुहै। जैसे वसन्तऋतु के भीतर पत्र, फूल, फल और टास होतेहैं तैसेही चिद्अणुमें सब अनुभव अणुहोतेहैं। जैसे एकबीजसे अनेकवृक्ष क्रमसे होजातेहैं तैसेही एक चिद्अणुसे अनेक अनुभव अणु होते हैं। कई व्यतीतहुये हैं; कई वर्त्तमान हैं और कई होंगे। जैसे समुद्र में तरङ्गहोते हैं सो कोई अब वर्त्तते हैं और कई आगे होंगे; तैसेही आत्मा में तीनों कालकी सृष्टिवर्त्तती है। हे राक्षसी! चिद्अणु आत्मा उदासीन है और आसीनकी नाईं स्थितहोता है। सबका कर्त्ताभीहै और भोक्ताभीहै और स्पर्श किसीसे नहीं किया जाता। जगत् की सत्यता उसीसे उदय होतीहै इसकारण यह सबका कर्त्ताहै और सबका अपना आपहै इससे सबको भोगताहै। वास्तवमें न कुछ उपजाहै और न लीनहोताहै। चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपमें स्थितहै और अखण्ड और सूक्ष्महै इसकारण किसीसे स्पर्शनहीं किया जाता। हे राक्षसी! जोकुछ जगत् दीखताहै वहसब आत्मरूपहै; आत्मा और जगत् में कुछ भेदनहीं। आत्मा और जगत् कहनेमात्रको दोनों नाम हैं वास्तव में एक आत्माही है। आत्माका चमत्कारही जगत्रूप हो भासता है वास्तवमें जगत् कुछ बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आप में स्थितहै और जो कुछ कहनाहै वह उपदेश के निमित्तहै वास्तवमें दूसरी कुछ वस्तु नहीं बनी-तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं। हे राक्षसी! द्रष्टा जबदृश्य पदको प्राप्तहोताहै तब स्वाभाविकही अपने भावको नहीं देखता। जैसे नेत्रजब घटको देखताहै तबघटही भासता है अपना नेत्रत्वभावनहीं दृष्टिआता; तैसेही दृश्यके होते द्रष्टानहीं भासता और जब दृश्य नष्टहोताहै तब द्रष्टाभी अवास्तवहै क्योंकि; द्रष्टाभी दृश्यके सम्बन्धसे कहतेहैं। जब दृश्य नष्ट होजावे तबद्रष्टा किसकाकहिये। दृश्यविषयभूत वहहोताहै जोअदृश्यहै; वह विषयभूतकिसीका नहीं इसकारण उसमें और कोई कल्पनानहीं बनती और यहजगत्भी उसकाही आभासहै। हेराक्षसी! जैसेभोक्ताबिना भोगनहीं होते; तैसेही द्रष्टाबिना दृश्य नहींहोता। जैसे पिताबिना पुत्रनहींहोता; तैसेहीएकबिना द्वैतनहींहोते। हे राक्षसी! द्रष्टाको दृश्य उपजाने की सामर्थ्यहै परन्तु दृश्यको द्रष्टा उपजानेकी सामर्थ्य नहीं क्योंकि; दृश्य जड़है। जैसें सुवर्णसे भूषण बनताहै पर भूषणसे स्वर्ण नहीं बनता; तैसेही द्रष्टासे दृश्यहोताहै; दृश्यसे द्रष्टानहींहोता। हे राक्षसी! सुवर्णमें जैसेभूषण हैं तैसेही द्रष्टामें जो दृश्यहै। वह भ्रमरूपहै-इसीसे जड़रूपहै। जब द्रष्टा दृश्यको देखता

हैं तब दृश्य भासताहै—दृष्टत्वभाव नहीं भासता और जब द्रष्टा अपने स्वभाव में स्थितहोता है तब दृश्य नहीं भासता। जैसे जबतक भूषण बुद्धि होती है तबतक सुवर्ण नहीं भासता—भूषणही भासताहै और जब सुवर्णका ज्ञानहोताहै तब सुवर्णही भासताहै—भूषणनहीं भासता। एक सत्तमें दोनों नहीं सिद्ध होते। जैसे अन्धकारमें किसी पुरुषको देखकर उसमें पशुत्व भ्रमहो तो जबतक पशु बुद्धि होती है तबतक पुरुषका निश्चय नहीं होता और जब निश्चय करके पुरुषजाना तब फिर पशुबुद्धि नहीं रहती; तैसेही जब द्रष्टा दृश्यको देखताहै तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता दृश्यही भासताहै। जैसे रस्सीके ज्ञानसे सर्पका अभाव होजाताहै तैसेही बोधकरके दृश्यका अभाव होताहै तब एकही परमात्मसत्ता भासती है-द्रष्टासंज्ञाभी नहीं रहती। जैसे दूसरेकी अपेक्षा से एक कहाता है और दूसरेके अभावहुये एक एक नहीं कहसक्ते; तैसेही दृश्यके अभावहुये द्रष्टा कहना नहीं रहता केवल शुद्ध संवित्मात्र पद शेष रहता जिसमें वाणीकी गमनहीं। जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशताहै तैसेही द्रष्टा,दर्शन और दृश्यको प्रकाशताहै और बोधसे मातृ, मान और मेय त्रिपुटी लीन होजाती है। जैसे सुवर्णके जाननेसे भूषणकी कल्पनाका अभाव होजाताहै तैसेही ज्ञानसे त्रिपुटीका अभाव होजाताहै केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहताहै। हे राक्षसी! परमअणु जो अत्यन्त निस्वादरूपहै वह सर्व स्वादोंको उपजाताहै। जहां रससहित होताहै वहां चिद्अणु करकेहोताहै। जैसे आदर्शविना प्रतिविम्ब नहींहोता तैसेही सबस्वाद चिद्अणुविना नहींहोते। सबको रस देनेवाला चिद्अणुहीहै। आत्मभावसे सबका अधिष्ठानहै और सूक्ष्मसे सूक्ष्म है इससे निस्वादहै। वह चिद्अणुआपको छिपानहींसक्ता। सब जगत् को उसने ढांपरक्खाहै और आप किसीसे ढांपानहींजाता। वह चिदाकाशरूपहै;सब पदार्थोंको सत्तादेनेवालाहै और सबका आश्रयभूत है। जैसे घासके बनमें हाथीनहीं छिपता तैसेहीआत्मा किसीपदार्थसे नहीं छिपता। हे राक्षसी! जिससे सबपदार्थ सिद्धहोतेहैं और जो सदाप्रकाशरूपहै वहमूर्खोंकोनहीं भासता-यह बड़ा आश्चर्य्यहै। वह सदा अनुभवरूपहै और यह सब जगत् उसहीसे जीताहै। जैसे वसन्तऋतुसे फूल,फल,टास और पत्र फूलतेहैं तैसेही सबजगत् आत्मासे फूलताहै। वही चिदात्मा जगत्रूप होके भासताहै और सर्वात्मभावसे सब उसकेही अवयव हैं। परमार्थ निर-वयव और निराकाररूपहै उसमें कुछ उदय नहींहुआ। हे राक्षसी! एकनिमेष के अबोध से चिद्अणुमें अनेक कल्पोंका अनुभव होताहै। जैसे एक क्षणके स्वप्नेमें पहिले आपको बालक और फिर वृद्ध अवस्था देखने लगता है। उनकल्पों में जो निमेषहै उसमें अनेक कल्प व्यतीत होतेहैं क्योंकि; अधिष्ठान सर्व शक्तिमान् है जैसा संवेदन जहां फुरताहै वैसारूपहो भासताहै। जैसे स्वप्नेमें अभोक्ता को भोक्त-

ल्पका अनुभव होताहै। तैसेही निमेषमें कल्पकाअनुभव होताहै। वासनासे आवेष्टित अभोक्ताही आपको भोक्ता देखताहै। जैसे स्वप्नेमें मनुष्य अपना मरणप्रत्यक्ष देखता है तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। जैसी जहां स्फूर्त्ति दृढ़होतीहै वैसे होकर वहां भासता है। हे राक्षसी! जो कुछ आकारभासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं। जैसे निर्मल आकाशमें नीलता भासती है तैसेही आत्मामें विश्वभासताहै। आत्मा सर्वगत और सबका अनुभवरूपहै। हे राक्षसी! उसमें व्याप्य-व्यापकभाव भी नहीं क्योंकि;सर्व आत्माहै और सर्वरूपभी वही है। जब शुद्धचित्त संवित् में संवेदन फुरताहै तब पृथक् पृथक् भाव चेतताहै। इच्छासे जिसपदार्थकी उपलब्धि होती है उसमें व्याप्य व्यापक भावकी कल्पना होतीहै—वास्तवमें जो इच्छाहै वही पदार्थहै। जैसे जलमेंद्रवताहोतीहै और उससे तरङ्ग,फेन और बुदबुदे होतेहैं सो सबजलरूपहैं, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही इच्छासे उपजे पदार्थ आत्मारूपहैं उससे भिन्ननहीं। आत्मा देश, काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहितहै; केवल शुद्धचिन्मात्र और सर्वरूपहोकर स्थितहुआ है और सबका अनुभवभी उसीमेंहुआहै। वहतो शुद्धसत्तामात्रहै उसमें द्वैत कल्पना कैसे कहिये? हे राक्षसी! जब कुछ द्वैत होता है तब एकभी होताहै; जो द्वैतहीनहीं तो एक कैसे कहिये? जैसे धूपकी अपेक्षासे छायाहै और छायाकी अपेक्षासे धूपहै; तैसेही एककी अपेक्षासे द्वैत कहाताहै। इस कल्पनासे जो रहितहै वही चिन्मात्ररूप है और जगत् भी उससे व्यतिरिक्त नहीं। जैसे जल और द्रवतामें कुछ भेदनहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेदनहीं। हे राक्षसी! नानाप्रकारके आरम्भ उसमें दृष्टि आतेहैं तौभी आत्मसत्ता समहै। हे राक्षसी! जब सम्यक्बोध होताहै तब द्वैतभी अद्वैतरूप भासताहै क्योंकि; अज्ञानसे द्वैत कल्पना होतीहै। वास्तव में द्वैत कुछ नहीं; अज्ञानके अभावसे द्वैतकाभी अभाव होजाताहै ब्रह्म औरजगत्में कुछभेदनहीं। जैसे जल और द्रवता; वायु और स्पन्दता और आकाश और शून्यतामें कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछभेदनहीं। हे राक्षसी! द्वैत और अद्वैत जानना दुःखका कारणहै। द्वैत और अद्वैतकी कल्पनासे रहितहोनेकोही परमपद कहते हैं। द्रष्टारूप जो जगत्है वह चिद् परमाणुमें स्थितहै और उसमें सुमेरु आदिक स्थितहैं। बड़ा आश्चर्य्यहै कि,मायासे चिद् परमाणुमें त्रिलोकियोंकी परम्परा स्थितहैं इसीसे असंभवरूप और मायामय है। जैसे बीजमें वृक्षस्थितहै तैसेही चिद्अणुमें जगत् स्थितहै। जैसे शाखा, पत्र, फूल और फलसे बीज अपना बीजत्व नहीं त्यागता और अखण्ड रहताहै तैसेही चिद्अणुके भीतर जगत्का विस्तारहै और अणुत्वभाव नहीं त्यागता—अखण्डही रहताहै। हे राक्षसी! जैसे बीज परिणामसे वृक्षभाव में प्राप्तहोताहै तैसेही चिद्अणुभी परिणामसे जगत्रूप होताहै। सबचिद्अणुका किंचनरूप है

इससे ऐसे दिखाई देता है; वास्तव में न द्वैत है; न अद्वैत है; न बीजहै-न अंकुर है; न स्थूलहै-न सूक्ष्महै; न कुछ उपजाहै-न नष्टहोताहै;न अस्तिहै-न नास्तिहै; न समहै-न असम है और न जगत्है-न अजगत् है; केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिन्त्य-चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै जैसीजैसी भावनाहोतीहै तैसीही तैसी होभासतीहै। हे राक्षसी ! यह अनउदयही संवेदन के वशसे उदय होकर भासताहै । जैसे बीजसे वृक्ष अनन्यरूप अनेक हो भासताहै तैसेही एकआत्मा अनेकरूप हो भासताहै। न कुछ उदय हुआहै और न मिटताहै । हे राक्षसी ! उस चिद्अणुमें कमलके डंडीकी तांत सुमेरुकीनाई स्थूलहै । जैसे कमलकी डंडीकी तांतसे सुमेरुस्थूलहै तैसेही चिद् अणुसे कमलकी डंडीस्थूलहै और दृश्यरूपहै पर चिद्अणु दृश्य और मन सहित षड् इन्द्रियों का विषयनहीं इस कारण तांतसेभी सूक्ष्महै उस चिद्अणुमें अनन्त सुमेरु आदिक स्थितहैं सो क्यारूपहै;जैसे आकाशमें शून्यताहोतीहै तैसेही आत्मा में जगत्है । हे राक्षसी ! जिसको आत्माका बोधहुआहै उसको जगत् सुषुप्तिकी नाईं भासताहै । वह आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप और परिणामसेरहितहै उसमें मुक्तपुरुष सदा स्थितहै । परमार्थसे जगत्भी ब्रह्मरूपहै भिन्नभाव कुछनहीं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने परमार्थ निरूपणन्नाम सप्त पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५७॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! इसप्रकार राजाकेमुखसेसुनकर कर्कटीने वनकेमर्कटी-रूप जीवोंके मारनेकी चपलता त्यागकी और भीतरसे शीतल होकर विश्रामपाया। जैसे वर्षाकालमें मोरनी प्रसन्नहोतीहै, चन्द्रमाको देखके चन्द्रवंशी कमल प्रफुल्लित होतेहैं और मेघकेशब्दसे बगली गर्भवान् होतीहै तैसेही राजाके वचन सुनके कर्कटी परमानन्द हुई और बोली; बड़ाआश्चर्यहै । बड़ाआश्चर्यहै! । हे राजा ! तुमने महा पावन वचनकहे । इससे मैंने तुम्हारा विमलबोधदेखा और अमृतसार और समरस से पूर्ण,शुद्ध और रागद्वेष आदिकमलसे रहितहै । जैसे पूर्णमाका चन्द्रमा शीतल; अमृतसे पूर्ण और शुद्धहोताहै तैसेही तुम्हारा बोधहै । विवेकी जगत्मेंपूज्यहै । जैसे चन्द्रमाको देखके कमलिनी प्रफुल्लित होतीहै; फूलोंसे मिलके वायु सुगन्धमान्होती है और सूर्यकेउदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लितहोआतेहैं; तैसेही सन्तोंकीसङ्गति से बुद्धि सुखपाती है । हे राजन् ! वह कौन है जो दीपक हाथमें लेकर गढ़ेमें गिरै और वहकौनहै जो दीपक हाथमें लेकर तमदेखै ? तैसेही वह कौनहै जो सन्तोंकी सङ्गतिकरे और दुःखीरहे । सन्तोंकी संगतिसे सभी दुःखनष्टहोतेहैं । हे राजन् ! तुम इसवनमें किसप्रयोजनसे आयेहो ? तुमतो पूजने योग्यहो ! राजाबोले, हे राक्षसी ! मेरे नगरमें जो मनुष्य रहतेहैं उनको एक विशूचिका व्याधिरोग लगाहै और उससे

वे बहुतकष्टपातेहैं। औषधिभी हम बहुतकररहेहैं पर दुःख दूरनहींहोता। हमने सुना है कि, एक राक्षसी जीवोंको कष्ट देतीहै और उसका एक मंत्रभीहै उस मंत्रके पढ़ेसे निवृत्त होजाती है। इसलिये उसतुमसी राक्षसियोंके मारनेके निमित्तमें रात्रिको वीर-यात्रा करने निकलाहूं। जो वह राक्षसी तूही है तो हमारा तेरा सम्वाद भी होचुका है उसको अङ्गीकारकरके प्राणियोंकी हिंसाकरना छोड़ और किसीको कष्टनदे। राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने सत्यकहा। अब मैंने हिंसाधर्म्मका त्यागकिया और अबकिसी जीवको न मारूंगी। राजा बोले, हेराक्षसी! तूनेतो कहा कि, मैं अब किसीजीवको न मारूंगी पर तेरा आहार तो जीवहैं जीवोंको मारेबिना तेरेशरीरका निर्वाह कैसेहोगा? राक्षसी बोली; हे राजन्! हजारवर्ष में समाधिमेंस्थितरही और जब समाधिखुली तब मुझे क्षुधालगी। अब मैं फिर हिमालय पर्वतकी कन्दरामें जाकर निश्चल समाधि में; जैसे मूर्त्तिलिखी होतीहै तैसेही स्थितहूंगी और जब समाधिसे उतरूंगी तब अमृत की धारणामें विश्रामकरूंगी। जब उससे उतरूंगी तब शरीरका त्यागकरूंगी परन्तु हिंसा न करूंगी। हेराजन्! जिसप्रकार मैंने हिंसा धर्मको अंगीकार कियाथा वहसुन। मुझको जबबड़ी क्षुधालगी तब उसके निवारणके अर्थ मैं हिमालय पर्वत के उत्तर शिखरपर वनमेंएक सोनेकी शिलाके पास लोहेके थम्भकी नाईं जीवोंकेनाश के निमित्त तप करनेलगी औरजब बहुत वर्षव्यतीत हुये तब ब्रह्माजीने मनोवांछित वर मुझको दिया। तब मेरे दो शरीरहुये—एक आधारभूत सूर्यकी नाईं और दूसरा पुर्यष्टक और मैं विशूचिका नाम राक्षसी हुई। उसशरीरसे मैं अनेक जीवोंके भीतर जाकर उनको भोजनकरती रही परन्तु ब्रह्माजीने मुझसे कहाथा कि, जो गुणवान् होंगे और जो 'ओं' मंत्रपढ़ेंगे उनपर तेराबल न चलेगा तू निवृत्तहोजावेगी। हेराजन्! उसीमंत्रका उपदेश अब तुमभी अंगीकार करो। उसमंत्रके पाठसे सबके रोगनष्टहोंगे। ब्रह्माजीका जो उपदेशहै उसको तुम नदीके तटपर जाकर और पवित्रहोकर शीघ्रही ग्रहणकरो। उसकेपाठसे तुम्हारी प्रजाका दुःख नष्टहोजावेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार जब अर्द्धरात्रिके समय राक्षसीने कहा तब राजा, मंत्री और राक्षसी तीनों निकट नदीके तीरपर गये और अनन्य व्यतिरेक करके आपस में सुहृद हुये। जब तीनों पवित्र होकर बैठे तब जो मंत्र राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश कियाथा वही मंत्र विशूचिकाने प्रीति संयुक्त राजाको उपदेश किया और वहां से चलने लगी तब राजाने कहा; हे महादेवी! तू हमारी गुरुहै इससे हम कुछ प्रार्थना करतेहैं उसेअङ्गीकार कर। जो महापुरुष हैं उनका सुन्दर सुहृदपना बढ़ता जाताहै और तुम्हारा शरीरभी इच्छाचारी है। इससे मनके हरनेवाले भूषण—वस्त्र संयुक्त स्त्री कासा लघु शरीर धरके कुछ काल हमारे नगरमें निवास करो। राक्षसी बोली;

हेराजन्! मैं तो लघु आकारभी धरूंगी परन्तु तुम मुझे भोजन न देसकोगे। जोलघु स्त्रीका शरीर धरूंगी तोभी मेरास्वभाव राक्षसी का है इसको तृप्तकरना समान जनों की नाईं तो नहीं! जैसा कुछ शरीरका स्वभाव है सो सृष्टि पर्यन्त तैसाहीरहता है—अन्यथा नहीं होता। राजाबोले; हे कल्याणरूपी! तू स्त्री समान शरीरधरके हमारे नगर में चलकर रह: जो चोर पापी मेरे मण्डल में आवेंगे वे हम तुझेदेंगे और तू उन्हें स्त्रीरूप को त्याग करके राक्षसी शरीर से एकान्तठौर लेजाकर अथवा हिमालय की कन्दरा में जाके भोजन करना क्योंकि; वड़े भोजन करनेवाले को एकान्त में खाना सुखरूप है। जब उनको भोजन करके तृप्त होना तब सोरहना; जब निद्रासे जागना तब समाधि में स्थित होना और जब समाधि से उतरना तब फिर हमारे पास आना हम तेरे निमित्त वन्दीजन इकट्ठे कररक्खेंगे उनको लेजाकर भोजन करना। जो धर्म के निमित्त हिंसा है वह हिंसा पापरूप नहीं और जिसकी हिंसा करता है उसका मरणभी नहीं वल्कि उस पर दया है क्योंकि; वह पाप करने से छूटता है। राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने युक्ति सहित वचन कहे हैं इससे मैं स्त्री का शरीर धरके तुम्हारे साथ चलती हूं। युक्तिपूर्वक वचन को सब कोई मानते हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार कहकर राक्षसी ने महासुन्दर स्त्री का शरीर धारण किया और वहुत कंकण आदिक नानाप्रकार के भूषण और वस्त्र पहिनकर राजाके चली। निदान राजा और मंत्री आगे चले और स्त्री पीछे चली। राजा उसको अपनेठाममें लेआया और एकान्तस्थान में तीनों बैठरात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब सौभाग्यवती स्त्रीरूप राक्षसी राजाके अन्तःपुर में जा बैठी और जो कुछ स्त्रियों का व्यवहार है वह करतीरही और राजा और मंत्री अपने व्यवहारमें लगे। इसीप्रकार जब छःदिन व्यतीतहुये तब राजाके मण्डलमें जो तीनसहस्र चोर बँधेहुये थे उन्हेंसबको उसने कर्कटी को देदिया और उसने राक्षसी का शरीर धारके उनको भजा मण्डल में ले जैसे मेघ बूंदोंको धारता है; हिमालय के शिखरको चली। जैसे किसी दरिद्रीको सुवर्ण पानेसे प्रसन्नता होतीहै तैसे वह प्रसन्नहुई और वहां जा तृप्त होके भोजनकिया और सुखीहोके सोरही। दोदिन पर्यन्त सोईरही उसके उपरान्त जागके पांचवर्ष पर्यन्त समाधि में लगीरही और जब समाधि खुली तब फिर राजाके पास आई। इसीप्रकार जब वहआवे तब राजा उसकीपूजाकरे और जितनेदुष्टजन इकट्ठे कियेहों उसकोदेदे। वह उन्हें लेजाकर हिमालय की कन्दरामें भोजन करके फिरध्यान मेंलगे और जब ध्यानसे उतरे तब फिर वहांआवे और फिर लेजावे। हे रामजी! इसीप्रकार जीवन्मुक्त होकर वहराक्षसी प्रकृत स्वभावको करतीरही और अनेक वर्ष

व्यतीतहुये तब राजाविदेह मुक्तहुआ। फिर जोकोई उस मण्डल का राजाहो उससे भी राक्षसी की सुहृदताहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीसुहृदतावर्णनंनामअष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५८

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! निदान जब राक्षसी आवे तब किरात देशका राजा पूर्व कीनाईं उसकी पूजा करे और जो कुछ विशूचिका अथवा दूसरा कोई रोग उनकी प्रजा में हो उसे वह राक्षसी निवृत्तकरदे। इसी प्रकार अनेकवर्ष व्यतीत हुये। एकबारउस को ध्यानमें लगे बहुत वर्ष व्यतीत होगये तब किरात देशके राजाने दुःखकेनिवृत्तके लिये ऊंचेस्थानपर उसकी प्रतिमा स्थापनकी और उसप्रतिमाका एकनाम कन्दरादेवी और दूसरानाम मङ्गलादेवी रक्खा। उसका ध्यानकरके सब पूजा करनेलगे और उसी से उसकाकार्य्य सिद्ध होनेलगा। हे रामजी! उस प्रतिमा में उसदेवीने आप निवास किया। जो कोई जिसफलके निमित्त उस प्रतिमाकी पूजाकरे उसका कार्य्यसिद्धहो और न पूजे तो दुःखित हो। इससे जो कोई कुछ कार्य्य करने लगे वह प्रथम मंगलादेवी की पूजाकरे तो उनका कार्य सिद्ध होवे और जो विधिकरके उसकी पूजाकरे उससे वह बहुत प्रसन्नहो। हे रामजी! अब तक वह प्रतिमा किरात देशमें स्थितहै। जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोई सेवाकरता है तैसा तैसा फलउसको वह देतीहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसूच्याख्यानसमाप्ति
वर्णनंनामएकोनषष्टितमस्सर्गः ५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह आनन्दित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व हुआ है तैसेही मैंने तुमसे कहा है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! राक्षसी का कृष्णवपु किस निमित्त था और कर्कटी इसका नाम क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह राक्षसों के कुलकी कन्या थी राक्षसोंका वपु शुक्ल भी होताहै; कृष्ण भी होताहै, और रक्त, पीत आदि भी होता है। हे रामजी! कर्कटी नाम एक जलजन्तु भी होता है और उसका श्याम आकारहोताहै; उसीके समान कर्कट नाम एक राक्षस था उसके समान उस की यह पुत्री हुई; इसकारण इसका नाम कर्कटी हुआ। हे रामजी! यहां कर्कटी का और कुछ प्रयोजन न था; अध्यात्मप्रसंग और शुद्ध चेतनके निरूपणके निमित्तमैंने तुमसे यह व्याख्यान कहाहै। यह आश्चर्य है कि, असत्‌रूप जगत् के पदार्थ सत्‌रूप होकर भासते हैं और जो आत्मसत्ता सदासम्पन्नरूप है वह अविद्यमानकी नाईं भासता है। हे रामजी! वास्तव में तो एक अनादि, अनन्त और परम कारण आत्म-सत्ता स्थितहै; भावनाकेवशसे उसमें जगत्‌रूप भासता है और अनन्य रूपहै। जैसे जल और तरङ्गमें कुछ भिन्नता नहींहोती तैसेही ब्रह्म और जगत्‌में कुछ भिन्नतानहीं। आत्मामें जगत् कुछ द्वैतरूप नहींहुआ आत्मसत्ता सदा अपने आपही में स्थित है

और उसमें जैसा जैसा चित्तस्पन्द दृढ़ होताहै तैसाही तैसारूप होकर भासता है। जैसे बानर रेतको इकट्ठा करके उसमें अग्निकी भावना करतेहैं और तापतेहैं तो उन का शीत उसी से निवृत्त होताहै तैसेही सम, स्थिर और शान्तरूप आत्मा में जब जगत्की भावना फुरती है तब नाना प्रकार का भासता है! जैसे थम्भेमें पुतलियां अनउदयही शिल्पी के मनमें उदयकी नाईं भासती हैं तैसेही भावनाके वशसे आत्माही जगत्हो भासताहै। जैसे बीजमें पत्र, फूल, टहनी और वृक्ष अनन्यरूप होते हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् अनन्यरूप है। जैसेबीज और वृक्षमें कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; अविचार से भेद भासता है और बिचार कियेसे जगत् भेदनष्ट होजाताहै। हे रामजी! अब यह विचार न करना कि, कैसे उपजाहै; कहांसे आया है और कबका हुआहै? जैसेहुआ तैसेहुआ अब इसकी निवृत्तिका उपाय करना चाहिये। जबतुम यह जानोगे तब हृदय की चिद्जड़ ग्रंथि टूट जावेगी। शब्द और अर्थकी जोकुछकल्पना उठतीहै सो मेरे वचनों और स्वरूपमें स्थितभये से नष्टहोजावेगी। हेरामजी! यहसब जगत् अनर्थरूप चित्तसे उपजा है और मेरेवचनों के सुनने से शान्त होजावेगा। इसमें संशय नहीं कि, सबजगत् ब्रह्मसे उपजाहै और सबब्रह्मस्वरूपही है परजबतुम ज्ञानमें जागोगे तब ज्योंका त्योंही जानोगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो जिससे होताहै वह उससे व्यतिरेक होताहै; जैसे कुलालसे घट भिन्नरूपहोताहै; तो आपकैसेकहते हैं कि; सबजगत् ब्रह्मसे उपजाहै और ब्रह्मस्वरूपहीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मसेही उपजाहै। जितने कुछ प्रतियोगी शब्द शास्त्रोंने कहे हैं सोदृश्यमें हैं। शास्त्रने उपदेश जताने के निमित्तकहे हैं वास्तवमें यह शब्द कोई नहीं। जैसे किसीबालकको परछाहींमें बैताल भासताहै तो पूछते हैं कि, किसभाग में स्थित होकर बैतालने भयदियाहै और वह कहताहै कि, अमुकठौर में बैताल ने भयदियाहै सो वह व्यवहारके निमित्त कहताहै पर बैतालतो वहां कोईभी नथा; तैसेही आत्मा में उपदेशके निमित्त भेद कल्पना करीहै वास्तवमें उसमें द्वैत कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! ब्रह्मसे जगत् हुआहै यह अर्थ केवल व्यतिरेक में नहीं होता। कुलालजो दण्डसे घट उपजाता है सो व्यतिरेकके अर्थहै। स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थहै और ये अभिन्न रूपभी होते हैं। जैसे अवयवीके अवयव हैं; सुवर्ण से भूषण हुयेहैं और मृत्तिकासेघटहुये हैं तैसेही यहअभिन्न और अवयवीकोस्वरूपहै। जैसेभूषण स्वर्णरूपहै और घटमृत्तिकारूपहै तैसेहीब्रह्मसे उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है। वास्तवमें भिन्न-अभिन्न; कारण-परिणाम; भाव-विकार; अविद्या और विद्या; सुख-दुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानसे उठतीहैं। हेरामजी! अबोधसे भेदकल्पना होतीहै और ज्ञानसे सब कल्पना शान्त होजातीहैं। केवल अशब्दपद

शेषरहता है। जबतुम ज्ञानयोग होगे तबऐसे जानोगे कि, आदि–मध्य–अन्तसे रहित; अविभाग और अखण्डरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। अज्ञान से अथवा जिज्ञासीको उपदेशके निमित्त द्वैतवादकल्पनाहै; बोधहुयेसे द्वैतभेदकुछ नहीं रहता। हे रामजी! वाच्य–वाचक भाव द्वैतबिना सिद्धनहीं होता। जबबोध होताहै तब वाच्य का मौन होताहै। इससे महावाक्यके अर्थमें निष्ठाकरो औरजो कुछभेद कल्पना मनने रचीहै उसकी निवृत्तिके अर्थ मेरे वचनसुनो। हे रामजी! यहमनऐसे उपजा है जैसे गंधर्व नगर होताहै और उसीने जगत्की रचनाकीहै मैंने जैसे देखाहै तैसे तुमसे दृष्टान्तमें कहता हूं; जिसके जानेसे सब जगत् तुमको भ्रांतिमात्र भासेगा। वह निश्चय धारणकरके तुम जगत्की वासना दूरसे त्यागदोगे और बोधसे सबजगत् तुमको मन का मननरूप भासेगा। तबतुम आत्मरूप होकर अपने आपमें निवास करोगेअर्थात् जगत् की कल्पना त्यागकरके अपने स्वभावसत्तामें स्थितहोगे। इसलिये इसको साव-धान होकर सुनो। हे रामजी! यहमनरूपी बड़ारोगहै इसलिये विवेकरूपी औषधि से उसकोशान्त करना चाहिये। सबजगत् चित्तकी कल्पनाहै। वह वास्तवमेंशरीर आदिक कुछनहीं। जैसे रेतसे तेल नहीं निकलता; तैसेही जगत्से वास्तवमें कुछनहीं निकल-ता–चित्तद्वारा भासताहै। वह चित्तरूपी संसार स्वप्नेकी नाईं है औररागद्वेष आदि-कसंकल्पोंसेयुक्तहै। उससे रहित होताहै वही संसार समुद्रके पारजाताहै। इसलिये शुभ गुणोंसे चित्तकी शुद्धताकरो। जो विवेकीहैं वेशुभकार्यकरतेहैं अशुभनहींकरतेहैं और आहार व्यवहारभी विचारके करते हैं। उन्हीं आर्योंकी नाईं तुमभी शास्त्रोंके अनुसार सचेष्टा करो। जब तुमको ऐसा अभ्यास होगा तब तुम शीघ्रही ज्ञानवान्होगे और ज्ञानकेप्राप्तहुयेसे सब कल्पना मिटजावेंगी और आत्मस्थितिहोगी। चित्तने सब जगत् रूपी चित्र मनमेंही रचेहैं। जैसे मोरका अण्डा कालपाकर अनेक रङ्गधारण करता है तैसेही मन अनेक प्रकारके जगत् धारण करताहै। वह मन जड़ और अजड़रूप है। उसमें जो चेतन भागहै वह सब अर्थोंका बीजरूपहै अर्थात् सबका उपादानहै और जड़भाग जगत् रूपहै। हे रामजी! सर्गके आदिमें पृथ्वी आदिक तत्त्व न थे। जैसे स्वप्न में जगत् विद्यमानकी नाईं भासताहै तैसेही ब्रह्माने विद्यमानकी नाईं उस को देखा। जड़ संवेदन से पहाड़ आदिक जगत् देखा और चेतन संवेदनसे जङ्गम-रूप देखा। वह सब जगत् दीर्घ वेदनाहै। वास्तवमें देहादिक सब शून्यरूपहैं और आत्मामें व्यापे हुये हैं। आत्माका कोई शरीर नहीं। अपने से जो दृश्यरूप मनचेता है वही आत्मा का शरीरहै। वह आत्मा विस्तरण रूपहै और निर्मल स्थितहै और मन उसका आभासरूप है। जैसे सूर्य्यकी किरणोंसे जलाभासहोता है तैसेही आत्मा का आभास मन है। वह मनरूपी बालक अज्ञानसे जगत्रूपी पिशाचको देखताहै

और ज्ञानसे परमात्मपद शान्तरूप निरामयको देखता है। हेरामजी! जब आत्मा चैत्यताको प्राप्तहोताहै तब वहीचित्तरूप दृश्य एकब्रह्मको द्वैत देखताहै। उसकी निवृत्ति केलिये मैं तुमसे एककथाकहताहूं गुरूकेवचन जो दृष्टान्तसहित होतेहैं और वाणीभी मधुर और स्पष्टहोतीहै तो श्रोताकेहृदयमें वह अरोक्ष जैसे जलमें तेलकीबूंद फैलजातीहै तैसेही, फैलजातेहैं और जो दृष्टान्तसे रहितहोते और अर्थ स्पष्टनहीं होता तो वह क्षोभसंयुक्त वचन कहाताहै और अक्षर पूर्णनहीं होते; इसलिये वे वचन श्रोताके हृदयमें नहीं ठहरते और उपदेष्टाके निष्फलहोजातेहैं। मैं तुमसे एक आख्यान नानाप्रकारके दृष्टांतों सहित, मधुरवाणी में स्पष्ट करके कहताहूं। जैसे चन्द्रमाकी किरणें अपने गृहपर उदय हों और मन्दिर शीतलहोजावे तैसेही मेरे स्पष्टवचन और प्रकाशरूप अर्थ सुनेसे तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जावेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनअंकुरोत्पत्तिकथनन्नामषष्टितमस्सर्गः ६०॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! पूर्व जो मुझसे ब्रह्माजीने सर्गका वृत्तान्त कहाहै वह में तुमसे कहताहूं। एकसमय मैंने ब्रह्माजी के पासजाकर पूछा कि, हेभगवन्! ये जगत्गण कहांसे आये और कैसे उत्पन्नहुये? तब पितामहजीने मुझसे इन्दु ब्राह्मणका आख्यान इसभांतिकहा वे बोले;हेमुनीश्वर! यह सबजगत् मनसे उपजाहै और मनसेही भासताहै। जैसे जलमें द्रवताके कारण नानाप्रकार के तरङ्ग और चक्र फुरतेहैं तैसेही मनके फुरनेसे सब जगत् फुरते हैं और मनरूपहीहैं। हेमुनीश्वर! पूर्व कल्पमें मैंने एकवृत्तान्त देखाहै उसेसुनो। एक समय जब दिनका क्षयहुआ तबमैंसम्पूर्ण सृष्टिको संहार करके एकाग्रभावहो रात्रिको स्वस्थभाव होकररहा जबमेरी रात्रि व्यतीतहुई और मैं जागा तबमैंने उठकर विधिसंयुक्त सन्ध्यादिक कर्म्मकिये और बड़े आकाशकीओर देखाकि,तम और प्रकाशसेरहित;शून्यरूप और इतरसेरहितव्यापित हैं। चिदाकाशमेंचित्तको मिलाके जबमैंने सर्गके उपजानेका सङ्कल्प चित्तमें धारणकिया तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाश में सृष्टि दृष्टि आई। वह सृष्टि मुझे बड़े विस्तार सहित औरपरस्पर अदृष्टरूप दृष्टआईहै और हरसृष्टिमें-ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र-तीनों देवताभी थे। देवता, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य; सुमेरु, मन्दराचल, कैलाश, हिमालय आदिक पर्वत; पृथ्वी, नदियां, सातोसमुद्रादिक सब सृष्टिके विस्तार हैं। वे दशसृष्टि हैं। उनमें जो दश ब्रह्मादेखे वे मानों मेरेही प्रतिबिम्ब कमल से उत्पन्नहुये हैं और राजहंसके ऊपर आरूढ़ हैं। उनकी भिन्नभिन्न सृष्टि है। उनमें नदी के बड़े प्रवाह चलतेहैं; वायु आकाशमें चलताहै; सूर्य्य और चन्द्रमा उदय होतेहैं; देवता स्वर्गमें क्रीड़ाकरते हैं; मनुष्य पृथ्वीमें फिरते हैं; दैत्य और नाग पातालमें भोग भोगते हैं और कालचक्र फिरताहै। बारह मास उसकी बारह कीलेंहैं और बसन्तादिक

षटऋतु हैं। वासना के अनुसार शुभाशुभ आचारकरके लोग नरक स्वर्ग भोगते हैं और मोक्ष फल पाते हैं। हर सृष्टिमें सप्तद्वीप हैं; उत्पत्ति और प्रलय कल्प होतेहैं और गङ्गाजी का प्रवाह जगत् के गलेमें यज्ञोपवीत है। कहीं ऐसे सृष्टि स्थित है; कहीं सदा प्रकाश रहता है और कहीं अहंकारसे स्थावर–जङ्गम प्रजा हैं। बिजली की नाईं सृष्टि उपजती और मिटजाती है। जैसे वृक्ष के पत्र उपजते हैं और नष्ट होजाते हैं वैसेही और गन्धर्व नगरवत् सृष्टिदेखी। एकएक ब्रह्माण्डमें स्थावर जङ्गम ऐसीप्रजा देखी जैसे गूलरके फलमें अनेकमच्छर होतेहैं। आत्मामें कालकाभी अभावहै। क्षण, लव, दिन, मास और वर्षोंकाप्रवाह चलाजाता है। हे मुनीश्वर! अन्तवाहक दृष्टि से मैंने उन सृष्टियों को देखा। जब मैं चर्मदृष्टिसे देखूं तब कुछ न भासै और दिव्य दृष्टि से देखूं तो सब कुछ भासै। चिरकाल पर्य्यन्त में यह चरित्र देखतारहा कि, कदाचित् चित्तभ्रम हो तो स्पष्ट हो भासै। तब एक सृष्टि के सूर्य्य को देखके मैंने आवाहन किया और जब वह मेरे निकटआया तो मैंने उससे कहा; हे देव देवेशभास्कर! तुम कुशलसे तो हो? ऐसे कहकर मैंने फिर कहा कि; हे सूर्य्य! तुमकौनहो और यह सृष्टि कहां से उपजी है? यह एक जगत् है व ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हो कहो? तब वह सूर्य्यभी जो त्रिकाल ज्ञानं रखताथा मुझको जानके प्रणामकर आनन्दित वाणी से बोला; हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके आपही नित्य कारण होते हैं। आपतो सब जानतेही हैं तो मुझसेक्यों पूछते हैं? यदिलीला के अर्थ पूछते हो। तो जैसे वृत्तान्तहुआ है तैसे मैं आपके सन्मुख निवेदन करताहूं। हे भगवन्! यह जो सत् असत्रूपी नानाप्रकारों के व्यवहारों संयुक्त जगत् भासता है वह सबमनके फुरनेमें स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेआदित्यसमागमनन्नामएकषष्टितमस्सर्गः ६१॥

भानुबोले; हे भगवन्! आपका जो कल्पकादिन व्यतीतभया है उसमें जो जम्बूद्वीप था उसके एक कोने में कैलाश पर्वतथा और उसकी कन्दरामें सुवर्णज्येष्ठ नाम आप का एक पुत्र रहता था। उसने वहां एक कुटी रची जिसमें साधुजन निवास करतेथे इंदुनाम ब्राह्मण वेदका वेत्ता शांतरूप कश्यपऋषिके कुलमें उत्पन्न हो स्त्री सहित उस कुटी में जाके निवासकिया और उस स्त्रीसे प्राणोंकीनाईं स्नेहकरता था। जैसे मरुथलमें घास नहीं उपजती तैसेही उससे सन्तान न उपजे। और जैसे शरद्कालकीबेलि बहुतसुन्दर होतीहै परन्तुफलसे शून्यहोतीहै तैसेही वह स्त्रीथी। तब दोनों स्त्रीपुरुष पुत्रकेनिमित्त कैलाशके निकट निर्जनस्थान और कुंजमें एक वृक्षकेऊपर चढ़बैठे और तप करनेलगे। कुछ दिनतक वे केवल जलपानकर भोजन कुछ न करें और रात्रि दिन व्यतीतकरें। फिर कुछ समयतक एकही अंजुली जल पानकरने लगे

और फिर उसकाभी त्यागकर और फुरनेसे रहित हो वृक्षकी नाईं बैठेरहे। निदानजब उनको तप करते त्रेता और द्वापरयुग बीते तब शशिकलाधारी भवानीशंकर तुष्टमान होकर आये और क्यादेखा कि, स्त्री पुरुष दोनों वृक्षपर बैठेहैं। तब उन्होंने शिवजी को देखके प्रणामकिया तो जैसे दिनकी तपनसे सकुचीहुई चन्द्रमुखी कमलिनीचन्द्रमाके उदयहुये प्रफुल्लित होआतीहै तैसेही महाहिमकी नाईं शिवजीको देखकर वे प्रफुल्लित हुये—मानो आकाश और पृथ्वी दोनों रूपधरके आनखड़ेहुयेहैं। ऐसे भवानी शंकरने उसब्राह्मणसेकहा; हे ब्राह्मण! मैं तुझपर तुष्टहुआ; जो कुछ तुझको वांछित वरहै सो तू मांग। हे ब्रह्माजी! जब ऐसे शिवजीने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकर कहने लगा; हे भगवन्! देवदेवेश! मेरे गृह में दशपुत्र बड़े बुद्धिमान् और कल्याणमूर्त्तिहों जिससे मुझको फिर शोक कदाचित् न हो। तब ईश्वरने कहा ऐसेही होगा। ऐसे कहकर जब शिवजी समुद्रके तरङ्गवत् अन्तर्द्धानहुये तब वे स्त्री पुरुष दोनों शिवके चरणोंको ग्रहणकरके प्रसन्न हुये और जैसे सदाशिव और भवानी की मूर्त्ति है तैसेही प्रसन्न होकर वे अपने गृहमें आये। निदान ब्राह्मणी गर्भवान्हुई और समयपाके उसके दश पुत्र हुये। जैसे द्वितीयाकेचन्द्रमाकी शोभाहोतीहै तैसेही उसकीशोभाहुई और षोडशवर्षके आकारकीनाईं ब्राह्मणीका आकाररहा वृद्ध न हुई।वे बालक दशों संस्कारोंको ले उपजे और जैसे वर्षाकालकीवदली थोड़ीभी शीघ्रवड़ीहो जाती है तैसेही वे थोड़ेही कालमें वड़े होगये। जब सातवर्षोंकेहुये तब वे सब वाणी के वेत्ताहुये और उनके माता और पिता दोनों शरीर त्याग के अपनी गतिमें प्राप्त हुये। वे दशो ब्राह्मण माता पितासे रहित हो गृहको त्यागके कैलाश के शिखरपर जाचढ़े और परस्पर विचार करने लगे कि, वहकौन ईश्वर है जो परमेश्वररूप है और वहकौन ईश्वरपदहै जिसके पायेसे फिर दुःखीभी न हो और नाशभी न हो और सबकाईश्वर हो। तब एक भाईने कहा कि, सबसे बड़ा ऐश्वर्य्य मण्डलेश्वरका है। क्योंकि सबपर उसकी आज्ञा चलती है। दूसरे भाईने कहा कि, मण्डलेश्वर की विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; वहभी राजाके आधीनहोताहै; इससे राजाका पद बड़ाहै। तीसरेने कहा राजाकी विभूतिभीकुछनहीं क्योंकि;राजा चक्रवर्त्तीकेआधीन होताहै।इसलिये चक्रवर्त्तीका पदबड़ा है चौथेने कहा चक्रवर्त्तीभी कुछनहीं क्योंकि, वह भी यमके आधीन होताहै, इससे यमका पद बड़ाहै। पांचवेंने कहा कि, इन्द्रके आगे यमकीविभूति कुछनहीं इससे इन्द्रका पदबड़ाहै। छठेने कहा कि, इन्द्रकी विभूतिभी कुछ नहीं ब्रह्माके एक मुहूर्त्तमें इन्द्र नष्ट होजाताहै। तब सबसे बड़ेभाईने जो बड़ा बुद्धिमान्था गंभीर वचनसे कहा कि, जो कुछ विभूतिहै सो सबब्रह्माके कल्पमें नष्ट होजातीहै—इससेबड़ा ऐश्वर्य ब्रह्माजीकाहै—उससे बड़ा और कोईनहीं। हेभगवन्! इसप्रकार जब बड़ेभाईने

कहा तब सबनेकहा भलीकही! भलीकही!! फिर सबने बड़ेभाईसे कहा, हेतात! जो सबकादुःख नाशकर्त्ता और जगत्पूज्य ब्रह्मपदहै तो उसको हम कैसे प्राप्तहों? जिस उपायसे हम प्राप्तहों वह उपायकहो। उसने कहा, हे भाइयो! और सबभावनाओंको त्यागकरो और यह निश्चय करो कि, हम ब्रह्माहैं और पद्मासन पर बैठेहैं। सब सृष्टिके कर्त्ता और सबकी पालना और संहारकर्त्ता हमहीं हैं और जो कुछ जगत्जालहै उस का आश्रयभूत हमनहीं। सबसृष्टि हमारे अंगमें स्थितहै। जबहम ऐसा निश्चय और सजाति भावनाधरके बैठेंगे तब हमको ब्रह्माका पद प्राप्तहोगा। हे भगवन्! जब इसप्रकार बड़ेभाईने कहा तब छोटे भाइयोंने कहा, हेतात! तुमनेयथार्थ कहा है जैसे तुमने कहाहै तैसेही हमकरतेहैं। ऐसाकहकर सब ध्यानमें स्थितहुये और जैसे कागजपर मूर्त्तिलिखी होतीहै तैसेहीदशो ध्यानमें स्थितहुये। मनमें हरएकने यही चिन्तवनकिया कि, मैं ब्रह्माहूं;कमल मेराआसनहै, मैं सृष्टिकर्त्ता और भोक्ताहूं और महेश्वर भी मैंहीहूं। सांगोपांग जगत् कर्म्म मैंनेही रचे हैं; सरस्वती और गायत्री सहित वेद मेरे आगे आखड़े हैं और इसलोकपाल और सिद्धों के मण्डलों को पालनेवाला भी मैंहीहूं। स्वर्ग्ग, भूमि, पाताल, पहाड़, नदियां और समुद्र सब मैंनेही रचे हैं और महाबाहु वज्रके धारनेवाला और यज्ञोंका भोक्ता इन्द्र मैंनेही रचा है। सूर्य मेरेही आज्ञासे तपताहै और जगत् की मर्यादाके निमित्त सबलोकपाल मैंनेही रचेहैं। जैसे गौको गोपाल पालताहै तैसेही लोकपाल मेरी आज्ञा पाकर जीवोंको पालतेहैं और जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसेही जगत् मुझसे उपजाहै और फिर मुझमेंही लीनहोताहै। क्षण, दिन, मास, वर्ष, युग आदिक काल मेरेही रचेहुये हैं और मैंनेही सब कालके नामरक्खे हैं। मैंही दिनको उत्पन्न करताहूं और रात्रिकोलीन करलेताहूं;सदा आत्मपदमें स्थितहूं और पूर्ण परमेश्वर मैंहीहूं। हे ब्रह्माजी! इसप्रकार वे दशोभाई भावना धारणकर बैठेरहे—मानो कागज पर मूर्त्ति लिख छोड़ी है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐंदवसमाधिवर्णननामद्विषष्टितमस्सर्ग्गः ६२॥

भानुबोले; हेभगवन्! इसप्रकार इन्द्रके दशोपुत्र पितामहकी भावना धारणकरके बैठे और जैसे जेठ-आषाढ़ में कमलके पत्र सूखकर गिरपड़ते हैं तैसेही उनकी देह धूप और पवनसे सूखकर गिरपड़ी। तब वनचर उनके शरीरों को आपसमें खैंचकर भक्षण करगये। जैसे वानर फल पकड़ते हैं और विदारण करते हैं तैसेही इनके देह वे विदारने लगे तौभी उनकी वृत्ति ध्यानसे छूटकेबाह्य देहादिक अभ्यासमें न आई· ब्रह्माकी भावनामेंही लगी रही। इसप्रकार जब चारों युग का अन्त हुआ और तुम्हारे कल्प दिनकाक्षय होने लगा तब द्वादशसूर्यतपने लगे; पुष्कलमेघ गरज के

वर्षनेलगे; बड़ाभौचाल आया;वायु चलनेलगा;समुद्र उछलनेलगे; सबजलही जल होगया और सबभूत क्षयहोगये। जब सबको संहारकरके रात्रिको वे आत्मपद में स्थितहुये तब उनके शरीरभी नष्टहोगये और पुर्यष्टक आकाश में आकाशरूप होके ब्रह्माके संकल्पको लेकर तीव्र भावनाके बशसे दशोंसृष्टि सहित भिन्नभिन्न अपनी अपनी सृष्टिके दश ब्रह्माहुये। फिर जागकर देखते हैं कि, आकाश में फुरते हैं। हे भगवन्! उन दशों ब्राह्मणोंके चित्त आकाशमेंही सब सृष्टि स्थितहैं। उन दशसृष्टियों मेंसे एक सृष्टिका सूर्यमें हूं। आकाशमें मेरा मन्दिरहै और क्षण,दिन,पक्ष, मासऔर युग मुझहीसे होतेहैं–इसक्रियामें मुझको उन्होंने लगायाहै। हे भगवन्! इसप्रकार मैंने आपसे दशों ब्रह्मा और उनकी दशों सृष्टिकहीं वे सृष्टिसब मनोमात्र हैं। अब जैसी आपकी इच्छाहो तैसी कीजिये। भिन्न भिन्न जगत्जाल कल्पना जो इन्द्रजाल की नाईं विस्तृत हुई हैं वे चित्तके भ्रमसे भासती हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगत्रचनानिर्वाणवर्णनन्नामत्रिषष्टितमस्सर्गः६३॥

इतना कहकर ब्रह्मावोले;हेब्राह्मण! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इसप्रकार ब्रह्माकेसूर्य ब्रह्मासे कहकर जब तूष्णीहुये तब उसके वचनोंको विचारकर मैंने कहा; हे भानु! तुमने सृष्टिदश कहीं अबमैं क्यारचूं? यहतो दशसृष्टिहुईहैंऔर दशही ब्रह्माहैं अब मेरेरचनेसे क्या सिद्धहोगा? हे मुनीश्वर! जब इसप्रकार मैंनेकहा तब सूर्य विचार करबोले; हेप्रभो! आपतो निरिच्छित हैं, आपको सृष्टिरचने में कुछ इच्छानहीं सृष्टिका रचना आपको विनोदमात्रहै किसी कामनाके निमित्त नहीं रचते। आप निष्कामरूप हैं। जैसे जल में सूर्यका प्रतिविम्ब होताहै और जलविना प्रतिविम्ब की कल्पना नहीं होती तैसेही संवेदन करके आपसे सृष्टिकी रचना होतीहै। अज्ञानी को आप सृष्टिकर्त्ता भासते हैं पर आपतो सदा ज्योंकेत्यों निष्क्रियरूपहैं। हे भगवन्! आपको शरीरआदिक की प्राप्तिऔर त्यागमें कुछ द्वेषनहीं और उत्पत्ति और संहार की आपको कल्पना नहीं-लीलामात्र आपसे सृष्टिहोती है। जैसे सूर्यसे दिनहोता है और सूर्यके अस्तहोनेसे दिनलय होजाताहै पर सूर्य असंसक्त रूपहैं तैसेही आपमें संवेदन के फुरनेसे सृष्टिहोती है और संवेदनके अस्फुर हुये सृष्टिका लय होताहै पर आपसदा आसक्त हैं। जगत्की रचना आपका नित्यकर्म है और उसकर्म के त्याग कियेसे आपको कुछ अपूर्ववस्तुभी नहीं प्राप्त होती इससे जो कुछ आपका नित्य कर्महै उसेकीजिये। हे जगत्पति! जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिविम्ब अङ्गीकार करता है तैसेही महापुरुष यथाप्राप्त कर्मको असंसक्तहोकर अङ्गीकार करते हैं। जैसे ज्ञानवान्को कर्मकरने में कुछ प्रयोजन नहीं तैसेही उसको करने में और न करनेमें कुछ प्रयोजन नहीं; करना न करना दोनों उसको सम हैं। इसकारण दोनोंमें

आपसुषुप्ति रूप हैं। हे भगवन्! आपतो सदा सुषुप्तिरूप हैं और उत्थान किसी प्रकार नहीं। इससे आप सुषुप्ति प्रबोध होकर अपने प्रकृत आचार कीजिये। जो इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंकी सृष्टि देखो तबभी विरुद्ध कुछ नहीं। जो ज्ञानदृष्टि से देखो तो एकही अद्वैत ब्रह्महै और कुछनहीं बना और जोचित् दृष्टिसे देखो तो संकल्परूप अनेकसृष्टि फुरतीहैं। उनमें आस्था करनी क्याहै। जो चर्मदृष्टिसे देखोतो आपको सृष्टि भासतीही नहीं। उनके साथ आपको क्या है; उनकी सृष्टि उनहीं के चित्तमें स्थित है और उनकी सृष्टि आपनाश भी न करसकोगे क्योंकि जो इन्द्रियों से कर्म होताहै वह नाश होसक्ता है परन्तुमनके निश्चयको कोई नाशनहीं करसक्ता। हेभगवन्! जो निश्चय जिसके चित्तमें दृढ़होगया है उसको वही निवृत्तकरे तो निवृत्तहोता है और कोई निवृत्त नहीं करसक्ता। देह नष्टहो परन्तु निश्चयनहीं नष्टहोता। जो चिरकालका निश्चय दृढ़होरहाहै उसका स्वरूपसे नाशनहीं होता। हे भगवन्! जोमनमें दृढ़निश्चय होरहाहै वही पुरुषका रूपहै; उसका निश्चय और किसीसे नहीं होता। जैसे जल सींचनेसे पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही चित्तका निश्चय और से चलायमान नहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐंद्रवनिश्चयकथनन्नामचतुःषष्टितमस्सर्गः ६४॥

भानु बोले; हे देवेश! इसपर एकपूर्व इतिहासहै वह आप सुनिये। इन्द्रद्युम्न नाम एकराजा था और उसकी कमलनयनी अहल्या रानी थी। उसके नगर में इन्द्रनामक एकब्राह्मण का पुत्र बहुत सुन्दर और बलवान् रहता था। एक समय उस रानीने पूर्व की अहल्या गौतमकी स्त्री और इन्द्रकी कथा सुनी तब एक सहेलीने कहा; हेरानी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसेही तुमभी हो और जैसा वह इन्द्र सुन्दरथा तैसेही तुम्हारे नगरमें भी एकइन्द्रब्राह्मणहै। हे भगवन्! जबइसप्रकार रानीनेसुना तब उसइन्द्रमें रानीका अनुरागहुआ परन्तु वहरानीको न मिले और रानीकाशरीर इसीकारण दिन परादिनसूखताजावे। निदान राजानेसुना कि, इसको गरमीका कुछरोगहै इसकारण उसकी निवृत्तिके लिये केलेकेपत्र और शीतलऔषध उसको दिलवाये परन्तु उसको वांछित पदार्थ कोईदृष्टि न आये और खाना, पीना, शय्यादिक जोकुछ इन्द्रियोंके वांछित पदार्थहैं वह उसको कोई सुखरूप नभासे। वह दिनदिनपीतवर्णहोतीजावे और इन्द्र के वियोगसे जैसेजल विना मछली मरुस्थलमें तड़फे तैसेवहतड़फती रहे और कहे हा इन्द्र! हा इन्द्र! निदान जब उसने लोकलाज त्यागदी और इन्द्रमें उसका बहुतस्नेह बढ़गया तब विचारकर एकसखीने कहा, हे रानी! मैं इन्द्रब्राह्मणको ले आतीहूं। यह [illegible] रानी सावधान हुई और जैसे चन्द्रमाको देखके कमलनी खिलआतीहै तैसे वह [illegible]आई! वहसखी रानीसेकहके ब्राह्मणके घरगई और उसइन्द्रको प्रबोधकरके

रात्रिके समय अहल्याकेपास लेआई । जब वह गोप्यस्थानमें इकट्ठेहुये तो परस्पर लीला करनेलगे और दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहसे बँधगया और बहुत प्रसन्नहुये। जैसे चकवी-चकवे और रति और कामदेवका स्नेह होताहै तैसेही उनका स्नेहहुआ और एक दूसरे बिना एकक्षणभी रहनसकें। निदान सबक्रिया उनकी निवृत्त होगई और लज्जा भी दूरहोगई । जैसे चन्द्रमाको देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्नहों तैसेही एक दूसरे को देखके वे प्रसन्न होवें। हे भगवन्! उसरानीका भर्त्ताभी बड़ा गुणवान् था परन्तु रानीने भर्त्ताका त्याग किया और इन्द्रसे उसका स्नेह किया। जब राजाने उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनातो उनको दण्डदेने लगा परन्तु उनको कुछ खेद न हो और जब कीचड़ में डालें तब कमलकी नाई ऊपरही रहें कुछ कष्ट न हो। फिर जब बरफमें उनको डाला तौभी खेदवान् न हुये। तब राजानेकहा, हे दुर्मतियो! तुमको दुःख क्यों नहीं होता ? उन्होंने कहा हमको दुःख कैसेहो; हमतो अपनेआप को भी नहीं जानते ? तब अहल्या ने कहा मुझको सब इन्द्रही भासता है; भिन्नदुःख क्या हो ? इन्द्रने कहा मुझको सब अहल्याही भासती है भिन्न दुःख कहां हो ? तेरे दण्डदेने से हमको कुछ दुःख नहीं होता हम परस्पर हर्षवान्हैं । तब राजाने उनको बांधकर अग्नि में डालदिया तौभी वह न जले और फिर हाथी के चरणोंतले डलवा दियेगये तौभी उनको कुछकष्ट न हुआ। तब राजाने कहा, रे पापियो! तुमको अग्नि आदिकमें दुःख क्यों नहीं होता ? तब इन्द्रने कहा; हे राजन्! जो कुछ जगत्जाल है वह मनमें स्थित है। जैसा मन है तैसा पुरुषरूप है । जैसा निश्चय मनमें दृढ़ होता है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता । चाहे कोई हमको दण्डदे परन्तु हमको कुछ दुःख न होगा क्योंकि, हमारे हृदयमें परस्पर प्रतिभा होरही है। जो कोईअनिष्ट हमको हो तो दुःखभी हो; हमको अनिष्ट तो कोई नहीं तब दुःख कैसेहो ? हे राजन्! जो कुछ मनमें दृढ़ीभूत होता है वही भासता है उसका निश्चय कोई दूरनहीं कर सक्ता। शरीर नष्ट होजाताहै परन्तु मनका निश्चय नाशनहींहोता हे राजन्! जो मन में तीव्र संवेग होताहै सो वर और शापसेभी दूरनहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वतको मन्द मन्द वायु नहीं चलासक्ता तैसेही मनके निश्चयको कोई नहीं चलासक्ता। मेरे हृदयमें इसकी मूर्त्ति स्थिरीभूतहै और इसके हृदयमें मेरी मूर्त्ति स्थिरीभूतहै। इसको सबजगत् मैंहीं भासताहूं और मुझको सबजगत् यहीभासतीहै। जो कुछ दूसरा भासे तो दुःखभी हो। जैसे लोहेके कोटमें कोई दुःखनहीं देसक्ता तैसेही मुझको कोईदुःख नहीं मैं जहां जाताहूं वहां सबओरसे अहल्याही भासती है। जैसे ज्येष्ठआषाढ़ की वर्षामें पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही हमको दुःखनहीं होता। हे राजन्! मन-काही नाम अहल्या और इन्द्रहै और मनहीने सबजगत् रचाहै। जैसा जैसा मनमें

दृढ़ निश्चय होताहै तैसाही भासताहै और सुमेरुकीनाईं स्थिरहोजाताहै कदापि नष्टनहीं होता। जैसे पत्र, फल, फूल और टहनीकेकाटेसे वृक्षनहींनष्ट होता; जब बीजही नष्टहो तब वृक्ष नष्टहोताहै तैसेही शरीर के नष्ट हुयेसे मनका निश्चय नहीं नष्ट होता। जब मनका निश्चयही उलटपड़े तबहीं दूर होताहै। एक शरीर जब नष्ट होताहै तब जीव और शरीर धरलेता है। जैसे सुपनेमें यह शरीर रहताहै और २ शरीरधरके चेष्टा करताहै तो शरीर के ही आधीन हुआ; तैसेही शरीर के नष्ट हुये मनका निश्चय दूर नहीं होता। जब मन नष्ट होता है तब शरीरके होते भी कुछ क्रिया सिद्ध नहीं होती। इससे सबका बीज मनही है। जैसे पत्र, टहनी, फल और फूलका कारण जलहै; तैसेही सब पदार्थोंका कारण मनहै। जैसा चित्तहै तैसा रूप पुरुषका है। इससे जहां मेरा चित्त जाताहै वहां सबओर से रानीही भासतीहै। मुझको दुःख कैसे हो?

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेकृत्रिमइन्द्रवाक्यंनामपंचषष्टितमस्सर्गः ६५॥

भानुबोले; हे भगवन्! इसप्रकार जब इंद्र ब्राह्मणनेकहा तब कमलनयन राजाने भरत नाम ऋषीश्वरसे जो समीप बैठेथे कहा, हे सर्वधर्मोंकेवेत्ता भरत मुनीश्वर! तुम देखो कि यह कैसा ढीठ पापात्मा है। जैसा इनका पापहै उसके अनुसार इनकोशाप दो कि, यह मरजावें। जो मारने योग्य न हों और उसको राजा मारे तो उसको पाप होताहै; तैसेही पापीके न मारनेसे भी पापहोताहै। इससे इन पापियोंको शापदो कि, यह नष्ट होजावें। भरतमुनि ने उनका पाप विचार के कहा, अरे पापियो! तुम मरजावो तब उस इन्द्र ब्राह्मणनेकहा, रे दुष्टो! तुमने जो शाप दिया उससे हमारा क्या होगा? केवल हमारा शरीर नष्ट होगा मन तो नष्ट होनेका नहीं। तुम चाहे लाख यत्नकरो उस मनसे हम और शरीर धारण करेंगे—हमारे मनके नष्ट हुये विना विपर्यय दशा न होगी। ऐसाकहकर दोनों पृथ्वीपर इसभांति गिरपड़े जैसे मूलके काटेसे वृक्ष गिर पड़ताहै और वासना संयोग से दोनों मृग हुये वहां भी परस्पर स्नेहमें रहे और फिर उसजन्मको भी त्यागकर पक्षीहुये। कुछदिनके पश्चात् उन्होंने उसदेहको भी त्यागकिया और अब हमारीसृष्टिमें तपकर्त्ता पुण्यवान् ब्राह्मण और ब्राह्मणीहुये हैं। इससे तुमदेखो कि, भरतमुनिने शापदिया तो उनकेशरीर नष्टहुये परन्तु मनका जो कुछ निश्चय था सो नष्ट न हुआ। वे जहां शरीर पावें वहां दोनों इकट्ठेही अकृत्रिम प्रेमवान् रहें और किसीसे आनन्दमान न हों॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअहल्यानुरागसमाप्तिवर्णन
नामषट्षष्टितमस्सर्गः ६६॥

भानुबोले; हेनाथ! आप देखें कि, जैसा मनका निश्चय होताहै उसके अनुसार

आगे भासताहै। इन्द्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोई दूरनहीं करसक्ता। हे जगत्‌केपति ! मनही जगत्‌का कर्त्ता और मनही पुरुषहै। मनका किया सबकुछ होता है और शरीरका किया कोईकार्यनहीं होता। जो मनमें दृढ़ निश्चय होताहै वह किसी औषधिसे दूरनहीं होता। जैसे मणिमें प्रतिबिम्ब मणिके उठायेबिना नहींदूरहोता तैसेही मनका निश्चयभी किसी औरसे दूरनहीं होता जब मनही उलटे तबहींदूरहो। इसीसे कहाहै कि, अनेक सृष्टि के भ्रम चित्त में स्थित हैं। इससे, हे ब्रह्माजी !आप भी चिदाकाशमें सृष्टिरचो। हेनाथ ! तीन आकाशहैं – एक भूताकाश;दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश। येतीनों अनन्तहैं;इनका अन्त कहीं नहीं। भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय स्थितहै और चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रयहै। भूताकाश और चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाश के आश्रय प्रकाशितहैं। इससे चिदाकाश के आश्रय जितनी आपकी इच्छाहो उतनी सृष्टि आपभी रचिये। चिदाकाश अनन्त रूप है। इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंने आपका क्यालियाहै ? अपना नित्य कर्म आपभी कीजिये ! ब्रह्माबोले; हे वशिष्ठजी ! इस प्रकार जब सूर्यने मुझसे कहा तो मैंने विचार करके कहा; हे भानु ! तुमनेयुक्त वचनकहेहैं कि; एकभूताकाशहै; दूसरा चित्ताकाशहै और तीसरा चिदाकाश है। वे तीनों अनन्त हैं परन्तु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाश के आश्रय फुरतेहैं। इससे हमभी अपने नित्यकर्म करते हैं और जोकुछ मैं तुमको कहताहूं वहतुमभी मानो। मेरीसृष्टिके तुम मनु प्रजापति हो और जैसी तुम्हारी इच्छाहो तैसेरचो। सूर्यने मेरी आज्ञामानके अपने दो शरीर किये–एकतो पूर्वके सूर्यसे उससृष्टिका सूर्य हुआ और दूसरा शरीर स्वायम्भुवमनुका किया। और मेरीआज्ञाके अनुसार उसने सृष्टिरची। इससे मैंने तुमसे कहाहै कि, यह जगत् सबमनका रचाहुआहै। जोमनमें दृढ़निश्चयहोताहै वहीसफलहोताहै। जैसे इन्द्र ब्राह्मणकी सृष्टिहुई। हे मुनीश्वर ! देहकेनष्टहुये भी मनका निश्चय दूर नहीं होता;चित्तमें फिरभी वही भासआताहै। वह चित्त आत्माका किंचनरूपहै। जैसे उस में स्फूर्त्तिहोतीहै तैसेही होकरभासताहै। प्रथम जो शुद्ध संवित्‌रूपमें उत्थान हुआहै वह अन्तवाहक शरीरहै और फिरजो उसमें दृढ़ अभ्यास और स्वरूपका प्रमादहुआ तो अधिभौतिक शरीरहुये औरजब अधिभौतिकका अभिमानीहुआ तबउसका नामजीव हुआ। देहाभिमानसे नाना प्रकारकी वासना होतीहै और उनके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकताहै। जब फिर आत्माका बोधहोताहै तब देहसे आदिलेकर दृश्यशान्त होजाताहै। हे मुनीश्वर ! यहसब दृश्यभ्रमसे भासताहै;वास्तवमें न कोई उपजाहै और न कोई जगत्‌है। यहसब भ्रम चित्तने रचाहै उसके अनुसार घटीयंत्र की नाईं भटकताहै। जब फिर आत्माका बोध होताहै तब देहसे आदिले सब

प्रपंच शान्त होजाते हैं। हे मुनीश्वर! जोकुछ दृश्य भासता है वह मनसे भासताहै। वास्तव में न कोई मायाहै और न कोई जगत् है—यहसब भ्रम भासता है। हे वशिष्ठजी! और द्वैत कुछनहीं; चित्तके फुरनेसेही अहं त्वं आदिकभ्रम भासते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र मन के निश्चय से ब्रह्मारूप होगये तैसेही मैं ब्रह्मा हूं। शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती है वही ब्रह्मारूप होकर स्थित है और शुद्ध आत्मामें जो चैत्यता होती है वही मनरूपहै। उस मनके संयोगसे चेतनको जीव कहते हैं। जब इसमें जीवत्वहोता है तब अपनी देह देखता है और फिर नानाप्रकार के जगत् भ्रम देखता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रोंको सृष्टिभासी और जैसे भ्रमसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा और रस्सीमें सर्प भासताहै तैसेही जगत् सत्यभी नहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष देखनेसे सत्य भासता है और नाशभाव से असत्यहै और वहसब मनमें फुरताहै। मनके दोरूपहैं—एकजड़ और दूसरा चेतन। जड़रूप मनका दृश्यरूप है और चेतनरूप ब्रह्महै। जब दृश्यकीओर फुरताहै तब दृश्यरूप होताहै और जब चेतनभावकी ओर स्थितहोताहै तब जैसे सुवर्णके जानेसे भूषण-भाव नष्ट होजाता है तैसेही दृश्यरूप जड़भाव नष्ट होजाताहै। जब जड़भावमें फुरताहै तब नानाप्रकारके जगत् देखताहै। वास्तवमें ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबही चेतन-रूपहैं। जड़ उसको कहना चाहिये जिसमें चित्तका अभाव हो। जैसे लकड़ी में चित्त नहीं भासता और प्राणधारियोंमें चित्त भासताहै परन्तु स्वरूपमें दोनों तुल्य हैं क्योंकि; सर्व परमात्म द्वारा प्रकाशते हैं। हे वशिष्ठजी; सब चेतन स्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न हों तो क्यों भासें। चेतनतासे उपलब्धरूप होते हैं। जड़ और चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्ममें नहीं पायाजाता; प्रमाददोष से है वास्तवमें नहीं। जैसे स्वप्ने में जो दो प्रकार के जड़ और चेतनभूत भासते हैं उनका प्रमाद होता है तब उस चेतन-भूत प्राणीको जड़ चेतन विभाग भासता है और स्वरूपदर्शी को सब एक स्वरूप हैं। हे मुनीश्वर! ब्रह्ममें जो चैत्यताहुई वही मन हुआ उस मनमें जो चेतनभाग है वही ब्रह्मा है और जड़भाग अबोध है। जब अबोधभाव होता है तब दृश्यभ्रम देख-ताहै और जब चेतनभाव में स्थितहोजाता है तब शुद्धरूप होता है। हे मुनीश्वर! चेतनमात्र में अहंकार का उत्थान दृश्य है और परमार्थ में कुछभेद नहीं। जैसे तरङ्ग जल से भिन्ननहीं तैसेही अहं चेतनमात्रसे भिन्न नहीं होता। सब की प्रतीत ब्रह्महीमें होती है वह परमपद है और सब दुःखों से रहित है वही शुद्ध चित्त जीव जब चैत्यभाव को चेतता है तब जड़भावको देखता है। जैसे स्वप्नेमें कोई अपना मरना देखता है तैसेही वह चित्त जड़भाव को देखताहै। आत्मा सर्वशक्तिमान है; कर्त्ता है तौभी कुछ नहीं कर्त्ता और उसके समान और कोई नहीं। हे मुनीश्वर! यह जगत्

कुछ वास्तवमें उपजा नहीं चित्तके फुरने से भासताहै। जब चित्तकी स्फूर्त्ति होती है तब जगत्जाल भासताहै और जब चेतन आत्मा में स्थित होताहै तब मनका जड़ भाव नहीं रहता। जैसे पारस मणिके मिलापसे तांबा सुवर्ण होजाता है और फिर उसका तांबा भाव नहीं रहता तैसेही जब मन आत्मामें स्थित होता है तब उसकी जड़ता दृश्यभाव नहीं रहती। जैसे सुवर्णको शोधनाकियेसे उसका मैल जलजाताहै और शुद्धही शेष रहताहै तैसेही चित्त जब आत्मामें स्थित होताहै तब उसका जड़-भाव जलजाताहै और शुद्धचैतनमात्र शेषरहता है। वास्तवमें पूछो तो शुद्धभी द्वैत में होताहै; आत्मामें द्वैतनहीं इससे शुद्धकैसेहो ? जैसे आकाश के फूल और वृक्ष वास्तवमें कुछनहीं होते तैसेही शोधनभी वास्तवमें कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! जबतक आत्माका अज्ञानहै तब तक नानाप्रकार का जगत् भासता है और जब आत्माका बोधहोताहै तब जगत् भ्रम नष्टहोजाताहै। यह जगत् भ्रमचित्तमें है; जैसा निश्चय चित्तमें होताहै तैसाहीहो भासताहै। इसीपर अहल्या और इन्द्रका दृष्टान्तकहाहै। इससे जैसी भावना दृढ़होती है तैसा हो भासता है। हे वशिष्ठजी! जिसको यही भावना दृढ़है कि, मैं देहहूं वह पुरुष देहके निमित्त सब चेष्टा करता है और इसी कारण बहुत काल पर्य्यन्त कष्ट पाता है। जैसे बालक वैतालकी कल्पना से भयपाता है तैसेही देहमें अभिमानसे जीव कष्ट पाताहै। जिसकी भावना देहसे निवृत्तहोकर शुद्ध चैतनभाव में प्राप्त होती है उसको देहादिक जगत् भ्रम शान्तहोजाताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवक्रमोपदेशोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब मैंने फिर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! आपने कहा है कि; शापमें मन्त्रादिकों का बलहोताहै। वह शापभी अचलरूपहै मिटता नहीं। मैंने ऐसे भी देखा है कि; शाप से मन,बुद्धि और इन्द्रियांभी जड़ीभूत होजाती हैं पर ऐसीतो नहीं है कि, देहको शापहो और मनको न हो। हे भगवन्! मन और देह तो अनन्यरूपहैं। जैसे वायु और स्पन्दमें और घृत और चिकनाई में भेद नहीं होता तैसेही मन और जगत्में भेद नहीं। यदि कहिये कि, देह कुछ वस्तु नहीं चैतन्यही चित्तहै और देह भी चित्तमें कल्पितहै—जैसे स्वप्न देह; मृगतृष्णा का जल और दूसरा चन्द्रमा भासताहै सो एक के नष्ट हुये दोनों क्यों नहीं नष्ट होते तैसे देहके शापसे चाहिये कि, मनको भी शाप लगजावे तो मैंने देखाहै कि, शापसेभी जड़ीभूत होगयेहैं और आप कहतेहैं कि; देहकाकर्म मनको नहीं लगता। यह कैसे जानिये? ब्रह्माबोले; हे मुनीश्वर! ऐसापदार्थ जगत्में कोई नहीं जो सब कर्मों को त्यागकर पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेसे सिद्ध न हो। पुरुषार्थ कियेसे सब कुछ होताहै। ब्रह्मासे चींटी पर्य्यन्त जिस जिसकी भावना होतीहै तैसाही रूपहो भासता

है। सब जगत्के दो शरीरहैं-एक मनरूपी जो चञ्चलरूपहै और दूसरा अधिभौतिक मांसमय शरीरहै। उसका किया कार्य्य निष्फल होताहै और मनसे जो चेष्टा होतीहै वह सुफल होतीहै। हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषको मांसमय शरीरमें अहंभावहै उसको आधिव्याधि और शापभी अवश्य लगताहै और मांसमय शरीर जो गूंगे; दीनऔर क्षणनाशीहैं उनकेसाथ जिसकासंयोगहै वह दीनरहताहै। चित्तरूपी शरीर चञ्चलहै वह किसीके वशनहीं होता अर्थात् उसका वशकरना महा कठिनहै। जबदृढ़ वैराग्य और अभ्यासहो तब वह वशहो-अन्यथा नहीं होता। मन महाचञ्चलहै और यह जगत् मनमेंहै। जैसा २ मनमें निश्चय है सो दूर नहीं होता। मांसमय शरीर का कियाकुछ सुफल नहीं होता और जो मनका निश्चय है सो दूरनहीं होता। हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपद में स्थित कियाहै उनको अग्निमें भी डालिये तौभी दुःख कुछ नहीं होता और जलमेंभी उनको दुःख नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त शरीरादिकभाव ग्रहण नहीं करता केवल आत्मामें स्थित होताहै। हेमुनीश्वर ! सब भावोंको त्यागकर मनका निश्चय जिसमें दृढ़होताहै वही भासताहै। जहां मन दृढ़ीभूत होकर चलताहै उसको वही भासताहै और किसी संसारकेकष्ट औरशापसे चलायमान नहीं होता। जो किसी दुःखशापसे मन विपर्यय भावमें प्राप्त होजावे तो जानिये कि, यह दृढ़लगा न था-अभ्यासकी शिथिलताथी। हे मुनीश्वर ! मनकी तीव्रताके हिलानेमें किसी पदार्थकी शक्ति नहीं क्योंकि; सृष्टि मानसीहै। इससे मनमेंमनको समाय चित्तको परमपदमें लगावो। जब चित्त आत्मामें दृढ़होताहै तबजगत्केपदार्थों से चलायमान नहीं होता। जैसे मांडव्य ऋषीश्वरको जिनकाचित्त आत्ममें लगाहुआथा शूलीपरभी खेद न हुआ। हेमुनीश्वर ! जिसमें मन दृढ़होकर लगताहै उसको कोईचला नहींसक्ता। जैसे इन्द्र ब्राह्मण चलायमान न हुआतैसेही आत्मामें स्थिरहुआ मनचलायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर ! जैसा २ मनमें तीव्रभाव होता है उसीकी सिद्धता होती है। दीर्घतपा एक ऋषीथा वह किसीप्रकार अन्धेकूपमें गिरपड़ा और उसकूपमेंमनको दृढ़कर यज्ञ करनेलगा। उसयज्ञसे मनमें देवता होकर इन्द्रपुरी में फल भोगने लगा और जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समानथे और उनके मनमें जो ब्रह्माकी भावनाथी उससे वे दशों ब्रह्माहुये और दशोंने अपनी अपनी सृष्टिरची और वह सृष्टि मुझसे भी नहीं खण्डित होती। इससे जोकुछ दृढ़अभ्यास होताहै वह नष्ट नहींहोता। देवता और महाऋषि आदि जो धीर्य्यमान हुये हैं और जिनकी एक क्षणमात्रभी वृत्ति चलायमान नहीं होतीथी उनको संसारका आधि-व्याधि ताप, शाप, मंत्र और पाप कर्म से लेकर संसार के जो क्षोभ और दुःखहैं नहीं स्पर्श करतेथे। जैसे कमल फूलका प्रहार शिला नहीं फोड़ सक्ता तैसेही धीर्य्यवान्को संसारका ताप नहीं खण्डन

करसक्ता। जिसको आधि व्याधि दुःख देते हैं उसे जानिये कि, वह परमार्थ दर्शनसे शून्यहै। हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूप में सावधान हुये हैं उनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता और स्वप्नेमें भी उनको दुःखका अनुभव नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त सावधान है। इससे तुमभी दृढ़ पुरुषार्थ करके मनसे मनको मारोतो जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा। हे मुनीश्वर! जिसको स्वरूप का प्रमाद होताहै उसको क्षणमें जगत् भ्रम दृढ़ होजाता है। जैसे बालकको क्षणमें वैताल भासि आताहै तैसेही प्रमाद से जगत् भासताहै। हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलालहै और वृत्तिरूपी मृत्तिकाहै; उस मनसे वृत्तिक्षणमें अनेक आकार धरतीहै। जैसे मृत्तिका कुलाल द्वारा घटादिक अनेक आकारको धरती है तैसेही निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारों को पातीहै। जैसे सूर्य में उलूकादिक अपनी भावना से अन्धकार देखते हैं; कितनों को चन्द्रमा की किरणें भी भावनासे अग्निरूप भासती हैं और कितनों को विषमें अमृतकी भावना होतीहै तो उनको विषभी अमृतरूप हो भासताहै। इसीप्रकार कटुक आमल औरलवण भी भावनाके अनुसार भासतेहैं। जैसा मनमें निश्चय होताहै तैसाही भासताहै। मन रूपी बाजीगर जैसी रचना चाहताहै तैसीही रचलेताहै और मनका रचा जगत् सत्यनहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष सुनेसेसत्यहै असत्यनहीं और नष्ट भावसे असत्यहै सत्यनहीं और सत्य असत्यभी मनसे भासताहै वास्तवमें कुछनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनोमाहात्म्यवर्णनंनामअष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार प्रथम ब्रह्माजीने जो मुझसे कहाथा वह मैंने अब तुमसे कहाहै। प्रथम ब्रह्म जो अहंशब्द पदमें स्थितथा उसमें चित्तहुआ अर्थात् अहंअस्मि चेतनताका लक्षणहुआ और उसकी जब दृढ़ताहुई तब मनहुआ;उस मनने पञ्चतन्मात्राकी कल्पनाकी वह तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाताहै। हे रामजी! वह ब्रह्माजी मनरूपहैं और मनही ब्रह्मारूपहै। उसकारूप संकल्पहै जैसा संकल्प करताहै तैसाही होताहै। उस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पीहै। अनात्ममें आत्माभिमान करनेका नाम अविद्याहै। फिर अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी। इसी प्रकार पहाड़,तृण,जल,समुद्र,स्थावर-जङ्गमसम्पूर्ण जगत्को उत्पन्नकिया। इसप्रकार ब्रह्माहुआ और इसप्रकार जगतहुआ। तुमने जो कहा कि,जगत् कैसेउपजताहै और कैसे मिटताहै सोसुनो। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजतेहैं और समुद्रहीमें लीन होते हैं तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममें उपजताहै और ब्रह्महीमें लीनहोताहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्तामें जो अहंका उल्लेख हुआहै सो मनहै और वही ब्रह्माहै; उसीने नाना-प्रकारका जो जगत् रचाहै वही सर्वचित शक्ति फैलीहै और चित्तके फुरनेहीसे नानात्व भासता है। हे रामजी! जो कुछ जीवहैं उन सबमें आत्मसत्ता स्थितहै परन्तु अपने

स्वरूप के प्रमादसे भटकते हैं। जैसे वायुसे वनके कुंजोंमें सूखे पात भटकते हैं तैसेही कर्मरूपी वायुसे जीव भटकते हैं और अर्द्ध और ऊर्ध्व में घटीयंत्रकी नाईं अनेक जन्म धरते हैं। जव काकतालीवत् सत्सङ्गकी प्राप्ति हो और अपना पुरुषार्थ करे तव मुक्तहो। इसकी जवतक प्राप्ति नहीं होती तवतक कर्मरूपी रस्सी से बांधेहुये अनेक जन्म भटकते हैं और जव ज्ञानकी प्राप्तिहोगी तभी दृश्यभ्रमसे छूटेंगे अन्यथा न छूटेंगे। हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्मासे जीव उपजते और मिटते हैं। अनन्त सङ्कटोंकी कारण वासनाही है जो नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है और जगत् रूपी मनकी जन्मरूपी वैतालवेल वासना जलसे वढ़तीहै। जव सम्यक् ज्ञान प्राप्तहो तव उसी कुठारसे काटो जव मनमें वासना का क्षोभमिटे तव शरीररूपी अंकुर मनरूपी वीजसे न उपजे जैसे भुने वीजमें अंकुर नहीं उपजता तैसेही वासना से रहितमन शरीरको नहीं धारण करता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेवासनात्यागवर्णनंनामएकोनसप्ततितमस्सर्गः६९॥

वशिष्ठजी वोले; हे रामजी! जितनी भूत जातिहैं वहब्रह्मसे उपजी हैं। जैसे समुद्रमें जो तरङ्ग औरवुद्वुदे कोईवड़े, कोईछोटे और कोई मध्यभावकेहोते हैं व सवजलहैं तैसेही यहजीव ब्रह्मसे उपजेहैं और ब्रह्मरूपहैं। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जल भासता है अग्निसे चिनगारे उपजतेहैं तैसेही ब्रह्मसे जीव उपजते हैं। जैसे कल्पवृक्षकी मञ्जरी नानारूप धरतीहै तैसेही ब्रह्मसेजीवहुयेहैं। जैसे चन्द्रमासे किरणोंका विस्तारहोता है और वृक्षसे पत्र, फल और फूलआदिक होतेहैं तैसेहीब्रह्मसेजीवहोतेहैं। जैसे सुवर्णसे अनेक भूषणहोते हैं तैसेही ब्रह्मसे जगत् होतेहैं। जैसे झरनोंसे जलकेकण उपजतेहैं तैसेही परमात्मासे भूतउपजतेहैं। जैसे आकाशएकहीहै पर उससेघट मठकीउपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहाताहै तैसेही संवेदनके फुरनेसे जीव कल्पना होतीहै जैसेजलही द्रवतासेतरङ्ग औरआवृतरूपहो भासताहै तैसेहीब्रह्मही संवेदनसे जगत् रूपहो भासताहै। द्रष्टा, दर्शन औरदृश्यसवब्रह्मसेही उपजेहैं। जैसे सूर्य्यकेतेजसेमृगतृष्णाकी नदी भासतीहै तैसे संवेदनसे ब्रह्ममें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य—त्रिपुटी भासती है पर वास्तवमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य कोई कल्पनानहीं। जैसे चन्द्रमा औरशीतलता में और सूर्य्य और प्रकाशमें कुछ भेदनहीं तैसेही ब्रह्म औरजगत्में कुछ भेदनहीं। जैसे समुद्रमें तरंग उपजतेहैं और समुद्रमेंही लीनहोतेहैं तैसेही जीव ब्रह्महीसे उपजतेहैं और ब्रह्महीमें लीनहोते हैं। कोई सहस्र जन्मों के अनन्तर प्राप्तहोते और कोई थोड़ेही जन्मोंमें प्राप्तहोते हैं। हे रामजी! इसप्रकार जगत् परमात्मासे हुआहै औरउसहीकी इच्छाअनुसार सव व्यवहार करतेहैं।वही व्यवहारकीनाईंहो भासतेहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामसप्ततितमस्सर्गः ७०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कर्त्ता और कर्म्म अभिन्नरूप हैं और इकट्ठेही ब्रह्म से उत्पन्नहुये हैं। जैसे फूल और सुगन्धवृक्ष से इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं तैसेही कर्त्ता और कर्म्म इकट्ठे उत्पन्न हुयेहैं। जब जीव सब सङ्कल्प कलना को त्यागता है तब निर्म्मल ब्रह्म होता है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कल्पना फुरती है पर आत्मा अद्वैत सदा अपने आपमें स्थित है। यह भी अज्ञानी के बोधके लिये कहता हूँ कि, जीव ब्रह्म से उपजेहैं। इसप्रकार सात्विक, राजस और तामस गुणोंके भेद स्थित हैं। जो ज्ञानवान् हैं उनकेप्रति यह कहना भी नहीं बनता कि, ब्रह्मसे सब उपजे हैं;तौभी दूसरा कुछनहीं पर दूसरेको अंगीकार करके उपदेश करताहूं वास्तवमें ब्रह्मसत्तामें कोई कल्पनानहीं; वहतो सदा अपने स्वभावमें स्थित है। जो ज्ञानवान् हैं उनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है और अज्ञानी दूसरे दूर चलाजाता है–उसको सुमेरु और मंदराचल की नाईं आत्मा और जीव का अन्तर भासता है। जैसे वसन्तऋतु में नानाप्रकार के नूतन अंकुर उपजते हैं और उसके अभाव हुये नष्ट होते हैं तैसेही चित्तके फुरने से जीव राशि उपजते हैं और चित्त के अफुरहुये नष्टहोतेहैं। मन और कर्म्म में कुछ भेदनहीं; मन और कर्म्म इकट्ठे ही उत्पन्न होतेहैं। जैसे वृक्षसे फल और सुगन्ध इकट्ठे उपजते हैं तैसेही आत्मा से मन और कर्म्म इकट्ठेही उपजते हैं और फिर आत्मा में लीन होते हैं। हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जो कुछ जीव तुमको भासते हैं वे आत्मा से उपजे हैं और फिर आत्माहीमें लीन होतेहैं। इनका उत्पत्ति कारण अज्ञानहै; आत्माकेअज्ञान से भटकतेहैं और जब आत्मज्ञान उपजता है तबसंसारभ्रम निवृत्त होजाताहै। रामजी बोले, हे भगवन् ! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाणसे सिद्धहै वही सत्यहै और शास्त्रप्रमाण वहीहै जिसमें राग द्वेष से रहित निर्णय है और अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन कियेहैं। उस दृष्टिसे जो उपदेश कियाहै सोही प्रमाणहै और उसके अनुसार जो जीव विचरतेहैं सो उत्तमगति को प्राप्तहोते हैं और जो शास्त्र प्रमाण से विपरीत वर्ततेहैं वह अशुभ गतिमें प्राप्त होते हैं। लोकमेंभी प्रसिद्ध है कि; कर्मों के अनुसार जीवउपजतेहैं– जैसा जैसा बीज होताहै तैसाही तैसा उससे अंकुरउपजता है; तैसेही जैसा कर्महोता है तैसी गतिको जीव प्राप्त होता है। कर्त्ता से कर्म होताहै इसकारण यह परस्पर अभिन्न हैं इनका इकट्ठा होना क्योंकर हो कर्त्तासे ? कर्म होतेहैं और कर्मसे गति प्राप्ति होतीहै पर आप कहते हैं कि, मन और कर्म ब्रह्मसे इकट्ठेही उत्पन्न हुयेहैं इससे तो शास्त्र और लोगोंके वचन अप्रमाण होतेहैं। हे देवताओं में श्रेष्ठ ! इस संशय के दूर करने को तुमही योग्यहो। जैसे सत्य हो तैसेही कहिये। वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! यह प्रश्न तुमने अच्छा कियाहै इसका उत्तर मैं तुमको

देताहूं जिसके सुनने से तुमको ज्ञानहोगा। हे रामजी! शुद्ध सम्वितमात्र आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुराहे सोही कर्मका बीज मनहुआ और सोही सबका कर्मरूपहे इसलिये उसी बीजसे सबफल होतेहैं—कर्म और मन में कुछ भेद नहीं। जैसे सुगन्ध और कमल में कुछ भेद नहीं तैसेही मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। मन में सङ्कल्पहोता और उससे कर्म्म अंकुर ज्ञानवान् कहते हैं। हे रामजी! पूर्व्व देह मनही है और उस मनरूपी शरीरसे कर्म्म होतेहैं। वह फल पर्य्यन्त सिद्ध होताहै। मन में जो स्फूर्त्ति होतीहै वही क्रियाहै और वही कर्म्म है। उस मनसे क्रिया कर्म्म अवश्य सिद्ध होताहै अन्यथा नहीं होता। ऐसा पर्व्वत और आकाशलोक कोई नहीं जिसको प्राप्तहोकर कर्म्मों से छूटे; जो कुछ मन के सङ्कल्प से किया है वह अवश्यमेव सिद्ध होता है। पूर्व्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कुछकिया है वह निष्फल नहीं होता अवश्यमेव उसकी प्राप्तिहोती है। हे रामजी! ब्रह्ममें जो चैत्यता हुईहै वही मनहै और कर्म्मरूप है और सब लोकोंका बीजहै कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! जब कोई देशसे देशान्तर जाने लगताहै तब जानेका सङ्कल्पही उसे लेजाताहै; वह चलना कर्म्महै इससे स्फूर्त्ति रूप कर्म्म हुआ और स्फूर्त्ति रूप मनका भी है इससे मन और कर्म्म में कुछ भेद नहीं। अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्महै इसमें द्रवतारूपी चैत्यता है। वह चैत्यता जीव रूपहै और उसही का नाम मन है। मन कर्म्म रूप है इसलिये जैसे मन फुरता है और जो कुछ मनसे कार्य्य करता है वही सिद्ध होता है शरीर से चेष्टा नहीं सिद्ध होती। इसकारण कहा है कि, मन और कर्म्म में कुछ भेद नहीं पर भिन्न भिन्न जो भासताहै सो मिथ्या कल्पनाहै। मिथ्या कल्पना मूर्ख करतेहैं बुद्धिवान् नहीं करते। जैसे समुद्र और तरङ्गों में भेद मूर्ख मानते हैं, बुद्धिवान् को भेद कुछ नहीं भासता। प्रथम परमात्मासे मन और कर्म्म इकट्ठेही उपजे हैं। जैसे समुद्रसे द्रवता से तरङ्ग उपजते हैं तैसेही चित्त फुरने से आत्मा से कर्म्म उपजते हैं। जैसे तरङ्ग समुद्र में लीन होते हैं तैसेही मन और कर्म परमात्माही में लीनहोते हैं। जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होताहै उसीका प्रतिबिम्ब भासताहै। तैसेही जो कुछमनका कर्म होताहै सो आत्मारूपी दर्पणमें प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे बरफका रूपशीतल है— शीतलता बिना बरफ नहीं होती तैसेही चित्तकर्महै—कर्मोंबिना चित्तनहीं होता। जबचित्तसे स्पन्दता मिटजातीहै तब चित्तभीनष्ट होजाताहै चित्तके नष्टहुये कर्मभी नष्ट होजातेहैं और कर्मके नाशहुये मनका नाशहोताहै। जो पुरुषमनसे मुक्तहुआहै वही मुक्तहै और जो मनसे मुक्त नहींहुआ वही बन्धनमेंहै। एकके नाशहुये दोनोंकानाश होताहै। जैसे अग्निके नाशहुये उष्णताभी नाशहोतीहै और जब उष्णता नाशहोती है तबअग्नि भी नाशहोताहै तैसेही मनकेनष्टहुये कर्मभी नाशहोतेहैं और कर्मनाश

हुये मनभी नष्टहोताहै। एकके अभावहुये दोनोंका अभावहोताहै। कर्मरूपी चित्त है औरचित्तरूपी कर्महै इससे परस्पर अभेदरूपहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्र०कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनंनामएकसप्ततितमस्सर्गः ७१

वशिष्ठजीबोले ;हेरामजी ! मनभावना मात्रहै। भावना फुरनेकानामहै और फुरना क्रियारूपहै। उस फुरने क्रियासे सर्वफल की प्राप्तिहोतीहै। रामजीबोले, हे ब्राह्मण ! इसमनकारूप जो जड़-अजड़है वह विस्तारपूर्वककहिये। वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! आत्मतत्व अनन्तरूप और सर्वशक्तिमान्‌है। जब उसमें संकल्प शक्तिफुरतीहै तब उसको मनकहतेहैं। जड़अजड़के मध्यमें जो डोलायमान होताहै उस मिश्रितरूपका नाममनहै। हे रामजी ! भावरूप जो पदार्थहैं उनकेमध्यमें जो सत्य असत्यका निश्चय करताहै उसकानाम मनहै। उसमें जो यह निश्चय देहसे मिलकर फुरताहै कि, मैं चिदानन्दरूपनहीं; कृपण हूं सो मनकारूपहै। कल्पनासे रहित मन नहीं होता। जैसे गुणों विना गुणी नहींरहता तैसेही कर्म कल्पनाविना मन नहींरहता। जैसे उष्णताकी सत्ता अग्निसे भिन्न नहीं होती तैसेही कर्मोंकी सत्ता मनसे भिन्ननहीं होती और मन और आत्मामें कुछ भेदनहीं। हे रामजी ! मनरूपी बीजसे संकल्परूपी नाना प्रकारके फूलहोतेहैं; उनमें नाना प्रकारके शरीरोंसे संपूर्ण जगत् देखता है और जैसी २ मनमें वासना होतीहै उसके अनुसार फलकी प्राप्ति होतीहै। इससे मनकाफुरनाही कर्मोंका बीजहै और उससे जो भिन्न क्रियाहोती हैं सो उसवृक्षकी शाखा और नानाप्रकार के विचित्रफलहैं। हे रामजी ! जिसओर मनका निश्चयहोताहै उसीओर कर्म इन्द्रियांभी प्रवर्त्तितहोतीहैं और जो कर्महै वही मनकाफुरनाहै और मनही स्फूर्त्तिरूपहै। इसीकारणकहाहै कि,मन कर्मरूपहै। उसमनकी इतनी संज्ञाकही हैं मन, बुद्धि, अहंकार, कर्मकल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रकृति, माया इत्यादिक। कल्पनाही संसारके कारणहैं। चित्तको जब चैत्यका संयोग होताहै तब संसार भ्रमहोता है और ये जितनी संज्ञातुमसे कहीहैं सो चित्तके फुरनेसे काकतालिवत् अकस्मात् फुरीहैं। रामजीबोले; हे भगवन् ! अद्वैततत्व परमसंवित् आकाशमें इतनी कलना कैसे हुई और उनमें अर्थरूप दृढ़ता कैसेहुई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र सत्ता फुरनेकी नाईं जो स्थितहुई उसकानाममनहै। जब वहवृत्ति निश्चयरूपहुई तो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चयकरने लगी कि, यह पदार्थऐसाहै; यह पदार्थ ऐसाहै—उस वृत्तिका नाम बुद्धिहै। जबअनात्ममें आत्मभाव परिच्छिन्नरूप मिथ्या अभिमान दृढ़हुआ तब उसका रूप अहंकार हुआ। वही मिथ्या अहंवृत्तिसंसार बन्धनका कारणहै; किसी पदार्थको धावतीकरतीहै और किसीको त्याग करतीहै और बालककी नाईं विचारसे रहित ग्रहणा है उसका नाम चित्त है। वृत्तिकाधर्म फुरना है उस फुरनेमें फलको आरोप

करके उसकी ओर धावना और कर्त्तव्य का अभिमान फुरना कर्महै। पूर्व जो कार्य किये हैं उनको त्याग उनका संस्कार चित्तमें धर कर स्मरण करने का नाम स्मृति है अथवा पूर्व जिसका अनुभव नहीं हुआ और हृदय में फुरे कि, पूर्व मैंने यह कियाथा इसका नामभी स्मृतिहै। जिसपदार्थका अनुभवहो और जिसका संस्कार हृदयमें दृढ़ होवे उसके अनुसार जो चित्त फुरे उसका नाम वासना है। हे रामजी! आत्मतत्व अद्वैतहै; उसमें अविद्यमान् द्वैत विद्यमान्हो भासताहै इससे उसका नाम अविद्याहै और अपने स्वरूपको भुलाकर अपने नाशके निमित्त स्पन्द चेष्टा करने और शुद्ध आत्मा में विकल्प उठने का नाम मूलअविद्या है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-इन पाँचों इन्द्रियोंको दिखानेवाला परमात्मा है और अद्वैततत्व आत्मा में जिस दृढ़-जालको रचाहै उस स्पन्दकलनाका नाम प्रकृतिहै और जो असत्य को सत्य और सत्यको असत्यकी नाई दिखातीहै वह माया कहातीहै। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का अनुभवकरना कर्महै और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धहोते हैं वह कर्त्ता, कार्य कारण काहाता है। शुद्ध चेतन चैत्यको कलनाकी नाई प्राप्त होताहै; उस फुरन वृत्ति को विपर्यय कहते हैं। उससे जब सङ्कल्प जाल उठता है तब उसको जीव कहते हैं; मनभी इसी का नामहै; चित्तभी इसीका नामहै और बन्धभी इसीका नामहै। हेराम जी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्यके संयोगसे और स्वरूपसे बरफकीनाई स्थितहुआ है। रामजी बोले; हे भगवन्! यहमन जड़है किम्वा चेतनहै; एकरूप मुझ से कहिये कि; मेरे हृदय में स्थितहो? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! मन जड़नहीं और चेतनभी नहीं। जड़ चेतनकी गाँठके मध्यभावका नाम मनहै और सङ्कल्प विकल्प में कल्पित-रूप मनहै। उस मनसे यह जगत् उत्पन्न हुआहै और जड़ और चेतन दोनों भावोंमें डोलायमान है अर्थात् कभी जड़भावकी ओर आताहै और कभी चेतन भावकी ओर आताहै। शुद्ध चेतन मात्रमें जो फुरनाहुआ उसी का नाम मनहै और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीवादिक अनेक संज्ञा उसी मनकी हैं। जैसे एक नट अनेक स्वांगों से अनेक संज्ञा पाताहै—जिसका स्वांग धरताहै उसीनामसे कहाताहै तैसेही सङ्कल्पसे मन अनेक संज्ञा पाताहै। जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंसे अनेक संज्ञा पाता है—पाठसे पाठक; और रसोईसे रसोइयां कहाताहै तैसेही मन अनेक सङ्कल्पोंसे अनेक संज्ञा पाताहै। हेरामजी! ये जो मैंने तुमसे चित्तकी अनेक संज्ञा कही हैं उनके अन्य अन्य बहुत प्रकार वादियोंने नाम रक्खे हैं; जैसा जैसा मतहै तैसाही तैसा स्वभाव लेकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को मानते हैं। कोई मनको जड़ मानते हैं; कोई मनसे भिन्नमानते हैं और कोई अहंकारको भिन्न मानतेहैं वे सब मिथ्याकल्पना हैं। नैयाइक कहते हैं कि, सृष्टितत्वोंके सूक्ष्मपरमाणुओं से उपजती हैं। जब प्रलय

होताहै तब स्थूलतत्व प्रलय होजाते हैं और उनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं और फिर उत्पत्ति कालमें वही सूक्ष्मपरमाणु दूने तिगुने आदिक होकर स्थूलहोते हैं; उनही पाँचों तत्वोंसे सृष्टिहोतीहै। सांख्य मतवाले कहते हैं कि, प्रकृत और मायाके परिणाम से सृष्टि होतीहै और चारवाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारोंतत्वों के इकट्ठे होने से सृष्टि उपजती मानते हैं और चारोंतत्वों के शरीरको पुरुष मानते हैं और कहते हैं कि, जब तत्व अपने आपसे बिछुरजाते हैं तब प्रलय होतेहैं। आर्हत औरही प्रकार मानते हैं और बौद्ध और वैशेषिक आदिक और और प्रकारसे मानतेहैं।पञ्चरात्रिक और प्रकारही मानते हैं परन्तु सबही का सिद्धान्त एकहीब्रह्म आत्मतत्वहै। जैसे एकही स्थानके अनेक मार्गहों तो उन अनेक मार्गोंसे उसी स्थान को पहुंचताहै तैसेही अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ताहै और सबका सिद्धान्त एकहीहै उसमें कोई वाद प्रवेश नहीं करता। हेरामजी! जितनेमतवाले हैं वे अपने अपने मतको मानते हैं और दूसरे का अपमान करते हैं। जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकीउपमा करते हैं—दूसरेकी नहींकरते तैसेही मनके भिन्न भिन्न रूपसे अनेक प्रकार जगत्को कहते हैं। एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं। जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकारसे कहते हैं; स्नान करने से स्नानकर्त्ता; दान करने से दानकर्त्ता; तप करने से तपस्वी इत्यादि क्रिया करके अनेक संज्ञा होती हैं तैसे ही अनेक शक्ति मनकी कही हैं। मनही का नाम जीव; वासना और कर्म्महै। हे रामजी ! चित्तही के फुरनेसे सम्पूर्णजगत्हुआ है और मनही के फुरने से भासता है। जब वह पुरुष चैत्य के फुरने से रहित होता है तब देखता है तौभी कुछ नहीं देखता। यह प्रसिद्ध जानिये कि, जिस पुरुष को इन्द्रियोंके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इष्ट अनिष्टमें हर्ष शोकदेताहै उसकानाम जीवहै। मनहीसे सब सिद्धहोताहै और सब अर्थोंकाकारण मनहीहै। जो पुरुष चैत्य से छूटताहै वह मुक्तरूपहै और जिसको चैत्यका संयोगहै वह बन्धनमें बँधाहै। हे रामजी ! जो पुरुष मनको केवल जड़ मानते हैं उनको अत्यन्त जड़जानो और जो पुरुष मनको केवल चेतन मानतेहैं वे भी जड़हैं। यह मन केवल जड़नहीं और न केवल चेतन ही है जो मनका एकहीरूपहो तो सुख दुःख आदिक विचित्रता न हों और जगत्की लीनताभी नहीं ! जो केवल चैतन्यहीरूपहो तो जगत्का कारणनहीं होसक्ता और जो केवल जड़रूपहो तौभी जगत्का कारणनहीं क्योंकि; केवल जड़ पाषाणरूप होता। जैसे पाषाणसे कुछक्रिया उत्पन्न नहीं होतीं तैसेही केवल जड़मन जगत्का कारण नहींहोता। मन केवलचैतन्यभीनहीं; केवलचैतन्य तो आत्माहैजिसमें कर्तृत्वआदि कल्पनानहींहोतीं इससे मन केवलचैतन्यभीनहीं और केवलजड़भी नहीं। चैतन्य और जड़का मध्यभावही जगत्का कारणहै। हे रामजी ! जैसे प्रकाश सब

पदार्थोंके प्रकाशका कारणहै तैसेही मन सबअर्थोंका कारणहै जबतक चित्तहै तबतक चैत्य भासताहै और जब चित्त अचित्तहोताहै तब सर्वभूतजात लीनहोजातेहैं। जैसे एकही जलरससे अनेकरूपहो भासताहै तैसेही एकहीमन अनेक पदार्थरूप होकर भासताहै और अनेक संज्ञा इसकी शास्त्रोंके मतवालोंने कल्पीहैं। सबकाकारणमनहीहै और परमदेव परमात्माकी सर्व शक्तियोंमेंसे एकशक्तिहै। उसी परमात्मासे यह फुरीहै और जड़भाव फुरकर फिर उसहीमें लीनहोतीहै। जैसे मकड़ी अपने मुखसे जालानिकाल कर फैलातीहै और फिर आपहीमें लीन करलेतीहै तैसेही परमात्मासे यह जड़भाव उपजताहै। हेरामजी! नित्यशुद्ध और बोधरूप ब्रह्महै;वहजब प्रकृतभावको प्राप्तहोताहै तब अविद्याकेवशसे नानाप्रकारके जगत्को धारताहै और उसहीके सर्व पर्यायहैं। जीव,मन,चित्त,बुद्धि,अहंकार इत्यादिक संज्ञा मलीन चित्तकीहोतीहैं। ये संज्ञा भिन्नभिन्न मतवादियोंने कल्पी हैं पर हमको संज्ञासे क्या प्रयोजनहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमनोसंज्ञाविचारोनामद्विसप्ततितमस्सर्गः ७२॥

रामजीने पूछा;हे भगवन्! यहसब जगत् आडम्बर मनहीने रचाहै और सब मनरूपहै और मनही कर्मरूपहै—यह आपके कहनेसे मैंने निश्चय कियाहै परन्तु इसका अनुभव कैसेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यहमन भावना मात्रहै। जैसे प्रचण्ड सूर्यकीधूप मरुथलमें जलहो भासती है तैसेही आत्माका आभासरूप मन होताहै। उस मनसे जो कुछ जगत् भासता है वहसब मनरूपहै; कहीं मनुष्य; कहीं देवता;कहीं दैत्य; कहीं पक्षी; कहीं गन्धर्व;कहीं नागपुर आदिक जो कुछ रूपभासते हैं वे सबही मनसे विस्तार को प्राप्तहुये हैं पर वे तृण और काष्ठ के तुल्य हैं। उनके विचारने से क्या है? यह सब मनकी रचना है और मन अविचार से सिद्धहै विचार कियेसे नष्टहोजाताहै। मनके नष्टहुये परमात्माही शेष रहताहै जो सबका साक्षीभूत सर्वपदसे अतीत; सर्वव्यापी और सबका आश्रयभूतहै। उसके प्रमादसे मन जगत् को रचसक्ताहै इसकारण कहाहै कि; मन और कर्म एकरूपहैं और शरीरों के कारण हैं। हे रामजी! जन्म मरण आदिक जो कुछ विकारहैं वे मनसेही भासतेहैं और मन अविचारसे सिद्धहै विचार कियेसेलीन होजाताहै। जबमनलीन होताहै तबकर्मआदिक भ्रमभी सबनष्ट होजातेहैं। जो इसभ्रमसे छुटाहै वहीमुक्तहै और वह पुरुष फिर जन्म और मरणमें नहीं आता उसका सबभ्रम नष्टहोजाताहै। इतना सुन रामजी ने पूछा;हे भगवन्! आपने सात्विकी,राजसी और तामसी तीन प्रकारके जीवकहेहैं और उनका प्रथम कारण सत्य असत्यरूपी मनकहाता वह मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्वसे उपजकर बड़े विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसेप्राप्तहुआ? वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! आकाश तीनहैं एकचिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा भूताकाश

भावसे वे समान रूप हैं और आप अपनी सत्ताहै । जो चित्ताकाशसे नित्य उपलब्ध रूप और चेतनमात्र सबके भीतर बाहरस्थितहै अनुमाता; बोधरूप और सर्वभूतों में समव्याप रहाहै वह चिदाकाशहै । जो सर्वभूतोंका कारणरूपहै और आपविकल्प रूपहै और सब जगत्को जिसने विस्ताराहै वह चित्ताकाश कहाताहै । दश दिशाओं को विस्तारकर जिसका वपुप्रच्छेदको नहीं प्राप्तहोता; शून्यस्वरूपहै और पवनआदिक भूतोंके आश्रयभूत हैं वह भूताकाश कहाता है । हे रामजी ! चित्ताकाश और भूताकाश दोनों चिदाकाशसे उपजेहैं और सबके कारण हैं । जैसे दिनसे सब कार्य्य होते हैं तैसेही चित्तसे सबपदार्थ प्रगटहोते हैं । वहचित्त जड़भी नहीं और चैतन्यभी नहीं आकाशभी उसीसे उपजताहै । हे रामजी ! ये तीनों आकाशभी अप्रबोधक के विषयहैं ज्ञानीके विषयनहीं । ज्ञानवान् तीन आकाश अज्ञानीके उपदेश के निमित्त कहतेहैं । ज्ञानवान्को एक परब्रह्म पूर्ण सर्वकल्पनासे रहित भासता है । द्वैत; अद्वैत और शब्दभी उपदेशके निमित्त है प्रबोधका विषय कोईनहीं । हे रामजी ! जबतक तुम प्रबोध आत्मानहीं हुये तबतकमैं तीन आकाश कहताहूं—वास्तवमें कोई कल्पनानहीं । जैसे दावाग्निलगेसे वन जलकर शून्य भासता है तैसेही ज्ञानाग्निसे जले हुये चित्ताकाश और भूताकाश चिदाकाशमें शून्यकल्पना भासते हैं । मलीनचैतन्य जो चैत्यताको प्राप्तहोताहै इससे यहजगत् भासता है । जैसे इन्द्रजालकी बाजीहोती है तैसेही यह जगत् है । बोधहीनको यह जगत् भासता है । जैसे असम्यक् दर्शीको सीपीमें रूपाभासता है तैसेही अज्ञानीको जगत् भासता है— आत्मतत्व नहीं भासता जब दृश्यभ्रम नष्टहोजावे तब मुक्तरूपहो ॥

इतिश्रीयोगवा०उत्पत्तिप्रकरणेचिदाकाशमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिसप्ततितमस्सर्गः७३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जो कुछ उपजाहै इसेतुम चित्तसे उपजाजानों । यह जैसे उपजाहै तैसे उपजाहै अबतुम इसकी निवृत्तिके लिये यत्न करके आत्मपद में चित्तलगाओ तब यहजगत्भ्रम नष्टहोजावेगा । हेरामजी ! इसचित्तपर एकचित्ताख्यान जो पूर्वहुआहै उसेसुनो; जैसे मैंने देखाहै तैसेही तुमसे कहताहूं । एक महाशून्य वनथा और उसके किसीकोनेमें यह आकाश स्थितथा उस उजाड़में मैंने एक ऐसा पुरुष देखा जिसके सहस्रहाथ और सहस्र लोचनथे और चञ्चल और व्याकुल रूपथा । उसका बड़ा आकारथा और सहस्र भुजाओंसे अपने शरीरके मारे आपही कष्टवान हो अनेक योजनों तक भागता चला जाताथा । जब दौड़ता २ थकजाय और अंगचूर्ण होजावें तो एक कृष्णरात्रिकी नाईं भयानकरूप कूपमें जापड़े और जब कुछ कालबीते तब वहांसे भी निकल कर कञ्जके वनमें जापड़े और जब वहां कंटक चुभें तो कष्टपावे । जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानके उसमें प्रवेशकरे और

नाश हो तैसेही वह जहां सुखरूप जानके प्रवेशकरे वहांहीं कष्टपावे और फिर उसी वनमेंजापड़े। फिर वहांसे निकलकर आपको अपनेही हाथोंसे मारे और कष्टमानहो और फिर दौड़ता दौड़ता कूपमें जापड़े। वहांसे निकल फिर कदलीके वनमेंजावे और उससे निकलकर फिर आपको मारे जब कदली वनमें जावे तब कुछशान्तिवान् और प्रसन्नहो दौड़े और आपको मारे और कष्टमान होके दूरसे दूरजापड़े इसी प्रकार वह अपना किया आपही कष्टभोगे और भटकता फिरे। तबमैंने उसको पकड़के पूछा कि,अरे तू कौनहै;यह क्या करताहै और किसनिमित्त करताहै तेरानाम क्याहै और यहांक्यों मिथ्या जगत्में मोहको प्राप्तहुआहै? तब उसनेमुझसे कहा कि; न मैं कुछहूं; न यहकुछ है और न मैं कुछ करताहूं। तूतो मेराशत्रुहै; तेरेदेखनेसे मैं नाश होताहूं। इस प्रकार कहकर वह अपने अङ्गों को देखने और रुदन करने लगा। एक क्षणमें उसका वपु नाश होनेलगा और प्रथम उसके शीश, फिर भुजा, फिर वक्षस्थल और फिर उदर क्रमसे गिरपड़े। जैसे स्वप्नसे जागे स्वप्नका शरीर नष्ट होताहै। तब मैं नीति शक्तिको विचारके आगेगया तो और एक पुरुष इसी भांतिका देखा। वह भी इसी प्रकार आपको आपही प्रहारकरे; कष्टमानहो और पूर्वोक्त क्रियाकरे। जब उसने मुझकोदेखा तब प्रसन्न होकर हँसा और मैंने उसको रोकके उसी प्रकार पूछा तो उसनेभी मेरे देखते २ अपने अङ्गोंको त्याग दिया और कष्टमान और हर्षमानभी हुआ। फिर मैं आगे गया तो एक और पुरुष देखा वहभी इसी प्रकार करे कि,अपने हाथोंसे आपको मारके बड़ेअन्धे कुवेंमें जा पड़े। चिरकाल पर्यन्त मैं उसको देखता रहा, और जब वह कूपसेनिकला तब मैंने उसपर प्रसन्नहोकर जैसे दूसरेसे पूछा था पूछा परवह मूर्ख मुझको न जानके दूरसे त्याग गया और जो कुछ अपना व्यवहारथा उसमें जालगा। इसके अनन्तर चिरकाल पर्यन्त मैं उस वनमें विचरतारहा तो उसी प्रकार मैंने फिर एकपुरुष देखा कि,वह आपहीआपको नाशकरताथा। निदान जिसको मैं पूछूं और जो मेरे पास आवे उसको मैं कष्टसे छुड़ादूं और आनन्दको प्राप्तकरूं और जो मेरे निकटही न आवे और मुझको त्याग जावे तो उस वनमें उसका वहीहालहो और वही व्यवहार करे। हे रामजी! वह वन तुमने भी देखाहै परन्तु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उसअटवीमें जाने योग्यभी तुमनहीं। तुमबालकहो और वह अटवी महाभयानक है उसमें प्राप्तहुये कष्टसे कष्ट पाताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तोपाख्याननामचतुःसप्ततितमस्सर्गः ७४॥

रामजी बोले; हे ब्राह्मण! वह कौन अटवीहै; मैंने कबदेखीहै और कहां है और वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्या उद्यम करतेथे सो कहिये? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! वहअटवी दूरनहीं और वह पुरुषभी दूर नहीं। यह जो गम्भीर बड़ा आकार

रूप संसारहै वहीशून्य अटवीहै और विकारोंसे पूर्णहै। यह अटवीभी आत्मासेसिद्ध होतीहै। उसमें जो पुरुष रहते हैं वे सब मन हैं और दुःखरूपी चेष्टा करते हैं। विवेक ज्ञानरूपी मैं उनको पकड़ताथा। जो मेरे निकट आतेथे वे तो जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे सूर्य्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसे मेरे प्रबोधसे प्रफुल्लित होकर महामती होतेथे और चित्तसे उपशम होकर परमपद को प्राप्त होते थे और जो मेरे निकट न आये और अविवेकसे मोहहुये मेरा निरादर करते थे वे मोह और कष्टही में रहे। अब उनके अंग; प्रहार; कूप; कंज और केलेके वनका उपमान सुनो। हे रामजी! जोकुछ विषय अभिलाषा हैं वे उस मन के अंगहैं। हाथों से प्रहार करना यह है कि, सकाम कर्म्म करनेहैं और उनसे फटेहुये दूरसेदूर दौड़ते, और मृतक होते हैं। अन्धकूप में गिरना यहीविवेक का त्यागकरना है। इसप्रकार वह पुरुष आपको आपही प्रहारकरते भटकते फिरते हैं और अभिलाषारूपी सहस्र अंगों से घिरेहुये मृतक होकर नरक रूपी कूपमें पड़ते हैं। जब उसकूप से बाहर निकलते हैं तब पुण्यकर्म्मों से स्वर्ग में जाते हैं वही कदली के वन समान है वहां कुछसुख पाते हैं स्त्री, पुत्र, कलत्र आदिक कुटुम्ब कंजके वन हैं और कंजमें कण्टक होते हैं सो पुत्र, धन और लोकोंकी कामना है उनसे कष्टपाते हैं। जब महा पापकर्म्म करते हैं तब नरकरूपी अन्धकूपमें पड़ते हैं और जब पुण्यकर्म्म करते हैं तब कदली वनकी नाईं स्वर्गको प्राप्त होतेहैं तो कुछ उल्लास को भी प्राप्त होतेहैं। हे रामजी! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप कंजवनकी नाईं है ये मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि, अपने नाशके निमित्तही दुःखरूप कर्म्म करते हैं। उनमें जो विहित करके विवेक के निकट आते हैं वे शुभ अशुभ कर्म्मों के बन्धन से मुक्त होकर परम पदको प्राप्तहोते हैं और जो विवेक से हितनहीं करते वे दूरसे दूर भटकते हैं। हे रामजी! जो पुरुष भोग भोगने के निमित्त तप आदिक पुण्य कर्म्म करते हैं वे उत्तम शरीर धर के स्वर्ग सुख भोगते हैं। वे जो मनरूपी पुरुष मुझ को देखके कहते थे कि, तू हमारा शत्रु है तुझसे हम नष्ट होते हैं और रुदन करते थे वे विषयभोग त्यागने के निमित्त मूर्खचित्त मनुष्य कष्टपाते थे क्योंकि; मूर्खोंकी प्रीति विषय में होती है और उस के त्यागने से वे कष्टमान होते हैं और विवेक को देख के रुदन करने लगते हैं कि ये अर्द्धप्रबुध हैं। जिनको परमपदकी प्राप्ति नहीं हुई वे भोगों को त्यागेसे कष्टमान होते हैं और रुदन करते हैं। जब अर्द्ध-प्रबोध मूर्खचित्त अभिलाषारूपी अङ्गोंसे तपायमान हुआ अज्ञान को त्यागकर-ताहै और विवेक को प्राप्तहोताहै तब परमतुष्टिमान हो हंसने लगताहै। इससेतुम भी विवेकको प्राप्तहोकर संसारकी वासनाको त्यागो तब आनन्दमान होगे। पूर्वके सुभाव और नीच चेष्टाको त्यागकर वह इसलिये हँसताहै कि, मैं मिथ्या चेष्टाकरता

था और चिरकाल पर्य्यंत मूर्खतासे कष्ट पातारहा। हे रामजी! जब इसप्रकार विवेकको प्राप्तहोकर चित्त परमपदमें विश्राम पाताहै तब पूर्वकीदीन चेष्टाको स्मरणकरके हँसताहै। हे रामजी! जब मैं उस मनरूपी पुरुषको रोककर पूछताथा और वह अपने अङ्गोंको त्यागता जाताथा वहभी सुनो। मैं विवेकरूपहूं। जबमैं उस चित्तरूपी पुरुषको मिला तब उसके सहस्र हाथ और सहस्र लोचनरूपी अभिलाषाओं का त्यागहुआ और वह अपने प्रहार करनेसे भी रहगया और जब उस पुरुषका शीश और परिच्छिन्नदेह अभिमानी गिरपड़ा तब दुर्वासनारूपी अङ्गोंको उसने त्याग दिया। उनको त्यागकर वह आपभी नष्टहोगया सो अहंकारने अपनी निर्वाणताको देखा अर्थात् परब्रह्ममें लीन होगया। हेरामजी! पुरुषको बन्धनका कारण वासना है। जैसे बालक विचारसे रहित चंचलरूपी चेष्टा करताहै और कष्टपाताहै और जैसे कुसवारी कीट आपही अपने बैठनेकी गुफावनाके फँसमरतीहै तैसेही मनुष्य अपनी वासनासे आपही बन्धनमें पड़ताहै। जैसे मर्कट लकड़ीमें हाथ डालके कील को निकालने लगताहै और लीलाकरताहै तो उसका हाथ फँसजाताहै और कष्ट पाताहै तैसेही अज्ञानीको अपनीचेष्टाही बन्धनकरतीहै क्योंकि,विचार विना करता है। इससे हे रामजी! तुमचित्तसे शास्त्र और संतोंके गुणोंमें चिर पर्यंत चलो और जोकुछ अर्थ शास्त्रमें प्रतिपाद्यहै उसकी दृढ़भावनाकरो। जब अभ्याससे तुम्हाराचित्त स्वस्थहोगा तब तुमको कोई शोक न होगा। हेरामजी! जब चित्त आत्मपदमें स्थितहोगा तब राग और द्वेषसे चलायमान न होगा और जोकुछ देहादिकोंसे प्रच्छिन्न अहंकारहै सो नष्टहोगा। जैसे सूर्यके उदयहुयेसे बरफ गलजातीहै तैसेही तुच्छ अहंकार नष्ट होजावेगा और सर्वआत्माही भासेगा। हेरामजी! जबतक आत्मज्ञान नहीं होता तबतक शास्त्रोंके अनुसार आनन्दित आचारमें विचरे;शास्त्रोंके अर्थमें अभ्यास करे और मनको रागद्वेषादिक से मौनकरे तब पानेयोग्य,अजन्मा शुद्ध और शांतरूप पदको प्राप्तहोताहै और सब शोकोंसे तरके शांतरूप होताहै,। हेरामजी! जब तक आत्मतत्वका प्रमादहै तबतक अनेक दुःख दृढ़होते जाते हैं शांति नहीं होती और जब आत्मपदकी प्राप्तिहोतीहै तबसब दुःख नष्ट होजाते हैं॥

इतिश्रीयोगवा०उत्पत्तिप्र०चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनामपंचसप्ततितमस्सर्गः ७५॥

वशिष्ठजी बोले;हे रामजी! यह चित्त परब्रह्मसे उपजाहै सो आत्मरूपहै और आत्मरूपभी नहीं। जैसे समुद्रसे तरंगतन्मय और भिन्नहोते तैसेही चित्तहै। जो ज्ञानवान्हैं उनको चित्त ब्रह्मरूपहीहै कुछ भिन्ननहीं। जैसे जिसको जलका ज्ञानहै उसको तरंग भी जलरूप भासते हैं और जो ज्ञानसे रहित हैं उनको मन संसार भ्रम का कारण है। जैसे जिसको जलका ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं

तैसेही अज्ञानीको भिन्न भिन्न जगत् भासताहै और ज्ञानवान्को केवल ब्रह्मसत्ताही भासतीहै। हे रामजी! ज्ञानवान् अज्ञानीके उपदेशके निमित्त भेद कल्पतेहैं; अपनी दृष्टिमें उनको सर्व्व ब्रह्मही भासता है। मन आदिक भी जो तुमको भासतेहैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं अनन्य और शक्तिरूप हैं। उससे अन्य कोई पदार्त्थ नहीं; सर्व्व शक्त परब्रह्म नित्य और सर्व्वओर से पूर्ण अविनाशी है और सबही ब्रह्मसत्तामें है सर्व्व शक्तिवान् आत्माहै। जैसी उसको रुचिहै वही शक्ति प्रत्यक्ष होतीहै और सर्व्व शक्ति रूप होकर फैलाहै। जीवोंमें चैतन शक्ति ज्ञान;वायुमें स्पन्दता;पत्थरमें जड़ता; जल में द्रवता; अग्निमें तेज; आकाशमें शून्यता; स्वर्ग्ग में भाव; काल में नाश; शोक में शोक; मुदितामें आनन्द; वीरोंमें वीर; सर्ग्गके उपजानेमें उत्पत्ति और कल्पके अन्त में नाश शक्ति आदि जो कुछ भाव अभाव शक्तिहै सो सब ब्रह्महीकीहै। जैसे फूल, फल, वेल,पत्र, शाखा, वृक्ष विस्तार बीजके अन्दर होताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्म में स्थित होताहै और जीव, चित्त और मन आदिक भी ब्रह्महीमें स्थितहैं। हे रामजी! जैसे वसन्तऋतु में एकही रस नानाप्रकारके फूल,फल, टहनियोंसहित बहुत रूपोंको धरता है तैसेही एकही आकाश ब्रह्म चैत्यतासे जगत्रूपहो भासता है और उसमें देशकालादिक कोई विचित्रता नहीं सम्पूर्ण जगत् वही रूपहै। वह ब्रह्मात्मा सर्व्वज्ञ, नित्य उदित और वृहत्रूपहै। हे रामचन्द्र! उसीकी मनन कलना मन कहाती है। जैसे आकाशमें आंखसे तरवरे और सूर्य्यकी किरणोंमें जलभासताहै तैसेही आत्मा में मनहै। हे रामजी! ब्रह्ममें चित्त मनकारूप है और वह मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है; इसीकारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं ब्रह्मही है—ब्रह्मसे भिन्न कल्पना करनी अज्ञानता है। ब्रह्ममें में ऐसा उत्थान हुआहै इसका नाम मनहै और जड़ अजड़रूप मनसे जगत् हुआहै। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्यारूप सब मनकेकल्पे हैं। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्याका भेद यहहै कि, प्रतियोगी विरोधीको कहते हैं; जैसे चेतन का प्रतियोगी जड़ और व्यवच्छेद इसे कहतेहैं कि, जैसे घट अविच्छिन्न पट। ऐसे अनेकरूप दृश्य सब मनके कल्पेहैं। जैसे जैसे ब्रह्ममें इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नाईं मन दृढ़ होताहै तैसेही तैसे भासता है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरंगचक्रहो भासते हैं तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में जीव फुरनेसे नानाप्रकारका जगत्हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं ब्रह्मही अपने आप में स्थितहै। जैसे तरंगों के होने और मिटने में जल एकही रस रहताहै तैसेही जगत्के उपजने और मिटने से ब्रह्म ज्योंका त्यों है। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें दृढ़ तेजसे जल भासताहै तैसेही आत्मतत्त्वमें विचित्रता भासती है परन्तु सदा अपने आप में स्थितहै। हे रामजी! कारण, कर्म्म और कर्त्ता; जन्म; मरणादिक जो कुछ भासतेहैं सो सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं और आत्मा

शुद्ध रूपहै उसमें न लोभहै; न मोहहै और न तृष्णाहै क्योंकि; अद्वैतरूप और सर्वात्माहै। जैसे सुवर्णसे नाना प्रकारके भूषणहो भासतेहैं तैसेही ब्रह्मसे जगत्हो भासताहै। जो ज्ञानवान् पुरुष है उस को सदा ऐसेही भासता है और जो अज्ञानी है उस को भिन्न भिन्न कल्पना भासती है। जैसे किसीका बांधव दूर देशसे चिरकाल पीछे आवे तो वह देशकाल के व्यवधान से बांधव कोभी अबांधव जानता है तैसेही अज्ञानके व्यवधान से जीव अभिन्न रूप आत्मा को भिन्नरूप जानताहै। जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसेही सत्य असत्यरूप मन आत्मा में भासता है। उस मनने शब्द–अर्थ–रूप भिन्न भिन्न कल्पना रचीहैं पर आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें बन्ध मोक्ष कल्पना का अभाव है। इतना सुन रामजीने पूँछा; हे भगवन्! मनमें जो निश्चय होता है वही होताहै अन्यथा नहीं होता पर मन में जो बन्धका निश्चय होता है सो बन्ध कैसे सत्य है? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! बन्ध की कल्पना मूर्ख करते हैं इससे वह मिथ्याहै और जो बन्ध की कल्पना मिथ्या हुई तो बन्ध की अपेक्षा से मोक्ष भी मिथ्या है–वास्तव में न बन्ध है और न मोक्ष है। हे महामते रामजी! अज्ञान से अवस्तु भी वस्तु रूपहो भासती है–जैसे रस्सीमें सर्प्प भासता है पर ज्ञानवान् को अवस्तु सत्य नहीं भासती। जैसे रस्सी के ज्ञान से सर्प्प नहीं भासता तैसेही बन्ध–मोक्ष कल्पना मूर्खों को भासती है; ज्ञानवान् को बन्ध मोक्ष कलना कोई नहीं। हे रामजी! आदि परमात्मा से मन उपजा है उसनेही बन्ध और मोक्ष मोह से कल्पा है और फिर दृश्य प्रपंच को रचा है। वह प्रपंच कल्पना मात्र है और बालककी कथावत् मूर्खों को रुचता है अर्थात् जो विचार से रहित हैं उन को यह जगत् सत्य भासताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तचिकित्सावर्णनन्नामषट्सप्ततितमस्सर्गः ७६॥

रामजी बोले; हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! बालककी कथा क्याहै वहक्रमसे कहिये? वशिष्ठ जी बोले; हेरामचन्द्र! एक मूर्खबालकने दाईसे कहा कि, कोई अपूर्व कथा जो आगे न हुईहो मुझसे कह तब उसके विनोद निमित्त महाबुद्धिमान् धात्री एक कथा कहने लगी। वहबोली हे पुत्र! सुन; एकबड़ा शून्यनगरथा और उसका एक राजाथा। उस राजाके शुभ आचारवान् और बड़ेसुन्दर तेजवान् तीनपुत्रथे। उनमेंसे दो तो उपजे न थे और एक गर्भमेंही आया न था। वे तीनों शुभ आचारवान् और शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतने को चले और शून्य नगरसे बाहरजा निर्मार्गरूप नगर में ते निर्बुध और शोकसहित इकट्ठे ऐसे चले जैसे बुध, शुक्र और शनिश्चर। इकट्ठेचलनेका दृष्टांत शुक्र, शनिश्चर और बुधका नहींहै निर्बुध और शोकका ग्रहणरूप दृष्टान्त है। सरसोंके फूलोंकी नाईं उनके अङ्ग कोमलथे इसलिये वे मार्गमें थकगये और

ऊपरसे सूर्य्यकी धूप तपने लगी। जैसे ज्येष्ठ-आषाढ़की धूपसे कमल कुम्हिलाजाते हैं तैसेही वे भी कुम्हिला गये और तप्त चरणोंसे तपने लगे और महाशोकको प्राप्त हुये। चरणोंमें डाभके कण्टकलगे; मुख धूरसे धूसल होगये और तीनों कष्टमानहुये आगे चलकर उन्होंने तीन वृक्ष देखे जिनमेंसे दोतो उपजे नहीं और तीसरेका बीज भी नहीं बोयागया। उन तीनोंने एकएक वृक्षके नीचे आकर विश्रामकिया-जैसेस्वर्गमें कल्पवृक्षकेनीचे इन्द्र और यम आबैठें-औरउनके फल भक्षणकिये;फलोंको काटकेरस पान किया; उनकेफूलोंकी माला गलेमेंपहिरी और चिरकाल पर्यन्त वहांविश्राम कर फिरदूरसेदूर चलेगये। इतने में मध्याह्नका समयहुआ उससेवे तपायमानहुये। आगे उन्होंने तीन नदियांदेखीं और उनके निकटगये जो तरङ्गों से लीलायमान थीं। उन मेंसे दोमें तो कुछभी जल न था और तीसरी सूखीपड़ीथी। उनमें वे चिरकालपर्यन्त क्रीड़ा करते रहे-जैसे स्वर्गकी गङ्गामें ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र कलोलकरतेहैं और जलपान किया। फिर जब दिन अस्तहोने लगा तब वहांसे चले तो एक भविष्यत नगरदेखा जो बड़ी ध्वजाओंसे सम्पन्न और रत्न मणि और सुवर्णसेजड़ा मानों सुमेरुका शिखर था। उसमें उन्होंने हीरे और माणिकोंसे जड़ाहुआ एक मन्दिरदेखा जो निराकाररूप था। उसमें वे घुसगये तो वहां बहुत अङ्गनादेखीं और फिर विचारकिया कि, रसोई कीजिये और ब्राह्मणको भोजन खवाइये। तब उन्होंने कञ्चनकी तीन बटलोइयां मँगवाईं जिनमेंसे दोका करनेवाला तो उपजानहीं अर्थात् आधारसेरहितथीं और तीसरी चूर्णरूपथी। उस चूर्णरूप बटलोई में उन्होंने सोलहसेर रसोई चढ़ाई और ब्रह्मा आदि विदेहरूप और निर्मुख ऋषियोंने भोजनकिया। उससे उन्होंने सैकड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराय आपभी भोजनकिया। इसप्रकार वह राजपुत्र आजतक सुखसे स्थितहैं। हेपुत्र! यह रमणीककथा मैंने तुझको सुनाईहै। यदितू इसकोहृदय में धारेगा तो पंडितहोगा। हे रामजी! इसप्रकार धात्रीने जब बालकको कथासुनाई तब बालकके मनमें सच प्रतीतिहुई। जैसेउस कथाका रूप संकल्पसे भिन्नकुछ नथा तैसेही यह जगत् सब सङ्कल्पमात्रहै, अज्ञानसे हृदयमें स्थिर होरहाहै।भ्रमसे इसमें आस्था हुईहै और बन्ध,मोक्षभी कल्पनामात्रहै;संकल्पसे भिन्न इसका स्वरूपनहीं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा निष्किञ्चन रूपहै पर संकल्पके वशसे किञ्चनरूपहो भासताहै। पृथ्वी,वायु,आकाश,नदियां;देश आदिक जो पंचभौतिक सृष्टिहैं सोसब सङ्कल्पमात्र हैं। जैसे स्वप्नेमें नाना प्रकारकी सृष्टि भासतीहै और कुछनहीं उपजी तैसेही इस जगत्को जानो। जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत नगरमें स्थितहुये थे और वह रचना संकल्प बालकको स्थिरीभूत हुईथी तैसेही यह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरनेसे दृढ़ हुआहै। जैसे द्रवता से जो जलमें तरङ्ग होते हैं वह जलही जलहै तैसेही आत्माही

आत्मा में स्थितहै। यह सब जगत् संकल्प से उपजताहै और बड़े विस्तारको प्राप्त होताहै। जैसे दिन होने से सब व्यवहार विस्तारको प्राप्तहोतेहैं तैसेही सङ्कल्प से उपजा जगत् विस्तार को प्राप्तहोताहै और चित्तका विलास है; चित्त के फुरनेही से भासताहै। इससे; हे रामजी! सङ्कल्परूपी मैलको त्यागकरके निर्विकल्प आत्मतत्त्व का आश्रयकरो। जब उस पदमें स्थित होगे तब परमशान्तिकी प्राप्तिहोगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबालकाख्यायिका
वर्णनन्नामसप्तसप्ततितमस्सर्ग्गः ७७॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! मूढ़ अज्ञानी पुरुष अपने सङ्कल्प से आपही मोहको प्राप्त होताहै और जो पण्डित है वह मोहको नहीं प्राप्त होता। जैसे मूर्ख बालक अपनी परिछाहींमें पिशाच कल्पकर भय पाताहै तैसेही मूर्ख अपनी कल्पनासे दुःखी होताहै। रामजी बोले; हे भगवन्! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह सङ्कल्प क्याहै और छाया क्याहै जो असत्यही सत्यरूप पिशाचकी नाई दीखतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पंचभौतिक शरीर परछाहींकी नाईहै क्योंकि; अपनी कल्पनासे रचाहै और अहंकार रूपी पिशाचहै। जैसे मिथ्या परछाहीं में पिशाचको देखके मनुष्य भयमान होता है तैसेही देहमें अहंकारको देखके खेद प्राप्त होताहै। हे रामजी! एक परम आत्मा सर्वमें स्थितहै तब अहंकार कैसेहो? वास्तवमें अहंकार कोई नहीं परमात्माही अभेदरूप है और उसमें अहंबुद्धि भ्रमसे भासती है। जैसे मिथ्यादर्शीको मरुस्थलमें जल भासताहै तैसेही मिथ्याज्ञानसे अहंकार कल्पना होतीहै। जैसे मणि काप्रकाश मणिपरपड़ताहै सो मणिसे भिन्ननहीं, मणिरूपहीहै; तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै सो आत्माहीमें स्थितहै। जैसे जलमें द्रवतासे चक्र और तरंगहो भासते हैं सोजलरूपहीहैं; तैसेही आत्मामें चित्तसे जो नानात्व हो भासताहै सो आत्मासे भिन्न नहीं; असम्यक् दर्शनसे नानात्व भासताहै। इससे असम्यक् दृष्टिको त्याग के आनन्द रूपका आश्रयकरो और मोहके आरम्भको त्यागकर शुद्धि बुद्धि सहित विचारो और विचारसे सत्य ग्रहणकरो; असत्यका त्यागकरो। हे रामजी! तुम मोहका माहात्म्य देखो कि, स्थूलरूप देहजो नाशवन्तहै उसके रखनेका उपायकरता है परवह रहता नहीं और जिस मनरूपीशरीरके नाशहुये कल्याणहोताहै उसको पुष्ट करताहै। हेरामजी! सब मोहके आरम्भ मिथ्या भ्रमसे दृढ़हुयेहैं, अनन्त आत्मतत्त्वमेंकोई कल्पना नहीं; कौन किसको कहे। जो कुछ नानात्व भासताहै वह है नहीं और जीव ब्रह्मसे अभिन्न है। उस ब्रह्मतत्त्वमें किसे बन्ध कहिये और किसे मोक्षकहिये; वास्तव में न कोई बन्ध है न मोक्षहै क्योंकि; आत्मसत्ता अनन्तरूपहै। हे रामजी! वास्तव में द्वैतकल्पना कोई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें है। जो आत्मतत्त्व अनन्त

है वही अज्ञानसे अन्यकीनाईं भासताहै । जब जीव अनात्ममें आत्माभिमान करता है तब परिच्छिन्न कल्पना होती है और शरीर को अच्छेदरूप जानके कष्टमान् होता है पर आत्मापद में भेद अभेद विकार कोई नहीं क्योंकि; वह तो नित्य, शुद्ध, बोध और अविनाशी पुरुष है । हे रामजी ! आत्मामें न कोई विकारहै; न बन्धनहै और न मोक्ष है क्योंकि; आत्मतत्त्व अनन्तरूप; निर्विकार, अच्छेद, निराकार और अद्वैत रूप है । उसको बन्ध विकार कल्पना कैसेहो ? हे रामजी ! देहके नष्ट हुये आत्मा नष्ट नहीं होता । जैसे चमड़ी में आकाश होता है तो वह चमड़ी के नाश हुये नाश नहीं होता तैसेही देहके नाशहुये आत्मानाश नहीं होता । जैसे फूलके नाश हुये गन्ध आकाश में लीन होती है; जैसे कमलपरवरफ पड़ता है तो कमल नष्ट होजाता है भ्रमरा नाश नहीं होता और जैसे मेघके नाश हुये पवनका नाश नहीं होता; तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता । हे रामजी ! सब का शरीर मन है और वह आत्माकी शक्ति है; उसमें यह शरीर आदिक जगत्रचा है । उसमनका ज्ञानविना नाश नहीं होता तो फिर शरीर आदिके नष्ट हुये आत्मा का नाश कैसेहो ? हे रामजी ! शरीर के नष्ट हुये तुम्हारा नाश नहीं होगा, तुम क्यों मिथ्या शोकवान् होते हो ? तुमतो नित्य, शुद्ध और शान्तरूप आत्माहो । हे रामजी ! जैसे मेघके क्षीणहुये पवनक्षीण नहीं होता और कमलोंके सूखेसे भ्रमरा नष्ट नहीं होता तैसेही देहके नष्टहुये आत्मानहीं नष्टहोता । संसारमें क्रीड़ाकर्त्ता जो मनहै उसकाभी संसारमें नाशनहीं होता तो आत्माका नाशकैसेहो? जैसे घटके नाश हुये घटाकाश नाशनहीं होता । हे रामजी ! जैसे जलके कुण्डमें सूर्य्यका प्रतिविम्ब पड़ताहै और उसकुण्डके नाशहुये प्रतिविम्ब नाशनहींहोता; यदि उस जलको और ठौर ले जायँ तो प्रतिविम्बभी चलताभासताहै तैसेही देहमें जो आत्मा स्थितहै सो देहके चलने से चलता भासताहै । जैसे घटके फूटेसे घटाकाश महाकाश में स्थित होताहै तैसेही देहके नाशहुये आत्मा निरामयपदमें स्थित होताहै । हे रामजी ! सब जीवोंका देह मनरूपीहै । जबवह मृतक होताहै तबकुछ काल पर्य्यन्त देश, काल, और पदार्थका अभाव होजाताहै और इसके अनन्तर फिर पदार्थ भासतेहैं; उस मूर्च्छा का नाम मृतकहै । आत्माका नाशतो नहींहोता चित्तकी मूर्च्छासे देश,कालऔर पदार्थोंके अभाव होनेका नाम मृतकहै । हे रामजी ! संसार भ्रमके रचनेवाला जोमन है उसका ज्ञानरूपी अग्निसे नाशहोताहै; आत्मतत्त्वका नाशकैसेहो ? हे रामजी! देश, काल और वस्तुसे मनका निश्चय विपर्ययभावको प्राप्तहोताहै; चाहो अनेक यत्नकरे परन्तु ज्ञानविना नष्टनहीं होता । हे रामजी ! कल्पितरूप जन्मका नाशनहीं होतातो जगत्के पदार्थोंसे आत्मसत्ताका नाशकैसेहो? इसलियेशोक किसीका न करना।हेमहा-

वाहो ! तुमतो नित्यशुद्ध अविनाशी पुरुषहो। यह जो सङ्कल्प वासनासे तुममें जन्म मरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं । इससे इस वासनाको त्याग के तुम शुद्ध चिदाकाश में स्थित हो जाओ । जैसे गरुड़ पक्षी अंडात्याग के आकाशको उड़ताहै तैसेही वासनाको त्याग करके तुम चिदाकाशमें स्थितहोजाओ । हे रामजी ! शुद्ध आत्मा में जो मनन फुरता है वहीमन है; वह मननशक्ति इष्ट अनिष्ट से बन्धनका कारण है और वह मन मिथ्या भ्रान्ति से उदय हुआ है । जैसे स्वप्न द्रष्टा भ्रान्ति मात्र होता है तैसेही जाग्रत सृष्टि भ्रान्तिमात्र है। हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बन्धनमय और दुःख का कारण हैं और उस अविद्याको तरना कठिन है। अविचार से अविद्या सिद्धहै; विचार कियेसे नष्ट होती है। उसी अविद्याने जगत् विस्तारा है। यह जगत् बरफ की दीवार है जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होगा तब निवृत्त होजावेगी । हे रामजी ! यह जगत् आकाश रूप है; अविद्या भ्रान्ति दृष्टि से आकार हो भासता है और असत्य अविद्या से बड़े विस्तारको प्राप्त होताहै। यह दीर्घस्वप्ना है; विचार किये से निवृत्त होजाता है। हे रामजी ! यह जगत् भावना मात्रहै; वास्तव में कुछ उपजानहीं । जैसे आकाश में भ्रान्ति से मोरके पुच्छकीनाईं तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्तिसे जगत् भासता है। जैसे बरफ की शिलातप्त करने से लीन होजाती है तैसेही आत्म विचारसे जगत् लीन होजाता है । हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बँधा है सो अनर्थका कारण है। जैसे जैसे चित्त फुरता है तैसेही तैसे हो भासता है। जैसे इन्द्रजाली सुवर्ण की वर्षा आदिक माया रचता है तैसेही चित्त जैसा फुरता है तैसाही हो भासताहै। आत्माके प्रमाद से जो कुछचेष्टामन करता है वह अपनेहीं नाशके कारण होतीहै । जैसे घुरान अर्थात् कुसवारीकी चेष्टा अपनेही बन्धनका कारणहोतीहै तैसेही मनकी चेष्टा अपने नाशके निमित्त होतीहै और जैसे नटवा अपनी क्रियासे नानाप्रकारके रूपधारताहैं तैसेही मनअपने सङ्कल्पको विकल्प करके नाना प्रकारके भाव रूपोंको धारताहै। जब चित्त अपने सङ्कल्प विकल्पको त्यागकर आत्माकी ओर देखताहै तबचित्त नष्टहोजाताहै और जबतक आत्माकी ओरनहीं देखता तबतक जगत्को फैलाताहै सो दुःखका कारण होताहै। हे रामजी ! सङ्कल्प आवरणको दूर करो तब आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। सङ्कल्प विकल्पही आत्मामें आवरणहै। जब दृश्यको त्यागोगे तब आत्मबोध प्रकाशेगा। हे रामजी ! मनके नाशमें बड़ा आनन्द उदय होताहै और मनके उदय हुये बड़ाअनर्थ होताहै इससे मनके नाश करने का यत्नकरो । मनके बढ़ाने का यत्न मत करो । हे रामजी ! मनरूपी किसानने जगत्रूपी वन रचाहै; उसमें सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं और मनरूपी सर्प रहताहै। जो विवेकसेरहित पुरुषहैं उनको वह भोजन करता है।

हे रामजी! यह मन परमदुःखका कारणहै; इससे तुम इस मनरूपी शत्रुको वैराग और अभ्यासरूपी खड्गसे मारो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजीने कहा तब सायङ्काल का समयहुआ और सब श्रोता परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानको गये और फिर सूर्य्यकी किरणों के उदयहुये अपनेअपने स्थानपर आवैठे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमननिर्वाणोपदेशवर्णन न्नामअष्टसप्ततितमस्सर्गः ७८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह चित्तभी परमात्मासे उठेहैं। जैसे समुद्र में लीला से जलकणिका होती हैं तैसेही परमात्मा से मन हुआहै। उस मनने बड़े विस्तारका जगत् रचाहै जो कि, छोटेको बड़ाकरलेताहै और बड़ेको छोटाकरता है; जो अपना आप रूपहै उसको अन्यकी नाईं दिखाताहै और जो अन्य रूपहै उसको अपना रूप दिखाताहै अर्थात् आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करताहै और अनात्माको आत्म भाव प्राप्त करताहै। ऐसा भ्रान्तिरूप मन निकट वस्तुको दूर दिखाता और दूर वस्तुको निकट दिखाता है—जैसे स्वप्नेमें निकट वस्तु दूर भासतीहै और दूरवस्तु निकट भासतीहै। हेरामजी! मन एक निमेषमें संसारको उत्पन्न करता और एक निमेषमेंही लीन कर लेताहै। जो कुछ स्थावर—जङ्गम रूप जगत् भासताहै वह सब मनहींसेउपजा है और देश, काल, क्रिया और द्रव्य अनेक शक्ति विपर्यय रूप मन ही दिखाताहै और अपने फुरने से नाना प्रकारके भाव अभावको प्राप्तहोताहै। जैसे नट लीला करके नाना प्रकारके स्वांग रचता और सचको झूठ और झूठको सच दिखाताहै तैसेहीं मनमें जैसा फुरना दृढ़ होताहै तैसेही भासता है। जैसा जैसा निश्चय चञ्चल मनमें होताहै उनके अनुसार इन्द्रियांभी विचरती हैं। हेरामजी! जो मनसे चेष्टाहोती है वही सफल होतीहै, शरीरकी चेष्टा मनबिना सफल नहीं होती। जैसे जैसा वेलका बीज होताहै वैसाही उसका फल होताहै और प्रकार नहीं होता तैसेही जो कुछ मनमें निश्चय होताहै वही सफल होताहै। जैसे बालकमृत्तिका की सेना बनाता है और नाना प्रकारके उसके नाम रखता है तैसेही मनभी सङ्कल्प सेजगत् रच लेताहै। जैसे मट्टीकी सेना मट्टीसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में जोनाना प्रकारका जगत् कल्पाहै वह आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे सङ्कल्पमें मन नाना प्रकार अर्थोंको कल्पताहै तैसेही जाग्रत जगत्भी भ्रमसे कल्पाहै। हे रामजी! एक गोपदमें मन अनेक योजन रचलेताहै और कल्पका क्षण और क्षणका कल्प रचलेताहै। जैसा कुछ मनमें तीव्र संवेगहोताहै तैसाही होकर भासताहै, उसको रचनेमें विलम्ब नहीं लगता; जो कुछ देशकाल पदार्थहैं वहमनसे उपजे हैं और सबका कारणरूप मनही

हैं। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी वृक्षसे उपजेहैं वे वृक्षरूपहैं; जैसे समुद्रमें लहरें होतीहैं वे जलरूपहैं और जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसेही नानाप्रकारके स्वभाव मनसे उपजे दृष्ट आते हैं और सब मन रूप हैं। हे रामजी! कर्त्ता–कर्म–क्रिया; द्रष्टा–दर्शन–दृश्य सब मनहीका फैलावाहै। जैसे सुवर्णसे नानाप्रकार के भूषण भासतेहैं और जब सुवर्णका ज्ञानहुआ तब सब भूषण एक सुवर्णहीभासताहै, भूषण भाव नहीं भासता तैसेही; जबतक आत्माका प्रमादहै तबतक द्वैतरूप जगत् भासताहै और जब आत्मज्ञान होताहै तब सबभ्रम मिटजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तमाहात्म्यवर्णनन्नाम एकोनाशीतितमस्सर्गः ७९॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! अब एकवृत्तांत जो पूर्वकालमें हुआहै तुमको सुनाताहूं। यहजगत् इन्द्रजालवत्है। जैसेमनरूपी इन्द्रजालमें यहजगत् स्थितहै तैसे तुमसुनो। इसपृथ्वीमें एक उत्तरपाद नाम देशथा, उसमें एक बड़ा बनथा और वहां नानाप्रकार के वृक्ष, फूल, फल और तालथे जिन पर मोर आदिक अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करतेथे। फूलोंसे सुगन्धें निकलतीथीं और विद्याधर, सिद्धगण और देवता आनकर विश्राम करतेथे, किन्नर गानकरतेथे और मन्द २ पवन चलताथा। निदान उस स्थान में महासुन्दर रचना बनीथी और स्वर्णवत् महाकल्पवृक्षलगेथे। उसदेशका लवण नाम राजा अति तेजवान् और धर्मात्मा राजा हरिश्चन्द्रके कुलमें उपजा। उसका ऐसा तेजहुआ कि शत्रु उसका नाम स्मरणकरे तो उसको ताप चढ़ जावे और वह श्रेष्ठ पुरुषोंकी पालनाकरे। उसराजा के यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूर्णहोगई और स्वर्गमें देवता और विद्याधर यशगातेथे। उस राजामें लोभ और कुटिलता नथी और वह बड़ा बुद्धिमान और उदारथा। एक दिन सभामें बड़े ऊंचे सिंहासन पर वह बैठाथा और सुन्दर स्त्रियोंका नृत्यहोता था; अतिसुन्दर बाजे बजतेथे और मधुरध्वनि होती थी। राजाके शीशपर चमर झुलताथा और मंत्री और मण्डलेश्वरों की–सेना आगेखड़ी राजाको देश मण्डलकी वार्त्ता सुनाती थी। इतिहास और कथाकी पुस्तकें ढांपके उठारक्खी थीं और भाटस्तुति करतेथे। केवल दो मुहूर्त्त दिनरहगया था कि, उसकालमें एक इन्द्रजाली बाजीगर आडम्बर संयुक्त सभामें आया और राजासे कहने लगा; हेराजन्! आप मेरा एक कौतुक देखिये। इतना कहकर उसने अपना पिटारा खोला और उसमें से एक मोरकी पूंछ निकालकर घुमाने लगा। उससे राजा को नानाप्रकारकी रचना भासने लगी–मानो परमात्माकी मायाहै और नाना प्रकार के रङ्ग राजाने देखे। उसी क्षणमें किसीमण्डलेश्वरका दूतएक घोड़ा लेकर राजा के निकट आया और बोला; हे राजन्! यह महाबलवान् घोड़ा राजाने आपको दिया

हैं। जैसे उच्चैःश्रवा इन्द्रका घोड़ा समुद्रमथनेसे निकलाहै तैसाहीयहहै और इसका पवनके सदृश वेगहै। मेरेस्वामीने कहाहै कि,जो उत्तम पदार्थहै वहवड़ेको देनाचाहिये और यहआपके योग्यहै इससेआप इसेग्रहण कीजिये। तबइन्द्रजालीबोला; हे राजन्! आप इसघोड़े पर आरूढ़हों; इसपर चढ़कर आप शोभापावेंगे। इतनासुन राजा घोड़े की ओर देख मूर्च्छित होगया और भयसे मंत्रीभी उसे न जगावें और उसके हाथ पांव भी कुछ न हिलें। जैसे कीचड़ में कमल अचल होता है तैसेही राजा अचल होगया और दो मुहूर्त्त पर्यन्त मूर्च्छितरहा। भाट और कवि जो स्तुति करतेथे वे सवचुप होरहे और मंत्री और नौकर भय और संशयके समुद्रमें डूबगये और उन्होंने जानाकि; राजाके मनमें कोईवड़ी चिन्ता उपजीहै और सबके सबअति आश्चर्यमानथे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेइन्द्रजालोपाख्याने
नृपमोहोनामअशीतितमस्सर्गः८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दोमुहूर्त्त के उपरान्त राजा चैतन्यहुआ और उसका अंगहिलकर सिंहासनसे गिरनेलगा, तबराजाके मंत्री और२ नौकरों ने उसकी भुजा पकड़के थांभा परन्तु राजाकी बुद्धिव्याकुल होगई और बोलेकि, यहनगर किसकाहै, यह सभाकिसकी है और इसका कौनराजाहै? जब इस प्रकारका वचन मंत्रियोंने सुना तो शान्तहुये और प्रसन्न होकर कहने लगे; हे राजन्! आपक्यों व्याकुलहुये हैं? आपका मनतो निर्मलहै और आप उदारात्माहैं। जिनपुरुषोंकी प्रीति पदार्थों में होतीहै और आपातरमणीय भोगोंमें चित्तहै उनकामन मोहमें भरजाता है और जो सन्तजन उदारहैं उनकाचित्त निर्मल होताहै। उनकामन मोहमें कैसेपड़े? हे देव! जिनका चित्तभोगों की तृष्णामें बँधाहै उनकामन मोहजाता और जो महापुरुषसन्त जनहैं उनकामन मोहमें नहींडूबता। जिनका चित्तपूर्ण आत्मतत्त्व में स्थितहुआ है और बड़ेगुणोंसे सम्पन्नहैं उनको शरीरकेरहने और नष्टहोने में कुछमोह नहींउपजता; और जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्तहुआ है और जो अविवेकी हैं उनका चित्त देश,काल,मंत्र और औषधके वशसे मोहको प्राप्तहोताहै। आपका चित्त तो विवेक भावको ग्रहण करताहै क्योंकि, आपनित्यही नूतन कथा और शब्द सुनतेहो। अब आपकैसे मोहसे चलायमान हुयेहो? जैसे वायुसे पर्वत चलायमानहो तैसेही आप चलायमानहुयेहैं—यह आश्चर्यहै! आप अपनी उदारता स्मरणकीजिये। इतनासुन कर राजा सावधानहुआ और उसके मुखकी कान्ति उज्ज्वलहुई—जैसे शरत्कालकी सूखीहुई मञ्जरी वसंत ऋतुमें प्रफुल्लित होतीहै तैसेही,राजा नेत्रोंको खोलकरदेखने लगा और जैसेसूर्य राहुकी ओर और सर्प नेवलेकी ओर देखताहै तैसेहीइन्द्रजाली

की ओर देखकर बोला, हे दुष्ट इन्द्रजाली! तूने यहक्या कर्मकिया? राजासेभी कोई ऐसाकर्म करता है? जैसेजलबिना मछली कष्टपाके फिरजल में प्रसन्नहो तैसेही मैं हुआहूं। बड़ाआश्चर्य है! परमात्मा की अनन्त शक्तिहैं और अनेक प्रकारकेपदार्थ फुरतेहैं। मैंने दो मुहूर्त्त में क्याहीभ्रमदेखा। मेरामन सदाज्ञानके अभ्यासमेंथा सोतो मोहगया तो प्राकृतजीवोंका क्याकहनाहै? मैंने बड़ाआश्चर्य्य भ्रम देखा है! यह इन्द्रजाली मानों सम्बरदैत्यहै कि, उसने दो मुहूर्त्त में मुझको अनेक देश,काल और पदार्थ दिखाये। जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्त में नानाप्रकार के पदार्थ रचलेवें तैसेही एक मुहूर्त्त में इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं। मैं वह सब तुम्हारे आगे कहताहूं—मानों सारीसृष्टि इसके पिटारे में है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराजाप्रबोधोनामएकाशीतितमस्सर्ग्गः ८१॥

राजाबोला; हे साधो! मैं इस पृथ्वीका राजाहूं और सब पृथ्वीमें मेरीआज्ञा चलती है और मैं इन्द्रजालीकी नाईं सिंहासनपर बैठताहूं जैसे स्वर्ग में इन्द्रकेआगे देवता होतेहैं तैसेही मेरे आगे भृत्य और मन्त्री हैं। ऐसी उदारता से मैं सम्पन्नहूं पर मैंनेबड़ाभ्रम देखा। हे साधो! जब इसइन्द्रजालीने पिटारे से मोरकीपूंछ निकालकर घुमाई तो वह मुझको सूर्य्यकी किरणोंकीनाईं भासी और जैसे बड़ामेघ गरजके शान्तहोजाता है और पीछे इन्द्रधनुष दिखता है तैसेही वह विचित्ररूप पूंछ मुझको दीखी। फिर एक दूत घोड़ालेकर आया उसपर मैं आरूढ़ हुआ और वह चित्तही से मुझको दूरसेदूर लेगया। जैसे भोगोंकी वासनासे मूर्ख घरही बैठेदूरसेदूर भटकते फिरते हैं तैसेही मुझकोवहघोड़ा दूरसेदूरलेगया। फिर वहमुझे एकमहाभयानक निर्जन देशमें लेगया जैसे प्रलयकालके जलेहुये स्थानों के समान था। वहां मानों दूसरा आकाश था और सातसमुद्र थे और उनके समान एक आठवां समुद्रथा। चारोंदिशा के जो चारसमुद्र वर्णनकिये हैं उन के समान वह मानों पांचवां समुद्र था निदान वह मुझे महाभयानक स्थानों और देशोंको लांघकर एक महावनमेंलेआया। जैसे ज्ञानीका चित्त आकाशवत् होता है और जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर और शून्यहोता है तैसेही स्थानमें मुझे लेगया; जहां घास, वृक्ष, जीव, मनुष्य कोईभी दृष्टि न आताथा वहां मैं महाकष्ट और दीनताको प्राप्तहुआ। जैसे धन और बांधवों से और देश और बलसे रहित पुरुष कष्टपाता है तैसेही मैं कष्टवान् हुआ। तब दिनका अन्तहोगया और वहां उजाड़में कष्टसे मैंने रातबिताई और पृथ्वीपर सोया परन्तु निद्रा न आई और दुःखसे कल्पसमान रात्रिहोगई। जब सूर्य्य उदय हुआ तब मैं वहांसे चला और आगेगया तो पक्षियोंका शब्दसुना और वृक्ष देखे परन्तु खानेपीने को कुछ न पाया। उन वृक्षोंको देखके मैं प्रसन्न हुआ—जैसे मृत्युसे छूटा

पुरुष रोगसेभी प्रसन्नहो-और एक जामुनके वृक्षकेनीचे बैठ गया-जैसे मार्कण्डेय ऋषीने प्रलयके समुद्रमें भ्रमकर वटका आश्रय लियाथा । तब वह घोड़ा मुझको छोड़के चलागया और सूर्य्य अस्तहुआ तो मैंने वहां रात्रिबिताई परन्तु न कुछ भोजन किया और न जलपान किया और न स्नानही किया । इससे मैं महादीन हुआ । जैसे कोई बिकामनुष्य दीन होजाता है और जैसे अन्धकूपमें गिरामनुष्य कष्टमान होताहै तैसेही मैं कष्टमानहुआ और कल्पके समान रात्रिबीती । जब वहां अन्नपानी कुछ दृष्टि न आया तब मैं आगेगया जहां पक्षी शब्द करतेथे । उससमय आधापहर दिन रहगया था तब एक कन्या मुझे दिखाईदी जो अपने हाथमें मृत्तिकाकी एकमटकी में पकेहुये चावल और जांबूके रसका भराहुआ पात्र लिये जाती थी मैं उसके सन्मुख आया-जैसे रात्रिके सन्मुख चन्द्रमाआताहै और कहा कि, हे बाले ! मुझको भोजनदे, मैं क्षुधासे आतुरहूं ! जो कोई दीन आर्त्तको अन्नदेताहै वह बड़ी सम्पदापाताहै । हेसाधो ! जब मैंने बारम्बारकहा तब उसनेकहा तुमतो कोई राजा भासते हो कि, नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिने हुयेहो, मैं तुमको भोजन न दूंगी । ऐसेकहके वह आगेचली और मैंभी उसकेपीछे जैसे छायाजावे तैसे चला । मैं कहताजाताथा कि, हे बाले ! मुझे भोजनदे कि, मेरीक्षुधाशान्त हो और वह कहती, हे राजन् ! हम नीचलोगहैं अपने प्रयोजनबिना किसीको भोजन नहींदेते; जो तुममेरे भर्त्ताहो तो मैं तुमको यह अन्न जो अपने पिताकेनिमित्त लेचलीहूं दूं । मेरा पिता मशानमें बैतालकी नाईं अवधूतहो बैठाहै और धूरसे अङ्गभरे हैं, जो तुम मेरेभर्त्ता बनो तो मैं देतीहूं क्योंकि; भर्त्ता प्राणोंसेभी प्यारा होताहै पितासे क्षमा करालूंगी । मैंने कहा अच्छा मैं तुझसे विवाह करूंगा पर मुझे भोजनदे । हे साधो ! ऐसाकौनहै जो ऐसी आपदा में अपने वर्णाश्रम के धर्मको दृढ़ रक्खे ! उसने मुझ को आधा भोजन और आधा जांबूका रसदिया, उसे भोजनकर मैं कुछ शान्तिमान् हुआ परन्तु मेरा मोह निवृत्त न हुआ । तब उसने मेरे दोनों हाथ पकड़के मुझको आगे कर लिया और अपने पिता के निकटले गई-जैसे पापीको यमदूत लेजाते हैं-और कहा, हेपिता ! यह मैंने भर्त्ता कियाहै । उसके पिताने कहा अच्छा किया और ऐसे कहकर चावल और जांबूके रस का भोजन किया । फिर उसके पिताने कहा, हे पुत्री ! इस को अपने घरलेजा । तबवह मुझको अपने घरलेगई और जब अपनेघरके निकट गई तब मैंनेदेखा कि, वहां अस्थि, मांस और रुधिरहै और कुत्ते, गर्दभ, हस्ति आदिक जीवोंकीखालें पड़ीहैं । उनको लांघकर वह मुझे अपने घरमेंलेगई-जैसे पापी को नरकमें यमदूत लेजातेहैं । वहांसे एकबगीचाथा उसमें जाकर वह अपनीमाताके पास मुझेलेगई और कहा; हे माता ! यहतेरा जामातृ हुआहै । माताने कहा अच्छी

वातहै। निदान उनके घर हमने विश्रामकिया और उस चाण्डालीने मुझको जो भोजनदिया उसको मैंने भोजनकिया-मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगे। फिर विवाहका दिन नियत कियागया और उसदिन मैंने विवाह किया। चाण्डाल हँसतेथे और नृत्य करतेथे मानों मेरेपाप नृत्यकरतेथे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचाण्डालीविवाहवर्णनन्नामद्व्यशीतितमस्सर्गः ८२॥

राजाबोले हेसाधो! बहुत क्याकहूं सात दिनतक विवाहका उत्साहरहा और फिर वहां मैं एक बड़ा चाण्डाल हुआ। आठमहीने वहां रहके फिर मैं और स्थानों में रहा। निदान वह चाण्डाली गर्भवतीहुई और उससे एक कन्या उत्पन्नहुई जो शीघ्रही बढ़गई। तीन वर्षपीछे एक बालक उत्पन्नहुआ और फिर एक पुत्र और एक कन्याऔर भी उपजी। इसीप्रकार उसके तीन पुत्र और तीन कन्या उत्पन्न हुई और मैं एक बड़ा परिवारवान् चाण्डाल हुआ। उस चाण्डाली सहित मैं चिरकाल पर्यन्त चाण्डालों में विचरता रहा और जैसे जालमेंपक्षी बँधजाताहै तैसे मैं उनमें बन्धमानहुआ। हे साधो! उनमें मैंने बड़ेकष्टपाये, प्रथम जिस शिरमें पटका भी चुभताथा उसपरमें भारउठाऊं; नीचे नंगे चरणजलें और शिरपर सूर्य्यतपें। रात्रिको मैं कांटोंपर सोऊं; कोई वस्त्र न मिले और जीव जन्तुओं के लोहूसे भरेहुये और गीले पुराने कपड़े शिरहाने रक्खूं। कुक्कुट, हस्ती आदिक अशुचि पदार्थों का भोजन करूं और उनके रुधिरका पानकरूं। ऐसी मेरी चेष्टा होगई कि, जालसे पक्षी मारूं; कण्डी से मच्छ कच्छ आदिक पकड़ूं; अनेक प्रकारके क्रूरनीच कर्म्म करूं और जैसी कैसी वस्तुमिले उसे भोजन करूं; निदान ऐसी व्यवस्था होगई कि अस्थिमांस के निमित्त हम आपसमें लड़ें और शीतकालमें शीत से; उष्णकालमें उष्णतासे कष्टमान हों। इस से मेराशरीर बहुतकृश होगया और अवस्था भी वृद्धहुई; मशानों में हमारा बहुतकाल व्यतीत हुआ और मांस और रक्त पान करते रहे। जो वैताल जन आवें उनको हम मारें–जैसे चण्डिकाने दैत्यों को माराथा और उनकी आंतड़े और चमड़े तले बिछाके सोवें और शिरके शिरहाने रक्खें। ऐसेही चिरकाल पर्यन्त हम चेष्टाकरतेरहे और बंधुओं से बहुत स्नेह बढ़गया पर वर्षाकालकी नदीकी नाईं हमारीतृष्णा बढ़ती जाती थी जिन मृत्तिका के पात्रों में चाण्डाल भोजन करजातेथे उन्हीं बासनों में हमभी भोजन करते थे कालवशात् वर्षा बन्दहोगई और कालपड़ा; सूर्य्य ऐसे तपने लगे मानों द्वादश सूर्य्य इकट्ठे तपते हैं और दावाग्नि वनमें लगी हैं। वनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पानेलगे और अपनादेश छोड़के देशान्तर जानेलगे। निदान महाउपद्रव हुआ; समय बिनाही मानों प्रलय आयाहै तब क्षुधा और तृष्णा से कितने जीव मृतक होगये; कितने गिरपड़े और हमकोभी बहुत कष्ट

हुआ । तब हम तीनों पुत्रों; तीनों कन्या और स्त्री सहित वहां से निकले और जहां अन्नजलसुनें वहांही जावें । फिर यहभी हाथ न आवे तब हम बहुत शोकवान् हुये और शरीर निरससा होगया । निदान सब ऐसे कष्टमान हुये कि, पुत्र पिताको न सँभाले और पिता पुत्रको न सँभाले; बान्धवों का स्नेह आपसमें छूटगया और सब अपने अपने वास्ते दौड़े ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेइन्द्रजालोपाख्यानेउपद्रव वर्णनन्नामत्र्यशीतितमस्सर्गः ८३ ॥

राजा बोले; हे सभा ! इसप्रकार हम चिरकालतक विचरते फिरे; शरीर बहुत वृद्धहोगया और बालबरफकी नाईं श्वेत होगये । जैसे सूखापात वायुसे विचरताहै तैसेही हमभी कर्मों के वश से भ्रमते रहे । जो कुछ राजा का अभिमानथा वह मुझे विस्मरण होगया और चाण्डालभाव दृढ़ होगया । सब जीव कष्टमान होके कलत्र को छोड़गये और कितने पहाड़पर चढ़कर दुःखके मारे गिरगिर पड़े । और जैसे चिड़िया को बाज भोजन करताहै तैसेही जीवों को भेड़िये भोजन करते थे । एक वृक्ष के नीचे मैंने विश्राम किया तब एक बालक जो सबसे छोटा था मेरेपास आया और बोला;हे पिता ! मुझको मांस दे कि; मैं भोजन करूं; नहीं तो मेरे प्राण निकलते हैं। तब मैंने कहा मांस तो नहीं है; उसने कहा कहींसे लादे ! छोटा पुत्र सबसे प्यारा होता है इससे मैंने कहा; हे पुत्र ! मेरामांसहै वह खाले ! तब उसदुर्बुद्धिने कहा; दे ! मैंने वनसे लकड़ियां इकट्ठी करके अग्नि जलाई और कहा, हे पुत्र! मैं अग्निमें प्रवेश करताहूं जब परिपक्व होजाऊं तब तू भोजन करना । हेसभा! इसप्रकार मैंने स्नेहके वश कहा कि, किसीप्रकार यह जीतेरहें । ऐसे कहकर मैं चितामें घुसगया और जब मुझको उष्णतालगी तब मैं कांपा और तुमको दृष्टआया । फिर कुछसावधान हुआ और तुरियां वाजने लगीं । हे साधो ! इसप्रकार मैंने चरित्र देखा सो तुम्हारे आगे कहा । जैसे मार्कण्डेयने प्रलयमें क्षोभ देखे और देवतोंसे कहे तैसेही मैंने तुमसे अपना वृत्तान्त कहाहै । जब इन्द्रजालीने पूंछघुमाईथी तब उसकेसामने मैं घोड़ेपर आरूढ़ हुआथा और इतनेकाल प्रत्यक्ष भ्रम देखतारहा । बड़ा आश्चर्यहै कि, मेरे से विवेकवान् राजाको इसने मोहितकिया तो और प्राकृत जीवों की क्या वार्त्ताहै ! वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इसप्रकार तेजवान् राजाने कहा तब वह सांवरीक अन्तर्द्धान होगया और सभामें जोमंत्री आदि बैठेथे सब आश्चर्यमान् हुये और परस्पर देखके कहनेलगे; बड़ा आश्चर्यहै ! बड़ा आश्चर्यहै ! भगवान्की माया विचित्र रूपहै । यह सांवरी माया नहींहै क्योंकि; सांवरी अपने लोभके निमित्त तमाशा दिखाताहै पीछे यत्नसे धनआदिक पदार्थ मांगताहै पर यह लियेबिनाही अन्तर्द्धान होगया । यह

ईश्वरकी मायाहै जिससे ऐसा विवेकवान् राजा मोहगया। जो ऐसा बड़ा तेजमान और शूरमाराजा मोहित हुआ तो सामान्य जीवोंकी क्या वार्त्ताहै। हे रामजी! ऐसे संदेहमान होकर सब स्थितहुये और मैंभी उससभामें बैठाथा। यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखाहै किसीके मुखसे सुनके नहीं कहा। हे रामजी! यह जो अणुरूपमनहै सो महा-मोह और अविद्याहै। इसके फुरनेसे अनेक प्रकारों का मोह दिखताहै। जब यहमन उपशमहो तभी कल्याणहै। इससे इसमनको जोबहुत कल्पना उठतीहैं उनकोत्यागकर आत्मपदमें स्थितकरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम चतुरशीतितमस्सर्ग्गः ८४॥

वशिष्ठजी बोले;हे रामजी! आदिजो शुद्ध परमात्मासे चित्त संवेदन फुराहै वह कलनारूप होके स्थितहुआहै; उसीसे दृश्य सत्यहो भासताहै। आत्माके प्रमादसे मोहमें प्राप्तहुआहै और चित्तके फुरनेसे चिरपर्यंत जगत्में मग्नहोरहाहै। वह मन असत्यरूपहै और उस मननेही सम्पूर्ण जगत् विस्ताराहै जिससे अनेक दुःखों को प्राप्त हुआहै। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कलपकर आपही भयमान होताहै। वहीमन जब संसारकी वासनाको त्यागकर आत्मपदमें स्थितहोताहै;तब जैसे सूर्य की किरणोंसे अन्धकार नष्टहोजाताहै; तैसेही एकक्षणमें सब दुःख नष्टहोजाते हैं। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोईनहीं जो अभ्यास कियेसे प्राप्तनहो। इससे जब आत्म पदका अभ्यास कीजियेगा तब वह प्राप्तहोगा। आत्मपदके अभ्यास कियेसे आत्मा निकट भासताहै और संसार दूरभासता;और जबजगत्का अभ्यासदृढ़होताहै तबजगत् निकट भासताहै और आत्मा दूरभासताहै। हेरामजी! जो मूर्ख मनुष्यहै उसको अभयपदमें भयहोताहै। जैसे पथिकको दूरसेवृक्षमें वैताल कल्पना होतीहैऔर भय पाताहै तैसेही चित्तकी वासनासे जीव भयपाताहै। हेरामजी! वासनासहित मलीन मनमें नानाप्रकार संसारभ्रम उठताहै और जब आत्म पदमें स्थितहोताहै तब भ्रम मिटजाताहै। जैसा मनमें निश्चय होताहै तैसाही होभासता है; यदि मित्रमें शत्रु बुद्धि होती है तो निश्चय करके वह शत्रुहोजाताहै और मदसे उन्मत्तको सम्पूर्ण पृथ्वी भ्रमती दीखतीहै और व्याकुल होताहै; तोचन्द्रमाभी श्यामसा भासता है। जो अमृ-तमें विषकी भावना होतीहै तो अमृतभी विषकी नाईं भासताहै। यह जाग्रत पदार्थ देश, काल और क्रिया मनसे भासते हैं। हे रामजी! संसारका कारण मोहहै; उससे जीव भटकता है। इसलिये ज्ञानरूपी कुल्हाड़ेसे वासना रूपी मलीनताको काटो; आत्मपद पानेमें वासनाही आवरण है। हे रामजी! वासना रूपी जाल में मनुष्य रूपी हरिण फंसकर संसार रूपी वनमें भटकताहै। जिस पुरुषने विचारकरकेवासना

नष्टकीहै उसको परमात्माका प्रकाश भासताहै। जैसे बादलसे रहित सूर्य्य प्रकाशित होताहै तैसेही वासना रहित चित्तमें आत्मा प्रकाशता है । हे रामजी ! मनहीको तुम मनुष्य जानो; देहको मनुष्य न जानना क्योंकि; देह जड़है और मन जड़ और चेतनसे विलक्षण है । मनसे कियाहुआ कार्य्य सफल होताहै। जो मनसेदिया और जो मनसे लियाहै वही दिया और लियाहै और जो देहसे कियाहै वहभी मननेही कियाहै । हे रामजी ! यह सम्पूर्ण जगत् मनरूपहै । मनही पर्वत, आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी है सूर्य्यादिकों का प्रकाश मनहीसे होताहै । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब मनहीसे ग्रहण होतेहैं और नानाप्रकारकी वासनाओंसे नानाप्रकारके रूप मनही धरताहै। जैसे नटवा नाना प्रकारके स्वांग धारताहै तैसेही नाना प्रकारकेरूप मनही धरता है लघु पदार्थको मनही दीर्घ करता है। सत्यको असत्यकी नाईं और असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं मनही करताहै; और मनही मित्रको शत्रु और शत्रुको मित्र करताहै । हे रामजी ! जैसीवृत्ति मनकी दृढ़होतीहै वही सत्यहो भासतीहै । हरिश्चन्द्रको एक रात्रिमें बारह वर्षका अनुभवहुआ था और इन्द्रको एक मुहूर्त्तमें युगों का अनुभवहुआथा और मनहीके दृढ़ निश्चय से इन्द्र ब्राह्मणके दशोंपुत्र ब्रह्मपदको प्राप्त हुयेथे। हे रामजी ! जो सुखसे बैठेहुयेको मनमें कोई चिन्ता आन लगी तो सुखही में उसको रौरव नरक होजाताहै और जो दुःखमें बैठाहै और मनमें शान्त है तो दुःखभी सुखहोताहै । इससे जैसा निश्चय मनमें होताहै वैसाही हो भासताहै और जिस ओर मनका निश्चय होताहै उसी ओर इन्द्रियोंका समूह विचरताहै । इन्द्रियोंका आधारभूत मनहै; जो मन टूटपड़ताहै तो इन्द्रियां भिन्न भिन्न होजातीहैं । जैसे तागेके टूटेसे मालाके दाने भिन्न भिन्न होजातेहैं तैसेही मनसे रहित इन्द्रियां अर्थांसे रहित भिन्न होती हैं; वास्तवमें आत्मतत्त्व सबमें अधिष्ठान स्थितहै और स्वच्छ, निर्विकार, सूक्ष्म, समभाव नित्य और सबका साक्षीभूत और सब पदार्थोंका ज्ञाताहै। वहदेहसेभी अधिक सूक्ष्मरूपहै अर्थात् अहंभावके उत्थान से रहित चिन्मात्रहै; उसमें मनके फुरनेसे संसार भासताहै, वास्तवमें द्वैत भ्रमसे रहितहै । सब जगत् आत्माका किञ्चिन मय रचा है और सब में चैतन शक्ति व्यापी है । बायुमें स्पन्द; पृथ्वी में कठोरता; सूर्य्य और अग्नि आदिक में प्रकाश; जलमें द्रवता; और आकाशमें शून्यता वही है और सब पदार्थों में वही चैतनशक्ति व्यापरही है । वास्तवमें उसमें अनेकता नहीं है, मनसे भासती है; शुक्लपदार्थ को कृष्ण और देश, काल, पदार्थ, क्रिया और द्रव्यको मनही विपर्यय करताहै । हे रामजी ! जैसे निश्चय मनमें दृढ़होताहै वही सिद्धहोताहै और मन बिना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता । हे रामजी ! जिह्वा से नानाप्रकारके भोजन करता है परन्तु मन और ठौर होता है तो

उसका कुछ स्वाद नहीं आता और नेत्रों से चित्त सहित देखता है तो रूपका ज्ञान होताहै; इसकारण मन विना किसी इन्द्रीका विषय सिद्ध नहीं होता और अन्धकार और प्रकाश भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! सब पदार्थ मनसे भासते हैं। जैसे नेत्रोंमें प्रकाश नहींहोता तो कुछ नहीं भासता तैसेही विद्यमान पदार्थ भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! इन्द्रियोंसे मन नहींउपजा परन्तु मनसे इन्द्रियां उपजी हैं और जो कुछ इन्द्रियोंका विषय दृश्य जालहै वह सब मनसेउपजाहै। जिन पुरुषों ने मन वश कियाहै वही महात्मापुरुष पण्डितहैं और उनको नमस्कारहै। हे रामजी! यदि नानाप्रकार के भूषण और फूल पहिरेहुये स्त्री प्रीतिसे कण्ठ लगे पर जो चित्त आत्मपद में स्थितहै तो वह मृतक के समानहै अर्थात् उसको इष्ट अनिष्टका राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष मनही उपजाताहै; मनके स्थित हुये राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यान स्थित वन में बैठाथा और उसके हाथको कोई वनचरजीव तोड़लेगया परन्तु उसको कुछ कष्ट न हुआ क्योंकि; मन उसका स्थितथा। यही मन फुरनेसे सुखकोभी दुःख करताहै और अपने में स्थितहुये दुःखको भी सुख करता है। हे रामजी! कथाके सुनने में जो मन किसी और चिन्तवनमें जाताहै तो कथाकेअर्थ समझमें नहींआते और जो अपने गृहमेंबैठाहै और मनके सङ्कल्पसे पहाड़पर दौड़ता२ गिरपड़ताहै तो उसको प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो मनकाही भ्रमहै। जैसी फुरना मनमें फुरतीहै वही भासतीहै। जैसे स्वप्नेमें एकक्षणमें नदी पहाड़ आकाशादिक पदार्थ भासनेलगतेहैं तैसेही यह पदार्थ भी भासतेहैं। हेरामजी! अपने अन्तष्करणमें सृष्टि भी मनकेभ्रमसे भासती है। जैसे जलके भीतर अनेक तरङ्ग होतेहैं और वृक्षमें पत्र, फूल, फल, टास होते हैं तैसेही एकमनकेभीतर जाग्रत, स्वप्न आदिक भ्रमहोतेहैं। जैसे सुवर्णसे भूषण अन्य नहींहोते तैसेही जाग्रत और स्वप्न अवस्था भिन्ननहीं। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदेजल से भिन्न नहीं और जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको लेकर अनेकरूप धरताहै तैसेही मनवासनासे अनेकरूपधारताहै। हेरामजी! जैसा स्पन्दमें दृढ़होताहै तैसाही अनुभव होताहै। जैसे लवणराजाको भ्रमसे चाण्डाली का अनुभव हुआ था तैसेही यह जगत्का अनुभव मनोमात्रहै; चित्तके भ्रमसे भासताहै। हे रामजी! जैसी जैसी प्रतिभा मनमेंहोतीहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै और यहसम्पूर्ण जगत् मनमात्रहै। अब जैसे तुम्हारी इच्छाहो वैसे करो। जैसा जैसा फुरना मनमें होताहै तैसा २ हो भासताहै। मनके फुरनेसे देवता दैत्य और दैत्य देवता होजातेहैं और मनुष्य; नाग और वृक्षहोजातेहैं; जैसे लवणराजाने आपदाका अनुभव कियाथा। हे रामजी! मन के फुरनेसेही मरना और जन्महोताहै और संकल्पसेही पुरुषसेस्त्री और स्त्रीसे पुरुष

होजाता; पिता; पुत्रहोजाताहै और पुत्र; पिता होजाताहै । जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांगसे अनेक रूप धरताहैं; तैसेही अपने सङ्कल्पसे मन भी अनेक रूप धरताहै । हे रामजी ! जीव निराकार है पर मनसे आकारकी नाईं भासता है । उस मनमें जो मनन है वही मूढ़ताहै; उस मूढ़तासे जो वासना हुईहै उस वासनारूपी पवनसे यह जीवरूपी पत्र भटकताहै और संकल्प के वश हुआ सुख दुःख और भयको प्राप्त होताहै । जैसे तेल तिलों में रहता है; तैसेही सुख दुःख मनमें रहते हैं । जैसे तिलों को कोल्हूमें पेरनेसे तेल निकलता है तैसेही मनको मनके संयोगसे सुख दुःख प्रकट भासते हैं । संकल्पदेशमें काल—क्रियासे घनत्वहोता है और देश काल आदिक भी मनमें स्थितहोते हैं । जिनका मनफुरता है उनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है । हे रामजी ! जिनका मन आत्मपद में स्थित है उनको क्षोभ भी दृष्ट आताहै परन्तु मन आत्मपदसे चलायमान नहीं होता । जैसे घोड़ेका सवार रणमें जा पड़ताहै तो भी घोड़ा उसके वश रहताहै; तैसेही उसका मन जो विस्तारकीओर जाताहै तो भी अपने वशही रहताहै । हेरामजी ! जब मनकी चपलता वैरागसे दूर होतीहै तब मन वश होजाताहै । जैसे बन्धनोंसे हस्ती वश होताहै तैसेही जिस पुरुष का मन वश होताहै और संसारकीओरसे निवृत्त होकर आत्मपदमें स्थित होताहै वह श्रेष्ठ महापुरुष कहाताहै । जिसका मन संसारकीओर धावताहै वह दलदलका कीटहै और जिसका मन अचपलहै और शास्त्रके अर्थरूपीसंग और संसारकीओर से निवृत्त होकर एकाग्रभावमें स्थितहुआहै और आत्मपदके ध्यानमें लगाहुआ है वह संसारके बन्धनसे मुक्तहोता है । हे रामजी ! जब मनसे मनन दूर होताहै तब शान्ति प्राप्तहोतीहै—जैसे क्षीरसमुद्रसे मन्दराचल निकला तो शान्तहुआथा । जिस पुरुषका मन भोगोंकीओर प्रवृत्तहोताहै वह पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होताहै । हे रामजी ! जिसका चित्त स्वरूपसे मूढ़हुआ है और संसारके भोगों में लगाहै वह बड़े कष्टपाताहै । जैसे जलके चक्रमें आया तृण क्षोभमान होता है तैसेही यह जीव मनभावकोप्राप्तहुआ भ्रम पाताहै । इससे तुम इस मनको स्थित करो कि, शान्तात्मा हो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तवर्णनन्नामपंचाशीतितमस्सर्गः ८५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, उसकी निवृत्ति के अर्थ में तुमको एक श्रेष्ठ औषध कहता हूं वह तुम सुनो कि; जिसमें यत्नभी अपनाहो; साध्य भी आपहीहो और औषधभी आपहो और सब पुरुषार्थ आपही से सिद्ध होताहै। इस यत्नसे चित्तरूपी वैतालको नष्टकरो। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्टि आवें उनको त्याग करो । जब वांछित पदार्थोंका त्याग करोगे तब मनको जीतलोगे

और अचल पदको प्राप्तहोगे। जैसे लोहे से लोहा कटताहै तैसेही मनसे मनको काटो और यत्नकरके शुभगुणों से चित्तरूपी बैतालको दूरकरो। देहादिक अवस्तु में जो वस्तुकी भावनाहै और वस्तु आत्मतत्त्व में जो देहादिककी भावनाहै उनका त्यागकर आत्मतत्त्वमें भावना लगाओ। हे रामजी! जैसे चित्तमें पदार्थोंकी चिन्तना होती है तैसेही आत्मपद पानेकी चिन्तनासे सत्यकर्मकी शुद्धतालेकर चित्तको यत्न करके चैतन संवित्की ओर लगाओ और सब वासनाको त्यागके एकाग्रताकरो तब परमपदकी प्राप्ति होगी। हे रामजी! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्यागनी कठिन है वे विषयोंकेकीट हैं क्योंकि; अशुभ पदार्थ मूढ़तासे रमणीय भासते हैं। उस अशुभको अशुभ और शुभको शुभ जानना यही पुरुषार्थ है । हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवान्हैं; उन दोनों में जो बली होताहै उसकी जय होती है। इससे शीघ्रही पुरुष प्रयत्नकरके अपने चित्तको जीतो । जब तुमअचित्त होगे तब यत्न बिना आत्मपदको प्राप्त होगे । जैसे बादलोंके अभाव हुये यत्नबिना सूर्यभासताहै तैसेही आत्मपदके आगे चित्तका फुरना जो बादलवत् आवरणहै उसका जब अभाव होगा तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भासेगा सो चित्तके स्थित करनेकामंत्र भी आपसे होताहै। जिसको अपनेचित्त वशकरने कीभी शक्ति नहीं उसको धिक्कार है; वह मनुष्योंमें गर्दभहै। अपने पुरुषार्थसे मनका वशकरना अपनेसाथ परम मित्रता करनी है और अपने मनके वशकिये बिना अपना आपही शत्रु है अर्थात् मनके उपशम किये बिना घटीयंत्रकीनाईं संसारचक्र में भटकता है। जिन मनुष्योंने मनको उपशम किया है उनको परमलाभ हुआ है। हे रामजी! मनकेमारनेकामंत्र यहीहै कि, दृश्यकी ओरसे चित्तको निवृत्तकरे और आत्मचेतन संवित् में लगावे; आत्म चिन्तनाकरके चित्तको मारना सुखरूपहै। हे रामजी! इच्छासे मनपुष्ट रहता है। जब भीतरसे इच्छानिवृत्त होताहै तब मन उपशमहोताहै और जब मन उपशम होताहै तब गुरु और शास्त्रोंके उपदेश और मंत्र आदिकोंकी अपेक्षानहीं रहती। हे रामजी! जब पुरुष असङ्कल्परूपी औषध करके चित्तरूपी रोगकाटे तब उसपदको प्राप्तहो जोसर्व और सर्वगत शान्तरूपहै। इसदेहको निश्चयकरके मूढ़मन ने कल्पाहै। इससे पुरुषार्थकरके चित्तकोअचित्त करो तब इस बन्धनसे छुटोगे। हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाशमें यत्न करके चित्तको लगाओ । जब चिरकाल पर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होगा तब चैतन चित्तका भक्षण करलेगा और जब चित्तका चिन्तत्त्व निवृत्त होजावेगा तब केवल चैतनमात्रही शेषरहेगा। हेरामजी! जबजगत्की भावनासे तुमसुक्तहोगे तब तुम्हारीबुद्धि परमार्थ तत्त्वमें लगेगी अर्थात् बोधरूप हो जावेगी। इससे इसचित्तको चित्तसे ग्रासकरलो; जब तुम परमपुरुषार्थ करके चित्तको

अचित्त करोगे तव महा अद्वैतपदको प्राप्तहोगे । हे रामजी ! मनके जीतने में तुमको और कुछयत्ननहीं केवल एक संवेदनका प्रवाह उलटनाहै कि; दृश्यकी ओरसे निवृत्त करके आत्माकी ओर लगाओ; इसीसेचित्त अचित्तहोजावेगा । चित्तके क्षोभसेरहित होना परमकल्याणहै; इससे क्षोभसे रहित होजाओ । जिसनेमनको जीताहै उसको त्रिलोकीका जीतनातृणसमानहै । हेरामजी ! ऐसेशूरमाहैं जोकि, शस्त्रोंके प्रहारसहतेहैं; अग्निमें जलनाभी सहतेहैं और शत्रुको मारतेहैं तब स्वाभाविक फुरनेके सहने में क्या कृपिणता है ? हे रामजी ! जिनको अपने चित्तके उलटानेकी सामर्थ्य नहीं वे नरों में अधम हैं । जिनको यह अनुभवहोताहै कि, मैं जन्माहूं; मैं मरूंगा और मैं जीवहूं; उनको वह असत्यरूप प्रमाद चपलतासे भासताहै । जैसे कोई किसी स्थान में बैठाहो और मनके फुरने से और देशमें कार्य करनेलगे तो वह भ्रमरूपहै; तैसे ही आपको जन्म मरण भ्रमसे मानता है । हे रामजी ! मनुष्य मनरूपी शरीरसे इस लोक और परलोकमें मोक्ष होने पर्यंत चित्तमें भटकता है । जो चित्तभी मोक्षपर्यंत नाशनहीं होता तो तुमको मृत्युकाभय कैसे होता है ? तुम्हारा स्वरूप नित्यशुद्ध,बुद्ध और सर्व विकारसे रहितहै । यह लोक आदिक भ्रम चित्तमें मनकेफुरनेसे उपजा है; मनसे भिन्न चित्तका कुछ रूपनहीं । पुत्र, भाई, नौकर आदिक जो स्नेहके स्थान हैं और उनकेक्लेशसे आपको क्लेशित मानते हैं वह भी चित्तसे मानते हैं । जब चित्त अचित्त होजावे तब सर्व बन्धनसे मुक्तहो । हे रामजी ! मैंने अर्द्ध उर्द्ध सर्व स्थान देखेहैं;सब शास्त्रभी देखेहैं और उनको एकांतमें बैठकर वारम्वार बिचाराभी है; शांत होनेका और कोई उपाय नहीं; चित्तका उपशम करनाही उपाय है । जबतक चित्त दृश्यको देखताहै तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती और जब चित्त उपशमहोता है तब उसपदमें विश्राम होताहै जो नित्य, शुद्ध, सर्वात्मा और सबके हृदय में चैतन आकाश परम शान्तरूपहै । हे रामजी ! हृदयाकाशमें जो चैतन चक्रहै अर्थात् जो ब्रह्माकार वृत्ति है उसकी ओर जब मनकातीव्र संवेगहो तब सबही दुःखोंका अभाव होजावे । मनका मननभाव उसी ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रसे नष्ट होताहै । हेरामजी ! संसारके भोग जो मनसे रमणीय भासते हैं वे जब रमणीय न भासें तबजानिये कि, मनके अङ्गकटे । जो कुछ अहं और त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं वे सब मनोमात्र हैं । जब दृढ़ विचारकरके इनकी अभावना हो तब मनकी वासना नष्टहो । जैसे हँसिये से खेती कट जातीहै तैसेही वासना नष्ट होनेसे परमतत्त्व शुद्ध भासताहै । जैसे घटाके अभावहुये से शरद काल का आकाश निर्मल भासताहै तैसेही वासनासे रहित मन शुद्ध भासेगा । हे रामजी ! मनही जीवका परमशत्रुहै और इच्छा सङ्कल्प करके पुष्ट होजाता है । जब इच्छा कोई न उपजे तब आपही निवृत्त होजावेगा । जैसे अग्निमें

काष्ठ डालिये तो बढ़जातीहै और यदि न डालिये तो आपही नष्ट हो जातीहै। हे राम जी! इस मनमें जो सङ्कल्प कल्पना उठतीहै उसका त्यागकरो तब तुम्हारा मनस्वतः नष्ट होगा। जहां शस्त्र चलतेहैं और अग्निलगतीहै वहांशूरमा निर्भय होकेजापड़ते हैं और शत्रुको मारते हैं; प्राणजानेका भय नहीं रखते तो तुमको सङ्कल्पत्यागने में क्या भयहोताहै? हे रामजी! चित्तके फैलानेसे अनर्थ होताहै और चित्तके अस्फुरण हुये से कल्याण होताहै—यह वार्त्ता बालकभी जानताहै। जैसे पिता बालकको अनुग्रह करके कहताहै, तैसेहीमैंभी तुमको समझाताहूं कि; मनरूपी शत्रुने भयदिया है और सङ्कल्प कलनासे जितनी आपदा हैं वे मनसे उपजती हैं। जैसे सूर्य की किरणों से मृगतृष्णाका जल दिखताहै; तैसेही सब आपदा मनसे दिखती हैं। जिसका मन स्थिर हुआहै उसको कोईक्षोभ नहींहोता। हे रामजी! प्रलयकाल का पवन चले; सप्त समुद्र मर्यादात्यागके इकट्ठेहोजावें और द्वादश सूर्य इकट्ठेहोके तपें तौभी मन से रहित पुरुषको कोई विघ्न नहीं होता—वह सदा शान्तरूप है। हे रामजी! मन रूपी बीजहै,उससे संसारवृक्ष उपजाहै; सातलोक उसके पत्रहैं और शुभ अशुभ सुखदुःख उसके फलहैं। वह मन सङ्कल्पसे रहित नष्ट होजाताहै और सङ्कल्प के बढ़नेसे अनर्थका कारण होताहै। इससे सङ्कल्पसे रहित उस चक्रवर्त्ती राजपद में आरूढ़हुआ परमपदको प्राप्तहोगा जिस पद में स्थितहुये चक्रवर्त्ती राजा तृणवत् भासताहै। हे रामजी! मनके क्षीणहोनेसे जीव उत्तम परमानन्द पदको प्राप्तहोताहै। हे रामजी! सन्तोषसे जब मनवश होताहै तब नित्य, उदयरूप, निरीह, परमपावन, निर्मल, सम, अनन्त और सर्व विकार विकल्पसे रहित जो आत्मपद शेष रहताहै वह तुमको प्राप्तहोगा॥

श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनशक्तिरूपप्रतिपादनन्नामषडशीतितमस्सर्ग्गः ८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसके मनमें तीव्र संवेगहोताहै उसको मन देखताहै। अज्ञानसेजो दृश्यका तीव्रसंवेग हुआहै उससे चित्तजन्म मरणादिक बिकार देखता है और जिसका निश्चय मनमें दृढ़होताहै उसीका अनुभव करता है; जैसा मनका फुरना फुरताहै तैसाही रूपहोजाताहै। जैसे बरफका शीतल और शुक्लरूप है और काजलका कृष्णरूप है; तैसेही मनका चञ्चल रूपहै। इतनासुन रामजीने पूंछा; हे ब्रह्मन्! यह मन जो वेग अवेग का कारण चञ्चलरूप है उसमनकी चपलता कैसे निवृत्त हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम सत्य कहते हो; चञ्चलतासे रहित मन कहीं नहीं दिखता क्योंकि; मनका चञ्चल स्वभावही है। हे रामजी! मनमें जो चञ्चलता फुरना मानसी शक्तिहै वही जगत् आडम्बरका कारण रूप है। जैसे बायुका स्पन्द रूपहै तैसेही मनका चञ्चलरूपहै। जिसका मन चञ्चलता से रहितहै। उसको

मृतक कहतेहैं । हेरामजी! तप और शास्त्रका जो सिद्धान्त है वह यहीहै कि; मनके मृतकरूपको मोक्ष कहतेहैं; उसके क्षीणहुये सब दुःख नष्ट होजातेहैं । जब चित्तरूपी राक्षस उठताहै तब बड़े दुःखको प्राप्तहोताहै और चित्तके लयहुये अनन्त सुखभोग प्राप्तहोते हैं अर्थात् परमानन्द स्वरूप आत्मपद प्राप्त होताहै । हे रामजी ! मनमें चञ्चलता अविचारसे सिद्धहै और विचारसे नष्ट होजातीहै । चित्तकी चञ्चलतारूप जो वासना भीतर स्थित है जब वह नष्टहो तब परमसारकी प्राप्तिहो ; इससे यत्न करके चपलता रूपी अविद्याका त्यागकरो । जब चपलता निवृत्त होगी तब मन शान्त होगा । सत्य, असत्य और जड़, चैतनके मध्य जो डोलाय शक्ति है उसका नाम मनहै । जब यह तीव्रता से जड़की ओर लगता है तब आत्माके प्रमादसे जड़ रूप होजाताहै; अर्थात् अनात्म में आत्म प्रतीति होतीहै और जब विवेक विचारमें लगताहै तब उस अभ्याससे जड़ता निवृत्तहोजातीहै । और केवल चैतन आत्मतत्त्व भासताहै । जैसा अभ्यास दृढ़होताहै तैसाही अनुभव इसको होताहै और जैसे पदार्थ की एकता चित्तमेंहोती है अभ्यासके वशसे तैसाहीरूप चित्तहोजाताहै । हे रामजी ! जिसपदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्नकरताहै उसपदको प्राप्तहोताहै और अभ्यासकी तीव्रतासे भावितरूप होजाता है । इसीकारण तुमसे कहताहूं कि, चित्तको चित्तसे स्थिरकरो और अशोक पदका आश्रयकरो । जोकुछ भाव अभावरूप संसारके पदार्थ हैं वे सब मनसे उपजे हैं; इससे मनके उपशम करनेका प्रयत्नकरो; मनके उपशम बिना छूटनेका और कोईउपायनहीं और मनको मनही निग्रहकरताहै और कोईनहीं करसक्ता । जैसे राजासे राजाही युद्धकरताहै और कोईनहीं करसक्ता; तैसेही मनसे मनही युद्धकरताहै । इससेतुम मनहीसे मनकोमारो कि;शांतिको प्राप्तहो । हे रामजी ! मनुष्य बड़े संसार समुद्रमें पड़ा है जिसमें तृष्णारूपी सिवारने इसको घेरलियाहै ; इसकारण अधःको चलाजाताहै और राग,द्वेषरूपी भवँरमें कष्टपाताहै । उससे तरने के निमित्त मनरूपी नावहै, जब शुद्धमनरूपी नावपर आरूढ़हो तब संसार समुद्रके पारउतरे;अन्यथा कष्टको प्राप्तहोताहै । हेरामजी ! अपना मनही बन्धनका कारणहै, उसमनको मनहीसे छेदनकरो और दृश्यकीओर जो सदा धाताहै उससे वैराग्य करके आत्मतत्त्वका अभ्यासकरो तब छूटोगे;और उपाय छूटनेका नहीं । जहां जैसी वासना से मन आशाकरके उठे उसको वहांही बोधकरके त्यागेसे तुम्हारी अविद्या नष्ट होजावेगी । हे रामजी ! जबप्रथम भोगों की वासनाका त्यागकरोगे तब यत्न बिनाही जगत् की वासना छूटजावेगी । जब भाव अभाव रूप जगत्का त्याग किया तब निर्वि-कल्प सुखरूप होगा । जब सब दृश्य भाव पदार्थोंका अभाव होताहै तब भावना करनेवाला मनभी नष्ट होताहै । हे रामजी ! जो कुछ संवेदन फुरताहै उस संवेदन

का होनाही जगत् है और असंवेदन होनेका नाम निर्वाणहै संवेदन होनेसे दुःखहै, इससे प्रयत्न करके संवेदन का अभावही कर्त्तव्यहै। जब भावनाकी अभावनाहो तब कल्याणहो। जो कुछ भाव अभाव पदार्थों का राग द्वेष उठताहै वह मनके अवोधसे होताहै पर वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्याहैं। इससे इनकी आस्थाको त्यागकरो, ये सब अवस्तु रूप हैं और तुम्हारा स्वरूप नित्य तृप्त अपने आपमें स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसुखोपदेशवर्णनन्नामसप्ताशीतितमस्सर्गः८७॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! यह वासना भ्रान्तिसे उठी है। जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भ्रान्तिसे भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भ्रान्तिसे भासताहै-इसकी वासना दूरसे त्यागकरो। हे रामजी! जो ज्ञानवान् हैं उनको जगत् नहीं भासता और जो अज्ञानी हैं उनको अविद्यमानही विद्यमान भासता है और संसार नामसे संसारको अङ्गीकार करताहै। ज्ञानवान् सम्यक् दर्शीको आत्मतत्त्वसे भिन्न सब अवस्तु रूप भासताहै। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग और बुदबुदे होके भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछनहीं तैसेही अपनेही विकल्प से भाव अभावरूप जगत् देखताहै; जो वास्तवमें असत्य रूपहै क्योंकि, आत्मतत्त्वही अपने स्वरूप में स्थितहै जो नित्य,शुद्ध, सम और अद्वैत तुम्हारा अपना आपहै। न तुम कर्त्ताहो, न अकर्त्ताहो; कर्त्ता, अकर्त्ता; ग्रहण, त्याग; भेदको लेकर कहाताहै। तुम दोनों विकल्पोंको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो और जो कुछ क्रियाआचार आप्राप्तहों उनको करो पर भीतरसे अनासक्त हो अर्थात् अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मतमानो क्योंकि; कर्त्तव्य आदिक तब होते हैं जब कुछ ग्रहण वा त्यागकरना होताहै और ग्रहणत्याग तब होताहै जब पदार्थ सत्य भासता है पर ये सबपदार्थ तो मिथ्या इन्द्रजालकी मायावत्हैं। हे रामजी! मिथ्या पदार्थोंमें आस्था करनी और उसमें ग्रहण और त्यागकरना क्या है? सबसंसार का बीज अविद्याहै और वह अविद्या स्वरूपके प्रमाद से अविद्यमानही सत्यकी नाईंहो भासतीहै। हे रामजी! चित्तमें चैत्यमय वासना फुरतीहै सोही मोहकाकारणहै। संसार रूपी वासनाकाचक्रहै; जैसे कुम्हार चक्रपर चढ़ाके मृत्तिकासे अनेकप्रकारके घटआदिक बरतन रचताहै तैसेही चित्तसे जो चैत्यमय वासनाफुरतीहै वह संसारके पदार्थों को उत्पन्न करतीहै। यह अविद्यारूपी संसार देखनेमात्र बड़ासुन्दर भासताहै पर जैसे बांस बड़ेविस्तारको प्राप्तहोताहै और भीतरसे शून्यहै तैसेही यहभी भीतरसे शून्य है और जैसे केलेका वृक्षदेखने को विस्तारसहित भासताहै और उसके भीतर सार कुछनहींहोता तैसेही संसार असाररूपहै। जैसे नदीका प्रवाह चलाजाता है तैसेही संसार नाशरूप है हे रामजी! इस अविद्याको पकड़िये तो कुछ ग्रहण नहीं होता; कोमल भासती है पर अत्यन्त क्षीणरूप है और प्रकट आकार भी दृष्टि आते हैं

पर मृगतृष्णाके जलसमान असत्यरूपहै। अविद्या-माया जिससे यहजगत् उपजता है, कहीं विकारहै; कहीं स्पष्टहै और कहीं दीर्घरूप भासतीहै और आत्मासे व्यतिरेक भावको प्राप्तहोतीहै। जड़है परन्तु आत्माकी सत्तापाके चेतन होतीहै और चेतन रूप भासतीहै तौभी असत्यरूपहै। एक निमेषके भूलनेसे वह बड़े भ्रमको दिखातीहै। जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्माहै उसमें तम दिखाती कि, मैं आत्मा नहीं जानता। जैसे उलूकको सूर्यमें अन्धकार भासताहै तैसेही मूर्खोंको अनुभव रूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासताहै जो असत्यरूपहै। जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तार सहित भासती है तैसेही अविद्या नानारङ्ग, विलास, विकार, विषम, सूक्ष्म, कोमल और कठिनरूपहै और स्त्रीकीनाईं चंचल और क्षोभरूप सर्पिणी है; जो तृष्णारूपी जिह्वा से मारडालती है। वह दीपककी शिखावत् प्रकाशमान है। जैसे जबतक स्नेह होता है तबतक दीपशिखा प्रज्वलित होती और जब तेल चुकजाताहै तब निर्वाण होजाती है तैसेही जबतक भोगोंमें प्रीतिहै तबतक अविद्या दृढ़है और जब भोगोंमें स्नेह क्षीणहोताहै तब नष्ट होजातीहै। रागरूपी अविद्या तृष्णाविना नहीं रहती और भोगरूप प्रकाश बिजलीकी नाईं चमत्कार करतीहै। इनके आश्रय में जो कार्यकरो तो नहीं होता, क्षणभंगुररूप हैं। जैसे बिजली मेघके आश्रयहै तैसेही अविद्या मूर्खों के आश्रय रहती हैं और तृष्णा देनेवाली है। भोग पदार्थ बड़े यत्नसे प्राप्त होतेहैं और जब प्राप्त हुये तब अनर्थ उत्पन्न करते हैं। जो भोगोंके निमित्त यत्न करतेहैं उनको धिक्कारहै क्योंकि; भोग बड़े यत्नसे प्राप्तहोते हैं और फिर स्थिरभी नहीं रहते बल्कि अनर्थ उत्पन्न करते हैं। उनकी तृष्णा करके जो भटकते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी! ज्यों ज्यों इनका स्मरण होता है त्यों त्यों अनर्थ होते हैं और ज्यों ज्यों इनका विस्मरण होता है त्यों त्यों सुख होता है। इसकारण अत्यंत सुखका निमित्त इनका विस्मरण है और स्मरण दुःख का निमित्त है। जैसे किसी को क्रूरस्वप्न आता है तो उसके स्मरण में कष्टमान होता है और जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होनेकी स्मृति में अनर्थ जानताहै; तैसेही अविद्या जगत् के स्मरणमें अनर्थ कष्ट होताहै। अविद्या एक मुहूर्त में त्रिलोकी रचिलेती है और एकक्षणमें ग्रासकरलेती है। हे रामजी! स्त्रीके वियोगी और रोगीपुरुष को रात्रि कल्पकी नाईं व्यतीत होती है और जो बहुत सुखी होताहै उसको रात्रि क्षणकी नाईं व्यतीत हो जाती है। काल भी अविद्या प्रमाद से विपर्ययरूप होजाताहै। हे रामजी! ऐसाकोई पदार्थनहीं जो अविद्या से विपर्यय न हो। शुद्ध, निर्विकार, निराकार, अद्वैततत्त्वमें इसके कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पन्द फुरताहै। हे रामजी! यहसब जगत्जाल तुमको अविद्यासे भासताहै। जैसे दीपकका प्रकाश चक्षुइन्द्रियों को रूप दिखाता है तैसेही अविद्या जिन

पदार्थोंको दिखातीहै वह सब असत्यरूपहैं। जैसे नानाप्रकारकीसृष्टि मनोराजमेंहै और जैसे स्वप्नसृष्टि भासतीहै और उनमें अनेक शाखासंयुक्त वृक्षभासते हैं वे सब असत्य रूपहैं तैसेही यह जगत् असत्य रूपहै। जैसेमृगतृष्णाकी नदी बड़े आडम्बरसहित भासती है तैसेही यह जगत्भी है। जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखके मूर्ख मृगजाय पान के निमित्त दौड़ते हैं और कष्टमान होते हैं, तैसेही जगत् के पदार्थोंको देखकर अज्ञानी दौड़के यत्न करते हैं और ज्ञानवान् तृष्णाके लिये यत्न नहीं करते। ज्यों ज्यों मूर्खमृग दौड़ते हैं त्यों त्यों कष्टपातेहैं, शान्ति नहीं पाते; तैसेही अज्ञानी जगत् के भोगोंकी तृष्णा करते हैं परन्तु शान्ति नहीं पाते। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे सुन्दर भासते हैं परन्तु ग्रहण किये से कुछनहीं निकलते तैसेही शान्तिका कारण जगत्में सार पदार्थ कोई नहीं निकलता। जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, वह चैतनसे अभिन्नरूप है परन्तु भिन्नकीनाईं स्थित हुई है। जैसे मकड़ी अपनी तन्तुफैलाकर फिर अपने में लीनकरलेती है, वह उससे अभिन्नरूपहै परन्तु भिन्नकी नाईं भासती है और जैसे अग्निसे धूम निकलकर बादल का आकार हो रस खैंचताहै और मेघ होकर वर्षा करता है तैसेही अविद्या आत्मासे उपजकर और आत्माकी सत्ता पाकर जगत् रचती है। उस जगत्में यह जीव घटी यंत्र की नाईं भटकता है। जैसे रस्सी से बँधीहुई टीड़ी ऊपर नीचे भटकती है तैसेही तीनोंगुणोंकी वासनासे बँधा हुआ जीव भटकता है। जैसे कीचड़से कमल की जड़ उपजती है और उसके भीतर छिद्र होते हैं तैसेही अविद्यारूपी कीचड़ से यह जगत् उपजा है और विकार रूपी दृश्य इसमें छिद्र हैं—सारभूत इसमें कुछनहीं। जैसे अग्नि; घृत और ईंधन के संयोगसे बढ़ती जाती है तैसेही अविद्या विषयोंकी तृष्णा से बढ़ती जाती है। जैसे घृत और ईंधनसे रहित अग्नि शांतहोजातीहै तैसेही तृष्णासे रहित अविद्या शांत होजाती है। जब विवेकरूपी जलपड़े और तृष्णारूपी घृत न पड़े तब अग्नि-रूपी अविद्या नष्ट होजातीहै—अन्यथा नहीं नष्ट होती। हे रामजी! यह अविद्या दीपककी शिखा तुल्यहै और तृष्णारूपी तेलसे अधिक प्रकाशवान् होतीहै। जब तृष्णारूपी तेलसे रहितहो और विवेकरूपी वायुचले तब दीपक शिखारूप निर्वाण होजावेगी और न जानियेगा कि, कहांगई अविद्या कुहिरेकी नाईं आवरण करती भासतीहै परन्तु ग्रहण करिये तो कुछहाथ नहीं आती; देखनेमात्र स्पष्ट दृष्टिआती है परन्तु विचार कियेसे अणुमात्रभी नहीं रहती। जैसे रात्रिको बड़ा अन्धकार भासता है परन्तु जब दीपकलेकर देखिये तब अणुमात्रभी अन्धकार नहीं दीखता, तैसेही विचार कियेसे अविद्या नहीं रहती। जैसे भ्रान्तिसे आकाशमें नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासताहै; जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै, जैसे नावपर चढ़से तटकेवृक्ष

चलते भासतेहैं और जैसे मृगतृष्णाकी नदी, सीपी में रूपा और रस्सी सर्प भ्रमसे भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीको सत्यभासताहै । हे रामजी ! यह जाग्रत जगत्भी दीर्घकालका स्वप्नाहै । जैसे सूर्यकी किरणों में जलबुद्धि मृगके चित्त में आतीहै तैसेही जगत्की सत्यता मूर्खकेचित्तमें रहतीहै । हेरामजी ! जिनपुरुषों को पदार्थोंमें रति होरहीहै, उनकी भावना से उनका चित्त खिंचताहै और उन पदार्थोंको अङ्गीकार करके बड़ेकष्टपाता है । जैसे पक्षी आकाशमें उड़ता है पर दाने में उसकी प्रीति होतीहै उससे चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आताहै और सुखरूप जानके चुगने लगता है तो जाल में फंसता है और कष्टवान् होता है । जैसे कणकी तृष्णा पक्षी को दुःख देती है तैसेही जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दुःखदेती है । हे रामजी ! ये भोग प्रथमतो अमृतकीनाईं सुखरूपभासतेहैं परन्तु परिणाममें विषकीनाईं होतेहैं; मूर्खअज्ञानीको ये सुन्दर भासते हैं । जैसे मूर्खपतङ्ग दीपकको सुखरूपजानके वांछाकरताहै परन्तु जब दीपकसे स्पर्शकरताहै तब नाशको प्राप्तहोताहै तैसेही भोगोंके स्पर्श से ये जीव नाशहोते हैं । जैसे संध्याकाल आकाशमें लाली भासती है तैसेही अविद्यासे जगत् भासताहै । जैसे भ्रमसे दूर वस्तु निकटभासतीहै और निकटवस्तु दूरभासती है; और स्वप्नेमें बहुतकालमें थोड़ा और थोड़ेकालमें बहुतभासता है तैसेही यह सब जगत् जाल अविद्याही भासताहै । वह अविद्या आत्मज्ञानसे नष्टहोतीहै इससे यत्न करके मनके प्रवाहकोरोको । हे रामजी ! जो कुछ दृश्यमान्जगत्है वह सब तुच्छरूप है, बड़ाआश्चर्य है कि; मिथ्याभावना करके जगत् अन्धहुआहै । हे रामजी ! अविद्या निराकार और शून्यहै; उसने सत्यहोकर जगत्को अन्धाकियाहै अर्थात् संसारीलोग असत्रूपपदार्थोंको सत्जानके यत्नकरतेहैं । जैसे सूर्यकेप्रकाशमें उल्लूको अन्धकार भासताहै और भ्रान्तिसे सूर्य्य उसको नहींभासता तैसेही चिदानन्दआत्मा सदाअनुभवसेप्रकाशताहै और अविद्यासे नहींभासता। असत्यरूप अविद्याने जगत्कोअन्धा कियाहै; जो त्रिकर्मोंको कराती है और विचारकिये से नहीं रहती, उससेअपना आप नहीं भासता और बड़ाआश्चर्यहै कि, धैर्य्यवान् धर्मात्माकोभी अपनेवशकरके समर्थ होनेनहींदेती । अविचार सिद्ध अविद्यारूपी स्त्री ने पुरुषोंको अन्धाकियाहै और अनन्त दुःखोंका विस्तार फैलातीहै; यहउत्पत्ति और नाश, सुख और दुःखकोकरातीहै, आत्माको भ्रमातीहै, अनन्त दुःख अज्ञानसे दिखातीहै; बोधसेहीन करती है और काम, क्रोध उपजातीहै और मनमें वासनासे यही भावना वृद्धिकरतीहै । हे रामजी ! यह अविद्या निराकाररूप है और इसने जीवको बांधाहै । जैसे स्वप्नेमें कोई आपको बँधा देखे तैसीही अविद्या है । स्वरूपके प्रमादकाही नाम अविद्याहै और कुछनहीं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअविद्यावर्णनन्नामअष्टाशीतितमस्सर्गः ८८॥

इतनासुन रामजीनेपूंछा; हे भगवन्! जो कुछ जगत्दीखताहै वह सब यदि अविद्या से उपजा है तो वह निवृत्त किसभांति होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ की पुतली सूर्यके तेजसे क्षणमें नष्ट होजाती है तैसेही आत्माके प्रकाशसे अविद्या नष्ट होजाती है। जबतक आत्माका दर्शन नहीं होता तबतक अविद्या मनुष्यको भ्रम दिखाती है और नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्तकरतीहै पर जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होती है तब वही इच्छा मोहका नाश करती है। जैसे धूप से छाया क्षीण होजाती है तैसेही आत्मपदकी इच्छासे अविद्या क्षीण होजाती है और सर्व्वगत देवआत्मा के साक्षात्कार हुयेसे नष्टहोजातीहै। हेरामजी! दृश्यपदार्थोंमें इच्छा उपजनेकानाम अविद्या है और उस इच्छाके नाशकानाम विद्याहै। उस विद्याही का नाम मोक्षहै। अविद्या का नाश संकल्पमात्र है। जितने दृश्य पदार्थ हैं उनकी इच्छा न उपजे और केवल चिन्मात्रमें चित्तकी वृत्ति स्थितहो—यही अविद्याके नाशका उपायहै। जबसब वासना निवृत्तहों तब आत्मतत्त्वका प्रकाशआवै। जैसे रात्रि के क्षयहुये सूर्य प्रकाशताहै तैसेही वासनाके क्षयहुये आत्मा प्रकाशताहै। जैसे सूर्यके उदयहुयेसे नहीं विदित होता कि, रात्रि कहांगई तैसेही विवेकके उपजे नहीं विदित होता कि, अविद्या कहांगई। हेराम जी! मनुष्य संसारकी दृढ़ वासनामें बँधाहै। और जैसे संध्याकालमें मूर्खबालक परछाहींमें बैताल कल्पकर भयमान होताहै तैसेही अपनी वासनासे भयपाताहै। रामजी ने पूंछा; हे भगवन्! यहसबदृश्य अविद्यासे हुआहै और अविद्या आत्मभावसे नाश होती है तो वह आत्माकैसाहै? वशिष्ठजीबोले; चैत्योन्मुखत्वसेरहित और सर्वगत, समान और अनुभवरूप जो अशब्दरूप चेतनतत्त्वहै वह आत्मा परमेश्वरहै। हे रामजी! ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जगत् सबआत्माहै और अविद्या कुछनहीं। हे रामजी! सबदेहों में नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थितहै; उसमें मनोनाम्नी कल्पना अन्यकीनाईं आभासहोकर भासती है पर आत्मतत्त्वसे भिन्नकुछनहीं। हे राम जी! कोई न जन्मताहै, न मरताहै और न कोई विकारहै; केवल आत्मतत्त्व प्रकाश, सत्तासमान, अविनाशी, चैत्यसे रहित, शुद्ध, चिन्मात्रतत्त्व अपने आपमें स्थितहै और नित्य, सर्वगत, शुद्ध, चिन्मात्र, निरुपद्रव, शान्तरूप, सत्तासमान, निर्विकार, अद्वैत आत्माहै। हे रामजी! उस एकसर्वगत देव, सर्वशक्ति महात्माकी जब विभाग कलना शक्तिप्रगट होतीहै तो उसकानाम मनहोताहै। जैसे समुद्रमें द्रवता से लहरें होतीहैं तैसेहीशुद्धचिन्मात्रमें जो चैत्यता होतीहै उसकानाममनहै। वहीसङ्कल्प कलना से दृश्यकीनाईं भासताहै और उसीसङ्कल्प कल्पनाका नाम अविद्याहै। सङ्कल्पही से वह उपजीहै और सङ्कल्पसेही नाशहोजातीहै। जैसे वायुसे अग्नि उपजती है और वायुसेही लीनहोतीहै तैसेही सङ्कल्पसे अविद्यारूपीजगत् उपजताहै और सङ्कल्पहीसे

नष्ट होजाताहै । जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरतीहै तब अविद्या बढ़तीहै और जब दृश्यकी वृत्ति नष्ट हो और स्वरूपकी ओरआवे तब अविद्या नष्टहोजाती है। हे रामजी ! जब यहसङ्कल्प करताहै कि, मैं 'ब्रह्मनहींहूं' तबमन दृढ़ बन्धमय होताहै और जबयही सङ्कल्प दृढ़ करताहै कि,सबब्रह्महै' तबमुक्तहोताहै । जबअनात्ममें अहं अभिमानका सङ्कल्प दृढ़करताहै तब बन्धन होताहै और सर्वब्रह्मके सङ्कल्पसे मुक्त होताहै। दृश्यका सङ्कल्प बन्धहै और असङ्कल्पही मोक्षहै; आगे जैसीतुम्हारी इच्छाहो तैसेकरो। जैसे बालक आकाशमें सुवर्णके कमलोंकी कल्पनाकरे कि, सूर्यवत् प्रकाशित और सुगन्धसे पूर्ण हैं तो वे भावनामात्र होते हैं; तैसेअविद्या भावनामात्र है। अज्ञानी जो जानताहै कि, मैं कृश, अतिदुःखी और वृद्धहूं और मेरे हाथ,पांव और इन्द्रियेंहैं तो ऐसे व्यवहारसे बन्धमान होता है और यदि ऐसे जाने कि, मैंदुःखीनहीं, न मेरीदेहहै; न मेरे बन्धनहैं; न मैं मांसहूं और न मेरे अस्थिहैं मैंतो देहसे अन्य-साक्षीहूं; ऐसे निश्चयवान्को मुक्त कहना चाहिये। जैसे सूर्य में और मणिके प्रकाशमें अन्धकार नहीं होता तैसेही आत्मामें अविद्यानहीं । जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशमें नीलता कल्पताहै तैसेही अज्ञानी आत्मामें अविद्या कल्पताहै—वास्तव में कुछनहीं । फिर रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! सुमेरुकी छाया आकाशमेंपड़तीहै अथवा तमकी प्रभा है व औरकुछहै; आकाशमें नीलताकैसे भासतीहै ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! आकाशमें नीलता नहीं है; न सुमेरुकी छायाही है और न तम है, आकाश पोलमात्र है यह शून्यता गुण हैं । हे रामजी! यह ब्रह्माण्ड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है; तमका स्वभावनहीं । तम ब्रह्माण्डके बाह्यहै, भीतरनहीं; ब्रह्माण्ड का प्रकाश स्वभाव है और दृढ़ शून्यतासे आकाशमें नीलता भासती है और कुछ नहीं। जिसकीमन्ददृष्टिहै उसको नीलता भासतीहै और जिसकी दिव्यदृष्टि है उसको नीलता नहीं भासती—पोल भासताहै। जैसे मन्ददृष्टिको आकाश में नीलता भासती है,तैसेही अज्ञानी को अविद्या सत्य भासती है । जैसे दिव्यदृष्टिवालेको नीलता नहीं भासती, तैसेही ज्ञानवान्को अविद्या नहींभासती—ब्रह्मसत्ताही भासताहै । हेरामजी ! जहांतक इसकेनेत्रोंकी दृष्टिजातीहै वहांतक आकाश भासताहै और जहांवृत्ति कुंठित होती है वहां नीलता भासती है। हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है उसको नीलता भासती है तैसेही जिस जीवकी आत्मदृष्टि क्षय होती है, उसको अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है—यही दुःख रूपहै । हे रामजी ! चेतनको छोड़के जो कुछस्मरण करता है उसकानाम अविद्याहै और जब चित्त अचलहोताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है—असङ्कल्प होनेसेही अविद्या नष्ट होती है । जैसे आकाशके फूल हैं तैसेही अविद्या है । यह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंको सत्यभासता है, वास्तवमें कुछ नहीं।

है। मन जब फुरनेसे रहित हो तब जगत् भावनामात्र है। उसी भावनाका नाम अविद्याहै और वह मोहका कारणहै। जब वही भावना उलटकर आत्माकी ओर आवे तब अविद्या का नाश हो। बारम्बार चिन्तना करने का नाम भावना है। जब भावना आत्माकी ओर वृद्धिहोती है तब आत्माकी प्राप्ति होतीहै और अविद्या नष्ट होजाती है। मनके संसरनेका नाम अविद्या है। जब आत्माकी ओर संसरना होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है। हे रामजी! जैसे राजाके आगे मंत्री और टहलुये कार्य्य करतेहैं; तैसेही मनके आगे इन्द्रियां कार्य करतीहैं। हे रामजी! वाह्यके विषय पदार्थों की भावना छोड़के तुम भीतर आत्माकी भावनाकरो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे। जिन पुरुषोंने अन्तःकरण में आत्माकी भावनाका यत्न कियाहै वे शान्तिको प्राप्त हुये हैं। हे रामजी! जो पदार्थ आदिमें नहीं होता, वह अन्तमें भी नहीं रहता; इस से जो कुछ भासता है वह सब ब्रह्मसत्ता है। उससे कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न भासता है वह मनमात्र है। तुम्हारा स्वरूप निर्विकार और आदिअन्तसे रहित ब्रह्मतत्त्व है। तुम क्यों शोककरते हो? अपना पुरुपार्थ करके संसारकी भोग वासना चित्तके मूलसे उखाड़ो और आत्मपदका अभ्यास करो तो दृश्यभ्रम मिटजावे। हे रामजी! इस संसार की वासनाका उदय होना जरा मरण और मोह देनेवाला है। जब स्वरूपका प्रमाद होता है तब जीवको यह कल्पना उठती है और आकाशरूपी अनन्त फाँसियों से बन्धमान होता है। तब वासना और भी वृद्धि होजातीहै और कहता है कि ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धनहै, ये मेरे बान्धव हैं; यह मैंहूं; वह और है। हे रामजी! जिस शरीर से मिलकर यह कल्पना करताहै वह शरीर शून्यरूपहै। जैसे वायुगोलेके साथ तृण उड़ते हैं; तैसे अविद्यारूपी वासना से शरीर उड़ते हैं अहं त्वं आदिक जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान्को केवल सत्यब्रह्म भासता है। जैसे रस्सीके न जानने से सर्प भासताहै और रस्सीके सम्यक् ज्ञान से सर्प भ्रम नष्ट होजाताहै, तैसेही आत्माके अज्ञानसे जगत् भासता है और आत्मा के सम्यक् ज्ञान हुयेसे जगत् भ्रम नष्ट होजाताहै। इससे तुम आत्माकी भावनाकरो। हे रामजी! रस्सी में दो विकल्प होते हैं एक रस्सी का और दूसरा सर्पका; वे दोनों विकल्प अज्ञानी को होते हैं ज्ञानी को नहीं होते। जो जिज्ञासी होता है उसकी वृत्ति सत्य और असत्यमें डोलायमान होती है और जो ज्ञानवान् है उसको विचार से रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है। इससे तुम अज्ञानी मत होना, ज्ञानवान् होना; जो कुछजगत्की वासना है उन सबका त्यागकरो तब शान्तिमान होगे। हे रामजी! संसारभोगकी वासनाभी तब होतीहै जब अनात्ममें आत्माभिमान होताहै; तुम इसके साथ काहेको अभिमान करते हो? यह देह तो मूक जड़ है और अस्थि मांसकी थैली है। ऐसी देह तुम क्यों

होतेहो? जबतक देहमें अभिमान होताहै तबतक सुख और दुःख भोगताहै और इच्छा करताहै। जैसे काष्ठ औरलाख; और घट और आकाशका संयोग होताहै तैसेही देह अभिमान और देहीका संयोग होताहै। जैसे झिल्लीके अन्तर आकाश होताहै सो उसके नष्टहुये आकाश नहींनष्टहोता और जैसे घटकेनष्टहुये घटाकाश नहीं नष्टहोता; तैसेही देहके नष्टहुये आत्मा नहीं नाशहोता। हेरामजी! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांति से भासतीहै तैसेही अज्ञानसे सुख दुःखकी कल्पना होतीहै। इससे तुम सुख दुःखकी कल्पनाको त्यागके अपने स्वभावसत्तामें स्थितहो। बड़ा आश्चर्य है कि; ब्रह्मतत्त्वसत्स्वरूपहै पर मनुष्य उसे भूलगयाहै और जो असत्य अविद्याहै उसको बारम्बार स्मरणकरताहै। ऐसी अविद्याको तुम मत प्राप्तहो। हेरामजी! मनका मननही अविद्याहै और अनर्थ का कारणहै; इससेजीव अनेकभ्रमदेखताहै। मनके फुरनेसे अमृतसे पूर्ण चन्द्रमाका बिम्बभी नरककी अग्निसमान भासताहै और बड़ीलहरों; तरङ्गों और कमलोंसे संयुक्त जलभी मरुथलकी नदीसमान भासताहै। जैसे स्वप्नेमें मनके फुरनेसे नाना प्रकारके सुख और दुःखका अनुभव होताहै तैसेही यह सब जगत्भ्रम चित्तकी वासनासे भासताहै। जाग्रत और स्वप्नेमें यहजीव मनकेफुरनेसे विचित्ररचना देखता है। जैसे स्वर्ग में बैठेहुये को भी स्वप्ने में नरकों का अनुभव होताहै तैसेही आनन्दरूप आत्मामें प्रमादसे दुःखका अनुभव होता है। हे रामजी! अज्ञानी मन के फुरनेसे शून्य अणुमें भी संपूर्ण जगत् भ्रम दिखता है; जैसे राजालवणको सिंहासन पर बैठे चाण्डाल की अवस्थाका अनुभव हुआथा। इससे संसार की वासना को तुम चित्तसे त्यागदो। यह संसार वासना बन्धनका कारण है। सब भावों में बर्तो परन्तु राग किसी में न हो। जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिम्बोंको लेताहै परन्तु रङ्ग किसीकानहीं लेता तैसेही तुम सबकार्य्य करो परन्तु द्वेष किसी में न रक्खो। ऐसा पुरुष निर्बन्धनहै उसको शास्त्र के उपदेशकी आवश्यकता नहीं; वहतो निजरूप है। हे रामजी! जोकुछप्रकृत आचार तुम को प्राप्तहो तो देना, लेना, बोलना, चालना आदिक सब कार्य्य करो परन्तु भीतरसे अभिमान कुछ न करो; निरभिमान होकर कार्य्यकरो—यहज्ञान सबसे श्रेष्ठ है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयथाकथितदोषपरिहारोपदेशो नामनवाशीतितमस्सर्ग्गः ८९॥

इतनाकहकर वाल्मीकि जी बोले कि; इसप्रकार जब महात्मा वशिष्ठजीने कहा तब कमलनयन रामजीने वशिष्ठजीकी ओर देखा और उनका अन्तःकरण रात्रि के मुंदेहुये कमल की नाईं प्रफुल्लित हो आया। तब रामजी बोले कि; बड़ा आश्चर्य है! पद्मकी तांत के साथ पर्वतबांधा है। अविद्यमान अविद्याने संपूर्ण जगत् बश

किया है और अविद्यमान जगत् को वज्रसारवत् दृढ़ किया है । यह सव जगत् असत्यरूप है और सत्यकी नाईं स्थित किया है। हे भगवन् ! इस संसारकी नटनी माया का क्या रूप है; महापुण्यवान् लवणराजा ऐसी वड़ी आपदा में कैसे प्राप्त हुआ और इन्द्रजाली जिसने भ्रम दिखाया था वह कौनथा कि, उसको अपना अर्थ कुछ न था ? वह कहांगया और इसदेही और देहका कैसे सम्बन्ध हुआ और शुभ अशुभ कर्मोंके फल कैसे भोगता है ? इतने प्रश्नों का उत्तर मेरेवोधके निमित्त दीजिये। वशिष्ठजी वोले; हे रामजी ! यह देह काष्ठ मट्टीके समान है । जैसे स्वप्ने में चित्तके फुरनेसे देह भासताहै तैसेही यह देहभी चित्तका कल्पित है और चित्तही चैत्य सम्बन्ध से जीवपदको प्राप्तहुआहै। वह जीव चित्तसत्तासे शोभायमान है; उस चित्तके फुरनेसे संसार उपजाहै; वह वानरके वालकके समान चंचल है और अपने फुरनेरूप कर्मोंसे नानाप्रकार के शरीर धरताहै। उसी चित्त के नाम अहङ्कार, मन और जीवहैं । वह चित्तही अज्ञानसे सुख दुःख भोगताहै; शरीर नहीं भोगता। जो प्रवोधचित्त है वह शान्तरूप है। जवतक मन अप्रवोध है और अविद्यारूपी निद्रा में सोया है तवतक स्वप्नरूप अनेक सृष्टि देखता है और जव अविद्या निद्रा से जागता है तव नहीं देखता। हे रामजी ! जवतक जीव अविद्यासे मलिन है तव तक संसार भ्रम देखता है और जव वोधवान् होता है तव संसारभ्रम निवृत्त हो-जाता है। जैसे रात्रि होनेसे कमल मुंदजातेहैं और सूर्य्य के उदयहुये खिलआतेहैं तैसेही अविद्यासे जगत्भ्रम देखताहै और वोधसे अद्वैतरूप होताहै। इससे अज्ञा-नही दुःखका कारणहै। अविवेकसे पंचकोशदेहमें अभिमानी होकर जैसे कर्मकरता है तैसेही भोगता है; शुभकरताहै तो सुख भोगता है और अशुभसे दुःख भोगताहै जैसे नटवा अपनी क्रियासे अनेक स्वाँग धरता है तैसेही मन अपने फुरनेसे अनेक शरीर धरता है। जो कुछ इष्ट–अनिष्ट सुख दुःख हैं वे एक मनके फुरनेमें हैं और शरीर में स्थित होकर मनहीं करता है। जैसे रथपर आरूढ़ होकर सारथी चेष्टा करताहै और वाँवी में वैठके सर्प चेष्टा करताहै तैसेही शरीर में स्थित होकर मन चेष्टा करता है। हे रामजी ! अचलरूप शरीर को मनचञ्चल करताहै। जैसे वृक्षको वायु चञ्चल करता है तैसे जड़ शरीर को मन चञ्चल करता है । जोकुछ सुख-दुःख की कलना है वह मनहीं करता है और वही भोगता और वही मनुष्य है । हे राम जी ! अव लवणका वृत्तान्तसुनो । लवणराजा मनके भ्रमनेसे चाण्डाल हुआ। जो कुछ मनसे करता है वही सफल होता है । हे रामजी ! एक काल में हरि-श्चन्द्र के कुल में उपजा राजालवण एकान्त वगीचे में वैठके विचारनेलगा कि; मेरा पितामह वड़ाराजा हुआ है और मेरे वड़ोंने राजसूय यज्ञ किये हैं। मैं

भी उनके कुलमें उत्पन्न हुआहूं इससे में भी राजसूय यज्ञ करूं। इसप्रकार चिन्तना करके लवणने मानसी यज्ञ आरम्भ किया और देवता, ऋषि, सुर, मुनीश्वर, अग्नि, पवन आदिक देवताओंकी मनसे पूजाकी और मंत्र और सामग्री जो कुछ राजसूय यज्ञ का कर्म है सो संपूर्ण करके मनसे दक्षिणादीं। सवावर्ष पर्यंत उसने यह यज्ञ किया और मनहींसे उसका फल भोगा। इससे हे रामजी ! मनहींसे सब कर्म होता है और मनहीं भोगताहै। जैसाचित्तहै तैसाही पुरुष है, पूर्णचित्तसे पूर्णहोताहै और नष्ट चित्तसे नष्ट होता है अर्थात् जिसका चित्त आत्मतत्त्वसे पूर्णहै सो पूर्ण है और जो आत्मतत्त्वसे नष्टचित्त है वह नष्ट पुरुष है। हे रामजी ! जिसको यह निश्चयहै कि; मैं देहहूं वह नीचबुद्धि है और अनेक दुःखोंको प्राप्त होगा और जिसकाचित्त पूर्ण विवेकसे जागा है उसको सब दुःखोंका अभाव होजाताहै । जैसेसूर्य उदयहुये कमलों का सकुचना दूर होजाता है और वे खिल आतेहैं, तैसेही विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशसे रहित पुरुष दुःखों में संकुचित रहते हैं। जो विवेकरूपी सूर्य्यके प्रकाशसे प्रफुल्लित हुये हैं वे संसारके दुःखोंसे तरजाते हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसुखदुःखभोक्तव्योपदेश
कथनन्नामनवतितमस्सर्ग्गः ९० ॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! राजा लवणने राजसूययज्ञ मनसे किया और मनहीं से उसका फल भोगा परन्तु ऐसा सांवर कौनथा जिसने उसको भ्रमदिखाया। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब वह सांवरी लवणराजाकी सभामें आया तब मैं वहांथा। मुझसे लवण और उसके मन्त्रीने पूंछा कि, यह कौनहै ? तब मैंने उनसे जो कुछ कहाथा वह तुझसेभी कहताहूं। हे रामजी ! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है उसको द्वादशवर्षकी आपदा प्राप्तहोतीहै। उस द्वादशवर्षमें वह अनेकदुःख देखताहै। राजा लवणने जो मनसे यज्ञ किया इसलिये उसको आपदाभी मनसेही प्राप्तहुई । स्वर्ग्ग से इन्द्रने अपनादूत आपदा भुगवाने के निमित्त भेजा। वह सांवरीकारूप होकर आया और राजाको चाण्डालकी आपदा भुगताकर फिर स्वर्ग्ग में चलागया। हे रामजी ! जो कुछ मैंने प्रत्यक्ष देखाथा वह तुमसे कहा। इससे मनहीं करता है और मनहीं भोगताहै। जैसाजैसा दृढ़ सङ्कल्प मनमें फुरताहै उसके अनुसार उसको सुख दुःखकाअनुभवहोताहै। हेरामजी! जबतक चित्तफुरताहै तबतक आपदाप्राप्तहोतीहै। जैसे ज्योंज्यों कीकरकावृक्ष बढ़ताहै त्योंत्यों कण्टकबढ़तेजाते हैं; तैसेही मनकेफुरनेसे आपदा बढ़ती जाती हैं। जब मनस्थिर होताहै तब आपदा मिटजाती हैं। इससे, हे रामजी ! इसचित्तरूपी बरफको विवेकरूपी तपनसेपिघलाओ तब परमसारकीप्राप्ति होगी। यह चित्तही सकल जगत् आडम्बरका कारणहै; उसको तुम अविद्याजानो।

जैसे वृक्ष, विटप और तरु एकही वस्तुकेनामहैं; तैसेही अविद्या, जीव, वुद्धि, अहंकार सब फुरनेके नामहैं। इसको विवेकसे लीनकरो। हे रामजी! जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही देखताहै। हे रामजी! वह कौन पदार्थहै जो यत्न कियेसे सिद्ध न हो? जो हठसे न फिरे तो सब कुछ सिद्ध होताहै। जैसे बरफके बासनोंको जलमें डालिये तो जलकी एकताही होजाती है तैसेही आत्मबोधसे सब पदार्थोंको एकता होजाती है। रामजीने फिर पूंछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, सुख दुःख सब मनहीं में स्थित हैं और मनकी वृत्ति नष्टहुये सब नष्ट होजाती हैं सो चपलवृत्ति कैसे क्षयहो? वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुलमें श्रेष्ठ और आकाशके चन्द्रमा! मैं तुमसे मनके उपशमकी युक्ति कहताहूं। जैसे सवारकेवश घोड़ा होताहै तैसेही मन तुम्हारे वश रहेगा। हे रामजी! सब भूत ब्रह्महीसे उपजेहैं। उनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी है–एक सात्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। प्रथम शुद्ध चिन्मात्रब्रह्म में जो कलना उठीहै उसी वाह्यमुखी फुरनेकानाम मनहुआहै। वही ब्रह्मारूपहै, उस ब्रह्माने जैसा संकल्प किया तैसाही आगे देखा; उसने यह भुवन आडम्बर और उसमें जन्म मरण और सुख, दुःख, मोह आदिक संसरनाकल्पा। इसीप्रकार अपने आरम्भसंयुक्त, जैसे बरफका कणुका समुद्रसे उपजकर सूर्य्यके तेजसे लीन होजावे; तैसेही आरम्भसे निर्व्वाण होगया, संकल्पके वशसे फिर उपजा और फिर लीनहोगया। इसीप्रकार कई अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ब्रह्मासे उपजउपजकर लीन होगये हैं; कितने होंगे और कितने वर्त्तमानहैं। अब जैसे मुक्त होतेहैं सो सुनो। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वसे प्रथम मन सत्ता उपजी; उसने जब आकाश चेता तब आकाश हुआ, उसके उपरान्त पवन हुआ, फिर अग्नि और जल हुआ और उसकी दृढ़तासे पृथ्वी हुई। तब चित्तशक्ति दृढ़ संकल्पसे पांच भूतोंको प्राप्तहुई और अन्तःकरण जो सूक्ष्म प्रकृतिहै सो पृथ्वी, तेज और वायुसे मिलकर धान्यमें प्राप्तहुआ। उसको जब पुरुष भोजन करतेहैं तब वह परिणाम होकर वीर्य्य और रुधिररूपहोके गर्भमें निवास करताहै; जिससे पुरुष उपजताहै। वह पुरुष जन्ममात्रसे वेद पढ़नेलगताहै; फिर गुरूके निकटजाता और क्रमसे उसकीवुद्धि विवेकद्वारा चमत्कारवान् होजाती है तब उसको ग्रहण और त्याग और शुभ अशुभमें विचार उपजताहै। और निर्म्मल अन्तःकरण सहित स्थित होताहै और क्रमसे सप्तभूमिका चन्द्रमाकीनाईं उसके चित्तमें प्रकाशती हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसात्विकजन्मावतारोनामएकनवतितमस्सर्गः ९१॥

रामजी बोले, हे सर्वशास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, भगवन्! ज्ञानकी वे सप्तभूमिका कैसे निवास करनेवाली हैं संक्षेपमें मुझसे कहिये? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! अज्ञानकी सप्तभूमिकाहैं और ज्ञानकी सप्तभूमिकाहैं और उनके अन्तर्गत और बहुत अवस्था

हैं कि, उनकी कुछ संख्या नहीं परन्तु वे सब इन्हीं सप्तके अन्तर्गत हैं। हेरामचन्द्र! आत्मरूपी वृक्षहै और अपना पुरुषार्थरूपी वसन्तऋतु है; उससे दोप्रकारकी वेलें उत्पन्न होतीहैं–एक शुभ और दूसरी अशुभ। पुरुषार्थरूपी रसके बढ़नेसे फलकी प्राप्तिहोती है। अब ज्ञान किसको कहतेहैं सो सुनो। शुद्धचिन्मात्रमें चैत्यदृश्य फुरने से रहित होकर स्थित होनेकानाम ज्ञानहै और शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतमें अहं संवेदना उठनीहै सो स्वरूपसे गिरनाहै; वही अज्ञानदशा है। हे रामचन्द्र! यह मैंने तुम से संक्षेपसे ज्ञान और अज्ञानका लक्षण कहाहै। शुद्ध चिन्मात्रमें जिनकी निष्ठाहै; सत्य स्वरूपसे चलायमान नहीं होते और राग द्वेष किसीसे नहीं रखते, वे ज्ञानी हैं और ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपसे जो गिरेहैं वे अज्ञानी हैं। और जो जगत्के पदार्थोंमें मग्नहैं वे अज्ञानीहैं। इससे परममोह और कोई नहीं–यही परममोह है। स्वरूप-स्थित इसका नामहै कि, एक अर्थको छोड़के जो सम्वित् और अर्थको प्राप्त होता है। जैसे जाग्रतको त्यागकर सुषुप्ति प्राप्तहोती है और उसके मध्यमें जो निर्मननरूप सत्ताहै उसमें स्थितहोना स्वरूप स्थिति कहाताहै। हे रामचन्द्र! भलीप्रकार सर्व्व संकल्प जिसके शान्तहुये हैं और जो शिला के अन्तरवत् शून्य है वह स्वरूप स्थिति है। अहं त्वं आदिक फुरने से और भेद विकार और जड़से रहित अचैत्य चिन्मात्रहै सो आत्मस्वरूप कहाता है। उस तत्त्व में फिरकर जो जीवोंकी अवस्था हुई है वह सुनो। हे रामचन्द्र! १ बीज जाग्रत है; २ जाग्रत; ३ महाजाग्रत; ४ जाग्रत स्वप्न; ५ स्वप्न; ६ स्वप्नजाग्रत और ७ सुषुप्ति ये सातप्रकारकी मोहकी अवस्था हैं। इनके अन्तर्गत और भी अनेक अवस्था हैं पर मुख्य ये सातही हैं अब इनके लक्षण सुनो। हे रामजी! आदि जो शुद्धचिन्मात्र अशब्दपद तत्त्व से चैतनता का अहंहै उसका भविष्यत् नाम जीव होता है। आदि वह सर्व पदार्थों का बीजरूप है और उसीकानाम बीजजाग्रत है। उसके अनन्तर जो अहं और यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ़हो और जन्मान्तरों में भासे उसकानाम जाग्रतहै। यहहै, मैं हूं इत्यादिक शब्दों से तन्मयहोना और जन्मान्तर में बैठेहुये जो मन फुरता है मनोराज में वह फुरना दृढ़हो भासना जाग्रत स्वप्न कहाता है और दूसरा चन्द्रमा, सीपी में रूपा, मृगतृष्णाका जल इत्यादिक विपर्यय भासना भी जाग्रतस्वप्न है। निद्रा में जब मन फुरनेलगता है और उससे नानापदार्थ भासने लगते हैं तो जब जाग उठता है तब कहता है कि, मैंने अल्पकालमें अनेक पदार्थ देखे और निद्राकाल में जो पदार्थ देखे थे उनको असत्यरूप जाग्रत में जानने लगता है। उस निद्राकाल में मनके फुरनेका नाम स्वप्नाहै। स्वप्न आवे और उसमें यह दृढ़ प्रतीति होजावे कि, दीर्घकाल बीतगया उसका नाम महाजाग्रतहै और महाजाग्रतमें अपना

बड़ा वपुदेखा और उसमें अहं, ममभाव दृढ़हुआ और आपको सत्य जानकर जन्म मरण आदिक देखे, देह रहे अथवा न रहे; उसका नाम स्वप्न जाग्रत है। वह स्वप्ना महाजाग्रतरूप को प्राप्त होता है। इन छः अवस्थाओं का जहां अभाव हो; जड़रूप और भविष्यत् हो उसका नाम सुषुप्ति है। उस अवस्थामें घास, पत्थर, वृक्षादिक स्थित हैं। हे रामजी! यह अज्ञानकी सप्तभूमिका कही; उस में एक एक में अवस्था भेद है। हे रामचन्द्र! स्वप्न चिरकाल से जाग्रतरूप होजाता है; उसके अन्तर्गत और स्वप्न जाग्रत है और उसके अन्तर और है। इस प्रकार एकएक के अन्तर अनेकहैं। यह मोह की घनता है और उससे जीव भ्रमतेहैं। जैसे जलनीचेसे नीचे चलाजाताहै, तैसेही जीव मोहके अनन्तर मोहपातेहैं। हे रामजी! यह तुमसे अज्ञानकी अवस्था कही जिसमें नानाप्रकार के मोह और भ्रम विकारहैं। इनसे तुम विचारकर मुक्तहो तव तुम महात्मा पुरुष और आत्मविचार करके निर्मल वोधवान् होगे और तभी इस भ्रमसे तरजावोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऽज्ञानभूमिकावर्णनन्नामद्विनवातितमस्सर्गः ६२॥

वशिष्ठजीवोले; हे रामचन्द्र! अवतुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुनो। भूमिका चित्त की अवस्थाको कहतेहैं। ज्ञानकीभूमिका जाननेसे जीव फिर मोहरूपी कीचड़में नहीं डूवता। हेरामचन्द्र! और मतवाले भूमिकाको वहुतप्रकारसे कहतेहैं पर मेराअभिमत पूंछो तो यहहै कि,इससे सुगम और निर्मल वोध प्राप्तहोताहै।स्वरूपमें जागनेकानाम ज्ञानहै;उसज्ञानकी सप्तभूमिकाहैं और जो मुक्त इनसप्तभूमिकाओंकेपरेहैं वे विदेहमुक्त हैं वे ये हैं–१ शुभेच्छा, २ विचारना, ३ तनुमानसा, ४ सत्वापत्ति, ५ असंशक्ति, ६ पदार्थाभावनी और ७ तुरीया। इनके सारको प्राप्तहुआ फिर शोकनहीं करता। अव इसका अर्थ सुनो। जिसको यह विचार फुरआवे कि, मैं महामूढ़ हूं; मेरी वुद्धि सत्यमें नहींहै संसारकी ओर लगीहै और ऐसे विचार के वैराग्य पूर्वक सत्शास्त्र और सन्तजनोंकी संगति की इच्छाकरे तो इसकानाम शुभेच्छा है। सत्शास्त्रों को विचारनां; सन्तों की संगति; विषयों से वैराग्य और सत्यमार्ग का अभ्यास करना; इनके सहित सत्यआचार में प्रवर्त्तना और सत्यको सत्य और असत्य को असत्यजान कर त्याग करना इसका नाम विचार है। विचार और शुभेच्छा सहित तत्त्वका अभ्यास करना और इन्द्रियोंके विषयों से वैरागकरना यह तीसरी भूमिका तनुमानसा है। इन तीन भूमिकाओं का अभ्यास करना; इंद्रियों के विषय और जगत् से वैरागकरना और श्रवण, मनन, और निदिध्यासन से सत्य आत्मा में स्थित होने का नाम सत्वापत्ति है। इस में सत्यआत्माका अभ्यास होता है। ये चार भूमिका संयमका फल जो शुद्ध विभूति है उस में असंशक्त रहने का नाम असंशक्ति

है । दृश्यका विस्मरण और भीतर बाहर से नानाप्रकार के पदार्थों के तुच्छ भासने का नाम पदार्थाभावनी है; यह छठी भूमिका है । हे रामचन्द्र ! चिरपर्य्यन्त छठी भूमिका के अभ्यास से भेद कलनाका अभाव होजाता है और स्वरूप में दृढ़ परिणाम होता है । छः भूमिका जहां एकता को प्राप्तहों उसका नाम तुरीया है । यह जीवन्मुक्त की अवस्था है । जीवन्मुक्त तुरीयापदमें स्थित है । तीन भूमिका जगत्की जाग्रत अवस्था में हैं; चौथी तत्त्वज्ञानी की है; पांचवीं और छठी जीवन्मुक्त की अवस्था है और तुरीया तीत पदमें विदेहमुक्त स्थितहोता है । हे रामचन्द्र ! जो पुरुष महाभाग्यवान् हैं वह सप्तभूमिका में स्थित होता है और वही आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होता है । हे रामचन्द्र ! जो जीवन्मुक्तपुरुष हैं वेसुख दुःख में मग्न नहीं होते और शान्तरूप होके अपने प्रकृत आचारको करते हैं; अथवा नहीं करते तोभी उनको कुछ बन्धन नहीं; उनको क्रियाका बोध कुछ नहीं रहता । जैसे सुषुप्ति पुरुषके निकट जाके कोई क्रिया करे तो उसे कुछ बोध नहीं होता तैसेही उसको भी क्रिया बोध कुछ नहीं होता; वह तो सुषुप्तिवत् उन्मीलित लोचन है । हे रामचन्द्र ! जैसे सुषुप्त पुरुष को रूप, इन्द्रिय और उनका अभाव होजाताहै; तैसेही सप्तभूमिका में अभाव होजाता है । यह ज्ञानकी सप्तभूमिका ज्ञानवान्का विषय है; पशु, वृक्ष, म्लेच्छ, मूर्ख और पापाचारियों के चित्त में इनका अधिकार नहीं होता । जिस का मन निर्मल है उसको इन भूमिकाओं में अधिकार है; कदाचित् पशुम्लेच्छ आदिको भी इनका अभ्यासहो तो वहभी मुक्तहोजाताहै; इसमें कुछ संशय नहीं । हे रामचन्द्र ! आत्मज्ञानसे जिनके हृदयकी गांठ टूटगईहै उनको संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्याभासताहै और वे मुक्तरूपहैं और जो संसारसे विरक्त होकर इन भूमिकाओंमें आयेहैं और मोहरूपी समुद्रसे नहीं तरे और पूर्णपदको भी नहीं प्राप्त हुये और सप्तभूमिकामेंसे किसी भूमिकामें लगेहैं वेभी आत्मपदको पाकर पूर्णआत्माहोंगे। हे रामचन्द्र ! कोईतो सप्तभूमिकाओंको प्राप्त हुये हैं; कोई पहिलीही भूमिकामें; कोई दूसरी और कोई तीसरीको प्राप्तहुयेहैं । कोई चौथीको; कोई पंचम; कोई छठीको और कोई अर्द्धभूमिकाकोही प्राप्तहुयेहैं । कोईगृहमें कोई वनमें हैं; कोई तपसीहैं और कोई अतीतहैं । इससे आदिलेकर वे पुरुष धन्य और बड़ेशूरमाहैं कि, जिन्होंने इन्द्रियरूपीशत्रुको जीता है । जिस पुरुषने एक भूमिकाको भी जीताहै सो वन्दना करने योग्यहै; उसको चक्रवर्ती राजा जानना बल्कि, उसके सामने राज्य और बड़ा ऐश्वर्य विभूति भी तृणवत् है । वह परमपदको प्राप्त हुआ है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेज्ञानभूमिकोपदेशोनामत्रिनवतितमस्सर्गः ९३ ॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! जैसे सोने में भूषणफुरे और अपना सुवर्णभाव भूलके

कहे में भूषणहूं तैसेही चित्तसंवेदन जिस स्वरूपसे फुराहै उससे भूलकर अहंवेदना हुई है उससे अहंकाररूप धराहै कि, में यह कुछहूं। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! सोने में जो भूषण होतेहें वे में जानताहूं परन्तु आत्मामें अहंभाव केसे होताहै वह कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र ! अहंकार आदिकों का होना असत्यरूप आगमापाई है। इसका कुछ भिन्नरूप नहीं है; यह आत्माका चमत्कारहै—वास्तवमें द्वैतकुछनहीं। जैसे समुद्रमें अध ऊर्ध्व जलही जल है, और कुछ नहीं; तैसेही परमतत्त्वमें और विभाग कल्पना कोई नहीं—शान्तरूपहै। जैसे समुद्रमें द्रवतासे तरङ्ग आदिक भासते हैं तैसेही संवेदना से जगत्भ्रम भासते हैं। आत्मामें नानाप्रकार का भ्रम भासताहै परन्तु और कुछ नहीं। जैसे सुवर्णमें भूषण; जलमेंद्रवता और वायुमें स्पन्द भासतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है । फुरनेसे रहित शान्तरूप केवल परमपदहै। हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकी सेना में जो हाथी, घोड़ा, पशु होते हैं वे सब मृत्तिकारूपहैं कुछ भिन्ननहीं तैसेही सब जगत् आत्मरूपहै, भ्रमसे नानातत्त्व भासता है; वास्तव में आत्माही पूर्णरूप आपमें स्थितहै। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै, तैसेही ब्रह्ममें ब्रह्म स्थित है और सत्यमें सत्य स्थित है। जैसे दर्प्पणमें प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही आत्मामें जगत्है; जैसे स्वप्नमें दूरपदार्थ निकट भासते हैं और निकट दूर भासते हैं सो भ्रममात्रहै तैसेही आत्मामें विपर्य्यय दृष्टिसे जगत् भासताहै। हेरामजी! असत्य जगत् भ्रमसे सत्रूप भासता है; वास्तव में असत्यरूप है। जैसे दर्प्पणमें नगरका प्रतिबिम्ब; जैसे मृगतृष्णाका जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही यह जगत् आत्मामें भासताहै। जैसे इन्द्रजालकेयोगसे आकाशमें नगर भासताहै तैसेही यह असत्यरूप जगत् अज्ञानसे सत्य भासताहै। जबतक आत्मविचाररूपी अग्निसे अविद्यारूपी वल्लीको तू न जलावेगा तबतक जगत्रूपी बेल निवृत्त न होगी बल्कि, अनेक प्रकारके सुख दुःख दिखावेगी । जब तू विचार करके मूल सहित इसको जलावेगा तब शान्त पदको प्राप्त होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयुक्तोपदेशोनामचतुर्नवतितमस्सर्गः ९४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! जैसे सुवर्ण में भूषण मिथ्यारूप हैं तैसेही आत्मामें 'अहं' 'त्वं' आदिक अविद्यारूप हैं। लवणकी कथा जो तुमने सुनीहै उसे अब फिर सुनो। लवणराजा दूसरेदिन विचारकरनेलगा कि, यह मुझको भ्रमसे भासाहै परंतु सत्यरूपहोकर देखाहै। देश, नगर, मनुष्यादिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्टिआये हैं इससे अब तो वहां जाकर देखूं कि, कैसी वार्त्ता है। ऐसेविचारसे दिग्विजयका मन करके मंत्री और सेनाको साथलेकर दक्षिणदिशाकीओर चला। देशोंको लांघता २ विन्ध्याचल पर्व्वतमें पहुंचा और पूर्व और दक्षिणके समुद्रकेमध्यमें मार्गको भ्रमता

भ्रमता किरातदेशमें जा पहुंचा जो वृत्तान्त और देश ग्राम आदिक भ्रममें देखेथे सो प्रत्यक्ष देखे और अति विस्मित हो विचार करने लगा कि; हे दैव! यह क्याहै? जो कुछ मैंने भ्रममें देखाथा वह अब भी मुझको प्रत्यक्ष भासता है। यह बड़ा आश्चर्य है! ऐसे विचारके आगे गया तो क्या देखा कि, अग्निसे वृक्ष जलेहैं और अकाल पड़ाहै। अपने सम्बन्धियोंकी चेष्टा के स्थान देखे और उनकी कथा सुनी। इसप्रकार देखते देखते आगेगया तो क्या देखा कि, चाण्डाल शरीरकी सासु बैठी रुदन करती है कि; हे दैव! मेरा पुत्र कहां गया! हेपुत्र! तुम कहां गये, जिनका चन्द्रमा की नाईं मुखथा? मेरी मृगनयनी कन्या जीर्णदेह होगईहै-और पौत्र, पौत्रियां दुर्भिक्षतासे सब जाते रहे। उनके यह खानेके पदार्थ हैं और ये चेष्टाके स्थान हैं। जो रत्तिकाकी माला कण्ठमें डाले जीवोंके मांसखाते और रुधिर पान करतेथे वह कहां गये? इसी प्रकार पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, दामाद आदिका नाम लेकर वह रुदन करतीथी और और लोग जो आ बैठतेथे वहभी रुदन करतेथे। तब राजा उनका रोना बन्द कराके वृत्तान्त पूछने लगा कि, तू किस निमित्त रुदन करती है? किससे तेरा वियोग हुआहै?॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचाण्डालीशोचनवर्णनन्नामपञ्चनवतितमस्सर्गः६५॥

चाण्डाली बोली, हे राजन्! एक समय वर्षा न होनेसे काल पड़ा और सब जीवों को बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे पुत्र, पौत्र, पौत्रियां, जामात, भर्त्ता आदिक बान्धव यहांसे निकलगये और कहीं कष्ट पाके मरगये। उनके वियोगसे मैं दुःखी होकर रुदन करतीहूं और उनकेविना मैं शून्यहोगईहूं! जैसे बिछुरीहुई हथिनी अकुलाती है तैसेही मैं कुरलातीहूं। हे रामचन्द्र! जब इसप्रकार चाण्डालीने कहा तब राजा अतिविस्मित हुआ और मंत्री के मुखकी ओर ऐसे देखनेलगा जैसे कागज़पर पुतली होतीहै। निदान राजा विचारे और आश्चर्य्यमान् हो; उस चाण्डालीसे बारम्बार पूछे और वह फिर कहे और राजा आश्चर्य्यमान् होवे। तब राजा उसको यथायोग्य धन देकर चिरपर्य्यन्त वहांरहा और फिरअपने राजमन्दिरमेंआया। जब प्रातःकालहुआ तब सभामेंआकर मुझसे पूछनेलगा; हेमुनीश्वर! यह स्वप्ना मुझको प्रत्यक्ष कैसे हुआ? इसको देखकर मैं आश्चर्य्यमान् हुआहूं! तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसे उत्तरदिया और उसके चित्तका संशय ऐसे दूरकरदिया जैसे मेघको वायु दूरकरे; वही तुमसे कहताहूं। हेरामजी! अविद्याऐसीहै कि, असत्यको शीघ्रही सत्य और सत्यको असत्य करादिखाती है और बड़ा भ्रम दिखानेवालीहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! स्वप्ना कैसे सत्य हुआ; यह मेरे चित्तमें बड़ा संशय स्थितहुआहै। उसको दूरकीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य्यहै? अविद्यासे

सबकुछबनताहै। स्वप्नेमें तुम प्रत्यक्ष देखतेहो कि, घटसे पट और पटसे घट होजाता है। स्वप्न और मृत्युमें मूर्च्छाके अनन्तर बुद्धि बिपर्य्यय होजाती है। जिनका चित्त बासनासे वेष्टितहै उनको जैसा संवेदन फुरताहै तैसेही भासताहै। हे रामजी! जिनका चित्त स्वरूपसे गिराहै उनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है। जैसे मद्यपान और विषपीनेवाला भ्रमको प्राप्त होताहै तैसेही अविद्यासे जीव भ्रमको प्राप्त होताहै। एक और राजाथा उसकी भी वही ब्यवस्था हुईथी जो लवण राजा के चित्त में फुर आईथी। जैसे उसकी चेष्टा हुईथी तैसेही इसको भी फुरआई तब उसने जाना कि, मैंने यह क्रियाकीहै। जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्नेमें भोक्ता देखताहै कि, मैं राजा हुआहूं; मैं तृप्तहूं, अथवा भूखा सोयाहूं; और यहक्रिया मैंने करीहै; तैसेही लवणको फुरआयाथा सो प्रतिमाभासहै। सभामें बैठे चाण्डाली चेष्टा लवणकी फुरआई अथवा बिन्ध्याचल पर्ब्बतके चाण्डालोंकी प्रतिमा लवणकीफुरी सो लवणके चित्तका भ्रम उसको दृढ़ होगया। एकही सदृश भ्रम अनेकोंको फुर आताहै और स्वप्न भी सदृश होताहै जैसे एकही रस्सीमें अनेकोंको सर्प भासताहै। इसी प्रकार अनेक जीवोंको एक भ्रम अनेक हो भासताहै। हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं उनकी सत्तारूप संवेदनहै। जैसे उनमें सङ्कल्प दृढ़ होता है तैसेही होकर भासताहै। जो पदार्थ सत्यरूप हो भासता है वहसत्य होताहै और जो असत्यरूपहो भासताहै वह असत्य हो जाताहै। सबही पदार्थ संवेदनरूपहैं और तीनों कालभी संवेदनसे उपजे हैं। इनका बीज संवेदन है। सब पदार्थ अविद्यारूपहैं और जैसे रेतमें तेल है तैसेही आत्मामें अविद्याहै। आत्मासे अविद्या का सम्बन्ध कदाचित् नहीं क्योंकि; सम्बन्ध समरूपका होताहै। जैसे काष्ठ और लाखका सम्बन्ध होताहै सो आकारसहितहै और जो आकारसे रहितहो उसका सम्बन्ध कैसेहो? जैसे प्रकाश औरतमका सम्बन्ध नहीं होता तैसेही चैतनसे चैतनका सम्बन्धहोताहै और बिजातीयका सम्बन्ध नहीं। इससे अविद्यारूप देहको आत्मासे सम्बन्ध नहीं। जो जड़से आत्मा का सम्बन्धहो तो आत्मा जड़हो पर आत्मा तो सदा चैतनरूपहै और सर्वदा अनुभव से प्रकाशता है; उसको जड़ कैसे कहिये? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है और अङ्गनहीं करते; तैसेहीचैतनसे चैतनकी, जड़सेजड़की, जलसेजलकी, माटीसे माटीकी, अग्निसे अग्निकी, प्रकाशसे प्रकाशकी, तमसे तमकी, इसप्रकार सब पदार्थोंकी सजातीय पदार्थोंसे एकता होतीहै; बिजातीयसे नहीं होती। इससे सब चैतन्याकाशहै और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोई नहीं; भ्रमसे इनके आकार भासते हैं। जैसे सुवर्ण बुद्धिको त्यागकर नानाप्रकारके भूषण भासते हैं तैसेही जब अहंवेदना आत्मा में फुरती है तब अनेकरूप होकर विश्व भासताहै। जैसे सुवर्णकी ओर देखिये तब

सब भूषण स्वर्ण रूप भासते हैं तैसेही जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब सब जगत् ब्रह्मरूपही भासताहै । जैसे मृत्तिका की सेना बालकोंको अनेकरूप भासती है और बुद्धिमान् को एक मृत्तिकारूपहै; तैसेही अज्ञानीको यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही भासतीहै । वह कौन ब्रह्महै जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य फुरेहैं ? इनके मध्य और इनसे रहित जो सत्ताहै । वह ब्रह्मसत्ताहै । हे रामचन्द्र ! जो सत्ता चैतन्यरूप और शिलाके कोशवत् निर्विकल्प तन्मयरूप है उसमें जब स्थित हो और समाधि में रहो अथवा उत्पन्न नहो तब तुमको सब वहीरूप भासेगा । हे रामचन्द्र ! जो पुरुष निरमन सत्तामें स्थित भया है वह शरीर के इष्ट में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट में शोकवान् नहीं होता; वह निर्मलरूप होकर स्थित होताहै । जैसे भविष्यत् नगरमें जो अनेक चिन्तायुक्त जीव बसते हैं वह सब उसके चित्तमें स्थित होते हैं । जैसे पुरुषको देशान्तर जाते अनेक पदार्थ मार्गमें इष्ट अनिष्ट रूप भासते हैं परन्तु जहां जानाहै उसकी ओर वृत्ति रहतीहै; मार्गके पदार्थों में उसको रागद्वेष नहीं होता; तैसेही तुम होजावो । जैसे पत्थरसे जल और जलसे अग्निनहीं निकलती, तैसेही आत्मा में चित्त नहीं, अविचार भ्रमसे चित्त जानताहै, विचारसे नहींपाता । जैसे भ्रम से आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसेही आत्मा में चित्त भासता है ; वास्तव में कुछ नहीं । वह सत्ता नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप अपने आप में स्थित और अनुभवरूपहै; उसके बिस्मरण करने से दुःख प्राप्तहोताहै और अमृतरूपी चन्द्रमामें अग्नि प्राप्त होतीहै । इससे हे रामचन्द्र ! तुम सावधान हो ! यह जो फुरना उठताहै इसीका नाम चित्त है और चित्त कोई नहीं । इसचित्तको दूरसे त्यागकरो जो तुमहो वही स्थितहो । हे रामचन्द्र! असत्यरूप चित्तही संसारहै, जो उसको असत्य जानके त्याग नहीं करता वह आकाशके वनमें बिचरताहै; उसको धिक्कार है । जिसका मननभाव नष्टहुआहै वह महापुरुष संसारसे पार होकर परम-पद निश्चितरूपमें प्राप्तहुआ है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्ताभावप्रतिपादनन्नामषण्णवतितमस्सर्ग्गः ९६ ॥

वशिष्ठजी बोले! हे रामजी ! मनुष्य जिस प्रकार भूमिकाको प्राप्त होताहै उसका क्रमसुनो । प्रथम जन्मसे पुरुषको कुछ बोध होता है और फिर क्रमसे बड़ा होकर सन्तोंकी सङ्गति करताहै । सदासद्दशरूप जोसंसार का प्रवाहहै उसके तरनेको सत्य शास्त्र और सन्तजनों की सङ्गतिबिना समर्थ नहीं होता । जब सन्तों का सङ्ग और सत्शास्त्रों का विचार करने लगताहै तब उसको ग्रहण और त्यागकी बुद्धिउपजती है कि, यह कर्त्तव्यहै और यह त्यागने योग्यहै । इसबिचार का नाम शुभेच्छा है । जब यह इच्छा हुई तब शास्त्रद्वारा यह बिचार उपजताहै कि, यह शुभहै और यह अशुभ

है; शुभको ग्रहण करना और अशुभ को त्याग करना और यथाशास्त्र बिचारना इसकानाम बिचारहै। जब सम्यक् बिचार दृढ़होताहै तब मिथ्यारूप संसारकीबासना त्यागताहै और सत्यमेंस्थितहोताहै—इसकानाम तनुमानसाहै। जब संसारकीबासना क्षीण होती है और सत्यका दृढ़ अभ्यास होताहै तब उस बैराग्य और अभ्यास से सम्यक् ज्ञान उपजता और आत्माका साक्षात्कार होता है—उसका नाम सत्त्वापत्तिहै। मनसे बासना नष्टहोके सिद्धिआदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, इनकी प्राप्ति में भी संसक्त नहीं होता; स्वरूप में सदा सावधानरहता है। सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धसे प्राप्तहोते हैं उनको स्वप्नरूप जान कर्म्मोंके फल में बन्धमान नहीं होता—इसका नाम असंसक्त है। इसके अनन्तर जब मनकी तनुता होगई है और स्वरूप की ओर चित्तका परिणाम हुआ तब दृढ़ परिणाम से व्यवहार का भी अभाव होजाता है जो पलपल में कर्म्म प्रारब्ध वेग से करता है, बल्कि; उसके चित्तमें फुरना भी नहीं फुरता और वह मन क्षीणभावमें प्राप्तहोता है। वह कर्त्ता हुआ भी वह कुछ नहीं करता और देखता है पर नहीं देखता अर्द्धसुषुप्तिवत् होता है; उसे कर्त्तव्यकी भावना नहीं फुरती और मन भी नहीं फुरता—इसकानाम पदार्थाभावनी योगभूमिकाहै। इसमें चित्तलीन होजाताहै। इसअवस्थामें जबस्वाभाविक चित्तका कुछकाल इस अभ्यासमें व्यतीतहोताहै और भीतरसे सब पदार्थों का अभाव दृढ़होजाताहै तब तुरीयारूप होताहै और जीवन्मुक्त कहाताहै। तब वह इष्टकोपाके हर्षवान् नहींहोता और उसकी निवृत्तिमें शोकवान्नहीं होता; केवल बिगत सन्देह हो उत्तमपद को प्राप्त होताहै। हे रामचन्द्र! तुम भी अब ज्ञातज्ञेय हुयेहो। जो कुछ जाननेके योग्यहै सो तुमने ज्योंकात्यों जानाहै और सब तुम्हारी पदार्थोंकी भावना तनुताको प्राप्तहुईहै। अब तुम्हारेसाथ शरीररहै अथवा न रहै तुम हर्षशोक से रहित निरामय आत्माहो और स्वच्छ आत्मतत्त्व में स्थित सर्व्वगत सदा उद्योत रूप जन्म,मरण,जरा,सुख,दुःखसे रहित आत्म और बोधरूप शोकसे रहितहो और अद्वैतरूप अपने आपमें स्थितहो। देहउदयभी होताहै और लीनभी होजाताहै पर देश,काल,वस्तुके भेदसेरहितजो आत्माहै वहउदय और अस्तकैसेहो। हेरामचन्द्र! तुम अविनाशीहो; आपको नाशरूप जानकर शोककाहेकोकरतेहो तुम अमृतस्वच्छ रूपहो। जैसे घटके फूटनेसे घटाकाश नाशनहींहोता, तैसेही शरीरके नाशहुये तुमनाश नहींहोते। जैसे सूर्यकीकिरणोंके जाने से मृगतृष्णाके जलका नाशहोजाताहै, किरणों का नाशनहीं होता। हे रामचन्द्र! जोकुछ जगत्के पदार्थ भासते हैं सो असत्यरूप हैं और उनकी बासना भ्रांतिसे होतीहै परतुमतो अद्वैतरूपहो और यहसब तुम्हारी छायामात्रहै। तुमकिसकी बाञ्छाकरतेहो? शब्द, स्पर्श, रूप, रस,गन्ध यहजो पांचो

विषयरूप दृश्यहैं सो तुमसे रञ्चकमात्र भी भिन्ननहीं;सब तुम्हारा स्वरूपहै । तुमभ्रम मतकरो ! हेराम जी! आत्मा सर्वशक्तिहै;वही आभासकरके अनेकरूपहो भासताहै। जैसे आकाशमेंशून्यताशक्ति आकाशसे भिन्ननहीं,तैसेही आत्मामें सबशक्ति है । जो जगत् द्वैतरूपहोकर भासताहै वहीचित्तसे दृढ़हुआहै सो क्रमसे तीनप्रकारका त्रैलोक्य जगत्जीवको भ्रमहुआहै—एकसात्विक,दूसरा राजस और तीसरा तामस । जब इनतीनोंका उपशमहो तब कल्याणहोताहै । जब बासनाक्षयहो तब उसके वे कर्मभी क्षयहोजाते हैं—उससे भी भ्रम नाशहोजाता है । चित्तके संसरनेका नाम बासना है कर्म संसार मायामात्रहै;उनके नष्टहुये सब शांतहोजाते हैं । हेरामजी यह संसारघटी यन्त्रकी नाईंहै और जीववासनासे बँधेहुये भ्रमतेहैं । तुम आत्मविचाररूपी शास्त्रसे यत्नकरके इसकोकाटो । जबतक अविद्याको जीव नहींजानता तबतक यह बड़ेमोह और भ्रमदिखातीहै और जब इसकोजानताहै तब बड़ेसुखको प्राप्तकरती है अर्थात् जबतक अविद्याको वास्तवमें नहींजानता तबतक संसार सत्यभासताहै और उसमें अनेक भ्रमभासतेहैं और जब इसका स्वरूप जाना कि, कुछ बस्तु नहीं, भ्रमरूप है तब संसार वृत्तित्याग करताहै और स्वरूपको प्राप्तहोताहै । यहसंसारभ्रमसे उपजा है और उसीसे भोगभोगता और लीलाकरताहै और फिर ब्रह्ममें लीनहोजाताहै । हे रामचन्द्र! शिवतत्त्व अनन्तरूप अप्रमेय और निर्दुःखरूपहै; सब उसीभूततत्त्वसे उपजतेहैं । जैसे जलसेतरङ्ग और अग्निसे उष्णताहोतीहै तैसेही ब्रह्मसे जगत् होताहै; उसीमें स्थितहै और वहीरूपहै । वह सबका आत्माहै और वही आत्मा ब्रह्मकहाता है । उसके जाननेसे जगत् जानताहै पर तीनोंलोकोंकोजाननेसे उसको नहीं जानता वह जो अव्यक्त और निर्वाणरूपहै; उसके जाननेकेनिमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म, आत्मा आदिकनामकल्पेहैं; वास्तवमें कोईनाम संज्ञानहीं। हे रामचन्द्र ! वह पुरुष रागद्वेषसे रहितहै और इन्द्रियों और इन्द्रियोंकेविषयोंकेसंयोग वियोगमें द्वेषकोनहींप्राप्तहोता। वहतो एक, चैतन, शुद्ध संवित्, अनुभवरूप, अविनाशी और आकाशसे भी स्वच्छ निर्म्मलहै । उसमें जगत् ऐसे स्थितहै जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब अन्तर्बाह्यरूप होकर स्थितहै—उससे द्वैतरूप कुछ नहीं । हे रामचन्द्र ! देहसेरहित निर्विकल्प चैतन तुम्हारा आकारहै । लज्जा, मोह आदिक विकार तुमको कहाँहैं ? तुम आदिरूपहो, और लज्जा, हर्ष, भयादिक असत्यरूपहैं । तुमक्यों दुर्बुद्धि मूर्खकीनाईं विकल्प जालको प्राप्तहोतेहो ? तुम चैतन आत्मा अखण्डरूपहो; देहके खण्डितहुये आत्माका अभाव नहीं होता । असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानतेहैं तो बोधवानोंकाक्याकहनाहै । हेरामचन्द्र! जो चित्त संवेदन जानताहै उसके अनुभव करनेवाली सत्ता सूर्य्यके मार्ग्ग से भी नहींरोकीजाती, उसीको तुम चित्सत्ताजानो; वही पुरुषहै, शरीर पुरुषरूप नहीं।

हे रामचन्द्र! शरीर सत्यहो अथवा असत्य पर पुरुष तो शरीर नहीं। देहके रहने और नष्ट होनेसे आत्मा ज्योंका त्योंहीं है। ये जो सुख दुःख ग्रहण करते हैं वे देह इन्द्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते। जिन पुरुषों को अज्ञानसे देहमें अभिमानहुआ है उनको सुख दुःख का अभिमान होताहै ज्ञानवान्को नहींहोता। आत्मा को दुःखस्पर्श नहीं करता; वह तो सब विकारोंसे रहित मनके मार्गसे अतीत शून्य कीनाईं स्थितहै; उसको सुख दुःख कैसे हो? और देहसे मिलाहुआ जो भासताहै सो स्वरूपको त्यागकर दृश्यके चेतनेसे देहादिक भ्रम भासतेहैं और बासनाके अनुसार देहसे सम्बन्धहोताहै। जैसे भ्रमर और कमलोंका संयोगहोताहै। देह पिंजरकेनाश हुये आत्माका नाश तो नहींहोता। जैसे कमलके नाशहुये भ्रमरका नाशनहींहोता। इससे तुमक्यों वृथाशोककरतेहो? हेरामजी! जगत्कोअसत्यजानकर अभावनाकरो। मन निरीक्षितहो साक्षीभूत, सम, स्वच्छ, निर्बिकल्प चिदात्मामें जगत्हो भासताहै। जैसे मणि प्रकाशरूपहो भासताहै तो फिर जगत् और आत्माका सम्बन्ध कैसेहो। जैसे अनिच्छित दर्प्पण में प्रतिबिम्ब आप्राप्त होताहै, तैसेही आत्माको जगत्का सम्बन्ध भासताहै। जैसे दर्प्पणमें प्रतिबिम्ब द्वैतरूपहोताहै, तैसेही आत्मामें जगत् भेद भी अभेदरूप है। जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे सब जीवोंकी क्रिया होतीहै और दीपक से पदार्थोंका ग्रहण होताहै तैसेही आत्मसत्तासे जगत्के पदार्थोंका अनुभव होताहै। यह जगत् चैतन्य तत्त्वके स्वभावसे उपजाहै। प्रथमआत्मासे मन उपजाहै और उससे यहजगत्जाल रचाहै—वास्तवमें आत्मसत्तामें आत्मसत्तास्थितहै। जैसे शून्याकाश शून्यतामें स्थितहै और उसमें जगत्भासताहै सो ऐसेहै जैसे आकाशमें नीलता और इन्द्रधनुषहै परन्तु वहशून्यस्वरूपहै। हेरामचन्द्र! यहजगत् चित्तमेंस्थित है और चित्तसङ्कल्परूपहै। जब सङ्कल्पक्षयहोताहै तब चित्त नष्टहोजाताहै और जब चित्तनष्टहुआ तब संसाररूपी कुहिरा नष्टहोजाताहै और निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशतीहै। वह चैतनमात्र सत्ता एक, अज, आदि-मध्य-अन्तसे रहितहै; उसीसे जो स्पन्दफुराहै वह सङ्कल्परूप ब्रह्माहोकर स्थितहुआहै और उसने नानाप्रकारका जगत्रचाहै। वह शून्यरूपहै मूर्खबालकको सत्यरूप भासताहै। जैसे बालकको परछाहींमें वेतालभासताहै और जैसे जीवोंको अज्ञानसे देहाभिमान होता है, तैसेही असत्यरूपही सत्यरूपहोकर भासताहै। जब सम्यक्ज्ञान होताहै तब लीन होजाताहै। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजकर समुद्रमें लीनहोतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् उपजकर आत्मामेंही लीनहोताहै॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेआर्षेमहारामायणेशतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणेमोक्षोपायेपरमार्थनिरूपणंनामसप्तनवतितमस्सर्गः ९७॥

समाप्तमिदंश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणंतृतीयम्॥ ३॥

ॐसच्चिदानन्दायनमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब स्थिति प्रकरण सुनियें जिसके सुनने से जगत् निर्व्वाणताको प्राप्तहो । कैसा जगत् है कि, जिसके आदि अहन्ता है । ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है सो भ्रांतिमात्र है । जैसे आकाश में नानाप्रकारके रंगों सहित इन्द्रधनुष असत्‌रूपहै, तैसेही यह जगत् है । जैसे द्रष्टा बिना अनुभव होताहै और निद्रा बिना स्वप्न और भविष्यत् नगर भासताहै तैसेही भ्रमसे चित्तमें जगत् स्थित हुआ है । जैसे बानर रेत इकट्ठी करके अग्निकी कल्पना करते हैं पर उससे शीतनिवृत्ति नहीं होती; भावनामात्र अग्नि होती है, तैसेही यह जगत् भावनामात्र है । जैसे आकाशमें रत्न मणिका प्रकाश और गन्धर्व्व नगर भासता है और जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है; तैसेही यह असत्‌रूप जगत् भ्रमसे सत्‌रूप हो भासता है । जैसे दृढ़ अनुभव से संकल्प भासताहै पर वह असत्‌रूप है और जैसेकथाके अर्थ चित्तमें भासते हैं; तैसेही निःसाररूप जगत् चित्त में साररूप हो भासता है । जैसे स्वप्ने में पहाड़ और नदियां भासआती हैं, तैसेही सब भूत बड़े भी भासते हैं पर आकाशवत् शून्यरूप हैं । जैसे स्वप्ने में अंगनासे प्रेमकरता अर्थसे रहित और असत्‌रूपहै और जैसे मूरत के लिखे अग्नि और सूर्य्य होते हैं परन्तु उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता है; तैसेही यह जगत्‌भी प्रत्यक्ष भासता है परन्तु वास्तवमें कुछ नहीं अर्थ से रहित है । जैसे चित्रकी लिखी कमलनी सुगन्धसे रहित होती है; तैसेही यहजगत् शून्यरूप है । जैसे आकाश में इन्द्रधनुष और केले का थम्भ सुन्दर भासता है परन्तु उसमें कुछ सार नहीं निकलता, तैसेही यह जगत् देखनेमें रमणीय भासता है परन्तु अत्यन्त असत्‌रूप है; इस में सार कुछ नहीं निकलता । देखने में प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु मृगतृष्णा की नदीवत् असत्‌रूप है । रामजीने पूछा, हेभगवन् ! सर्व संशयों के नाशकर्त्ता ! जब महाकल्प क्षयहोता है तब दृश्यमान सबजगत्

आत्मरूप बीज में लीन होता है। जैसे बीजमें अंकुर रहता है, उससे उपजता है, उसीमें स्थित होता है और फिर उसी में लीन होता है। यह बुद्धि ज्ञानकी है अथवा अज्ञानकी? सर्व संशयों से निवृत्त के अर्थ मुझसे स्पष्ट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार महाकल्प के क्षय हुये बीजरूप आत्मा में जगत् स्थित होता है। जो ऐसे कहते हैं। वह परमअज्ञानी और महामूर्ख बालक हैं जो ब्रह्मको जगत्का कारण बीजसे अंकुर की नाईं कहते हैं वह मूर्ख हैं। बीज तो दृश्यरूप इन्द्रिय का विषय होताहै। जैसे वट बीजसे अंकुर होताहै और फिर विस्तार पाताहै सो इन्द्रियों का विषयहै और जो मन सहित षट् इन्द्रियोंसे अतीतहै, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं, आकाशसेभी अधिक निर्मलहै; उसको जगत् का बीजकैसे कहिये? जो आकाश सेभी अधिक सूक्ष्म, परमउत्तम, अनुभवसे उपलब्ध और नित्य प्राप्तहै उसको बीजभाव कहना नहीं बनता। हे रामजी! जोकि, शांत सूक्ष्म, सदा प्रकाश सत्ताहै और जिसमें दृश्य जगत् अस्तरूप है उसको बीजरूप कैसे कहिये? और जब बीजरूप कहना नहीं बनता तब उसे जगत् कैसे कहिये। आकाशसेभी अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपद में सुमेरु, समुद्र, आकाश आदिक जगत् नहीं बनता। जो किञ्चन और अकिञ्चन है और निराकार, सूक्ष्मसत्ता है उसमें विद्यमान जगत् कैसे हो वह महासूक्ष्मरूप है और दृश्य उसमें विरुद्धरूप है। जैसे धूपमें छाया नहीं, जैसे सूर्य्यमें अन्धकार नहीं; जैसे अग्निमें बरफ़ नहीं, और जैसे अणुमें सुमेरु नहीं होता; तैसेही आत्मामें जगत् नहीं होता। सत्यरूप आत्मामें असत्यरूप जगत् कैसे हो? वटकाबीजभी साकाररूप होताहै और निराकाररूप आत्मामें साकाररूप जगत् होना अयुक्तहै। हे रामजी! कारण दो प्रकारका होताहै—एक समवाय कारण और दूसरा निमित्त कारण; आत्मा दोनों कारण भावोंसे रहितहै। निमित्त कारण तब होता है जब कार्यसे कर्त्ता भिन्न हो पर आत्मा तो अद्वैतहै; उसके निकट दूसरी वस्तुनहीं है वह कर्त्ता कैसेहो और किसकाहो; सहकारी भी नहीं जिससे कार्य करे, वहतो मन और इन्द्रियोंसे रहित निराकार अविकृतरूपहै। और समवाय कारणभी परिणाम से होताहै। जैसे वट बीज परिणामसे वृक्ष होताहै; पर आत्मा तो अच्युत रूपहै, परिणामको कदाचित् नहीं प्राप्त होता तो समवाय कारण कैसेहो। जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यते; इनषट् विकारोंसे रहित निर्विकार आत्मा जगत् का कारण कैसेहो? इससे यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिसे भासताहै। जैसे आकाश में नीलता; सीपमें रूपा और निद्रा दोषसे स्वप्न दृष्टि भासते हैं तैसेही यह जगत् भ्रांतिसे भासताहै। और जब स्वरूपमें जागे तब जगत् भ्रम मिट जाता है। इससे कारणकार्यभ्रमको त्याग कर तुम अपने स्वरूपमें स्थितहो। दुर्बोधसे सङ्कल्प रचना

हुईहै उसको त्याग करो और आदि, मध्य, और अन्तसे रहित जो सत्ता है उसीमें स्थितहो तब जगत् भ्रम मिट जावेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्निराकरणन्नामप्रथमस्सर्गः १ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवताओं में श्रेष्ठ रामजी ! बीजसे अंकुरवत् आत्मासे जगत् कारण अङ्गीकार कीजिये तोभीनहीं बनता क्योंकि आत्मा सर्व कल्पनाओंसे रहित महाचैतन्य और निर्मल आकाशवत् है; उसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीजके परिणाम में अंकुर होताहै; और कारण समवायोंसे होताहै; आत्मामें समवाय और निमित्त सहकारी कदाचित् नहींबनते। जैसे वन्ध्यास्त्रीकासन्तान किसीनेनहींदेखा तैसेही आत्मासे जगत् नहीं होता । जो समवाय और निमित्त कारण विना सहकारी पदार्थ भासे तो जानिये कि यहहैनहीं भ्रान्तिमात्र भासताहै । आत्मसत्ता अपनेआपमेंस्थितहै। और सृष्टि, स्थिति, प्रलयसे ब्रह्मसत्ताही अपनेआपमेंस्थित है । जो इसप्रकार स्थित है तो कारण कार्यका क्रम कैसेहो और जो कारण-कार्यभाव न हुआ तो पृथ्वी आदिक भूत कहांसे उपजे? और जो कारण कार्यमानिये तो पूर्व जो विकारकहेहैं उनका दूषण आताहै । इससे न कोई कारणहै और न कार्यहै; कारण-कार्य विना जो पदार्थ भासे उसको सतरूप जाने । वहमूर्ख बालक और विवेकसे रहितहै जो उसे कार्य कारण मानताहै—इससे यह जगत् न आगेथा; न अबहै और न पीछेहोगा—स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपमें स्थितहै । जब जगत्का अत्यन्त अभावहोताहै तब सम्पूर्ण ब्रह्मही दृष्टिआताहै । जैसे समुद्रमें तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है—अन्यथा कारण कार्यभाव कोई नहीं और न प्राग्य, प्रध्वंसा और अन्योन्याभावही है । प्राग्यभाव उसे कहते हैं कि, जो प्रथम न हो; जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता और पीछे उत्पन्न होताहै और जैसे मृत्तिकासे घट उत्पन्न होताहै । प्रध्वंसाभाव वह है जो प्रथम होकर नष्ट होजाताहै; जैसे घटथा और नष्ट होगया । अन्योन्याभाव वहहै; जैसे घटमें पटका अभाव है और पटमें घटका अभाव है । ये तीनप्रकारके भाव जिसके हृदयमें हैं उसको जगत् दृढ़होताहै और उसको शान्ति नहीं होती । जब जगत्का अत्यन्ताभाव दीखताहै तब चित्त शान्तिवान् होताहै । जगत्के अत्यन्ताभावके सिवाय और कोई उपाय नहीं और अशेष जगत्की निवृत्ति विना मुक्तिनहीं । सूर्य्यसे आदिलेकर जो कुछ प्रकाश पृथ्वीआदिक तत्त्व; क्षण, वर्ष, कल्प आदिक काल और मैं, यह; रूप, अवलोक, मन, संस्कार इत्यादिक जगत् सब सङ्कल्पमात्र है और कल्प, कल्पक, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रसे कीट आदि पर्यन्त जो कुछ जगत् जाल है वह उपज उपजकर अन्तर्द्धान होजाता है । महाचैतन्य परम आकाश में अनन्त वृत्ति उठती है । जैसे जगत्के पूर्वशांत सत्ताथी तैसेही तुम अबभी जानो और

कुछनहीं हुआ। परमाणुके सहस्रांशकी नाईं सूक्ष्मचित्त कलाहै, उस चित्तकलामें अनन्त कोटिसृष्टियां स्थितहैं; वही चित्तसत्ता फुरने से जगत् रूप होभासती है और प्रकाश रूप और निराकार शांतरूपहै; न उदय होताहै; न अस्त होताहै; न आताहै और न जाताहै। जैसे शिलामें रेखा होतीहै तैसे आत्मामें जगत्है। जैसे आकाशमें आकाशसत्ता फुरतीहै तैसेही आत्मामें जगत् फुरताहै और आत्माहीमें स्थितहै। निराकार, निर्बिकार रूप विज्ञान घनसत्ता अपने आपमें स्थित और उदय और अस्तसे रहित, विस्तृतरूपहै। हे रामजी! जो सहकारी कारण कोई न हुआ तो जगत् शून्य हुआ। ऐसे जानेसे सर्व कलङ्क कलना शांत होजातीहै। हे रामजी! तुम दीर्घनिद्रा में सोयेहो, उस निद्राका अभाव करके ज्ञान भूमिकाको प्राप्तहोजाओ। जागेसे निःशोक पद प्राप्त होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेस्मृतिबीजोपन्यासोनामद्वितीयस्सर्गः २॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! महाप्रलयके अन्त और सृष्टि के आदिमें जो प्रजापति होताहै वह जगत्को पूर्वकी स्मृतिसे उसीभांति रचताहै तो ये जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवे? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! कि, महाप्रलयके आदिमें प्रजापति स्मरण करके पूर्वकी नाईं जगत् रचता है जो ऐसे मानिये तो नहीं बनता क्योंकि; महा प्रलयमें प्रजापति कहांरहताहै? जो आपही न रहे उसकी स्मृति कैसे मानिये? जैसे आकाशमें वृक्ष नहीं होता तैसेही महाप्रलयमें प्रजापति नहीं होता। फिर रामजीने पूछा, हे ब्रह्मण्य! जगत्के आदिमें जो ब्रह्माथा उसने जगत् रचा; महाप्रलयमें उस की स्मृतिका नाशतो नहीं होता;वह तो फिर स्मृतिसे जगत् रचताहै आप कैसे कहते हैं कि, नहीं बनता? वशिष्ठजी बोले, हे शुभव्रतरामजी! महाप्रलयके पूर्वजो ब्रह्मादिक होतेहैं वह महाप्रलयमें सब निर्वाण होजातेहैं अर्थात् विदेहमुक्त होतेहैं। जो स्मृति करनेवाले अन्तर्द्धान होगये तो स्मृति कहांरही और जो स्मृति निर्मूलहुई तो उसको जगत्का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय उसका नामहै जहां सर्वशब्द अर्थ सहित निर्मूल होजातेहैं; जहां सर्व अन्तर्द्धान होगये तहां स्मृति किसकी कहिये और जो स्मृतिका अभावहुआ तो कारण किसका किसकी नाईं कहिये? इससे सर्व जगत् चित्तके फुरनेमात्रहैं। जब महाप्रलय होताहै तब सबयत्नबिनाही मोक्षभागी होतेहैं और जो आत्मज्ञान हो तो जगत्के होते भी मोक्षभागी होते हैं पर जो आत्मज्ञाननहीं होता तो जगत् दृढ़होताहै; निवृत्तनहीं होता। जब दृश्यजगत्का अभाव होताहै तब स्वच्छचैतन्य सत्ता जो आदि अन्तसे रहितहै प्रकाशती है और सबजगत्भी वही रूपभासताहै सर्वमें अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित है; उसमें जो आदि संवेदन फुरताहै वह ब्रह्मरूपहै और अन्तवाहक देह बिराट् जगत्हो भासताहै। उसका एक

प्रमाणरूप यह तीनोंजगत् है, उसमें देश,काल,क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआहै। उसके अणुमें जो जगत् फुरते हैं सो क्याहै? सब संकल्परूपहै और ब्रह्मसत्ता का प्रकाश है। जो प्रबुध आत्मज्ञानी है उसको सब जगत् एक ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी है उसके चित्तमें अनेकप्रकार जगत्की भावना होती है। द्वैत भावना से यह भ्रमता है। जैसे इस ब्रह्माण्डके अनेक जीव परमाणु हैं; उनकेभीतर अनन्त सृष्टियां हैं और उनके अन्तर और अनन्त सृष्टी हैं तैसेही और जो अनन्त सृष्टीहैं उनके अन्तर और अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सब ब्रह्मतत्त्वकाही प्रकाश है। ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, उसके भीतर अनेक जगत्रूपी परमाणु हैं सो सब अभिन्न रूपहैं। हे रामजी! सूर्य्यकी किरणों के समूहमें जो सूक्ष्म त्रिसरेणु होते हैं उनकी संख्या कदाचित् कोई करभी सके परन्तु आदि अन्तसे रहित जो आत्मरूपी सूर्य्य है उस की त्रिलोकी रूपी परमाणुओं की संख्या कोई नहींकरसक्ता। जैसे समुद्रमें जल और पृथ्वी में धूरके असंख्य परमाणु हैं; तैसेही आत्मामें असंख्य परमाणु सृष्टि हैं। जैसे आकाश शून्यरूप है तैसेही आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है; यह जो मैंने उसकी सृष्टी कही है जो इनको तुम जगत् शब्द से जानोगे तो अज्ञान बुद्धि है और दुःख और भ्रम देखोगे और जो इनको ब्रह्म शब्द का अर्थजानोगे तो इस बुद्धिसे परमसार को प्राप्तहोगे। सर्व विश्व ब्रह्मसे फुरता है और विज्ञानघन ब्रह्मरूपही है; द्वैतनहीं। जब जागोगे तब तुमको ऐसेही भासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्अनन्तवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः ३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियों का जीतनामोक्षका कारणहै और किसी क्रम तथा उपायसे संसारसमुद्र नहींतराजाता। सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचारसे जब आत्मतत्त्वका बोध होताहै तब इन्द्रियां जीतीजाती हैं और जगत्का अत्यन्त अभाव होताहै। जबतक संसार का अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक आत्म बोध नहीं होता। यह मैंने तुमसे क्रम कहा है सो संसार समुद्रतरने का उपाय है। बहुत कहनेसे क्या है, सबकर्मोंका बीज मनहै; मनके छेदेसेही सब जगत्का छेदन होताहै। जब मनरूपी बीज नष्ट होताहै तब जगत्रूपी अंकुर भी नष्ट होजाताहै। सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपायकरो। मलीन मनसे अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं और इसके जीतनेसे सब लोकों में जय होती है। सब जगत् मन से हुआ है, मनके रहित हुये से देहभी नहीं भासती; जब मनसे दृश्यका अभाव होता है तब मनभी मृतक होजाताहै, इसकेसिवाय कोई उपाय नहीं। हे रामजी! मनरूपी पिशाच का नाश और किसी उपाय से नहीं होता। अनेक कल्प बीतगयेहैं और बीतजायँगे तब भी मनका नाश न होगा। इससे जबतक जगत् दृश्यमानहै तबतक

इसका उपायकरे । जगत् का अत्यन्त अभाव चिन्तना और स्वरूप आत्माका अभ्यास करना यही परम औषध हैं। इस उपायसे मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है जब तक मन नष्ट नहीं होता तबतक मनके मोहसे जन्म मरण होताहै और जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है तब मन बन्धनसे मुक्त होताहै। सम्पूर्ण जगत् मनके फुरनेसे भासताहै; जैसे आकाश में शून्यता और गन्धर्व नगर भासते हैं, तैसेही सम्पूर्ण जगत् मनमें भासता है । जैसे पुहपमें सुगन्ध; तिलोंमें तेल; गुणीमें गुण और धर्मीमें धर्म रहतेहैं तैसेही यह सत्, असत्; स्थूल, सूक्ष्म; कारण, कार्यरूप जगत् मनमें रहताहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग; आकाशमें दूसराचन्द्रमा और मरुथलमें मृगतृष्णा का जल फुरताहै तैसेही चित्तमें जगत् फुरता है। जैसे सूर्य्यमें किरणें;तेजमें प्रकाश और अग्निमें उष्णता है; तैसेही मनमें जगत् है । जैसे बरफ में शीतलता; आकाश में शून्यता और पवनमें स्पन्दता है तैसेही मनमें जगत् है। सम्पूर्ण जगत् मनरूप है, मन जगत्रूप है और परस्पर एकरूप हैं; दोनों में से एक नष्टहो तब दोनों नष्ट होजाते हैं। जब जगत् नष्टहो तब मनभी नष्ट होजाता है। जैसे वृक्षकेनष्ट हुये पत्र, टास, फूल, फल नष्ट होजाते हैं और इनके नष्टहुये वृक्षनष्ट नहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअंकुरवर्णनंनामचतुर्थस्सर्गः ४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! आप सर्व धर्मोंके वेत्ता और पूर्व अपरके ज्ञाताहैं; मन के फुरने से जगत् कैसे फुरता है और कैसे हुआ है? दृष्टांत सहित मुझ से कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी दश सृष्टिहुई और दशही ब्रह्मा हुये सो मनके फुरनेसेही उपजकर मनके फुरने में स्थितहुये और जैसे लवण राजाको इन्द्रजालकी माया से चाण्डाल की प्रतिमा दृढ़होकर भासी, तैसेही यह जगत् मनमें स्थित हुआ है। जैसे शुक्र मनके फुरनेसे चिरकाल स्वर्गको भोगते रहे और अनेक भ्रम देख, तैसेही यह जगत् मनके भ्रमसे स्थित हुआ है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भृगुऋषीश्वर के पुत्रने मनके भ्रमसे कैसे स्वर्ग सुखभोगे;वह कैसे भोगका अधिपति हुआहै और कैसे संसारीहोकर भ्रम देखा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भृगुके पुत्रका वृत्तान्त सुनो । भृगु और कालका सम्वाद मन्दराचल पर्वत में हुआ है। एक समय भृगु मन्दराचल पर्वतमें जहां कल्पवृक्ष और मन्दारवृक्ष आदिक वृक्ष, बहुतसुन्दर स्थान और दिव्यमूर्त्तिहैं तप करतेथे और शुक्रजी उनकी टहल करतेथे जब भृगुजी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुये तब निर्मल मूर्त्ति शुक्र एकान्त जा बैठे। वे कण्ठ में मन्दार और कल्पवृक्षों के फूलोंकी माला पहरेहुये विद्या और अविद्या के मध्यमें स्थितथे । जैसे त्रिशंकुराजा चाण्डालथा पर विश्वामित्रके वरको पाके जब स्वर्गमें गया, तब देवताओं ने अनादरकर उसे स्वर्गसे गिरादिया और

विश्वामित्रने देखकेकहा कि; वहांहीं खड़ारह इससे वह भूमि और आकाशके मध्यमें स्थितरहा; तैसेही शुक्र बैठे तो क्या देखा कि, एक महासुन्दर अप्सरा उसके ऊर्ध्व स्वर्गकीओर चलीजाती है । जैसे लक्ष्मीकीओर विष्णुजी देखें तैसेही अप्सराको शुक्रने देखा कि, महासुन्दर और अनेक प्रकारके भूषण और वस्त्र पहिनेहुये महासुगन्धित है और महासुन्दर आकाशमार्ग्ग भी उससे सुगन्धितहुआ है । पवन भी उसको स्पर्श करके सुगन्ध पसारती है और महामद से उसके घूर्णे नेत्रहैं । ऐसी अप्सराको देखके शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ और जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको देखके क्षीर समुद्र क्षोभित होता है तैसेही उसकी वृत्तिमार्गसे रहित होकर अप्सरा में जा स्थितहुई और कामदेवका बाण आलगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवसंवितगमनंनामपञ्चमस्सर्गः ५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार उसने अप्सरा को देखके नेत्र मूंदे और मनोराजको फैलाकर चिन्तनेलगा कि, यह मृगनयनी ललना जो स्वर्गको गई है मैं भी उसके निकट पहुँचूं ! ऐसे विचार के वह उसके पीछे चला और जाते जाते मन से स्वर्ग में पहुँचा । वहां सुगन्ध सहित मन्दार और कल्पतरु; द्रव स्वर्णकी नाईं देवताओं के शरीर और हास विलास संयुक्त स्त्रियां जिनके हरिणकी नाईं नेत्र हैं देखे । मणियोंके समूह कि, परस्पर उनमें प्रतिबिम्ब पड़ते हैं और विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोक में देखी । मन्दमन्द पवन चलती है, मन्दार वृक्षोंमें मंजरी प्रफुल्लित हैं और अप्सरा गण विचरती हैं । इन्द्र भागमें आगेगया तो देखा कि, ऐरावत हस्ती जिसने युद्धमें दांतोंसे दैत्यचूर्ण किये हैं बड़ेमदसे खड़ा है, देवताओं के आगे अप्सरा गान करती हैं; सुवर्ण के कमल लगेहुये हैं । ब्रह्माके हंस और सारसपक्षी विचरते हैं और देवताओं के नायक विश्राम करते हैं । फिर लोकपाल, यम, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, वायु और अग्निके स्थान देखे जिनका महाज्वालावत् प्रकाशहै । ऐरावत के दांतोंमें दैत्योंकी पंक्तीदेखी,देवता देखे जो बिमाननपर आरूढ़ भूषण पहिनेहुये फिरते हैं और उनके हार मणियोंसे जड़ेहुये हैं । कहीं सुन्दर बिमानों की पंक्ती विचरती हैं; कहीं मन्दारवृक्षहैं, कहीं कल्पवृक्षहैं, उनमें सुन्दरलताहैं; कहीं गंगाका प्रवाह चलताहै, उसपर अप्सरा गण बैठी हैं; कहीं सुगन्धता सहित पवन चलता है; कहीं झरने में से जल चलता है; कहीं सुन्दर नन्दन बनहै; कहीं अप्सरा बैठीहैं; कहीं नारद आदिक बैठे हैं और कहीं जिनलोगोंने पुण्य किये हैं वे बैठे सुख भोगते हैं और बिमानोंपर आरूढ़ हुये फिरते हैं । कहीं इन्द्रकी अप्सरा कामदेवसे मस्त हैं और जैसे कल्पवृक्षमें पके फल लगतेहैं तैसेही रत्न और चिन्तामणि लगे हैं; और कहीं चन्द्रकान्ति मणि श्रवती है । इसप्रकार शुक्रने मनसे स्वर्ग

की रचना देखी, मानों त्रिलोक की रचना यहांहीं है। शुक्रको देखके इन्द्र उठखड़ा-हुआ कि, दूसरा भृगु आया है और बड़ेप्रकाश संयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको प्रणाम किया और हाथपकड़के अपनेपास बैठाके बोला, हे शुक्रजी! आज हमारे धन्यभाग्य हैं जो तुम आये। आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल, शोभित औरनिर्मल हुआहै। अब तुम चिरपर्यंत यहांही रहो। जब ऐसेइन्द्रनेकहा तब शुक्रजी शोभित हुये और उसको देखके सुरोंके समूहने प्रणामकिया कि, भृगुकेपुत्र शुक्रजीआये हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवमनोराजवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजी इन्द्रकेपास जाबैठे तब अपना जो निजभावथा उसको भुलादिया। वह जो मन्दराचल पर्व्वतपर अपना शरीरथा सो भूलगया और वासनासे मनोराजका शरीर दृढ़ होगया। एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त इन्द्रके पास बैठेरहे परन्तु चित्त उस अप्सरामें रहा। इसके अनन्तर उठ खड़ेहुये और स्वर्ग्गको देखनेलगे तब देवताओं ने कहा कि, चलो स्वर्ग्गकी रचना देखो। तब शुक्रजी देखते देखते जहां वह अप्सराथी वहां गये। बहुतसी अप्सरों में वह भी बैठीथी, उसको शुक्रजीने इसभांति देखा जैसे चन्द्रमा चांदनीको देखे। उसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होकर प्रस्वेदसे पूर्ण हुआ, जैसे चन्द्रमाको देखके चन्द्रकान्तिमणि द्रवीभूत होतीहै; और कामदेवके बाणउसके हृदयमें आलगे उससे व्याकुल होगया। शुक्रको देखके उसका चित्त भी मोहित होगया—जैसे वर्षाकाल की नदी जलसे पूर्ण होतीहै तैसेही परस्पर स्नेह बढ़ा। तब शुक्रजीने मनसे तम रचा उससे सब स्थानोंमें तम होगया। जैसे लोकालोक पर्व्वतकेतटमें तम होताहै तैसेही सूर्य्यका अभाव होगया। तब भूतजात सब अपने २ स्थानों में गये, जैसे दिनके अभावहुये पशु पक्षी अपने २ गृहको जातेहैं और वह अप्सरा शुक्रके निकटआई। शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठगये और अप्सरा भी जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने हुयेथी चरणोंके निकटबैठी और स्नेहसे दोनों कामवशहुये;तब अप्सराने मधुरवाणी से कहा, हे नाथ! मैं निर्ब्बल होकर तुम्हारी शरण आईहूं मुझको कामदेव दहन करताहै, तुम रक्षा करो; मैं इससे पूर्ण होगईहूं। स्नेहरूपी रसको वही जानता है जिसकोप्राप्त हुआहै, जिसको रसका स्वाद नहींआया वह क्याजाने। हे साधु! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोईनहीं जैसा सुख परस्परस्नेहसे होताहै। अब तुम्हारेचरणों को पाके मैं आनन्दवान् हुईहूं और जैसे चन्द्रमाको पाके कमलिनीऔर चन्द्रमाकी किरणोंको पाके चकोर आनन्दवान् होतेहैं तैसेही मुझको स्पर्शकरके आप आनन्द होंगे। जब इसप्रकार अप्सरा ने कहा तब दोनोंकामके वशहोकर क्रीड़ा करनेलगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्ग्गवसंगमोनामसप्तमस्सर्गः ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उसको पाके शुक्रने आपको आनन्दवान् मान, मन्दार और कल्पवृक्षके नीचे क्रीड़ाकी और दिव्यवस्त्र, भूषण और फूलोंकी माला पहिनकर वन, वगीचे। और किनारोंमें क्रीड़ा करते और चन्द्रमा की किरणोंके मार्गसे अमृत पान करते रहे । फिर विद्याधरों के गणोंके साथ रह उनके स्थानों और नन्दनवन इत्यादिकमें क्रीड़ा करते कैलासपर्वतपर गये और अप्सरा सहित वन कुंजमें फिरते रहे। फिर लोकालोक पर्वतपर क्रीड़ा की, फिर मन्दराचलपर्वत के कुंजमें विचर अर्द्धसतयुगपर्य्यन्त श्वेतद्वीप में रहे; फिर गन्धर्वों के नगरोंमें रहे और फिर इन्द्रके वनमें रहे। इसीप्रकार वत्तीस युग पर्य्यन्त स्वर्गमें रहे; जब पुण्य क्षीण हुआ तव भूमिलोक में गिरादिये गये और गिरते २ उनका शरीर टूटगया । जैसे झरनेमें से जल वन्दहो तैसेही शरीर अन्तर्द्धान होगया। तव उनकी चिन्ता संयुक्त पुर्यष्टक आकाशमें निराधार होरही और वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणों में जा स्थित हुये। फिर शुक्रने तो किरणोंके द्वारा धान्यमेंआ निवासकिया और उसधान्य को दशारण्य नाम ब्राह्मणने भोजन किया तो वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भमें जारहा और उस धान्यको मालवदेशके राजाने भी भोजनकिया उसके वीर्यद्वारा वहअप्सरा उसकी स्त्रीके उदरमें जा स्थित हुई निदान दशारण्य ब्राह्मण के गृह में शुक्रपुत्र हुआ और मालव देशके राजाके यहां अप्सरा पुत्री हुई। क्रमसे जव षोड़शवर्षकी हुई तो महादेवकी पूजाकर यह प्रार्थना की कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्ता की प्राप्ति हो इस प्रकार वह नित्य पूजन करे और वर मांगे; निदान वहां वह यौवनवान् हुआ यहां यह यौवनवतीहुई तव राजाने यज्ञका आरम्भ किया और उसमें सव राजा और ब्राह्मणआये । दशारण्य ब्राह्मणभी पुत्रसहित वहां आया तव उस पूर्व्व जन्म के भर्त्ता को देखकर स्नेहसे राजपुत्री के नेत्रोंसे जलचलने लगा और उसके कण्ठमें फूलकीमाला डालके उसे अपना भर्त्ता किया। राजा यह देखके आश्चर्यमान हुआ और निश्चयकिया कि, भलाहुआ । फिर क्रमसे विवाह किया और पुत्री और जामातृको राज्य देके आप वनमें तपकरनेकेलिये चलागया। यहां ये पुरुष और स्त्री मालव देशका राज्यकरनेलगे और चिरकालतक राज्य करतेरहे। निदान दोनोंवृद्धहुये और उनका शरीर जर्ज्जरीभूतहोगया तव उसको वैराग्यहुआ कि, स्त्री महादुःख स्वरूप है पर उसे सामान्य वैराग्य हुआथा इससे जर्ज्जरीभूत अङ्गमें सेवन से तो अशक्त हुआ परन्तु तृष्णा निवृत्ति न हुई। निदान मृतकहुआ और वान्धवोंने जलादिया तव ज्ञानकी प्राप्तिविना महाअन्धकूप मोह में जा पड़े। हे रामजी ! मृत्यु मूर्च्छा के अंतर उसको परलोक भासिआया और वहां कर्म के अनुसार सुखदुःख भोगके अङ्गवङ्ग देश में धीवरहुआ और अपने धीवरकर्म करता

रहा। फिर जब वृद्ध अवस्थाआई तब शरीरमें वैराग्यहुआ कि,यह संसार महादुःख रूपहै। ऐसे जानके सूर्य भगवान्का तप करनेलगा और जब मृतकहुआ तब तपके बशसे सूर्यबंशमें राजाहोकर भावनाके बशसे कुछ ज्ञानवान्हुआ । इसजन्ममें वह योगकरने और वेदपढ़नेलगा और योगकी भावनासे जब शरीरछूटा तब बड़ा गुरुहुआ और सबकोउपदेश करनेलगा, मंत्र सिद्धकिया और वेदमेंबहुत परिपक्कहुआ। मंत्रके बशसे वह विद्याधरहुआ और एक कल्प पर्य्यन्त विद्याधर रहा। जब कल्पका अन्त हुआ तब शरीर अन्तर्द्धान होगया और पवनरूपी शरीर वासना सहितहोरहा। जब ब्रह्मा की रात्रि क्षयहुई; दिन हुआ और ब्रह्माने सृष्टि रची तब वह एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ और वहां उसने बड़ा तप किया। वह सुमेरुपर्वतपर जाकर स्थित हुआ और एकमन्वन्तर पर्य्यन्त वहां रहा। जब इकहत्तर चौयुगी बीतीं तब वह भोगों केबश हरिणीका पुत्र हुआ और मनुष्यके आकार से वहां रहा और पुत्र के स्नेह से मोह को प्राप्तहो निरन्तर यही चिन्तना करनेलगा कि,'मेरे पुत्रको बहुत धन, गुण, आयुर्दा, बलहो। इसकारण तपके भ्रष्ट होने से अपने धर्म्म से विरक्तहुआ; आयुष्य क्षीणहुई और मृत्युरूप सर्पने ग्रासालिया और तपकी अभिलाषा से शरीर छूटा इस कारण भोगकी चिन्ता संयुक्त मद्रदेश के राजाके गृह में उत्पन्न हुआ; फिर उसदेश का राजा हुआ और चिरपर्य्यन्त राज्यभोग के वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ और शरीर जर्ज्जरीभूत होगया। वहां तपकी अभिलाषा में उसका शरीर छूटा उससे तपेश्वर के गृहमें पुत्र हुआ और सन्तापसे रहितहोकर गङ्गाजी के किनारे पर तप करने लगा। हे रामजी! इसप्रकार मनके फुरने से शुक्रने अनेक शरीर भोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवोपाख्यानेविविधजन्मवर्णनन्नाम अष्टमस्सर्ग्गः ८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार शुक्र मनसे भ्रमता फिरा। भृगुके पास जो उसका शरीर पड़ाथा सो निर्ज्जीव हुआ; पुर्यष्टक निकलगई थी और पवन और धूप से शरीर जर्ज्जरी भूत होगया। जैसे मूलसे काटावृक्ष गिरपड़ता है, तैसे शरीर गिरपड़ा। चंचलमन भोगकी तृष्णा से वहां गयाथा। जैसे हरिण वनमें भ्रमता है और चक्रपरचढ़ा बासन भ्रमताहै; तैसेही उसने भ्रमसे भ्रमान्तर देखा पर जब मुनीश्वर के गृह में जन्मलिया तब चित्तमें विश्रामहुआ और गङ्गाके तटपर तप करनेलगा। निदान मन्दराचल पर्वतवाला शरीर निरस होगया; अस्थिचर्ममात्र शेष रहगया और लोहू सूखगया। जब शरीर के रन्ध्रमार्ग से पवनचले तब बासुरीवत् शब्दहो; मानों चेष्टाको त्याग के शरीर आनन्दवान् हुआहै। जबबड़ा पवनचले तब भूमिमें लोटनेलगे; नेत्र आदिक जो रन्ध्रथेसो गर्त्तवत् होगये और

मुख फैलगया—मानों अपने पूर्व स्वभाव को देखके हँसता है। जब वर्षाकाल आवे तब वह शरीर जलसे पूर्ण होजावे और जल उसमें प्रवेश करके रन्ध्रोंके मार्ग से निकले—जैसे झरने से निकलताहै और जब उष्णकाल आवे तब महाकाष्ठकी नाईं धूपसे सूखजावे निदान वह शरीर वनमें मौनरूप होकर स्थितरहा। और पशु पक्षियों नेभी उस शरीरको नाश न किया। उसका एकतो यह कारण था कि, रागद्वेषसे रहित पुण्य आश्रमथा—और दूसरेभृगुजी महातपस्वी तेजवान्के निकट कोई आ न सक्ता था। इस कारण उसदेहको कोईनष्ट न करसका। यहां तौ शरीरकी यहदशाहुई और वहां शुक्र पवन के शरीरसे चेष्टाकरतारहा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवकलेवरवर्णनंनामनवमस्सर्ग्गः ९॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जब सहस्र वर्ष अर्थात् भूमिलोकके तीनलाख और साठ सहस्र वर्ष बीते तब भगवान् भृगुजी समाधि से उतरे तो उन्हें शुक्रका शरीर दृष्टि न आया। जब भलेप्रकार नेत्रफैलाकरदेखा तब मालूमहुआ कि, उसका शरीर कृश होके गिरपड़ाहै। यह दशा देख उन्होंने जाना कि, कालने इसको भक्षणकियाहै और धूप, वायु और मेघसे शरीर जर्ज्जरीभूत होगयाहै, नेत्र गढ़ेरूप होगये हैं; शरीरमें कीड़े पड़गयेहैं और जीवोंने उसमें आलय बनायेहैं। घुराण अर्थात् कसवारी और मक्खियां उसमें आतीजातीहैं; श्वेत दांत निकलआयेहैं—मानों शरीरकी दशाको देखके हँसतेहैं और मुख और ग्रीवा महाभयानकरूप, खपर श्वेत और नासिका और श्रवणस्थान सब जर्ज्जरीभूत होगयेहैं। उस शरीरकी यह दशादेखके भृगुजी उठ खड़े हुये और क्रोधवान् होकर कहनेलगे कि, कालने क्या समझा जो मेरे पुत्रको मारा। शुक्र परमतपस्वी और सृष्टि पर्यन्त रहनेवालाथा सो विना काल कालने मेरे पुत्रको क्यों मारा, यह कौनरीतिहै? मैं कालको शापदेकर भस्मकरूंगा। तब कालका रूप काल अद्भुत शरीर धरकर आया। उसके षट्मुख, षट्भुजा; हाथ में खड्ग, त्रिशूल और फांसी और कानों में मोती पहिनेहुये; मुखसे ज्वाला निकलती थीं; महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा और त्रिशूलके अग्रसे अग्निकी लाटें निकलती थीं। जैसे प्रलयकालकी अग्निसे धूम निकलता है तैसेही उसका श्याम शरीर और बड़े पहाड़की नाईं उग्ररूप था और जहां वह चरण रखता था वहां पृथ्वी और पहाड़ कांपने लगते थे। निदान भृगुजी महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधसे पूर्ण थे उनसे कहने लगा; हे मुनीश्वर! जो मर्यादा और परावर परमात्माके वेत्ता हैं वे क्रोध नहीं करते और जो कोई क्रोधकरे तौभी वे मोहके वशहोकर क्रोधवान् नहीं होते। तुम कारण बिना क्यों मोहित हो क्रोध को प्राप्त हुये हो? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हो और हम नीतिके पालक हैं। तुम हमारे पूजने योग्यहो—यही नीतिकी

इच्छा है और तपकेवलसे तुम क्षोभमतकरो, तुम्हारे शापसे मैं भस्म भी नहीं होता। प्रलय कालकी अग्निभी मुझको दग्ध नहीं करसक्ती तो तुम्हारे शापसे मैं कब भस्म होसक्ताहूं। हे मुनीश्वर! मैं तो अनेक ब्रह्माण्ड भक्षण करगयाहूं;और कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मैंने ग्रासलिये हैं; तुम्हारा शाप मुझको क्या करसक्ता है? जैसे आदिनीति ईश्वरने रची है तैसेही स्थित है। हम सबके भोक्ता हुये हैं और तुमसे ऋषि हमारे भोगहुये हैं, यही आदिनीति है। हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभाव से ऊर्ध्व को जाता है और जल स्वभावसे अधको जाता है; भोक्ताको भोग प्राप्त होताहै और सब सृष्टि कालके मुखमें प्राप्त होती है। आदि परमात्माकी नीति ऐसेही हुई है और जैसे रची है तैसेही स्थित है पर जो निष्कलङ्क ज्ञान दृष्टिसे देखिये तो न कोई कर्त्ता है, न भोक्ताहै, न कारणहै, न कार्य है एक अद्वैत सत्ताही है और जो अज्ञान कलङ्क दृष्टि से देखिये तो कर्त्ता भोक्ता अनेक प्रकारके भ्रम भासते हैं। हे ब्राह्मण! कर्त्ता भोक्ता आदिक भ्रम असम्यक् ज्ञानसे होता है; जब सम्यक् ज्ञान होताहै तब कर्त्ता, कार्य्य और भोक्ता कोई नहीं रहता। जैसे वृक्षमें पुष्प स्वभावसे उपज आते हैं और स्वभावसेही नष्ट होजातेहैं; तैसेही भूत प्राणी सृष्टि में स्वाभाविक फुर आतेहैं और फिर स्वाभाविक रीतिसेही नष्ट होजाते हैं। ब्रह्मा उत्पन्न करता है और फिर नष्ट भी करता है। जैसे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जलके हिलनेसे हिलता भासता है और ठहरनेसे ठहरा भासताहै तैसेही मनके फुरनेसे आत्मा में कर्त्तव्य भोक्तव्य भासताहै वास्तवमें कुछ नहीं; सब मिथ्या है। जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासता है तैसेही आत्मामें कर्त्तव्य भोक्तव्य भ्रमसे भासता है। इससे क्रोधमत करो; यह दुष्टकर्म आपदा का कारण है। हे मुनीश्वर! मैं तुमको यह वचन अपनी विभूति और अभिमानसे नहीं कहता। यह स्वतः ईश्वर की नीति है और हम उसमें स्थित हैं। जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने प्रकृति आचार में विचरते हैं और अभिमान नहीं करते। जो कर्त्तव्य के वेत्ता हैं वे बाहरसे प्रकृत आचार करते हैं और हृदयसे सुषुप्तिकी नाईं स्थित रहते हैं। वह ज्ञान दृष्टि,धैर्य्य,और उदार दृष्टि कहांगई जो शास्त्रमें प्रसिद्धहै? तुम क्यों अन्धेकी नाईं मोहमार्गमें मोहित होतेहो? हे साधु! तुमतो त्रिकालदर्शी हो, अविचार से मूर्खकी नाईं जगत् यंत्रमें क्यों मोहको प्राप्त होतेहो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मोंके फलको प्राप्त हुआहै और तुम मूर्ख की नाईं मुझको शापदिया चाहते हो! हे मुनीश्वर! इसलोक में सब जीवों के दो दो शरीर हैं—एक मनरूप और दूसरा अधिभूतरूप। अधिभूतरूप जड़ और अत्यन्त विनाशी है और जहां इस को मन प्रेरता है वहां चलाजाता है—आपसे कुछ कर नहीं सक्ता। जैसे सारथी भला होता है तो रथको भले स्थानको लेजाता है और जो सारथी भला नहीं होता

तो रथको दुःखके स्थानमें लेजाता है; तैसेही यदि जो मनभला होता है तो उत्तम लोकमें जाता है और जो दुष्ट होता है तो नीच स्थानमें जाता है । जिसको मन असत्करताहै सो असत् भासता है और जिसको मन सत्करताहै वह सत्भासता है। जैसे मट्टी की सेना बालक बनाते और फिर भङ्ग करते हैं; कभी सत्करते, कभी असत्करते हैं और जैसे करते हैं तैसेही देखते हैं; तैसेही मनकी कल्पना है। हे साधु ! चित्तरूपी पुरुष है; जो चित्त करताहै वह होताहै और जो चित्त नहीं करता वह नहीं होता । यह जो फुरना है कि, ये देह है, यह नेत्र हैं, ये अङ्ग हैं इत्यादिक सब मनरूप हैं। जीवभी मनका नामहै और मनका जीनाजीव है । वही मनकी वृत्ति जब निश्चयरूप होती है तब उसका नाम बुद्धि होताहै; जब अहंरूप धारती है तब उसका नाम अहंकार होता है और जब देहको स्मरण करती है तब उसका नाम चित्त होता है। इससे पृथ्वीरूपी शरीर कोई नहीं; मनही दृढ़ भावनासे शरीर रूप होताहै और वही आधिभौति होभासता है और जब शरीरकी भावनाको त्यागता है तब चित्त परमपदको प्राप्त होताहै। जो कुछ जगत् है वह मनके फुरनेमें स्थित है; जैसा मनफुरता है तैसाही रूपहो भासताहै । तुम्हारे पुत्र शुकनेभी मनके फुरनेसे अनेक स्थान देखे हैं । जब तुम समाधिमें स्थित थे तब वह विश्वाची अप्सराके पीछे मनसे चला गया और स्वर्ग में जापहुंचा । फिर देवता होकर मन्दारवृक्षोंमें अप्सराके साथ विचरनेलगा और फिर पारिजात तमाल आदि वृक्ष और नन्दन वनमें विचरता रहा। इसीप्रकार बत्तीस युग पर्यंत विश्वाची अप्सरा के साथ लोक-पालोंके स्थान इत्यादिमें विचरता रहा और जैसे भँवरा कमल को सेवता है तैसेही तीव्र संवेगसे भोग भोगता रहा । जब पुण्यक्षीण हुआ तब वहांसे इस भांति गिरा जैसे पक्काफल वृक्षसे गिरता है। तब देवताका शरीर आकाश मार्गमें अन्तर्द्धान होगया और भूमिलोक में आपड़ा । फिर धानमें आकर ब्राह्मणके वीर्यद्वारा ब्राह्मणी कापुत्रहुआ; फिर मालव देशका राज्यकिया और फिर धीवरका जन्मपाया । फिर सूर्यवन्शी राजाहुआ, फिर विद्याधरहुआ और कल्पपर्यंत विद्याधरों में बुद्धिवान् रहा और फिर विन्ध्याचल पर्वतमें गैवहोकर क्रांतदेश में धीवरहुआ । फिर तरङ्गीत देश में राजाहुआ, फिर क्रांतदेश में हरिणहुआ और वन में विचरा और फिर विद्यावान् गुरुहुआ । निदान श्रीमान् विद्याधरहुआ और कुण्डलादिक भूषणों से संपन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गन्धर्वों का मुनि नायकहुआ और कल्पपर्यंत वहां रहा । जब प्रलय होनेलगा तब पूर्वके सबलोक भस्म होगये—जैसे अग्नि में पतङ्ग भस्महोते हैं—तब तुम्हारा पुत्र निराधार और निराकार वासनासे आकाश मार्गमें भ्रमतारहा। जैसे आलय बिना पक्षी रहता है तैसेही वह रहा और जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीतहुई

और सृष्टिकी रचनाबनी तबवह सतयुग में ब्राह्मणका बालक वसुदेवनामहो गङ्गाके तटपर तप करनेलगा। अब उसे आठसौ वर्ष तपकरते बीतेहैं; जो तुमभी ज्ञानदृष्टि से देखोगे तो सबवृत्तान्त तुमको भासआवेगा। इससे देखोकि, इसीप्रकारहै अथवा किसी और प्रकारहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकालबाक्यन्नामदशमस्सर्गः १०॥

कालबोले, हे मुनीश्वर! ऐसी गङ्गाके तटपर जिसमें महातरङ्ग उछलते और झनकारशब्द होतेहैं तुम्हारापुत्र तप करता है। शिरपर उसके बड़ी जटाहैं और सर्वइन्द्रियों के भ्रमको उसने जीताहै। जो तुमको उसके मनके बिस्तार देखने की इच्छाहै तो इननेत्रों को मूंदकर ज्ञान के नेत्रोंसेदेखो। हे रामजी! जब इसप्रकार जगत् के ईश्वरकालने, जिसकी समदृष्टि है, कहा; तब मुनीश्वरने नेत्रोंको मूंदकर, जैसे कोई अपनी बुद्धिमें प्रतिबिम्ब देखे ज्ञाननेत्रोंसे एक मुहूर्त्तमें अपने पुत्रका सब वृत्तान्त देखा और फिर मन्दराचल पर्वतपर जो भृगुशरीर पड़ाथा उसमें प्रवेशकर अन्तबाहक शरीरसे अपने अग्रभागमें काल भगवान्‌को देखकर पुत्रको गङ्गाके तट पर देखा। यह दशा देख वह आश्चर्य्यको प्राप्तहुआ और विकार दृष्टिको त्यागकर निर्म्मलभावसे वचन कहे। हे भगवन्! तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर! हम बालक हैं; इसीसे निर्दोषहैं। तुमसरीखे बुद्धिमान् और तीन काल अमलदर्शी हैं। हे भगवन्! ईश्वरकीमाया महाआश्चर्य्यरूप है जो जीवोंको अनेक भ्रम दिखाती है और बुद्धि-मान्‌को भी मोह करतीहै तो मूर्खोंकी क्या बातहै? तुम सब कुछ जानतेहो; जीवोंकी सब वार्त्ता तुम्हारे अन्तर्ग्गतहै। जैसी जीवोंके मनकी वृत्तिहोतीहै उसके अनुसार वे भ्रमतेहैं। वह मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अन्तर्ग्गत फुरतीहै। जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होताहै तैसेही तुम इनसबों के वेत्ताहो। हे भगवन्! मैंने भ्रमको प्राप्त होकर क्रोध इसकारणसे किया कि, मेरे पुत्रकी मृत्यु न थी, वह चिरंजीवीथा और उसको मैं मृतकहुआ देखके भ्रमको प्राप्तहुआ। हमारा क्रोध आपदाका कारण नहीं था क्योंकि, जब मैंने पुत्रका शरीर निर्जीव देखा तब कहा कि, अकारण मृतक हुआ इसकारण क्रोधहुआ। क्रोध भी नीतिरूपहै अर्थात् जो क्रोधका स्थानहो वहां क्रोध चाहिये। मैंने संसारकी गति विचारके क्रोध नहीं किया; अर्थात् पुत्रकी अवस्था देखके क्रोध नहीं किया; निर्ज्जीव शरीरकोदेखके क्रोधकिया;इसीसे यह क्रोध आपदा का कारण नहीं। अयुक्ति कारण से जो क्रोध होता है वह आपदा का कारण है और युक्तिसे जो क्रोध है वह सम्पदा का कारण है। यह कर्त्तव्य संसारकी सत्तामें स्थित है। यह नीति है कि, जब तक जीव है तबतक जगत् क्रम है। जैसे जबतक अग्नि है तबतक उष्णताभीहै। जो कर्त्तव्यहै वह करनाहै और जो त्यागनेयोग्यहै वहत्यागना

है। यह नीति जगत् में स्थित है। जो हेयोपादेय नहीं जानता उसको त्यागना योग्य है। इससे मैंने पुत्रका अकालमृत्यु देखके क्रोध कियाथा परन्तु विचार करके जब तुमने स्मरण कराया तब मैंने विचारकरके देखा कि, मेरापुत्र अनेक भ्रमपाकर अब गङ्गाके तटपर तप करता है। हे भगवन्! तुमने तो कहा कि, सब जीवोंके दो दो शरीर हैं—एक मनोमय और दूसरा आधिभौतिक; पर मैं तो यह मानताहूं कि, केवल मनही एक शरीर है; दूसरा कोईनहीं। मनहीं का किया सफलहोता है; शरीर का नहीं होता। कालबोले; हे मुनीश्वर! तुमने यथार्थकहा; शरीर एकमनहीं है। जैसे घटको कुलाल रचता है, तैसेही मन देहरचता है। जो मन शरीरसे रहित निराकार होता है तीक्षण में आकारको रचलेता है। जैसे बालक परछाहीं में वैतालको भ्रमसे रचता है। मनमें जो फुरनसत्ता है वह स्वप्नभ्रम दिखाती है और उसमें बड़े आकार और गन्धर्व नगर भासिआते हैं पर वह मनहींकीसत्ताहै स्थूल दृष्टिसे जीवोंको दो शरीरभासते हैं, बोधवान्को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं और सब मनसे रचेहैं। जब भेदवासना होती है तब असत्रूप जगत् नानाप्रकार हो भासता है। जैसे असम्यक् दृष्टि से दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही सम्यक्दर्शी को एक चन्द्रमावत् सब शान्तरूप आत्माही भासताहै और भेदभावनासे घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि, मैं दुर्बल हूं व मोटाहूं; सुखीहूं व दुःखीहूं; यह जगत् है, यह काल है, इत्यादिक सो संसार वासनामात्र है। जब मन शरीरकी वासनाको त्यागकर परमार्थकी ओर आताहै तब भ्रमको नहीं प्राप्तहोता। हे मुनीश्वर! समुद्र से तरङ्ग उठकर ऊर्ध्वको जाताहै,जो वह जानेमें तरङ्ग होताहूं तो मूर्ख है—यही अज्ञानदृष्टिहै। ऊर्ध्वकोजावेगा तब जानेगा मैं ऊर्ध्वकोगयाहूं,नीचे जावेगा तब जानेगा मैं पातालको गयाहूं,यह कल्पनाहीअज्ञानहै, वास्तव नहीं। वास्तव दृष्टि यहहै जो अधहो अथवा ऊर्ध्वहो परन्तु आपको जलरूप जाने। तैसेही जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिक में अहं प्रतीत करताहै सो अनेक भ्रम देखताहै;सम्यक्दर्शी सबआत्मरूप जानताहै। सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरङ्गहैं, अज्ञानसे भिन्न हैं और ज्ञानसे वहीरूपहै। आत्मरूपी समुद्र सम, स्वच्छ, शुद्धआदि रूप,शीतल,अविनाशी और विस्तृत अपनी महिमामें स्थितहै और सदाआनन्दरूप है। जैसे कोई जलमेंस्थितहो और तटपर पहाड़में अग्निलगीहो तो उसअग्निका प्रतिबिम्ब जलमेंदेख वहकहेकि, मैं दग्धहोताहूं। जैसे भ्रमसे उसको ज्वलनता भासती है तैसेही जीवको आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है। जैसे तटके वृक्ष, पर्वतादि पदार्थ जलमें नानाप्रकार प्रतिबिम्बवत् भासते हैं तैसेही आभासरूप जगत्को जीव नानारूपमानते हैं। जैसेएकसमुद्रमें नानातरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्मामेंअनेकआकार जगत्भासताहै; वास्तवमें द्वैत कुछ नहीं सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ताहीहै उसीसे विचित्र

रूप चंचल भासता है पर वह एकरूप अपनेआपमें स्थित है। ब्रह्ममें जगत् फुरता है और उसीमें लीन होताहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर उसीमें लीन होते हैं, कुछ भेद नहीं, पूर्णमें पूर्णही स्थितहै। जैसे जलसे तरंग और ईश्वरसे जगत् और पत्र, डाल, फूल, फल, वृक्षरूप हैं तैसेही सब जगत् आत्मारूप है और वह आत्मा अनेक शक्तिरूप है। जैसे एक पुरुष अनेक कर्मका कर्त्ताहोता है और जैसा कर्म करता है तैसेही संगको पाताहै अर्थात् पाठ करनेसे पाठक और पाककरने से पाचक और जाप करने से जापक आदिक अनेकनाम धारता है; तैसेही एकआत्मा अनेक शक्ति धारता है। जैसे जिस आकारकी परछाहीं पड़ती है तैसाही आकार भासता है और एक मेघमें अनेक रंग सहित इन्द्रधनुष भासता है; तैसेही यह अनेक भ्रम पाता है। हे साधु! सब जगत् ब्रह्म से फुरा है और जो जड़भासते हैं वे भी चैतन्य सत्तासे फुरे हैं। जैसे मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर आपही ग्रास लेती है तैसेही चैतन्य से जड़ उत्पन्न होके फिर लीन होजाते हैं। चैतन्यजीव से सुषुप्ति जड़ता उपजती है और फिर उसी में निवृत्त होती है। इससे अपनीइच्छा से यह पुरुष बन्धमान होता है और अपनी इच्छासेही मुक्त होता है। जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानसे मिलताहै तब आपको बन्धमान करताहै–जैसे घुरान आपही गृह रचके बन्धमान होतीहै और जब पुरुषार्थकरके अन्तर्मुख होताहै तब मुक्तिपाता है। जैसे अपने हाथके बलसे बन्धनको तोड़के कोई बली निकल जाता है। हेसाधु! ईश्वर की विचित्ररूप शक्ति है; जैसी शक्ति फुरती है तैसाही रूप देखाती है। जैसे ओस आकाशमें उपजतीहै और उसीको ढांपलेतीहै तैसेही आत्मामें जो इच्छाशक्ति उपजतीहै वही आवरण करलेती है और उसीमें तन्मयरूप होजातीहै। वास्तवमें जीव कोबन्धनऔर मोक्ष नहीं है;बन्ध और मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्रहैं। मैं नहींजानता कि,बन्ध और मोक्षलोकमें कहांसे आये हैं। आत्माको न बन्धनहै और न मोक्षहै; ऐसे सत्रूपको असत्यरूप ने ग्रास करलिया है जो कहताहै कि, मैं दुःखी व सुखी हूं; दुबलाहूं व मोटाहूं इत्यादिक माया महाआश्चर्य रूप हैं जिसने जगत् को मोहित कियाहै। हे मुनीश्वर! जब चित्तसंवित् कलनारूप होता है अर्थात् दृश्य से मिलके स्फूर्त्ति रूप होताहै तब कुसवारीकी नाईं आपही आपको बन्धन करता है और जब दृश्यसे रहित अन्तर्मुख होताहै तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है। बन्ध और मुक्ति दोनों मनकी शक्तिहैं; जैसाजैसा मन फुरताहै तैसा २ रूप भासता है। अनेक शक्तिआत्मा से अनन्य रूपहै, सब आत्मासे उपजाहै और आत्मामेंही स्थितहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और उसीमें स्थित होकर लीन होजाते हैं और चन्द्रमासे किरणें उदय होकर भिन्न भासतीं परफिर उसीमें लीन होती हैं; तैसेही जीव उपजकर लीन

होजाते हैं । परमात्मारूपी महासमुद्र है, चेतनतारूपी उसमें जलहै जिससे जीवरूपी अनेक तरङ्ग उपजते हैं और उसीमें स्थित होकर फिर लीन होजाते हैं । कोई तरङ्ग ब्रह्मारूप, कोई विष्णु, कोई रुद्र होकर प्रकाशते हैं और कोई लहर प्रमादसे रहित यम, कुवेर, इन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, मनुष्य,देवता, गन्धर्व्व,विद्याधर, यक्ष,किन्नर,आदिक रूप होकर उपजते हैं और फिर लीन होजाते हैं । कोई स्थित होकर चिरकाल पर्य्यन्तरहते हैं–जैसे ब्रह्मादिक; कोई उपजकर और कुछकाल रहकर विध्वंस होजाते हैं–जैसे देवता, मनुष्यादिक और कोई कीट, सर्प आदिक फुरते हैं और चिरकाल भी रहते हैं और अल्पकाल में भी नष्ट होजाते हैं । कोई ब्रह्मादिक उपजकर अप्रमादी रहते हैं और कोई प्रमादी होजाते हैं और तुच्छ शरीरहोते हैं यहसंसार स्वप्न आरम्भ है और दृढ़ होकर भासता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारावर्त्तवर्णनंनामएकादशस्सर्गः ११ ॥

कालबोले, हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्यादिक आकार ब्रह्मसे अभिन्न रूप हैं और यह सत् हैं । जब मिथ्या संकल्प से जीव कलङ्कित होता है तब जानता है कि, "मैं ब्रह्म नहीं" । इस निश्चयको पाके मोहित होता है और मोहित हुआ अधो को चलाजाता है । यद्यपि वह ब्रह्मसे अभिन्नरूप है और उसमें स्थित है तो भी भावनाके वशसे आपको भिन्न जानके मोहको प्राप्त होता है । शुद्ध ब्रह्ममें जो संवित् का उल्लेख होता है वही कलङ्कित रूप कर्म्म का बीज है; उससे आगे विस्तार को पावता है । जैसे जल जिस जिस बीजसे मिलता है उसी रसको प्राप्तहोता है तैसेही संवित्का फुरना जैसे कर्म्म से मिलता है तैसी गतिको प्राप्त होता है । सङ्कल्प से कलङ्कित हुआ अनेक दुःख पाता है । यह प्रमादरूप कर्म कंजकेबीजसा है जिसको जो मुट्ठी भरभर बोता है सो अपने दुःखका कारण है और यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरहै जो विस्तारसे फुरती है और कोईऊर्ध्वकोजाती है और कोई अधको जाती है फिर लीन होजाती हैं । ब्रह्माआदि तृण पर्य्यन्त इन सबका यही धर्म है । जैसे पवनका स्पन्द धर्महै तैसेही इनकाभी है परउनमें कोई निर्मल पूजनेयोग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं कुछ मोह संयुक्तहैं–जैसे देवता, मनुष्य, सर्प कोई अनन्त मोहमें स्थितहैं–जैसे पर्वत, वृक्षादिक; कोई अज्ञानसे मूढ़हैं–जैसे कृमि, कीटादिक योनि ये दूरसे दूर चलेगयेहैं । जैसे जलके प्रवाहसे तृण चला जाताहै तैसेही देवता,मनुष्य, सर्पादिक कितने भ्रमवान् भी होतेहैं और कोई तटके निकट आके फिर वहजाते हैं अर्थात् सत्सङ्ग और सत्शास्त्रोंको पाके फिर मायाके व्यवहार में वहजाते हैं । और यमरूप चूहा उनको काटता है । एकअल्प मोहको प्राप्त होकर फिर ब्रह्मसमुद्र में लीन हुये हैं; कोई अन्तर्गत ब्रह्म समुद्रको जानके स्थित हुये हैं और तमअज्ञानसे

तरेहैं; कोई अनेक कोटि जन्ममें प्राप्त होतेहैं और कोई अधसे ऊर्ध्वको चलेजातेहैं। और फिर ऊर्ध्वसे अधको चलेआतेहैं। इसीप्रकार प्रमादसे जीवअनेकयोनि दुःख भोगते हैं। जब आत्मज्ञान होताहै तब आपदासे छूटके शान्तिवान् होतेहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउत्पत्तिबिस्तारवर्णनन्नामद्वादशस्सर्ग्गः १२॥

काल बोले, हे साधु! ये जितने जगत् भूत जाति बिस्तार हैं वे सब आत्मरूप समुद्रके तरङ्ग हैं—एकही अनेक बिचित्र बिस्तारको प्राप्त हुआहै। जैसे बसन्त ऋतु में एकहीरस अनेक प्रकारके फलफूलोंको धारता है। इन जीवोंमें जिसने मन को जीतकर सर्ब्बात्मा ब्रह्मका दर्शन कियाहै वह जीवन्मुक्तहुआहै। मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्ब्बादिक सब भ्रमतेहैं; इनसे इतर स्थावर मूढ़ अवस्था में हैं उनकी क्या बात करनी है। लोकोंमें तीनप्रकारके जीवहैं—एक अज्ञानी जो महामूढ़हैं; दूसरे जिज्ञासीहैं और तीसरे ज्ञानवान्। जो मूढ़हैं उनको शास्त्रके श्रवण और बिचार में कुछ रुचि नहीं होती और जो जिज्ञासीहैं उनके निमित्त ज्ञानवानोंने शास्त्र रचेहैं। जिसजिस मार्ग्गसे वे प्रबुध आत्माहुये हैं उसउसप्रकारके उन्हों ने शास्त्ररचे हैं और उससे और जीव भी मोक्षभागीहोतेहैं। हे मुनीश्वर! सत्शास्त्र जो ज्ञानवानोंनेरचेहैं उनको जब निष्पाप पुरुष विचारताहै तब उसको निर्म्मल वोध उपजकर मोह नि-बृत्त होताहै और जब निर्म्मल बुद्धि होतीहै तब जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे तम नष्ट होताहै तैसेही सत्शास्त्रके अभ्याससे मोह नष्ट होताहै। जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे आत्माके प्रमाद और विषयकी तृष्णासे मोहको प्राप्त होते हैं। जैसे अँधेरी रात्रिहो और ऊपरसे कुहिरा भी गिरताहो तब तमसे तम होताहै; तैसेही मूढ़ मोहसेमोहको प्राप्त होतेहैं और अपने संकल्पसे आपही दुःखी होतेहैं। जैसे बालक अपनी पर-छाहींमें बैताल कल्पकर आपही दुःखी होताहै। इससे जितने भूतजातहैं उन सबके सुख दुःखका कारण मनरूपी शरीरहै; जैसे वह फुरताहै तैसी गतिको प्राप्तहोताहै। मांसमय शरीरका किया कुछ सफल नहीं होता और असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो अधिभौतिक शरीरहै वह मनके संकल्पसे रचा है—वास्तवमें कुछ नहीं। संकल्पकी दृढ़तासे जो अधिभौतिक भासनेलगा है वह स्वप्न शरीरकीनाईं है। मन-रूपी शरीरसे जो तेरे पुत्रने कियाहै उसीगतिको वह प्राप्तहुआहै। इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है। हे मुनीश्वर! अपनी बासनाके अनुसार जैसा कोई कर्म्म करता है तैसेही फलको प्राप्त होताहै। मांस शरीर से कुछनहीं होता। जैसी २ तीव्र भावनासे तेरे पुत्रका मन फुरता गया है तैसी तैसी गति वह पाता गया है। बहुत कहने से क्या है, उठो अब वहीं चलो जहां वह ब्राह्मण का पुत्र होकर गङ्गा के तट पर तप करने लगा है। इतना कह कर बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब काल

भगवान्ने कहा तब दोनों जगत्की गतिको हँसके उठ खड़ेहुये और हाथसे हाथ पकड़के कहने लगे कि, ईश्वरकी नीति आश्चर्य रूपहै जो जीवों को बड़े भ्रम दिखातीहै। जैसे उदयाचल पर्वतसे सूर्य उदय होकर आकाश मार्ग में चलताहै तैसेही प्रकाश की निधि उदार आत्मा दोनों चले। इसप्रकार जब वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सर्व सभा अपने २ स्थानको गई। दिन हुये फिर अपने २ आसन पर आन बैठे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभृगुआसनंनामत्रयोदशस्सर्गः १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काल और भृगुजी दोनों मन्दराचल पर्वतसे भूमि पर उतरे और देवताओं के महा सुन्दर स्थानोंको लांघते २ वहां गये जहां ब्राह्मण शरीरसे गङ्गाके किनारे शुक्र समाधिमें लगा था। उसका मनरूपी मृग अचल होकर विश्रामको प्राप्त हुआ था। जैसे चिरकालका थका चिरकाल पर्यंत विश्राम करताहै तैसेही उसने विश्रामपाया। वह अनेक जन्मोंकी चिन्तनामें भटकता भटकता अब तपमें लगाथा और राग द्वेषसे रहित होकर परमानन्दपदमें स्थितथा। उसको देख के कालने बड़े शब्दसे कहा, हे भृगु! देख यह समाधिमें स्थितहै अब इसे जगाइये। तब उसकी कलना फुरनेसे और बाहर शब्दसे; जैसे मेघके शब्दसे मोर जागे; तैसेही शुक्रजी जागे और अर्धोन्मीलित नेत्र खोलके काल और भृगुको अपने आगे देखा पर पहिंचाना नहीं। उसनेदेखा कि, दोनोंके श्याम आकार और बड़े प्रकाशरूपहैं— मानों साक्षात् विष्णु और सदाशिवजी हैं। उन्हें देख वह उठखड़ाहुआ और प्रीति पूर्व्वक चरण वन्दना और नम्रता सहित आदर करके कहा कि, मेरे बड़ेभाग्यहैं जो प्रभुके चरण इस स्थानमें आये वहां एक शिला पड़ीथी उसपर वे दोनों बैठगये तब वसुदेव नाम शुक्र, जिसका तपके संयोगसे पीछे सातातपनाम हुआथा उस शान्त हृदय तपस्वीने अगम वचन काल और भृगुसे कहे, वह बोला, हे प्रभो! मैं तुम्हारे दर्शनसे शान्तिवान् हुआहूं। तुम सूर्य्य और चन्द्रमा इकट्ठे मेरे आश्रममें आयेहो और तुम्हारेआनेसे मेरे मनका मोह नष्टहोगया जो शास्त्रों और तपसेभीनिवृत्तहोना कठिनहै। हे साधो! जैसा सुख महापुरुषोंके दर्शनसे होताहै वैसा किसी ऐश्वर्य और अमृतकीवर्षासे भी नहींहोता। तुम ज्ञानकेसूर्य और चन्द्रमाहो। हे ऋषीश्वरो! तुमने हमारा स्थान पवित्रकिया और मैं शान्तात्मा हुआ। तुम कौनहो जो प्रकाशरूप, उदारआत्मा मेरे स्थानपरआयेहो? जब इसप्रकार जन्मान्तरके पुत्रने भृगुजीसेपूछा तब भृगुजीने कहा, हे साधु! तू आपको स्मरणकर कि, कौनहै? अज्ञानी तो नहीं तू तो प्रबोधआत्माहै। जब इसप्रकार भृगुजीने कहा तब नेत्र मूंदकर शुक्र ध्यानमें लगा और एक मुहूर्त्तमें अपना सब वृत्तान्त देखके नेत्र खोले और विस्मय होकर

कहने लगा कि, ईश्वर की गति विचित्र रूपहै; इसके वश होकर मैंने बड़े भ्रम देखेहैं और जगत् रूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ मैं अनन्त जन्म भ्रमाहूं। उन सबको स्मरण करके मैं आश्चर्य मान होताहूं कि,मैंने बहुत दुःख और अनेक अवस्थाभोगी हैं। स्वर्ग और मन्दार,कल्पवृक्ष,सुमेरु,कैलास आदिक वनकुंजोंमें मैंरहा और ऐसाकोई पदार्थ नहीं जो मैंने नहींपाया; ऐसा कोई कार्यनहीं जो मैंने नहींकिया,और ऐसाकोईइष्टअनिष्ट नरक-स्वर्ग नहीं जो मैंने नहीं देखा।जोकुछ जाननेयोग्यहै वह क्याहै? अबमैं आत्मतत्त्व में विश्रामवान् हुआहूं और संकल्प भ्रम मेरा नष्ट होगयाहै। अब आप वहांचलिये जहां मन्दराचलपर्वतपर मेरा शरीरपड़ाहै। हे भगवन्! अब मुझको कुछ इच्छा नहीं है। यद्यपि हेयोपादेय मुझको कुछ नहीं रहा तथापि नीतिकी रचना देखके कहताहूं। जो बोधवान् हैं वह प्रकृत आचारमें विचरते हैं, आगे जैसी इच्छाहो तैसे कीजिये। बोधवान् उसी आचारको अंगीकार करते हैं। इससे अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करके व्यवहारमें विचरे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मान्तरवर्णनन्नामचतुर्द्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार विचार करके तीनों आकाशमार्ग्गको चले और शीघ्रही मेघमण्डलको उल्लंघके सिद्धोंके मार्ग्गसे मन्दराचल पर्व्वत पर स्वर्ण की कन्दरा में पहुंचे और पूर्व शरीर को देख शुक्रने कहा; हे तात! मेरे पूर्व शरीरको देखो, जिसे तुमने बहुत पालन किया था। जो शरीर कपूर सुगन्धसे शोभित था और फूलोंकी शय्यापर शयन करता था, वह अब माटीमें लपटा पड़ा है और सूख गया है। जिस शरीर को देखके देवस्त्रियां मोहित होती थीं और कंठमें मुक्तमाला ऐसी शोभितथीं मानों तारोंकी पंक्ति हैं वह शरीर अब पृथ्वीपर गिरपड़ा है। नन्दन-वनमें इसने अनेकभोग भोगे हैं और आत्मरूपजानके इसको मैं पुष्ट करता था वह अब मुझको भयानक भासता है। जो शरीर देवांगनाओं से मिलता और रागवान् होता था वह अब उनकी चिन्तामें सूखगया है। जिन जिन विलासों को चाहता था उनको वह करता था और अब वही चितासे रहित महाअभागी हुआ धूपसे सूखगया है और महा विकराल भयानक सा भासता है। जिसको मैं आत्मरूप जा-नता था; जिसमें अहंकरके विलास करताथा और जिसमें फूल कमल पड़ते और तारागण प्रकाशतेथे उसमें अब चींटियां फिरती हैं। जो शरीर द्रव स्वर्णवत् सुन्दर प्रकाश रूपथा वह अब धूपसे सूखा भयानक भासताहै और सब गुण इसको छोड़ गये हैं—मानों विरक्त आत्मा हुआ और विषयसे मुक्त निर्विकल्प समाधि में स्थित हुआ है। हे शरीर! तू अदृष्टि तनको प्राप्तहुआ है! अब तेरे में कोई क्षोभ नहीं रहा। अब चित्तरूपी वैताल तेरेमें शांत होगया है और आने जाने से रहित विश्रामवान्

हुआ है; सब कल्पना तेरी नष्ट हुई हैं और सुखसे सोया है । चित्तरूपी मर्कटसे रहित शरीर रूपी वृक्ष ठहर गयाहै और सब अनर्थसे रहित पहाड़की नाईं अचल हुआ है । यह देह अब सर्व दुःखसे रहित परमानन्दमें स्थित है । हे साधो ! सब अनर्थोंका कारण चित्त है । जबतक चित्त शांतिवान् नहीं होता तबतक जीवको आनन्द नहीं मिलता । जब अमन शक्तिपदको प्राप्त होता है तब महा आधि व्याधि जगत् के दुःखोंको तरके विगत परमानन्दको प्राप्त होताहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता भृगुका जो शुक्र पुत्रथा उसनेतो अनेक शरीर धरेथे और फिर फिर भोग भोगेथे तो भृगुसे जो शरीर उत्पन्न था तिसको देख बहुत शोच क्यों किया और देहों का चिन्तन क्यों न किया ? इसका क्या कारण है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुक्रकी संवेदन कलना जो जीव भाव को प्राप्त हुई थी सो कर्मात्मक होकर भृगुसे उपजी । सुनो; आदि परमात्मतत्त्वसे चित्तकला फुरकर भूताकाशको प्राप्त हुई और वही वातकला में स्थित होकर प्राण, अपानके मार्गसे भृगुके हृदयमें प्रवेश करगई और वीर्य के स्थानको प्राप्त होकर गर्भमार्गसे उत्पन्नहो क्रम करके बड़ी हुई जिससे विद्या और गुण सम्पन्न शुक्रका शरीर हुआ । उस शरीर को जो उसने चिरकाल सेवन कियाथा इससे उसकाशोच किया । यद्यपि वह वीतराग और निरिच्छित था तो भी चिरकाल जो अभ्यास कियाथा वही फुर आया । हे रामजी ! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी व्यवहार दोनोंका तुल्य होताहै परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है । ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेपरहता है और अज्ञानी क्रिया में बन्धमान होताहै । ज्ञानवान् मोक्षरूप है और अज्ञानी दरिद्री है । जैसे वनमें जालसे पक्षी फँसता है तैसेही अज्ञानी लोकव्यवहार में बन्धमान होता है । व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसेही अज्ञानी करता है । जो वासना रहित है वह निर्बंध है; वासना सहित बन्ध है इससे वासनामात्र भेदहै । जबतक शरीर है तबतक सुख दुःखभी होता है परन्तु ज्ञानवान् दोनोंमें शान्त बुद्धि रहता है और अज्ञानी हर्ष शोकसे तपायमान होता है । जैसे थम्भेका प्रतिबिम्ब हिलनेसे जलमें हिलता भासता है परन्तु स्वरूप में स्थितही है तैसेही अज्ञानमें सुख दुःखसे सुखी दुःखी भासता है परन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों है । जैसेसूर्य का प्रतिबिम्ब जलके हिलनेसे हिलता भासता है परन्तु स्वरूप से ज्यों का त्यों है तैसेही ज्ञानवान् इन्द्रियोंसे सुखी दुःखी भासता है पर स्वरूप में ज्यों का त्यों है । अज्ञानी बाहरसे क्रिया का त्याग करता है तौ भी बन्ध रहता है और ज्ञानवान् क्रिया करता है तो भी मोक्षरूप है । अन्तःकरण में जो अनात्म धर्म में बन्धमान है वह बाहर कर्मइन्द्रियसे मुक्त है तौ भी बन्धनमें है और जो अन्तःकरणसे मुक्त है वह कर्मइन्द्रियसे बन्धन भासता है तौभी मुक्तरूप है । जो सब क्रीड़ाको त्याग बैठा

हैं और हृदय में जगत्की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे वा न करे तौभी बन्धनमें है और जो बाहर चाहे जैसा व्यवहार करता है पर हृदय से अद्वैतज्ञान में है तो वह मुक्तरूपहै—उसको कर्म बन्धन नहीं करता। इससे,हे रामजी! सबकार्य करो पर अन्तष्करण से शून्य रहकर सर्व ईषणा से रहित आत्मपद में स्थित होजाओ और अपने प्रकृति व्यवहार को करो। यह संसाररूपी समुद्र है जिसमें आधि व्याधि और अहंममतारूपी गढ़ा है जो उसमें गिरता है वह ऊर्ध्वसे अधकोजाताहै। इससे संसार के भावमें मतस्थित हो और शुद्ध बुद्धि आत्मस्वभावमें स्थित हो। जो ब्रह्मशुद्ध, सर्वात्मा, निर्विकार, निराकार आत्मपद में स्थित हैं उनको नमस्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशुक्रप्रथमजीवननामपञ्चदशस्सर्गः १५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जब शुक्रने शरीरका वर्णन किया और विकरालरूप देखके उसमें त्याग बुद्धिकी तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मान के गम्भीर वाणीसे बोले; हे शुक्र! तू इसतपरूपी शरीरको त्यागकर भृगुके पुत्र का जो शरीर है उसको अङ्गीकार कर। जैसे राजा देशदेशांतरको भ्रमता २ अपने नगर में आता है तैसेही तू भी इस शरीर में प्रवेशकर क्योंकि; भार्गवतनसे तुझे असुरों का गुरु होनाहै। यह आदि परमात्माकी नीतिहै; महाकल्प पर्यंत तेरी आयुर्बल है। जब महाकल्प का अन्त होगा तब भार्गवतन नष्ट होगा और फिर तुझको शरीर का ग्रहण न होगा। जैसे रससूखे से पुष्प गिरपड़ता है तैसेही प्रारब्धवेगके पूर्ण हुयेसे तेरा शरीर गिरपड़ेगा और शरीरके होते जीवन्मुक्त पदको प्राप्त हुआ प्राकृत आचारमें विचरेगा। इससे इस शरीरको त्यागकर भार्गव शरीरमें प्रवेशकर। अब हम जाते हैं, तुम दोनों का कल्याणहो और तुमको वांछित फल मिलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! काल भगवान् ऐसे कहकर और दोनोंपर पुष्प डालकर अन्तर्द्धान होगये। तब वह तपसी नीतिको विचारनेलगा कि; क्या होनाहै। विचारकर देखा तो विदित हुआ कि, जैसे काल भगवान्ने कहाहै तैसेही होनाहै। ऐसे विचारके महाकृशरूप जो शरीर था उसमें प्रवेश किया और तपस्वी ब्राह्मण का देह त्याग दिया। तब उस शरीर की शोभा जातीरही और कम्पकम्पके पृथ्वीपर गिरपड़ा। जैसे मूलके काटेसे बेलिगिर पड़तीहै तैसेही वह देहगिरा और शुक्रदेहजीव कला संयुक्त होआया। तब भृगुजी उस कृशदेह को जीवकला संयुक्त देखके उठखड़े हुये और हाथमें जलका कमण्डलु ले मंत्रविद्यासे जो पुष्टिशक्ति है पाठकर पुत्रके शरीरपर जल डाला और उसके पड़ने से शरीर की सब नाड़ियां पुष्ट होगईं। जैसे वसन्तऋतुमें कमलनी प्रफुल्लित होतीहैं तैसेही उसका शरीर प्रफुल्लित होआया और श्वास आने जाने लगे। तब शुक्र पिताके सन्मुख गया और जैसे मेघ जलसे

पूर्ण होकर पर्वतके आगे नमता है तैसेही विधि संयुक्त नमस्कार करके शिरनवाया और स्नेहसे नेत्रों में जल चलने लगा। तब पुत्रको देख के भृगुजीने उसे कण्ठ लगाया कि, यह मेरा पुत्रहै। ऐसे स्नेह से पूर्ण होगया। हे रामजी! जबतक देह है तब तक देहके धर्म फुरआते हैं। इसीप्रकार भृगु ज्ञानी को भी ममता स्नेह फुरआया तो और की क्या बातहै। पिता और पुत्र दोनों बैठ गये और एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त कथा वार्त्ता करते रहे। फिर उठकर उन्होंने उस तपस्वी शरीरको जलाया क्योंकि, बुद्धिवान् शास्त्राचारमें स्थितहोते हैं। इसके अनन्तर जिनका वपु तपसे प्रकाशताहै और जिनकी श्यामकान्ति है ऐसे जीवन्मुक्त उदारात्मा होकर वहां रहे और समय पाकरके शुक्रजी दैत्यों का गुरु होगा और भृगुजी समाधिमें स्थित होंगे। इससे जो सब विकारसे रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत् गुरु हैं वह सबके पूजने योग्यहैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मांतरवर्णनंनामषोड़शस्सर्गः १६ ॥

रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे भृगुके पुत्रको यह प्रतिमा फुरतीगई और सिद्ध होती गई तैसेही और जीवोंको क्यों नहीं सिद्धहोती ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वसे फुरना हुआ वही भार्गव जन्महुआ और जन्मसे कलङ्कित नहीं हुआ और वह सर्व ईषणासे रहित शुद्ध चैतन्यथा। निर्मल हृदयको जैसी स्फूर्त्ति होतीहै तैसीही सिद्धि होजाती है और मलिन हृदयवान्का संकल्प शीघ्रही सिद्ध नहीं होता। जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज हुआ और भ्रमता फिरा तैसेही सबही स्वरूपके प्रमादसे भ्रमते हैं। जबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती। यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तान्त मनोराजकी दृढ़ता के लिये तुमको सुनाया है। जैसे बीजही अंकुर फूल, फल अनेकभावको प्राप्त होता है तैसेही सब भूत जातको मनका भ्रमना अनेक भ्रमको प्राप्त करता है। जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब मनके फुरनेका रूप है; मिथ्याभ्रमसे नानात्व भासता है और कुछ नहीं है। एक एक प्रति ऐसा भ्रमहै और सब सङ्कल्पमात्रहै; न कुछ उदयहोता है और न अस्तहोता; सब मिथ्यारूप मायामात्र है। जैसे स्वप्नपुर और सङ्कल्पनगर भासता है तैसेही परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं पर कुछ नहींहै और तैसेही यह जाग्रत भ्रमभी अज्ञान से दृष्टि आता है। भूत, पिशाच आदिक जितने जीव हैं उनका भी सङ्कल्पमात्र शरीर है; जैसे उनको सुख दुःखों का भोग होताहै तैसेही तुम हमको भी होता है। जैसे यह जगत् है तैसेही अनन्त जगत् बसते हैं और एक दूसरेको नहीं जानता। जैसे एकस्थानमें बहुत पुरुष शयन करतेहों तो उनको मनोराज और स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है तैसेही यह जगत् है पर वास्तवमें कुछनहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपनेआप में स्थित है। जो इस जगत्को सत जानता है उसका पुरुषार्थ

नष्ट होताहै जो वस्तु भ्रांतिसे भासती है उसका सम्यक्ज्ञानसे अभावहोजाता है। यह जाग्रत जगत्भी दीर्घ स्वप्ना है। चित्तरूपी हस्तीको बन्धन है और चित्तसत्ता से जगत् सतभासताहै और जगत् सत्तासे चित्त है। एकके नाशहुये से दोनों का नाश हो जाता है। जो जगत्का सतभावनष्टहोता है तब चित्त नहीं रहता और जब चित्त उपशम होता है तब जगत् शान्त होताहै। इसप्रकार एकके नाशहुये दोनोंका नाश-होता है। दोनोंका नाश आत्मविचारसे होता है। जैसे उज्ज्वल वस्त्रपर केसरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, मलीनवस्त्रपर नहीं चढ़ता; तैसेही जिसका निर्मल हृदय होता है उसको बिचार उपजता है। हृदय तब निर्मल होता है जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है। हे रामजी! एक एक जीवके हृदयमें अपनी २ सृष्टि है। परमलीन चित्त-से एकको दूसरा नहीं जानता; जब चित्त शुद्ध होता है तब और की सृष्टिकोभी जान लेता है। जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलजाती है। जब दृढ़ अभ्यास होताहै तब चिर-पर्य्यंत सबकुछ भासने लगता है क्योंकि; सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है उसमें स्थित होने से सबका ज्ञानहोताहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! शुक्रको प्रतिभामात्र आभासहुआथा उसमें देश,काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ़होकर कैसेभासे? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! शुक्रने अपने अनुभवरूपी भण्डारमें सनसे जगत् देखा। जैसे मोरके अण्डेसे अनेकरंग निकलते हैं तैसेही उसको अपने हृदयमें भ्रमभासितहुआ। जैसे बीजसे पत्र, टास, फूल, फल निकलते हैं तैसेही जीव जीवको अपने २ अनुभव में संसार खण्ड फुरतेहैं। यहांस्वप्न दृष्टांत प्रत्यक्षहै। जैसे एक एकके स्वप्नेमें जगत् हो-ताहै तैसेही यहजगत् है। दीर्घस्वप्ना जाग्रतहो भासता है और जैसा दृढ़होता है तैसाही भासनेलगता है। फिर रामजीने पूछा, हेभगवन्! सृष्टिके समूह परस्पर मिलते कैसे हैं और नहीं कैसे मिलते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मलीन चित्त परस्परनहीं मिलता; शुद्ध मिलता है—जैसे शुद्ध धातु मिलजाती है। सुषुप्तिरूप आत्मासे सब फुरतेहैं सो तन्मयरूप हैं; जिसको उसमें विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टिसे सबसे मिल जाता है। जैसे जलसे जल मिलजाताहै तैसेही वह सबसेमिलकर सबको जानता है; और नहीं जानता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनोराजसंमीलनवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः १७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ संसार खण्डहैं उनसबका बीजरूप आत्मा है और सबआत्माहीका आभासहै। आभासकेउदय-अस्त होनेमें आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; अपने स्वभावके त्यागसे रहित है; सर्व जीवोंका अपना आप वास्तवरूपहै और सुषुप्ति की नाईं स्फूर्ण है। उसी सत्तामें जीव फुरते हैं तब स्वप्नवत् जगत् भ्रम देखते हैं। जीव जीवप्रति अपनी २ सृष्टि स्थित है; जो पुरुष उलटके आत्मपरायण

होता है वह आत्मपदमें प्राप्तहोताहै। जिस पुरुषको आत्मब्रह्मसे एकताहुई है उस-को परस्पर और की सृष्टि भासती है। अन्तष्करणमें सृष्टि होतीहै सो उसका अन्त-ष्करणमिलताहै और उस अन्तष्करण जीवकलाके मिलेसे परस्पर सृष्टिभासआती है सबका अपनाआप सन्मात्र सत्ताहै,उसमें सब सृष्टि स्थित होती हैं। जैसे कपूरका पर्वत हो तो उसके अणुअणुमें सुगन्ध होतीहै और सर्वअणु सुगन्धपर्वतमें एकता होती है; तैसेही सब जीवोंका अधिष्ठान आत्मसत्ताहै। जैसे सब नदियों के जलका अधिष्ठान समुद्र है तैसेही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मा है। सृष्टि कहीं परस्पर मिलती है और कहींभिन्नभिन्न स्थितहै। जहां चेतनमात्र सत्तासे एकताहै वहां चित्त की वृत्ति जिसकेसाथ मिलनीचाहे उसको मिलजाती है पर मलीन चित्तवाला नहीं मिलसक्ता। एकएक जीवमें सहस्रोंसृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं। जहांजैसा फुरना दृढ़होताहै वहां वैसाही भासताहै;जहां मनकाफुरना कोमलहोताहै सो सफल नहींहोता और जहां दृढ़होता है सो भासने लगता है। हे रामजी ! जब देहकी भावना मिट-जाती है तो प्राण पवनही स्थित करनेसे चित्तकीवृत्ति स्वभावमें स्थित होतीहै और तब और के चित्तकी चेष्टा अपने चित्त में फुरआती है और जब तक चित्त मलीन होता है और देहकी भावनाको नहीं त्यागता तब तक किसी पदार्थ से एकता नहीं होती। जिसका चित्त निर्मल होता है उसको जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है तैसेही और सृष्टि में मिलनेकीभी शक्ति होती है; अशुद्धको नहीं होती। सर्व जीवों की तीन अवस्थाहोती हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। यह तीनोंही अवस्था आत्मा में जीवितका लक्षण है। जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरङ्ग सूर्यकी किरणों में हैं वास्तव में उनका अभाव है तैसेही जीवको आत्मा में प्रमाद है उससे तीनों अवस्थाओं में भटकताहै। जब चित्तकला तुरियामें स्थित होतीहै तब जीवन्मुक्तहोताहै। आत्मसत्ता स्वभावमें स्थितहुयेसे आत्मासे एकताको प्राप्तहोताहै और सबजीवसे सुहृदभावहोता है। जब अज्ञानी पुरुष सुषुप्तिआत्मसत्तासे जागताहै अर्थात् संसारको चितवताहैतब संसारको प्राप्तहोताहै वह संसारमें और संसार उसमें, इसप्रकार प्रमादकरके अनेक सृष्टि देखताहै। जैसे केलेके थम्भसे पत्रका समूह निकलआता है तैसेही वह सृष्टिसे सृष्टिको देखताहै, शान्ति नहीं पाता और जब उलटके अपने स्वभावमें स्थितहोताहै तब नानात्वभाव मिटजाता और शान्तरूप होताहै—जैसे केलेकेभीतर शीतलहोताहै। हे रामजी! जगत्के समूह भासतेहैं तौ भी आत्मासे द्वैत नहीं। जैसे केलेकेभीतर पत्र से भिन्न कुछ नहीं निकलता तैसेही आत्मासे जगत् भिन्न नहीं। जैसे बीजही फूल-भावको प्राप्तहोताहै और फूलसे फिर बीजहोताहै तैसेही ब्रह्मसे मनहोताहै और वृद्धिमें ब्रह्महोताहै। जीवकाकारण रसहै आत्मामें कारण—कार्य्य भाव कुछ नहीं बनता वह

तो अद्वैत अचिन्त्यरूप है। आदि परमात्मा अकारणरूपहैं, वही विचारनेयोग्य है औरसे क्याप्रयोजनहै? बीज जब अपनेभावको त्यागताहै तब फूलभावको प्राप्तहोता है और ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित् नहीं त्यागती। बीज परिणाम से आकाशरूपहै आत्मा अकृत्रिम, निराकार और अच्युतरूप है; इसकारण आत्मा बीज कीनाईं भी नहीं कहाजासक्ता। आकाशसे आकाश नहीं उपजता और अभिन्नरूपहै;न कोईउपजाहै,न किसीकोउपजायाहै केवल ब्रह्म आकाश अपनेआपमेंस्थितहै। जब द्रष्टा पुरुषको देखताहै तब आपको नहीं देखसक्ता क्योंकि,जब मनोराजका परिणाम जगत्में जाता है तब विद्यमान वस्तुकी सँभाल नहींरहती। देहादिक में आत्म अभिमान होता है। जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है उसको जगत्भाव नहीं रहता और जो जगत्को देखताहै उसको आत्मसत्ता नहीं भासती। जैसे जो मृगतृष्णा की नदी को झूठजानता है उसको जलभाव नहीं रहता और जो जलजानता है उसको अस्तबुद्धि नहींहोती। आकाशकी नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है वह जब इस दृश्यकीओर जाताहै तब आपको नहीं देखसक्ता। आकाशकीनाईं ब्रह्मसत्ता सबठौर पूर्ण है सो अज्ञानी को नहींभासती, उसे जो दृश्यका अत्यन्त भावहै वही भासताहै, अनुभवका भासना दूरहोगया है। हे रामजी! स्थूलपदार्थ के आगे पटलआता है तब वह नहीं भासता तो जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टापुरुष है उसके आगे आवरण आवे तब वह कैसे भासे? जो द्रष्टापुरुष है वह अपनेही भाव में स्थितहै दृश्यभावको नहीं प्राप्तहोता, दृश्यभासता है तब द्रष्टा नहीं दीखता और दृश्य कुछवस्तु है नहीं। इससे द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपमें स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान् देव है। जैसा फुरना उसमें होता है वैसाही शीघ्र भासआता है। जैसे वसन्तऋतुमें एकरस अनेक रूपों को धरता है और उससे टास, फूल, फल होते हैं तैसेही एक आत्मसत्ता अनेकजीव देहहोके भासती है। जैसे अपनेही भीतर अनेक स्वप्नभ्रम देखता है तैसेही अहंआदिक जगत् दृश्यभ्रमको अनुभव प्राप्तहीहोताहै और स्वरूपसे और कुछ नहींहुआ। जैसे एक बीजके भीतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होतेहैं और उसमें और बीज होताहै; बीजके भीतर और वृक्ष और उसकेभीतर और बीजहोताहै इसीप्रकार एक बीजके भीतर अनेक वृक्ष होतेहैं;तैसेही एक आत्मामें और अनेक चिद्अणु फुरतेहैं; उनकेभीतर सृष्टि होतीहै और फिर उन सृष्टियोंके भीतर चिद्अणु,फिर चिद्अणुके भीतर सृष्टि इसीप्रकार अनेक सृष्टि ब्रह्माण्डहैं उनकी संख्या कुछ कहीनहीं जाती व सब अपने आपसे फुरतेहैं और आपही स्वादलेताहै। जैसे तिलमें तेलहै तैसेही चिद्अणुमें आकाश, पवन आदिक अनेक सृष्टिस्थितहैं। आकाशमें पवन, अग्नि मेंजल, सर्व भूतोंमें पृथ्वी सृष्टिस्थितहैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो चित्तसेसत्ता रहित

हीं; जहां चित्तहै वहां उसका आभासरूप द्रष्टाभी स्थितहै । जैसे डब्बेमें लौंगहोतेहैं तो उनके नष्टहुये डब्बा नहीं होता । जैसा जैसा उसमें फुरना होताहै तैसाही तैसा स्थितहोताहै । सबका अधिष्ठानरूप आत्माहै; जैसेकमलको पूर्ण करनेवाला जलहै उससे सब विस्फूर्जित होने और प्रकाशतेहैं तैसेही सब नष्टोंको सत्तादेने वाला और आश्रयरूप आत्मतत्त्व है । यह जगत् दीर्घस्वप्नरूप अपने अनुभवसे उदयहुआहै तो बाह्यरूप होकर भासताहै; उसस्वप्नसे और स्वप्नान्तर होताहै उसके आगे और स्वप्नाहोताहै इसी प्रकार सृष्टिकी स्थितिहुईहै । जैसे एक बीजसे अनेक वृक्ष होतेहैं तैसेही एकचिद्अणुमें अनेक सृष्टि स्थितहैं । जैसे जलमें अनेक तरङ्ग भासतेहैं तैसेही आत्म अनुभवमें अनेक जगत् भासते हैं और अभिन्नरूपहैं । इससे द्वैतभ्रम को तुम त्यागदो; न कोईदेशहै, न कालक्रियाहै केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । जैसे आकाशमें आकाश स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । ब्रह्मासे कीट पर्यन्त जो जगत् भासताहै सोएक परमात्माही अपने आपमें किञ्चनरूप होताहै ।जैसे एक रस सत्ताही कहीं फल और सुगन्ध सहित भासती है और कहीं काष्ठरूपको प्राप्त होतीहै तैसेही एक परमात्मसत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जड़ रूपहोकर दिखाई देतीहै । जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है वही सबका बीजरूपहै, और उसीके भीतर सब जगत् स्थितहै । पर जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको नानारूप भासताहै । जैसे कोई जलमें डूबे और फिर निकले; फिरडूबे, फिर निकले और जैसेस्वप्नमें और स्वप्न होताहै; तैसेही प्रमाद दोषसे भ्रमसे भ्रमान्तर नानाप्रकार के जगत् जीव देखताहै । जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं है क्योंकि; जगत् कुछहै नहीं आत्माही जगत्सा हो भासता है । जैसे विचाररहित को सुवर्णमें भूषणबुद्धि होतीहै और विचार कियेसे भूषणबुद्धि नष्ट होजाती है, सुवर्णही भासताहै; तैसेही जो विचारसे रहितहै उसको यह जगत् पदार्थभासते हैं कि;यहमैंहूं, यहजगत्है, यह उपजाहै और यहलीनहोताहै;और जिस्को सत्सङ्ग औरशास्त्रके संयोग से विचार उपजाहै उसको दिनदिन प्रतिभोगकी तृष्णा घटतीजातीहै और आत्मविचार दृढ़ होताजाताहै।जैसे किसीको तप आताहो तो औषधि करके निवृत्तहोजाताहै और दोलक्षण उसमें प्रत्यक्ष होतेहैं; एकतो जो तपनिवृत्त होजातीहै, दूसरेशरीरसे तपन निवृत्तहोजातीहै और शीतलता प्रकटहोतीहै तैसेही ज्योंज्यों विवेक दृढ़होताहै त्योंत्यों इन्द्रियोंकोजीतताहै;सन्तोषसे हृदय शीतल होताहै और सर्वआत्माही भासताहै । यह विवेककाफलहै । हे रामजी ! जैसेअग्निके लिखे चित्रसे कुछकार्य नहीं सिद्धहोता तैसेही निश्चयसे रहित वचन का विवेक दुःखको निवृत्त नहीं करता और शान्ति प्राप्त नहीं होती।जैसे जब पवन चलताहै तबपत्र और वृक्षहिलते हैं और उसका लक्षण भासता

है पर वाणीसे कहिये तो नहीं हिलते तैसेही जब विवेक हृदयमें आताहै तब भोगकी तृष्णा घट जातीहै; मुखके कहनेसे तृष्णा घटती नहीं। जैसे अमृतका लिखा चित्र पान करनेसे अमर होनेका कार्य नहीं करता; चित्रकीलिखी अग्नि शीत नहीं निवृत्त करती और स्त्रीके चित्रके स्पर्शसे सन्तान उपजनेका कार्यनहीं होता; तैसेही मुखका विवेक वाणीविलास है और भोगकी तृष्णाको निवृत्त करके शांतिको नहीं प्राप्त करता। जैसे चित्र देखने मात्रहीहोताहै तैसेही वह विवेक वागविलास है। हे रामजी! प्रथम जब विवेक आताहै तब रागद्वेषको नाश करताहै और ब्रह्मलोक पर्यंत जो कुछ विषय भोगरूप है उनसे तृष्णा और वैरभाव को नष्ट करताहै। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नष्टहोताहै तैसेही विवेक उदयहुये अज्ञान नष्टहोजाता है और पावनपदकी प्राप्ति होती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवपदवर्णनन्नामअष्टादशस्सर्ग्गः १८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्व जीवोंका बीज परमात्माहै। और वह सर्व ओर से आकाश की नाई स्थित है। उसके फुरने का नामजीव है और उसजीव के भीतर जगत्है। उसके आगेऔर नानाप्रकारकी रचनाहै पर वास्तवमें चिद्घनजीवके रूपसे भीतर स्थित हुआहै इससे सबजीव चिद्घन रूप है। जैसे केलेके थम्भमें पत्रहोतेहैं तैसेही आत्मसत्ताके भीतर जीवस्थितहैं। जैसे शरीरके भीतर कीटहोतेहैं तैसेही आत्माके भीतर जीव राशिहैं और जैसे प्रस्वेदसे जूं और लीख आदिक जीव उपजते हैं और दूसरे पदार्थमें कीट उपजआतेहैं तैसेही आत्मामें चित्तकलाके फुरनेसे जीवके समूह फुरआतेहैं। फिरजीव जैसी जैसी सिद्धिके निमित्त यत्न उपासना करते हैं तैसी तैसी गतिपातेहैं। जो देवताकी उपासना करतेहैं वह देवताको प्राप्त होतेहैं और यज्ञके उपासक यज्ञको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जिसकी जोउपासना करतेहैं उसीको वे प्राप्त होतेहैं। ब्रह्मके उपासक ब्रह्मकोही प्राप्त होतेहैं। इससे जो अतुच्छ पदहै उस महत् पदका तुम आश्रय करो। जैसे शुक्र जब दृश्य के ओर लगा तब उसने अनेक प्रकारके दृश्य भ्रमको देखा और जब शुद्ध बुद्धिकी ओर आया तब निर्मल बोधकोप्राप्त हुआ तैसेही जिसकी कोई उपासना करताहै उसीको वह प्राप्त होताहै; अन्यको नहीं प्राप्त होता। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत् और स्वप्नका भेद कहिये कि, जाग्रत् क्याहै और स्वप्नक्याहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थिर प्रतीतिका नाम जाग्रत्है अस्थिर प्रतीतिका नाम स्वप्नहै। जो चिर कालरहताहै उसका नाम स्थिरहै और जो अल्पकाल रहे उसका नाम अस्थिरहै अर्थात् दीर्घ काल प्रतीति का नाम जाग्रत्है और अल्पकालका नाम स्वप्नहै। इनमें कोई विशेष भेद नहींहै, दोनोंका अनुभव सम होताहै। शरीरके भीतर स्थित होकर जो शरीरके

जिवाताहै उसका नाम जीवहै। वह तेज और बीजरूपहै। जीवधातुहै यह सब उस के नामहैं। जब जीवधातु स्पन्दरूप होताहै तब वह जीवितके रन्ध्रोंमें फैलताहै; मन, वाणी और देहसे सब व्यवहार होताहै और रन्ध्र खुलजातेहैं तब उसको जाग्रत् कहते हैं। जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहार में स्पष्टरूप होतीहै और भीतर होकर फुरतीहै तब उसके भीतर जगत् भ्रम भासने लगताहै, वह स्वप्ना कहाता है। अब सुषुप्तिका क्रम सुनो। मन, वाणी और शरीरसे जहां कोई क्षोभ नहीं और स्वच्छवृत्ति जीवधातु भीतर स्थितहै; हृदयकोशमें प्राणवायु से क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रस से पूर्ण होतीहैं उस मार्गसे प्राण आनेजानेसे रहित होतेहैं और क्षोभसे रहित सम वायु चलताहै उसका नाम सुषुप्ति है। जैसे वायु से रहित एकांत गृहमें दीपक उज्ज्वल प्रकाशताहै तैसेही वहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है। जैसे तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही जीव संवित् कलनासे जो कल्पता है सो उसकाल में अपने आपमें स्थित होता है। जैसे बरफमें शीतलता और घृतमें चिकनाई होती है तैसेही वहां संवित्सत्ता स्थित होतीहै; उसका नाम सुषुप्ति अवस्था है जड़रूप उस सुषुप्ति अवस्थासे जागकर दृश्यभावको न प्राप्त हो और निर्विकल्प प्रकाशमें स्थित हो सो ज्ञानरूप तुरीयाहै। तब वह व्यवहारकरे तोभी जीवन्मुक्त है; वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! आत्मसत्तासे फुरना होकर स्वरूप विस्मरण होजाताहै और फुरना दृढ़ होकर स्थित होता है इसीका नाम जाग्रत् है। स्वरूपसे प्रमाद दोष करके फुरे और जो जगत् भासे उसको सत्रूप जाने और यह प्रतीति थोड़े काल रहकर फिर निवृत्त होजावे इसका नाम स्वप्न है। दृश्य के फुरने का अभाव हो जावे और अज्ञातवृत्ति जड़तारूप रहे उसका नाम सुषुप्ति है। अनुभवमें ज्ञान स्थितरहे और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिका व्यवहारहो पर निश्चयमें इनका सद्भाव रंचक भी न हो केवल ज्ञानमें अहं प्रतीतहो और वृत्ति उससे चलायमान न हो उसकानाम तुरीयापदहै। उसमें स्थितहुआ जीवन्मुक्त होताहै। जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जीव स्थितहोते हैं। जब नाड़ी अन्नके रससे पूर्ण होजाती हैं और प्राणवायु हृदयनाम्नी नाड़ीमें नहीं आता तब चित्त संवित् अक्षोभ रूप सुषुप्ति होताहै। जब अन्न उसनाड़ी से पचताहै और प्राणवायु चलनेलगताहै तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरनेलगता है और उसफुरनेसे अपने भीतरहो बड़ेजगत् भ्रम देखताहै; जैसे बीजसे वृक्षहोताहै। जब वायुकारस नाड़ीमेंबहुतहोताहै तब चित्त सत्ता आकाश में उड़ना, वायु, अँधेरी आदिक पदार्थोंको देखताहै; जब कफका रस नाड़ीमें अधिक होताहै तब फूल, बेल, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे आदिक पदार्थ भासतेहैं और जब पित्तकी अधिकताहोतीहै तब उष्णरूप अग्नि, रक्त, वस्त्र, आदिक

भासनेलगते हैं। इसप्रकार बासनाके अनुसार जगत्भ्रम देखताहै और जैसी जैसी भावना दृढ़होतीहै तैसाही पदार्त्थ दृढ़हो भासताहै। जब पवन क्षोभायमान होताहै तब चित्त संवित् नेत्र आदिक द्वारकेबाहर निकलकर रूपादिकका अनुभव करताहै। चिरपर्य्यन्त सत् जाननेकानाम जाग्रत्है। बासनाके अनुसार मनरूपी शरीरसे जीव नेत्र, जिह्वादिक विना जो रूप रसादिकका अनुभव होताहै उसकानाम स्वप्नहै पर स्वरूपसे न कोई स्वप्नहै, न जाग्रत्है और न सुषुप्ति है; केवल सत्ता अपने आपमें स्थितहै; उसीके फुरनेका नाम जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिहै। चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत्है और अल्पकाल फुरने का नाम स्वप्नाहै सो केवल प्रतीतिका भेदहै वास्तव में कुछ भेदनहीं और जो वास्तव में भेद न हुआ तो जगत् स्वप्नरूप हुआ। इससे यही भावना दृढ़करो कि, जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है इसमें सत्भावना करनी दुःखका कारण है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति,तुरीयारूप वर्णनंनामएकोनविंशतितमस्सर्ग्गः १९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह मैंने तुमको मनकारूप निरूपण करके दिखाया है और अवस्थाओं का निरूपणभी इसीनिमित्त किया है; और प्रयोजन कुछ नहीं। इस से जैसा निश्चय चित्त में होता है तैसाही हो भासता है। जैसे अग्नि में लोहा डालिये तो अग्निरूप होजाता है तैसेही मन जिस पदार्थसे लगताहै उसीकारूपहो जाताहै। भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहींसे होते हैं; न कोईसत्है, न असत्है केवल मनकी चपलतासे सब फुरते हैं। मनके मोहसेही जगत् भासता है और मन के नष्टहुयेसे नष्टहोजाता है। जो मलीन मनहै सो अपने फुरनेसे जगत्को रचताहै। यह मनही पुरुषहै इसको तुम अशुभमार्ग में न लगाना। जब मनको जीतोगे तब सब जगत् में तुम्हारी जय होगी। मनके जीतेसे सबजगत् जीताजाता है और तब बड़ीबिभूति प्राप्तहोती है। जो शरीरकानाम पुरुषहोता तो शुक्रकाशरीर पड़ाथा,वह दूसराशरीर न रचता पर उसका शरीर तो वहां पड़ारहा और मन और शरीरोंको रचताफिरा; इससेशरीरका नाम पुरुष नहीं मनहीकानाम पुरुष है। शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका कियाचित्त नहीं होता। जिसओर चित्त जा लगता है उसी पदार्त्थकी प्राप्ति होतीहै; इसमेंसंशय नहीं। इससे यह अतितुच्छ पदहै। आत्मसत्ताका चित्तमें सदा अभ्यास करो और भ्रमको त्यागदो। जब मन दृश्यकीओर संसरता है तब अनेक जन्मके दुःखोंको प्राप्तहोताहै और जब आत्माकीओर इसका प्रवाहहोता है तब परमपदको प्राप्तहोताहै। इससे दृश्यभ्रमको त्यागके आत्मपदमें स्थितिकरो॥

इतिश्रीयोगवा०स्थितिप्रकरणेभार्ग्गवोपा०समाप्तिवर्णनन्नामविंशतितमस्सर्ग्गः २०॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन्! सर्व्वधर्म्मोंके वेत्ता! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजके फैल-जाताहै तैसेही मेरे हृदयमें एक बड़ा संशय उत्पन्न होकर फैलगया है कि, देश, काल और बस्तुके परिच्छेदसे रहित नित्य,निर्म्मल, विस्तृत और निरामय आत्मसत्तामें मलीन संवित् मननामक कहांसेआया और कैसे स्थितहुआ? जिससे भिन्न कुछबस्तु नहींहै और न आगेहोगी उसमें कलंकता कहांसे आई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमने भला प्रश्न किया। अब तुम्हारी बुद्धि मोक्षभागी हुई है। जैसे नन्दनबन के कल्पवृक्षमें कल्पमंजरी लगती है तैसेही तुम्हारी बुद्धि पूर्ब्ब अपरके बिचारसे जागी है। अब तुम उसपदको प्राप्तहोगे जिसपदको शुक आदिक प्राप्तहुये हैं। तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर में सिद्धान्तकाल में दूंगा और उसकालमें तुमको आत्मपद हस्तामलकवत् भासेगा। हे रामजी! सिद्धान्तका प्रश्नोत्तर सिद्धान्तकाल में सोहता है और जिज्ञासुका प्रश्नोत्तर जिज्ञासुकाल में सोहता है। जैसे बर्षाकाल में मोरकी बाणी शोभती है और शरदकाल में हंसकीबाणी शोभती है और जैसे बर्षा कालके नष्टहुये स्वाभाविकही आकाशकी नीलता भासती है और बर्षाकाल में मेघ कीघटा शोभती है तैसेही प्रश्नोत्तरभी हैं। जैसा समयहो तैसाही शोभता है। हेराम जी! मैं तुमको मनकास्वरूप अनेकप्रकारके दृष्टांतों और युक्तियोंसे कहूंगा और जिसप्रकार यह निवृत्तहोता है वह भी क्रमसे बहुतप्रकार कहूंगा। मनकी शान्तिके उपाय जो वेदोंने निर्णय किये हैं और शास्त्रकारों ने कहे हैं उनके लक्षण तुमसुनो। चञ्चलमन जैसा जैसा भाव अङ्गीकार करताहै तैसाही तैसा रूपहोकर भासनेलगता है। जैसे पवन जैसीसुगन्धसे मिलताहै तैसाही उसका स्वभाव होजाताहै और जैसे जल जिसरङ्गसे मिलता है तैसाहीरूपहो भासता है तैसेही मन जिस पदार्थसे मिलताहै उसकारूप होजाताहै। मनसे रहित जो शरीरसे क्रिया करताहै उसकाफल कुछ नहीं होता और मनसे करताहै उसका पूर्णफलहोताहै। जिसओर मनजाताहै उसी ओर शरीरभी लगजाताहै। बुद्धिइन्द्री जो मनरूपहैं वे यदिक्षोभकोप्राप्तहों और देह इन्द्री स्थिरहों तौभी कार्य्य होता है पर यदि मन क्षोभित न हो और कर्मेन्द्री क्षोभ न हों तो कार्य्य नहींहोता। जैसे धूड़ क्षोभायमानहो तो पवनबिना आकाशको उड़नहीं सक्ती और पवन क्षोभायमान हो तो चाहेजैसी धूड़स्थितहो उसको उड़ालेजाती है; तैसेही देह पड़ारहता है मनअपने फुरनेसे स्वप्ने में अनेक अवस्थाको प्राप्तहोता है और जाग्रतमेंभी जिसओरमनफुरताहै देहकोभी वहांही लेजाताहै। इससे सबकार्य्यों का वीजमनहीहै और मनसेही सबकर्म होते हैं। मन और कर्म परस्पर अभिन्नरूपहैं। जैसे फूल और सुगन्ध अभिन्नरूपहैं तैसेही मन और कर्म हैं। जिसकर्मका अभ्यास मनमें दृढ़ होता है उसीकी शाखा फैलती हैं; उसीफलको प्राप्त होता है और उसी

स्वादका अनुभव करता है। जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करताहै उसी २ भावको प्राप्त होता है और उसीको कल्पनारूप मानता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं; उनमें जिसकी दृढ़ भावना मन करता है उसीको सिद्ध करता है। कपिलदेवने सब शास्त्र अपने मनकी सत्ताही से बनाये हैं। उसने निर्णय किया है कि, प्रकृत अर्थात् माया के दोस्वभाव हैं—एक अनुलोमपरिणाम और दूसरा प्रतिलोम परिणाम। जबप्रतिलोमपरिणाम होताहै तब दृश्यभाव प्राप्तहोताहै और अनुलोम परिणामसे अन्तर्मुखआत्माकी ओर आताहै। आत्मा शुद्धरूपहै इससे आत्माकीओर अनुलोमपरिणामही मोक्षका कारणहै और कोईउपाय नहीं। वेदान्तवादियोंने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्महीहै। शम, दम आदिकसे जब मन सम्पन्न होता है तब यह निश्चय धारण होता है कि; सर्व ब्रह्महै। उनके चित्तमें यही निश्चय है। ब्रह्मज्ञान के सिवा और किसी यत्नसे मोक्ष नहीं होती विज्ञानवादी कहते हैं कि, जबतक बुद्धि फुरती है तबतक संसार है और जब यह अपने स्वभावमें फुरती है तब उस कालमें स्वरूप स्थित होता है। जब वह काल आवेगा तब मोक्षकी प्राप्ति होगी। अर्हतजी से बड़े हैं उनको अपने निश्चयानुसार भासता है। मीमांसा, पातञ्जल, वैशेषिक और न्यायादिक शास्त्रकार अपनी २ बुद्धिसे जैसा२ निश्चय धरते हैं तैसाही तैसा उनको भासताहै; स्वरूपमें न कोई मतहै और न शास्त्र है। सबकाकारण मन है, मनकोही अङ्गीकारकरके सबमत डूबेहैं। न नींब कडुआ है, न मधु मिष्टाहै; न अग्नि उष्णहै और न चन्द्रमा शीतल है; जैसा जैसा जिसके मनमें निश्चयहोता है तैसाही तैसा उसको भासताहै। किसीको नींब प्यारीहोतीहै और मधु कटु लगता है। नींबके कीटकोमधु नहीं रुचता तो क्या मधुकटुक होगया? विरहिणीस्त्रीको चन्द्रमा अग्निवत् भासताहै और चकोर अग्निको भक्षणकरलेता है निदान जैसी २ भावना पदार्थ में होती है तैसाही तैसाहो भासताहै। सब जगत् भावनामात्रहै; जिस पुरुषको दृश्य में भावनाहै वह अनेक दुःख और भ्रम देखताहै और जिसको शम दमादिक साधन से अकृत्रिम पदकी प्राप्ति होतीहै और मन तदाकार हुआहै वह शान्तिवान् होताहै दूसरा उस सुखको नहीं प्राप्तहोताहै। हेरामजी! यहजगत् दृश्य तुम्हारे मनके स्मरण में स्थितहुआ है सो तुच्छरूप है। इसको मनसे त्यागकरो। ये सुख दुःखआदिक महाभ्रम देनेवाले हैं और यह संसार अपवित्र और असत्तथा मोहरूप महाभयका कारणहै। आभास मायामात्र और अविद्यारूपहै। इसकीभावना भयका कारणहै। जब जगत्केसाथ संवित्की तन्मयता होतीहै तब उसकानाम कर्म बुद्धीश्वर कहतेहैं। जब द्रष्टाको दृश्यसे संयोग होताहै तब बड़े मोहको प्राप्तहोता है; दृश्यसे मिलके भ्रम से अनात्ममें आत्माभिमान करताहै और देहादिकको अपनाआप जानताहै। संसाररूप

मदसे जीवउन्मत्त होजाताहै और स्वरूपकी संभाल इसको नहींरहती—इसीका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं । जो दृश्यसे मिला है उसका कल्याण नहीं होता और जिसके आगे मनका पटल है उसको स्वरूपका भाननहीं होता । जैसे सूर्य के आगे जब मेघका आवरण आता है तब वह नहीं भासता; तैसेही मनके आवरण से आत्मा नहीं भासता । इससे मनरूपी आवरणको दूरकरो । मनकारूप फुरना है; उसको सङ्कल्प कहते हैं । जो जो सङ्कल्प फुरें उनको त्यागकरो; असङ्कल्प होने से मन नष्ट होजावेगा । हे रामजी ! जब तुम सर्वभाव और सर्व पदार्थों में असङ्ग होगे तब द्रष्टापुरुष प्रसन्न होगा और उसमे तुम को निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होगी जहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है और न दुःखहै केवल केवलीभाव है जो अपने आप में प्रकाशता है । जब संसार की भावना तुम्हारे हृदय से उठजावेगी तब तुम निर्मल स्वरूप में स्थित होगे और तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावेगा । जैसे रस्सी के सम्यक् ज्ञानसे सर्पभ्रम नष्ट होजाता है तैसेही चिदात्माके सम्यक्ज्ञानसे जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा । इससे तुम दृश्यभावनाको त्यागके चिदात्माकी भावनाकरो; जैसी भावना होती है तैसेहो भासता है । यदि प्रथम भावना को त्याग के और भावना करता है तो प्रथमका अभाव होजाताहै । जैसे दिनहुयेसे रात्रिका अभाव होजाताहै तैसेही आत्मभावनासे दृश्य भावनाका अभाव होजाताहै। जैसे लोहेको लोहा काटताहै तैसेही भावनाको भावना काटती है । इससे अतुच्छ निरुपाधी और निःसंशय पदका आश्रय करो । जब उसकी भावना दृढ़ होगी तब तुम भ्रमसे रहित सिद्धपदको प्राप्त होगे । हेरामजी ! तुम्हारा आत्मस्वरूपहै; तुम बुद्धिआदिककी कल्पना मतकरो । जैसे बालकसे कहिये कि, शून्यमें सिंहहै तो वह भयमानहोताहै तैसेही जब शून्यशरीरादिकोंमें विचारसे बुद्धिनहीं आती और यह मैं हूं, 'यह और है' इत्यादिक जो कल्पना होती हैं सो ऐसी हैं जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वैताल कल्पनाहोती है । जोकि अपनी कल्पनाकेवशसे भाव, अभाव, शुभ, अशुभ क्षणक्षण प्राप्तहोते हैं और कोई सत्रूप, कोई असत्रूप भासते हैं । जैसी२ भावना होतीहै तैसाहीतैसा भासता है; परस्त्रीमें जब काम बुद्धि होतीहै तब स्पर्शसे स्त्रीवत् आनन्ददायकहोतीहै और जो उसी स्त्रीमें माताकी भावना करता है तो उससे कामबुद्धि जाती रहतीहै । इससे देखो जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसाहो भासता है । भावनाके अनुसार फलहोताहै और तत्काल उसीआकारको देखताहै। ऐसापदार्थ कोईनहीं जो सत्नहीं और ऐसा कोई नहीं जो असत् नहीं । जैसा२ किसीका निर्णयकियाहै तैसाहीतैसा उसको भासता है । इससे इस संसारकी भावना को त्यागके स्वरूपमें स्थितहो । हे रामजी ! मणिमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको मणि दूरनहीं करसक्ती पर तुम तो मणिवत् जड़नहीं

हो; तुम चैतन्यरूप आत्माहो, तुम्हारे में जो दृश्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है तुम उस को त्यागकरो। जो सङ्कल्प दृश्यका उठे उसको असत्‌रूप जानके त्यागदो और प्रकृत व्यवहार जो प्राप्तहों उनको करो और मणिकी नाईं भीतरसे रञ्जतसे रहित हो रहो। जैसे मणिमें प्रतिबिम्ब बहिर्दृष्टि आता है और भीतर रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही बहिर्दृष्टि व्यवहार तुम्हारेमें भासे पर हृदयमें राग द्वेष स्पर्श न करे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविज्ञानवादोनामएकविंशतितमस्सर्गः २१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीवको सन्तोंकेसङ्ग और सत्‌शास्त्रों के विचार से विचार उपजता है तब दूसरी ओरसे वृत्ति निवृत्त होती है और संसारका मनन भी निवृत्त होजाताहै। तब विवेकरूपी बुद्धि उदय होतीहै और संसार दृश्यकी त्याग बुद्धि होती है। तथा द्रष्टाआत्मामें अङ्गीकार बुद्धि होती है। द्रष्टापुरुषप्रकट होताहै और दृश्य अदृश्यताको प्राप्त होता है अर्थात् द्रष्टाके लक्षसे दृश्यको असत्‌रूपजानता है। जब यह पुरुष ज्ञानज्ञेय होता है तब परमतत्त्व में जागता है और संसारकी ओरसे घन सुषुप्ति, मृतककीनाईं होजाताहै और संसारकीओरसे वैराग्य, भोगमें अभोग और रसमें निरस बुद्धि उपजती है। जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ताको त्यागकर आत्मरूप होताहै। जैसे बरफका पुतला सूर्य्यके तेजसे जलरूप होजाता है तैसेही जब मनमें संसारकी सत्यता होती है तब उस फुरने से जड़भागी होता है। जब विवेकरूपी सूर्य्य उदय होताहै तब मन गलके आत्मरूप होजाता है जैसे जबतक मरुथलमें धूपहोती है तबतक वहांसे मृगतृष्णा की नदी नष्टनहीं होती और जब वर्षा होतीहै तब नष्ट होजाती है तैसेही जबतक संसारकी सत्यता होती है तबतक मन नष्ट नहीं होता और जब ज्ञानकी वर्षा होती है तब दृश्यसहित मननष्ट होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी वासना के जाल में जीवरूपी पक्षी फँसे हैं; जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतरे तब जीव निर्बंध हो। जैसे मलीनजल निर्मलहोता है तैसेही वैराग्यके वशसे जीवका स्वभाव निर्मल होजाताहै। जब जीव निराग निरुपाधि के संग और राग, द्वेष और मोहसे रहित होता है तब जैसे पिंजरे के छूटे पक्षी निर्बंध होता है तैसेही जीव निर्बंध होजाता है सन्देह दुर्मति शान्त होजाती है जगत् भ्रम नष्ट होजाताहै और हृदयपूर्ण होजाता है। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् शोभताहै, सबसे उत्तम सौंदर्य्यताको प्राप्त होताहै और उस का उदय अस्त रागद्वेष नष्ट होजाताहै; सर्व समताभाव वर्त्तता है और न्यूनता और विशेषताभाव नष्टहोजाताहै। जैसे पवनसे रहित सोम समुद्र अचलहोता है तैसेही असङ्ग पुरुष मूकजड़ अन्धकर्मकी वासनासे रहित अचलहोजाताहै और वह सब चेतन प्रकाश देखता है; उसकी बुद्धि विवेकसे प्रफुल्लित होजाती है। जैसे सूर्य्यके

उदयहुये सूर्य्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआतेहैं तैसेही वह पुरुष पूर्णिमाके चन्द्रमावत् परम लक्ष्मीसे शोभताहै। बहुत कहने से क्याहै ज्ञानज्ञेय पुरुष आकाशवत् होजाताहै; वह न उदय होताहै और न अस्त होता है। विचार करके जिसने आत्मतत्त्वको जानाहै वह उस पदको प्राप्त होताहै जहां ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थितहैं और सबही उसपर प्रसन्न होतेहैं। प्रकट आकार उसका भासताहै पर हृदय अहंकारसेरहितहै और विकल्पकेसमूह उसको नहीं खींचसक्ते—जैसे जलके अभावजाननेवालेको मृगतृष्णा की नदी नहीं खींचसक्ती। हे रामजी ! आविर्भाव और तिरोभावरूप जो संसारहै उसको रमणीयरूप जानके ज्ञानवान् खेदनहीं पाता, देहके नाशमें वह अपना नाश नहीं मानता और उपजने में उपजना नहीं मानता। जैसे घट उपजेसे आकाश नहीं उपजता क्योंकि, आगे सिद्ध है और घटके अभावसे आकाशका अभाव नहींहोता, तैसेही देहकेउपजेसे आत्मा नहींउपजता और देहके नष्टहुये नष्टनहींहोता। जब ऐसाविवेक उदय होताहै तब वासनाका जलनष्ट होजाताहै और कोई भ्रम नहीं रहता। जैसे मृगतृष्णाकी नदीका ज्ञानसे अभाव होजाता है । जबतक जीवको यह विचार नहीं उपजता कि, 'मैं कौनहूं' और जगत् क्याहै, तबतक संसाररूपी अन्धकार रहताहै। जो पुरुष ऐसे जानताहै कि, 'संसार भ्रम मिथ्या उदय हुआहै' और 'परम आपदाका कारण देह अनात्मरूपहै' आत्मासे यहजगत् भिन्न नहीं और सब आत्मसत्ता करके स्थित है वही यथार्थ देखता है । सब चैतन्यसत्ता है; मैं अनन्त चिदाकाशरूपहूं और देश,काल,वस्तुके परिच्छेदसे रहितहूं और आधि, व्याधि, भय, उद्वेग, जरा, मरण, जन्म आदिक संयुक्त देशमें नहीं; ऐसे जो देखताहै, वही यथार्थ देखता है। बालके अग्रका लक्षभाग करिये और फिर एक भागके कोटिभाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापीहै; ऐसे जो देखता है; वही यथार्थ देखता है । मैं सर्वशक्तिमान् अनन्त आत्माहूं; सर्वपदार्थोंमें स्थित और अद्वैत चिदादित्यहूं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है। अध ऊर्ध्व मध्य और सबमें मैं व्यापाहूं, मुझसे भिन्न द्वैत कुछ नहीं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है। जैसे तागेमें मालाके दाने पिरोये होते हैं तैसेही सब मुझसे पिरोये हैं, ऐसे जो देखताहै वही यथार्थ देखताहै। न मैंहूं, न यह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै; सत् असत्के मध्य में जो एकदेव प्रकाशकहै और त्रिलोकी में जो एकहै वही मैं एक अविनाशी पुरुषहूं। जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं और लीनहोजाते हैं तैसेही मेरेमें जगत् फुरते हैं और लीनहोतेहैं। अथवा प्रथम अहं है, तबदृश्य जगत् होता है; सो न मैंहूं, न जगत् है केवल एक आत्मसत्ताहै। अहं और मम उसमें कोई नहीं ऐसे जो देखताहै सो यथार्थ देखता है। दृश्यसे रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपारहूं और मैंही जगत्जालको पूर्णकर

रहाहूं। जो पुरुष ज्ञानवान् हैं वे सुख दुःख और भाव–अभावमें चलायमान नहीं होते, वे केवल ब्रह्मरूपमें स्थितहैं और जगत्के भाव–अभावसे रहित अनाभास सन्मात्ररूपहैं। जो हेयोपादेय बुद्धिसे रहित आकाशवत् सर्वात्मभाव में स्थितहुआ है उसको जगत्का कोई पदार्थ अपने वशनहीं करसक्ता; वह महात्मा पुरुष महेश्वर, तमप्रकाशसे रहित,सबकल्पनाओंसे मुक्त,सम और स्वच्छरूपहै और उदय अस्तसे रहित समवृत्तहै। जो ऐसीपरमबोध अनन्त सत्तामें स्थितहै उसको मेरानमस्कारहै॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेऽनुत्तमविश्रामवर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः २२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसने उत्तम पदका आश्रय कियाहै ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषका कुम्हारके चक्रकीनाईं प्रारब्ध शेपरहा है। वह पुरुष शरीररूपी नगरमें राज्य करता है और लेपायमान नहीं होता। उसको भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। जैसे इन्द्रका वन सुखरूप है तैसेही उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होताहै। शरीरके सुखसे वह सुखी नहीं होता और दुःखसे दुःखी नहीं होता, अपने स्वरूपमें स्थित रहता है। रामजीने पूछा, हे महामुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है; उसमें रहके योगीराज क्या करता है और सुख कैसे भोगताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय होता है और सर्व गुण संयुक्त ज्ञानवानों को अनन्त आनन्द विलास दिखाता है; जैसे सूर्य्य प्रकाशको उदय करता है। उस शरीररूपी नगर में गांठें ईंटें हैं; रुधिर और मांस गारा है; अस्थि थम्भे हैं; किवाट पट हैं; रोम बनस्पति हैं; उदर खाईं है; छाती चौकहै; नव द्वार हैं और उन में नेत्र झरोखे हैं; उन द्वारों से त्रिलोकी का प्रकाश होता है; हाथगली हैं, जिनसे लेतादेता है; मुखबड़ी कन्दरा है; ग्रीवा और शीश बड़े मन्दिर हैं और रेखा मालाहैं जो भिन्न भिन्न लगी हुई हैं; नाड़ी विभाग करने के स्थान हैं और प्राण वायु आदिकसे नाड़ी में जीव विचरते हैं; चिन्तामणिरूपी आत्म में श्रेष्ठ बुद्धिरूपी स्त्री रहती है जिसने इन्द्रिय रूपी वानर बांध रक्खे हैं; और जिसके हास्य में महासुन्दर फूलहैं। ऐसा शरीर-रूपी पुर ज्ञानवान्को महासुखका निमित्त है और सौभाग्य सुन्दररूप है। उस शरीरके सुखदुःखसे ज्ञानवान् सुखीदुःखी नहींहोता। हे रामजी! जो अज्ञानीहैं उनको शरीररूपी नगर अनन्त दुःखका भण्डारहै क्योंकि, अज्ञान से वे शरीर के नष्टहुये आपको नष्टहुआ मानते हैं और ज्ञानवान् इसके नाशहुये अपना नाश नहीं मानते। वे जबतक रहते हैं तबतक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको ग्रहण करते हैं; वे इष्टरूप होके भासते हैं और शरीररूपी नगर में भ्रमसे रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं। वे लोभसे रहितहैं इसकारण शत्रु कुछ नहीं लेते और उनको अपने स्थानमें आने नहींदेते। वे शत्रु काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देशहैं, उनमें वे

आप प्रवेश नहींकरते और अपने देशमें उनको आने नहीं देते; सावधानही रहतेहैं। उनके देश उदारता, धीरज, सन्तोष, वैराग्य, समता, मैत्रता, मुदिता और उपेक्षा हैं; उनमें अज्ञान नहीं प्रवेश करने पाता और आप ध्यानरूपी नगरमें रहताहै; सत्यता और एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखताहै और उनसे सदा शोभायमान रहताहै। जैसे चन्द्रमा चित्रा और विशाखा दोनों स्त्रियोंसे शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् सत्यता और एकतासे शोभताहै। वह मनरूपी घोड़ेपर आरूढ़ होके और विचाररूपी लगाम उसके लगाकर जीवब्रह्मकी एकतारूपी सङ्गम तीर्थ में स्नानकरने जाताहै जिससे सदा आनन्दवान् रहताहै और भोग और मोक्ष दोनोंसे सम्पन्न होताहै। जैसे इन्द्र अपने पुरमें शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् देहमें शोभताहै और जैसे घटके फूटेसे आकाशकी कुछ न्यूनता नहीं होती तैसेही देहके नाशहुये ज्ञानीकी कुछहानि नहीं होती वह ज्योंका त्योंहीं रहताहै। यद्यपि उसके देह होतीहै तौभी वह उससे स्पर्श नहीं करता—जैसे घटसे आकाश स्पर्श नहीं करता और सर्व क्रियाको कर्त्ता भोक्ताहै परन्तु किसीमें लिप्तनहीं होता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवमें रहताहै। जब वह विमान पर आरूढ़होके शरीररूपी नगरमें विचरताहै तब मैत्रीरूपी नेत्रोंसे सबको देखता है; मैत्रीभाव उसमें सदा रहता है और सत्यता और एकता सदा उसके पास हैं उससे शोभताहै और सदा आनन्दवान् विचरता है। वह जीवोंको दुःखरूपी आरे से कटते देखताहै जैसे कोई पहाड़पर चढ़के पृथ्वीमें लोगोंको जलता देखे और आप आनन्दवान् हो; तैसे वह ज्ञानवान्जीवोंको दुःखी देखताहै और आप आनन्दमानहै। उसकी दृष्टिमें तो सदा अद्वैतरूपहै और आत्मानन्दकी अपेक्षासे अनात्म धर्मको दुःखी देखताहै। उसके निश्चयमें जगत्जीव कोई नहीं और वह चारों प्रयोजन—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णताको प्राप्तहोताहै। किसी ओरसे उसको न्यूनता नहीं; यह सर्व सम्पदा सम्पन्न विराजमान् होताहै। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा न्यूनता से रहित विराजताहै तैसेही यद्यपि वह भोगोंको सेवताहै तौभीउसको वे दुःखदायक नहींहोते। जैसे कालकूट विपको सदाशिवने पानकियाथा परन्तु उनको वह दुःखदायक न हुआ; तैसेही वहभी समर्थहै। जैसे चोरको जानके जब उसे अपने वशवर्ती किया तब मित्रभाव होजाताहै तैसेही भोगउसको दुःख नहींदेते। जब जीव भोगोंको जानताहै कि, ये कुछवस्तु नहीं हैं तब वे सुखके कारण होते हैं और जबतक इनको सत्जानके आसक्त होता है तबतक दुःखके कारण होते हैं। हे रामजी! जैसे यात्रामें अनेक स्त्री, पुरुष मिलते हैं और परस्पर इकट्ठे बैठते और चलते फिरते हैं परन्तु आपसमें आसक्त नहीं होते—आगेपीछे चलेजाते हैं—तैसेही ज्ञानवान् संसारके पदार्थोंमें चित्तको नहीं लगाते। जैसे कोई कासिद किसी देशमें जाताहै और मार्गमें

कोई सुन्दर रमणीय स्थान दृष्टिआते और कोई मलीन कष्टके स्थान भासतेहैं परन्तु वह राग द्वेष किसीमें नहींकरता, जैसे तैसे देखता चलाजाताहै, तैसेही ज्ञानवान् भोग क्रियामें राग द्वेषसे बन्धमान नहींहोता। उसके सर्व संशय सम्यक्ज्ञानसे शांतहो-जाते हैं,कोई आश्चर्य पदार्थ उसको नहीं देखाई देते;उसके बासनाके समूह नष्टहोजाते हैं, चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं शोभताहै और परिपूर्ण होके स्थित होताहै। जैसे क्षीर समुद्र अपने आपमें पूर्णनहीं समाता तैसेही ज्ञानी अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता। हे रामजी! इन जीवोंको भोगकी इच्छाही दीन करतीहै जिससे वे आत्मपदसे गिर-ते हैं और अनात्ममें प्राप्तहो कृपण होजातेहैं। उनको देखके उत्तम आत्मपद आल-म्बी हँसते हैं कि, ये मिथ्या दीनभावको प्राप्तहुये हैं। जैसे कोई स्वामी होकर स्त्रीके बश हो और स्त्री स्वामीकी नाईं हो तो उसको देखके लोग हँसते हैं;तैसेही ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीनदेखके हँसतेहैं। चञ्चल मनहीं परमसिद्धान्त सुखसे जीवों को गिराताहै; इससे तुम मनरूपी हस्ती को बिचाररूपी कुन्देसे बश करो तब सिद्ध पदको प्राप्त होगे। जिसका मन बिषयोंकीओर धावताहै वह संसाररूपी बिषका बीज बोताहै। इससे प्रथम इसमनको ताड़न करो तब शांतिकी प्राप्ति होगी। जो मानी होताहै और कोई उसका मान करताहै तो वह उपकार कुछ नहीं मानता पर जब प्रथम उसको ताड़न करके थोड़ेही उपकार कियेसे प्रसन्न होताहै। जैसे धान्य जलसे पूर्ण होते हैं तब जलके सींचनेसे उनमें उपकार नहींहोता और जो ज्येष्ठ आषाढ़की धूपसे तप्तहोतेहैं तो थोड़ा जल सींचनेसेभी उनको अमृतवत् होताहै, तैसेही जो प्रथम मनका सन्मानकरिये तो मित्रभाव नहींहोता और यदि ताड़न करके पीछे सन्मान कीजिये तो उपकार मानके मित्रभाव रक्खेगा। ताड़न करना विषयसे संयम करनाहै। जब संयम करके निर्बाणहो तब यह सन्मान करनाचाहिये कि,संसारके पदार्थों में बर्त्तना। तब वह शत्रुभावको त्यागके मित्र होजाता है, जैसे बर्षाकाल में जब नदी जलसे पूर्ण होतीहै तब उसमें जलका उपकार नहीं होता पर शरद्कालमें जलका उपकार होताहै। जैसे राजाको और देशकाराज्य प्राप्तहो तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होता पर यदि प्रथम उसे बन्दीस्थान में डालिये और फिर थोड़ाग्रास दीजिये तो उससेभी प्रसन्न होताहै; तैसेही जब प्रथम मनको ताड़न कीजिये तब थोड़े स-न्मानसेभी सुखदायक होताहै। इससे तुम हाथसेहाथ दबाके; दांतोंसे दांत मिलाके और अङ्गसे अङ्ग रोकके इन्द्रियोंको जीतलो। मनुष्यके हृदयमें मनरूपी सर्प कुण्डल मारके बैठाहै और कल्पनारूपी बिषसे पूर्ण है। जिसने उसको मर्द्दनकिया है उसको मेरानमस्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशरीरनगरवर्णनंनामत्रयोविंशतितमस्सर्गः २३॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! अज्ञानीजीव महानरकको प्राप्तहोता है । आशारूपी बाणकी सलाका उसको लगतीहै और इन्द्रियरूपी शत्रुमारते हैं । इन्द्रियांदुष्ट बड़ी कृतघ्न हैं; जिसदेहके आश्रयरहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्णकरती हैं । ये महादुष्ट और दुःखदायक भण्डार हैं; इनको तुम जीतो । इन्द्रियां और मनरूपी चील पक्षी हैं, जब इनको विषयभोग नहींहोते तब ऊर्ध्वको उड़ते हैं और जब विषय प्राप्तहोते हैं तब नीचेको आ गिरते हैं । जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधाहै उसको ये भोजन नहींकरसक्ते जैसे—पाषाणके कमलको हाथी भोजननहींकर सक्ता । हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय और अत्यन्तविरसहैं; जो पुरुष इनमें रमण करता है वह नरक को प्राप्तहोगा और जो पुरुष ज्ञानके धनसे सम्पन्नहै और देहरूपी देशमें रहताहै वह परम शोभापाताहै और आनन्दवान् होताहै क्योंकि; बड़े ऐश्वर्य्य से उसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं । हे रामजी ! सुवर्ण के मन्दिर में रहने से ऐसा सुख नहीं मिलता जैसा निरवासनिक ज्ञानवान्कोहोताहै । जिसपुरुषने इन्द्रियों और असत्‌रूपी शत्रुको जीताहै वह परमशोभासे शोभताहै—जैसे हिमऋतुको जीत के बसन्तऋतुमें मञ्जरी शोभतीहैं । जिस पुरुष के चित्तकागर्व नष्टहुआहै और जिसने इन्द्रियरूपी शत्रुजीते हैं उसकी भोगवासना नष्ट होजाती है-जैसे शीतकाल में पद्मनियां नष्ट होजाती हैं । हे रामजी ! बासनारूपी बैताल निशाचर तबतक बिचरतेहैं जबतक एकतत्त्वका दृढ़अभ्यास करके मनको नहींजीतते; जब विवेकरूपी सूर्य्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्ट होजाताहै । जब विवेक से मनुष्य मनको वशकरताहै तब इन्द्रियां भृत्य (टहलुये) होजाती हैं, मनरूपी सबमित्रहोजाते हैं और आप राजाहोके स्वरूप राजको भोगताहै । हे रामजी ! विवेकीकी इन्द्रियां पतिव्रतास्त्रीवत् होजाती हैं; मनसीताकीनाईं पालना करनेवाला होताहै और चित्त सुहृदहोजाताहै । जबनिश्चयवान्पुरुष सत्‌शास्त्रको विचारता है तब परमसिद्धांतको प्राप्तहोताहै और मन अपने मननभावको त्याग के शान्तरूप पितावत् प्रतिपालक होजाता है । इससे तुम मनको विवेकसे वशकरो । मनरूपी मणिको आत्मविचार शिला से घिसो; वैराग जल से उज्ज्वल करो और अभ्यासरूपी छेदकरके विवेकरूपी तागेसे पिरोयकण्ठमें पहिनो तो शोभादेतीहै । जन्मरूपी वृक्षको विवेकरूपी कुदाड़ा काटडालताहै और मनरूपीशत्रु को विवेकरूपीमित्र नष्टकरताहै और सदा शुभकर्मकराताहै और विषयके परिणामिक दुःखको निकटनहीं आनेदेता । इससेमनको वशकरनाही आनन्दका कारणहै । जब तक मन वशनहींहोता तब तक दुःखदेताहै और जब वशहोताहै तब सुखदायक होताहै । हे रामजी ! मनरूपी मणि भोगकीतृष्णासे कलङ्कित हुई है; जब विवेकरूपी जलसे इसको शुद्धकरे तब शोभायमान होगी । यह संसार महाभय का देनेवाला है । अल्प

विवेकवान् पुरुषभी मायारूपी संसारमें गिरपड़ते हैं; तुम और जीवोंकीनाईं इस में मतगिरो। यह संसार मायारूपहै और अनेक अर्थों की जंजीरसंयुक्त है। महामोह रूपी कुहिरेसे जीव अन्धेहोगये हैं; इससे तुम विवेकपदका आश्रय करके वोधसे सत् का अवलोकन करो और इन्द्रियों से वैरागरूपी नौकासे संसार समुद्र को तरजावो। शरीरभी असत्है और इसमेंसुख और दुःखभी असत्हैं। तुम दाम, व्याल और कटकी नाईं मतहो पर भीम, भास और दटकी स्थितिको ग्रहणकरके विशोक हो। 'अहं', 'ममादिक' निश्चय वृथा है; उसको त्यागके तत्पदका आश्रयकरो। चलते, बैठते, खाते, पीते, मनमें मननका अभाव हो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनस्विसत्यताप्रतिपादनं नामचतुर्विंशतितमस्सर्ग्गः २४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! आप संसारताप के दूर करनेवाले हैं। यह आपने क्याकहा? इसको खोलकरकहो कि, दाम, व्याल और कटकीनाईं कैसे और भीम, भास, दटकी स्थिति कैसेहै? जैसे वर्षा कालके मेघ तपनको दूर करतेहैं और मोरको शब्दकरके जगातेहैं तैसेही तुम अपनीकृपासेजगावो। वशिष्ठजीवोले, हे रामजी! प्रथम इसकीनाईंस्थितहो, पीछे जो इष्टहो उसमें विचरना। पातालमें सम्बरनाम एकदैत्यराजा माया और सर्वआश्चर्य्यरूप मनके मोहनेवालाथा। उसदैत्यने अपनीमायासे आकाश में एकनगर रचा और उसमें वाग, दैत्योंके मन्दिर, सूर्य्य, चन्द्रमा और अनन्त ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न दैत्य और रत्नोंकी स्त्रियां रचीं; जो गानकरतीथीं और जिन्होंने देवताओं की स्त्रियां भी जीतीं। उसने वृक्षवनाये जिनमें चन्द्रवत् फललगे और श्वेत, पीत रत्नोंकी कमलनी और सुवर्ण के हंस सारस और कमल सुवर्ण के वृक्षों की वड़ी शाखोंपर वैठेहुये वनाये और कञ्जकेवृक्ष जिनमें कमलवृक्षके फूल लगाये और रत्नों से जड़ेहुये सुन्दरस्थान, वरफकीनाईं शीतल वगीचे, वनस्थान चन्दन के रचे। इन्द्रका नन्दन वनकिन्तु उससे विशेष और सर्वऋतुके फूललगाये; उनमें दैत्यों की स्त्रियां क्रीड़ाकरतीथीं और वड़ेऐश्वर्य्य रचेथे। विष्णु और सदाशिवके सदृश ऐश्वर्य्य संयुक्त उसने अपना नगर किया और वड़े प्रकाश संयुक्त रत्नके तारागणरचे। जव रात्रिहो तव वे चन्द्रमाके साथ उदय हों और पुतलियां गानकरें। मायाके हाथी ऐसे रचे जो इन्द्रकेऐरावत को जीतलेवें। इसीप्रकार त्रिलोकीकी विभूति से उत्तम विभूति उसनेरची और भीतरवाहर सर्व सम्पदाओंसे पूर्णकिया। सव दैत्य मण्डलेश्वर वन्दना करतेथे, आप सव दैत्योंका राजा शासन करनेवालाहुआ और सव उसकी आज्ञामें चलतेथे। वड़ी भुजावाले दैत्य उसनगरमें विश्राम करतेथे निदानजव सम्वर दैत्य शयनकरै अथवा देशान्तर में जाय तव अवकाशदेखके देवताओं के नायक

उसकी सेनाको मारजावें और नगर लूटलेजावें। तब सम्बरने रक्षाकरनेवाले सेना-पतिरचे पर समय देखके देवता उनकोभी मारगये। सम्बरने यह सुनके बड़ा कोप किया और जीमें ठाना कि, इनकोमारूं। ऐसे विचारके वह अमरापुरी पर चढ़ गया और देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वत में भवानीशंकर के पास अथवा वन कुञ्ज और समुद्रमें जाछिपे। जैसे प्रलयकाल में सबदिशा शून्य होजाती हैं तैसेही स्वर्ग शून्य होगया। तब दैत्यराज अमरपुरी को शून्य देखके और भी कोपवान् हुआ और उसमें अग्नि लगाकर लोकपालों के सब पुर जलादिये और देवताओं को ढूंढ़ता रहा परन्तु वे कहीं न दीखे—जैसे पापी पुण्यको देखें और वे कहीं दृष्ट न आवें तैसेही उसे देवता कहीं दृष्ट न आये। तब सम्बरने कुपित होके ऐसे बड़े बली तीन राक्षस सेनाकी रक्षाके निमित्त मायासे रचे कि वे मानों कालकी मूर्त्तिथे और उनके बड़े आकार ऐसे हिलते थे मानो पंखोंसे संयुक्त पर्वत हिलते हैं—उन्हीं के नाम दाम, व्याल, कट हैं। वे अपने हाथों में कल्प वृक्षकी नाईं बड़े बड़े शस्त्र और भुजा लिये यथा प्राप्त कर्ममें लगे रहें। उनको धर्म और कर्मका अभाव था क्योंकि; पूर्व वासना कर्म उनको नथा और निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था। वे अपने स्थूल शरीरके स्वभाव सत्तामें स्थितनथे और अनात्मभावको भी नहीं प्राप्तभयेथे। एक स्पन्द मात्र कर्मरूप चेतना उनमेंथी वही कर्मका बीज चित्त कलना स्पन्दरूप हुईथी। वे मननात्मकशस्त्र प्रहारको रचेथे और उसीको पड़े करते परन्तु हृदय में स्पष्टवासना उनको कोई न फुरती थी केवल अवकाशमात्र सुभावसे उनकी क्रियाहो। जैसे अर्धसुपुप्त बालक अपनेअङ्गको स्वाभाविक हिलाताहै तैसेही वह वासना बिना चेष्टाकरें। वे गिरना और गिराना कुछ न जानते थे और न यही जानते थे कि,हम किसीको मारते हैं अथवा हमींमरते हैं॥ वे न भागना जानें और न जानें कि, हमजीते हैं व मरते हैं। जीतहारको भी वे कुछ न जानें केवल शस्त्रका प्रहारकरें। जैसे यंत्रीकी पुतली तागेपर चेष्टा बिना संवेदनकरती है तैसेही दाम, व्याल और कट चेष्टाकरें। वे ऐसे महाबलीथे कि, जिनके प्रहारसे पहाड़ भी चूर्णहोजावें। उनको देखके सम्बर प्रसन्नहुआ कि, ये सेनाकी रक्षाको बड़े बली हैं और इनकानाशभी उनसे न होगा क्योंकि; इनको इष्ट—अनिष्ट कुछ नहीं है। जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान और वासना नहीं है उनका नाश कैसे हो और वे कैसे भागें जैसे देवताके हाथी बड़े बलीहोके भी सुमेरु को नहीं उखार सक्ते तैसेही देवता बड़े बली भी हैं परन्तु इनको न मारसकेंगे। ये बड़े बली रक्षक हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटउत्पत्ति वर्णनन्नामपञ्चविंशतितमस्सर्ग्गः २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जब निर्णय करके सम्बरने दाम, व्याल,कट स्थापनकिये तो जब देवताओंकीसेना भूतलमेंआतीथी और सम्बरचढ़ताथा तब वे भागजातेथे। निदान सम्बरकी सेनाको देखके देवता भी समुद्र और पहाड़से उछल के निकल दोनों बड़ीसेनासहित युद्धकरनेलगे। जैसे प्रलयकालके समुद्र क्षोभते हैं और सब जलमय होजाताहै तैसेही देवता और दैत्य सबओरसे पूर्णहोगये और बड़े बाणोंसे युद्धकरनेलगे। शंखध्वनिकरके जो शस्त्रचलतेथे उनसे शब्दहों और अग्नि निकले और तारोंकीनाईं चमत्कारहो। शरीरोंसे शिरकटें और धड़कांप २के गिरपड़ें और दोनोंओरसे शस्त्रचलें पर दाम,व्याल,कट न भागें, मारतेहीजावें; जिनके प्रहार से पहाड़ चूर्णहों। सब दिशाओं में शस्त्र पूर्णहोगये और रुधिरके ऐसे प्रवाह चले कि, उनमें देवता दैत्य मरेहुये बहतेजावें और महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ। एक एक अस्त्र ऐसा चले जिससे शस्त्रोंकी नदियां निकल पड़ें। कोई अग्निरूप;कोई मेघरूप और कोई तमरूप अस्त्र चलावें; दूसरे प्रकाशरूप; कोई निद्रारूप;कोई प्रबोधरूप; कोई सर्परूप और कोई गरुड़ रूप अस्त्र चलावे। इस प्रकार वे परस्पर युद्ध करें और ब्रह्मास्त्र चलावें और शिलाकी वर्षा करें। सबपृथ्वी रक्त और मांससे पूर्ण होगई और अनेक जीवों के धड़ और शीश गिरपड़े। जैसे वृक्षसे फल गिरते हैं तैसेही देवता और दैत्यगिरे और बड़ा घोर युद्धहुआ। बहुत से गन्धर्व, किन्नर और देवता नष्टहुये और दैत्यभी बहुत मारेगये परन्तु दैत्योंकीही कुछ जीतरही। इसप्रकार मायावी सम्बरकी सेना और देवताओं का युद्धहुआ। जैसे वर्षा कालमें आकाश में मेघघटा पूर्ण होजाती है तैसेही देवता और दैत्योंकी सेना इकट्ठी होगई और दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होगये॥

इतिश्रीयोगवा०स्थितिप्र०दाम,व्याल,कटसंग्रामवर्णनंनामषड्विंशतितमस्सर्गः २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार घोरसंग्राम हुआ कि, देवता और दैत्योंके शरीर ऐसेगिरे जैसे पंखटूटेसे पर्वतगिरते हैं। रुधिरके प्रवाह चलतेथे और बड़ेशब्द होतेथे जिससे आकाश और पृथ्वी पूर्णहोगई।दामने देवताओंके समूहोंको घेरलियाऔर व्यालने पकड़के पहाड़में पीसडाला। कटने देवताओंके समूह चूर्णकिये; उनकेस्थान तोड़डाले और बड़ा क्रूर संग्राम किया। देवताओंका हाथी जो मदसे मस्तथा वह ताड़नसे क्षीण होगया तो वहांसे भयभीत होकर भागा और देवता भी भागे। जैसे मध्याह्नके सूर्य्यका बड़ा प्रकाशहोताहै तैसेही दैत्य प्रकाशवान् हुए और जैसे बाँधके टूटनेसे जलकाप्रवाह तीक्ष्ण वेगसे चलताहै तैसेही देवता तीक्ष्ण वेगसे भागे। जलके प्रवाहवत् मर्य्यादा छूट गई और दाम,व्याल,कटकी सेनाजीतगई। तब तो वे देवताओं के पीछेलगकेमारतेजावें। निदान जैसे काष्ठसे रहित अग्नि अंतर्द्धान होजाती है तैसेही

बलवान् देवता बलसेहीन होकर अन्तर्द्धान होगये और दैत्य उनको ढूंढ़ते फिरे परन्तु जैसे जालसे निकले पक्षी और बन्धनसे छूटे मृग हाथ नहीं आते तैसेही देवता भी हाथ न आये तब दाम, व्याल, कट तीनोंसेनासहित पातालमें अपने स्वामी सम्बर के पास उसकी प्रसन्नताकेलिये आये। जब देवतोंनेसुना कि, दैत्य पातालमें गये हैं तब वे विचार करनेलगे कि, किसीप्रकार इनसे ईश्वर हमारी रक्षाकरे । ऐसीचिन्ता से आतुरहुये देवतोंको देख ब्रह्माजी जिनका अमिततेजहै और सुन्दररक्तवस्त्र पहिने हैं देवताओंके निकटआये और जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादलमें चन्द्रमाशोभताहै तैसेही प्रकाशवान् ब्रह्माजी को देखके इन्द्रादिक देवताओं ने प्रणाम किया और सम्बर दैत्यकी शत्रुतासे कहा कि, हे त्रिलोकी के ईश्वर ! हम आपकी शरण आये हैं; हमारी रक्षा करो । सम्बर दैत्यने हमको बहुत दुःख दियाहै और उसकेसेनापति दाम, व्याल, कट जो बड़े दैत्य हैं किसीप्रकार हमसे नहीं मारेजाते । उन्होंने हमारी सेना बहुतचूर्णकीहै इसनिमित्त आप इनके मारनेका उपाय हमसेकहिये। तब संपूर्ण जगत् पर दयाकरनेवाले ब्रह्माजीने शान्तिके कारण वचनकहे । हे अमरेश ! ये दैत्य अभीतो नष्ट न होंगे, जब इनको अहंकार उपजेगा तब ये मरेंगे और तुमहीं इनको जीतोगे । मैंने इनकी भविष्यत देखी हैं; ये दैत्य युद्धमें भागना नहीं जानते और मरने, मारनेका ज्ञानभी इनको नहीं है ये सम्बर दैत्यकी मायासे रचे हैं इनकानाश कैसेहो । जिसको 'अहं' 'मम' का अभिमानहो उसीका नाशभी होताहै पर ये तो 'अहं' 'ममादिक' शत्रुओंको जानतेही नहीं इनका नाश कदाचित् न होगा । जब इनको अहङ्कार उपजेगा तब इनकानाशहोगा इसलिये अहङ्कार उपजानेका उपायमें तुम-से कहताहूं । तुम उनकेसाथ युद्ध करतेरहो और इसप्रकार युद्धकरो कि,कभी उनके सम्मुखरहो, कभी दाहिनेरहो, कभी बायेंरहो और कभी भागजावो । इस प्रकार जब तुम बारम्बार करोगे तब उनके युद्धके अभ्यासवशसे अहंकारका अंकुर उपजेगा और जब अहंकारका चमत्कार हृदयमें उपजा तब उसका प्रतिबिम्बभी देखेंगे जिस से यह वासनाभी फुरआवेगी कि; हम यहहैं,हमको यह कर्त्तव्यहै,यह ग्रहणकरने योग्य है और यह त्यागनेयोग्यहै। तब वे आपको दाम, व्याल,कटजानेंगे और तुम उनको वशकरलोगे और तुम्हारी जयहोगी। जैसे जालमें फँसाहुआपक्षी वशहोता है तैसेही वे भी अहङ्कार-करके वशहोंगे अभी वशनहींहोते । वे तो सुखदुःखसे रहित बड़े धी-र्य्यवानहैं अभी उनकाजीतना कठिनहै। हे साधो! जोपुरुष वासनाकी तांतसे बँधेहुये हैं और कीटके कार्य्यकेवशहैं वे इसलोकमें वश होजातेहैं और जो बुद्धिमान् पुरुष निर्वासनिकहैं और जिनकी सर्वत्र असंशक्त बुद्धिहै,जो किसीमें बन्धवान् नहींहोते और इष्ट अनिष्टमें समभाव रहतेहैं वे किसीसे जीतेनहीं जाते। जिनके हृदयमें वास-

नाहै वे इसीरस्सीसे बँधेहुयेहैं। जिनकी देहमें अभिमानहै वेचाहो सर्वशास्त्रोंके वेत्ता भीहोंतोभी उनको एकवालकभी जीतलेवे सब आपदाओंके पात्रहैं। यहदेहमात्र परिच्छिन्नरूपहै,जो पुरुष उसे अपना जानताहै और उसमें भावती भावना करताहै वह कदाचित् सर्वज्ञहो तौभी कृपणताको प्राप्तहोताहै—उसमें उदारता कहांहै। सबका अपना स्वरूप अनन्त आत्मा अप्रमेयहै;जिसको देहादिकमें आत्माभिमान हुआहै उस ने आपको आपही दीनकियाहै। जबतक आत्मतत्त्वसे भिन्न त्रिलोकीमें कुछभी सतभासताहै तबतक उपादेय बुद्धिहोतीहै और भावनासे बँधा रहताहै। संसारमें सत भावना करनी अनन्त दुःखका कारणहै और संसारमें असत्बुद्धि सुखका कारणहै। हेसाधो! जबतक दाम,व्याल,कटको जगत्के पदार्थोंमें आस्थाभाव नहींहोती तबतक तुमउनको, जैसे मक्खी वायुको नहींजीतसक्ती तैसेही न जीतसकोगे। जिसको देहमें अहंभावना और जगत्में सतबुद्धिहोती है वह जीवहै और वही दीनताको प्राप्त होताहै।वह चाहेकैसा बलीहो उसको जीतना सुगमहै क्योंकि,वह तो तुच्छ कृपणहै। जिसके अन्तष्करणमें वासनानहीं है और मक्षिकावत्है तौभी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ होजाताहै। हे देवताओ! जो वासना संयुक्तहै वह परमकृपणताको प्राप्तहोताहै—वही गुणी गुणोंसे बँधजाता है। जैसे मालाके दानेमें छिद्रहोताहै तो तागेसे पिरोयाजाता है और जो छिद्रसे रहितहै वह पिरोयानहीं जाता तैसेही जिसका हृदय वासनासे विधगयाहै उसके हृदयमें गुण अवगुण प्रवेशकरते हैं और जो निर्वंधहै उसकेभीतर प्रवेश नहीं करते। इससे जिसप्रकार 'अहं' 'इदं' आदिक वासना दाम,व्याल,कटके भीतर उपजेवही उपायकरो तब तुम्हारी जयहोगी। जिसजिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीवप्राप्त होते हैं वही तृष्णारूपी कञ्जका वृक्षहै, उसीसे आपदाको प्राप्तहोते हैं; इससेरहित आपदाका अभाव होजाताहै। जो वासनारूपी तांतसेबँधेहुयेहैं वह अनेकजन्म दुःखपावेंगे;जो बलवान् और सर्वज्ञ कुलका बड़ाहै वहभीजो तृष्णासंयुक्त है तो बांधाहै। जैसे सिंह जंजीरसे पिंजड़ेमें बँधाहै तो उसकाबल और बड़ाई किसी कामनहीं आती तैसेही जो तृष्णासे बँधाहै सो तुच्छहै। जिसको देहमात्रमें अहंभाव है और जिसके हृदयमें तृष्णा उत्पन्नहोतीहै वह पुरुष ऐसाहै जैसा पंखतागेसे बँधा हो और उसको बालकभी खींचले। यमभी उसीको वशकरताहै और जो निर्वासनिक पुरुषहै उसको कोई नहीं मारसक्ता-जैसे आकाशमें उड़तेपक्षीको कोई नहीं पकड़सक्ता। इससे शस्त्रयुद्धकोत्यागो और उनकोवासना उपजाओ,तब वे वशहोंगे। हेइन्द्र! जिसको 'अहं' 'मम' 'इदं' आदिक वासनानहींहै और रागद्वेष से जिसका अन्तष्करण क्षोभवान् नहीं होता उसको शस्त्र और अस्त्रसे कोईनहीं जीतसक्ता। इससे दाम,व्याल, कटको और किसी उपायसे न जीतसकोगे। युद्धके अभ्याससे जबउनको अहंकार

उपजाओगे तब वह तुम्हारे वशहोंगे । हे साधो ! ये तो सम्बर दैत्यके रचेहुये यंत्र पुरुषहैं, इनके हृदयमें कोई वासनानहीं है, जैसे उसनेरचे हैं तैसेही ये निर्वासनिक पुरुषहैं । जबइनको युद्धका अभ्यास कराओगे तबइनको अहंकार वासना उपजआवेगी । यह तुमको मैंन वश करनेकी परमयुक्ति कही है । जबतक उनके अन्तष्करण में वासनानहीं फुरती तबतक तुमसे वे अजीतहैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदामोपाख्यानेब्रह्मवाक्य वर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः २७ ॥

वशिष्ठजी बोले.हे रामजी ! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजके और शब्दकरके लीनहोताहैं तैसेही ब्रह्माकहके जब अन्तर्द्धान होगये तब देवता अपनी वांछित दिशाओं कोगये और कईदिन अपने स्थानमें रहे । फिर अपनेकल्याणके निमित्त उनके नाश करने को उठकेयुद्धको चले, प्रथम उन्होंने शंखबजाये जिनसे प्रलयकालके मेघोंकेगर्जने के समान शब्दसे सबस्थान पूर्णहोगये निदान पाताल छिद्रसे शब्द सुनके दैत्य निकले और आकाशमार्ग से देवताआये और युद्धहोनेलगा । बरछी, बाण, मुद्गर, मुशल,गदा,चक्र,वज्र,पहाड़,वृक्ष, सर्प,अग्नि आदिक शस्त्र अस्त्र परस्पर चलनेलगे और ऐसे शस्त्र अस्त्रके प्रवाहचले कि,देश प्रदेशमें पहाड़ों और वृक्षोंकी नदियांचलीं। चक्र,मुशल, त्रिशूल आदिक शस्त्रऐसे चले जैसे गङ्गाका प्रवाहचलताहै । देवताओं और दैत्यों के समूह नष्टहोगये अङ्गफटगये, शीश भुजा कटगये और जैसे समुद्रके उछलनेसे पृथ्वी जलसे पूर्णहोजातीहै तैसेही रुधिरसे पृथ्वी पूर्णहोगई और आकाश दिशामें अग्निका तेजऐसा बढ़गया जैसे प्रलयकालमें द्वादशसूर्य्य का तेजहोता है । बड़े पहाड़ोंकी वर्षाहोनेलगी और रुधिरके प्रवाह में पहाड़ ऐसे भ्रमते फिरते थे जैसे समुद्र में तरङ्ग और भँवर फिरते हैं । हे रामजी ! ऐसायुद्ध हुआ कि, क्षणमें पहाड़ और शस्त्र के प्रवाह; क्षणमें सर्प; क्षणमें गरुड़ दीखें और अप्सरागण अन्तरिक्ष में भासें; क्षणमें जलमय होजावें; क्षणमें सब स्थान अग्नि से पूर्णहो जावें, क्षणमें सूर्य्य का प्रकाश भासे और क्षणमें सर्व ओर से अन्धकार भासे । निदान महाभयानक युद्धहोने लगा । दैत्य आकाशमें उड़२ के युद्ध करें और देवता वज्रआदिक शस्त्र चलावें और जैसे पंखसे रहित पहाड़ गिरते हैं तैसेही दैत्यों के अनेक समूह गिरके भूमिलोकमें आपड़े और उनमें किसीका शिर, किसी की भुजा और किसीके हाथ पैर कटे हैं । वृक्षों और पहाड़ों के समान उनके शरीर गिर २ पड़े और अनेक संकट को देवता और दैत्य प्राप्तहुये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसुरासुरयुद्ध वर्णन न्नामअष्टाविंशतितमस्सर्ग्गः २८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवताओंका धैर्य्य नष्ट होगया और युद्धत्याग के अन्तर्द्धान हुये और पैंतीस वर्षके उपरान्त फिर युद्ध करनेलगे। कभी पांच वा सात; कभी आठ दिन के उपरान्त युद्ध करतेथे और फिर छिपजातेथे ऐसे विचारकर छल से वे उन से युद्ध करें. कभी दाम, व्याल, कटके निकट जावें; कभी दाहिने,कभी बांयें कभी आगे और कभी पीछे दौड़नेलगे और इधरउधर देखके मारनेलगे। इसप्रकार जब देवताओं ने बहुत उपाय किया तब युद्धके अभ्यास से दाम, व्याल, कट भी देवताओं के पीछे दौड़नेलगे और इधर उधर देखनेलगे और अपने देहादिक में उनको अहंकार फुरआया। हे रामजी! जैसे निकटता से दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है दूरका नहीं पड़ता, तैसेही अतिशय अभ्यास से अहङ्कार फुरआता है-अन्यथा नहीं फुरता। जब अहङ्कार उनको फुरा तब पदार्थकी बासना भी फुरआई और फिर यह फुरा कि, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जीते रहें; इस इच्छासे वे दीनभावको प्राप्तहुये और भयपानेलगे कि, इसप्रकार हमारा नाशहोगा; इसप्रकार हमारी रक्षाहोगी; वही उपायकरें जिससे हम जीतेरहें। इस प्रकार आशाकीफांस में बँधेहुये वे दीनभावको प्राप्तहुये और आपको देहमात्र में आस्था करनेलगे कि, देहरूपीलता हमारी स्थिररहे;हम सुखीहों, इसवासना संयुक्त हो और पूर्वकाधैर्य्य त्यागके वे जाननेलगे कि, यह हमारेशत्रु नाशकर्त्ता हैं, इनसे किसीप्रकार बचें। उनकाधैर्य्य नष्टहोगया और जैसे जलबिना कमलकी शोभाजाती रहती है तैसेही इनकी शोभाजातीरही; खानेपीनेकी वासना फुरआई और संसारकी भयानक गतिको प्राप्तहुये। तब वे आश्रय लेकर युद्धकरनेलगे और ढाल आदिक आगेरक्खें। वे अहङ्कारसे ऐसे भयभीतहुये कि, ये हमको मारते हैं,हम इनको मारते हैं। इसचिन्ता में इन सबके हृदय फँसगये और शनैःशनैः युद्ध करनेलगे। जब देवता शस्त्रचलावें तब वे बचजावें और भयभीत होकरभागें। अहङ्कारके उदय होने से उनके मस्तकपर आपदाने चरणरक्खा और वे महादीन होगये और ऐसे होगये कि, यदि कोई उनके आगेपड़े तौभी उसको न मारसकें। जैसे काष्ठसे रहित अग्निक्षीरको नहीं भक्षणकरती तैसेही वे निर्बल होगये। उनके अङ्गकाटे जावें तो वे भाग जावें और जैसे समानशूर युद्धकरते हैं तैसेही युद्धकरनेलगे। हे रामजी! कहांतककहूं वे मरनेसे डरनेलगे और युद्ध न करसके तब देवता वज्र आदिकसे उनको प्रहारकरने लगे जिनसे . चूर्णहोगये और भयभीतहोकर भागे। निदान दैत्यों की सबसेना भागी और जो जो देश देशान्तर से आये थे वहभी सब भागे; कोई किसी देशको, कोई किसी देशको, पहाड़, कन्दरा और जलमें चले गये और जहां जहां स्थान देखा वहां वहां चलेगये। निदान जब दैत्य भयभीत

होकर हारे और देवताओंकी जीतहुई तो दैत्य भागके पातालमें जा छिपे॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्यानेऽसुरहनननाम एकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः २६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब देवता प्रसन्न हुये और देवताओंका भय पाके दाम, व्याल, कट पाताल में गये और सम्वरसेभी डरे । सम्वर प्रलय कालकी प्रज्व-लित अग्नि का रूपथा उसका भयकर दाम, व्याल, कट सातवें पातालमें गये और दैत्योंके मण्डलको छेदके जहां यम किंकर रहते हैं उसमें कुकुहा नाम होकर जारहे । नरकरूपी समुद्रके आपालक यम किंकरों ने दयाकरके इनको बैठाया और जैसे पापीको चिन्ता प्राप्त होती है तैसेही इनको स्त्रियां प्राप्तहुईं उनकेसाथ सातवें पाताल में रहे । फिर इनके पुत्रपौत्रादिक वड़ी सन्तान हुई और उन्हों ने सहस्र वर्ष वहां व्यतीत किये । वहां उनको यह वासना दृढ़होगई कि,'यह मैंहूं';'यहमेरी स्त्रीहै' और पुत्रकलत्र बांधवोंमें बहुत स्नेह होगया । एककालमें वहां अपनी इच्छासे धर्मराज नरकके कुछकामके लिये आया और उसको देख के सब किंकर उठखड़ेहुये और प्रणामकिया पर दाम, व्याल, कटने जो उसकीवड़ाई न जानते थे उसे किंकर समान जानके प्रणाम न किया । तब यमराज ने क्रोधकिया और समझा कि, ये दुष्ट मानी हैं इनको शासना देनीचाहिये । इसप्रकार विचार करके यमने किङ्करको सैनकी कि, इनको परिवारसंयुक्त अग्निकी खाई में डालदो यह सुन वे रुदन करने और पुकारने लगे पर इनको उन्हों ने डालदिया और परिवारसंयुक्त नरककी अग्निमें वे ऐसे जले जैसे दावाग्नि में पत्र, टास, फूल, फल संयुक्त वृक्ष जलजाता है । तब मलीन वासनासे वे क्रांतदेशके राजाके धीवरहुये और जीवों की हिंसाकरतेरहे । जब धीवरका शरीर छूटा तब हाथीहुये; फिर चीलहुये; फिर बगुले हुये; फिर तिरगत देशमें धीवरहुये और फिर वर्वरदेशमें मच्छरहुये और मगधदेश में कीटहुये । हे रामजी ! इसप्रकार दाम, व्याल, कट; तीनोंने वासनासे अनेकजन्म पाये और फिर काश्मीर देशमें एकताल है उसमें तीनों मच्छरहुये हैं । वनमें अग्नि लगीथी इसलिये उसका जलभी सूखगया है, अल्पजल उग्णरहा है उसमें रहते हैं और वहीजल पानकरते हैं; मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो सम्पदा है उसकोभी नहीं भोगते–चिन्ता से जलते हैं । हे रामजी ! अज्ञानसे जीव अनेकवार जन्मतेमर-ते हैं । जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटते हैं और जलके भँवर में तृणभ्रमताहै तैसेही वासनासे भ्रमसे वे फिरें । अब तक उनको शान्ति नहीं प्राप्तहुई । अहङ्कार वासना महादुःखका कारण है; इसके त्यागसे सुख है अन्यथा सुख कदाचित्नहीं ॥
श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटजन्मान्तरवर्णनन्नामत्रिंशत्तमस्सर्गः ३०

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रबोधके निमित्त मैंने तुमको दाम,व्याल,कटका न्याय कहाहै; उनकी नाईं तुम मतहोना। अविवेकीका निश्चय ऐसा है कि, अनेक आपदाको प्राप्त करता है और अनन्त दुःख भुगाता है; कहांसम्बर दैत्यकी सेनाके नाथ और देवतोंके नाशकर्त्ता और कहां तप्तजलकेमच्छहो जर्जरीभावको प्राप्तहुये; कहां वहधैर्य और बल जिससे देवताओंको नाशकरना और भगाना और आप चलायमान न होना और कहां क्रांतदेशके राजाके किंकर धीवर होना! कहां वह निरहंकारचित्त,शांति, उदारता और धैर्य्य और कहां वासनासे मिथ्या अहंकारसे संयुक्त होना। इतने दुःख और आपदा केवल अहङ्कारसे हुये। अहङ्कार से संसाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढ़ती है। संसाररूपी वृक्षका बीज अहङ्कार है। जबतक अहंकार है तब तक अनेकदुःख और आपदा प्राप्त होतीहैं; इससेतुम अहंकारको यत्नकरके मार्ज्जनकरो। मार्ज्जन करना यहहै कि, अहंवृत्तिको असत्रूप जानो कि, 'मैं कुछ नहीं'। इसमार्ज्जनसे सुखी होगे। हे रामजी! आत्मरूपी अमृत का चन्द्रमा है, और शीतल और शांतरूप उसका अङ्गहै; अहंकाररूपी मेघसे वह अदृष्ट हुआ नहीं भासता। जब विवेकरूपी पवनचले तब अहंकार बादलनष्टहो और आत्मारूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासे। जब अहंकाररूपी पिशाच उपजा तब तो दाम, व्याल,कट तीनों मायारूप दानवसत्होके अनेक आपदाओंको भोगते हैं। अब तक वे काश्मीरके तालमें मच्छरूपसे पड़े हैं और सिवालके भोजन करनेको यत्न करते हैं;जो अहंकार न होता तो इतनीआपदा क्यों पाते? रामजी बोले,हे भगवन्! सत्का अभाव नहीं होता और असत्का भावनहीं होता। असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसेहुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकारहै कि, जो सत् नहीं सो किसीको कभी कुछ भान नहीं होता परन्तु कोई सत् असत् को प्राप्तहुआ देखताहै औरकोई असत्को नहीं हुआ देखताहै—जो स्थितहुआहै। इसी तुम्हारे कहनेसे मैं युक्तिसे तुमको प्रबोध करूंगा। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! हम, तुम जो ये सब हैं वे सत्यरूपहैं और दामादिक मायामात्र असत्रूपथे वे सत्कैसे हुये,यह कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप मृगतृष्णाके जलवत् असत्से स्थितहुयेथे तैसेही तुम, हम, देवता, दानव सम्पूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासताहै वास्तवमें कुछनहीं। जैसे स्वप्नेमें जो अपना मरनाभासताहै वह असत्रूपहै तैसेही हम, तुम आदिक यह जगत् असत्रूप है। जैसे स्वप्नेमें जो अपने मरे बान्धव आन मिलतेहैं और प्रत्यक्ष चर्चा करते भासतेहैं वे असत्रूप होतेहैं; तैसेही यह जगत् भी असत्रूपहै। हे रामजी! ये मेरे वचन मूढ़को विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते क्योंकि; उनके हृदयमें संसारका सद्भाव दृढ़ होगयाहै और अभ्यास बिना

इस निश्चयका अभाव नहीं होता । जैसा निश्चय किसीके हृदयमें दृढ़ होरहा है वह दृढ़ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूरनहीं होता । जिसको यह निश्चयहै कि, जगत् सत् है वह मूर्ख उन्मत्तहै और जिसके हृदयमें जगत्का सद्भाव नहीं होता वह ज्ञानवान् है,उसे केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होताहै और अज्ञानीको जगत् सत्भासता है अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी नहीं जानता और ज्ञानी के निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता । जैसे मदमत्तके निश्चयको अमत्तनहीं जानता और अमत्तके निश्चय को मत्तनहीं जानता तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जैसे प्रकाश और अन्धकार और धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं तैसेही ज्ञानी और अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता । जिसके चित्तमें जो निश्चय है उसको जब वही अभ्यास और यत्नकरके दूरकरे तब दूर होताहै अन्यथानहीं होता । ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयको दूर नहीं करसक्ता; जैसे मृतककी जीवकलाको मनुष्य ग्रहण नहीं करसक्ते कि, उसके निश्चयमें क्या है। जो ज्ञानवान् है उसके निश्चयमें सर्व ब्रह्मकाभान होता है और उसे जगत् द्वैत नहीं भासता और उसीको मेरे वचन शोभते हैं । आत्मअनुभव सर्वदा सत्रूपहै और सब असत् पदार्थ हैं । ये बचन प्रबुधके विषय हैं और उसीको शोभते हैं । अज्ञानीको जगत् सत्भासता है इससे ब्रह्मवाणी उसको शोभा नहीं देती । ज्ञानीको यह निश्चय होता है कि,जगत् रंचकमात्रभी सत्यनहीं, एक ब्रह्महो परमसत्तास्वरूप है । यह अनुभव बोधवान्काहै, उस केनिश्चयको कोई दूरनहीं करसक्ता कि, परमात्मासे व्यतिरेक कुछनहीं । जैसे सुवर्ण में भूषणभाव नहीं तैसेही आत्मामें सृष्टिभाव नहीं । अज्ञानीको पंचभूतसे व्यतिरेक कुछ नहीं भासता, जैसे सुवर्ण में भूषण नाममात्र है तैसेही वह आपको नाममात्र जानता है । सम्यक्दर्शीको इससे विपरीत भासताहै । जो पुरुषहोके कहे, 'मैं घटहूं' तो जैसे यह निश्चय उन्मत्तहै तैसेही हम तुम आदिक भी असत्रूप हैं; सत्वही है जो शुद्ध, संवित्बोध, आकाश, निरञ्जन, सर्वगत,शान्तरूप, उदय-अस्त से रहित है।जैसे नेत्र दूषणवाले को आकाशमें तरवरे भासते हैं तैसेही अज्ञानीको जगत् सत् रूप भासताहै । आत्मसत्तामें जैसाजैसा किसीको निश्चय होगया है तैसाही तत्काल हो भासता है , वास्तवमें जैसे दामादिक थे तैसेही तुम हमआदिक जगत् हैं और अनन्त चेतन आकाश सर्वगत निराकार में स्फूर्त्ति है वही देहाकारहो भासती है। जैसे संवित्का किंचन दामादिक निश्चयसे आकारवान् हो भासे तैसेही हमतुम भी फुरनेमात्रहैं और संवेदनके फुरनेहीसे स्थितहुये हैं। जैसे स्वप्ननगर और मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासते हैं । प्रबुधको सब चिदाकाशही भासताहै और सब मृगतृष्णा और स्वप्ननगरवत् भासता है ।

जो आत्मा की ओर जागे हैं और जगत्‌की ओर सोये हैं वे मोक्षरूप हैं; और जो आत्माकी ओर से सोये और जगत्‌की ओर जागे हैं वे अज्ञानी बन्धरूप हैं पर वास्तवमें न कोई सोये हैं, न जागे हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश जगत् रूपहोके भासता है। निर्वाणसत्ताही जगत्‌लक्ष्मीहोकर स्थितहुईहै और जगत्‌निर्वाण रूप है—दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं। जैसे तरु और विटप एकही वस्तुके दोनाम हैं तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तुके पर्याय हैं। जैसे आकाशमें तरवरे भासते हैं और हैं नहीं केवल आकाशही है तैसेही अज्ञानीको ब्रह्ममें जो जगत् भासतेहैं वे हैं नहीं ब्रह्महीहै। जैसेनेत्रमें तिमिर रोगवालेको जो तरवरे भासते हैं वे तरवरे नेत्ररोगसे भिन्ननहीं तैसेही अज्ञानीको अपनाआपही अन्यत्‌रूप चिदाकाशस्थानमें भासताहै वह चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूपहै और उससे भिन्न जगत् असत्‌है। सत्यरूप, एक, विस्तृत आकार, महा शिलावत्, घनस्वच्छ, निस्पन्द, उदय अस्तसे रहित वहीसत्ता है इसलिये सर्व कलनाको त्यागकर उसी अपने आपमें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनामएकात्रिंशत्तमस्सर्गः ३१॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! असत् सत्‌की नाईं होके जो स्थितहुआहै वह बालक को अपनी परछाहींमें वेतालवत् भासताहै सो जैसे हुआ तैसे हुआ, अब आप यह कहिये कि; दाम, व्याल, कटके दुःखका अन्त कैसेहोगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उनको यमराजने अग्निमें भस्म कराया तब यमराजसे किङ्करोंने पूंछा कि, हे प्रभो! इनका उद्धार कबहोगा? तब यमराजने कहा, हे किङ्करो जब ये तीनों आपसमें बिछुर-जावेंगे और अपनी सम्पूर्णकथा सुनेंगे तब निःसंदेहहोकेमुक्तहोंगे यहीनीतिहै। रामजी ने फिर पूंछा, हे भगवन्! वह वृत्तान्त कहां सुनेंगे, कब सुनेंगे और कौन निरूपण करेगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काश्मीर देशमें कमलोंसे पूर्ण एक बड़ा तालहै और उसके निकट एक छोटातालहै उसमें वे चिरपर्यन्त बारम्बार मच्छ होंगे और मच्छका शरीर त्यागकरके सारस पक्षी होके कमलोंके तालपर रहकर कमल, कमलिनी और उत्पला-दिक फूलोंमें विचरेंगे और सुगन्धको लेते चिरकाल व्यतीत करेंगे। दैव संयोगसे उन के पापनष्ट होंगे और बुद्धि निर्मल हो आवेगी तब तीनों आपसमें बिछुर जावेंगे और युक्तिसे मुक्तिपावेंगे। जैसे राजस, तामस, सात्विक गुण आपमें स्वेच्छित बिछुर जाते हैं तैसेही वे भी स्वेच्छितबिछुरजावेंगे। काश्मीर देश में एक पहाड़ है उसके शिखर पर एक नगर बसेगा तिसकानाम प्रद्युम्न होगा और उस शिखरपर कमलों से पूर्ण एकतालहोगा जहां राजाकाएक स्थानहोगा और ईशान कोणकी ओर उसका मन्दिर होगा। उस मन्दिरकेछिद्रमें व्याल नामक दैत्य आलय बना चिड़िया होकर रहेगा और निरर्थक शब्द करेगा। उसकालमें श्रीशङ्कर नाम राजा गुण और भूतिसे

सम्पन्न मानों दूसरा इन्द्र होगा और उसके मन्दिरकी छतिकी कड़ीकेछिद्रमें दाम नाम दैत्यमच्छरहोकर भूंभूं शब्दकरता विचरेगा। कटनाम दैत्य वहांक्रीड़ाकापक्षीहोगा और रत्नोंसे जड़ेहुये पिंजड़ेमेंरहेगा। उस राजाका नरसिंह नाम मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् होगा। जैसे हाथमें आंवला होताहै तैसेही उस मन्त्रीकोबन्ध और मुक्तिकाज्ञान प्रसिद्धहोगा। वह मन्त्री राजाके आगे दाम, व्याल, कटकी कथा श्लोक बांधकर कहेगा तब वह करकर नाम पक्षी अर्थात् कट दैत्यको पिंजड़ेमें सुननेसे अपना वृत्तान्त सब स्मरण होगा और उसको विचारेगा तब उसका मिथ्या अहंकार शान्तहोगा और वह परम निर्वाण सत्ताको प्राप्त होगा। इसी प्रकार राजाके मन्दिरमें चिड़िया हुआ व्यालनाम दैत्यभी सुनकर परमनिर्वाण सत्ताको प्राप्त होगा और लकड़ीके छिद्रमें मच्छरहुआ दाम नाम दैत्यभी मोक्षहोगा। हे रामजी! यह सम्पूर्ण क्रम मैंने तुमसे कहाहै। यह संसार भ्रम मायामयहै और अत्यन्त भास्वर प्रकाशरूप भासता है पर महाशून्य और अविचार सिद्धहै विचार करके ज्ञानहुयेसे शान्त होजाताहै-जैसे मृगतृष्णाका जल भलीप्रकार देखेसे शान्त होजाताहै। यद्यपि अज्ञानी बड़े पदको प्राप्त होताहै तौ भी मोहसे अधो से अधो चलाजाता है-जैसे दाम, व्याल, कट महाजालमें पड़े थे। कहां तो वह बल कि, भौंह टेढ़ी करनेसे सुमेरु और मन्दराचलसे पर्वत गिरजावें और कहां राजाके गृहमें काष्ठके छिद्रमें मच्छर हुये; कहां वह बल जिसके हाथकी चपेटसे सूर्य और चन्द्रमा गिर पड़ें और कहां प्रद्युम्न पहाड़के गृह छिद्रमें चिड़िया होना; कहां वह बल जो सुमेरु पर्वतको पीले फूलकीनाईं लीला करके उठालेना और कहां पहाड़के शिखरपर गृहमें पक्षी होना। एक अज्ञानरूपी अहंकारसे इतनी लघुताको जीव प्राप्त होते हैं और अज्ञानसे रञ्जित हुये मिथ्याभ्रम देखते हैं। प्रकाशरूप चिदाकाश सत् बिना इनको भासताहै और अपनी वासनाकी कल्पनासे जगत् सत्रूप भासता है। जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमसे सत्भासता है तैसेही अपनी कल्पनासे जगत् सत्भासता है। इस संसारसमुद्रको कोई नहीं तरसक्ता जो पुरुष शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक हुआ है और जो संसार निरूपण शास्त्रका, जिसका प्रकाशरूप शब्दहै, आश्रयकरता है यह संसारके पदार्थों को शुभरूप जानताहै; इससे नीचे गिरता है-जैसे कोई गढ़े को जलरूप जानके स्नानके निमित्तजावे और गिरपड़े। हे रामजी! अपने अनुभवरूपी प्रसिद्धमार्ग में जो प्राप्तहुये हैं उनका नाश नहीं होता वे सुखसे स्वच्छन्द चलेजाते हैं-जैसे पथिक सूधेमार्ग में चलाजाताहै। ब्रह्मनिरूपक शास्त्र निर्वेदमार्ग है और संसार निरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग हैं। यह जगत् असत्रूप और भ्रान्तिमात्र है; जिसकी बुद्धि इसीमें है कि, ये पदार्थ और ये सुख मुझको प्राप्त हों वे इसप्रकार संसार के विषय की तृष्णा करते हैं

और वे अभागी हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् घास और तृणकी नाईं तुच्छ भासता है। जिसपुरुष के हृदयमें परमात्माका चमत्कार हुआहै वह इस ब्रह्माण्ड खण्डलोक और लोकपालोंको तृणवत् देखता है। जैसे जीव आपदाको त्यागताहै तैसेही उसके हृदयमें ऐश्वर्य्यभी आपदारूप त्यागने योग्यहै। इससे हृदयसे निश्चयात्मक तत्त्वमें रहो और वाहर जैसा अपना आचारहै तैसा करो। आचारका व्यतिक्रम न करना क्योंकि व्यतिक्रम करनेसे शुभ कार्य्य भी अशुभ होजाताहै—जैसे राहु दैत्य ने अमृतपान करनेका यत्न कियाथा पर व्यतिक्रम से शरीर कटा। इससे शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारणहै। सन्तजनोंकी सङ्गति और सत्शास्त्रोंकेविचार से बड़ा प्रकाश प्राप्तहोता है। जो पुरुष इनको सेवता है वह मोह अन्धकूप में नहीं गिरता। हे रामजी! वैराग्य, धैर्य्य, सन्तोष, उदारता आदिक गुण जिसके हृदयमें प्रवेश करते हैं वह पुरुष परमसम्पदावान् होता है और आपदा को नष्ट करता है। जो पुरुष शुभगुणों से सन्तुष्ट है और सत् शास्त्र के श्रवण राग में राग है और जिसे सत्की वासना है वही पुरुष है; और सब पशु हैं। जिसमें वैराग्य, सन्तोष, धैर्य्य आदि गुणों से चांदनी फैलती है और हृदयरूपी आकाश में विवेकरूपी चन्द्रमा प्रकाशता है वह पुरुष शरीर नहीं मानों क्षीरसमुद्र है; उसके हृदय में विष्णु विराजते हैं। जो कुछ उसको भोगनाथा वह उसने भोगा और जो कुछ देखनाथा वह देखा फिर उसे भोगने और देखने की तृष्णा नहीं रहती। जिस पुरुषका यथाक्रम और यथाशास्त्र आचार और निश्चय है उस को भोगकी तृष्णा निवृत्त होजाती है और उस पुरुषके गुण आकाश में सिद्ध, देवता और अप्सरा गान करते हैं और वही मृत्युसे तरताहै भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते। हे रामजी! जिन पुरुषोंके गुण चन्द्रमाकी नाईं शीतलहैं और सिद्ध और अप्सरा जिनका गान करते हैं वही पुरुष जीते हैं और सब मृतकहैं। इससे तुम परम पुरुषार्थका आश्रय करो तब परमसिद्धताको प्राप्त होगे। वह कौन वस्तुहै जो शास्त्र अनुसार अनुद्वेग होकर पुरुषार्थ कियेसे प्राप्तनहो? कोई वस्तु क्यों न हो अवश्यमेव प्राप्तहोतीहै यदि चिरकाल व्यतीत होजावे और सिद्धि नहो तौभी उद्वेग नकरे तो वह फल परिपक्क होकर प्राप्त होगा—जैसे वृक्षसे जब परिपक्क होके फल उतरता है तब अधिक मिष्ट और सुखदायक होता है। यथा शास्त्रव्यवहार करनेवाला उसपद को प्राप्तहोता है जहां शोक, भय और यत्न सब नष्ट होजाते हैं और शांतिवान् होताहै। हे रामजी! मूर्खजीवों की नाईं संसारकूप में मतगिरो! यह संसार मिथ्या है। तुम उदार आत्मा हो; उठखड़े हो और अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो और इस शास्त्रको विचारो। जैसे शूर रणमें प्राण निकलनेलगे तो भी

नहीं भागता और शस्त्र को पकड़ के युद्ध करता है कि, अमर पद प्राप्तहो; तैसेही संसाररूपी रण में शस्त्र पुरुषार्थ है; यही पुरुषार्थ करो और शास्त्र को बिचारो कि, कर्त्तव्य क्या है। जो विचार से रहित है वह दुर्भागी दीनता और अशुभ को प्राप्त करनेवालाहै। महामोहरूपी घननिद्राको त्याग करके जागो और पुरुषार्थको अङ्गीकार करो जो जरा-मृत के शांतिका कारण है और जो कुछ अर्थ है वह सब अनर्थ रूप है; भोग सब रोगके समान हैं और सम्पदा सब आपदारूप हैं ये सब त्यागने योग्य हैं। इसलिये सत्मार्ग्ग को अङ्गीकार करके अपने प्रकृत आचार में बिचरो और शास्त्र और लोक मर्य्यादाके अनुसार व्यवहार करो क्योंकि, शास्त्रके अनुसार कर्म्म का करना सुखदायक होता है। जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है उसका संसार दुःख नष्ट होजाता है और आयुर्व्बल, यश, गुण और लक्ष्मीकी वृद्धि होतीहै। जैसे बसन्तऋतुकी मञ्जरी प्रफुल्लितहोतीहै तैसेही वह प्रफुल्लित होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे दाम,व्याल,कटोपाख्याने
देशाचारवर्णनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ३२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व्वदुःखका देनेवाला और सर्व्व सुखका फल, सब ठौर, सब कालमें, सब को अपने कर्म्म के अनुसार होताहै। एक दिन नन्दीगण ने एक सरोवरपरजाके सदाशिवका आराधनकिया और सदाशिव प्रसन्नहुये तो उसने मृत्यु को जीता, प्रथम नन्दी था सो नन्दीगण नाम हुआ और मित्र, बांधव सब को सुख देनेवाला अपने स्वभावसे यत्न करके हुआ। शास्त्र के अनुसार यत्न करने से दैत्य क्रमसे देवताओंको जो सबते उत्कृष्ट हैं मारते हैं। मरुत राजा के यज्ञमें संव्रत नामक एक महाऋषि आया और उसने देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि अपने पुरुषार्थ से रची-मानों दूसरा ब्रह्मा था और विश्वामित्र ने वारम्वार तपकिया और तपकी अधिकता और अपनेही शुद्धाचार से राजर्षिसे ब्रह्मर्षिहुये। हे रामजी! उपमन्युनाम एक दुर्भागी ब्राह्मण था और उसको अपने गृह में भोजन की सामान्य प्राप्तिहोती। निदान एकदिन उसने एक गृहस्थकेघर पितासंयुक्त दूध, चावल और शर्करा सहित भोजन किया और अपने गृह में आ पितासे कहनेलगा मुझको वही भोजनदो जो खायाथा। पिताने सांवंकेचावल और आटेकादूध घोलके दिया और जब उसने भोजनकिया तब वैसा स्वाद न लगा; तो फिर पितासे बोला कि, मुझको वही भोजनदो जो वहां खायाथा। पिताने कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारेपास नहीं, सदाशिवके पास है; जो वे देवें तो हमखावें। तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करनेलगा और ऐसातपकिया कि,शरीर अस्थिमात्र होरहा और रक्तमांस सब सूख गया। तब शिवजीने प्रसन्न होकर दर्शनदिया और कहा, हे ब्राह्मण ! जो तुमको

इच्छाहै वह वरमांगो। ब्राह्मणने कहा दूध और चावलदो? तब सदाशिवने कहा दूध और चावल क्या कुछ और मांग पर जो तूने कहाहै तो यही भोजन कियाकर। तब उसको वही भोजन प्राप्तहुआ और शिवजीने कहा जब तू चिन्तन करेगा तब मैं दर्शनदूंगा। हे रामजी! यहभी अपना पुरुषार्थ हुआ। त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु को भी काल तृणकीनाईं मर्दन करताहै पर उसकालको श्वेतने उद्यम करके जीताहै और सावित्रीका भर्त्ता मृतकहुआथा पर वह पतिव्रताथी उसने स्तुति और नमस्कार करके यमको प्रसन्नकिया और भर्त्ताको परलोकसेलेआई—यहभी अपनाही पुरुषार्थहै। श्वेतनाम एक ऋषीश्वर था उसने अपने पुरुषार्थ से कालको जीतके मृत्युञ्जय नाम पाया। इससे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो यथा शास्त्रउद्यमकिये से प्राप्त न हो। अपने पुरुष प्रयत्नका त्यागकरना न चाहिये; इससे सुख, फल और सर्वकी प्राप्ति होतीहै। जो अविनाशी सुखकीइच्छाहो तो आत्मबोधका अभ्यासकरो। और जो कुछ संसार के सुख हैं वे दुःखसे मिलेहुये हैं और आत्मसुख सब दुःखका नाशकर्त्ता है किसी दुःखसे नहींमिला वास्तव कहिये तो सम असम सर्व ब्रह्मही है पर तौभी सम परम कल्याणका कर्त्ता है। इससे अभिमान का त्याग करके समका आश्रय करो और निरन्तर बुद्धिसे विचारकरो। जब यत्नकरके सन्तोंकासङ्ग करोगे तब परमपदको प्राप्त होगे। हे रामजी! संसार समुद्र के पार करनेको ऐसा समर्थ कोई तप नहीं और न तीर्थ है। सामान्य शास्त्रोंसेभी नहीं तरसक्ता, केवल सन्तजनों के सेवनेसे भवसागरसे सुखसे तरता है। जिसपुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिनदिनप्रति क्षीण होतेजाते हैं और यथाशास्त्र जिसके कर्म हैं ऐसे पुरुषको सन्त और आचार्य्य कहते हैं। उसकी संगति संसार के पापकर्मोंसे निवृत्त करती है और शुभमें लगाती है। आत्मवेत्ता पुरुषकी सङ्गतिसे बुद्धिमें संसारका अत्यन्तअभाव होजाताहै। जब दृश्यका अत्यन्त अभावहुआ तब आत्मा शेषरहताहै। इसक्रमसे जीवका जीवनभाव निवृत्त होजाताहै और बोधतत्त्व शेषरहताहै। जगत् न उपजता है, न आगेहोगा और न अब वर्त्तमान में है। इसप्रकार मैंने तुमसे अनन्त युक्तिसे कहाहै और कहूंगा। ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसाही मानहोताहै। अचल चिदात्मामें चञ्चलचित्त फुराहै और उसीने जगत् आभासरचाहै। जैसे २ वह फुरताहै तैसेही तैसेभासता है और वास्तवमें कुछनहीं। जैसे सूर्य्य और किरणोंमें कुछ भेदनहीं। तैसेही जगत् और आत्मामें कुछभेदनहीं। अहंरूप आत्मामें आपको न जाननाही आत्माकाशमें मेघरूपी मलीनताहै। जब परमार्थमें अहंभावको जानेगा तब अनात्ममें अहंभाव लीनहोजावेगा और तभी चिदाकाशसे जीवकी अत्यन्त एकता होती है। जैसे घटके फूटेसे घटाकाशकी महाकाशसे एकताहोती है। निश्चयकरकेजानो कि, अहंआदिकदृश्य वास्तवमें कुछ नहींहै विचार

कियेसे नहीं रहता । जैसे बालककी परछाहीं में पिशाचभासता है सो भ्रांति मात्रहो-
नाहै तैसेही यह जगत् भ्रांतिसिद्धहै, अपनी कल्पनासे भासता है और दुःखदायक
होताहै पर विचार कियेसे नष्टहोजाता है । हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमा सदा प्र-
काशित है और अहंकाररूपी बादल उसके आगे आताहै उससे परमार्थ बुद्धिरूपी
कमलिनी विकाशको नहीं प्राप्तहोती; इससे विवेकरूपी वायुसेउसको नष्टकरो । नरक,
स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकारसे फुरते हैं । हृदयरूपी
आकाशमें अहंकाररूपी मेघ जबतक गरजता और वर्षाकरताहै तबतक तृष्णारूपी
कण्टक मञ्जरी बढ़तीजाती है । जबतक अहंकाररूपी बादल आत्मरूपी सूर्य्यको आ-
क्रमण करता है तबतक जड़ता और अन्धकार है और प्रकाश उदय नहीं होता ।
अहंकार वृक्षकी अनन्तशाखा फैलती हैं । 'अहं' 'मम' आदिक विस्तार अनेकअर्थों
को प्राप्त करताहै । जो कुछ संसार में सुख दुःख आदिक प्राप्तहोता है वह सब अहं-
कारसे प्राप्तहोता है । संसाररूपी चक्रकी अहंकार नाभि है जिससे भ्रमता है और
'अहं' 'मम'रूपी बीजसे अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय और क्षयहोतीहै और
कभी नष्ट नहीं होता । इससे यत्न करके इसका नाशकरो । जबतक अहंकाररूपी
अन्धकार है तबतक चिन्तारूपी पिशाचिनी बिचरती है और अहंकाररूपी पिशाच
ने जिसको ग्रहण किया है उसनीच पुरुषको मंत्र तन्त्रभी दीनतासे छुड़ा नहींसक्ते ।
रामजीने पूछा, हे भगवन् ! निर्मल चिन्मात्र आत्मसत्ता जो अपनेआप में स्थित है
उसमें अहंकाररूपी मलीनता कहांसे प्रतिबिम्बित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव !
अहंकार चमत्कार जो भासताहै वह वास्तव धर्म्म नहीं, मिथ्या है, वासना भ्रमसे
हुआ है और पुरुष प्रयत्न करके नष्ट होजाताहै । न मैं हूं, न मेराकोई है, 'अहं''मम'
में कुछसार नहीं । जब अहंकार शांतहोगा तब दुःखभी कोई न रहेगा । जब ऐसी
भावनाका निश्चय दृढ़होगा तब अहंकार नष्ट होजावेगा । आत्मामें अहं कोई नहीं,
दृश्यमें सार है । इसप्रकार जब फुरना शान्तहुआ तब अहंकारभी नष्ट होजावेगा
और जब अहंकार नष्टहुआ तब हेयोपादेय बुद्धि भी शान्त होजावेगी और समता
आदिक प्रसन्नता उदयहोगी । अहंकारकी प्रवृत्तिही दुःखकाकारणहै । रामजीनेपूछा,
हे प्रभो ! अहंकारका रूपक्या है; त्याग कैसे होता है; शरीरसे रहित कबहोताहै और
इसके त्यागसे क्याफल होताहै ? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! अहंकार तीनप्रकारका
है । दो प्रकारका श्रेष्ठ अहंकार अङ्गीकार करने योग्यहै और तीसरात्यागनेयोग्यहै ।
इसका त्याग शरीर सहितहोताहै । 'यह सब दृश्य मैंहीहूं औरपरमात्मा अद्वैतरूपहूं-
मुझसे भिन्न कुछनहीं'; यह निश्चय परमअहंकारकाहै और मोक्षदेनेवालाहै—बन्धन
का कारण नहीं; इसमें जीवनमुक्त बिचरते हैं । यह अहंकारभी मैंने तुमको उपदेशके

निमित्त कल्पके कहाहै वास्तवमें यहभी नहींहै केवल अचेत चिन्मात्रसत्ताहै। दूसरा अहंकार यहहै कि 'मैंसबसे व्यतिरेकहूं और बालके अग्रभागका सौमाभाग सूक्ष्म हूं'; ऐसा निश्चयभी जीवन्मुक्तिकाहै और मोक्षदायक है—बन्धनका कारणनहीं। यह अहंकारभी मैंने तुमसे कल्पकेकहाहै, वास्तवमें यह कहनाभी नहींहै। तीसरा अहंकार यह है कि, हाथ, पांवआदि इतनामात्र आपको जानना; इसमें जिसका निश्चय है वह तुच्छ है और अपने बन्धनका कारणहै। इसको त्यागकरो, यह दुष्टरूप परम शत्रु है; इसमें जो जीव मरते हैं वे परमार्थकी ओर नहीं आते। यह अहंकाररूपी चतुर शत्रु बड़ाबली है और नानाप्रकारकेजन्म और मानसीदुःख-काम,क्रोध,राग,द्वेष आदिकका देनेवाला है। यह सबजीवोंको नीच करताहै और संकटमें डालताहै। इस दुष्टअहंकारके त्यागके पीछे जो शेष रहताहै वह आत्मभगवान् मुक्तरूप सत्ताहै। हे रामजी! लोकमें जो वपुकी अहंकार भावना है कि, 'मैं यहहूं'; 'इतनाहूं'; यही दुःख का कारण है। इसको महापुरुषोंने त्यागकिया है; वे जानते हैं कि, हम देहनहीं हैं; शुद्ध चिदानन्द स्वरूपहैं। प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुमको कहे हैं वह अङ्गीकार करने योग्य और मोक्षदायकहैं और तीसरा अहंकार त्यागनेयोग्यहै क्योंकि; दुःखका कारण है। इसी अहंकारको ग्रहणकरके दाम, व्याल, कट आपदाको प्राप्तहुये जो महाभयदायक है और कहनेमें नहीं आती और जिन्होंने भोगीहै उनको क्या कहना है; वह जानतेही हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो आपने कहाहै उसका त्यागकियेसे पुरुषका क्याभाव रहताहै और उसको क्या विशेषता प्राप्तहोती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव अनात्मा के अहंकारको त्यागकरता है तब परमपदको प्राप्तहोता। जितना जितना वह त्यागकरताहै उतनाही उतना दुःख से मुक्त होताहै; इससे इसको त्यागकरके आनन्दमानहो। इसको त्यागके महापुरुष शोभताहै। जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊंचेपदको प्राप्तहोगे। सर्वकाल सर्व यत्न करके दुष्टअहंकारको नष्टकरो; परमानन्द बोधकेआगे आवरण यहीहै, इसकेत्यागसे बोधवान् होते हैं। जब यह अहंकार निवृत्तहोता है तबशरीर पुण्यरूपीहोजाताहै और परमसारके आश्रयको प्राप्तहोता है। यही परमपद है। जब मनुष्य स्थूलअहंकारका त्यागकरताहै तब सर्व व्यवहार चेष्टामें आनन्दमान होताहै। जिसपुरुषका अहंकार शांतहुआ है उसको भोग और रोग दोनों स्वादनहीं देते—जैसे अमृतसे जो तृप्तहुआ है उसको खट्टा और मीठा दोनोंस्वाद नहीं देते अर्थात् रागद्वेष से चलायमान नहींहो-ता एकरस रहताहै। जिसका अनात्मामें अहंभाव नष्टहुआ है उसको भोगोंमें राग नहीं होता और तृष्णा, राग, द्वेष नष्टहोजाता है। जैसे सूर्य्यके उदयहुये अंधकार नष्टहोजाता है तैसेही अपने दृढ़ पुरुषार्थसे जिसके हृदयसे अहंकारका अनुसंधान

नष्ट होताहै वह संसारसमुद्रको तरजाताहै। इससेयही निश्चय धारणकरो कि, 'नमैंहूं', न कोई मेराहै; 'अथवा'सर्व मैंहींहूं' 'मुझसे भिन्नकुछवस्तुनहीं,यह निश्चय जवदृढ़होगा तव संसारकी द्वैतभावना मिटजावेगी और केवल आत्मतत्वका सर्वदा भानहोगा ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्याननामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः३३
वशिष्ठजी वोले, हे रामजी ! जवदाम, व्याल, कटयुद्धकरते२भागगये तव सम्बरके नगरकी जो अवस्था हुई सो सुनो। पहाड़के समान नगर में जव सम्बरकी जितनी कुछ सेनाथी वह सवनष्ट होगई तव देवता जीतकर अपने अपने स्थानों में जावैठे और सम्बरभी क्षोभको पाके वैठरहा। जव कुछवर्ष व्यतीतहुये तव देवताओं के मारने के निमित्त सम्बर फिर युक्ति विचारनेलगा कि, दामादिक जो मायासे रचेथे सोमूर्ख और वलवान्थे परन्तु मिथ्या अहंकारका वीज अज्ञान उनकोथा इससे उनको मिथ्या अहंकार आनफुरा जिससे वे नष्टहुये और भागे। अवमैं ऐसे योद्धारचूं जो आत्मवेत्ता, ज्ञानवान् और निरहंकार हों और जिनको कदाचित् अहंकार न उत्पन्न हो तो उनको कोई जीतभी नसकेगा और वे सव देवताओंकी सेनामारेंगे। हेरामजी ! इसप्रकार चिन्तन करके सम्बर ने मायासे इसभांति दैत्य रचे जैसे समुद्र अपने बुदबुदे रचले वे सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता और वीतराग आत्माथे और यथाप्राप्त कामकरतेथे। उनको आत्मभाव का निश्चयथा और आत्मरूप उत्तमपुरुष उपजे। भीम, भास, और दट उनके नामथे। वे तीनों सम्पूर्ण जगत्को तृणवत् जानतेथे और परम पवित्र उनके हृदयथे। वे गरजने और महावलसे शब्द करनेलगे जिससे आकाशपूर्ण होगया। तव इन्द्रादिकदेवता स्वर्गमेंशब्दसुनके वड़ीसेना सङ्गलेकरआये औरयहवड़ेवलीभी विजलीवत् चमत्कार करनेलगे। दोनों ओरसे युद्धहोनेलगे और शस्त्रों की नदियों का प्रवाहचला पर भीम, भास, दट धैर्य्यसे खड़ेरहे। कभी कोई शस्त्रका प्रहारलगे तव युद्धके अभ्याससे देहका मोह आनफुरे पर फिर विचारमें सावधान हों कि, हमतो अशरीर हैं और चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूपहैं; हमारे सङ्ग शरीर कहांहै। जव जव मोहआवे तवतव ऐसेविचार करें और जरामरण उनको कुछ न भासे वे निर्भय होकर वासना की जालसे मुक्तहुये शत्रुको मारते और युद्धकार्य्य करतेथे और हेयोपादेयसे रहित सम दृष्टिहो युद्धकार्यको करतेरहे निदान दृढ़युद्ध हुआ तव देवताओं की सेना मारी गई और जो कुछ शेषरहे सो भीम, भास, दटके भयसे भागे। जैसे जल पर्वतसे उतरताहै और तीक्ष्ण वेगसे चलताहै तैसेही देवता तीक्ष्ण वेगसे भागे और क्षीरसमुद्रमें विष्णु भगवान्की शरणमें गये। उनको देखके विष्णु भगवान्ने कहा कि, तुम यहां ठहरो मैं उनको युद्धकरके मार आताहूं। ऐसे कहकर विष्णु भगवान् सुदर्शन चक्र लेकर सम्बरकी ओर आये और उसका सम्बर का

बड़ा युद्धहुआ–मानो अकाल प्रलय आयाहै। बड़ेबड़े पर्वत उछलनेलगे और युद्ध होनेलगा तब सम्वर भागा और महाप्रकाश रूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजीने उसको मारलिया। सम्बर शरीरको त्यागके विष्णुपुरी को प्राप्त हुआ और विष्णुभगवान्‌ने भीमभासदटके अन्तःपुर्यष्टकमें प्रवेशकिया और उनकी चित्तकला जो प्राणसे मिश्रित थी उसको असत्‌किया। जैसे पवनदीपकको निर्वाण करता है तैसेही उनकी पुर्यष्टक फुरने से निर्वाण हुई। आगे वे जीवन्मुक्तथे सो अब विदेह मुक्तहुये। हे रामजी! वे भीम, भास, दट निर्वासनिकथे इस कारण दीपकवत् निर्वाण होगये। जो वासना संयुक्त है वह बन्धमानहै जो निर्वासनिक है वह मुक्तरूपहै। तुमभी विवेकसे निर्वासनिक हो। जब यह निश्चय होताहै कि, सब जगत् असत्‌रूप है तब वासना नहीं फुरती; इससे यथार्थ देखना कि, किसी जगत्‌के पदार्थमें आशक्त बुद्धि न हो। वासना और चित्त एकही वस्तुके नाम हैं; सर्वपदार्थों के शब्द और अर्थचित्त में स्थित हैं। जब सत्‌का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होगा तब यह लय होजावेगा और परमपद शेष रहेगा। जो चित्त वासना संयुक्तहै उसमें अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है। जो मुक्त है उसेही मुक्त कहते हैं और नानाप्रकारके घट पटादिक आकार चित्तफुरनेसे अनेकताको प्राप्त होते हैं। जैसे परछाहींसे वैताल भ्रम होताहै तैसेही नानात्वभ्रम चित्तमें भासता है। हे रामजी! जैसी जैसी वासनाको लेकर चित्त स्थित होता है तैसाही आकार निश्चय होकर भासताहै। दाम, व्याल, कट का रूप चित्तके परिणामसे विपर्यय होगयाथा तुमको भीम, भास, दटका निश्चय हो;। दाम, व्याल, कटका निश्चय न हो। हे रामजी! यह वृत्तान्त मुझसे पूर्वमें ब्रह्माजीने कहाथा वही मैंने अब तुमसे कहा है। इस संसारमें कोई विरला सुखी है; दुःखदशामें अनेक हैं। जब तुम इस संसार की भावना त्यागोगे तब देहादिक में बन्धमान न होगे और व्यवहारमें भी आशक्तता न होगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्यान समाप्तिवर्णनन्नामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्या से संसारकी ओर जो मन सन्मुख हुआ है उसको जिस पुरुषने जीता है वही सुखी और शूरमा है और उसहीकी जय है। यह संसार सर्व उपद्रवका देनेवालाहै। इसका उपाय यही है कि, अपने मनको वशकरे। यह मेरा शास्त्र सर्व ज्ञान संयुक्त है; इसको सुनके आपको विचारे। कि, यह जगत् क्या है। ऐसे विचारकर भोगसे उपरान्त होना और सत्‌स्वरूप आत्माका अभ्यास करना। जो कुछ भोग इच्छा है वह बन्धनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं और सर्व शास्त्रका विस्तार है। जो विषय भोगहैं उनको विष और अग्नि

की नाईं जाने। जैसे बिष और अग्नि नाशका कारण हैं तैसेही विषयभोग भी नाश का कारण हैं। ऐसे जानके इनका त्यागकरे और वारम्वारयही विचारकरे कि, विषय भोग विषकी नाईं है। ऐसे विचारके जब विषयोंको चित्तसे त्यागेगो तब सेवते हुये भी ये दुःखदायक न होंगे । जैसे मन्त्रशक्ति सम्पन्न को सर्प्प दुःखदायक नहीं होता तैसेही त्यागी को भोग दुःखदायक नहीं होते । इससे संसार को सत् जानके वासना फुरती है सो दुःखका कारण है—जैसे पृथ्वी में जो बीज बोयाजाता है सोही उगता है; कटुकसे कटुक उपजताहै, मिष्ट से मिष्ट उपजता है; तैसेही जिसकी बुद्धिमें संसार के भोग वासनारूपी बीज हैं उससे दुःखकी परम्परा उत्पन्न होती है और जिसकी बुद्धि में शान्तिकी शुभ वासना गर्भित होती है उससे शुभगुण वैराग्य धैर्य्य,उदारता और शांतिरूप उत्पन्न होते हैं। जब शुभबासनाका अनुसन्धान होगा तब मन बुद्धि निर्मलभाव को प्राप्तहोगी और जब मन निर्मलहुआ तब शनैःशनैः अज्ञान नष्ट होजावेगा और सज्जनता बृद्धिहोगी। जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला बढ़तीजाती है। जब इन शुभगुणोंकी परम्परा स्थितहोतीहै तब विवेक उत्पन्न होता है और उसके प्रकाशसे हृदयका मोहरूपी तमनष्ट होजाताहै तब धैर्य्य और उदारता वृद्धिहोती है। जब सत्सङ्ग और सत्शास्त्रके अभ्यासद्वारा शुभगुण उदय होते हैं तब महाआनन्दका कारण शीतल शान्तरूप प्रकट होताहै। जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकी कान्ति आनन्ददायक शीतलता फैलती है तैसेही सत्सङ्गरूपी बृक्षका फल प्राप्तहोताहै। हे रामजी ! सत्सङ्गरूपी बृक्षसे विवेकरूपी फल उत्पन्नहोताहै और उस विवेकरूपी फलसे समतारूपी अमृत स्रवताहै, उससे मन निर्द्वन्द्व और सर्वकामनासे रहित निरुपद्रव होता है। मनकी चपलता शोक और अनर्थका कारण है, मन के अचलहुये सब शांतहोजाता है। शास्त्रके अर्थ धारने से सन्देह नष्ट होजाते हैं और नानाप्रकार की कल्पना जाल शान्त होजाती है। इस से जीवन्मुक्त अलेपहोता है; संसारका कोई क्षोभ उसको स्पर्श नहीं करता और वह निरीच्छित, निरुपस्थित निर्लेप, निर्दुःख होताहै। शोकसे रहितहुआ चित् जड़ग्रन्थिसे मुक्त और परमानन्द, रूपहोता है। तृष्णारूपी सूत्रके जालसे जो पुरुष निकलगया है वही शूरमाहै और जिस पुरुष ने तृष्णा नष्ट नहीं की वह अनेकजन्म दुःख में भ्रमता है। जब तृष्णा घटती है तब मनभी सूक्ष्म होजाता है और जब भोगकी तृष्णानष्ट होती है तब मनभी नष्ट होजाता है । हे रामजी ! जैसे भले नौकर स्वामी के निमित्त रण में शरीरको तृणवत् त्यागते हैं और उससे स्वामीकी जयहोती है पर जो दुष्ट हैं वे नहीं त्यागते उससे दुःखहोतेहैं; तैसेहीमनका उदयहोना जीवोंको दुःख का कारण है और मनका नष्ट होना सुखदायक है। ज्ञानवान्का मननष्ट होजाता है; अज्ञानीका

मनरूद्ध होताहै। सम्पूर्ण जगत्चक्र मनोमात्रहै; यह पर्वत,मण्डल,स्थावर,जङ्गमरूप जो कुछ जगतहै वह सब मनरूपहै। मन किसको कहतेहैं सो सुनो चिन्मात्र शुद्धकलामें जो चित्तकलाका फुरना हुआहै वही संवेदन सङ्कल्प बिकल्पसे मिलकर मलीन हुआहै और स्वरूप बिस्मरण होगया है; उसीका नाम मनहै। वही मनबासनासे संसार भागी होताहै। जब चित्त संवेदन दृश्यसे मिलताहै तब उससे तन्मय होकर चित्संवित् का नाम जीव होताहै और वही जीव दृश्य बर्गसे मिलके संसार दशा में चला जाताहै और अनेक बिस्तारको प्राप्तहोताहै आत्मपुरुष परब्रह्म संसारी नहीं; वह न रुधिर है, न मांसहै और न शरीर है। शरीरादिक सर्व जड़रूप हैं,आत्माचेतन आकाशवत् अलेप है । यदि शरीरको भिन्न भिन्नकर देखिये तो रुधिर, मांस, अस्थि से भिन्न कुछ नहीं निकलता। जैसे केलेके बृक्षको खोलकर देखिये तो पत्रसे भिन्नकुछ नहीं तैसेही मनही जीव है और जीवही मन है; मनसे भिन्न आकार कोई नहीं वही सर्व बिकार भावको प्राप्त होता है। हे रामजी ! जीवके बन्धनका कारण अपनी कल्पना है। जैसे कुसवारी अपने यत्न से आपही बन्धनको प्राप्त होती है तैसेही मनुष्य अपनी वासनासे आपही संसार बन्धनमें फँसता है। इससे तुम भोग की वासना मनसे दूर करो; संसारका बीज बासनाही है। जिस वासना संयुक्त दिनमें बिचरता है तैसाही स्वप्ना भी होताहै जैसी जैसी वासना होती है तैसाही पुण्य पापके अनुसार परलोक भासता है। अपनेही वासनासे जगत् भासआता है। जैसे अन्न जिस द्रव्य से मिलता है तैसाही भासता है अर्थात् मिष्टसे मिष्ट; खट्टेसे खट्टा; कटुकसे कटुक होताहै तैसेही जैसी वासना जिसके हृदय में दृढ़ होती है तैसेही हो भासता है। जैसे बड़े पुण्यवान्को स्वप्नेमें अपनी मूर्त्ति इन्द्रकी भासती है; नीचको नीचही भासतीहै और भूतके सङ्गीको भूतादिक भासआते हैं तैसेही वासनाके अनुसार परलोक भासआताहै। जब मनमें निर्मलभाव स्थित होताहै तब मनकी कल्पना और पापवासना मिटजातीहै और जब मनमें मलीन वासनाबढ़तीहै तब निर्मलता नहीं भासती वहीरूप फल प्राप्तहोताहै। इससे तुम दुर्वासना कलङ्कको त्यागके पूर्णमासी के चन्द्रमावत् विराजमानहो। यह संसार भ्रान्तिमात्र है सत्रूप नहीं। अज्ञानकरके भेद बिकार भासते हैं; बास्तवमें न कोई बन्धहै, न मोक्षहै और न कोई बन्ध करनेवालाहै; सब इन्द्रजालीकीनाईं मिथ्याभ्रम भासते हैं। जैसे गन्धर्व्व नगर; मृगतृष्णाका जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमाभासताहै वह असत्रूपहै; तैसेही यह जगत असत्रूप है। जीवों को अज्ञान से ऐसा निश्चय होरहा कि, मैं अनन्त आत्मा नहीं हूं—नीचहूं—जब इस निश्चयका अभावहो और निश्चय करके आपको अनन्त आत्मा जाने प्रथम इसका अभ्यासकरे—तब हृदयमें स्थितिहो। इस निश्चय

से उस नीच निश्चयका अभाव होजाताहै । सर्वजगत् स्वच्छ निर्मलआत्माहै, उससे अतिरिक्त जिसको देहादिक भावना हुईहै उसको लोकमें बन्धन होता है और अपने सङ्कल्पसे आपही शुककी नाईं बंधनमें आताहै । जिसको स्वरूप में भावना होतीहै उसको मोक्ष भासता है । आत्मसत्ता मोक्ष और बन्ध दोनोंसे रहित है । एक और अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जबमन निर्मल होताहै तब इसप्रकार भासताहै और किसी पदार्थमें बन्धवान् नहीं होता और जब मन इसभावसे रहित अमन होताहै तब ब्रह्मसत्ताको देखताहै अन्यथा नहीं देखता । जब वैराग्य और अभ्यासरूपी जलसे मनको निर्मलभाव होताहै तब ब्रह्मज्ञानरूपी रङ्ग चढ़ताहै और सर्व आत्माही भासता है और जब सर्वात्म भावना होतीहै तब ग्रहण और त्यागकी वृत्तिनष्ट होजाती है और बन्धमोक्षभी नहीं रहता । जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं अर्थात् भोगकी सूक्ष्म वासनासे मुक्तहोताहै और सत्शास्त्रके विचारसे क्रमसे बुद्धिमें वैराग्यउपजता है तब परमबोधको प्राप्तहोताहै और कमलकीनाईं बुद्धिखिल आतीहै । मनसेही सर्व पदार्थ रचेहैं जबउससे मिलकर तद्रूप होजाता है उसकानाम असम्यक् ज्ञानहै और जब सम्यक् दृष्टिहोतीहै तब उसकातत्काल नाशकरताहै जब भीतर बाहर दृश्यको त्यागकरता है और मन सत्भावमें स्थित होता है तब परमपदको प्राप्तहुआ कहाताहै।हे रामजी ! ये द्रष्टा और दृश्यजो स्पष्ट भासते हैं वे असत् हैं । उनअसत्के साथ तन्मयहोजाना यह मनकारूपहै जो पदार्थ आदि अंतमें न हो और मध्यमें भासे उसको असत्रूप जानिये; सो यह दृश्य आदिमेंभी नहीं उपजा और अन्तमेंभी नहीं रहता, मध्यमें जो भासताहै वह असत्रूपहै । अज्ञानसे जिनको यह सत् भासता है उनको दुःखकी प्राप्तिहै । आत्मभावना विनादुःख निवृत्तनहीं होता । जबदृश्यमें आत्म भावना होतीहै तब दृश्यभी मोक्षदायक होजाताहै । जल और है, तरङ्ग और है;यह अज्ञानीका निश्चयहै । जल और तरङ्ग एकही रूपहै; यह ज्ञानीका निश्चयहै । नाना रूप जगत् अज्ञानीको भासताहै उससे दुःखपाता है और ग्रहण और त्यागकी बुद्धि में भटकताहै । ज्ञानीको सर्व आत्माभासताहै और भेद भावनासे रहित अन्तर्मुख सुखीहोताहै । हे रामजी ! नानात्व मनके फुरनेसे रचा है और मनकारूपहै । अपने संकल्प बलका नाम मनहै सो असत् रूपहै । जो असत् विनाशी रूप है उसको सत् माननेसे क्लेशहोताहै । जैसे किसीका बान्धव परदेशसे आताहै और उसको वह नहीं पहिंचानता दृष्टि आताहै और उसमें रागनहीं होता पर जब उसमें अपनेकी भावना करताहै तब रागभी होताहै; तैसेही जब आत्मामें अहंप्रतीति होतीहै और देहादिकमें नहींहोती तब देहादिक सुखदुःख स्पर्श नहीं करते और जब देहादिकमें भावना होतीहै तब स्पर्शकरतेहैं। हे रामजी ! जब शिवतत्त्वका ज्ञानहो तब कोई दुःखनहीं रहता।

वहशिव द्रष्टा और दृश्यकेमध्यमें व्यापकहै,उसमें स्थित होकर मन शांतहोजाताहै।जैसे वायुसे रहित धूलनहीं उड़ती तैसेही मनके शांतहुये धूलरूपी देहहोजातीहै और फिर संसाररूपी कुहिरा नहींरहता। जब वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीणहोजातीहै तब जानानहीं जाता कि, जड़ता रूपी बेल कहां गई। जब अज्ञान रूपी मेघ शान्त होता है तब तृष्णारूपी बेल सूखजाती है और हृदयरूपी पवन से मोहरूपी कुहिरा नष्ट होजाता है। जैसे प्रातःकाल हुये रात्रि नष्ट होजाती है। अज्ञानरूपी मेघ के क्षीणहुये देहाभिमान रूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहांगई। जबतक अज्ञानरूपी मेघ गरजता है तबतक संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं और जब अहंकार रूपी मेघ नष्ट होजाता है तब परम निर्म्मल चिदाकाश आत्मारूपी सूर्य्यस्वच्छ प्रकाशताहै। जब मोहरूपी वर्षाकाल का अभाव होताहै तब ज्ञानरूपी शरत्काल में दिशा निर्म्मल होजाती हैं और आत्मारूपी चन्द्रमा शीतल चांदनी से प्रकाशताहै जो सर्व सम्पदा का देने और परमानन्द की प्राप्ति करनेवाला है। जब प्रथम शुभगुणों से विवेकरूपी बीजसंचित होताहै तब शुभमन सर्व सम्पदाका देनेवाला परमानन्द अतिसफल भूमि को प्राप्त होताहै। उस विवेकी पुरुषको वन, पर्वत, चतुर्दशभुवन सर्व आत्माही भासता है और वह निर्म्मल से निर्म्मल और शीतल से शीतल भावनामें भासता है हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् है और फटिकमणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जल से पूर्ण है; उसमें धैर्य्य और उदारतारूपी कमल विराजते हैं और उस हृदय कमल पर अहङ्काररूपी भँवरा विचरता है वह जब नष्ट होजाता है तो फिरनहीं उपजता। वह पुरुष निरपेक्ष, सर्वश्रेष्ठ, निर्वासनीक, शान्तमन अपने देहरूपी नगर में विराजमान ईश्वर होताहै। जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआहै उसबोधवान्का मनअत्यन्त गल जाताहै,भय आदिक विकार नष्टहोजातेहैं और देहरूपी नगरमें विगतज्वरहोके विराजमान होताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउपशमरूपवर्णनंनामपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ३५॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आत्मा तो चेतनरूप विश्वसे अतीतहै, उस चिदात्मा में विश्वकैसे उत्पन्नहुआ? बोधकी वृद्धिके निमित्त फिर मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सोम जलमें तरङ्ग अव्यक्तरूप होते हैं परन्तु त्रिकालदर्शी को उनका सद्भाव नहीं भासता और उनकारूप दृष्टमात्र होताहै तैसेही आत्मामें जगत् संकल्पमात्र होता है। जैसे आकाश सर्वगतहै परन्तु सूक्ष्मभावसे नहीं दिखता तैसेही आत्मा निरंश,निराकार, सर्वगत, और सर्वव्यापकहै परन्तु लखानहीं जाता अव्यक्त, और अच्युत, रूपहै; उस आत्मामें जगत् ऐसेहै जैसेकोई थम्भ मणिरूपहो और उसमें शिल्पी कल्पनाकरे कि इतनी पुतलियां इसमें हैं। सो वह क्याहैं; कुछनहीं

केवल शिल्पी के मनमें फुरतीहैं तैसेही यहजगत् आत्मामें मनरूपी शिल्पीने कल्पाहै सो आत्माके आधारहै और आत्माके आश्रय आत्मामें स्थितहै और आत्मा कदाचित् उससे स्पर्शनहीं करता। जैसे मेघआकाशके आश्रय आकाशमें स्थितहै परन्तु आकाश उससे स्पर्शनहीं करता तैसेही आत्मास्पर्शहै और सर्वत्रपूर्णहै परन्तु पुर्य्यष्टक रूप हृदयमें भासताहै। जैसे सूर्य्यका प्रकाश सब ठौर व्यापकहै। परन्तु जलमें प्रतिबिम्बितहोताहै और पृथ्वी,काष्ठइत्यादिमें प्रतिबिम्बितनहींहोता तैसेही आत्माका देह इन्द्रिय और प्राणमें प्रतिबिम्बित नहींहोता हृदयपुर्य्यष्टकमें भासताहै। वह आत्मा सर्व संकल्प और संगसेरहितस्वरूपहै, उसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी, आत्मा, ब्रह्मादिक कहते हैं पर आकाश से भी सूक्ष्म निर्म्मल है। आत्मा आभास से जगत्रूप हो भासताहै,जगत् कुछ और वस्तुनहीं है। जैसे जल द्रवतासे तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु तरङ्ग कुछ भिन्नवस्तु नहींहै; तैसेही आत्मासे व्यतिरेक जगत् नहीं; चैतन सत्ताही चैत्यता फुरने से जगत्रूप हो भासती है। जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको तो एक आत्माही भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकार जगत् भासता है। जगत् कुछ वस्तु नहींहै केवल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; अनुभव स्वभावसे प्रकाशताहै और सूर्य्यादिक सबको प्रकाशने वालाहै। सब स्वादों का स्वाद वहीहै और सबभाव उसीसे सिद्धही हैं। वह सत्ता उदय, अस्त और चलने, नचलने से रहित है; वह न लेताहै, न देताहै, अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्निका समूह लाटरूप और जलका समूह तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है और जीव अपने सम्वेदन फुरने से नानाप्रकारके संकल्प से विपर्य्ययरूप देखता है कि; यह पदार्थ है, यह मैं हूँ; यह और है इत्यादिक पर जब अपने आपको जानता है तब अज्ञान भ्रम नष्ट होजाता है। जैसे वृक्ष में बीजसत्ता परिणाम से आकार के आश्चर्य्य से बढ़ताजाता है, तैसेही आत्मसत्तामें चित्त सम्वेदन फुरता है। फुरना जो आत्मसत्ता के आश्रय विस्तार को प्राप्त होताहै सो सङ्कल्परूप है और उसमें जगत् की दृढ़ता है; जैसे सम्वेदन फुरताहै तैसेही स्थित होताहै। उसमें नीति है कि, जो पदार्थ जिस प्रकार हो सो तैसेही स्थित है अन्यथा नहीं होता। जैसे वसन्तऋतुमें रस अतिविस्तार पाताहै;कार्त्तिकमें धान उपजते हैं; हिम ऋतुमें जल पाषाणरूप होजाताहै; अग्नि उष्णहै; बरफ शीतल है इत्यादिक जितने पदार्थ रचे हैं वैसेही वे सब महाप्रलयपर्यंत स्थितहैं; अन्यथा भावको नहीं प्राप्तहोते। जगत्में चतुर्दश प्रकारके भूतजातहैं पर उनमें जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है वेहीशांतरूप आत्मापाके आनन्दमान होते हैं और जिनको प्रमादहै वे भटकते और जन्म मरणको प्राप्त होते हैं। जैसे २ कर्म वे करते हैं तैसी २ गति पातेहैं

और आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखमें जापड़ते हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर लय होजाते हैं तैसेही जन्मजन्म उपजते हैं मरते जाते हैं। उन्मत्तकीनाईं प्रमादी भ्रमते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेचिदात्मरूपवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार जगत्की स्थितिहै सो सर्व चंचल आकार और विपरिणामरूप है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग चञ्चलरूपहैं तैसेही जगत्की गति चञ्चलहै। आत्मासे जगत् स्वतः उपजताहै, किसीकारणसे नहीं होता; और पीछे कारण कार्यभाव होजाता है और वहीचित्तमें दृढ़हो भासता है; आत्मामें यह कोई नहीं। जैसे जलसे तरङ्ग स्वाभाविक उठकर लयहोजातेहैं, तैसेही आत्मासे स्वाभाविक जगत् उपजके लय होतेहैं। जैसे ग्रीष्मऋतुमें तपनसे मरुथल जल की नाईं स्पष्ट भासता है पर जल कुछभी नहीं है और जैसे मदसे मत्तपुरुष आपको औरका और जानता है, तैसेही ये पुरुष आत्मरूप हैं चित्तसे आपको देवता, मनुष्य आदिक शरीर जानते और कहतेहैं। हे रामजी! यह जगत् आत्मामें न सत्है, न असत्है; जैसे सुवर्ण में भूषण हैं तैसेही मूढ़जीव आपको आकार मानते हैं। इससे तुम दृश्यको त्यागके द्रष्टा में स्थितहो और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक सबको जानताहै उसीको आत्मब्रह्म जानो; वह सर्व्व में पूर्णस्थित, स्वच्छ और निर्म्मल है। आत्मसत्ता में एकद्वैत कल्पना कुछनहीं। जबतक आत्मासे भिन्न कुछवस्तु भासतीहै तबतक वासना उसकी और धावती है। हेरामजी! आत्मासे व्यतिरेक कुछ सिद्धनहीं होता तो किसकी वांछाकरे; किसका अनुसन्धान करे और किसका ग्रहण, त्याग करे? आत्माको ईप्सित, अनीप्सित, इष्ट, अनिष्ट आदिक कोई विकार विकल्प स्पर्श नहीं करता और कर्त्ता, कारण, कर्म्म तीनोंकी एकता है न कोई आधार है, न आधेय है; द्वैत कल्पनाका असंभव है और अहं—त्वं आदिक कुछनहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै। ऐसे जानके सर्व्वदा निर्द्वंद्व होकर सर्व्व सन्तापसे रहित कार्य्यमें प्रवृत्त होजाओ। पूर्व्व जो तुमने कुछकिया और नहीं किया उस करने और न करने से तुमको क्या सिद्ध हुआ और पानेयोग्य कौन पदपाया और भूतकी गणतीमें क्याबातहै। तुम आपको हृदयमें अकर्त्ताभावना करो और बाहरसे इन्द्रियों से जगत्के कार्य्यकरो; जब स्थिरतारूपी समुद्रमें तुम्हारी वृत्ति धैर्य्यवान् होगी तब शांतात्मा होगे पर दृश्य जगत् में तो दूरसे दूरभी गये हृदयमें शांतिनहींहोती। जहांचाहे वहां जावे और चाहेजैसे पदार्थ पानेकायत्नकरे पर उसके पायेसेभी शान्ति प्राप्तनहोगी। जगत् के सर्व्व दृश्यपदार्थ त्यागकर जो शेष अपना स्वरूप रहता है वही चिदात्मा है। उसमें स्थितहुये से शान्ति प्राप्त होगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशांत्युपदेशकरणंनामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ३७॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जो ज्ञानी पुरुष हैं उनमें कर्त्तव्य भावभी दृष्टिआताहै और हिंसादिक तामसी कर्म्मभीकरते हैं तौभी स्वरूपकेज्ञानसे वे अकर्त्ता-हीहैं उन्होंने कदाचित् कुछ नहीं किया और जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे जैसा कर्म्म करतेहैं वैसाही फल भोगते हैं । मनमें सत्य जानके जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा करताहै सो फुरना वासनारूप होताहै उसी सद्भाव फुरने का नाम कर्त्तव्य है और उसी चेष्टा से फलकी प्राप्ति होतीहै । जिस पदार्थ को सत्जानके वासना फुरती है उसका अनु-भव होताहै; शरीर करे अथवा न करे पर जैसी वासना मनमें दृढ़ होतीहै वह शुभहो अथवा अशुभ उसीके अनुसार दृश्य भासि आता है । शुभ से स्वर्ग भासता है और अशुभ से नरक भासता है । जिस पुरुष को आत्माका अज्ञान है यद्यपि वह प्रत्यक्ष अकर्त्ता है तौभी अनेक कर्म्मके फलको अनुभव करता है और जो ज्ञानवान् हैं उनके हृदय में पदार्थों का सद्भाव और वासना दोनोंनहीं होतीं क्योंकि उन में कर्त्तव्य का अभावहै।यद्यपि वे करतेहैं तौभी कर्त्तव्यके फलको नहींप्राप्तहोते और संसारको असत्य जानते हैं; केवल शरीर का स्पन्दमात्र उनका कर्म्म है, हृदय में वन्धमान नहीं होते । पूर्व्वकेप्रारब्धसे सुख दुःख फल उनको प्राप्तभीहोताहै परन्तु वे आत्मासे भिन्न उसको नहीं जानते; वे सर्व्व ब्रह्मही देखते हैं और जो अज्ञानी हैं वे अवयव के स्पन्द में आपको कर्त्ता मानते हैं और उसके अनुसार सुख दुःख भोगते और मोहको प्राप्त होते हैं । जिनका मन अनात्मभाव में मग्नहै वे अकर्त्ताहुये भी कर्त्ताहोते हैं और मन से रहित केवल शरीर से क्रियाकर्म्म कियाभी न कियाहै । इससे मनहीं कर्त्ताहै शरीर कुछ नहीं करता । यह सब जगत् मनसे उपजा है, मनरूप है और मनहीं में स्थित है जिसका मन अमनभाव को प्राप्तहुआ है उसको सब शांतरूप है । जैसे तीक्ष्ण धूपसे मृगतृष्णा की नदी भासती है और जब वर्षा होतीहै तब शांत होजाती है; तैसेही जब आत्मज्ञान होताहै तब यह सब जगत् शांत होजाता है और संसार के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते । न वह चञ्चलहै, न सत्यहै और न असत्य है, सर्व्व विकारसे रहित शांतरूप है । वह संसारकी वासनामें नहींडूबता पर अज्ञानी डूबता है क्योंकि उसका मन संसारभ्रम में मग्नरहता और सदा पदार्थोंकी तृष्णा करता है । ज्ञानी नहींकरता। हे रामजी ! और दृष्टान्त सुनो कि, अज्ञानीके अकर्त्तव्यमें भी कर्त्तव्यहै और ज्ञानीके कर्त्तव्यमें भी अकर्त्तव्यहै । जैसे कोई पुरुष शय्यापर सोया हो और स्वप्नमें गिरके दुःखपावे तो वह अकर्त्तव्य में कर्त्तव्य हुआ और जैसे समाधिमें स्थित होकर गढ़े में गिरा है पर उसको सर्व शान्तरूप है, यह कर्त्तव्यमें भी अकर्त्तव्य हुआ क्योंकि; शय्यापर सोयाथा उसका मन चलताथा इससे अकर्त्तव्यमें उसको कर्त्तव्य हुआ और दुःखका अनुभव करनेलगा और दूसरे को सुखका अनुभव हुआ । इससे यह

निश्चय हुआ कि, जैसा मन होताहै तैसीही सिद्धता प्राप्तहोती है। तुमभी असंशक्त होकर कर्मकरो तब अकर्त्ता हो रहोगे। जो कुछ जगत् भासता है वह आत्मा से व्यतिरेक नहीं। जिसको यह निश्चय होताहै उस ज्ञानवान्को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते; उसे आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता। जब ऐसे निश्चय होताहै कि, 'मैं देह नहीं', सब पदार्थों से व्यतिरेक और बाल के अग्रके सौवें भागसे भी सूक्ष्महूं अथवा जो कुछ दृश्य जगत्है सो सर्व्व मैंहींहूं, सर्व्व तत्त्वका प्रकाशक और सर्व्वव्यापीहूं; इस निश्चयसे उसको सुख दुःखका क्षोभनहीं होता और बिगत ज्वर होकर स्थित होताहै। यद्यपि दुःख और संकट ज्ञानवान्को भी आप्राप्तहोतेहैं तौ भी उसको नहीं भासता; वह परमानन्दसे आनन्दवान् लीला मात्र विचरताहै। जैसे चन्द्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशित होती है तैसेही वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होताहै; उसको न चिन्ता होती है, न कोई दुःखहै। वह शांतरूप कर्म्मको कर्त्ता भी है पर अकर्त्ता है क्योंकि, मनसे सदा अलेप रहताहै। हे रामजी! हस्त, पादादिक इन्द्रियोंसे करनेकानाम कर्म्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म्महै; मनही सबकर्म्मोंका कर्त्ताहै। अहं त्वं सबभाव, सब लोकोंका बीज, सर्व्वगत मन है। जब मन नाशहो तब सब कर्म्म नष्ट होजाते हैं और सब दुःख मिटजाते हैं। जैसे बालक मनसे नगर रचे और फिर लीन करले तो उसको उपजाने और लीनकरनेमें हर्ष शोक कुछ नहीं होता तैसेही परमार्थदर्शीको किसी कर्म्मका लेप नहीं होता; वह करताहुआ भी कुछ नहीं करता और उसमें कर्त्तव्य, भोक्तव्य, सुख, दुःख, अज्ञानी मोहसे अध्यारोप करतेहैं और कुछ नहीं। ज्ञानवान्को बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, कुछ नहीं भासता क्योंकि, वह तो असंसक्त मनहै। जिसका मन आसक्तहै उसको नाना दृश्य भासताहै और ज्ञानवान्को केवल आत्मसत्ता जो एक द्वैत कलनासे रहित है भासती है। जैसे जलसे तरङ्ग भिन्न नहीं तैसेही आत्मासे जगत् भिन्ननहीं। न कोई बन्धहै, न कोई मोक्षहै और न कोई बाँधने योग्य है; अज्ञान दृष्टिसे दुःखहै, बोधसे लीन होजाते हैं। बन्ध और मोक्ष सङ्कल्प से कल्पित मिथ्यारूप हैं। तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारको त्यागके आत्मामें निश्चय करो और धीरज बुद्धिवान् होकर प्रकृत आचारको करो। तब तुम्हें कुछ स्पर्श न करेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षोपदेशोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! सच्चिदानन्द, अद्वैत, निर्विकारादिक गुणों से सम्पन्न ब्रह्मतत्त्वमें अविद्यमान विचित्र जगत् अविद्या कहांसे आया? वशिष्ठजी बोले, हे राजपुत्र! यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूपहै और ब्रह्मसत्ता सर्व्व शक्ति है; इस कारण दृश्यरूप हो रहाहै और सत्य, असत्य, एक, अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है।

जैसे जलमें जल उल्लासरूप नाना प्रकारके तरङ्ग, बुद बुदे, आवृत्त आकारहो भासता है तैसेही चिद्घन में चिद्घन सर्वशक्ति और सर्व्वरूप होकर फुरता है। कहीं कर्म रूप, कहीं वाणीरूप, कहीं गुह्येरूप, कहीं मनरूप और कहीं भरण, पोषण और नाश का कारण होता है । सब पदार्थोंका बीज उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मसत्ता है; जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजकर उसी में लय होजाते हैं तैसेही सब पदार्थ उपजकर ब्रह्म में लय होते हैं। रामजी ने फिर पूंछा कि, हे भगवन्! आप के बचनका उच्चार प्रकट है तोभी कठिन और अति गम्भीर है; इनका तोल नहीं पाया जाता और इनका यथार्थभाव में पा नहीं सक्ता । कहां मन संयुक्त षट्इन्द्रियों की वृत्तियों से और सब पदार्थकी रचनासे रहित स्वरूप और कहां जगत्? जो पदार्थ जिससे उपजता है वह उसीका रूप होता हैं । जैसे दीपक से उपजा दीपक, मनुष्य से मनुष्य और अग्निसे अग्नि होताहै; इसीप्रकार कारणसे जो कार्य्य उपजताहै सो भी उसीके सदृश होता है । तैसेही जो निर्व्विकार आत्मासे जगत् उपजा है वह भी निर्व्विकार होना चाहिये पर वह तो ऐसे नहीं; आत्मा निर्व्विकार और शान्तरूप है और जगत् विकारी और दुःखरूपहै; उससे कलंकरूप जगत् कैसे उपजा? इतना कह वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार रामजीने कहा तब ब्रह्मऋषि वशिष्ठजीबोले कि, हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूपहै पर नानाप्रकार मलीनरूप जो भासता है सो मलीनता नहींहै। जैसे तरंगके समूह समुद्रमें फुरतेहैं सो मलीनता धूल नहींहै, वही रूपहै; तैसेही आत्मामें जगत् कुछ कलंक नहींहै वही रूपहै । जैसे अग्निमें उष्णता अग्निरूपहै तैसेही आत्मामें जगत् आत्मारूपहै, भिन्ननहीं। रामजीने फिर पूंछा कि, हे ब्रह्मन्! निर्दुःख और निर्द्धर्म्म से जो यह दुःखरूप जगत् उपजाहै यही कलङ्कहै। आपके वचन आकाशरूपहैं और मुझे स्पष्ट नहीं भासते। मैं इसको नहीं जान सक्ता। तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजीने विचारा कि, परम प्रकाशको अभी इसकी बुद्धि नहीं प्राप्त हुई; कुछ निर्म्मल हुईहै और पदार्थ भूमिकाको जानताहै परन्तु परमार्थवेत्ता नहीं हुआ। जिसको परमार्थबोध प्राप्तहोताहै और जिसका मन शांत होताहै वह ज्ञाता ज्ञेय पुरुष मोक्ष उपायकी वाणीके पार प्राप्त होता है और संसार रूपी अविद्या मल उसको नहीं भासता। वह केवल अद्वैत सत्ता देखताहै। जबतक मैं और उपदेश रामजीको न करूंगा तबतक इसको विश्राम न होगा। जो अर्द्ध प्रबुद्ध है उसको सब ब्रह्मही कहना नहीं शोभता क्योंकि, उसका चित्त भोगों से सर्वथा व्यतिरेक नहींहुआ। सर्व ब्रह्मके वचन सुनके वह भोगोंमें आसक्त होगा जो नाशका कारण है। जिसको परमदृष्टि प्राप्त हुई है उसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती। इससे सर्व ब्रह्मका कहना रामजीको सिद्धान्त काल में शोभेगा । गुरुको शिष्य

के प्रति प्रथम सर्वब्रह्म कहना नहीं बनता। प्रथम शम दम आदिक गुणोंसे शिष्य को शुद्ध करे, फिर सर्वब्रह्म शुद्धतूहै ऐसे उपदेश करे तो उससे वह जग उठता है। जो अज्ञानी अर्द्ध प्रबुद्धहै उसको ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महा नरकमें डालताहै। जो प्रबुद्धहै उसको भोगकी इच्छा क्षीणहोजातीहै और वह निष्कामपुरुष है इससे उसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता और उसको उपदेश करनेकीआवश्यकता नहीं। इस प्रकार विचार कर अज्ञान रूपी तमके नाशकर्त्ता और ज्ञानकेसूर्य्य भगवान् वशिष्ठजीने रामजीके प्रतिकहा। वशिष्ठजी बोले,हेराघव! कलनारूप कलङ्क ब्रह्ममेंहै वा नहींहै, यहमैं तुमसे सिद्धान्त कालमें कहूंगा अथवा तुम आपही जानोगे। ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप, सर्व व्यापक और सर्वगतहै और सब उसीमें रचेहैं। जैसे इंद्रजाली विचित्र शक्तिसे अनेकरूप रचता है और सत्यको असत्य और असत्यको सत्यकर दिखाताहै तैसेही आत्मा मायावी परम इन्द्रजाली अघटन घटना है अर्थात् जो न बने उसको भी बनाता है। वह अपनी शक्तिसे पहाड़को गढ़ा करता है; बल्ली में पाषाण लगाता है और पाषाण में बेल लगाता है। बनकी पृथ्वीको आकाश करता है और आकाशको पृथ्वी करता है; और आकाशमें बन लगाता है-जैसे आकाशमें गन्धर्व नगर भासता है, बनको आकाश करता है-जैसे पुरुषकी छाया आकाश होजाती है और आकाशको पृथ्वी भाव प्राप्त करता है-जैसे रत्नकी कन्दरा पृथ्वी पर हो और उसमें आकाशका प्रतिबिम्ब पड़े। हे रामजी! यह विचित्ररूप दृश्य जो तुमसे कहा है सो शुद्ध व्यक्ततत्व-अचैत्य-चिन्मात्रमें जो चेतनता का लक्षण जाननाहै उसीसे रचाहै और कैसारचाहै कि, वही चित्त संवेदन फुरनेसे जगत् रूप हो भासता है। उसमें सबप्रकार और सर्वरूप वही है जो एकरूप अविद्यमान हैतो हर्ष, शोक और आश्चर्य किसका मानिये? यह अन्यथा कोई नहीं, सब एक रूप है। इसी कारण हमको समता भावरहता है और हर्ष, शोक, आश्चर्य और मोह नहीं प्राप्त होता। ममता और चपलता आदिक विकार हमको कोई नहीं होता और ऐसे हम कदाचित् जानतेही नहीं। देश, काल, वस्तु जगत् अवसानको प्राप्त होभासते हैं और उनका विपर्यय होनाभी भासता है पर वह अपने स्वभावमें स्थित है क्योंकि; यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है। जो कुछ दृश्यप्रपञ्च है वह सत्यचित्त संवित्की स्पन्द कलासे फुरता है और नानाप्रकार देश, काल, क्रिया और द्रव्य होकर भासता है। उसको आत्मसत्ता किसी यत्नसे नहीं रचती बल्कि स्वाभाविकही फुरनेसे फुरते हैं। जैसे समुद्र तरङ्गोंको किसीयत्न से नहीं उपजाता और लीन करता स्वाभाविकही चमत्कार फुरता और लीन होता है; तैसेही आत्मामें स्वाभाविकही सृष्टि फुरतीहै औरलयहोतीहै। जैसेसमुद्र और तरङ्ग

में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछभेद नहीं—वहीरूप है। जैसे दूध घृतरूपहै घट पृथ्वीरूप है और रेशम तांतरूप है तैसेही जगत् आत्मरूप है। जैसे वटधान्य वृक्षरूपहो भासताहै और समुद्र तरङ्गरूपहोभासताहै तैसेही आत्मा जगत् रूपहो भासता है। हे रामजी! इन दृष्टान्तोंका एक अङ्गलेना; कारणकार्य्य भाव न लेना क्योंकि, आत्मामें न कोई करताहै, न कोई भोक्ताहै और न कोईविनाश होता है केवल आत्मतत्त्व,साक्षी, निरामय और अद्भुत अपनेआप स्वभावसत्तामें स्थित है। यह जगत् आत्माका प्रकाशहै; जैसे दीपक और सूर्य्यका प्रकाश। जैसे पुष्पका स्वभाव सुगन्धहै तैसेही आत्माका स्वभाव जगत्है; किसीकारण कार्य्यसे नहीं हुआ। जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है और आत्मासे कुछभिन्न नहीं हुआ। जैसे पवनका स्वभाव स्पन्दरूपहै और जब निस्पन्दहोता है तब नहींभासता तैसेही आत्मामें संवेदनफुरताहै तब जगत्हो भासता है और जब लयहोता है तब जगत्नहीं भासता। जगत् कुछनहींहै न सत्है और न असत्है। कहीं प्रकटभासता है और कहीं अप्रकट भासताहै और नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है। जैसेवनमें पुष्प का रसहोता है परउनके उपजने और नष्टहोनेसे न वन उपजताहै और न नष्ट होता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्के उपजने और नष्टहोनेसे रहित है वास्तवमें उपजाकुछ नहीं इससे आत्माही अपने आपमें स्थित है पर असम्यक्ज्ञानसे जगत्भासता है और अनन्त शाखाओं से फैलरहा है इसलिये इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटो तब सुखी होगे। जगत्रूपी वृक्षका असम्यक् ज्ञान बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल है और आशारूपी वल्लीसे वेष्टित है; दुःखरूपी उसकी शाखा हैं, भोग और जरारूपी फल हैं और तृष्णारूपी लतासे घिरेहुये भासते हैं। ऐसे संसाररूपी वृक्षको आत्म विवेकरूपी कुठारसे यत्न करके काटकर मुक्त हो। जैसे गजपति अपने बलसे बन्धन तोड़के सुखचित्त विचरताहै तैसेही तुमभी निर्बंध होकर विचरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसर्वैकताप्रतिपादनन्नाम
एकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! ये जो जीव हैं वे ब्रह्मसे कैसे उत्पन्नहुये और कितने हुये हैं, मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जैसी विचित्रता से ये उपजते, नाशहोते, बढ़ते और स्थित होते हैं वह क्रम सुनो। हे निष्पाप राम! शुद्ध ब्रह्मतत्त्व की वृत्ति जो चेतन शक्ति है सो निर्मल है; जब वह स्फुरणरूप होती है तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है और सङ्कल्परूप धारणकरती है; और फिर तन्मय होकर मनरूप होती है। वह मन संकल्पमात्रसे जगत् को रचता है और विस्तार भावको प्राप्त करता है। जैसे गन्धर्व नगर विस्तारको प्राप्त होता है

तैसेही मनसे जगत् विस्तार होता है। ब्रह्मदृष्टिको त्यागके जो जगत् रचता है सो सब आत्मसत्ता का चमत्कार है। हमको तो सब आकाशरूप भासता है पर दूर दर्शीको जगत् भासता है। जैसे चित्त सम्वित् में सङ्कल्प फुरताहै तैसाहीरूप होताहै। प्रथमब्रह्माका सङ्कल्प फुरा है इसलिये उस चित्त सम्वित्ने आपको ब्रह्मारूप देखा और ब्रह्मारूप होकर जब जगत्को कल्पा तब प्रजापतिहोकर चतुर्दश प्रकारके भूत जात उत्पन्न किये; वास्तवमें सब ज्ञप्तिरूप हैं। उसके फुरनेसे जो जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूपहै। वास्तवमें शरीर कुछनहीं सङ्कल्पमात्रहै स्वप्नन- गरवत् भ्रांतिसे भासते हैं। उसभ्रान्तिरूप जगत्में जो जीव हुये हैं और कोई मोहसे संयुक्त है, कोई अज्ञानी है, कोई मध्यस्थितहै और कोई ज्ञानी उपदेष्टा है। जो कुछ भूतजात हैं वे सब आधिव्याधि दुःखसे दीन हुये हैं। उनमें कोई ज्ञानवान् सात्त्विकी हैं और कोई राजसी सात्त्विकी हैं। जो शान्तात्मा पुरुष हैं उनको संसार के दुःखक- दाचित् स्पर्श नहींकरते वे सदा ब्रह्ममें स्थित हैं। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूत जात कहे हैं सो ब्रह्म, शान्त, अमृतरूप, सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यस्वरूप, अन- न्तात्मा और आधिव्याधि दुःखसे रहित निभ्रमहै। जैसे अनन्त सोमजलके किसी स्थानमें तरङ्गफुरते हैं तैसेही परमब्रह्म सत्ताके किसी स्थानमें जगत्प्रपञ्च फुरताहै। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मतत्त्वतो अनन्त, निराकार, निरवयवरूप है उस का एकअंश एकस्थान कैसे हुआ? निरवयवमें अवयवक्रम कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसकरके उपजे हैं अथवा उससे उपजे हैं यह जो कारण और उपादान है वह भ्रांतिमात्र है। यह शास्त्ररचना व्यवहार के निमित्त कही है परमार्थ में कुछ नहीं है अवयवसे जो देशादिक कल्पना है वह क्रमसे नहीं उपजी; उदय और अस्त पर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है पर कल्पना मात्र है। वह कल्पना भी आत्मरूप है। आत्मासे रहित कल्पना भी न कुछवस्तु है, न हुई है और न कुछहो गी। उसमें जो शब्द,अर्थ आदिक युक्तिहै वह व्यवहारके निमित्तहै परमार्थमें कुछ नहीं। शब्द अर्थमात्र जगत्कलना उसकरके उपजीहै और उससे उपजीहै यहद्वितीय कल्पनाभी नहीं यह तो तन्मय शांतरूप आत्माही और कुछनहीं। जैसे अग्निसे अग्नि की लाटें फुरतीहैं सो अग्निरूपहैं; और 'उससे उपजी' और 'उसकरके उपजी' यह कल्पना अग्निमें कोईनहीं, अग्निही अग्निहै; तैसेही जन और जनक अर्थात्कार्य और कारणभेद आत्मामें कोईनहीं। कार्य कारणभाव कल्पनामात्रहै; जहां अधिकता और ऊनता होतीहै वहां कारण कार्यभाव होताहै कि, यह अधिककारण है और वहकार्य है। भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनताभीहै और जहां भेदहोताहै वहांभेद कल्पनाभी हो पर एक अद्वैतमें शब्दकैसेहो और शब्दका अर्थकैसेहो? जैसे अग्नि और अग्नि

की शिखामें भेदनहीं होता तैसेही कारण कार्य्यभाव आत्मा में कोई नहीं—शब्द अर्थ कल्पनामात्रहै । जहां प्रतियोगी, व्यवच्छेद और संख्या भ्रमहोता है वहां द्वैत और नानात्व होता है । जैसे चैतनका प्रतियोगी जड़ और जड़का प्रतियोगी चैतनहै; व्यवच्छेद अर्थात् परिच्छिन्न वहहै जैसे घटमेंआकाश होताहै और संख्या यह है कि जैसे जीव और ईश्वर । यह शब्द अर्थ द्वैतकल्पनामें होते हैं और जहांएक–अद्वैत आत्माहीहै वहां शब्द अर्थ कोईनहीं । जैसे समुद्रमें तरङ्ग बुदबुदे सबहीजल हैं और जलसेकुछ भिन्ननहीं, तैसेही शब्द और अर्थकल्पना ब्रह्महै । जो बोधवान् पुरुष हैं उनको सब ब्रह्महीं भासताहै;चित्तभी ब्रह्महै,मनभीब्रह्महै और ज्ञान,शब्द,अर्थ ब्रह्म हीहै,ब्रह्मसे कुछभिन्ननहीं और उससे जो भिन्नभासताहै वह मिथ्याज्ञानकाविकल्पहै। जैसे अग्नि और अग्निकी लाटोंकीकल्पना भ्रांतिमात्रहै तैसेही आत्मामें जगत्‌की भिन्नकल्पना असत्‌रूपहै । जो ज्ञानसे रहितहै उसकी दृष्टिदोषसे सत्यहोभासता है । इससे सर्वब्रह्म है, ब्रह्मसे भिन्नकुछनहीं । निश्चयकरके परमार्थब्रह्मसे सबब्रह्महीं है । सिद्धांतकाल में तुमको यही दृष्टि उपजेगी । यहजो सिद्धान्त पिञ्जर मैंने तुमसे कहा है उसपर उदाहरण कहूंगा कि,यहक्रम अविद्याका कुछभी नहीं;अज्ञानके नाशहुये अत्यन्त असत्‌जानो गे । जैसे तमसे रस्सीमें सर्पभासताहै और जब प्रकाश उदयहोता है तब ज्योंकात्यों भासताहै और सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै; तैसेही अज्ञान दृष्टिसेजगत् भासता है । जब शुद्धविचारसे भ्रान्ति नष्टहोगी तब निर्मलप्रकाश सत्ता तुमको भासेगी इसमें संशयनहीं । यह निश्चितार्थ है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेब्रह्मप्रतिपादनन्नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

रामजीने पूछा,हे भगवन् ! आपके ये वचन क्षीरसमुद्रके तरङ्गवत् उज्ज्वल; तीनों तापोंके नाशकर्त्ता;हृदयके मलदूर करनेको निर्मलरूप और अज्ञानरूपी तमकेनाशकर्त्ता प्रकाशरूपहैं और गम्भीरहैं;मैं उनकीतोल नहीं पासक्ता एकक्षणमें मैं संशयसे अंधकारको प्राप्तहोताहूं और एकक्षणमें निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्तहोताहूं जैसे चपलरूप मेघसे सूर्य्यका प्रकाश कभी भासता और कभी घिरजाताहै । इससे मेरा संशय दूरकरो कि, अप्रमेयरूप आत्मानन्दसत्ता प्रकाश रूप और असत्य भावसे रहित साररूपहै तो उस अद्वैत तत्त्व में कल्पना कहांसे आई ? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै वह यथार्थ है और जैसे कहा है तैसेहीहै । यह वचन असमर्थभी नहीं क्योंकि, जिसके हृदयमें ठहरें उसको आत्मपद में प्राप्त करें; विरूपभी नहींहै क्योंकि, इनका रूपफल प्रकटहै जिसके धारणसे संसार के सबदुःख मिटजाते हैं और पूर्वापर विरोध भी नहीं है कि,प्रथम कुछ और कहा और पीछे कुछ

और कहा। जो कुछ मैंने कहाहै सो यथार्थकहाहै परन्तु ज्ञानदृष्टि से जब तुम्हारा हृदय निर्मल होगा और विस्तृत बोधसत्ता हृदयमें प्रकाशेगी तबतुम मेरे वचनके तात्पर्य्यको हृदयमें जानोगे। तुमको जो मैं उपदेशकरता हूं सो वाच्य वाचक शास्त्र के सम्बन्ध जतानेके निमित्त करताहूं। जब इन युक्त वचनोंसे तुम जानोगे तबतुम्हें अद्वैतसत्ता निर्मल भासेगी और जो कुछ वाच्य-वाचक शब्द अर्थ रचनाहै उसको त्याग करोगे। ज्ञानवान्को सदा परमार्थ अद्वैत सत्ता भासतीहै। आत्मामें इच्छादिक कल्पना कुछ नहीं; निर्दुःख निर्द्वन्द्व है और जगत् रूपहोकर स्थित हुआ है। इस प्रकारमें तुमको विचित्र युक्तिसे कहूंगा। जबतक सिद्धान्त उपदेशका आकाशहै तबतक आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती। जब आत्म बोध होगा तब आपही जानोगे। अज्ञान रूपी तम वाक्विस्तार विनाशान्त नहीं होता। इसकारण मैं तुमको अनेक युक्तिसे कहूंगा। तबतक सिद्धान्त उपदेशका अवकाशहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताके आश्रय जो संवेदनाभास फुरताहै उसीकानाम अविद्याहै। वह दो रूपरखती है-एक उत्तम और दूसरा मलीन। जो स्पन्दकला अविद्या के नाश निमित्तप्रवर्त्तती है वह उत्तम है और विद्याभी उसीका नामहै और सबदुःख नाशकरती है और जो संसारकी ओर फुरतीहै वह अविद्याहै अर्थात् आत्माकी ओर फुरतीहै सोविद्या है और दृश्यकी ओर जो फुरतीहै वह अविद्याहै पर दोनों स्पन्दरूप हैं। इससे अविद्यासे अविद्याका नाशकरो। जैसे ब्रह्म अस्त्रसे ब्रह्मअस्त्र शान्त होताहै; विषको विष नाश करताहै और शत्रुको शत्रुमारताहै; तैसेही अविद्यासे अविद्या नाश होतीहै। इसी प्रकार तुमभी इसको नाशकरो तब सुख दायक होगे। विचारसे जब इसका नाश होताहै तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई; जैसे दीपकसे अन्धकार देखिये तो नहीं दीखता कि, कहां गया। बड़ा आश्चर्य्यहै कि, जीवका ज्ञान इसने ढांपलियाहै। आत्मसत्ता सदा अनुभव और उदय रूपहै पर अज्ञानी जीवको नहीं भासती। जब तक अविद्या नहीं जानी तबतक फुरतीहै और जबजानी तब नहींजानता कि, कहां गई इससे भ्रममात्र सिद्धहै। बड़ा आश्चर्य्य है कि, मायाने संसार को बांध रक्खा है और सत्यकीनाई प्राप्तहुई है पर असत्य है। बुद्धिमानोंकोभी यह नाशकर छोड़ती है तो और जीवोंका क्याकहनाहै। निरन्तर अभेदरूप आत्मा में अविद्याभेद कल्पना कोई नहीं; जिस पुरुष ने संसार मायाको ज्योंका त्यों जाना है वही पुरुषोत्तम है। जिसको यह भावना हुई है कि अविद्या परमार्थ से कुछनहीं, असत्यरूप है सो ज्ञानवान्है। जोकुछ जानने योग्य है वह उसने जाना है-इसमें संशय नहीं। जब तक तुम स्वरूप में न जागो तबतक मेरे वचन में आसक्त बुद्धि करो और निश्चय धारो कि, अविद्यानाश रूपहै और है नहीं। जोकुछ जगत् दृश्यभासताहै वह मनका मनन

असतरूप है जिसको यह निश्चयहुआ है वही पुरुष मोक्षभागी है । यह जो मन का फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्तहुआहै वह सब ब्रह्मरूपहै। जिसके हृदयमें यह निश्चय स्थित है वहीपुरुष मोक्षभागी है और जिसको चराचर जगत्में दृढ़ भावना है वह बन्धभागी है– जैसे पक्षीजालमें बन्धायमान होताहै । हेरामजी! सम्पूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टिसे बांधे हुयेहैं । सब जगत् स्वप्न भ्रांतिरूप है परउसमें जिस को असत् बुद्धि है अथवा सत्ब्रह्म बुद्धि है वह अशक्तहोकर संसारदुःखमें नहीं डूबता और जिसको अनात्मधर्म देहादिकमें भावना है और स्वरूप में आत्मबोध नहीं वह हर्ष-शोक आपदाको प्राप्त होताहै जिसको स्वरूप में स्वरूपबोध है और अनात्म धर्म्मका त्यागहै उसको संसार अविद्या नहीं रहती और दुःख विकार स्पर्श नहीं कर सक्ता । जैसे जलमें धूलनहीं उड़ती तैसेही उस महात्मा पुरुषके चित्तमें दुःख उदय नहीं होते । ज्ञानवान् पुरुषके हृदयमें जगत्के शब्द अर्थका रङ्गनहीं चढ़ता । जैसे सूत विना वस्त्र नहीं होता–पटतंतुही रूपहै तैसेही आत्मा विना जगत् नहीं होता–जगत् आत्मा रूपहै। जैसे जानके जो व्यवहार में वर्त्तताहै वह पुरुष मानसी दुःखको नहीं प्राप्तहोता और जो अविद्यासे संसार में भटकता है वह आत्मतत्त्वको नहीं पासक्ता और विद्यमानभी उसको नहीं भासता । केवल आत्मज्ञानसे अविद्याका नाश होताहै; जिसको आत्मज्ञान हुआहै वह अविद्यारूपी नदीको तरजाताहै । आत्मसत्ता के प्राप्तहुये अविद्याक्षीण होजाती है; जिनको अविद्यारूपी संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है वे अविद्यारूपी नदी में वहजाते हैं। हे रामजी ! यह अविद्या बड़ेमोह और भ्रमदेती है । जब यह दृढ़होकर स्थित होतीहै तब तत्पदको घेरलेती है; इससे तुम यह न विचारो कि, अविद्या कहां से उपजी है और कौन इसका कारण है यही विचारो कि, यह नाशकैसे होती है । इसके क्षयका उद्यमकरो; जब यह नष्ट होगी तब इसकी उत्पत्तिभी जानलोगे कि, इस प्रकार उपजी है,और यह इसका स्वरूप है; यहकारणहै और यह कार्य्य है। हे रामजी ! अविद्या वास्तवमें कुछहै नहीं, अविचार सिद्धहै और विचार दृष्टिसे नष्ट होजातीहै, तब जानीनहीं जाती कि,कहांगई पर जब स्वरूप विस्मरण होताहै तब उपजकर दृढ़होतीहै और फिर दुःख देतीहै। इससे यत्नकरके इसका नाशकरो । बड़ेबड़े शूरमा हुये हैं पर उनको भी अविद्याने व्याकुल कियाहै; ऐसा बुद्धिवान् कोई नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया । अविद्या सर्वरोगोंका मूल है; यत्नकरके इसकी औषधकरो कि, जिससे जन्म दुःख कुहिरा न प्राप्तहो । जो कुछ आपदाहै उसकी यह अधिष्ठाता सखीहै; अज्ञानरूपी वृक्षकी वेलि है और अनर्थरूपी अर्थकी जननीहै । ऐसी अविद्यारूपी मलीनताको दूर करो जो मोह, भय, आपदा और दुःखकी देनेवालीहै और हृदय में मोह उपजाकर जीवोंको

व्याकुल करती है। अज्ञान चेष्टासे इसकी वृद्धिहोती है। जब अविद्यारूपी संसार समुद्र से पारहोगे तब शान्तिहोगी॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेऽविद्याकथननंनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्यारूपी रोगको काटकर जब शान्तरूप स्थित होते हैं और विचाररूपी नेत्रसे देखते हैं तब यह नष्ट होजाती है। इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुनो, जीव जगत्का विस्तार मैं तुमसे कहताहूं। सात्विक, राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारनेके लिये मैं प्रवर्त्तता था। जो तत्त्वअमृत और ब्रह्म स्वरूप है वह सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यप्रकाश, अनन्त और आदिअन्तसे रहित निःभ्रम है। जब वह चैतन्यप्रकाश स्पन्दरूपहो फुरता है तब दीपकवत् तेजप्रकाश चैतनरूप चित्तकला जगत्को चेतने लगता है—तब जगत् फुरताहै। जैसे सोमजल समुद्रमें द्रवतासे तरङ्ग होता है सो जलसे भिन्न नहीं है तैसेही सर्वात्मासे भिन्नकिसी कलाका रूप कुछ नहीं—यह स्पन्दरूपभी अभेद है। जैसे आकाशमें आकाश स्थित है तैसेही आत्मामें चित्तशक्ति है; जैसे नदीमें वायुके संयोगसे तरङ्ग उठते हैं तैसेही आत्मामें चित्तकला दृश्य जगत् होताहै बल्कि, ऐसेभी नहीं; आत्मा अद्वैत है, स्वतः उसमें चित्तकला होआती है। जैसे वायुमें स्वाभाविक स्पन्द होताहै। स्पन्द और निस्पन्द दोनों वायुके रूप हैं पर जब स्पन्द होता है तब भासता है और निस्पन्द होता है तब अलक्ष होजाता है तैसेही चित्तकला फुरतीहै तब लक्षमें आती है और निस्पन्द हुई अलक्ष होती है तब शब्दकोगम नहीं होती। स्पन्द से जगत् भावको प्राप्त होतीहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग और चक्र फुरतेहैं तैसेही चैतनमें चित्तकला फुरती है। जैसे आकाशमें मुक्तमाल भासतीहै सो है नहीं तैसेही आत्मा में वास्तव कुछ है नहीं पर स्पन्दभावसे कुछ भूषित दूषितहो भासती है। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं परन्तु भिन्नकी नाईं भासतीहै। जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रविसम स्थित होती है तैसेही आत्मामें चित्तशक्तिहै और देश, काल, क्रिया और द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है तैसेही तैसे हो भासतीहै। फिर नामसंज्ञा होतीहै और अपने स्वरूपको विस्मरण करके दृश्यसे तन्मय होती है तो भी स्वरूपसे व्यतिरेक नहीं होती परन्तु व्यतिरेक की नाईं भावना होती है। जैसे समुद्रसे तरङ्ग और सुवर्णसे भूषण भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परन्तु अपने अनन्त सुभावको विस्मरण करके देश, काल, क्रिया, द्रव्यको नहीं मानती, सङ्कल्पके धारनेसेही कल्पना भावको प्राप्त होती है और विकल्प कलनासे क्षेत्रज्ञरूपहोती है। शरीरका नाम क्षेत्र है और शरीर को भीतर बाहर जानने से क्षेत्रज्ञनाम होता है। वह क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है और उस अहंकारसे आत्मासे भिन्न रूप धरती है। फिर अहङ्कार

में निश्चय कलना होती है उसका नाम बुद्धि होता है। अहंभावसे जब निश्चय सङ्कल्प कलना होती है उसका नाम मन होता है; वही चितकला मनभावको प्राप्त होती है। जब मनमें घन विकल्प उठतेहैं तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी भावना से इन्द्रियां फुर आतीहैं और फिर हाथ, पांव, प्राण संयुक्त देहभासि आताहै। इस प्रकार जगत्‌से देहको पाकर जीव जन्म मृत्युको प्राप्त होता है; वासना में बँधाहुआ दुःखके समूहको पाताहै; कर्म्मसे चिन्तामें दीनरहताहै और जैसे कर्मकरताहै तैसेही आकार धरताहै। जैसे समयपाके फल परिपक्कताको प्राप्तहोता है तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जीव दृश्यभावको प्राप्तहोताहै; आपको कारण, कार्य्यमानके अहंभावकोप्राप्त होताहै; निश्चय वृत्तिसे बुद्धिभावको प्राप्तहोताहै और सङ्कल्पसंयुक्त मनभावकोप्राप्त होताहै। वहीमन तबदेह और इन्द्रियांरूप होकर स्थित होताहै और अपना अनन्त रूप भूलजाता है और परिच्छिन्नभावको ग्रहणकरके प्रतियोग और व्यवच्छेदभाव भासताहै और तभी इच्छा, मोहादिक शक्तिको प्राप्तहोताहै। जैसे समुद्रमें नदियां प्रवेशकरतीहैं तैसेही सब आपदा और दुःख आय प्राप्तहोतेहैं। इसीप्रकार अहंकार अपनी रचनासे आपही बन्धमान होता है; जैसे कुसवारी अपने स्थानको रचकर आपही बन्धमान होतीहै। बड़ाखेदहै कि, मन आपही सङ्कल्पसे दृश्यको रचताहै और फिर उसीदेहमें आस्थाकरताहै, जिससे आपही दुःखीहोताहै; भीतरसे तपतारहताहै और आपको बन्धायमानकर संसार जङ्गलमें अविद्यारूप आशाकोलेके फिरता है। अपनेही सङ्कल्पकलनासे तन्मात्रा देहहुई है और उसमें अहंप्रतीत होती है। जैसे जलमें तरङ्ग होतेहैं तैसेही देहादिक उदय हुयेहैं और उनसे बँधाहुआ जीव दुःखित होताहै; जैसे सिंह जंजीरसे बांधाजावे। एक स्वरूपहै वही फुरनेके वशसे नानाभावको प्राप्तहुआहै; कहीं मन, कहीं बुद्धि, कहीं अहंकार, कहीं ज्ञान, कहीं क्रिया, कहींपुर्यष्टक, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं कर्म, कहीं विद्या, कहीं अविद्या और कहीं इच्छा कहाताहै। हे रामजी! इसीप्रकार जीव अपने चित्तसे भ्रममें प्राप्तहुआहै और तृष्णारूपी शोकरोगसे दुःखपाताहै। तुम यत्न करके इससेतरो। जरा मरण आदिक बिकार और संसारकी भावनाही जीवको नष्टकरतीहै। यहभलाहै, ग्रहणकीजिये; यह बुराहै, त्यागकरने योग्यहै; इसीसंकल्प–विकल्पमें ग्रसा अविद्याके रङ्गसे रंजितहुआहै; इच्छा करनेसे इसकारूप सकुचगयाहै और कर्मरूपी अंकुरसे संसाररूपीवृक्ष बढ़गया है जिससे अपना वास्तवस्वरूप विस्मरण हुआहै और कलनासे आपको मलीन जान कर अविद्याके संयोगसे नरक भोगताहै और संसार भावनारूपी पर्वतके नीचे दबकर आत्मपदकी ओर नहीं उठसक्ता। संसाररूपी विषका वृक्ष जरा मरणरूपी शाखा से बढ़गयाहै और आशारूपी फांससे बांधेहुये जीव भटककर चिन्तारूपी अग्निमें

जलतेहैं और क्रोधरूपी सर्पने जीवोंका चर्वण कियाहै जिससे अपनी वास्तवता विस्मरण होगईहै। जैसे अपने यूथसमूहसे भूला हरिण शोकसे दुःखीहोताहै; पतङ्ग दीपककी शिखामें जलमरताहै और मूलसेकाटा कमल विरूप होताहै तैसेही आशा से क्षुद्रहुआ मूर्ख बड़ादुःखपाताहै। जैसे कोईमूढ़ विषको सुखरूप जानके भक्षणकरे तो दुःखपाताहै तैसेही इसको भोगमें मित्रबुद्धिहुईहै परन्तु वह इसका परमशत्रुहै, इसको उन्मत्त करके मूर्च्छा करता और बड़ादुःख देता है। जैसे बांधाहुआ पक्षी पिंजरे में दुःखपाता है तैसेही यह दुःखपाता है। इससे इसको काटो। यह जगत्जाल असत् और गन्धर्व्व नगरवत् शून्यहै और इसकी इच्छा अनर्थका कारणहै; तुम इससंसार समुद्रमें मतडूबो। जैसे हाथी कीचड़से अपनेबलसे निकलताहै तैसेही अपना उद्धार करो। संसाररूपी गढ़ेमें मनरूपी बेलगिराहै जिससे अंगजीर्ण होगये हैं। अभ्यास और वैराग्यके बलसे इसको निकालके अपना उद्धारकरो। जिसपुरुष को अपने मनपरभी दयानहीं उपजती कि, संसार दुःखसे निकले; वह मनुष्यका आकार है परन्तु राक्षस है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवतत्त्ववर्णनन्नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जो जीव परमात्मासे फुरकर संसारभावना करतेहैं उनकी संख्या कुछनहीं कही जाती; कोई पूर्व उपजेहैं, कोई अपूर्व उपजे हैं और कोई अबलक उपजतेहैं। जैसे फुरनेसे जलके कणके प्रकट होते हैं तैसेही ब्रह्मसत्तासे जीव फुरतेहैं पर अपनी वासनासे बांधेहुये भटकतेहैं और विवशहोकर नाना प्रकार की दशाको प्राप्तहोते हैं; चिन्ता से दीनहोजातेहैं और दशोंदिशा जल थलमें भ्रमतेहैं। जैसे समुद्रमें तरङ्गउपजतेहैं और नष्टहोतेहैं तैसेही जीव जन्म और मरण पातेहैं। किसीका प्रथम जन्महुआहै, किसीके सौजन्महोचुकेहैं; कोई असंख्य जन्म पाचुकेहैं; कोई आगेहोंगे; कोई होकर मिटगयेहैं और कोई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञान से भटकेंगे। कोई अब जरामें स्थितहैं; कोई यौवनमें स्थितहैं; कोई मोहसे नष्टहुये हैं; कोई अल्पवय होकर स्थितहैं; कोई अनन्त आनन्दीहुयेहैं; कोई सूर्यवत् उदितरूपहैं; कोई किन्नरहैं; कोई विद्याधरहैं; और कोई सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्ष, वैताल और सर्प हैं। कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण कहाते हैं और कोई श्वांत, चांडाल आदिकहैं। कोईतृण, औषध, पत्र, फूल, मूलको प्राप्तहुये हैं और कोई लता, गुच्छे, पाषाण, शिखरहुये हैं। कोई कदम्ब वृक्ष, ताल और तमालहैं और कोई मंडलेश्वर चक्रवर्त्तीहुये भ्रमते हैं। कोई मुनीश्वर मौनपदमें स्थितहैं; कोई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिकरूपहैं। कोई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशुयोनिमें हैं और कोई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगुलादिकपक्षी हैं। कोईकमल,

कली,कुमुद,सुगंधादिकहैं और कोई आपदासे दुःखीहैं। कोई सम्पदावान् हैं,कोई स्वर्ग और कोई नरकमेंस्थितहैं।कोई नक्षत्र चक्रहैं,कोई आकाशमें वायुहैं,कोई सूर्यकी किरणोंमें और कोई चन्द्रमाकी किरणोंमें रसलेतेहैं। कोई जीवन्मुक्त हैं, कोई अज्ञानसे भ्रमतेहैं; कोई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगको भोगते हैं; कोई परमात्मामें प्रणमीगयेहैं। कोई अल्पकाल और कोई शीघ्रही आत्मतत्त्वमें लयहुये हैं; कोई चिरकालमें जीवन्मुक्त होवेंगे; कोई मूढ़ दुर्भावना करते अनात्मामें भ्रमतेहैं;कोई मृतकहोकर इस जगत् में जन्मते हैं; कोई और जगत्में जा स्थितहोते हैं और कोई न यहां और न वहां उपजते हैं केवल आत्मतत्त्व में लय होते हैं। कोई मन्दराचल, सुमेरु आदि पर्वत होकर स्थित होते हैं; कोई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस, जल आदिक समुद्र हुये हैं। कोई नदियां, तड़ाग, वापिकादि भये हैं; कोई स्त्रियां, कोई पुरुष और कोई नपुंसकरूप हुये हैं। कोई मूढ़, कोई प्रबुध, कोई अत्यन्त मूढ़हुये हैं; कोई ज्ञानी, कोई अज्ञानी, कोई बिषयतप्त और कोई समाधि में स्थित हैं। इसीप्रकार जीव अपनी वासनासे बांधेहुये भ्रमते हैं और संसारभावनासे जगत् में कभी अध और कभीऊर्ध्वको जाकर काम, क्रोधादिक दुःखकी पीड़ा पाते हैं। वे कर्म और आशारूपी फांसी से बांधेहुये हैं और अनेक देहको उठाये फिरते हैं। जैसे भारबाही भारको उठाते हैं तैसेही कोई मनुष्य शरीर से फिर मनुष्य शरीरको धारते हैं; कोई वृक्षसे वृक्ष होते हैं और कोई और से और शरीर धारते हैं। इसीप्रकार आत्मरूपको भुलाकर जो देहसे मिलेहुये बासनारूप कर्मकरते हैं वे उनके अनुसार अध ऊर्ध्वपन्थमें भ्रमते हैं। जिनको आत्मबोध हुआहै वे पुरुष कल्याणरूपहैं और सब दुःखी मायारूप संसारमें मोहितहुये हैं। यह संसार रचना इन्द्रजालकी नाईं है; जब तक जीव अपने आनन्द स्वरूपको नहीं पाता और साक्षात्कार नहींहोता तब तक संसारभ्रम में भ्रमताहै और जिस पुरुषने अपने स्वरूप को जानाहै और जीवकीनाईं त्याग नहींकिया और वारम्बार संसारके पदार्थोंसेरहित आत्माकीओर धावता है वह समयपाकर आत्मपदको प्राप्तहोगा और फिर जन्म न पावेगा। कोई जीव अनेकजन्म भोगके ज्ञानसे अथवा तप से ब्रह्माके लोकको प्राप्तहोते हैं तब परमपद पाते हैं; कोई सहस्रजन्म भोग भोगकर फिर संसारमें प्राप्तहोते हैं; कोई बुद्धिमान् बिबेककोभी प्राप्तहोते हैं और फिर संसारमें गिरते हैं अर्थात् मोक्षज्ञानको पाके फिर संसारी होते हैं; कोई इन्द्रपद पाकर तुच्छबुद्धि से फिर तिर्यक् पशुयोनि पाते हैं और फिर मनुष्याकार धारते हैं; कोई महाबुद्धिवान् ब्रह्मपदसे उपजकर उसीजन्ममें ब्रह्मपदको प्राप्तहोते हैं; कोई अनेक जन्म में और कोई थोड़ेजन्ममें प्राप्तहोते हैं। कितने एक जन्म से और ब्रह्माण्डको प्राप्त होते हैं; कोई इसीमें देवता से पशुजन्म पाते हैं;

कोई पशुसे देवता होजाते हैं और कोई नाग होजाते हैं। निदान जैसीजैसी वासना होती है तैसाहीरूप होजाता है। जैसे यह जगत् विस्ताररूप है तैसेही अनेक जगत् हैं; कोई समानरूप है, कोई विलक्षण आकारहैं; कोई हुयेहैं, कोई होवेंगे; विचित्ररूप सृष्टि उपजती है और मिटती है और कोई गन्धर्व्वभाव, कोई यक्ष, देवता आदिक भावको प्राप्तहुये हैं। जैसे जीव इसजगत् में व्यवहार करते हैं तैसेही और जगतों में भी व्यवहार करतेहैं पर आकार विलक्षणहैं और अपने स्वभाव के वशहुये जन्म मरणपातेहैं। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसेही सृष्टिकी प्रवृत्ति, उत्पत्ति और लयहोतीहै। जब सम्वित स्पन्द होतेहैं तब उपजतेहैं और जब निस्पन्दहोतेहैं तब लयहोतेहैं। जैसे दीपकका प्रकाश लयहोताहै; सूर्य्यसे किरणें निकलती हैं, तप्त लोहे और अग्नि से चिनगारी निकलती हैं; कालमें ऋतु निकलती हैं; पुष्प से सुगन्ध प्रकटहोतीहै और समुद्र से तरङ्ग उपजते और फिर लयहोते हैं तैसेही आत्मसत्तासे जीव उपजते हैं और लय होते हैं। जितने जीवहैं वे सब समय पाके अपने पद में लय होंगे और स्वरूप में इनका उपजना, स्थित, बन्धन नष्ट होना मिथ्या है। त्रिलोकीरूप महामाया के मोह से उपजते हैं और समुद्र के तरङ्गकी नाईं नाश होते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवबीजसंस्थावर्णनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४३॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जीव इसक्रमसे आत्मस्वरूप में स्थित हैं फिर अस्थि, मांससे पूर्ण देह पिंजर इनको कैसे प्राप्तहुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने प्रथम तुमको अनेकप्रकारसे कहाहै पर तुम अबतक जाग्रत नहींहुये। पूर्वापरके विचार करनेवाली तुम्हारी बुद्धि कहांगई? जो कुछ शरीरादिक स्थावर-जङ्गम जगत् दृष्टि आता है वह सब आभासमात्र है और स्वप्नेकी नाईं उठा है पर दीर्घ स्वप्न है और मिथ्याभ्रमसे भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है और भ्रमने से पर्वत भ्रमते भासते हैं; तैसेही जगत् अज्ञानसे भासता है। जिन पुरुषोंकी अज्ञान निद्रा नष्टहुई है और निश्चयसे संसार वासना लगगई है वे प्रबुद्धचित्त हैं। संसार को वे स्वप्नरूप देखते हैं और स्वरूपभावसे कुछ नहीं देखते अपनेही स्वभावमें संसार कल्पित है। जीव संसार मोक्षसे प्रथम सर्वदा सत्रूप देखते हैं और उनकी संसारभावना असत् नहीं होती। वे जगत् आकार सर्वदा अपने भीतर कल्पते हैं और जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभङ्गहोते हैं। जैसे जल में तरङ्ग चञ्चलरूप होते हैं, बीजमें अंकुररहता है और उसीके भीतर पत्र, फूल और फल होते हैं तैसेही कल्पनारूपी देह मनके फुरने में रहती है। हे रामजी! देह न हो परन्तु जहां

मन फुरता है वहांहीं देहरचलेताहै । जैसे स्वप्नमें मनोराज देह रचलेताहै तैसेही यह देह और जगत्‌भी भ्रमसे रचाहुआ है। जैसे चक्रपर चढ़ाया मृत्तिकाका पिण्डघटरूप होजाता है तैसेही मनके फुरनेसे देह बनता है। सब देह मनके फुरने में स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है वह सब सङ्कल्पमात्र है। जैसे मृगतृष्णाका जल असत्‌रूप होता है तैसेही यह जगत् असत्यहै। जैसे बालकको अपनी परछाहींमें बैताल भासता है तैसेही जीवको अपने फुरनेसे देहादिक भासते हैं। हे रामजी! सृष्टिके आदिमें जो शरीर उत्पन्नहुये हैं वे आभासमात्र सङ्कल्पसे उपजे हैं । प्रथम ब्रह्मापद्ममें स्थितहुये और उन्होंने सङ्कल्पके क्रमसे सङ्कल्पपुरकीनाईं विस्तार किया सो सब मायामात्र है। मायाकी घनतासे यह जगत् भासताहै—स्वरूपमें कुछ नहीं। रामजीने पूंछा, हेभगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरनेकोपाकर ब्रह्मपदको प्राप्तहुआ वहब्रह्मा कैसेहुआहै और कैसेस्थितहै वह मुझसे क्रमसे कहिये? वशिष्ठजीबोले, हेमहाबाहु रामजी! प्रथमजिस प्रकार ब्रह्माने शरीरको पाकर ग्रहण कियाहै उसको सुनकर स्थितिभी जानोगे। देश, काल आदिकके परिच्छेदसेरहित आत्मतत्त्व अपनेआपमें स्थितहै। वह अपनीलीला शक्तिसे देश, काल, क्रिया कल्पितरूप हुआहै और उससे जीवके इतने नाम हुयेहैं। वासनासे तद्रूपहुई चित्तकला चपलरूपमनहुआ और वह दृश्यकलनाके सन्मुखहुई। प्रथम उसी चित्तकलाने मानसीशक्तिहोकर आकाशकी भावनाकी और स्वच्छ बीज रूप जो शब्दहै उसके सन्मुख हुई। जैसे नूतन बालक प्रकटहोता है तैसेही आकाश पोलरूप फुरआया। फिर स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरआया। जब शब्द, स्पर्श, आकाश और पवनका संघर्षण हुआ तब मन के तन्मयहोने से अग्नि उपजा और बड़ाप्रकाश हुआ। फिर रस तन्मात्रा की भावना की तब शीतलभावना से जल फुरआया। जैसे अति उष्णतासे स्वेदनिकल आता है। फिर गन्ध तन्मात्राकी भावनाकी उससे घ्राण इन्द्री निकली; स्थूलकी भावना से जलचक्र पृथ्वीहोकर स्थितहुये और आकाशमें बड़ाप्रकाश हुआ। अहंकारकी कलासे युक्त और बुद्धिरूपी बीजसे समुचितरूपहुई और अष्टम जीवसत्ताहुई। इनअष्टकानाम पुर्यष्टक हुआ और वही देहरूपी कमलका भँवरा हुआ। उस आत्मसत्तामें तीव्रभावना करके उस चित्तसत्ता ने बड़ास्थूल वपु देखा। जैसे बीजसे वृक्षफूल होनेसे रस प्रणमताहै तैसेही निर्मल आकाश में वृत्तिस्पन्द अस्पन्दरूप हुई है। जैसे भूषण बनाने के निमित्त सांचे में स्वर्ण आदिक धातु डालते हैं तो वह भूषणरूप होजाती है तैसेही ब्रह्माजीने अपनी चैतन्य संवेदन मनरूपी सम्वितमें तीव्र भावनाकी उससे स्थूलताको प्राप्तहुये। स्वतः यह दृश्यका रूपफुरना क्रमसेहुआ कि, ऊर्ध्वशीशहै, मध्य उदरहै, अधःपादहै, चारों दिशा हाथहैं और मध्यमें उदरधर्म्महै। जैसे नूतन बालक प्रकटहोता है और महा

उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटों के समान उसके अङ्गहोते हैं तैसेही ब्रह्माका शरीर उत्पन्नहुआहै। इसप्रकार वासना और कल्पित मनसे शरीर उत्पन्नकरलियाहै। आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीरहुआहै जो सदा ज्ञानरूप, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, शक्ति, तेज और उदारतासे सम्पन्नस्थित है। इसप्रकार ब्रह्माजी सबजीवों का अधिपति द्रवस्वर्णवत् कांति परमआकाशसे उपजकर आकाररूप स्थितहुआ और अपनी लीलाकेनिमित्त अपने निवासका गृहरचा। हेरामजी! कभीब्रह्मा जी परम आकाशमें रहते हैं; कभी कल्पांतर महाभास्करअग्निमें रहतेहैं औरकभी विष्णुजीकेनाभिकमलमें रहतेहैं। इसी भांति अनेकप्रकारके आसनरचकर कभीकहीं, कभीकहीं स्थित होतेहैं और लीलाकरते हैं। जब परमतत्त्वसे प्रथम वह इसप्रकार फुरतेहैं तब अपने साथ शरीर देखतेहैं; जैसे बालक निद्रासे जागकर अपने साथ शरीर देखतेहैं—जिसमें बाणके प्रवाहसदृश प्राण अपान जाते आतेहैं—तब पंचतत्त्व जोद्रव्यहैं उनको रचतेहैं। इसशरीरमें बत्तीस दांत, तीनथम्भ; पांच देवता-अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, नवद्वार; दो जंघस्थल, दोपांव; दोभुजा; बीस अँगुली; बीसनख, एक मुख और दो नेत्रहैं। कभी अपनी इच्छासे अनेकभुजा और अनेक नेत्र करलेताहै और मांस कहगिलकी है। ऐसाशरीर चित्त रूपी पक्षीका घर है; कामदेव भोगनेका स्थान है; वासनारूपी पिशाचिनीका गृह है; जीवरूपी सिंहकी कन्दरा है और अभिमानरूपी हस्तीका बन है। इसप्रकार ब्रह्मा जीने शरीरको देखा और बड़े उत्तम कान्तिवान् शरीरको देखकर ब्रह्माजी जो त्रिकालदर्शी हैं चिन्तमन करनेलगे कि, इसके आदि क्या हुआहै और अबहमें क्याकरना है; तो उन्होंने क्यादेखा कि, जो आगे भूतका सर्ग वेद संयुक्त व्यतीत हुआहै ऐसे अनेक सर्गहुये हैं। उनके सब धर्म्म स्मरणकरके देखा और वाङ्मय भगवती और वेदका स्मरण किया और सर्व्व सृष्टिके धर्म्म, गुण, विकार, उत्पत्ति, स्थिति, बढ़ना, परिणाम, क्षीण और नाशको स्मृति शक्तिमें देखा। जैसे योगेश्वर ने अपना और और का अनुभव करताहै और चित्तशक्तिमें स्थित होकर स्मृतिशक्तिसे देखलेताहै तैसेही ब्रह्माजी ने दिव्यनेत्रसे अनुभव किया। फिर इच्छाहुई कि, विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करूँ। ऐसे विचारकर प्रजाको उत्पन्नकिया और जैसे गन्धर्व्वनगर तत्काल होजाता है तैसेही सृष्टि होगई है। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उनके साधन रचे और फिर उनमें विधिनिषेध रचे कि, यह कर्त्तव्यहै, यह अकर्त्तव्यहै; उनके अनुसार फलकी रचना की और शुभ अशुभ विचित्रता रची। हे रामजी! इसप्रकार फुरनेसे सृष्टि हुईहै और फुरने की दृढ़तासेही स्थित है। उसमें तीनकाल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म्म रचे हैं। जैसे नीतिरची है तैसे ही स्थित है। जैसे बसन्त ऋतुमें पुष्प उत्पन्न होतेहैं तैसेही ब्रह्माके मनने सृष्टिरचीहै। यह विचित्ररूप रचनाका बिलास चित्ररूप

ब्रह्माके चित्तमें कल्पितहै; कालमें उत्पन्नहुई है और कालहीसे स्थितहै। स्वरूपमें न कुछ उपजाहै और न कुछ नष्टहोताहै।जैसेस्वप्न सृष्टिहोतीहैतैसेही यहसंसाररचनाहै॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारप्रतिपादनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४॥
वशिष्ठजी बोले , हेरामजी ! इसप्रकार जो उपजाहै वह कुछनहीं उपजा और न स्थितहै—शून्य आकाशरूप है और मनके फुरनेसे सृष्टिभासती है । बड़े देश, काल क्रिया संयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टिआताहै उसने परमार्थसे कुछभी स्थाननहीं रोका, स्वप्न पुरवत् सङ्कल्पमात्र है और आधार बिनाचित्र है । जैसे मृत्तिका चित्र आधारबिना मिथ्याहोताहै तैसेही यह जगत् बड़ा भासताहै पर मिथ्याहै,असत्य तमरूपहै और आकाशमें चित्रकीनाईं है। जैसे स्वप्ने में भासरूप जगत् भासताहै वह असत्रूपहै तैसेही यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेसे भासताहै—मनका फुरनाही इसका कारणहै । जैसे नेत्रका कारण प्रकाशहै तैसेही जगत्का कारणचित्तहै । सब जगत् आकाशमात्रहै और घट,पट, गढ़ाआदिक क्रमसहित भी असत्रूपहै ! जैसे जलमें जो चक्रावर्त्त भासते हैं वे असत्यरूपहैं तैसेही पर्वतादिक जगत् असत्यरूपहैं; अपने निवासके निमित्त मनने यहशरीर रचाहै। जैसे कुसवारी अपने निवासके निमित्तगृह रचतीहै और आपही बन्धनमें आतीहै तैसेही मन शरीरादिकको रचकर आपहीदुःखी होताहै। ऐसापदार्थ कोईनहीं जोसङ्कल्पसेरहित सिद्धहो और मनकेयत्नसे सिद्धनहो, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनसे सिद्ध होताहै । परमात्मा जो देवहै वह सर्व्व शक्तिमान्है, मनभी उसीकी शक्तिहै, वह कौन पदार्थ है जो मनसे सिद्ध न हो; मनसे सबकुछ बन जाताहै क्योंकि; जो कुछ पदार्थ हैं उनमें सत्ता परमात्माकीहै—उससेकुछ भिन्न नहीं। इससे परमात्मा देवमें सबकुछ सम्भवहै। आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होकर उदय हुई है। उस भावना के अनुसार उसने आपको ब्रह्माका शरीर देखा और उसने कलना रूप देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जङ्गमरूप जगत् रचाहै और सङ्कल्प में स्थितहै। जबतक उसका सङ्कल्प है तबतक तैसेही स्थित है । जब सङ्कल्प मिटजावेगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावेगी। जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही जगत् भी होजावेगा क्योंकि, आकाशवत् सबही कलनामात्र है और दीर्घ स्वप्नवत् स्थित है। वास्तव में न कोई उपजा है, न मरता है। परमार्थ से तो ऐसे हैं और अज्ञान से सब पदार्थ विकार संयुक्त भासते हैं। न कोई वृद्धि है, न कोई नष्ट होताहै उसमें और विकार कैसे मानिये ? जैसे पत्रकी रेखाके उपजने और नाश होनेमें बनको कुछ अधिकता और न्यूनता नहीं होती तैसेही शरीरके उपजने और नष्ट होनेमें आत्मा को लाभ हानि कुछ नहीं। सब जगत् दृश्य भ्रांति से भासता है। ज्ञानदृष्टि से देखो अज्ञानीवत् क्यों मोहित होतेहो ? जैसे मृगतृष्णा का जल प्रत्यक्ष भासता है तौभी

मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसेही ब्रह्मा से आदि तृणपर्य्यन्त सब भ्रांतिमात्र है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मिथ्या ज्ञानसे जगत् भासता है। जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष स्थान चलते दृष्टि आते हैं तैसेही भ्रमदृष्टि से जगत् भासताहै। इस जगत्को तुम इन्द्रजालवत्जानो; यह देहपिञ्जर है और मन केमननसे असत्यरूपही सत्यकीनाईं स्थितहुआ है। जगत् द्वैत नहीं है मायासेरची ब्रह्मसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थितहै और शरीरादिक कैसे किसकीनाईस्थितकहिये। पर्बत तृणादिक जो जगत् आडम्बर है वह भ्रान्तिमात्र मनकी भावनासेदृढ़हो भासता है और असत्यही सत्यरूपहो स्थितहुआहै। हे रामजी! यह प्रपञ्च नानाप्रकारकी रचना संयुक्त भासताहै पर भीतरसे तुच्छहै। इसकी तृष्णा त्यागके सुखीहो; जैसे स्वप्नेमें बड़े आडम्बर भासतेहैं सो भ्रान्तिमात्र असत्यरूपहैं वास्तवमें कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् दीर्घकालका स्वप्नाहै, चित्तसेकल्पितहै और देखनेमें बड़ा बिस्ताररूप भासता है बिचार करके ग्रहणकरिये तो कुछ हाथ नहींआता। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रतमें कुछ नहीं मिलती और कुसवारीको अपनारचा गृहबन्धन करताहै तैसेही अपनारचा जगत् मनको दुःखदेताहै; इससे इसको त्यागकरो। जिसपुरुषने इसको असत्य जाना है वह जगत्की भावना फिर नहीं करता। जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जानाहै वह पानके निमित्त नहीं धावता और जैसे अपने मनकी कल्पस्त्रीसे बुद्धिवान् रागनहींकरता; तैसेही ज्ञानवान् जगत्के पदार्थों में रागनहीं करता और जो अज्ञानी है वह रागकरके बन्धायमान होताहै। जैसे स्वप्नेमें असत्य स्त्रीसे चेष्टाकरताहै तैसेही अज्ञानी असत्यजगत्को सत्यजानके चेष्टाकरताहै; बुद्धिमान् सत्यमानकर नहींकरता। जैसे रस्सीमें सर्प भासताहै तैसेही मनके मोहसे जगत् भासताहै और भयदायक होता है पर सब भावनामात्रहै। जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब चञ्चल भासताहै और उसके ग्रहणकी इच्छा बालककरताहै, बुद्धिमान् नहीं करताहै; तैसेही जगत् के पदार्थोंकी इच्छा अज्ञानी करतेहैं ज्ञानवान् नहींकरते। हेरामजी! यह मैंने परमगुणों का समूह तुमको उपदेश कियाहै। इसकी भावनाकरके तुम सुखीहोगे। जो मूर्ख इन बचनोंकोत्यागके दृश्यकीओर सुखरूपजानकेलगतेहैं वे ऐसेहैं जैसे कोईशीतसेदुःखी हो और प्रत्यक्ष अग्निकोत्यागकर जलमें प्रतिबिम्बित अग्निका आश्रयकरे और उससे जाड़ा निवृत्तकियाचाहे तो वह मूढ़है। तैसेही आत्मविचारको त्यागके जो जगत्के पदार्थोंकी सुखकेनिमित्त इच्छाकरतेहैं वे मूढ़ हैं। सब जगत् असत्यरूपहै और मनके मननसे रचाहै। जैसे स्वप्नेमें चित्तसे नगर भासताहै तो यदिवह नगर जलताभासे तो पुरुष कदाचित् नहीं जलता तैसेही जगत्के नाशहुये आत्मानाश नहीं होता। वह उपजने, बढ़ने, घटने और नाशहोनेसे रहित है। जैसे बालक अपनी क्रीड़ाके

निमित्त हाथी घोड़ा नगर रचलेताहै और समेट छोड़ताहै तोवह उपजने मिटनेमें ज्योंका त्यों है और जैसे बाजीगर बाजीको फैलाता है और फिर लयकरता है तो उत्पात्तिलयमें बाजीगर ज्योंकात्योंहै तैसेही आत्मा जगत्कीउत्पत्तिलयमें ज्योंकात्योंहै उसका कुछ कदाचित् नष्टनहींहोता। जो सबसत्यहै तो किसीका कुछनाश नहीं होता इसकारण जगत्में हर्षशोक करना योग्यनहीं और जो सबअसत् है तौभी नाशकिसीका न हुआ और दुःखभी किसीको नहुआ । सत्य असत्य दोनोंप्रकार हर्ष शोक नहींहोता। स्वरूपमें किसीका नाशनहीं और सबजगत् ब्रह्मरूपहै तो दुःखसुख कहां है ? ब्रह्मसत्तामें कुछ द्वैत जगत् बनानहीं, सबजगत् प्रत्यक्ष जो अनन्वय होताहै तौभी असत्रूपहै। उस असत्रूप संसारमें ज्ञानवान्को ग्रहणकरने योग्य कोई पदार्थनहीं और सब जगत्में ब्रह्मतत्त्वहै—कुछ भिन्ननहीं तो त्रिलोकीमें तो इसीपदार्थके ग्रहण त्यागकी इच्छाकीजिये। जगत् सत्यरूपहो अथवा असत्य ज्ञानवान्को सुखदुःख कोईनहीं। तृतीयभ्रांति दृष्टि अज्ञानीको दुःखदायकहोतीहै। जो वस्तुआदि अन्तमें असत्यहै उसेमध्यमेंभी असत्यजानिये और उसकेपीछे जो शेषरहता है वहसत्य रूपहै जिससे असत्यभी सिद्धहोताहै । जिनकी बाल बुद्धि मोहसे आवृत हैं वे जगत्के पदार्थोंकी इच्छाकरते हैं—बुद्धिमान् नहीं करते। बालकको जगत् विस्ताररूप भासताहै ; उससे वे अपना प्रयोजन चाहते हैं और सुखदुःख भोगते हैं। तुम बालक मतहो,जगत् अनित्यहै, इसकी आस्था त्यागकरसत्यात्मा में स्थितहो। जो आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत्रूप जानो तौभी विषाद कुछनहीं और जो आप संयुक्त सबसत्य जानो तौभी इस दृष्टि से हर्ष शोक नहीं । ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं। आप संयुक्त सब असत्यरूप जानोगे तो दुःख न होगा वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य अस्तहुआ और सबसभा नमस्कार करके अपने २ स्थान कोगई और सूर्यकी किरणों के निकलतेही फिर अपने अपने आसन पर आ बैठे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेयथार्थ उपदेशयोगोनाम पंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५ ॥

वशिष्ठजीबोले,हे रामजी! जोधन, स्त्री आदि नष्ट होजावें तो इन्द्रजालकी बाजीवत् देखिये। इससेभी शोककाअवसर नहीं होता। जो क्षण में दृष्टिआये और फिर नष्ट होगये उनका शोककरना व्यर्थहै। जैसे गन्धर्वनगर जो रत्नमणिसे भूषित कियाहो अथवा दुःखसे दूषित कियाहो उसमें हर्षशोकका स्थानकहां है;तैसेही अविद्यासेरचे पुत्र, स्त्री, धनादिकके सुखदुःखका क्रमकहांहै ? जो पुत्र, धनादिक बढ़े तौभी हर्षकरना व्यर्थहै क्योंकि, मृगतृष्णाका जल बढ़ाभी अर्थ सिद्धनहीं करता;तैसेही धन,दारादि-

क बढ़े तो हर्षकहां है; शोकवान्ही रहता है ? वह कौन पुरुषहै जो मोह मायाके बढ़े शांतिमान्हो ? वहतो दुःखदायक हीहै । जोमूढ़हैं वे भोगोंको देखके हर्षवान् होते हैं और अधिकसे अधिक चाहतेहैं और बुद्धिमानोंको उन भोगोंसे वैराग्य उपजता है। जिनको आत्माका साक्षात्कार नहींहुआ और भोगोंको अन्तवन्त नहींजानते उनको भोगकी तृष्णा बढ़तीहै और जो बुद्धिमान् हैं वे भोगोंको आदिसे अन्तवन्त जानते हैं और दुःखरूप जानकर उसकी इच्छा नहीं करते। इससे हेराघव! ज्ञानवान्कीनाईं व्यवहारोंमें विचरो । जो नष्टहो सोहो और जो प्राप्तहो सोहो उसमें हर्षशोक न करना। उसको यथाशास्त्र हर्षशोकसे रहित भोगो और जो न प्राप्तहो उसकीइच्छा न करो। यह पण्डितोंका लक्षण है। हे रामजी! यह संसार दुःखरूप भोगसे आया है, इसमें मोहको प्राप्त न होना;जैसे ज्ञानवान् विचरतेहैं तैसेहीबिचरना मूढ़वत् नहीं विचरना। यहसंसार आडम्बर अज्ञानसे रचाहै; जो इसको ज्योंकात्यों नहीं देखते वे कुबुद्धि नष्ट होतेहैं संसारके जिन२ पदार्थोंकी इच्छाहोती है वे सब बन्धन के कारणहैं और उनमें जीव डूबजाता है। जो बुद्धिमान् हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते और जिसने निश्चयसे जगत् को असत्यरूप जाना है वह किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता; अविद्यारूप पदार्थ उस को खेद नहीं देते और वस्तु बुद्धिसे वह खैंच नहीं सक्ताहै। जिसकी बुद्धिमें यह निश्चयहुआ कि, 'सर्व मैंहूं, वह किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! शुद्धतत्त्व जो सत्य असत्य जगत् के मध्यभाव में है उसका हृदयसे आश्रयकरो और जो भीतर बाहर जगत् दृश्यपदार्थ हैं उनको मत ग्रहणकरो। इनकी आस्था त्यागकरके परमपदको प्राप्तहोकर अतिविस्तृत स्वच्छरूप आत्मामें स्थितहो और रागद्वेषसे रहित सब कार्यकरो। जैसे आकाश सब पदार्थोंमें व्यापक और निर्लेपहै तैसेही सब कार्यकरतेभी निर्लेपहो। जिस पुरुषको पदार्थोंमें न इच्छा है, न अनिच्छाहै औरजो कर्मोंमें स्वाभाविक स्थितहै उसको कर्म का स्पर्श नहीं होता वह कमलवत् सदा निर्लेप रहता है। देखना, सुनना आदिक व्यवहार इन्द्रियों से होताहै; इससे तुम इन्द्रियों से व्यवहारकरो अथवा न करो परन्तु इन में निरिच्छित रहो और अभिमानसे रहित होकर आत्मतत्त्व में स्थितहो। इन्द्रियों के अर्थका सार जो अहंकार है जब यह हृदयमें न फुरेगा तब तुम योग्यपदको प्राप्तहोगे और राग द्वेषसे रहित संसार समुद्र को तरजावोगे। जब इन्द्रियों के राग द्वेषसे रहितहो तब मुक्तिकी इच्छा न करे तो भी मुक्तिरूप है। हे रामजी! इसदेह से आपको व्यतिरेक जानकर जो उत्तम आत्मपदहै उसमें स्थित होजावो तब तुम्हारा ऐसापरमयशहोगा जैसे पुष्पसे सुगन्धि प्रकट होती है। इस संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है उसमें जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी नावपरचढ़ते हैं वे तरजाते हैं और जो नहीं चढ़ते

वे डूबजाते हैं । यह बोध मैंने तुमसे क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्णकहा है । यह अविद्या का काटनेवाला है इसको विचारकर आत्मतत्त्व में स्थित हो । जैसे तत्त्ववेत्ता आत्म-तत्त्वको जानकर व्यवहारमें विचरते हैं तैसेही तुमभी विचरो, अज्ञानीकी नाईं न विचरना । जैसे जीवन्मुक्त पुरुषका नित्य तृप्त का आचारहै उसको तुमभी अङ्गीकार करना, भोगमें दीन न होना और मूढ़के आचारवत् आचार न करना । जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं वे न कुछग्रहण करते, न त्यागकरते हैं और न किसीकी वांछा करतेहैं । वे जैसाव्यवहार प्रारब्धवेगसे प्राप्तहोता है उसीमें विचरते हैं और रागद्वेष किसीमें नहीं करते । बड़ा ऐश्वर्य्य हो; बड़े गुणहों; लक्ष्मीआदिक बड़ी विभूतिहो तो भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहींकरते । महाशून्य वनमें वे खेदवान् नहींहोते और देवताका सुन्दर वन विद्यमान होता उससे हर्षवान् नहीं होते उन्हें न किसी से इच्छा है, न त्यागहै; जैसी अवस्था आनप्राप्तहो रागद्वेषसे रहित उसीमें विचरते हैं । जैसे सूर्य्यसमभाव से लीन विचरता है तैसेही वे अभिमानसे रहित देहरूपी पृथ्वीमें विचरते हैं । अब तुमभी विवेकको प्राप्तहोजावो, बोधके बलमें स्थितहो और किसी पदार्थकी ओर दृष्टि न करो । निर्वैर, निर्मन दृष्टिको ले विचरो और समभाव में सम उत्तमभाव पृथ्वीमें स्थितहोकर संसारकी इच्छा दूरसे त्यागकर यथाव्यवहारमें विचरो और परमशांतरूप रहो । वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार निर्मल वाणीसे वशिष्ठजीने कहा तब रामजी का निर्मल चित्त अमृतसे शीतल और पूर्णहुआ । जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृतसे शीतल पूर्ण होताहै तैसेही रामजी शान्त होकर पूर्णहुये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेयथाभूतार्थबोधयोगोनाम
षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! आप सर्व धर्म और वेदवेदांतके पारज्ञहैं;आपके शुद्ध, उदार, विरक्तरूप, कोमल और उचित वचनोंसे मैं स्वस्थहुआहूं और उन अमृत रूपी वचनों को पानकर मैं तृप्तनहीं होता । हे भगवन् ! आपराजस—सात्त्विकजगत् कहनेलगेथे सो कुछ संक्षेपसे कहा था कि, उसमें अवकाशपाकर आपने ब्रह्माजीकी उत्पत्तिकही उसमें मुझको यह सन्देह उत्पन्नहुआ कि, कहीं ब्रह्माकी उत्पत्तिकमल से कहीहै कहीं आकाशसे कही, कहीं अण्डेसे कही और कहीं जलसे कहीहै सो विचित्र रूप शास्त्रने कैसे कहा । आप सब संशयके नाशकर्त्ता हैं कृपाकरके शीघ्रमुझको उत्तर दीजिये । वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! कईलक्ष ब्रह्मा और अनेक विष्णु और रुद्र हुये हैं और अब भी अनेक ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकारके व्यवहार संयुक्त प्रस्तुत हैं । कितने तुल्य होतेहैं; कितने बड़े छोटे कालके स्वप्नजगत्कीनाईं उत्पन्न होतेहैं; कितने बीते हैं; और कितने आगे होंगे उनमेंसे तुमने एक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछीहै सोसुनो।

यहभी अनेक प्रकारके होतेहैं; कभी सृष्टि सदाशिवसे उत्पन्न होती है, कभी ब्रह्मासे; कभी विष्णुसे और कभी मुनीश्वर रचलेते हैं। कभी ब्रह्मा कमलसे उपजते हैं; कभी जलसे; कभी पवनसे और कभी अण्डेसे उपजे हैं। कभी किसी ब्रह्माण्ड में इन्द्र त्रिनेत्र होते; कभी विष्णु होतेहैं और कभी सदाशिव होतेहैं। कभी सृष्टिमें पर्वत उपजते हैं और कभी मनुष्योंसे और कभी वृक्षोंसे पूर्ण होतीहै। सृष्टिकी उत्पत्ति भी अनेक प्रकार होती है, किसी ब्रह्माण्डमें मृत्युका भय होताहै, कभी पाषाणमय होतीहै, कभी मांसमय होतीहै और कभी सुवर्णमय होती है। कई सृष्टियोंमें चतुर्दशलोकहैं; किसी सृष्टिमें कईलोक हुये हैं और किसी सृष्टिमें ब्रह्मानहीं हुये। इसीप्रकार अनेकसृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वसेफुरी हैं और फिर लयहुई हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्गउपजकर लयहोतेहैं तैसेही आत्मामें अनेक सृष्टि उपजकर लय होजातीहैं। जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदीभासती है औरपुष्पमें सुगन्धि होतीहै तैसेही परमात्मामें जगत्है। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें त्रसरेणुभासते हैं और उनकी संख्यानहीं कहीजाती यदिकोई ऐसा समर्थभीहो कि, उनकी संख्याकरे परन्तु ब्रह्मतत्त्वमें जो सृष्टि फुरतीहैं उनकी संख्या वहभी न करसकेगा। जैसे वर्षाऋतुमें गनियेके क्षेत्रमें मच्छर होतेहैं और नष्टहोजाते हैं तैसेही आत्मामेंसृष्टि उपजकर नष्टहोजातीहै। वहकाल नहीं जानाजाता जिसकाल मेंसृष्टिका उपजना हुआहै। आत्मतत्त्वमें नित्यही सृष्टिका उपजना औरलयहोनाहै। जैसे समुद्रमेंपूर्वापर तरङ्गफुरतेहैं उनकाअंतनहीं इसीप्रकार सृष्टिका आदि औरअन्त कुछनहीं जानाजाता। देवता, दैत्य, मनुष्यआदिक कितनेउपजकर लयहुयेहैं और कितने आगे होंगे। जैसे यहब्रह्माण्ड ब्रह्मासे रचागयाहै तैसेही अनेकब्रह्माण्ड होगयेहैं और जैसे अनेक घटिका एक वर्षमें व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्गहोते हैं तैसेही ब्रह्मतत्त्व में असंख्य जगत् होतेहैं। कितनी सृष्टि हो बीती हैं, कितनी अबहैं और कितनी आगे होंगी जैसे मृत्तिका में घट होता है; वृक्षमें अनेकपत्र होते हैं फिर मिटजाते हैं और जैसे जबतक समुद्रमें जलहै तबतक तरङ्ग—आवर्त्त निवृत्त नहीं होते उपजते और लयहोते हैं तैसेही ब्रह्मचिदाकाश है। त्रिलोकी जगत् उपज २ कर उसी में लयहोते हैं। जबतक अपने स्वरूपका प्रमादहै तबतक विकारसंयुक्त जगत् है और बड़े विस्तारसे भासताहै। जब आत्मस्वरूप देखोगे तब कोई विकार न भासेगा। जबतक आत्मदृष्टिसे नहीं देखा तबतक आभास गतिमें उपजते और मिटते हैं पर न सत्य कहे जासक्ते हैं और न असत्य कहे जासक्ते हैं। वास्तवमें ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, समुद्रमें तरङ्ग की नाईं अभेदहै; अविद्यासे भिन्नहोकर भासते हैं और विचार कियेसे निवृत्त होजाते हैं। चर अचररूप जगत् जो नानाप्रकारकी चेष्टा संयुक्त अनन्त सर्वेश्वर आत्मामें फुरते हैं सो। उससे भिन्ननहीं जैसे शाखा

और फूल,फल वृक्षसे भिन्न नहीं और भिन्नभासतेहैं तौभी अभिन्नहैं; तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न भासते हैं तौभी भिन्न नहीं आत्मरूप हैं । हे रामजी ! मैंने जो तुमसे चतुर्दश भुवन संयुक्त सृष्टि कहीहैं उनमें कोई अल्प कनिष्ठरूपहै और कोई बड़ी है पर सब परमात्मा आकाश में उपजती हैं और वही रूपहै । ब्रह्मतत्त्व से कभी प्रथम ब्रह्म आकाशउपजताहै और प्रतिष्ठापाताहै फिर उससे ब्रह्मा उपजताहै और उसका नाम आकाशजा होताहै । कभी प्रथम पवन उपजता है और प्रतिष्ठित होताहै फिर उससे ब्रह्मा उपजता सो वायुजा कहाता है। कभी प्रथम जल उत्पन्न होता है उससे ब्रह्मा उपजकर जलजानाम होताहै और कभी प्रथम पृथ्वी उत्पन्न होके विस्तारभाव को प्राप्त होती है और उससे ब्रह्मा उपजता है और पार्थिवजा उसका नाम होताहै एवम् अग्निसे उपजताहै तब अग्निजा नाम पाताहै । हे रामजी! यह पंचभूतसे जो ब्रह्माकी उत्पत्तिहुई वह तुमसेकही । जब चारतत्त्व पूर्ण होतेहैं और पंचमतत्त्व सबसे बढ़ताहै तब उससे प्रजापति उपजकर अपने जगत्को रचताहै और कभी ब्रह्म-तत्त्वसे आपही फुर आताहै । जैसे पुष्पसे सुगन्धि फुरआती है तैसेही ब्रह्माजी उपज कर पुरुष भावनासे पुरुषरूप स्थित होताहै और उसका नाम स्वयंभू होताहै । कभी पुरुष जो विष्णुदेव है उसकी पीठि से उपजता है; कभी नेत्रसे प्रकट होता है और कभी नाभिसे उत्पन्न होताहै तब प्रजापति, नेत्रजा, पद्मजा नाम होताहै । वास्तवमें सब मायामात्रहै और स्वप्नवत् मिथ्यारूपहो सत्यहो भासताहै । जैसे मनोराज की सृष्टिभासआतीहै तैसेही यह जगत्है और जैसे नदी में तरङ्ग अभिन्नरूप फुरते हैं तैसेही आत्मामें अभेद जगत् फुरताहै वास्तवमें दूसरा कुछ नहीं है जबशुद्धसत्ता का आभास संवेदन फुरताहै तबवही जगत्रूप हो भासताहै । जैसे बालकके मनो-राजमें सृष्टिफुरतीहै सो वास्तवमें कुछनहींहोती तैसेही यहहै । कभीशुद्ध आकाशमें मननकला फुरतीहै उससे सुवर्णका अंड उपजताहै और अंडसे ब्रह्मा उपजआताहै और कभी पुरुष विष्णुदेव जलमें वीर्य्यडालताहै उससे पद्मउपजताहै और उसीपद्मसे ब्रह्मा प्रकट होते हैं और कभी सूर्य्यसे फुर आते हैं । इसी प्रकार विचित्र रूप रचना ब्रह्मपदसे उपजतीहै और फिरलय होजातीहै । तुम्हारे दिखानेके निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कहीहै पर यह सब मनके फुरनेमात्र है और कुछ नहीं । हे रामजी ! तुम्हारे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहाहै पर इसकारूप मनोमात्रहै, उपज २ कर लय होजाता है । फिर२ दुःख,सुख;अज्ञान,ज्ञान;बन्ध–मोक्षहोतेहैं और मिटजाते हैं। जैसे दीपकका प्रकाश उपजकर नष्ट होजाताहै तैसेही देह उपजकर नष्ट होजातेहैं। काल की ऊनता और विशेषता यहीहै कि,कोई चिरकाल पर्य्यन्त रहताहै और कोई शीघ्रही नष्ट होजाताहै परन्तु सबही विनाशरूपहैं ब्रह्मासे आदि कीट पर्य्यन्त जो कुछ

आकार भासताहै वह कालके भेदको त्यागकरदेखो कि, सब नाशरूपहैं। कभी सत-युग, कभी त्रेतायुग, कभी द्वापर और कभी कलियुग फिर फिर आते और जातेहैं। इसीप्रकार कालकाचक्र भ्रमता है। मन्वन्तरका आरम्भ होता है और कालकी पर-म्परा व्यतीत होतीहै। जैसे प्रातःकाल में फिर प्रातःकाल आता है तैसेही जगत्की वही२ गतिहै अन्धकारसे प्रकाश होताहै और जगत् ब्रह्मतत्त्वसे स्फुरणरूप होकर फिर लीन होताहै। जैसे तप्तलोहे से चिनगारें उड़तीहैं सो लोहेमेंही होतीहैं तैसेही यह सब भाव चिदाकाशसे उपजताहै और चिदाकाशमेंही स्थितहै। कभी अव्यक्त रूप होताहै और कभी प्रकट होताहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग और वृक्षमें पत्र होते हैं तैसेही आत्मामें जगत्है और जैसे नेत्रदूषणसे आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे आत्मामें जगत् भासते हैं और उसी में स्थित और लयहोते हैं जैसे चन्द्रमाकी किरणें उत्पन्न और स्थित होकर लय होतीहैं तैसेही आत्मा में जगत्है सो स्वरूपसे कहीं आरम्भ नहीं हुआ मनके फुरनेसे भासताहै। हे रामजी! आत्मा सर्व्वशक्तिहै जो शक्ति उससेफुरतीहै वह उसीकारूपहो भासतीहै। सबजगत् असत्यरूपहै जिसके चित्तमें महाप्रलयकीनाईं असत्यका निश्चय है वह पुरुष फिर संसारीनहीं होता। स्वरूपमें लगारहताहै। ऐसे महासती ज्ञानवान्की दृष्टिमें सर्वब्रह्म का निश्चय होताहै। हमको यही निश्चयहै कि,संसार नहीं सर्वब्रह्मतत्त्वही है और सदा विद्यमानहै। अज्ञानकी दृष्टिमें जगत् निरन्तर सत्यरूपहै और संसार उसको विद्यमान है सो फिर२उपजकर नष्ट होताहै। स्वरूप उपजने बिनशनेसेभी नष्टनहीं होता परन्तु अज्ञानी जगत्को असत्यनहीं जानते सदास्थित जानते हैं उससे नष्ट होते हैं। जगत् के सबपदार्थ विनाशरूपहैं परन्तु दृश्यसे जगत् असत्यनहीं भासता। जिन पदार्थोंकी सत्यता दृढ़ होगईहै वे नाशरूप हैं—कुछ न रहेगा। कोईपदार्थ सत्य भासताहै, कोई असत्यभासताहै, इस जगत्में ऐसा कौन पदार्थहै जो कलनारूप करनेसे विस्ताररूप ब्रह्म में न बने। यह जगत् महाप्रलयमें नष्ट होजाताहै और फिर उत्पन्न होताहै। जन्म और मरण होताहै और सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत सब फिर फिर उपज आते हैं। जैसे सूर्य्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहतीहै तैसेही सृष्टि उदय अस्त होती भासती है। देवता और दैत्य लोकान्तर क्रम होतेहैं और स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य्य, वरुण, अग्नि आदिक लो-कपाल फिर फिर होते हैं। सुमेरु आदिक स्थान फुरआते हैं और तमरूप हस्ति के भेदने को सूर्य्यरूप केशरीसिंह उपज आतेहैं। स्वर्ग्ग, इन्द्र, अप्सरागण अमृतसे होआते हैं और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म्म, शुभ, अशुभरूप होआतेहैं और यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व्व क्रिया संयुक्त संसारी जीव होते हैं। शुभ कर्म्म

करने वाले स्वर्ग्गमें बिचरते हैं और सुख भोगते हैं पर पुण्यकेक्षीणहुये गिरादिये जाते हैं और मृत्युलोकमें आतेहैं। इसप्रकार कर्म्म करते,उपजते और नष्ट होतेहैं। स्वर्ग रूपी कमलमें इन्द्ररूपी भँवरे हैं जो स्वर्ग कमल की सुगन्धको लेने आते हैं।जितना पुण्यकर्म्म क्रिया होतीहै उतनेकाल सुख भोगकर नष्टहोजातेहैं और सत्ययुग आदिक युग और सर्व देश,काल,क्रिया,द्रव्य,जीव उपज आते हैं। जैसे कुलाल चक्रसे बासन बनाताहै तैसेही चित्तकला फुरनेसे जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है।जीवसंयुक्त सुन्दर स्थान होतेहैं और फिर नष्ट होजातेहैं।असत्य मात्र जगत्जाल जीवसे रहित शून्य मसान होजाताहै और कुलाचल पर्व्वतके आकारवत् मेघजलकी बर्षा करते हैं उसमें जीव बुद्बुदेरूप होकर स्थितहोतेहैं। द्वादश सूर्य्याग्नि उदय होतेहैं, शेषनाग के मुखसे अग्नि निकलती है उससे सब जगत् दग्ध होजाता है और फिर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है एक शून्य आकाशही शेष रहताहै। औररात्रिहोजाती है। जब रात्रि का भोग होचुकता है तब फिर जीव जीर्ण देहसे संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रच लेताहै। इसप्रकार शून्य आकाशमें मन जगत्को रचता है। जैसे शून्य स्थानमें गन्धर्ब मायासे नगर रचलेता है तैसेही जगत् को मन रचलेता है और फिर प्रलय होजाता है। इसप्रकार जगत्गण उपजकर महाप्रलय में नष्ट होते हैं और ब्रह्मा के दिन क्षयहुये फिर जब ब्रह्माका दिन होताहै तब फिर रचलेता है फिर महाप्रलय में ब्रह्मादिक सब अन्तर्द्धान होजाते हैं। इसीप्रकार प्रलय,महाप्रलय होके अनेक जगत् गण व्यतीत होते हैं और महादीर्घ माया रूपी कालचक्र फिरता है उसमें मैं तुमको सत्य और असत्य क्या कहूँ? सब भ्रातरूप दासुर के आख्यानवत् हैं और कल्पना मात्र रचितचक्र बास्तवमें शून्य आकाशरूप है और बड़ेआरम्भ संयुक्त बिस्तार रूप भासता है पर असत्यरूपहै। जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही यह जगत् मूढ़के हृदय में सत्यभासता है। तुम मूढ़ न होना, ज्ञानवान्वत् बिचारकर जगत् को असत्य जानना॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्सत्यासत्यनिर्णयोनाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका भोग और ऐश्वर्य्यमें चित्त खिंचाहै वे नाना-प्रकार के राजस, तामस और सात्विक कर्म्म बड़े आरम्भ से करते हैं। पर वे मूढ़ आत्मा शान्ति नहीं पाते, जब वे भोगकी तृष्णासेरहितहों तब आत्माकोदेखें। जिस पुरुष को इन्द्रियां बश नहीं करसक्तीं वह आत्मा को हाथ में बेलफलवत् प्रत्यक्ष देखताहै और जिस पुरुषने विचार करके अहंकाररूपी मलीन शरीरका त्याग किया है उसका शरीर जगत्रूप होजाताहै। जैसे सर्प्प कंचुकीको त्यागताहै और नव तन

पाताहै तैसेही मिथ्या शरीरको त्यागकर आत्मविचारसे वह आत्म शरीरको पाता है। ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं वे जगत्के पदार्थोंमें आसक्त भासते हैं परजन्म मरणनहीं पाते । जैसे अग्नि से भूनाबीज खेतमें नहीं उपजता तैसेही ज्ञानवान् फिर जन्मनहींपाता। जिस अज्ञानी की भोगों में आसक्त बुद्धि है वह मन और शरीरके दुःखसे दुःखीहोकर बारम्बार जन्म और मरणपाताहै। जैसे दिन होताहै और फिर रात्रि होतीहै तैसेही वह जन्म मरणपाताहै। इससे तुमअज्ञानीकी नाईं न होना। व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानीकी होतीहै तैसेही करो परन्तु हृदयसे भो-गादिककी ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायणहो। रामजीने पूछा,हे भगवन्! आप ने जो कहा कि, संसार चक्र दासुरके आख्यानवत् है, कल्पनाकरके रचित है और उसका आकार बास्तवमें शून्यहै यह आपने क्या कहा ? इसको प्रकट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मायारूप जगत् मैंने वर्णनके निमित्त तुमसेकहा है और दासुरके प्रसङ्गसे कुछप्रयोजन नथा परन्तु तुमनेपूछाहै तो अब सुनो। हे रामजी!इस सृष्टिमें मगधनाम एकदेशहै जो बड़े २ कदम्बों, बनस्पतियों औरतालोंसे विचित्ररूप पंखोंसहित मनकेमोहनेवाला अनेकवृक्षों और फूलों फलों से पूर्ण है जिनपर कोकिला आदिक पक्षी शब्दकरते हैं। उसनगर में एकपरमधर्म्मात्मा तपसीदासुर नामहुआ जो बनमें जाकर कदम्ब वृक्षपर बैठकेतपकरताथा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह ऋषीश्वर तपसी वनमें किसनिमित्त आयाथा और कदम्ब वृक्षपर किस निमित्तबैठा वह कारण कहिये ? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! सरलोमा नाम ऋषीश्वर उसका पिता मानो दूसरा ब्रह्मा उस पर्व्वत पर रहता था। उसके गृह में दासुर नाम पुत्रहुआ– जैसे बृहस्पति के गृहमें कचहो निदान दासुर संयुक्त उसने बनमें चिरकाल व्यतीत किया और युग के क्षीण हुये देहका त्यागकर स्वर्ग्गलोकमें गया–जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाशमें उड़ताहै। तब उस वनमें दासुर अकेला रहगया और पिताके वियोग से ऐसे रुदन करनेलगा जैसे हथिनी वियोगसे कुरलाती है और जैसे हिम ऋतु में कमलकी शोभा नष्ट होजाती है तैसेही दीन होगया। वहां अदृष्ट शरीर वन-देवीथी उसने दया करके आकाशवाणी की कि, हे ऋषिपुत्र ! अज्ञानीकी नाईं क्या रुदन करताहै ? यह सर्व्व संसार असत्रूपहै। तू इस संसारको देखतानहीं कि, यह नाशरूप और महा चञ्चलहै; सब कालउत्पन्न और विनाश होताहै और कोई पदार्थ स्थितनहीं रहता। ब्रह्मासे आदि कीट पर्य्यन्त जोकुछ जगत् तुझको भासताहै वह सबनाशरूप है–इसमें कुछ संदेह नहीं। इससे तू पिताके मरने का विलाप मत कर। यहबात अवश्य इसीप्रकारहै कि, जो उत्पन्नहुआ है वह नष्ट होगा, स्थिरकोई न रहे-गा–जैसे सूर्य्य उदय होकर अस्त होताहै। हे रामजी ! जब इसीप्रकार शरीरदेवीकी

वाणी दासुरने सुनी तो धैर्य्यवान् हुआ और जैसे मेघका शब्द सुनकर मोर प्रसन्नहोताहै तैसे शांतिमान् होकर यथाशास्त्र पिताकी सब क्रियाकी। इसके अनन्तर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम किया परन्तु अज्ञात हृदयथा। ऐसा श्रोत्री होकर तपके निमित्त उठ विचार किया कि, कोई पवित्रस्थानहो वहां जाकर तपकरूं। निदान देखता २ पृथ्वीके किसीस्थानमें चित्तविश्रान्तवान् नहुआ सब पृथ्वी उसको अशुद्ध ही दीखी कहीं कोई विघ्नभासे और कहीं कोई विघ्न दृष्टिगोचर हो। निदान उसने विचार किया कि, और स्थान तो सब अशुद्ध हैं परन्तु वृक्षकी शाखापर बैठकरतप करूं। ऐसा कोई उपायहो जो वृक्षकी शाखाके अग्रभाग में मैं स्थितिपाऊं। ऐसी चिन्तनाकरके उसने अग्नि जलाई और अपने मुखकामांस काट २ कर होमनेलगा। तब देवताका मुखजो अग्निहै उसने विचारा कि, ब्राह्मणका मांस मेरे मुख में न आवै और बड़े प्रकाशसे देहधरकर ब्राह्मणके निकट आया और कहा, हे ब्राह्मणकुमार ! जो कुछ तुझको वांछितवरहै वह मांग। जैसे कोई भण्डारको खोलकर मणिलेता है तैसेही तू मुझसेवरले तब दासुरने पुष्प,धूप,सुगन्धि आदिकसे अग्निका पूजनकिया और प्रसन्न होकर कहा, हे भगवन् ! प्राणाहुती के पवन शरीरसे मैंने तप करनेके निमित्त उद्यम किया है सो और कोई शुद्ध स्थान मुझको नहीं भासताहै इसलिये मैं चाहताहूं कि, इस वृक्षकी अग्रशिखामें स्थित होनेकी मुझको शक्तिहो और यहाँ बैठकर मैं तपकरूं। यहीवर मुझको दो तब अग्निदेवने कहा ऐसेही हो। इसप्रकार कहकर अग्नि अन्तर्द्धान होगया जैसे सन्ध्याकालके मेघ अन्तर्द्धान होजाते हैं। तब वर पाके ब्राह्मणकुमार ऐसा प्रसन्नहुआ जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण कलाओंसे प्रसन्न होता है और जैसे चन्द्रमाके प्रकाश को पाकर कमलिनी शोभित होतीहै तैसेही वरपाके वह शोभित हुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेवनोपरुदनंनामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! इसप्रकार वरको पाकर दासुर कदम्ब वृक्षकी टासपर जो अद्भुत और बड़ासुन्दर था और जिसका पत्र आकाशमें लगताथा जा बैठा तो उसने दिशाका चञ्चलरूप कौतुक देखा कि, दृश्यरूप मानों चञ्चल पुतली है, श्याम आकाश उसका शीश है, श्यामकेशही प्रकाशरूप है, पाताल उसकेचरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है और पुष्पवत् गौरअङ्ग है। ऐसी दृश्यरूपी एकस्त्री है, समुद्रकैलास जिसके भूषणहैं, प्राणरूपी फुरने से चलती है, मोहरूपी शरीर है, वनस्पति रोम हैं, सूर्य्य चन्द्रमा उसके कुण्डल हैं, पर्व्वत बड़े हैं, पवन प्राणवायु है, दिशाहस्त हैं,

समुद्र आरसी है, सूर्य्यादिक उष्णता उसका पित्त है और चन्द्रमा कफ है। ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेअवलोकनंनामएकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ४९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस वृक्षके ऊपर स्थित होकर वह तप करनेलगा उसकानाम कदम्ब तपासुरहुआ। एकक्षण उसने दिशाको देख वहांसे वृत्तिको खींचा और पद्मासन बांधकर मनको एकाग्र किया। दासुर परमार्थ पदसे अज्ञातथा इसलिये फलकी कृपणतासे कर्मान्तरमें स्थितथा और फलकीओर उसका मनथा। मनसे उसने यज्ञका आरम्भाकिया और जो कुछ सामग्रीकी विधिथी वह सब यथाशास्त्र मनसेहीकी और दश वर्ष मनमें व्यतीत किये। उसने सब देवताओंका पूजन किया और गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मनसे किये और ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणादी। इसप्रकार समयपाकर उसकाअन्तःकरण शुद्धहुआ और विस्तीर्ण निर्मल चित्तमें स्थित हुआ। जो बलात्कारसे उसके हृदय में ज्ञानप्रकाशित होकर आत्माके आगे मलीन वासनाका जो आवरणथासो नष्ट होगया और जैसे शरत्काल में तड़ाग निर्मल होताहै तैसेही उस मुनीश्वर का चित्त संकल्पसे रहित हुआ। एक दिन उसने एक वन देवीको जिसके बड़े विशालनेत्र, चपलरूप, पुष्पोंकी नाईं दांत और रतिके समान महासुन्दर शरीर था कामके मदसे पूर्ण मनके हरनेवाली अग्रभागमें देखी कि, नम्रहोकर देखतीहै मुनीश्वरने उससे कहा, हेकमलनयनि! तू कौन है? कैसी तू शोभितरूप है और इन पुष्पोंसे संयुक्तलता में किस निमित्त आई है? तब कामदेवके मोहनेवाली गौरी बोली, हे मुनीश्वर! जो पदार्थ इसपृथ्वीमें बड़े कष्ट से प्राप्त होताहै वह महापुरुषोंकी कृपासे सुगमतासे मिलताहै। हम इसवनके देवता लीलाकरते फिरते हैं और जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आईहूं वह सुनो। हे मुनीश्वर! पिछलेदिन चैत्रशुक्ल त्रयोदशीथी, उसदिन इन्द्रके नन्दनवनमें उत्साह हुआ था। सब वनदेवियां एकत्रहोकर त्रिलोकीसे आईं और सब पुत्रों संयुक्त पुष्पोंसे बड़े विलास क्रीड़ा करतीथीं पर मैं अपुत्र थी इसकारण मैं दुःखित हुई और उस दुःखके दूर करनेके लिये तुम्हारे पास आई हूं। तुम अर्थके सिद्धकर्त्ता हो और बड़े वृक्षपर स्थितहो। मैं अनाथ पुत्रकी वांछाकर तुम्हारे निकटआईहूं, इससे मुझको पुत्रदो और जो न दोगे तो मैं अग्नि जलाकर जलमरूंगी और इसप्रकार पुत्रका दुःख दाह निवृत्त करूंगी हे रामजी! जब इसप्रकार वनदेवीने कहा तब मुनीश्वर हँसे और दयाकरके हाथमें पुष्प दिया और कहा, हे सुन्दरि! जा तेरे एक मासके उपरांत पूजनेयोग्य और महासुन्दर पुत्रहोगा परन्तु तूने जो इच्छाधारी

थी कि, जो पुत्र न प्राप्तहोगा तो जल मरूंगी, इससे अज्ञानी पुत्रहोगा पर यत्नसे उसको ज्ञान प्राप्तहोगा । जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा तब प्रसन्न होकर वन-देवीने कहा, हे मुनीश्वर ! मैं यहां रहकर तुम्हारीं टहल करूंगी । परन्तु मुनीश्वर ने उसका त्यागकिया और कहा, हे सुन्दरि ! तू अपने स्थानमें जारह । तब वह वनदेवियों में जारही और समयपाके उसके पुत्र उत्पन्नहुआ । जब वह दशवर्षका बालकहुआ तब वहउसे मुनीश्वर के निकट लेआई और पुत्रसंयुक्त प्रणामकरके पुत्रको मुनीश्वरके आगे रखकर कहा, हे भगवन् ! यह कल्याणमूर्त्ति बालक तुम हम दोनों का पुत्र है । इसको मैंने सम्पूर्ण विद्या सिखाकर परिपक्व कियाहै और अब वह सर्वका वेत्ताहुआ है परन्तु केवलज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ जिससे इससंसार यन्त्रमें फिर दुःखपावे-गा इसलिये आप कृपाकरके इसको ज्ञान उपदेश करो । हे प्रभो ! ऐसाकौन कुलीन है जो अपने पुत्रको मूर्खरखना चाहे । हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा तब मुनीश्वर बोले तुम उसको यहां छोड़जावो । तब वह देवी उसको छोड़कर चलीगई, बालक पिता के पासरहा और बड़े यत्नसे उसको ज्ञान की प्राप्ति हुई । मुनीश्वरने नानाप्रकार के उक्त आख्यान, इतिहास और अपने दृष्टान्त कल्पकर चिरपर्यन्त पुत्रको जगाया और वेद वेदान्त का निश्चय अनुद्वेग होकर उपदेश किया । विस्तार-पूर्वक कथाके क्रम जो अनुभव और बड़े गूढ़अर्थ हैं वेभी कहे और जो अपने अनुभव वशसे प्रत्यक्ष था सोभी बलकरके उपदेशकिया कि, जिससे वह जगा औरशान्त आत्मा हुआ । तब तो जैसे मेघके शब्दसे मोर प्रसन्नहोताहै तैसेही वह बालक प्रसन्नहुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरसुतबोधनन्नामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उसी समय मैंभी कैलास वाहिनी गङ्गाजी के स्नानके निमित्त अदृष्ट शरीर संयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षियोंके मण्डलसे चलाजाताथा । जिसवृक्षपर वह बैठाथा जब उसके पीछे मैंआया तो कुछ शब्द सुना कि, उसवृक्षके ऊपर छिद्रसे शब्द होताहै । मूंदे कमलसे भँवरेके शब्दवत् कोई इसप्रकार कहताहैकि, हे पुत्र ! सुन । मैं तुझसे वस्तुके निरूपणके निमित्त एकआश्चर्यमय आख्यान कहताहूं । महापराक्रमी और त्रिलोकमेंप्रसिद्ध श्वेतथनामी एकराजाहै जो बड़ालक्ष्मीवान् जगत् की रचनाक्रम करता है । सब मुनि जो जगत् में बड़े नायक हैं वेभी उत्तम चूड़ामणि करके उसको शीशमें धरते हैं और वह असंख्य कर्म और नाना प्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है । उस महात्मा पुरुषको त्रिलोकीमें किसीने वशनहीं किया; सहस्रों उसके आरम्भ हैं और सुख और दुःख देनेवाला है । उसके आरम्भकीसंख्याकुछ नहीं कही जाती—जैसे समुद्रके कलोल तरङ्गोंकी कुछ संख्या नहीं कही जाती तैसेही उसके आरम्भ हैं—और उसका पराक्रम किसी शस्त्र, अस्त्र और अग्निसे नष्टनहीं

होता। जैसे आकाशको मुष्टिप्रहारसे तोड़नहीं सक्ती तैसेही वह है। उसकी विस्तृत भुजाहैं और लीला करके आरम्भ रचताहै। उसके आरम्भको कोई दूरनहीं करसक्ता; इन्द्र, विष्णु और सदाशिव भी समर्थ नहीं हैं। हे महावाहो! उसके तीनदेह हैं जो दिशाको भररहे हैं। उनतीनों देहोंसे वह जगत्में उत्तम, अधम, मध्यम करके फैल रहाहै और बड़े विस्ताररूपी आकाशसे उत्पन्न हुआहै और वहांहीं शरीरमें स्थित हुआहै। जैसे आकाशका पक्षी आकाशमें रहताहै और जैसे पवन आकाशमें है ऐसेही वह पुरुष जगत्में फैलरहाहै। उस परमआकाशमें उसने वगीचे संयुक्त एकस्थान अपनी क्रीड़ाके निमित्त रचाहै और पर्व्वतके शिखरमें मोतीकी वेलेंरची हैं। उसमें सात वावलियोंसे वह स्थान शोभताहै और दो दीपक उसमें रचे हैं जो तेल और वातीविना प्रकाशते हैं और शीत और उष्णरूप हैं, कभी अधको और कभीऊर्ध्वको नगरमें भ्रमते हैं। उसने मूर्खबरांक गणभी रचे हैं, कोई ऊर्ध्वमें स्थितहै कोई मध्यमें और कोई अधमें स्थितहै। कोई दीर्घकालमें नष्ट होते हैं, कोईशीघ्रही नष्ट होजाते हैं, कोई वस्त्रोंसे आच्छादित हैं और कोई वस्त्ररहित हैं। उस नगरमें उसने नवद्वार स्थानकियेहैं और उसमें निरन्तर वहुतसे वृक्ष रोपे हैं। उसने पञ्चद्वीप देखने निमित्त किये हैं और तीन स्तम्भ रचना किये हैं, जिनमें और छोटे स्तम्भभी हैं। मूलमेंके स्तम्भों पर लेपन कियाहै और पाद तलसे संकुलकिये हैं निदान महामायासे उस राजाने वह नगर रचाहै और नगरकी रक्षा निमित्त सेना रचीहै। एक नीति देखने वाले यक्ष हैं, विचरक गणसे वे चलते नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं। उन शरीरोंसे वह सव ठौरोंमें विचरताहै; यक्ष सव ठौरोंमें समीप रहताहै और लीला करके एक स्थानको त्याग कर और स्थानमें जाकर चेष्टाकरताहै। कभी इच्छाहोतीहै तव चञ्चल चित्तसे भविष्यत् पुरको रचकर उसमें स्थित होताहै और कभी भयसे वेष्टित हुआ वहांसे उठ आता है और वेगकरके गन्धर्व्वनगर रचता फिरता है। जव इच्छाकरता है कि, मैं उपजूं तव उपज आताहै और जव इच्छा करताहै कि, मैं मरजाऊं तव मर जाताहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते हैं और फिर लय होजाते हैं उसी प्रकार वह राजा बड़े व्यवहार करता है और वारम्वार रचना करके कभी आपही रुदन करने लगता है कि, मैं क्याकरूं; मैं अज्ञानी दुःखीहूं; और चित्तसे आतुर होताहै और कभी ऐसे विचार करके उदय होकर वड़ास्थूल होजाता है—जैसे वर्षा कालकी नदी वढ़तीहै तैसेही वढ़कर आपको सुखी मानताहै और विस्तार पाकर चलता फिरताहै और वड़े प्रकाशसे प्रकाशता है उस महीपति की वड़ी महिमा है और उचितरूप होकर नगर में स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेस्वेतथवैभववर्णनन्नामएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५१॥

हेरामजी ! जब इसप्रकार दासुर ने कहा तब पुत्रने प्रश्नकिया कि, हे भगवन् ! वह स्वेतथ राजा कौनहै कि, जगत्में जिसकी कीर्त्तिप्रसिद्धहै और उसने कौन नगर रचा है जो भविष्यत् नगर में रहता है ? रहना तो वर्त्तमान में होता है भविष्यत् में कैसे रहता है ? यह विरुद्ध अर्थ कैसेहै ? इन वचनोंसे मेरी बुद्धि मोहित हुईहै । दासुरबोले, हे पुत्र ! मैं तुझसे यथार्थ कहताहूं तू सुन ; जिसके जानेसे संसार चक्रको ज्योंका त्यों देखेगा कि, यह वास्तवमें क्या है । यह संसार आरम्भ सत्य विस्तार संयुक्त भासताहै तौभी असत्यरूपहै कुछ हुआ नहीं । जैसे यह संसार स्थितहै तैसे मैं तुझसे कहताहूं । यह आख्यान मैंने तुझसे जगत् निरूपण के निमित्त कहाहै । हे पुत्र ! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है उससे जो संकल्पउठाहै उस संकल्पका नाम स्वेतथहै । वह आपही उपजताहै और आपही लीनहोजाताहै । सबजगत् उसका रूप है जो बड़े विस्तार संयुक्त भासता है और उसके उपजने से जगत् उपजता और नष्ट होनेसे नष्ट होताहै । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक सब उसके अवयव हैं । जैसे वृक्षके अङ्गटास होते हैं और पर्वत के अङ्ग शिखर होते हैं तैसेही उसके अङ्ग शून्य आकाश में हैं उससे यह जगत्रूपी नगर रचाहै । प्रातिभासके अनुसन्धानसे वही चित्तकला विरञ्चि पदको प्राप्तहुई है । चतुर्दश स्थान जो कहे हैं वे विस्तार संयुक्त चतुर्दशलोक हैं और वन, बगीचे, उपवन संयुक्त पर्वत महाचल, मन्दराचल, सुमेरु आदिक क्रीड़ा के स्थान हैं । उष्ण शीत जो दो दीपक तेलबाती विना कहे हैं वे सूर्य और चन्द्रमा हैं जो जगत्रूपी नगर में अध ऊर्द्ध को प्रकाशते हैं । सूर्यकी किरणों का जो प्रकाशहै वही मानों मोतीके तरंग फुरतेहैं और क्षीर जल आदि जो सात समुद्र हैं वे बावलियां हैं । उसमें जीव व्यवहार करते, लेते, देते अध–ऊर्द्ध को जाते हैं–पुण्यसे स्वर्गलोक में जाते हैं और पापसे नरकमें चले जाते हैं । जगत् में संकल्प से जो क्रीड़ाके निमित्त उसने विवरगण रचे हैं वे देह हैं; कोई देवता होकर ऊर्द्ध स्वर्ग में रहते हैं, कोई मनुष्य होकर मध्यलोक में रहते हैं और कोई दैत्य होकर नाग लोक आदिक पाताल में रहते हैं । पवनरूपी प्रवाहसे समस्त यन्त्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी उनमें लकड़ियां हैं और रक्त–मांससे लेपन किये हैं । कोई दीर्घकाल में और कोई शीघ्रही नष्ट होजाते हैं । शीशपर केश श्याम वस्त्र हैं और करण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और मूत्र पुरीषके स्थान, लिङ्ग इन्द्रिय और गुदा ये नवद्वार हैं जिनसे निरन्तर पवन चलता है । शीत उष्णरूप पान अपान हैं, नासिका आदिक उसके झरोखे हैं; भुजारूप गलियां हैं; और पंचदीपक पंच इन्द्रियां हैं । हे महाबुद्धिमान् ! ये सर्व संकल्परूपी माया से रचे हैं; अहंकाररूपी यक्ष है; महाभय का स्थान यह अहंकारसे होता है और देहरूपी विवरगण अहंकाररूपी

यक्षसंयुक्त विचरतेहैं वे असत्यरूपहैं परन्तु सत्यहोकर इसके साथ क्रीड़ा करते हैं। जैसे भाण्डमें विलाव, बांबीमें सर्प और बांसममेंमोती हैं तैसेही देहमें अहंकारहै जो क्षणमें उदय होताहै और क्षणमें शांत होजाताहै। दीपकवत् देहरूपी गृहमें संकल्प उठताहै, जैसे समुद्रमें तरंग उठतेहैं और भविष्यत् नगर भासताहै। सुन, अपना जोकोई स्वार्थ चितवताहै कि, यह कार्य इसप्रकार करूंगा और फलाने दिन इसदेश में जाऊंगा तो जैसेचितवताहै तैसेही भासिआताहै और उसमें जा प्राप्तहोताहै। जब तक दुर्वासनाहै तबतक अनेक दुःख होतेहैं और यह दुष्ट मन अहंकारसे स्थूल हो-जाताहै और संकल्पसे रहितहुये शीघ्रही इसका नाशहोता है। जब तू संकल्प नाश करेगा तब शीघ्रही कल्याण पावेगा। अपना संकल्प उठकर आपहीको दुःखदायक होताहै—जैसे बालकको अपनी परछाहींमें वैताल कल्पनाहोती है और आपही भय पाताहै तैसेही अपना संकल्प अनन्त दुःखदायक होताहै,उससे सुख कोई नहींपाता। संपूर्णजगत् विस्तार संकल्पसे होता है और आत्माकी सत्तासे बढ़ता और फिर नष्ट होजाताहै—विचार कियेसे नहीं रहता। जैसे सायंकालमें धूपका अभाव होजाता है और प्रकाश उदय हुये तमका अभाव होजाताहै तैसेही विचारसे संकल्प आपही नष्ट होजाते हैं। मन आपही क्रिया करताहै और आपही दुःख पाताहै और रुदन करने लगताहै—जैसे वानर काष्ठके यन्त्रकी कीलको हिलाकर फँसताहै और दुःख पाता है; तैसेही अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है। संकल्पसे कल्पित विषयका आनन्द जब जीवको प्राप्त होताहै तब वह ऊंची ग्रीवा करके हर्षवान् होताहै—जैसे किसी वृक्षके फल ऊंटके मुखमें आलगें और वह ऊंची ग्रीवा करके विचरे तैसेही अज्ञानीजीव विषयकी प्राप्तिमें ऊंचीग्रीवाकरके हर्षवान् होतेहैं। क्षणमें जीवको विषय की प्राप्ति उपजतीहै और विशेष करके इष्टकी प्राप्तिमें बढ़ते हैं पर जब कोई दुःख होताहै तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठजातीहै और क्षणमें विकारीहोताहै और क्षणमें प्रसन्न होकर वस्तुगुणकी प्राप्तिमें हर्षवान् होताहै। शुभसंकल्पसे शुभकोदेखता और अशुभ संकल्पसे अशुभको देखताहै। शुभसे निर्मलहोताहै और अशुभसे मलीनहो-ताहै;आगे जैसे तेरी इच्छाहो तैसेकर। श्वेतथके जो मैंने तुमसे तीनशरीर कहेथे—उत्तम, मध्यम और अधम वे सात्त्विक,राजस, तामस यहीतीन गुण तीन देहहैं।येही सबके कारणजगत्में स्थितहैं; जब तामसीसंकल्पसे मिलता है तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करके महा कृपणताको प्राप्त होताहै और मृतकहोकर कृमि और कीट योनि जन्म पाताहै। जबराजसी संकल्पसे मिलताहै तब लोकव्यवहार अर्थात् स्त्री,पुत्रादि-कके रागसे रंजित होताहै और पापकर्म नहीं करता तो मृतक होकर संसारमें मनुष्य शरीर पाताहै जब सात्त्विकीभावमें स्थित होताहै तब धर्म ज्ञान परायण होताहै;मोक्ष

पदकी उसको अन्तर्भावना होतीहै और धर्मज्ञान पाकर चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं स्थित होताहै । जब उन भावोंको त्याग करताहै तब संकल्पभाव नष्ट होजाताहै और अक्षय परमपदशेष रहताहै । इससे संसार दृष्टिको त्याग करके और मनसे मनको वश करके भीतर बाहरहो जोदृश्यका अर्थ चित्तमें स्थितहै उससंस्कारको निवृत्त करके शान्तात्माहो । हेपुत्र ! इसबिना और उपाय नहीं । जो तू सहस्र वर्ष दारुण तपकरे अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्णकरे; समुद्रमें प्रवेशकरे,बड़वाग्निमेंप्रवेश करे; गढ़ेमेंगिरे; खड्गधारा के सन्मुखयुद्ध करे अथवा सदाशिव,ब्रह्मा, विष्णु वा,बृहस्पति दयाकरके तुझे उपदेशकरें और पाताल,पृथ्वी,स्वर्ग इत्यादिक और स्थानोंमें जावे तौभी और उपायकल्याणके निमित्त कोई नहीं । जैसे सङ्कल्पका उपशम करना उपाय है तैसे जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परमपावन सुख है वहसङ्कल्पके उपशमसे पाताहै । इससे यत्नसे सङ्कल्प को उपशम करो । जो कुछ भावपदार्थ हैं वे सब सङ्कल्परूपी तत्वसेपिरोये हुये हैं।जबसङ्कल्परूपी तांतटूटताहै तब नहीं जानाजाताकि, पदार्थ कहांगये । सत्यअसत्य सब पदार्थ सङ्कल्पमात्र हैं । जबतक सङ्कल्पहै तबतक ये भासते हैं और सङ्कल्पके निवृत्तहुये असत्य होजातेहैं । सङ्कल्पसे जैसी२ चिन्तना करताहै क्षणमें तैसेही होजाताहै । संसार भ्रम सङ्कल्पसे उदयहुआहै,और सङ्कल्प निवृत्तकियेसे चित्त अद्वैतके सन्मुख होताहै । सर्वजगत् असत्यरूपहै और मायासे रचाहै; जब सङ्कल्पको त्यागकर यथाप्राप्तिमें विचरेगा तब तुझको खेद कुछ न होगा । असत्यरूप जगत्के कार्यमें दुःखितहोना व्यर्थहै; जबआप संयुक्त जगत्को असत्य जानोगे तबदुःखीभी न होगे जबतक जगत्का सद्भान भासताहै तबतक दुःख होताहै और जब असत्यजाना तब दुःखभी नहीं रहता । बोधवान्कोकोई दुःखभीनहीं भासता; इससेजो नित्यप्राप्त सत्तारूपहै उसमें स्थित होकर विकल्पके बड़े समूहोंको त्यागकरो और अद्वैत आत्मामें विश्राम सुखको प्राप्तहोकर सुषुप्तिरूप चित्तवृत्ति को धारके विचरो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारविचारोनामद्विपंचाशत्तमस्सर्गः ५२ ॥

इतनासुन पुत्रने पूंछा; हे भगवन्!सङ्कल्पकैसाहै और वह उत्पन्न, वृद्ध और नाश कैसे होताहै ? दासुर बोले,हे पुत्र ! अनन्त जो आत्मतत्त्वहै वह सत्तासमान रूपहै; जबवह चेतनसत्ता द्वैतके सन्मुख होतीहै तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूपहै वही बीजरूप संवित् उल्लासमात्र सत्ताको पाकर घनभावको प्राप्तहोताहै ; फुरनाकर आकाशको चेतताहै और आकाशको पूर्णकरताहै । जैसेजलसे मेघस्पष्ट होताहै तैसेही फुरनेकी दृढ़तासे आकाश होताहै । अपना स्वरूप आत्मसत्तासे भिन्नभासताहै-यह भावना चित्तमें भावितहोजातीहै । जैसे बीज अंकुरभावको प्राप्त होताहै तैसेही चित्त-

संवित् सङ्कल्प भावको प्राप्तहोताहै। सङ्कल्पहीसे सङ्कल्प उपजताहै और आपही बढ़ता है जिससे सुखी दुःखी होताहै। जब अचलरूपसे चित्त सम्वेदन दृश्यकी ओर फुरता है तब उस फुरनेका नाम सङ्कल्प होता है और स्वरूपसे भूलकर जब दृश्यकी ओर फुरता है तब सङ्कल्प वृद्धहोता है जो जगत्जाल रचता है। जो कुछ प्रपञ्चहै वह सङ्कल्पका रचा सङ्कल्पमात्रहै—जैसे समुद्र जलमात्र होताहै, जलसे भिन्ननहीं; तैसेही जगत्भी सङ्कल्पसे भिन्ननहीं। आकाशमात्र से भ्रांतिरूप जगत्फुर आयाहै—जैसे मृगतृष्णाका जल और आकाशमें द्वितीय चन्द्रमा भासता है तैसेही तुम्हारा उपजना और बढ़ना भ्रममात्र है। जैसे तमका चमत्कार होता है तैसेही यह जगत् मिथ्या सङ्कल्पसे उदयहुआ तुझको भासताहै। हेपुत्र ! तेरा उपजनाभी असत्यहै और बढ़नाभी असत्यहै; जब तू इसप्रकार जानेगा तबइसकी आस्थालीन होजावेगी। 'यह पुरुषहै' 'वहहै' 'मैंहूं' ये सब भावदुःख सुखसे संयुक्त पदार्थ अज्ञान से व्यर्थ भासतेहैं। और इनमें आस्थाकरके हृदयसेतपता रहताहै। 'अहं' 'त्वं' आदिक दृश्य सब असत्यरूपहैं—जब यहभावना करेगा तब तू पृथ्वीमें कल्याणरूप होकर विचरेगा और फिर संसारकोप्राप्त न होगा। अहं त्वं से आदिलेकर जबसब दृश्य की भावना हृदयसे जावेगी तब इसका अभाव होजावेगा। हेपुत्र ! फलको तोड़कर मर्दन करनेमेंभी कुछ यत्नहोताहै परन्तु आपसे सिद्ध और भावमात्र सङ्कल्पके त्यागकरनेमें कुछ यत्ननहीं; फूलके ग्रहणकरनेमें भी यत्नहै क्योंकि हाथ का स्पन्दहोताहै पर इसमें जोकुछ भावरूपहै वहहै नहीं तो उसके त्यागनेमें क्यायत्नहै ? इससे कुछ हैनहीं इस दृश्य प्रपंचसे विपर्यय भावकरना कि, 'न मैंहूं,' 'न जगत्है,' जिस पुरुषने इस दृश्य जगत्का सद्भाव सङ्कल्प नाशकियाहै वह शांतरूप होताहै। यहसंकल्प तो एक निमेषमें लीलासे जीतलेताहै। भावरूप जो आत्मसत्ताहै उसमें जब अपनाआप उपशमकरे तब स्वस्तिक होताहै। जो अपने मनके संकल्पसे मन संकल्पको छेदेगा वह आत्मतत्त्वमें स्थित होगा, इसमें क्यायत्न है। संकल्पके उपशमहुये जगत् उपशमहोताहै और संसारके सबदुःख मूलसे नाशहोजाते हैं। संकल्प, मन, बुद्धि, जीव, अहंकार आदिक जो सबनामहैं सोभेद कहनेमात्रहैं, इनके अर्थरूपमें कुछ भेदनहीं। जोकुछ दृश्य प्रपंचजाल है वहसब संकल्पमात्रहै; संकल्पके अभावहुये कुछनहीं रहता। इससे संकल्पको हृदयसेकाटो — आकाशकी नाईं जगत् शून्यहै; जैसे आकाश में नीलता भ्रांतिसे भासतीहै तैसेही यह जगत् असत्य विकल्पसे उठा है। संकल्प और जगत् दोनों असत्यहैं इससे सब असत्यरूपहै। असत्यरूप संकल्पने यहसब सिद्धकियाहै इसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्याहै। जब ऐसेजाना तब इष्टरूप किसको जाने; वासना किसकी करे और अनिष्ट किसको जाने; तबसब वासना नष्टहो-

जातीहै और वासनाके नष्टहुये सिद्धिप्राप्तहोतीहै । हेपुत्र ! जो यह जगत् सत्यहोता तो विचार कियेसेभी दृष्टिआता सोतो विचार कियेसे इसका शेषकुछ नहीं रहता । जैसे प्रकाशके देखेसे तम दृष्टिनहीं आता तैसेही विचारकर देखेसे जगत् सत्यनहीं भासता । इससे यहअविचारसे सिद्धहै;असत्यरूपहै और बुद्धिकी चपलतासे भासताहै। जिस पुरुषको जगत् भावना उठगईहै उसको जगत्के सुखदुःख स्पर्शनहीं करते। निर्णयसे जो असत्यरूप जाना उसमें फिर आस्थानहीं उदयहोती और जब आस्थागई तब भाव अभाव बुद्धिभीनहीं रहती। संसारके सुख दुःखसब मिथ्यामनके फुरनेसे रचे हैं और मनोराजके नगरवत् स्थितहुयेहैं। भूत, भविष्य, वर्त्तमान जगत् मनकी वासनासे फुरता है और मानसी शक्तिमें स्थित है । वह मनक्षणमें बड़ा दीर्घ आकार करताहै और क्षणमें ऐसा सूक्ष्म आकार धरताहै कि, ग्रहणकरिये तो ग्रहण नहीं किया जाता । जैसे समुद्रकी लहरको ग्रहणकरिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसेही मन है । यद्यपि बड़े आकार संयुक्त जगत् भासता है तो भी कुछ वस्तु नहीं है; क्षण भंगुर है और असार वासनासे भासताहै और वासनाके क्षयहुये शान्त होजाताहै। जब तुझको वासना फुरे, तब उसी कालमें उसको शीघ्रही त्यागकर ऐसी भावनाकर कि, यह दृश्यप्रपञ्च कुछ है नहीं, असत्यरूपहै तो वासना नष्ट होजावेगी—इसमें कुछ संदेह नहीं । जो यह संकल्परूप जगत् हो तो इसके त्याग करने में यत्न भी हो पर यह तो असत्य भूत प्रपञ्च है इसका अनर्थ चिकित्सा से तुझको खेद कुछ न देगा। जो हैही नहीं तो उसके त्यागमें क्या यत्न है ? जो यह संसारमूल सत्यहोता तो इस के नाश निमित्त कोई न प्रवर्त्तता पर यह तो सब असत्यरूप है और विचार कियेसे कुछ नहीं पाया जाता। इससे असत्य अहंकाररूप दृश्यको त्यागकर सत्य आत्माका अङ्गीकारकरो । जैसे धानसेभूसी निकालकर चावलको अङ्गीकार करतेहैं तैसेही यत्न करके सर्वदृश्यको त्यागके आत्मपद में प्राप्त हो । यह परम पुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है ? मलरूप संसारका नाशकर और युक्ति करके जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है तो उसके नाशमें क्या यत्न है ? जैसे तांबेसे युक्तिपूर्वक मल दूर होता है तब निर्मल भासता है; तैसेही युक्तिसे दृश्यमल जब दूर हो तब बोध स्वरूप प्राप्तहो । इसकारण उद्यमवान् हो । हे पुत्र ! यह संसार संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुआहै और विचारकर अल्पयत्नसेही निवृत्त होजाताहै। देख कि, वहकौन है जो सदास्थिर रहता है ? सब पदार्थ असत्यरूप हैं और देखते २ नष्ट होजातेहैं— जैसे दीपकके प्रकाशसे अन्धकारका अभाव होजाताहै और भ्रांतिदृष्टिसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता है और स्वच्छ दृष्टिसे अभाव होजाता है तैसेही विचारकरके जगत्भ्रम नष्ट होता है । न यह जगत् तेरा है; न तू इसकाहै; यह केवल भ्रमसे

भासता है इससे भ्रमको त्यागकर देख कि, असत्यरूप है। अपनी गुरुत्वताका बड़ा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास हैं सो तेरे हृदय में मत हो। यह मिथ्या भ्रमरूप है हृदय से उठे तो आपको और जगत्को भी असत्यजान । आत्मतत्त्वसे कुछ भिन्न नहीं। जब ऐसे निश्चयकरेगा तब जगत् भावना नष्ट होजावेगी और सर्वात्मा प्रकाश भासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेजगत्चिकित्सा वर्णनंनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुलरूपी आकाशके चन्द्रमा रामजी! जब इसप्रकारदासुर ने पुत्रको उपदेश किया तब मैं उसके पीछे आकाशमें स्थितथा सो कदम्बवृक्षके अग्र भागमें जा स्थितहुआ—जैसे मेघवर्षासे रहित तूष्णी होकर पर्वतके शिखरपर जा स्थित होताहै तैसेही मैं भी जा स्थित हुआ। दासुर शूरमाने जो अज्ञानरूपी शत्रु का नाश कर्त्ता और परमशक्तिसे प्रकाशवान् था; तपसे उसकीदेह ऐसी होगई थी मानोसुवर्ण का चमत्कार है; मुझको अपने आगे देखा कि, वशिष्ठ मुनि आये हैं। ऐसे जानकर उसने उठके अर्घपाद्य से पूजन किया और फिर हम दोनों वृक्षके पत्र पर बैठगये। उसने फिर पूजन किया और जब पूजन करचुका तब हमदोनों कथाका प्रसंगचलाने लगे। और उस चर्चाके वचनोंसे उसके पुत्रको संसार समुद्रके पारकरनेके निमित्त जगाया। फिर मैंने वृक्षकी ओर देखा जो महासुन्दर फूलों और फलोंसे शोभायमान् था और दासुरकी इच्छाद्वारा मृग और पक्षी उसके आश्रयरहते थे । उसके पुत्रको हमने विज्ञान् दृष्टिसे रमणीय दृष्टांत और युक्तिसहित उपदेश किया और नाना-प्रकारके विचित्र इतिहासोंसे उस बालकको जगाया । रात्रिको हम सिद्धांतकथा में लगे रहे और हमको एक मुहूर्त्तवत् रात्रि व्यतीत हुई; जब प्रातःकाल हुआ तब मैं उठखड़ाहुआ और दासुर अपने पुत्र संयुक्त मेरे साथ चला । जहांतक कदम्ब का आकाशतल था वहांतक वे मेरे संग आये पर मैंने बहुत करके उनको ठहराया और मैं गङ्गाजीकी ओर चला और स्नानकरके सप्तर्षिके मण्डल में जाय स्थित हुआ। हे रघुनन्दन! यह दासुरका आख्यानमैंने तुमसे कहा है । यह जगत् प्रतिबिम्ब आ-भासके सदृश है; प्रत्यक्ष भासता है तोभी असत्यरूपहै। जगत् के निरूपण निमित्त मैंने यह आख्यान तुमको सुनाया है। यह जगत् असत्यरूप है, कुछ वस्तु नहीं बुद्धि से तुझको रागमतहो। जब इसकथाका सिद्धान्त हृदयमें धारणकर विचारोगे तब संसाररूपी मल तुमको स्पर्श न करेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५४॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! 'यह प्रपञ्चहैही नहीं'ऐसे जानके सब पदार्थों से निराग हो । जो वस्तुहोही नहीं उसकी आस्था करनी क्या है ? इसप्रपञ्चके भासने, न भासने से तुमको क्या है ? तुम निर्विघ्न होकर आत्मतत्वमें स्थित हो और ऐसे जानो कि, जगत् है भी और नहीं भी है । इस निश्चयसेभी तुम असङ्गहो जाओ । इस चल अचल दृष्टि आने में तुमको क्या खेद है ? हे रामजी ! यह जगत् न आदि है, न अनादि है; केवल स्वेतथका जो चित्त संवित मनरूप था उसके फुरनेसे इसप्रकार भासता है; वास्तवमें कुछ नहीं । यह जगत् किसी कर्त्ताने नहीं किया और न किसी अकर्त्ताने किया है केवल आभासरूप है और आभासमें कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त हुआ है पर अकृत्रिमरूप है और किसीका किया नहीं इससे तुमको इससे सम्बन्ध न हो । यह भावना हृदयमें धारो कि, कुछ नहीं है क्योंकि; किसी कर्त्तासे नहीं उत्पन्न हुआ आत्मा सर्वइन्द्रियोंसेअतीत जड़कीनाईंअकर्त्तारूपहै उसको कर्त्ता कैसेकहिये । यह कहनानहींबनता । यहजो जगत्जालअकस्मात् फुरआयाहै सो आभासरूप है उसमें आसक्तहोना क्याहै ? यह असत् भ्रांतिरूपहै इसमें आस्थामूढ़ बालक करतेहैं बुद्धिमान्तो नहीं करते ? स्वरूपमें जगत् उपजानहीं और नाशभीनहीं होता ; निरन्तर दृष्टिमें आताहै और अज्ञानसे वारम्वार भावनाहोतीहै तौभीकुछ है नहीं असत्रूपहै और निरन्तर प्रत्यक्ष नष्टहोता जाताहै । तुम विचारकरके देखो कि, अवस्था और स्थान कहांजातेहैं और कहांगयेहैं?इससे तुमसब इन्द्रियोंसे अतीतजो आत्मतत्व अकर्त्तारूपहै उसमें स्थितहोकर विगत ज्वरहोजाओ । वास्तवमें जगत्कुछ बनानहीं पर आभाससत्तामें बनाभासताहै । तुम आभाससत्तामें नित्यदृढ़होजाओ । जैसे हुआहै,तैसेहै ; भावअभाव दुःखदशाहै । आदर्शरूपी आभासमें दीर्घरूप दृश्य स्थित हुआ जैसेहुआहै तैसेहीहै ; विपर्यय नहीं होता । हेरामजी ! दृश्यधर्म्म में अपराजितकाल है सो अनन्तहै ; दृश्य पदार्थका कुछ अन्तनहीं । जो आत्म विचारसे देखिये तो स्वप्नवत्है कुछहैनहीं । जो वास्तवमें ऐसेहोतो उसमें आस्थाकरके यत्न करना व्यर्थहै । जगत्के पदार्थ नाशरूपहैं इनमें आस्थानहीं बनती क्योंकि; आत्मासत्है और जगत्असत्है इससे अन्योन्य विलक्षण स्वभावहै—जड़ और चैतन्यका संयोग कुछनहीं बनता । जगत्के पदार्थ यदि स्थिर मानिये तो नहींरहते; इसकारण आस्था शोभा नहींपाती । जैसेजलके तरङ्गका आश्रयलेकर कोईपारहुआ चाहेतो दुःखपाताहै , तैसेही जगत्के पदार्थोंका आश्रयकियेसे जीव दुःखी होताहै । जगत्की आस्था करनाही बन्धनहै और नाशरूप है । तुम स्थिररूपहो इससे आस्थानहीं संभवती । कहीं जलके तरङ्ग और पर्वतका सम्बन्धहुआहै ? जो तुमने जगत्को असत्य और आपको सत्यजाना तौभी जगत्के पदार्थोंकी बांछानहीं बनती

क्योंकि, सत्यकी असत्यकी वांछानहीं होसक्ती और असत्यकी असत्यमें भावनाकरनी क्याहै? जो आपसंयुक्त जगत् सत्यजानते हो तौभी वांछानहीं होसक्ती क्योंकि, सत्य अद्वैत आत्माहै उसके समीप कुछ द्वैत वस्तु नहीं। तुमतो एकअद्वैतहो वांछा किसकी करतेहो? इससे तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छानहीं बनती हेयोपादेयसे रहित केवल स्वस्थहोकर अपने आपमें स्थित होजाओ। वह आत्मतत्त्व है जो सबका कर्त्ता और सर्वदा अकर्त्ताहै कदाचित् कुछनहीं करता और उदासीनकी नाईं स्थित है। जैसे दीपक सब पदार्थोंको प्रकाश कर्त्ताहै और किसीकी इच्छा अपने अर्थके सिद्धकरने के निमित्तनहीं करता—स्वाभाविकही प्रकाशरूप है; तैसेही आत्म तत्त्व सबका कर्त्ताहै और उसका कर्त्ता कोईनहीं। जैसे सूर्य्य सबकी क्रियाकोसिद्धकरताहै और आप किसी क्रियाके आश्रयनहीं क्योंकि; आपही प्रकाशरूप है; चलता है और कदाचित् चलायमाननहीं होता, और जो सूर्यका प्रतिबिम्ब चलना भासता है सो प्रतिबिम्बका चलना सूर्यमें नहींहै; तैसेही तुम्हारा स्वरूप आत्मासदा अकर्त्ता अचलहै उसमें स्थितहो। जितना कुछ जगत् भासताहै उसमें विचरो परन्तु भावना करके उसमें बन्धायमान् मतहो, यह असत्रूप है। हेरामजी! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे जगत् सत् भासताहै तौभीहैनहीं। स्वतः चित्तहोकर आपको विचारो और आपमें स्थितहो तब जगत् कुछ न भासेगा। जो प्रत्यक्ष बड़े तेज, बल और वीर्यसे सम्पन्न भासता है और अन्तर्द्धान होगया तो सत्यकैसे कहिये? इस विचारसे भी तुमको जगत्की भावनानहीं बनती। जैसे चक्रपर आरूढ़हुयेसे सबस्थान भ्रमते दृष्टिआतेहैं और स्वप्ननगर भ्रमसे भासता है सो किसीकारण कार्य्यसे नहीं होता—आभासरूप मनके फुरनेसे उपजआताहै। जैसे कोई जीव अकस्मात् आनिकलता है तो वह मित्रताका भागी नहीं होता और विचार कियेबिना बुद्धिमान् उसमें रुचिनहीं करते, न वह सुहृदता का पात्र होता है; तैसेही भ्रमसे जो जगत्भासा है वह आस्था करके भावना बांधने योग्यनहीं। जैसे चन्द्रमामें उष्णता, सूर्य्यमें शीतलता और मृगतृष्णाकीनदीमें जलकी भावना करनी अयोग्यहै तैसेही जगत्में सत्यभावना अयोग्य है। यह संकल्प पुर, स्वप्ननगर, द्वितीय चन्द्रमावत् असत्यहै; भ्रमकरके सत्यभासता है। हेरामजी! हृदयसे भाव पदार्थकी आस्थालक्ष्मीको त्यागकरो और बाहर लीलाकरते विचरो पर हृदयसे अकर्त्ता पदमें स्थितरहो और सब भावपदार्थों में स्थितपर सब से अतीतहो। आत्मा सब पदार्थोंमें सर्वदा कालस्थितहै और सबसे अतीत है; उस की सत्तासे जगत् नीतिमें स्थितहै। जैसे दीपकसे सबपदार्थ प्रकाशवान् होते हैं पर दीपक इच्छासे रहित प्रकाशताहै—उससे सबकी क्रिया सिद्धहोतीहै और जैसे सूर्य्य आकाशमें उदयहोताहै और उसके प्रकाशसे जगत्काव्यवहारहोताहै; तैसेही अनि-

च्छित आत्माकी प्रकाशसत्तासे सब जगत् प्रकाशता है । जैसे इच्छासे रहित रत्न का प्रकाश होताहै और स्थानमें फैलजाता है; तैसेही आत्मदेवकी सत्तासे जगत्गण प्रवर्त्तते हैं। वह कर्त्ता है पर सबइंद्रियोंके विषयसे अतीतहै इसकारण अकर्त्ता–अभोक्ताहै; सब इंद्रियोंके अन्तर्गत स्थित है इसकारण कर्त्ता भोक्ता वही है। इसप्रकार दोनों आत्मामें बनते हैं–कर्त्ता भोक्ता होसक्ता है और अकर्त्ता अभोक्ताभी है; जिसमें तुम अपना कल्याण जानो उसमें स्थित होजाओ। हे रामजी! इसप्रकार निश्चयकरो कि, सब मैंहीहूं और अकर्त्ता–अभोक्ता हूं। ऐसी दृढ़भावनासे जगत्के कार्य्यको करते भी कुछ बन्धन न होगा और सबआत्मा कर्त्तव्य भोक्तव्यसे रहित है इसप्रकार निश्चय कियेसे भोगकी वासना निवृत्त होजावेगी और तब चैतनभोगकी ओर फिर न चित्त आवेगा। जिसको यह निश्चय है कि, मैंने कदाचित् कुछ किया नहीं और सदा अक्रियरूपहूं,वह भोगके समूहोंकीकामना किसनिमित्त करेगा और त्याग किसका करेगा? इससे तुम यही निश्चय धरो कि, मैं नित्य अकर्त्तारूपहूं। जब यह बुद्धि दृढ़ होगी तब परम अमृतरूप समानसत्ता शेषरहेगी। अथवा यही निश्चय धरो कि,सब का कर्त्ता मैंहीहूं; मैं महाकर्त्ताहूं और सबके हृदयमें स्थितहोकर सब कार्य्य करताहूं। हे रामजी! यह दोनों निश्चय तुमकोकहेहैं जिसमें तुम्हारी इच्छाहो उसमें स्थितहो। जहां यहनिश्चय होताहै कि, सबका कर्त्ता मैं हूं और सब जगत् भ्रमभी मैंहूं तब इन पदार्थोंके भाव अभावमें राग द्वेष न होगा। जो सब आपहीहुआ तो राग द्वेष किसका करे? उसको यह निश्चय होताहै कि, यह शरीर मेरा दग्ध होताहै, वह शरीर सुगन्धादिकसे लीला करता है उसको खेद और उल्लास किसकाहो। इससे तुमको जगत्के क्षोभ, उल्लास, उदय,अस्तमें सुख दुःख न हो सबकाकर्त्ता मैंहूं तो खेद उल्लास भी मैं करताहूं और जब आत्मा और कर्त्तव्यकी एकताहुई तब खेद उल्लास सब आपही लय होजाताहै और सत्ता समान शेष रहताहै। वही सत्ता भाव पदार्थ में अनस्युत होकर स्थितहै और उसमें जब चित्तकीइच्छा स्थितहोती है तब फिर दुःख नहीं पाता। हे रामजी! सबकाकर्त्ता आपकोजानो कि, कर्त्ता पुरुष मैं हूं व अकर्त्ताजानो कि, मैं कुछ नहीं करता अथवा दोनों निश्चय त्यागकर निस्सङ्कल्प निर्म्मन होजाओ तो तुम्हारा जो स्वरूपहै वही सत्ता शेषरहेगी। यह जगत्है, यह मैं हूं, यहमेराहै, इस कुत्सित भावनाको त्यागकरो। इस अभिमान में स्थित न होना; इस देहमें अहङ्कार कालसूत्र नाम करके नरककी प्राप्तिका कारणहै, नरकका जालहै; शस्त्रकी वर्षा होती है; इनदुःखोंसे देह अभिमान दुःखस्थान है अर्थात् अनन्त दुःखदायक है। इससे पुरुष प्रयत्न करके इसका त्यागकरो, यह सबके नाशमें स्थितहै। भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुषहै वह इससे स्पर्श नहीं करते–जैसे चाण्डालीकी गोदमें स्वानका मांसहो

तो उसकेसाथ श्रेष्ठ पुरुष सङ्ग नहीं करते तैसेही देहाभिमान से स्पर्श न करना—यह महानीचहै। यहअहंकाररूपी बादल नेत्रोंकेआगे पटलहै इससे आत्मा नहीं भासता। जब विचारकरके इसपटलको दूरकरोगे तब आत्मसत्ताका प्रकाश उदयहोगा। जैसे मेघघटा के दूर हुये चन्द्रमा प्रकाशित होताहै तैसेही अहंकार के अभाव से आत्मा प्रकाशताहै। जब तुम इन निश्चयोंमें कोई निश्चय धारोगे तब सब दुःखों से रहित शान्तपद को प्राप्तहोगे। यह निर्णय सबसे उत्तमहै और उत्तमपुरुष इस निश्चय में सदा स्थितहैं। अब तुम भी बिधि अथवा निषेध दोनोंमें कोई निश्चय धारणकरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकर्त्तव्यविचारोनामपंचपंचाशत्तमस्सर्गः ५५॥

रामजीनेपूछा; हे ब्रह्मन्! जो कुछ तुमने सुन्दर वचन कहेहैं वह सत्यहैं। अकर्त्ता-रूप, आत्मा, कर्त्ता, अभोक्ता, सबकाभोक्ता, भूतोंको धारनेवाला, सबका आश्रयभूत और सर्व्वगत व्यापक, चिन्मात्र, निर्म्मलपद, अनुभवरूप देव सर्व्वभूतों के भीतर स्थितहै। हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्वहै वह मेरेहृदयमें रमरहाहै और आपके वचनों से प्रकाशनेलगा है। आपके वचन शीतल और शान्तरूप हैं; तप्तताको मिटाते हैं और जैसे वर्षासे पृथ्वी शीतल होतीहै तैसेही मेरा हृदय शीतलहुआहै। आत्मा उदासीनकीनाईं अनिच्छित स्थितहै; कर्त्तव्य—भोक्तव्यसे रहितहै, सब जगत्को प्रकाशताहै और सब क्रिया उससे सिद्ध होती हैं। इसकारण कर्त्ता भी वही है और भोक्ता भी वहीहै परन्तु मुझको कुछसंशयहै उसको अपनी वाणीसे निवृत्तकरो। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश तमको नाश करता है तैसेही आप मेरे संशयको दूर करो। यह सत्यहै; यहअसत्यहै; यह मैं हूं; वहऔरहै इत्यादिक द्वैत कल्पना एकअद्वैत विस्तृत शान्तरूपमें कहांसे स्थितहुई है? निर्म्मलमें मल कैसे हुआहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस तुम्हारे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानलोगे। इस मोक्ष उपाय शास्त्रका सिद्धान्त जब भलीप्रकार तुम्हारे हृदयमें स्थित होगा तब तुम इस प्रश्नके पात्र होगे अन्यथायोग्य न होगे—उस अवस्थामें अन्यथा प्राप्त नहीं होते। हे रामजी! जैसे सुन्दर स्त्रियोंकी सुन्दरवाणीसे सुन्दर गीत होताहै और उसके अधिकारी यौवनवान् पुरुष होतेहैं तैसेही सिद्धान्तअवस्थामें मेरे वचन के तुम अधिकारी होगे। जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहनी व्यर्थ होती है तैसेही बोध समय बिना उदार कथा कहानी व्यर्थ होती है। जैसे शरत् कालमें वृक्ष पत्र संयुक्त और बसन्त ऋतुमें पुष्पसे शोभता है तैसाही जैसी अवस्था पुरुष की होती है तैसाही उपदेश कहना शोभता है और उपदेश भी तब दृढ़ लगता है जब बुद्धि शुद्ध होती है—मलीन बुद्धिमें दृढ़ नहीं होता। जैसे निर्मलवस्त्र पर केसरकारङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और मलीन वस्त्रपर नहीं चढ़ता; तैसेही प्राप्तरूप जो आत्माहै

उसका विज्ञान उसदेशासिद्धांत अवस्थावालेको लगता है जिसको बोधसत्ता प्राप्त होती है । तुम्हारे प्रश्नका उत्तर मैंने संक्षेप मात्र कहा भीहै-विस्तारसे नहीं कहा पर जो तुम नहीं जानते तो भी प्रत्यक्ष है । जब तुम आप से आपको प्राप्त होगे तब आपही इसप्रश्न के उत्तरको जानलोगे-इसमें कुछ सन्देह नहीं । सिद्धान्त कालमें जब तुम बोधको प्राप्त होकर स्थित होगे तब मैं भी इसप्रश्नका उत्तर बिस्तारसे कहूंगा। जब आपसे अपना आप निर्मलकरोगे तब अपने आपको जानलोगे । हे रामजी ! कर्त्ता और कर्मका विचार जो मैंने तुमकोकहाहै उसकोबिचारकर बासनाका त्यागकरो। जबतक संसारकी बासना इस हृदयमें होती है तबतक बन्धमानहै और जब बासना दूर होती है तब मुक्ति होती है; इससे तुम बासनाको त्यागो और मोक्षके अर्थ जो बासना है उसकाभी त्यागकरो तब सुखी होगे। इसक्रमसे बासना को त्यागकर प्रथम शास्त्र बिरुद्ध तामसी बासनाका त्यागकरो; फिर बिषयकी बासना का त्यागकरो और मयत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इस निर्मल बासनाको अंगीकार करो । मयत्रीके अर्थ यहहैं कि, सबमें ब्रह्मभावसे द्रोहकिसीका न करना। दुःखीपर दया करनी करुणा कहलाती है; धर्मात्मा पुरुषको देखके प्रसन्न होनेका नाम मुदिता है और पापीको देखके उदासीन रहना पर निन्दा न करना उपेक्षा कहलाताहै । इनचारों प्रकारकी बासनाओंसे संपन्नहो हृदयसे इनकाभी त्यागकरके इनका अभिमान न रखना चाहिये यदि बाहरसे इनका व्यवहार हो पर हृदयसे दृश्यमें गुणकी बासना त्यागकर चिन्मात्र बासना रखनी चाहिये और पीछे इसकोभी मन बुद्धिकेसाथमिश्रित त्यागकरना तब जिससे बासना त्यागीहैं वह शेषरहेगा तो उसकोभी त्यागकरना। हेरामजी! चिन्मात्र तत्त्वसे कल्पना करके देह, इन्द्रियां, प्राण, तम, प्रकाश, बासनादिक भ्रम मात्र भासिआये हैं। जब मूल अर्थात् अहंकार संयुक्त इनको त्यागकरोगे तब आकाशवत् सम स्वच्छहोगे । इसप्रकार सबको त्यागकर पीछे जो तुम्हारा स्वरूपहै वहतुष्टहोगा जो हृदयसे इसप्रकार त्यागकर स्थितहोताहै वह पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है; चाहे वह समाधिमें रहे ; अथवा कर्मकरे वा न करे । जिसके हृदय से सब अर्थों की आस्था नष्टहुई है वहमुक्त और उत्तम उदार चित्तहै । उसको करने, न करनेमें कुछ हानि लाभ नहीं और न समाधिकरनेमें अर्थहै, न तपसेहै क्योंकि; उसकामन बासना से रहितहुआहै। हे रामजी ! मैंने चिरकाल पर्यंत अनेकशास्त्र बिचारेहैं और उत्तम२ पुरुषोंसे चर्चाकीहै परन्तुपरस्परयही निश्चय कियाहै कि, भलीप्रकार बासनाका त्याग करे । इससे उत्तम और पद पानेयोग्य नहीं । जो कुछ देखने योग्य है वह मैंने सब देखा है और दशों दिशाओंमें भ्रमाहूं; कई जन यथार्थदर्शी दृष्ट आये हैं और कितने हेयोपादेय संयुक्त देखे पर सब यही यत्न करतेहैं और इससे भिन्न कुछनहीं करते। सब

ब्रह्मांडका राज्यकरे अथवा अग्नि और जलमेंप्रवेशकरे पर ऐसे ऐश्वर्यसे संपन्न होके भी आत्मलाभ बिनाशांति नहीं प्राप्त होती। बड़े बुद्धिवान् और शांतभी वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रीरूपी शत्रुजीते हैं और वही शूरमे हैं उनको जरा,जन्म और मृत्युका अभावहै–वह पुरुष उपासना करने योग्यहै। हे रामजी! ज्ञानवान् को किसी दृश्य पदार्थ में प्रीति नहीं होती क्योंकि; पृथ्वी आदिक पञ्चभूतही सब ठौर मिलते हैं–त्रिलोकीमें इनसे भिन्न और कोई पदार्थ नहीं तो प्रीति किस विधिहो। युक्तिसे ज्ञानवान् संसार समुद्रको गोपदवत्तरजाते हैं पर जिन्होंने युक्ति का त्यागकियाहै उनको सप्तसमुद्रकी नाईं संसार होजाताहै। जो पुरुष उदारचित्तहैं उनको यह सम्पूर्ण जगत् कदम्बवृक्षके गालवत् होजाताहै; उसमें वे त्याग किसका करें और भोग किसका करें। हेयोपादेयसे रहित पुरुषकोजगत् तुच्छसा भासताहै इसकारणजगत्के पदार्थोंके निमित्त वह यत्न नहीं करता और जो दुर्बुद्धिजीव होतेहैं वे तुच्छ ब्रह्माण्डरूपपृथ्वीपर युद्धकरतेहैं,अनेकजीवोंका घातकरतेहैं और ममतामें बन्धमानहैं यहजगत् संकल्पमात्र में नष्ट होजाताहै। क्षणक्षणमें आस्थासे यत्न करनाबड़ी मूढ़ताहै। सब जगत् आत्माके एक अंशसे कल्पितहै; इसकी उपमातृण समानभी नहीं। इसप्रकार तुच्छरूपत्रिलोकी को जानकर आत्मवेत्ता किसीपदार्थके हर्षशोकमें बन्धमान नहींहोते और ग्रहण और त्यागसे रहितहैं। सदा शिवकेलोक आदि पाताल पर्यंत जल,रस,देह,राजस,सात्विक तामस संयुक्त जगत्के पदार्थ ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं करसक्के और उसकी इच्छा किसीमेंनहीं होती क्योंकि, वहतो एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्तहुआ है; आकाशवत् व्यापक उसकी बुद्धिहोतीहै; अपने आपमें स्थितहै और चित्तदृश्यसे रहित, अचेतन चिन्मात्रहै। शरीररूपी जालजो भयानक कुहिराहै और जिससे जगत् धूसर होरहा है सो तिस पुरुषका शांतहोजाता है और द्वितीय वस्तुका अभावहोताहै। ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्रहै उसके झागकेबोयेवत् कुलाचल पर्वतहैं; चैतनरूपी सूर्य में मृगतृष्णा की नदीरूप जगत्की लक्ष्मीहै और ब्रह्मरूपी समुद्रमें जगत्रूपी तरङ्ग उड़ते और लय होतेहैं;ऐसे जाननेवाला जो ज्ञानवान्है उसकोयह जगत् आनन्ददायक कैसेहो? सूर्य, चन्द्रमा, अग्निजो तुमको प्रकाशरूप भासतेहैं वेभी घट, काष्ठ आदिकवत् जड़ रूपहैं और जिससे यह प्रकाशतेहैं वहसबको सिद्धकर्त्ता आत्मसत्ताहै और कोईनहीं। देह जो रुधिर, मांस और अस्थिसे बनीहै और इन्द्रियोंसे वेष्टित है; उसदेहरूपी ड-ब्बेमें चैतनजीव रूपी रत्न विराजता है; चैतनाबिना जड़ मुग्धरूप है। हेरामजी! यहजो स्त्रीका देह भासताहै सो चर्मकी पुतलीबनीहै; उसको देखकेमूढ़ प्रसन्न होता है। जैसे वायुके चलनेसे पर्वत चलायमान नहींहोता तैसेही ज्ञानवान् संसार के पदार्थोंसे प्रसन्ननहीं होता। ज्ञानवान् उस उत्तमपदमें बिराजताहै जिसकी अपेक्षासे

चन्द्रमा और सूर्य पातालमें भासतेहैं अर्थात् इनकावड़ा प्रकाशभी तुच्छ भासताहै। ज्ञानवान् परमउत्तम पदमें विराजते हैं। ये संसारीमूढ़ जीव संसार समुद्रमें सर्पकी नाईं वहेजाते हैं। जैसे ये हमको भासते हैं तैसे कहते हैं। इसजगत् में ऐसा भाव पदार्थ कोईनहीं जो ज्ञानवान्को रागसे रंजितकरे। जैसे राजाके गृहमें महासुन्दर विचित्ररूप रानियांहों तो उसको ग्रामकी मूढ़नीच स्त्रियां प्रसन्न नहींकरसक्तीं; तैसेही ये जगत्के भावपदार्थ तत्त्ववेत्ता को प्रसन्न नहीं करसक्ते और उसके चित्तमें प्रवेश नहीं करते। जैसे आकाशमें मेघरहते हैं परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ते तैसेही वे निर्लेप रहते हैं। जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरीके नृत्य देखनेवाले और गौरी संयुक्तहैं उनको वानरीका नृत्य हर्षदायक नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते। जैसे जलसे पूर्ण कुम्भमें रत्नका प्रतिबिम्ब देखके बुद्धि-वान्का चित्त उसे ग्रहण नहीं करता तैसेही ज्ञानवान्का चित्त जगत्के पदार्थों को नहीं चाहता। यह संसार चक्रजो बड़ा विस्ताररूप भासताहै सो असत्यरूप है; उसको देखके ज्ञानवान् कैसे इच्छाकरे क्योंकि, यहतो चन्द्रमाके प्रतिबिम्बवत् है। शरीर भी असत्य है; इसकी इच्छा मूढ़ करते हैं–जैसे सेवारको मच्छ भोजन करतेहैं और राजहंस नहीं करते तैसेही संसार के विषयोंकी इच्छा अज्ञानी करते हैं–ज्ञानी नहीं करते॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेपूर्णस्वरूपवर्णनन्नामषट्पंचाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सिद्धांत जो परमउचित वस्तु है उसकी गाथा बृहस्पतिके पुत्र कचने गाईथी–वह परमपावनरूप है। एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानमें देवगुरुका पुत्र कच जाबैठा। अभ्यासके वशसे कदाचित् उस को आत्मतत्त्वमें विश्रांतिहुई; उसका अन्तःकरण सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतसे पूर्णहुआ; पंचभौतिक जो मलीन दृश्य हैं उनसे विरक्तहुआ और ब्रह्मभाव में अस्फुर होकर रमने लगा। तब उसे ऐसा भासा कि, निराभास आत्मतत्त्वसे कुछभिन्ननहीं–एक अद्वैतहीहै; ऐसे देखताहुआ गद्गद वाणीसे बोला कि, मैं क्या करूं; कहां जाऊं; क्या ग्रहण करूं और किसका त्याग करूं सब विश्व एक आत्मासे पूर्ण होरहा है? जैसे महाकल्पमें सब ओरसे जल पूर्ण होजाताहै तैसेही दुःख भी आत्मा है सुखभी आत्माहै और आकाश, दशोंदिशा और अहंत्वं आदि सब जगत् आत्माहीहै। बड़ा कष्टहै कि, मैं अपने आपमें नष्टहुआ बन्धमानथा। देहके भीतर–बाहर, अध–ऊर्ध्व, यहां–वहां सब आत्माही है, आत्मासे कुछभिन्न नहीं। सब ओरसे एक आत्माही स्थितहै और सब आत्मामें स्थितहै; यह सब मैंहूं और अपने आपमें स्थितहूं। अपने आपमें मैं नहीं समाता अर्थात् आदिअन्तसे रहित अनन्त आत्माहूं। अग्नि,

वायु, आकाश, जल, पृथ्वी मैंहींहूं; जो पदार्थ में नहीं वह हैही नहीं और जो कुछहैं वह सब विस्तृतरूप मैंहींहूं। एक पूर्ण परम आकाश भैरव अर्थात् भररहाहूं; सब जगत्‌भी अज्ञानरूपहै और समुद्रवत् एक पूर्ण आत्मा स्थितहै। वह कल्याणमूर्त्ति इस प्रकार भावना करताहुआ स्वर्णके पर्वतके कुंजमें स्थितहुआ और ओंकारका उच्चार बड़े स्वरसे करनेलगा। ओंकारकी जो अर्द्धकला है; जिसको अर्द्धमात्राभी कहते हैं; वह फूलसे भी कोमलहै उसमें वह स्थितहुआ। वह अर्द्धमात्राकैसी है कि, न अन्तःस्थित है और न बाहरहै; हृदय में भावना करताहुआ उस में स्थित हुआ और कलनारूपी जो मलथा उससे रहित होकर निर्मलहुआ और उसकी चित्तकी वृत्ति निरन्तर लीन होगई। जैसे मेघके नष्टहुये शरत्कालका आकाश निर्मलहोता है, तैसेही कलंकित कलनाके दूर हुयेसे वह निर्मलहुआ। जैसे पर्वतकी पुतली अचलरूप होतीहै तैसेही कच समाधि में स्थितअचलहुआ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकचगाथावर्णनंनामसप्तपंचाशत्तमस्सर्गः॥ ५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानाओंके शरीरादिक भोग और जगत्‌के पदार्थों में कुछ सुख नहीं। ज्ञानवानोंको ये पदार्थ तुच्छ भासते हैं, वे इनमें आस्था नहीं करतेतो फिर किस पदार्थकी इच्छा करें। इन भोगऐश्वर्य पदार्थोंसे मूढ़ असाधु संतोष पाते हैं पर जो ज्ञानवान्‌साधुहैं वे इनमें प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं उनको भोगही सरसहै पर भोग आदि अन्त और मध्यमें दुःखरूप है। जो पुरुष इनमें आस्था करते हैं वे गर्दभ और नीच पशुहैं। हे रामजी! स्त्री रक्त, मांस और अस्थि आदिसे पूर्णहै; जो इसको पाकर तोषित होते हैं वे सियार हैं—मनुष्य नहीं। जो ज्ञानवान् हैं वे जगत्‌के पदार्थोंमें प्रीति नहीं करते। पृथ्वीसर्व मृत्तिका; वृक्षकाष्ठ; देह मांस, और पर्वत पाषाणरूप हैं। पातालअधहै और आकाश ऊर्ध्वहै सो दिशाओं से व्यापा है सर्व विश्व पंचभौतिकरूपहै इस में तो अपूर्व सुख कोई नहीं जिसमें ज्ञानवान् प्रीति करें। इन्द्रियों के पंचविषय मोक्षके हरनेवाले और विवेक मार्गके रोकनेवाले हैं और जो कुछ जगत्‌जालकी संपूर्ण विभूति है वह सब दुःखरूप है। प्रथम इनका प्रकाश भासताहै पर पीछे कलंक को प्राप्त करते हैं। जैसे दीपक प्रथम प्रकाश को दिखाताहै और फिर काजल कलंकको देताहै, तैसेही इन्द्रियोंके विषय आगमापायी हैं—इनसे शान्ति नहींहोती। अज्ञानीको स्त्रियादिक पदार्थ रमणीयभासते हैं पर ज्ञानवान्‌की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती। अज्ञानीको ये स्थिररूपभासते हैं, स्वाददेते और तुष्टकरते हैं परज्ञानवान्‌को असत्य और चलरूपभासतेहैं और तुष्टता के कारण नहीं होते। ये विषमभोग हैं विषकी नाईंहैं और स्मरणमात्रसे भी विषवत् मूर्च्छाकरते हैं और सत्यविचार भूलजाता है। इससे तुम इनको त्यागकरके अपने

स्वभावमेंस्थितहोजाओ और ज्ञानवानोंकीनाईं विचरो। हे रामजी! जब इस जीवको अनात्ममें आत्माभिमान होताहै तब असङ्गरूप जगत्जालभी सत्यहो भासता है। ब्रह्माकोभी वासनाके वशसे कल्प देहका संयोग होता है । जैसे सुवर्णका प्रतिविम्ब जलमें पड़ताहै और उसकी झलक कन्धेपर पड़तीहै परकन्धेसे सुवर्णका कुछ संयोग नहीं होता तैसेही ब्रह्माका संयोग देहसे वास्तव कुछनहीं—कल्पनामात्र देहहै। राम जीनेपूंछा, हे महामती! आत्माविरञ्चिके पदको प्राप्तहोकर फिर यहसघनरूप जगत् कैसे रचते हैं वह क्रमसे कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जब प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुये तब जैसे गर्भसे बालक उपजताहै तैसेही उपजकर वारम्वार इसशब्दकाउच्चार किया कि, 'ब्रह्म'!'ब्रह्म'! इसकारण उसको ब्रह्माकहते हैं। फिर सङ्कल्प जालरूप और कल्पितआकार मनहोआया; उसमनने सङ्कल्पलक्ष्मी फैलाई। प्रथम सङ्कल्पसे माया उपजती है; फिर तेजअग्निके चक्रवत् फुरनेलगा और उससे बड़ाआकार होगया। फिर वह ज्यालाकीनाईं, सुवर्ण लतारूप,वड़ीजटा संयुक्त, प्रकाशको धारे और शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूपहोकर स्थितहुआ और अपनेसमान आकार वड़ेप्रकाश संयुक्तकल्पा और ज्यालाका मण्डल आकाशके मध्य स्थित हुआ—अग्निरूप और जिसके अग्निही अङ्ग हैं।हेमहाबुद्धिवान् रामजी! इसप्रकारतो ब्रह्मासेसूर्यहुयेहैं और दूसरी जोतेजकिरणें फुरतीहैं वे आकाशमें तारागण बिम्बपर आरूढ़ फिरते हैं। फिर ज्योंज्यों वहसंकल्प करतागया त्योंत्यों तत्कालही सिद्धहोकर भासनेलगा।इसीप्रकार आगे जगत् रचा। जिसप्रकार इस सृष्टिमें ब्रह्मारचताहै उसीप्रकार और सृष्टिमें रचते हैं। प्रथम प्रजा-पति,फिर कालकलना,नक्षत्र और तारागण;फिर देवता,दैत्य,मनुष्य,नाग,गन्धर्व,यक्ष, नदियां,समुद्र,पर्वत सब इसीप्रकारकल्पे और जैसे समुद्रमें तरङ्गकल्पितहोतेहैं तैसेही सिद्धरचके उनके कर्मरचे।वेभी शुभसंकल्परूपहैं जैसा संकल्पकरें वहीसिद्धहोकर भास-नेलगे। इसीप्रकार फिर भूत और तारागण उत्पन्नकिये और उन्होंने और उत्पन्नकिये। तब ब्रह्माजीने वेद उत्पन्नकिया और जीवोंके नाम,आचार, कर्मवृत्ति बनाये और जगत् मर्यादाके लिये नीतिरूप स्त्रीकोरचा। इसीप्रकार ब्रह्मकी माया ब्रह्मारूप से वड़े शरीर धररहीहै। आगे सृष्टिका विस्तारहै, लोक और लोकपालोंके क्रमकियेहैं और सुमेरु और पृथ्वीके मध्य दशोंदिशा रचकर सुख, मृत्यु, राग, द्वेष प्रकटकिये। इसप्रकार सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजीने रचा और जैसे उसने रचाहै तैसेही स्थितहै। यह जो कुछ सम्पूर्ण दृश्य भासताहै वह सब मायामात्र है। हे रामजी! इस प्रकार जगत्का क्रमहुआ है। सङ्कल्परूप संसार वड़ा स्थित होकर अज्ञानसे भासता है। यह तो संकल्पसे रचाहै, संकल्पके वशसे जगत् की क्रिया फैलाताहै; संकल्प वशसे देवनीति होकर स्थित हुआहै और सब ब्रह्माके संकल्पमें स्थितहै।जब उसका संक-

ल्प निर्वाण होताहै तब जगत्भी लय होजाताहै। एक समय ब्रह्माजी पद्मासन धर बैठेथे और विचारने लगे कि, यह जगत्जाल मनके संकल्प फुरनेमात्र है, मनके फुरने से उपज आताहै और नानाप्रकार के विकारसंयुक्त व्यवहार,इन्द्र, उपेन्द्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीसे लेकर सर्व जगत्जाल मायामात्र और बड़ा फैलरहाहै इसलिये अब मैं इससे निवृत्तहोऊं। ऐसे विचार उन्हों ने अनर्थरूप संकल्प को दूरकरके, आदि-अन्त रहित अनादिमत परमब्रह्मस्फार आत्मारूप आत्मतत्त्व में मनलय किया और आनन्दरूप आत्मा होकर अपने आपमें स्थित होकर निर्मल निरहंकार परमतत्त्वको प्राप्तहुये। जैसे कोई व्यवहार से थकाहुआ विश्राम करता है तैसेही वह अपने आपसे आत्मतत्त्वमें स्थित हुये। जैसे समुद्र अक्षोभ होताहै तैसेही वह अक्षोभ हुये और ध्यान में लगे और फिर जब ध्यान से जगे तो जैसे द्रवतासे समुद्र से तरंग फुरआवें तैसेही चित्तके वशसे ब्रह्माजी फुरन रूप होगये तब जगत्को देखके फिर चिन्तन करनेलगे कि, संसार दुःख, सुखसे संयुक्त अनन्त फांसीसे बन्धमानहै और राग, द्वेष, भय, मोहसे दूषितहै। हे रामजी! इसप्रकार जीवों को देखके ब्रह्माजी को दयाउपजी तो अध्यात्म ज्ञानसे सम्पन्न वेद उपनिषद् और वेदान्त प्रकटकिये और बड़े अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्ररचे। फिर जीवोंकी मुक्तिके निमित्त पुराणरचे और परमपदजो आपदासे रहित है उसमें स्थित हुआ। जैसे मन्दराचल पर्वतके निकलेसे क्षीरसमुद्र शांतहोता है तैसेही शांतरूपहोकर स्थितहुआ और फिर उसीप्रकार जागके जगत् को देख मर्यादामें लगाया फिर कमलपीठमें स्थित होकर आत्मतत्त्वके ध्यानपरायणहुआ। इसीप्रकार जोकुछ अपने शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीनेकीहै उसीप्रकार नीतिके संस्कारपर्यंत क्रीड़ा करते हैं और कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरतेहैं। जैसे ताड़ना और वासनासे रहितचक्र फिरताहै तैसेही वह जन्ममरणसे रहितहै। उसको शरीरके रखने और त्यागनेकी कुछ इच्छानहीं और न कुछ जगत् की स्थिति और न अनस्थितिमें इच्छाहै। वह किसी पदार्थ के ग्रहण और त्यागकी भावनामें आसक्तनहीं होता और सबमें समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है। कभी सब संकल्पसे रहित शान्तरूप होरहते हैं और कभी अपनी इच्छासे जगत् रचते हैं परन्तुउनको जगत् के रचने में कुछ भेद नहीं-सर्व पदार्थोंकी अवस्थामें तुलता है। हे रामजी! यह मैंने तुमसे ब्रह्माजीकी स्थितिकही है यह परमदशा और भी किसी देवताको उपजे तो उस को समता जानिये क्योंकि,वह शुद्ध सात्विकरूप है। सृष्टिके आदिजो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व में चित्तकला फुरी है वही मन कला ब्रह्मारूप होकर स्थित हुईहै। जब फिर जगत्के स्थिति क्रममें कलना उत्पन्न होती है तब वही ब्रह्मारूप आकाश, पवनको आश्रय लेकर औषध और पत्रों में

प्रवेश करती है । कहीं देवता भावको, कहीं मनुष्य भावको; कहीं पशुपक्षी तिर्य्य-गादिक भाव में प्राप्त होतीहै और कहीं चन्द्रमाकी किरणद्वारा अन्नादिक औषध में प्राप्त होती है। जैसे भावको लेकर चित्तकला फुरती है तैसाही भाव शीघ्र उत्पन्न हो आताहै। कोई उपजकर संसारके संसर्ग वशसे उसी जन्मके बन्धनसे मुक्त होजाते हैं क्योंकि, उन्हें अपने स्वरूपका चमत्कार होता है; कोई अनेक जन्मसे मुक्त होते हैं और कोई थोड़े जन्मसे मुक्त होते हैं। हे रामजी! इसप्रकार जगत्‌का क्रमहै। कोई प्रत्यक्ष, संकट, कर्म, बन्ध, मोक्षरूप उपजते हैं और कोई मिटजाते हैं। इस प्रकार संसार बन्धमोक्षसे पूर्ण है । जब यह कलनामल नष्ट होता है तब संसार से मुक्त होता है और जबतक कलनामल है तबतक संसार भासता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकमलजाव्यवहारोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५८॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी ने निर्मल पद में स्थित होकर सर्ग्ग फैलाया । संसाररूपी कूप में जीव भ्रमते हैं और जीवरूपीटींड़ी तृष्णा-रूपी रस्सी से बँधेहुये कभी अध और कभी ऊर्ध्व को जाते हैं । जब वासनारूपी रस्सी टूट पड़ती हैं तब ब्रह्म तत्त्वसे उठे ब्रह्मतत्त्व में एकत्र होजाते हैं । ब्रह्मसत्ता से जीव उपजते हैं और फिर ब्रह्मसत्ता मेंही लय होते हैं। जैसे समुद्रसे मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं और फिर वर्षासे उसीमें प्रवेशकरते हैं; तैसेही जब तन्मात्रा मण्डल से चित्तकला निकलती है तब उसीके साथजीव एकरूप होजाते हैं। जैसे मन्दारवृक्ष के पुष्पकी सुगन्धि वायुसे मिलकर एकरूप होजाती है तैसेही चित्तकला जीवतन्मात्रा से मिलकर प्राणनाम पाती है । इसप्रकार प्राणवायुसे आदितन्मात्रा जीवकलाको खैंचने लगता है जैसे बड़े प्रचण्ड दैत्यके समूह देवताओं को खैंचें तैसेही खैंचाहुआ जीवतन्मात्रासे एकरूप होजाता है। जैसे गन्ध और वायु तन्मय होते हैं तैसेही वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरमें वीर्य्य स्थान में जा प्राप्त होता है और जगत् में उपजकर प्राण प्रत्यक्षहोते हैं। कई धूम्रमार्ग से देहवान्‌के शरीरमें प्रवेश करते हैं और कई मेघ में प्रवेशकर बुन्द मार्ग से औषध में रसरूप होकर स्थित होते हैं औरउसको भोजन करनेवाले के भीतर वीर्य्यरूप होकर स्थित होते हैं। कई और प्राणवायुद्वारा प्रकटहोते हैं और चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्ग्ग से धानके खेत में चावलरूप स्थित होते हैं और उनको जीव भोजन करते हैं तो वीर्य्य में प्राप्त होते हैं और नानाप्रकारके रंगभेद से प्राण धर्म्म उपजते हैं और कोई उपजनेमात्र से जीवकी परम्परा तन्मात्रासे वेष्टित जब तक चन्द्रमा उदय नहीं हुआ आकाश में स्थित होते हैं और जब चन्द्रमा उदय होताहै तब उसका रस जो शीतलकिरणों और श्वेत क्षीरसमुद्रवत् है उसमें जा प्राप्त

होते हैं और उसके अन्तर्गत होकर पत्र औषध में स्थित होते हैं। जैसे कमलपर भँवरे आ स्थित होते हैं तैसेही औषध में जाकर जीव स्थित होते हैं और फल में स्वादरूप होकर स्थित होतेहैं। जैसे घुना रससे पूर्ण होताहै तैसेही जीवसे औषध और फल पूर्णहोजातेहैं। जैसे दूधसेस्तनपूर्णहोतेहैं तैसेही जीवसेफल पूर्णहोतेहैं। जब वे फल परिपक्कहोते हैं तो उनको देहधारी भक्षणकरतेहैं और उसमें जीव वीर्य्य और जड़ात्मकरूप होकर स्थित होतेहैं। वह सुषुप्ति वासनासे वेष्टितहुये गर्भ पिंजरेमें जा पड़ते हैं। हे रामजी! जैसे मृत्तिकामें घटादिक, काष्ठमें अग्नि और दूधमें घृत सदारहता है तैसेही वीर्यमें जीवरहता है। इसप्रकार परमात्मामहेशरूप से जीवकी परम्परा उपजती है। वायु, धूम्र, मेघ, औषध, प्राण, चन्द्रमाकी किरणें इत्यादिक अनेक मार्गोंसे जीवउपजते हैं जो उपजनेसे आत्मसत्तासे अप्रमादी रहते हैं और जिनको अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और महा उदार व्यवहार-वान् होते हैं और जिनको उपजना विस्मरण होजाता है और फिर उसी शरीरमें आत्माका साक्षात्कार होताहै वह सात्त्विकीरूप है और जो उपजकर नानाप्रकारके व्यवहार करते हैं और जिनको स्वरूप विस्मरण होजाता है जन्मकी परम्परा पाकर स्वरूपका साक्षात्कार होता है वे राजस सात्त्विकी कहाते हैं। जिनको अन्तका जन्म आरहताहै उनको जिसप्रकार मोक्ष होताहै वहक्रम अबतुमसे कहताहूं। हे रामजी! उपजने मात्रसे जो अप्रमादी हुयेहैं वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और वेही ब्रह्मादिकहैं और जो प्रथम जन्मसे बोधवान् हुये हैं वे सात्त्विकी हैं और जो कभी किसी जन्ममोक्षहुये हैं वे राजसी सात्त्विकी हैं। इससे भिन्न नानाप्रकारके मूक, जड़ और तम संयुक्त स्थावरादिक अनेक हैं। जिनको आत्मपद प्राप्तहुआ है उनको जो मिलतेहैं उनको अन्त का जन्महै। ऐसे पुरुष विचारते हैं कि, मैं कौनहूं और यह जगत् क्या है और इस विचारके क्रमसे मोक्षभागी होते हैं वे राजससे सात्त्विकी होते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविचारपुरुषनिर्णयोनाम
एकोनषष्टितमस्सर्ग्गः ५९॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जो राजससे सात्त्विकी होतेहैं वे पृथ्वीपर महागुणों से शोभायमान होतेहैं और सदा उदितरूप रहतेहैं। जैसे आकाशमें चन्द्रमा रहताहै। वे पुरुष खेद नहीं पाते—जैसे आकाशको मलीनता नहीं स्पर्श करती तैसेही उनको आपदा स्पर्श नहीं करती। जैसे रात्रिके आयेसे सुवर्णके कमल नहीं मुदते; जो कुछ प्रकृति आचार है उसके अनुसार चेष्टा करते हैं और जैसे सूर्य्य अपने आचार में विचरताहै और आचार नहीं करता; तैसेही वे सत्यमार्ग्गमें विचरते हैं और हृदयसे पूर्ण शान्तरूप हैं। जैसे चन्द्रमाकी कला क्षीण होतीहै तौभी वह अपनी शीतलता

नहीं त्यागता; तैसेही ज्ञानवान् आपदाके प्राप्तहुये भी मलीनताको नहीं प्राप्त होते। वे सर्व्वदाकाल मैत्री आदिक गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, और सदा उनसे शोभते हैं। समतारूप जो सम रसहै उससे वे पूर्ण और शान्तरूप हैं और निरन्तर शुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्य्यादामें स्थितरहतेहैं। हे रामजी! तुम भी महापुरुषोंकेमार्ग्गमें सदा चलो और जो मार्ग्ग परमपावन, आपदासे रहित और सात्विकीहै उसके अनुसार चलो तब आपदाके समुद्रमें न डूबोगे। जैसे वे खेदसेरहित जगत्मेंविचरतेहैं तैसेही विचरो। जिसक्रमसे राजससे सात्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो। प्रथम आर्यभावको प्राप्तहोना अर्थात् यथाशास्त्र सद्व्यवहार करना तो उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। उस आर्य्यपदको पाकर सन्तों के साथ मिलकर बारम्बार सत्शास्त्रों को विचारना और जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं उनमें प्रीति न करनी। विरक्तता उपजानी और जो त्रिलोकीके पदार्थोंके उपजने विनशनेमें सत्यरूपहै बारम्बार उसकी भावना करनी और दूसरी भावनाशीघ्रही मिथ्याजानकर त्यागनी। जो कुछ दृश्य जगत् भासता है उसे असम्यक् दृश्य है। निष्फल, नाशरूप और व्यर्थजानकर भावना त्यागनी और सम्यक्ज्ञानको स्मरण करना। सन्तजन और सत्शास्त्रजो ज्ञान के सहायक हैं उनके साथ मिलके विचारकरना कि, मैं कौनहूं और जगत् क्या है। भलीप्रकार प्रयत्नकरके विवेक संयुक्त सदाअध्यात्मशास्त्रका विचारकरना और सत्य व्यवहार और सात्विकी कर्मकरना और अवज्ञाकरके मृत्युको विस्मरण न करना। जो मृत्युविस्मरण करके संसार कार्य्यमें लगजाताहै वह डूबताहै; इससे स्मरणकरके सन्मार्ग में लगना और जिसपद में महाउदार और शीतलचित्त ज्ञानी पुरुष स्थित है उस पदके मार्ग और दर्शनमें सदाइच्छा रखनी। जैसे मोरको मेघकी इच्छारहती है। हे रामजी! अहंकार जो देहमें स्थित है यहदेह संसारमें उपजी है; इसको भली प्रकार विचारकरके नाशकरो। यह सांसारिक देह, रुधिर, मांस, मज्जा आदिक की बनावट है। जितने भूतजातहैं वे सब चेतनरूपी तागेमें मोती परोयेहैं; उनभूतों को त्यागकरके चिन्मात्र तत्वको देखो। चेतनसत्ता सत्य, नित्य और विस्मृतरूप है और शुद्ध, सर्व्वगत और सर्व्वभाव उसमें है। वह त्रिलोकी का भूषण आश्रय भूत है जो चेतन आकाश सूर्य्य में है। वही चेतन पृथ्वी के छिद्रमें कीट हैं जैसे घटाकाश और महाकाशमें भेद कुछनहीं तैसेही शरीर और चेतन में भेदनहीं। जैसे सब मिरचों में तीक्ष्णता एकही है तैसेही सर्वभूतों में चेतनता एकही अनुस्युत है—अनुभवसे जानताहै। उस एक चिन्मात्र में भिन्नता कहांसे हो ? एकसत्य सत्ता जो निरन्तर चिन्मात्र वस्तुरूप है उसमें जन्म मरण आदिक अज्ञानसे भासता है; वास्तवमें न कोई उपजाहै और न मरताहै,एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंकात्यों स्थितहै।

और उसमें जगत्विकार आभासमात्रहै; न सत्यहै न असत्यहै। चित्तके फुरनेसे भासताहै और चित्तके शान्तहुये शान्त होजाता है। जो जगत्को सत्यमानिये तो अनादि हुआ इससे भी शोक किसीका नहीं बनता और जो जगत् असत्य मानिये तोभी शोकका स्थान नहीं बनता। इससे दृढ़विचारकरके स्थितहो और शोकको त्यागो। तुमको न जन्म है और न मरण है—आकाशवत् निर्मल सम शान्तरूप होजावो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षविचारोनामषष्टितमस्सर्गः ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धैर्य्यवान् पुरुष बुद्धिमान् हैं वे सत्शास्त्रको विचारें; सन्तजनोंकासङ्गकरके उनका आचारग्रहणकरें और जोजो दुःखकीनाशकर्त्ताश्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं उनको यत्नकरके अङ्गीकार करें तब सन्तजनता प्राप्त होगी। सन्तजन जो विरक्तात्मा हैं उनसे मिलकर जब सत्शास्त्र को विचारे तब परमपद मिलता है। हे रामजी! जो पुरुष सत्शास्त्र का विचारने वाला है और सन्तजनों का सङ्गतथा वैराग्य अभ्यास आदरसंयुक्त करता है वह तुम्हारीनाईं विज्ञानका पात्र है। तुम तो उदारात्मा हो और धैर्य्यवान् के जो गुण शुभाचार हैं उनके समुद्रहो निर्दुःख होकर स्थित हो। अब राजसी सात्त्विकी और मननशील हुयेहो फिर ऐसेदग्धरूप संसारमें दुःखकेपात्र न होगे। यह तुम्हारा अन्तका जन्महै जो अपने स्वभावकी ओर धावते हो, अन्तर्मुख यत्न करते हो, निर्म्मल दृष्टि तुमको प्रकट हुईहै और भूत जगत् वस्तु को जानते हो। जैसे सूर्य्य के प्रकाश से यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है। अब मेरे वचनों की पंक्ति से सर्व्व मल दूर होजावेंगे—जैसे अग्नि से धातुका मल जलजाता है तैसेही तुम्हारा मल जलजावेगा और निर्म्मलता से शोभायमान होंगे। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश शोभता है तैसेही संसारकी भावना से मुक्तहोकर चिन्ता से रहित निर्म्मल भाव से शोभोगे। अहं, ममादि कल्पना से मुक्तहुयेही मुक्त है इसमें कुछ संशय नहीं। हे रामजी! तुम्हारा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है उसके अनुसार विचरोगे तो तुम अशोकपद पावोगे। और कोई इस व्यवहार को वर्तेगा वह भी संसार समुद्र को अनुभवरूपी बेड़े से तरजावेगा। तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होगी वह समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्यहै। जैसे सर्व्व कान्तिमान् सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चन्द्रमाहोताहै। तुम तो अशोकदशाको प्राप्त हुयेहो और यथाप्राप्तिमें वर्त्तते हो। जबतक देहहै तबतक राग द्वेपसे रहित स्थितबुद्धि रहो और यथाशास्त्र जो उचितआचारहैं उन्हेंवर्त्ताकरो पर हृदयमें सर्व्व कल्पनासेरहित शीतल चित्त हो—जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शीतल होता है। हे रामजी! इन सात्त्विक और राजससे—सात्त्विक से भिन्न जो तामसी जीव हैं उनका विचार यहां न करना; ये मूढ़ सियार हैं और मद्यादिक के पीनेवाले हैं, उनके विचारसे क्या प्रयोजन है? जो मैंने

तुममें सात्विकी जनकहे हैं उनके सेवनेसे बुद्धिअन्त के जन्मकी होती है और जो तामसी हैं उनको सेवे तो उनकी बुद्धिभी उदार होजातीहै । जिस जिस जाति में जीव उपजताहै उसजाति के गुणसे शीघ्रही संयुक्त होजाताहै । पूर्व जो कोई भावहोता है वह जातिके वश से वहां जाता रहताहै और जिस जाति में वह जन्मताहै उसके गुणोंको जीतने का पुरुपार्थ करताहै, तब यत्न से पूर्वके स्वभावको जीतलेता है। जैसे धैर्य्यवान् शूरमा शत्रुको जीतलेता है । जो पूर्वसंस्कार मलीन है तो धीर्य्य करके मलीन बुद्धिका उद्धार करे—जैसे मुग्ध पशु गढ़े में फँसजावे और उसको काढ़लेवे तैसेही बुद्धिको मलीन संस्कार से काढ़िले । हे रामजी ! जो तामस—राजसी जाति है उसकोभी जन्म और कर्म के संस्कार वशसे सात्विक प्राप्तहोता है और वहभी अपने विचार द्वारा सात्विक जाति को प्राप्तहोता है । पुरुष के भीतर अनुभवरूपी चिन्तामणि है उसमें जोकुछ निवेदन करताहै वहीरूप होजाताहै । इससे पुरुषार्थ करके अपना उद्धारकरो । पुरुष प्रयत्नसे पुरुष बड़े गुणोंसे संपन्न हो मोक्ष पाताहै और उसके अन्तका जन्महोता है; फिर जन्म नहीं पाता और अशुभ जाति के कर्म निवृत्त होजाते हैं । ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवलोकमें कोईनहीं जो यथा शास्त्र प्रयत्न करके न पाइये । हे रामजी ! तुमतो बड़े गुणोंसे संपन्नहो और धैर्य्य उत्तम वैराग और दृढ़बुद्धिसे संयुक्तहो और उसके पाने को धर्म बुद्धिसे वीतशोक रूपहो । तुम्हारे क्रमको जो कोई जीव ग्रहण करेगा वह मूढ़तासे रहित होकर अशोक पदको प्राप्तहोगा । अब तुम्हारा अन्तका जन्म है, और बड़े विवेकसे संयुक्तहो तुम्हारी बुद्धि में शान्तिके गुण फैलगये हैं और उनसे तुम शोभतेहो । सात्विकगुण क्रमसे सत्वमें रमरहेहो और संसारकी बुद्धि, मोह और चिन्ता तुमको मिथ्याहै—तुम अपने स्वस्थ स्वरूप में स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमहारामायणेस्थितिप्रकरणेमोक्षोपायवर्णनंनामएकषष्टितमस्सर्गः ६१ ॥

इति ॥

ॐसच्चिदानन्दायनमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

उपशमप्रकरणं पञ्चमम्प्रारभ्यते ॥
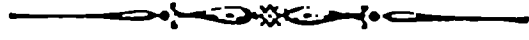
इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! अब स्थिति प्रकरणके अनन्तर उपशम प्रकरण कहता हूं जिसके जानेसे निर्वाणता पावोगे। जब वशिष्ठजीने इसप्रकार वचनकहे तब सब सभा ऐसी शोभितहुई जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं। वशिष्ठजीके वचन परमानन्दके कारणहैं। ऐसे पावनवचन सुनके सब मौन होगये और जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानि में स्थितहो तैसेही सभाके लोग और राजा स्थित हुये। स्त्रियां जो झरोखों में बैठीथीं उनके महाविलासकी चञ्चलता शांतहोगई और घड़ियालोंके शब्द जो गृह में होतेथे वे भी शांत होगये। शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्त्तिवत् अचल होगये और राजा से आदि लेकर जो लोगथे वे कथा के सन्मुख हुये। रामजी बड़े विकाश को प्राप्तहुये—जैसे प्रातःकाल में कमल विकाशमान होताहै और वशिष्ठजीकी कहीवाणी से राजादशरथ ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे मेघ की वर्षासे मोर प्रसन्न होता है। सब के चंचल वानररूपीमन विषय भोगसे रहितही स्थितहुये और मंत्री भी सुनके स्थित होरहे और अपने स्वरूपको जाननेलगे। जैसे चन्द्रमाकी कला प्रकाशतीहै तैसेही आत्मकला प्रकाशितहुई और लक्ष्मणने अपने लक्षस्वरूपको देखके तीव्रबुद्धि से वशिष्ठजी के उपदेशको जाना। शत्रुघ्न जो शत्रुओंको मारनेवालेथे उनकाचित्त अतिआनन्दसे पूर्णहुआ और जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमास्थितहोताहै तैसे मंत्रियोंकेहृदयमें मित्रताहोगई और मनशीतल और हृदय प्रफुल्लित हुआ। जैसे सूर्य्यके उदयहुये कमल तत्काल विकाशमान होताहै। और और जो मुनि,राजा और ब्राह्मण स्थितथे उनके रत्नरूपी चित्त स्वच्छ और निर्मल होगये। जब मध्याह्न कालका समयहुआ और बाजे बजकर उनके ऐसे शब्दहुये जैसे प्रलयकालमें मेघोंके शब्दहोते हैं और उनबड़े शब्दोंसे मुनीश्वरों का शब्द आच्छादित होगया—जैसे मेघके शब्दसे कोकिलाका शब्द दबजाता है।

तब वशिष्ठजी चुपहोगये और एक मुहूर्त्त पर्यंत शब्द होतारहा । जब घन शब्द शान्तहुआ तब मुनीश्वरने रामजीसे कहा, हे रामजी ! जोकुछ आज मुझे कहनाथा वहमें कहचुका अबकल फिरकहूंगा । यह सुन सर्वसभाके लोग अपने २ स्थानोंको गये और वशिष्ठजीने राजासेलेकर रामजी आदिसे कहा कि, तुमभी अपने२ घरमें जाओ । सबने चरणवन्दना और नमस्कार किया और जो नभचारी, वनचारी और जलचारीथे उन सबको विदाकर आप भी अपने २ स्थानों को गये और ब्राह्मणकी सुन्दरवाणी को विचारते और अपने २अधिकारकी क्रिया दिनको करतेरहे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपूर्वदिनवर्णनंनामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

इतना कहकर फिर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! इसप्रकार अपने २ स्थानों में सब यथाउचित क्रिया करनेलगे । वशिष्ठ, राजा, राघव, मुनि और ब्राह्मणोंने अपने २ स्थानों में स्नानआदिक क्रियाकी और गौ, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन आदिक ब्राह्मणोंको यथायोग्य पात्रदानदिये । सुवर्ण और रत्नोंसे जड़े स्थानोंमें आकर राजाने देवतोंका पूजनकिया और कोई विष्णुका, और सदाशिवका, कोई अग्नि का और किसीने सूर्य्य आदिकका पूजन किया । तदनन्तर पुत्र, पौत्र, सुहृद, मित्र, बांधवसंयुक्त नानाप्रकार के उचित भोजन किये । इतनेमें दिनका तीसरापहर आया तब सबने अपने सम्बन्धियों संयुक्त और२ क्रिया की और जबसांझहुई औरसूर्य्य अस्तहुआ तब सायंकालकी विधिकी और अघमर्षण गायत्रीआदिक का जापकिया और पाठश्रोत्र और पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरों की कही । फिर रात्रिहुई तब स्त्रियोंने शय्या बिछाई और उनपर वे विराजे पर रामजीबिना सबको रात्रि एकमुहूर्त्तवत् व्यतीतहुई रामजी स्थित होकर वशिष्ठजीके वचनकी पंक्तियोंको विचारनेलगे कि, जिसका नाम संसार है इसमें भ्रमणेका पात्र कौन है; नानाप्रकारके भूतजात कहांसे आतेहैं; कहांजाते हैं; मनका स्वरूप क्याहै: शांति कैसे होतीहै; यह माया कहांसे उठी है, और कैसे निवृत्त होती है; निवृत्तहुये विशेषता क्या होती है, नष्ट किसकी होती है; अनन्तरूप जो विस्तृत आत्मा है उसमें अहंकार कैसे होता है; मनके क्षय होने और इन्द्रियोंके जीतनेमें मुनीश्वरों ने क्याकहाहै और आत्माके पावने में क्यायुक्ति कहीहै । जीव, चित्त, मन और माया सबही एकरूपहै; विस्ताररूप संसार इसनेही रचाहै और जैसे तेंदुयेने हाथीको बांधाथा और वह कष्टपाताथा तैसेही असत्रूप संसारमें बँधकर जो जीव कष्टपाते हैं उस दुःखके नाशकरनेके निमित्त कौन औषध है । भोगरूपी मेघमालामें मोहितहुई मेरीबुद्धि गलितहोगई है;इसको मैं किसप्रकार भिन्नकरूं।यह तो भोगकेसाथ तन्मयहोगई हैऔर मुझको भोगोंके त्यागनेकी सामर्थ्य भीनहीं ; भोगोंके त्यागनेके विना वड़ी आपदाहै और उनके संहारनेकीभी सामर्थ्य

नहीं। बड़ा आश्चर्य है और हमकोबड़ा कष्टप्राप्तहुआ है। आत्मपदकी प्राप्तिमनके जीतनेसे होतीहै और वेदशास्त्रके कहनेका प्रयोजनभी यही है। गुरुके वचनोंसे भ्रम नष्टहोजाता है – जैसे बालकको परछाहीं में वैताल भासताहै– उस भ्रमको जैसे बुद्धिवान् दूर करताहै तैसेही मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करते हैं। वह कौनसमयहोगा कि, मैं शांतिपाऊंगा और संसार भ्रम नष्टहोजावेगा। जैसे यौवनवान् स्त्री भर्त्तारको पाके सुखसे विश्राम करतीहै; तैसेही मेरीबुद्धि आत्माको पाके कब विश्रामवान्होगी। नानाप्रकारके संसारके आरम्भ मेरे कब शांतहोंगे और कबमें आदि अन्तसे रहितपदमें विश्रांतवान् होऊंगा। मेरामन कब पावनरूपहोगा और पूर्णमासीके चन्द्रमावत् सम्पूर्णकलासे सम्पन्नहोकर स्वच्छ,शीतल और प्रकाशरूप पदमें कब स्थित होऊंगा। मैं कब जगत् देखके हँसूंगा और कबमलीन कलनाको त्यागके आत्मपदमें स्थितहोऊंगा। कब मैं मनकोसंकल्प विकल्पसे रहित शान्तरूप देखूंगा–जैसे तरङ्गसे रहित नदी शान्तरूप दीखतीहै। तृष्णारूपी तरङ्गसे व्याकुल जो संसार समुद्रहै वह मायाजालसे पूर्णहै और राग द्वेषरूपी मच्छोंसे संयुक्तहै,उसको त्यागके मैं वीतज्वर कबहोऊंगा।उस उपशमसिद्धिपदको मैं कबपाऊंगा जो बुद्धिवानोंने मूढ़ताको त्यागके पायाहै। मैं कबनिर्दोष और समदर्शीहोऊंगा और अज्ञानरूपी ताप मेरा कबनाश होगाजिससे सम्पूर्णअङ्ग मेरे तपतेहैं।सबधातु क्षोभरूपहोगई हैं और उनसेबड़ादीर्घ ज्वरहुआहै इससे कब मेराचित्त शांतवान् होगा–जैसे वायुबिना दीपक शांतहोताहै। कब मैं भ्रम त्यागके प्रकाशवान् हूंगा और कब मैं लीलाकरके इन्द्रियोंके दुःखों को तरजाऊंगा।दुर्गन्धरूप देहसे मैं कब न्याराहोऊंगा और 'अहं त्वं' आदिक मिथ्याभ्रम कानाश मैं कबदेखूंगा।जिसपदके आगे इन्द्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मन्दारादिक वृक्षों की सुगन्ध और नानाप्रकारके भोग तृणवत् भासतेहैं वह आत्मसुख हमकोकब प्राप्त होगा। वीतराग मुनीश्वरने जो हमसे ज्ञानकी निर्मलदृष्टि कहीहै उसको पाके मन विश्रामवान् होताहै। संसार तो दुःखरूप है मन तू किसका पद पाके विश्रामवान् हुआहै। माता,पिता, पुत्रादिक जो सम्बन्धीहैं उनकापात्र मैं नहींहूं; इनकापात्र भोगी होताहै। बुद्धि तू मेरीबहिनहै, तू मेराशीघ्रही अर्थभ्रातृवत् पूर्णकर कि, तुम हमदोनों दुःखसे मुक्तहों। मुनीश्वरके वचनों को विचारके हमारी आपदा नाशहोगी, हमभी परमपदको प्राप्तहोंगे और तुझकोभी शान्तिहोगी। हे मेरीबुद्धि ! तू ज्योंका त्योंस्मरण कर कि, वशिष्ठजीने क्या कहाहै। प्रथम तो वैराग्यकहाहै, फिर मोक्षव्यवहार कहाहै; फिर उत्पत्तिप्रकरण कहाहै कि, संसारकी उत्पत्ति इसक्रमसे हुईहै और फिर स्थिति प्रकरण कहाहै कि, ईश्वरसे जगत्की स्थितिहै और नानाप्रकारके दृष्टान्तोंसे उसे निरूपण कियाहै। निदान जितने प्रकरणकहेहैं वे ज्ञान विज्ञानसंयुक्तहैं। हेबुद्धि!जिस

प्रकार वशिष्ठजी ने कहा है तैसे तू स्मरणकर और अनेकवार विचारकर । बुद्धि में निश्चय न हो तो वह क्रिया भी निष्फल है। जैसे शरत्काल का मेघ वड़ा घनभी दृष्टि आता है परन्तु वर्षा से रहित निष्फल होता है तैसेही बुद्धिमें अनुसंधान से रहित विचार किया निष्फल होता है । जो बुद्धि में अनुसन्धान कीजिये वह विचार सुफल होता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउपदेशानुसारवर्णनंनामाद्वितीयस्सर्गः २ ॥

वाल्मीकिजी वोले, हे भारद्वाज! जव इसप्रकार वड़े उदारआत्मा रामजीने चित्त संयुक्त रात्रि व्यतीतकी तो कुछ तमसंयुक्त तारागणहुये और दिशा भासने लगीं। प्रातःकाल के नगारे नौवत वजने लगे तव रामजी ऐसे उठे जैसे कमलों की खानिसे कमल उठे और भाइयों के साथ प्रातःकाल के सन्ध्यादिक कर्म कर कुछ मनुष्यों के संयुक्त वशिष्ठजी के आश्रम में आये । वशिष्ठजी एकान्तसमाधि में स्थित थे उनको दूरसेदेख रामजी ने नमस्कारसहित चरणवन्दनाकी और प्रणाम करके हाथ वांध खड़ेरहे। जव दिशाका तम नष्टहुआ तव राजा और राजपुत्र,ऋषि,ब्राह्मण जैसे ब्रह्मलोकमें देवताआवें तैसेआये।वशिष्ठजीका आश्रमजनोंसे पूर्णहोगया और हाथी, घोड़े, रथ, प्यादा चारप्रकारकी सेनासे स्थानशोभित हुआ। तव तत्काल वशिष्ठजी समाधिसे उतरे और सर्वलोगोंने प्रणामकिया।वशिष्ठजीने उनसवका प्रणाम आचार-पूर्वक यथायोग्य ग्रहण किया और विश्वामित्रको सङ्गलेकर सवसे आगे चले वाहर निकलकर रथपर आरूढ़हुये–जैसे पद्ममें ब्रह्मा वैठे और दशरथके गृहकोचले। जैसे ब्रह्माजी देवताओंसे वेष्टित इन्द्रपुरीको आतेहैं तैसेही वशिष्ठजी वड़ीसेनासे वेष्टितदशरथके गृहआये और जो विस्तृत रमणीयसभाथी उसमें प्रवेश किया जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंमें प्रवेशकरे। तव राजा दशरथने जो वड़ेसिंहासनपर वैठेथे उठकर आगेआ चरणवन्दनाकी और नम्रहोकर चरणचूंवे। वशिष्ठजी सर्वके अग्रहोकर शोभितहुये और अनेक मुनि, ऋषि और ब्राह्मणआये। दशरथसेलेकर राजा सर्व मंत्री और वन्दीजन और रामजीसे आदिलेकर राजपुत्र,मण्डलेश्वर;जगत्के अधिष्ठाता और मालवआदि सर्वभृत्य और टहलुयेआ यथायोग्य अपने २ आसनपर वैठे और सवकी दृष्टि वशिष्ठजी की ओर हुई। वन्दीजन जो स्तुति करतेथे और सर्व लोक जो शब्द करतेथे चुप होगये निदान सूर्य उदय हुआ और किरणोंने झुककर झरोखों से प्रवेश किया; कमल खिलआये; पुष्पोंसे स्थान पूर्ण होगये और उनकी महासुगन्ध फैली झरोखे में स्त्रियां अपनी अपनी चंचलता त्यागकर मौन हो वैठीं और चमर करने वाली मौन होकर शीशपर चमर करनेलगीं और सव वशिष्ठजीकी महासुन्दर कोमल मधुरवाणी को स्मरणकर आपसमें आश्चर्य्यवान् होनेलगे। तव

आकाशसे राजऋषि, सिद्ध, विद्याधर और मुनि आये और वशिष्ठजी को प्रणाम किया पर गम्भीरता से मुखसे न बोले और यथायोग्य आसनपर बैठगये। पुष्पोंकी सुगन्ध युक्तवायु चली और अगर चन्दनादिकी सभामेंबड़ी सुगन्ध फैलगई। भँवरे शब्द करते फिरते थे और कमलों को देखकर प्रसन्न होते थे। रत्न माणि भूषणजो राजा और राजपुत्रोंने पहिनेथे उनपर सूर्य्यकी किरणेंपड़नेसे बड़ाप्रकाश होताथा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसभास्थानवर्णनन्नामतृतीयस्सर्ग्गः ३॥

वाल्मीकिजी बोले कि,उससमय दशरथजीने वशिष्ठजीसे कहा,हे भगवन्! कलके श्रमसे आप श्रमितहैं और आपकाशरीर गरमीसे अति कृशसाहोगयाहै इसनिमित्त आपसेकहाहै। हे मुनीश्वर! आपने जो आनन्दवचनकहे हैं वे प्रकटरूपहैं और वचन रूपी अमृतकीवर्षासे हम आनन्दवान्हुयेहैं। हमारे हृदयका तम दूरहोकर शीतल चित्त हुआहै—जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे तम और तपन दोनों निवृत्तहोतेहैं तैसेही आपके वचनों से हम अज्ञानरूपी तम और तपनसे रहित हुये हैं। आप के वचन अमृतवत् अपूर्व्वरस आनन्द देतेहैं और ज्यों ज्यों ग्रहणकरिये त्योंत्यों विशेषरस आनन्दआताहैं। ये वचन शोकरूपी तप्तको दूर करनेवाले और अमृतकी वर्षारूप हैं। आत्मारूपी रत्न को दिखानेवाले परमार्थरूपी दीपक हैं; सन्तजनरूपी वृक्षकी बेलि हैं; और दुरिच्छा और दुष्ट आचरण के नाश करनेवाले हैं। जैसे तमको दूर करने और शीतलता करनेको शांतरूप चन्द्रमाहै तैसेही सन्तजनरूपी चन्द्रमाको। किरणरूपी वचनों से अज्ञानरूपी तप्तका नाश होताहै। हे मुनीश्वर! तृष्णा और लोभादिक विकार आपकी वाणीसे ऐसे नष्ट होगयेहैं जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है और आपके वचनोंसे हम निष्पाप हुये हैं। आत्मदर्शनके निमित्त हम प्रवर्त्तते हैं। आपने हमको परमअंजन दिया है उससे हम सचक्षुहुये हैं और संसाररूपी कुहिरा हमारा निवृत्त हुआ है। जैसे कल्पवृक्षकी लता और अमृत का स्नान आनन्द देता है तैसेही उदारबुद्धि की वाणी आनन्ददायक होती है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, ऐसे वशिष्ठजीसे कहकर रामजीकी ओर मुख करके दशरथजीने कहा;हे राघव! जो काल सन्तोंकी संगतिमें व्यतीत होताहै वही सफल होताहै और जो दिन सत्संगविना व्यतीत होताहै वह वृथाजाताहै। हे कमलनयन रामजी! तुम फिर वशिष्ठजीसे कुछपूछो तो वे फिर उपदेशकरें—ये हमारा कल्याण चाहते हैं। वाल्मीकिजी बोले कि, जबइसप्रकार राजादशरथने कहा तब रामजीकी ओर मुखकरके उदार आत्मा वशिष्ठ भगवान् बोले कि, हे राघव! अपने कुलरूपी आकाशके चन्द्रमा! मैंने जो वचन कहेथे वे तुमको स्मरण आतेहैं? उन वाक्योंका अर्थ स्मरणमें है और पूर्व और अपरकाकुछ विचार किया है? हे महाबोधवान् म-

ह्वावाहो ! और अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता ! सात्विक, राजस और तामस गुणों के भेदकी उत्पत्ति जो विचित्ररूप हैं वह मैंने कही है। तुम्हारे चित्तमें है सर्वभी वही है, असर्वभी वही है; सत्यभी वही है और असत्य भी वही है और सदा शांत अद्वैत रूपहै। यह परमात्मा देवका विस्मृतरूप स्मरणहै। जैसे विश्व ईश्वरसे उदय हुआ है वह स्मरणहै; यह जो देववाणी है इसका पात्र शुद्धचित्त है;अशुद्ध नहीं। हे सत्य-बुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्मृतरूप भासती है उसकारूप स्मरण है ? अर्थ से शून्य, क्षणभंगुररूप, सम्यक् दर्शनसे रहित, निर्जीवहै। यह जो लवणके विचारद्वारा मैंने प्रतिपादनकिया है वह भलीभांति स्मरण है ? और वाक्योंका समूह जो मैंने तुमको कहाहै उनका रात्रिमें विचारके हृदयमें धाराहै ? जबपुरुष वारम्वार विचारते हैं और तात्पर्य हृदय में धारते हैं तब बड़ाफलपाते हैं और जो अवज्ञासे अर्थका विस्मरण करते हैं तो फलनहींपाते। हे रामजी ! तुमतो इनवचनों के पात्रहो—जैसे उत्तमवांसमें मोती फलीभूत होते हैं और में नहीं उपजते; तैसेही जो विवेकी उदार आत्माचित्त पुरुषहैं उनकेहृदयमें ये वचन फलीभूतहोते हैं। वाल्मीकिजीवोले कि, इस प्रकार जब ब्रह्माजीकेपुत्र वशिष्ठजीनेकहा तब महाओजवान् गम्भीर रामजी अवकाश पाके वोले; हे भगवन् ! सवधर्मोंके वेत्ता। आपने जो परमउदार वचनकहे हैं उनसे मैं वोधवान् हुआहूं और जैसे आप कहते हैं तैसेही सत्यहै, अन्यथा नहीं। हे भगवन् ! मैंने समस्त रात्रि आपके वाक्योंके विचारमें व्यतीतकी है। आपतो हृदयके अज्ञान-रूपी तमको नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हैं। हे भगवन् ! आपने जो व्यतीत दिनमें आनन्ददायक, प्रकाशरूपी, रमणीय और पवित्रवचन कहे थे वे मैंने सब अपनेहृदयमें भलीप्रकार धरे हैं। जैसे समुद्रसे नानाप्रकारके रत्न निकलते हैं तैसेही आपके वचन कल्याणकर्त्ता और वोधवान् हैं अर्थात् सबकेसहायक और हृदयगम्य आनन्दका कारणहैं। वह कौनहै जो आपकी आज्ञाशिरपर न धरे ? जो मुमुक्षु जीवहैं वे सब आपकी आज्ञा शीशपर धरते हैं और अपने कल्याणके निमित्त जानते हैं। हे मुनीश्वर ! आपके वचनोंसे मेरेसंशय निवृत्तहुये हैं—जैसे शरत्काल में मेघ और कुहिरानष्ट होजाताहै और निर्मल आकाश भासता है। यह संसार आपातरमणीय हो भासता है; जबतक पदार्थोंका अभाव नहीं होता तबतक सुखदायक भासते हैं और जब विषय पदार्थ इन्द्रियोंसे दूरहोतेहैं तब दुःखदायक होजातेहैं आपके वचन ऐसेहैं कि, जिनके आदिमें भी यत्न कुछनहीं, सुगम मधुर आरम्भहै; मध्यमें सौभाग्य मधुरहै अर्थात् कल्याण करताहै और पीछेसे अनुत्तमपदको प्राप्त करतेहैं जिसके समान और कोई पदनहीं। यह आपके पुण्यरूप वचनोंकाफलहै और आपकेवचन-रूपी पुष्प सदा कमल समान खिलेहुये निर्मल आनन्दके देनेवाले हैं और उदित

फूलहैं, उनका फल हमको प्राप्त होगा। सबशास्त्रों में जो पुण्यरूपी जल है उसका यह समुद्रहै, अब मैं निष्पाप हुआहूं मुझको उपदेश करो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराघववचनंनामचतुर्थस्सर्गः ४॥

वशिष्ठजी बोले, हे सुन्दरमूर्त्ति रामजी! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशम प्रकरणहै उसेसुनो, तुम्हारे कल्याणके निमित्त मैं कहताहूं। यह संसार महादीर्घरूप है और जैसे दृढ़थम्भके आश्रय गृह होता है तैसेही राजसी जीवोंका आश्रय संसार माया-रूप है। तुम सारिखे जो सात्विकमें स्थित हैं वे शूरमे हैं; जो वैराग, विवेक आदिक गुणोंसे सम्पन्न हैं वे लीला करके यत्न विनाही संसार मायाको त्याग देते हैं और जो बुद्धिवान् सात्विक जागे हुये हैं और जो राजस और सात्विकहैं वे भी उत्तमपुरुषहैं। वे पुरुषजगत् के पूर्व अपूर्वको विचारते हैं। जो सन्तजन और सत्शास्त्रोंका सङ्ग करता है उसके आचरणपूर्वक वे विचरते हैं और उससे ईश्वर परमात्माके देखनेकी उन्हें बुद्धिउपजतीहै और दीपकवत् ज्ञान प्रकाश उपजताहै। हे रामजी! जबतक मनुष्य अपने विचारसे अपना स्वरूप नहीं पहिंचानता तबतक उसे ज्ञान प्राप्तनहीं होता। जो उत्तमकुल, निष्पाप, सात्विक-राजसी जीव हैं उन्हींको विचार उपजता है और उस विचारसे वे अपने आपसे आपको पाते हैं। वे दीर्घदर्शी संसारके जो नाना-प्रकारके आरम्भ हैं उनको विचारते हैं और विचार द्वारा आत्मपद पाते हैं और परमानन्द सुखमें प्राप्तहोते हैं। इससे तुम इसी संसार को विचारो कि, सत्य क्याहै और असत्य क्याहै? ऐसे विचार से असत्य का त्यागकरो और सत्य का आश्रय करो। जो पदार्थ आदि में नहो और अन्तमें भी न रहे उसे मध्यमें भी असत्य जानिये।जो आदि, अन्त एकरस है उसको सत्य जानिये और जो आदि अन्त में नाश रूप है उसमें जिसको प्रीति है और उसके रागसे जो रञ्जितहै वह मूढ़पशु है; उसको विवेक का रङ्गनहीं लगता। मनहीं उपजताहै और मनहीं बढ़ता है; सम्यक् ज्ञानके उदय हुये मन निर्वाण होजाताहै। मनरूपी संसारहै और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। रामजीने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो कुछ आप कहते हैं वह मैंनेजाना कि, यह संसार सर्वभावना में मनरूपहै और जरा मरण आदिक विकारका पात्रभी मनहीं है। उस के तरनेका उपाय निश्चयकरके कहो। हमसब रघुवंशियों के कुलके अज्ञानरूपी तमको हृदय से दूर करनेको आप ज्ञानके सूर्य्य हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम तो जीवको विचारपूर्वक वैराग कहा है कि, सन्तजनों का सङ्ग और सत्शास्त्रों से मनको निर्मलकरे। जब मनको निर्मलकरेगा तब स्वजनतासे सम्पन्न होगा और वैराग उप-जेगा। जब वैराग प्राप्त होगा तब ज्ञानवान् गुरुके निकट जावेगा और जबवह उप-देश करेंगे तब ध्यान, अर्चनादिकके क्रमसे परमपदको प्राप्त होगा। जब निर्मल

विचार उपजताहै तव अपने आपको आपसे देखताहै—जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अपने विम्बको आपसे देखता है। जवतक विचाररूपी तटका आश्रय नहींलिया तवतक संसारमें तृणवत् भ्रमता है और जव विचार करके ज्यों की त्यों वस्तुजानता है तव सवदुःख मनसे नष्ट होजाते हैं। जैसे सोमजलके नीचे रेत जा रहतीहै तैसेही आधीपीड़ा उसकी रहजाती है फिर उत्पन्न नहीं होता। जैसे जवतक सुवर्ण और राख मिली हुईहै तवतक सोनार संशयमें रहताहै और जव सुवर्ण और राख भिन्न होजातीहै तव संशय रहित सुवर्णको प्रत्यक्ष देखता है और तभी निःसंशय होताहै; तैसेही अज्ञानसे जीवोंको मोह उत्पन्न होताहै और देह इन्द्रियोंसे मिलाहुआ संशय में रहताहै। जव विचारसे भिन्नभिन्नजाने तव मोह नष्ट हो और तभी संशयसे रहित शुद्ध अविनाशी रूप आत्माको देखता है। विचारकियेसे मोहका अवसरनहीं रहता—जैसे अज्ञान पुरुष चिन्तामणिकी कीमत नहींजान सक्ता, जव उसको ज्ञान प्राप्तहोता है तव ज्योंका त्यों जानताहै और मोह संशय निवृत्त होजाताहै; तैसेही जीव जवतक आत्मतत्त्वको नहीं जानता तवतक दुःखका भोगी रहताहै और जव ज्यों का त्यों जानता है तव शुद्ध शांतिको प्राप्त होताहै। हे रामजी! आत्मा देहसे मिश्रित भासता है पर वास्तव में कुछ मिश्रित नहीं; इससे अपने स्वरूपमें शीघ्रही स्थित होजावो। निर्मल स्वरूप जो आत्माहै उसको रंचकमात्र भी देहसे सम्बन्ध नहीं—जैसे सुवर्ण कीचमें मिश्रित भासताहै तौभी सुवर्णको कीचका लेपनहीं—निर्लेप रहता है तैसेही जीवको देहसे कुछ सम्बन्ध नहीं निर्लेपही रहताहै—आत्माभिन्न है; देहभिन्नहै। जैसे जल और कमल भिन्न रहते हैं। मैं ऊंची भुजा करके पुकारताहूं, मेराकहा कोईनहीं मानता कि, सङ्कल्पसे रहित होना परमकल्याण है। यही भावना हृदय में क्यों नहीं करते? जवतक जड़ धर्म है अर्थात् विषय भोगों में आस्थाकरता है और आत्मतत्त्वसे शून्य रहता है तवतक मूढ़रहता है; जवतक स्वरूप का प्रमाद है तवतक हृदयसे संसारका तम और किसीप्रकार दूर नहीं होता। चन्द्रमा उदयहो और अग्निकासमूहहो वा द्वादशसूर्य्य इकट्ठे उदय हों तौभी हृदय तम रंचकमात्र भी दूरनहीं होता और जव स्वरूपको जानकर आत्मा में स्थितहो तव हृदय का तम नष्टहोजावेगा। जैसे सूर्य्यके उदयहुये जगत्का अन्धकार नष्ट होता है। जवतक आत्मपदका वोधनहीं होता और भोगोंमें मन तद्रूप है तवतक संसार समुद्रमें वहे जावोगे और दुःखकाअन्त न आवेगा। जैसे आकाशमें धूलि भासती है परन्तु आकाशको धूलिका सम्बन्ध कुछ नहीं और जैसे जलमें कमल भासताहै परन्तु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है; तैसेही आत्मा देहसे मिश्रित भासता है परन्तु देहसे आत्माका कुछ स्पर्शनहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे सुवर्ण कीच और मलसे अलेप रहता

है। देह जड़ है; आत्मा उससे भिन्न है और सुख दुःख का अभिमान आत्मा में भासता है वह भ्रममात्र असत्यरूप है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नीलता असत्य रूप है तैसेही आत्मा में सुख दुःखादि असत्यरूप हैं। सुख दुःख देहको होता है; सबसे अतीत आत्मामें सुख दुःखका अभाव है। यह अज्ञान करके कल्पित है, देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता; इससे सुख दुःख भी आत्मा में कोई नहीं, सर्वात्मामय शान्तरूप हैं। यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टिआता है वह मायामय है; जैसे जलमें तरङ्ग और आकाशमें तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मामें जो जगत् भासता है सो आत्माही है; न एकहै, न दो हैं; सब आभासमात्र हैं और मिथ्यादृष्टि आकार भासता है। जैसे मणिका प्रकाश मणिसे भिन्ननहीं और जैसे अपनी छाया दृष्टि आती है तैसेही आत्माका प्रकाशरूप जो जगत् भासता है वहसब ब्रह्मरूप है। मैं औरहूं, यह जगत् और है; इस भ्रमको त्याग करो; विस्मृत रूप ब्रह्मघनसत्तामें और कोई कल्पना नहीं। जैसे जलमें तरङ्ग कुछ भिन्नवस्तुनहीं जलरूपही हैं; तैसेही सर्वरूप आत्मा एकरूप है, उसमें द्वितीय कल्पना कोई नहीं। जैसे अग्निमें बरफके कणके नहीं होते; तैसेही ब्रह्ममें दूसरी वस्तु कुछनहीं। इससे अपने स्वरूपकी आपही भावनाकरो कि,'मैं चिन्मात्ररूपहूं' "जगत्जाल सब मेराही स्वरूपहै" और मैंहीं विस्तृतरूप हूं,। जो कुछ है वह देवही है; न शोकहै, न मोहहै, न जन्महै, न देह है। ऐसे जानके विगत ज्वर हो जावो; तुम्हारी स्थिर बुद्धि है और तुम शांतरूप, श्रेष्ठ, मणिवत् निर्मलहो। हे राघव! तुमनिर्द्वन्द होकर नित्यस्वरूपमें निर्योगक्षेम, आत्मवान्, विशोक होकर स्थित होजावो और सत्य सङ्कल्प, धैर्यवान्, यथा प्राप्तिमें वर्त्तो। तुम वीतराग, निर्यत्न, निर्मल,वीतकल्मप हो; न देतेहो, न लेतेहो; ग्रहण त्यागसे रहित शांतरूपहो। त्रिश्वसे अतीत जो पदहै उसमें प्राप्तहोकर जो पाने योग्यपद है उसकोपाकर परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप, सन्तापसे रहित विचरो। हे रामजी! सङ्कल्पजालसे मुक्त और मायाजालसेरहित अपने आपसेतृप्त और विगतज्वर होजावो। आत्मवेत्ताका शरीर अनन्तहै और तुमभी आदि अन्तसे रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वरहो। हे रामजी! तुम अपने आपसे उदार होकर अपने आप आनन्दसे आनन्दी होवो। जैसे समुद्र और पूर्णमासीका चन्द्रमा अपने आनन्दसे आनन्दवान् हैं तैसेही तुम भी आनन्दवान्हो। यह जो प्रपञ्चरचना भासती है सो असत्यहै; जो ज्ञानवान् हैं वे असत्य जानकर इसकी ओरनहीं धावते। तुमतो ज्ञानवान् हो असत्य कल्पना त्यागकरके दुःखसे रहितहो और नित्य, उदित, शान्तरूप ,शुभगुण संयुक्त उपदेश द्वारा चक्रवर्ती होकर पृथ्वीका राज्यकरो, प्रजाकी पालनाकरो और समदृष्टिसे विचरो। बाहरसे यथाशास्त्रकरो शुभचेष्टा और राज्यकी

मर्यादा रक्खो पर हृदयसे निर्लेप रहना । तुमको त्याग और ग्रहणसे कुछ प्रयोजन नहीं और ग्रहण त्यागसे समबुद्धि समभाव से राज्यकरो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रथम उपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः ५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसकी हृदयसे बासना नष्ट हुईहै वह पुरुष जो कार्य्यों में वर्त्तता है तौभीमुक्तहै । हमारेमतमें बन्धनका कारण बासनाहै; जिसकी बासना क्षय हुईहै वह मुक्तस्वरूपहै और जिसकी बासनापदार्थोंमें सत्यहै वह बन्धमेंहै । कोई पुरुष अपने पुरुषार्थोंका आश्रयकर कर्त्तव्यभी करतेहैं और प्रीतिकरके प्रवर्त्तते हैं तो वे अपनी बासनासे स्वर्गमेंजातेहैं और फिरस्वर्गको त्यागकर दुःख और नरक भोगते हैं । वे अपनी बासनासे बांधेहुये पशु आदिक स्थावरयोनिको प्राप्त होते हैं और कोई आत्मवेत्ता पुण्यवान् पुरुष मनकी दशाको विचारतेहैं और तृष्णारूपी बन्धनको काटकर निर्मल आत्मपदको प्राप्तहोतेहैं । जो पुरुष पूर्वजन्म को भोगकर इसजन्ममें मुक्त होतेहैं वे राजस-सात्त्विकी होतेहैं । जिनका यह जन्म अन्तका होता है वे क्रम करके परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं-जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा क्रम से पूर्णमासी का होताहै और सबकलाओंसे पूर्ण होता है । जैसे वर्षाकालमें कण्टक वृक्षकी मञ्जरी बढ़ जातीहै तैसेही सौभाग्य और लक्ष्मी उनको बढ़ती जातीहै । हे रामजी ! जिनका यह जन्म अन्तका होताहै उनमें निर्मलगुणजो वेदने कहे हैं अर्थात् मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्यता प्रवेश करते हैं । सब जीवोंपर दयाकरनी मैत्री है; हृदय में सदा समताभाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता कहानाहै; सदा प्रसन्न रहना सौम्यताहै; यथा शास्त्र आचार करना आर्यताहै और ज्ञानका नाम ज्ञातव्यताहै । जैसे राजाके अन्तःपुरमें श्रेष्ठ अङ्गना आ प्रवेश करती हैं तैसेही जिसको अन्तका यही जन्महै सो राजस-सात्त्विकी है और उसके हृदय में मैत्री आदिक सर्वगुण आ प्रवेश करते हैं । संसारी पुरुष सबकार्य्योंको करताहै परन्तु उसके हृदय में लाभ अलाभका राग द्वेष नहीं होता और सर्वदा काल समभाव रहताहै । वह न तोषवान् होताहै और न शोकवान् होताहै । जैसे सूर्यके उदय हुये तमनष्ट होजाता है तैसेही आत्मभाव से रागद्वेष नष्ट होजाते हैं और सर्वगुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं । जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होताहै तैसेही वह कोमल और सुन्दर होताहै और उसका मधुर आचार होताहै; सर्वजीव उसके आचारकी बांछा करते हैं और उसको देखके मोहित होजाते हैं । जैसे मेघकीध्वनिसे बगुले आ प्रवेश करते हैं तैसेही उस पुरुषमें सबगुण प्रवेश करते हैं और गुणोंसे पूर्णहोकर वह गुरूकी शरण जाताहै । तब वह उसे विवेकका उपदेश करता है और उस विवेकसे वह परमपद में स्थित होताहै । हे रामजी ! जो वैराग्य और विचारसे सम्पन्न चित्तहै वह आत्मा देहको

देखताहै; उसको दुःख स्पर्श नहीं करता; वह यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है। तुम बिचारका आश्रय करके मनको जगावो; जिसमें मन नहीं मथनहै अर्थात् सदा प्रपञ्च दृश्यका मननभाव करताहै। जो अन्तका जन्मवान् पुरुषहै वह मनरूपी मृग को जगाताहै। प्रथमतो गुणज्ञानसे जगाताहै; फिर बड़े गुणोंसे जगाताहै और फिर जानके सेवनका यत्न करताहै उससे जगाताहै। वह निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोंको बिचार करताहै; उस बिचार से जगत् को आत्मरूप देखताहै और आत्माके प्रकाश बिचार से अविद्यामल नष्ट होजाताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमोपदेशवर्णनंनामषष्ठस्सर्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमसे मैंने क्रमकहा सो वह सब जीवोंको समान है इससे जो बिशेष है वह तुमसुनो। इस जगत् के आरम्भमें जो देहधारी जीव हैं उन जीवोंका प्रकाशसे मोक्षहोताहै। एक उत्तम क्रमहै और एक समान क्रमहै। जो गुरूके निकटजावे और वह उपदेशकरे तो उस उपदेशके धारणसे शनैश्शनैः एक जन्मसे अथवा अनेक जन्मोंसे सिद्धता प्राप्तहोतीहै और दूसराक्रम यहीहै जो अपने आपसे वह उत्पन्न होताहै अर्थात् समझ लेताहै। जैसे वृक्षसे फलगिरे और किसीको आप्राप्तहो तैसेही ज्ञान प्राप्तहोताहै। इसीपर पूर्वका वृत्तान्त मैं तुमसे कहताहूं सो तुम सुनो। वह महा पुरुषोंका वृत्तान्तहै। शुभ अशुभ गुणों के समूह जिनके नष्ट हुये हैं और अकस्मात् फल जिनको प्राप्तहुआहै उनका निर्मल क्रमसुनो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमसूचनानामसप्तमस्सर्गः ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसकी सर्व सम्पदा उदय हुईथी और सब आपदा नष्ट हुईथी; ऐसा एक उदार बुद्धि विदेह नगर का राजा जनक हुआ है। वह बड़ा धैर्य्यवान् था, अर्थीका अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्णकरे; मित्ररूपी कमलोंको सूर्य्यवत् प्रफुल्लितकरे; बांधवरूपी पुष्पों को वसन्तऋतुवत् और स्त्रियोंको कामदेववत् था। ब्रह्मरूपी चन्द्रमुखी कमलका वह शीतल चन्द्रमा था, दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य्यथा और स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र पृथ्वीमें मानो विष्णुसूर्य्य स्थितहुआथा ऐसा राजाजनक एकसमय लीला करके अपनेबागमें जिसमें मीठे फल लगेथे और नाना-प्रकारके सुन्दर वेलोंपर कोकिला शब्द करतीथीं इसभांति गया जैसे नन्दनवनमें इन्द्र प्रवेशकरे। उस सुन्दरवनमें पुष्पोंसे सुगन्ध फैलरहीहै। राजा अपने सङ्गके अनुचरों को दूर त्यागकर आपअकेला कुञ्जोंमें बिचरने लगा। वहां शाल्मलीनामक एकवृक्षथा उसके नीचे राजाने शब्दसुना कि, अदृष्टसिद्ध जो विरक्त चित्त और नित्य पर्वतों में विचरने वाले हैं आत्मगीताका उच्चार करते हैं जिससे आत्म बोध प्राप्त होताहै। उस गीताको राजाने सुना कि, पाहला सिद्धबोला; यहद्रष्टा जो पुरुषहै और दृश्य जो

जगत्‌है उसद्रष्टा और दृश्यकेमिलापमें जो बुद्धिमें निश्चित आनन्द होताहै औरइष्टके संयोग और अनिष्टके वियोगका जो आनन्द चित्त में दृढ़होताहै वह आनन्द आत्मा तत्त्वसे उदयहोताहै। स्पन्दरूप जिस आत्मा आनन्दसे लवउठताहै उसकी हम उपासना करतेहैं। दूसरा सिद्ध बोला कि, द्रष्टा, दर्शन और दृश्यको वासना सहित त्याग करो। जो दर्शनसे प्रथम प्रकाशरूप है और जिसके प्रकाशते यह तीनों प्रकाशते हैं उस आत्माकी हम उपासना करते हैं। तीसरा सिद्धबोला जो निराभास, निर्मल और आभासरूप है; जिसमें मननके भाव का अभाव है; द्वितीय कल्पना का अभाव है और अद्वैतरूप है उसकी हम उपासना करते हैं। चौथा सिद्ध बोला कि, जो दोनोंके मध्यमें है और अस्तिनास्ति दोनोंके पक्षोंसे रहित प्रकाशरूपसत्ता है और सब सूर्य आदिकको भी प्रकाशता है उस आत्माकी हम उपासना करते हैं। पञ्चमासिद्ध बोला कि, जो ईश्वर सकार और हकार है अर्थात् सकार जिसके आदि में है और हकार जिसके अन्त में है सो अन्तसे रहित, आनन्द, अनन्त शिव परमात्मा सर्वजीवों के हृदयमें स्थित है और निरन्तर जो अहंरूप होकर उच्चारहोता है उस आत्माकी हम उपासना करते हैं। छठासिद्ध बोला कि, हृदय में स्थित जो ईश्वरहै उसको त्यागकर जो और देवके पाने की यत्नकरते हैं वे पुरुष हाथ में कौस्तुभमणिको त्यागकर और रत्नों की बांछा करते हैं। सातवां सिद्ध बोला कि, जो सब आशा त्यागता है उसको फल प्राप्त होताहै और आशारूपी विषकी वेल वह मूल संयुक्त नष्ट होजाती है अर्थात् जन्म मरण आदिक दुःख नष्ट होजातेहैं और फिर नहीं उपजते। जो पदार्थों को अत्यन्त विरसरूप जानता है और फिर उनमें आशा बांधताहै वह दुर्बुद्धि गर्दभ है—मनुष्य नहीं। जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठती है उनको विवेकसे नष्ट करो—जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतोंको नष्ट कियाथा। जब इसप्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब समभाव को प्राप्तहोगे और उससे मन उपशम आत्मपदको प्राप्तहोकर अक्षय अविनाशी पदपावेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धगीतावर्णनन्नामअष्टमस्सर्ग्गः ८ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! महीपति इसप्रकार सिद्धोंकी गीता सुनकर जैसे संग्राममें कायर विषादको प्राप्तहोताहै तैसेही विषादको प्राप्तहुआ और सेना संयुक्त अपने गृहमेंआया। नौकर और सबलोग किनारे खड़ेरहे और राजा उनको छोड़कर चौखंडेपर गया और झरोखे में संसारकी चञ्चलगतिको इधर उधर देखकर विलाप करनेलगा कि, बड़ा कष्टहै कि; मैंभी संसारमें लोगोंकी चञ्चल दशासे आस्थाबांध रहाहूं। ये तो सबजीव जड़रूपहैं, चैतन्य कोई नहीं; जैसे और जीव पाषाणरूप हैं तैसेही मैंभी इनमें पाषाण होरहाहूं। कालअन्तसे रहित अनन्तहै और उसके कुछ

अंशमें मेराजीनाहै—इसजीनेमें में आस्था कररहाहूं। मुझको धिक्कारहै कि, मैं अधम चेतनहूं। ये मेरेमंत्री और राज्य और जीना सब क्षणभंगुर हैं। ये जो सुखहैं वे दुःखरूपहैं; इनसे रहित मैं किसप्रकार स्थितहोऊं—जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं जीवन आदिअन्तमें तुच्छरूप हैं और मध्यमें पेलवरूप हैं उनमें मैंने क्या मिथ्या आस्थाबांधीहै—जैसे बालक चित्रके चन्द्रमाको देख चन्द्रमा मानकर आस्था बांधे। यहप्रपञ्च रचना इन्द्रजालकी बाजीवत्है; बड़ाकष्टहै इसमें मैंक्यों मोहितहुआ हूं? जोवस्तु उचित, रमणीय, उदार और अकृत्रिम हैं वह इससंसारमें रंचकभी नहीं; मेरी बुद्धि क्यों नष्टहुईहै। जो पदार्थ दूर हो और उसके पानेका मेरे मनमें यत्नहो तो वह निकटही है यह निर्णयकरो अथवा अर्थाकार जो संसारके पदार्थ हैं उनकी आस्था मैं त्यागताहूं। ये लोग सब आगमापायीहैं अर्थात् उदय होते और मिटजाते हैं और जलके तरङ्गोंके सदृश सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं। जितने सुख दृष्टि आते हैं वे दुःखसे मिश्रित हैं उनसे मैंने क्या आस्था बांधी है। सुख कदाचित् दिन, पक्ष, मास, वर्षादिकमें आते हैं और दुःख बारम्बार आते हैं; मैं किससुखसे जीनेकी आस्था बांधूं? जो बड़ेबड़े हुये हैं वे सबनष्ट होगये हैं और स्थिर कोई न रहेगा। मैं बारम्बार विचार कर देखताहूं इससे मैंने जाना है कि, इस जगत्में सत्यपदार्थ कोई नहीं—सब नाशरूप हैं। ऐसाकौन पदार्थ है कि, जिसमें आस्था बांधे? जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं सो कुछ दिन पीछे नीचे गिरपड़ेंगे। हे चित्त! बड़ाखेदहै तूने किस बड़ाई में आस्थाबांधी है। आयुर्बलसे बांधा हुआ मैं किस बिना कलङ्कित हुआहूं? ऊंचेपदमें स्थिति हो के भीमैं अधको गिराहूं। बड़ाकष्ट है कि, मैं आत्माहूं और नाशको प्राप्त होताहूं। किस कारण अकस्मात् मुझको मोह आया है और मेरी बुद्धिको इसने उपहत कियाहै—जैसे सूर्यके आगेमेघ आता है और सूर्यनहीं भासता तैसेही मुझे आत्मा नहीं भासता। भोगोंसे मेरा क्याहै और बांधवोंसे मेराक्याहै? इन में मैं क्यों मोहित हुआहूं? देह अभिमानसे जीव आपही बंधायमान होताहै। देहमें अहङ्कारही जरामरणादिक विकारोंका कारण होता है;इससे इनसे मेराक्या प्रयोजनहै। इन अर्थोंमें क्या बड़ाईहै और राज्यमें मैं क्यों धैर्यधरके बैठाहूं। ये सब पदार्थक्षोभके कारणहैं और ये ज्यों के त्यों रहते हैं। इनमें न मुझको ममता है न सङ्गहै—ये सर्व्व असत्यरूपहैं। संसारके सुख विषरूपहैं और इनमें आस्थाकरनी मिथ्याहै; जो बड़े२ ऐश्वर्यवान् और बड़े पराक्रमी गुणवान् हुये हैं वे सब परिवारसंयुक्त मरगये हैं तो वर्त्तमानमें क्याधैर्य करनाहै। कहां वहधन और राज और कहां उसब्रह्माका जगत्? कई पुरुषोंकी पंक्ति बीतगईहै हमको उनसे क्याविश्वासहै। देवताओंके नायक अनेक इन्द्रनष्टहोगये हैं—जैसे जलमें बुदबुदेउपजकर नष्टहोजाते हैं—तोमैं क्या इस संसारमें

आस्था बांधकर जीऊंगा। सन्तजन मुझको हँसेंगे; कईब्रह्मा होगये हैं, कई पर्वत हो गये हैं और कईधूलकी कणिकावत् राजाहोगये हैं ते मुझको इसजीनेमें क्याधैर्यहै? संसाररूपी रात्रिमें देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्ना है; उस भ्रमरूपमें जो मैंने आस्था बांधीहै इससे मुझकोधिक्कारहै। यह,वह औरमें इत्यादिकभ्रम आत्मामें मिथ्याकल्पना उठीहै और अज्ञानियोंकी नाईं मैं स्थितहुआहूं । अहङ्काररूपी पिशाचकरके क्षण क्षणमें आयुर्बल व्यतीतहोती है; देखतेहुये भी नहीं दीखती। कालकी सूक्ष्मगति है जो सबको चरणकेनीचे धरेहै; सदाशिव और विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है और वह सबको भोजन करजाताहै। इससे मुझको जीनेमें क्या आस्था बांधनी है ? जितने पदार्थहैं वे निरन्तर नाशहोते हैं; कोई दिनमें, कोई पक्षमें और कोई वर्षमें नाश होजाताहै। जो अविनाशी वस्तु है वह अबतकनहीं देखी वर्षोंव्यतीत होगये हैं जीवोंकी चित्तरूपी नदीमें भोगोंकी तृष्णारूपी तरङ्ग उछलतीहैं; शान्त कदाचित् नहींहोती – जैसे वायुसे नदीमें तरङ्ग उछलतेहैं और सोमतासे रहित होजाते हैं। जिनको चित्तमें भोगोंकी अभिलाषा है उनको अतुच्छपद दृष्टि नहीं आता और वे कष्टसे कष्टकोप्राप्तहोते हैं और उन्हें दुःखसे दुःखान्तर प्राप्तहोताहै। अबतक मैं विरक्त नहींहुआ इससे मुझको धिक्कारहै। जिसका अन्तःकरण नीचहै उसने जिस २ वस्तुमें कल्याणरूप जानके आस्था बांधी है वह २ नष्टहोती दीखती है। यह शरीर अस्थि-मांससे बनाहै और आदि अन्त संयुक्त इसका आकार है; मध्यमें कुछ रमणीय भासताहै परन्तु सब अपवित्र पदार्थों से रचा बिना स्वरूपहै; स्पर्श करनेके भी योग्य नहीं, उससे मुझको क्याप्रयोजनहै। जिस २ पदार्थसे लोग आस्था बांधते हैं उस२ में मैं दुःखही देखताहूं और ये जीव ऐसे जड़ मूढ़हैं कि, सदा इसमें लगे रहतेहैं कि,कल यह पदार्थ मुझको प्राप्तहोगा , अगलेदिन यह मिलेगा। दिन दिन पापकरते और खेदपातेहैं तौभी त्यागनहींकरते। बालक अग्निमें पूर्ण मूढ़तासे विचरतेहैं ; यौवनअवस्था कामादि विकारसे मिश्रितहै और शेष जो वृद्धावस्थाहै उसमें चित्तसे दुःखीहोताहै तो यह जड़ मूर्ख परमार्थ कार्य्यको किसकाल में साधेगा। ये सब जगत्के पदार्थ आगमापायी विरसहैं और विषमदशासे दूषितहैं अर्थात् एक भावमें नहीं रहते। सर्व्व जगत् असाररूपहै और सत्यबुद्धिसे रहित असत्यरूप है; सारपदार्थ इसमें कोईनहीं। जोराजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञकरतेहैं वेमहाकल्प के किसीअंशकालमें स्वर्गपाते हैं अधिकतो नहीं भोगते ? जो अश्वमेध यज्ञकरताहै वह इन्द्रहोताहै पर जो ब्रह्माका एकदिनहोताहै उसमें चतुर्दश इन्द्रराज्य भोगकर नष्ट होजातेहैं। जब सहस्र चौकड़ी युगोंकी व्यतीत होतीहैं तब ब्रह्माका एकदिन होताहै; ऐसे तीसदिनोंका एकमास और द्वादश मासका एकवर्ष होताहै। सौवर्ष ब्रह्माकीआ-

युर्बलहै उसआयुर्बलको भोगकर ब्रह्माजीभी अन्तर्द्धान होजातेहैं उसका नाममहाप्र-लयहै। उसमहाप्रलयकेअन्तमें इसनेस्वर्गभोगकिया तो असार सुखकीआस्था क्या योग्यहै? ऐसासुख स्वर्गमें कोईनहीं; न पृथ्वीमेंहै और न पातालमें है जो आपदा और दुःखसे मिश्रित न हो। सर्वलोक आपदा संयुक्त हैं और सब दुःखों का मूल चित्तहै जो शरीररूपी बांबीमें सर्पवत् रहताहै और आधि-व्याधि बड़े दुःखरूपी विष देता है। यह जब किसी प्रकार निवृत्त हो तब सुखीहो। इससे सब जीव नीचप्रकृति हो रहेहैं; कोई बिरलासाधुहै जिसके हृदयमें चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप-विषसंयुक्तनहीं होता। ये जगत्के पदार्थ सत्यताके मस्तकपर असत्यता हैं; जो रमणीय भासताहै उसके मस्तकपर अरमणीय स्थित हैं और जो सुखरूपहै उसके मस्तकपर दुःखस्थितहैं जिसका मैं आश्रयकरूं वह दुःखसे मिश्रितहै; दुःखतो दुःखसे मिश्रित क्याकहिये वहतो आपही दुःखहै और जो सुख सम्पदाहै सो आपदा दुःखसे मिश्रित है; फिर मैं किसका आश्रय करूं? ये जीव जन्मते और मरतेहैं; इनमें कोई बिरला दुःखसे रहित है। ये सुन्दर स्त्रियां जिनके नील कमलवत् नेत्र हैं और परम हास्य विलास आदिक भूषणोंसे संयुक्त हैं, इनको देखके मुझको हँसीआती है कि; ये तो अस्थि मांसकी पुतली हैं और क्षणमात्र इनकी स्थिति है। जिन पुरुषोंके निमेष खोलनेसे जगत् होताहै और उन्मेष मूंदनेसे जगत्का अभाव होजाताहै वे भी नष्टहुयेहैं तो हमारी क्या गिनती है? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं वे अस्थित रूप हैं उनपदार्थोंकी चिन्ता और क्या इच्छाकरनी है? नानाप्रकारकी सम्पदा प्राप्त होती हैं पर इन में जब कोई चित्तको आलगता है तब सब सम्पदा आपदारूप हो जाती हैं और जो बड़ी आपदा आ प्राप्तहोतीहै और चित्त में क्षोभनहीं होता शान्तरूपहै तब वेही आपदा सम्पदारूप हैं? इससे यही सिद्धहुआ कि;सब मनके फुरने मात्र है। क्षणभंगुररूप मनकी वृत्ति अकस्मात् जगत् में इनकी स्थितिभई है और अज्ञानसे अहं इसकी कल्पनाहै उसमेंत्याग और ग्रहणकीभावनामिथ्याहै।क्षीणरूप संसारमें सुख आदिअन्त संयुक्तहै। जो सुखजानकर जीवइसकीओर धावता है वह सुख फिर नष्ट होजाता है-जैसे पतङ्ग दीपकशिखाको सुखरूप जानकर उसकीओर धावताहै तो दग्धहोजाता है तैसेही संसारके सुख ग्रहणकरनेवाले तृष्णासे दग्धहुये हैं। जैसे नरकका अग्नि दग्धकरता है परवहभी श्रेष्ठ है परन्तु क्षणभंगुर जो संसार केसुखहैं वे महानीचहैं-नष्टहुयेभी दुःख देजातेहैं। और दुःखोंकीसीमाहैं परजो इस संसार समुद्रमें गिरते हैं वे सुखनहीं पाते। संसारमें दुःख स्वाभाविक हैं और दुःखसे मिश्रितहैं। मैंभीअज्ञानीकीनाईं काष्ठलोष्ठवत्स्थितहोरहाहूं औरबड़ाखेदहै। कि अज्ञानीवत् शमादिक सुखको त्यागकर के क्षणभंगुरसंसारके सुखके निमित्त यत्नकरताहूं।

जैसे वरफ से अग्नि नहीं उपजती तैसेही संसार से सुखनहीं उपजते; जितने जीव हैं वे जड़ धर्मात्मकहें। संसाररूपीएकवृक्षहै और सहस्रों अंकुर, शाखा,पत्र, फल, फूलों से पूर्ण हैं। उस संसाररूपी वृक्षकामूल मन है उसके सङ्कल्परूपी जलसे विस्तार को प्राप्तहुआहै और सङ्कल्पके उपशमहुये नष्टहोजाताहै। इससे जिसप्रकार यह नष्टहो वही उपाय में करूंगा। संसारमें भोगदेखनेमात्र सुन्दर भासतेहैं और भीतरसे दुःख-रूपहें। मन मर्कटवत् चञ्चलरूपहै, उसने यह रचना रची है। जबतक इसको वास्तव में नहीं जाना तबतक चञ्चलहै और जब विचारसे जानताहै तब पदार्थोंकी रमणीय-तासहित मनका अभाव होजाताहै; इससे मैं नाशरूप पदार्थोंमें नहीं रमता। संसार की वृत्ति अनेक फांसियों से मिश्रित है उसमें गिरके जीव फिर उछलतेहैं और शांत कदाचित् नहीं होते। ऐसी संसारकी वृत्तिको मैंने चिरकाल पर्य्यन्त भोगा है अब मैं भोगसे रहित होकर ब्रह्महीं होताहूं। इस संसार में बारम्बार जन्ममरण होताहै और शोकही प्राप्त होता है इससे अब संसारकी वृत्तिसे रहितहो शोक से रहित होताहूं। अबमें प्रबद्ध और हर्षवान् हुआहूं। मैंने अपने चोर आपही देखे हैं। जिसका नाम मन है इसीको मारूंगा। इसमनने मुझको चिर पर्य्यन्त मारा है। इतने कालपर्य्यन्त मेरा मनरूपी मोती अवेध रहाथा अब मैंने इसको वेधाहै अर्थात् आत्मविचार से रहितथा सो अब उसको आत्मविचार में लगाया है; और अब यह आत्मज्ञान के योग्य है। मनरूपी एक बरफका कण जड़ताको प्राप्तहुआ था अब विवेकरूपी सूर्य्य से गलगया है और अब मैं अक्षय शांतिको प्राप्तहुआहूं। अनेक प्रकारके वचनोंसे साधुरूप जो सिद्धथे उन्होंने मुझको जगाया है और अब मैं आत्मपद को प्राप्त हुआहूं। परमानन्दसे अब मैं आत्मरूपी चिन्तामणिको पाकर एकान्त सुखी होकर स्थित होऊंगा। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मलहोता है तैसे होऊंगा। मनरूपी शत्रुने मुझको भ्रमदिखायाथा वह अब विवेकसे नाश किया है और उपशमको प्राप्त हुआहूं। हे विवेक! तुझको नमस्कारहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकविचारोनामनवमस्सर्गः ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब राजा चिन्तन करताथा तब एकदा-सीने राजाके निकट आकर कहा; हे देव! अब उठिये और दिनका उचित विचार अर्थात् स्नानादिककीजिये। स्नानशालामें पुष्प, केसर और गङ्गाजलआदिके कल-शे लेकर स्त्रियां खड़ी हैं और कमल पुष्प उनमें पड़े हैं जिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नानका समयहै। हे देव! पूजनके निमित्त सबसामग्री आईहै और रत्न और औषध ले आये हैं। हाथोंमें ब्राह्मण स्नानकरके और पवित्रे डालकर अघम-र्षण जाप कररहे हैं और आपके आगमन की राह देखते हैं। हाथोंमें चमर लेकर

सुन्दरकान्ता तुम्हारे सेवनके निमित्त खड़ी हैं और भोजनशाला में भोजन सिद्धहो-रहा है; इससे शीघ्र उठिये और जो कार्य है वह कीजिये; जैसाकाल होता है उसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं इसका त्याग नहीं करते । इससे कालव्यतीत न कीजिये। हे रामजी! जब इसप्रकार दासीने कहा तब राजाने विचारा कि, संसारकी जो विचित्र स्थिति है वह कितेक मात्र है। राजसुखों से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुरहै; इस सम्पूर्णमिथ्या आडम्बरको त्यागके मैं एकान्त जा बैठताहूं–जैसे समुद्र तरङ्गोंसे रहित शान्तरूपहोताहै तैसेही शान्तरूप होऊंगा। यह जो नानाप्र-कारके राजभोग और क्रियाकर्म हैं उनसे अब मैं तृप्तहुआ हूं और सबकर्मोंको त्याग कर केवल सुखमें स्थित होऊंगा। मेराचित्त जिन भोगोंसे चञ्चलथा वे भोगतो भ्रम-रूपहैं इनसे शांति नहीं होती और तृष्णावढ़ती जातीहै। जैसे जलपर सेवाल वढ़-तीजातीहै और जलको ढांप लेती है तैसेही तृष्णा ढांपलेती है। अब मैं इसकोत्याग करता हूं। हे चित्त! तू जिस जिस दशामें गिरा है और जो जो भोगभोगे हैं वे सब मिथ्या हैं; तृप्ति तो किसीसे न हुई ? इससे भ्रमरूप भोगोंको जब मैं त्यागूंगा तब परम सुखी होऊंगा। वहुतउचित अनुचित भोग वारम्वार भोगेहैं परन्तु तृप्ति कभी न हुई; इससे, हेचित्त! इनको त्यागकरके परमपदके आश्रय होजा। जैसे वालकएक को त्यागकर दूसरेको अङ्गीकार करताहै तैसेही यत्न विना तूभीकर । जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागेगा और परमपदका आश्रयकरेगा तब आनन्दी तृप्तिको प्राप्तहोगा और उसकोपाकर फिर संसारी न होगा। हेरामजी! इसप्रकार चिन्तन करके जनक तूष्णीं होरहा और मनकी चपलता त्यागकरके सोमाकारसे स्थितहुआ जैसे–मूर्त्ति लिखीहोती है तैसेहीहोगया और प्रतिहारीभी भयभीतहोकर फिर कुछ न कहसकी। इसकेअनन्तर मनकीसमताकेनिमित्त फिर राजानेचिन्तनकिया कि,मुझकोग्रहणऔर त्यागकरने योग्य कुछनहीं है; किसको मैं साधूं और किस वस्तु में मैं धैर्यधारूं; सब पदार्थ नाशरूपहैं मुझको करनेसे क्या प्रयोजनहै और न करनेसे क्याहानिहै। जोकुछ कर्त्तव्यहै वह शरीरकरताहै निर्मल अचलरूप चेतनन करताहै,न भोगताहै। इससे मुझको कुछ कर्त्तव्यनहीं। जो त्यागकरूंगा तो शरीर करने से रहितहोगा और जो करूंगा तोभी शरीर करेगा,मुझको क्या प्रयोजन है? इससे करने और न करने में मुझकोलाभ हानि कुछनहीं जोकुछ प्राप्तहुआहै उसमें विचरताहूं अप्राप्तकी मैं वांछा नहीं करता और प्राप्त मैं त्यागनहीं करता अपने स्वरूपमें स्थितहोकर स्वस्थहोऊंगा और जोकुछ प्राप्तकर्म है वही करताहूं, न कुछ मुझको करनेमेंअर्थहै और न करनेमें दोष है जो क्रियाहो सोहोकरो अथवा न करो और युक्तहो अथवा अयुक्तहो मुझको ग्रहणत्याग करनेयोग्य कुछनहीं। इससे जोकुछ प्राप्तकरने योग्य कर्म हैं वहीकरूंगा

कर्मका करना शरीर प्रकृतिसे होताहै; आत्माको तो कुछ कर्त्तव्य नहीं,इससे मैं इनमें निःसङ्ग होरहूंगा । जो निस्पन्द चेष्टाहो तो क्या सिद्धहुआ और क्याकिया । जोमन कामनासे रहित स्थित विगत ज्वर हुआ अर्थात् हृदयमें रागद्वेष मलीनता न उपजी तो देहसे कर्महो तौभीइष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें तुलनारहेगी और जो देहसे मिलकर मनकर्म करताहै तब कर्त्ताभोक्ताहै और इष्ट—अनिष्टकी प्राप्तिमें राग द्वेषवान् होताहै । जबमनका मनन उपशम होताहै तब कर्त्तव्यमेंभी अकर्त्तव्यहै । जैसा निश्चय हृदय में दृढ़होता है वही रूप पुरुषका होताहै;जिसके हृदयमें अहंकृत नहीं है और बाहर कर्म चेष्टाकरताहै तौभी उसने कुछनहीं किया और जिसके हृदयमें अहंकृत अभिमान है वह बाहरसे अकर्त्ता भासता है तौभी अनेक कर्मकरता है । इससे जैसा निश्चय हृदयमें दृढ़होताहै तैसाही फल होताहै । जो बाहर कर्त्ता है परन्तु हृदयमें कर्तव्यका अभिमान नहीं रखता न तो वह धैर्य्यवान् पुरुष अनामय पदको प्राप्तहोताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकनिश्चयवर्णनन्नामदशमस्सर्गः १० ॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! इसप्रकार विचारके राजा यथा प्राप्त क्रियाके करनेको उठ खड़ा हुआ और जो इष्ट अनिष्टकी वासनाथी वह चित्तसे त्यागदी । जैसे सुषुप्तिरूप पुरुषहोता है तैसेही वह जाग्रत्में होरहा । निदान दिनको यथाशास्त्र क्रिया करे और रात्रिको लीलाकरके ध्यानमें स्थितहो । मनको समरसकर जब रात्रिक्षीण हुई तब इसप्रकार चित्तको बोधकिया कि,हे चञ्चलरूप चित्त ! परमानन्द स्वरूप जो आत्मा है वह क्या तुझको सुखदायक नहीं भासता जो इस मिथ्या संसार सुखकी इच्छाकरता है । जब तेरी इच्छा शांत होजावेगी तब तू सारसुख आत्मपदको प्राप्त होगा । ज्यों ज्यों तू सङ्कल्प लीलासे उठताहै त्यों त्यों संसारजाल विस्तार होताजाता है । इसदुःखरूप संसारसे तुझको क्या प्रयोजन है ? हे मूर्खचित्त ! ज्यों ज्यों सङ्कल्प इच्छाकरता है त्यों त्यों संसारका दुःखबढ़ता जाता है । जैसे जल सींचने से वृक्षकी शाखाबढ़तीहै तैसेही संसार सुखसे अधिक दुःखप्राप्त होताहै । ऐसे दुःखरूप भोगों की इच्छा क्यों करताहै? यहसंसार चित्तजालसे उपजाहै; जब तू इसका त्यागकरेगा तब दुःख मिटजावेगा । फुरनेकानामदुःखहै इसकेमिटेसे दुःखभी कोई न रहेगा । यह महाचञ्चल संसार देखनेमें सुन्दरहै वास्तवमें कुछ नहीं । जो तुझको इससे कुछसार प्राप्तहो तो इसका आश्रयकर पर यह तो क्षणभंगुरहै और दुःखकी खानिहै; इसकी आस्थात्याग, आत्मतत्त्वका आश्रयकर और शुद्ध निर्मल होकर जगत्में विचर, तब तुझको दुःख स्पर्श न करेगा । जगत् स्थितहो अथवा शान्तहो इसके उदय अस्त की वासनासे इसकेगुण अवगुणमें आसक्तमतहो । जो अविद्यमान असत्यरूपहो उसकी आस्था क्याकरनी ? यह असत्यरूपहै और तू सत्यरूपहै; असत्य और सत्य

सम्बन्धककैसे हो ? मृतक और जीतेका कभी सम्बन्ध हुआ है ? जो तूकहे कि, चेतनतत्त्व दृश्यरूप है तो दोनों सत्यस्वरूपहैं और विस्तृतरूप आत्माही हुआ तो हर्ष विषाद किसका करताहै ? इससे तू मूढ़मतहो; समुद्रकी नाईं अक्षोभरूप अपने आपमें स्थित हो और संसार की भावना त्यागकरके मान मोह मलको त्यागकर। इसकी इच्छाही दुःखका कारणहै; इसको त्याग करके आत्मतत्त्वमें स्थितहो तब परिपूर्ण पदको प्राप्त होगा। इसलिये बलकरके और इसका आश्रय करके चञ्चलता को त्याग॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तानुशासनन्नामएकादशस्सर्गः ११॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार विचारकरके राजाने सब काम किये और आनन्दवृत्तिमें उसका प्रबोधवान् मनमोहको न प्राप्त हुआ। वह इष्टमें हर्षवान् न हो और अनिष्टमें द्वेषवान् न हो केवल सम और स्वच्छअपने स्वरूप में स्थित हुआ और जगत्‌में विचरने लगा; न कुछत्यागकरे, न कुछग्रहणकरे और न कुछ अङ्गीकार करे, केवल वीतशोक होकर सन्तापसे रहित वर्त्तमानमें कार्य्यकरे और उसके हृदयमें कोई कल्पना स्पर्श न करे—जैसे आकाश को धूलकी मलीनता स्पर्श नहीं करती। मलीनतासे रहित अपने स्वरूपके अनुसंधान और सम्यक् ज्ञानके अनन्त प्रकाश में उसका मन निश्चलताको प्राप्त हुआ; मनकी जो संकल्प वृत्तिथी वह नष्टहोगई और महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयमें प्रकाशित हुआ। जैसे आकाशमें सूर्य प्रकाशताहै तैसेही अनन्त आत्मा प्रकट हुआ और सम्पूर्ण पदार्थ उसमें प्रतिबिम्बित देखे। जैसे शुद्ध मणिमें प्रतिबिम्ब भासता है तैसेही उसने सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में आत्म भूतदेखे; इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयोंकी प्रीतिमें हर्ष खेद मिट गया और सर्वदा समानहो प्रकृत व्यवहार करके जीवन्मुक्त हो विचरने लगा। हे रामजी! जनकको ज्ञानकी दृढ़ता हुई उससे लोकों के परावरको जानकर उसने विदेह नगर का राज्य किया और जीवोंकी पालनामें हर्ष विषाद को न प्राप्त हुआ। वह संतापसे रहितहो कोई अर्थ उदय हो अथवा अस्त होजा परन्तु हर्ष शोक कदाचित् न करे और कार्य कर्त्ता दृष्टि आवे परन्तु हृदय से कुछ न करे। हे रामजी! तैसेही तुमभी कार्य सब करो परन्तु निरन्तर आत्मस्वरूप में स्थितरहो। तुम जीवन्मुक्त वपुहो राजा जनक की सब पदार्थ भावना अस्त होगई थी, उसकी सुषुप्तिवत् वृत्तिहुईथी, भविष्यत्‌की इच्छानहीं करताथा और व्यतीतकी चिंतना करताथा जो वर्त्तमान कार्य्य प्राप्तहो उसको यथाशास्त्र करे और अपने विचार के वशसे उसने पाने योग्य पदपाया और इच्छा कुछ न की। हे रामजी! जीव आत्मपद को तभीतक नहीं प्राप्त होता जबतक हृदयमें अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं

उपजा; जब अपने आपसे अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागे तब सब दुःख मिटजावे और परमसंपदाको प्राप्त हो। ऐसापद शास्त्र अर्थ और पुण्यक्रियासे नहीं प्राप्त होता जैसा अपने हृदयमें विचारकियेसे होता है। वह पद निर्मल और स्वच्छ है और हृदयकी तपनको निवृत्त करता है । बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशसे हृदय का अज्ञान नष्ट होजाताहै; और किसी उपायसे नहीं नष्ट होता। जो बड़ा आपदारूप दुःख तरनेको कठिनहै वह अपनी बुद्धिसे तरना सुगम होताहै–जैसे जहाजसे समुद्र को लंघजाता है। जो बुद्धिसे रहित मूर्ख है उसको थोड़ी आपदाभी बड़ा दुःखदेती है–जैसे थोड़ापवनभी तृणको बहुत भ्रमाताहै। जो बुद्धिमान्है उसको बड़ी आपदा भी दुःख नहीं देती–जैसे बड़ा वायुभी पर्वतको चला नहीं सक्ता। इसीकारण प्रथम चाहिये कि, संतों का संग और सत्शास्त्रोंका विचारकरे और बुद्धिबढ़ावे। जब बुद्धि सत्यमार्गकी ओर बढ़ेगी तब परमबोध प्राप्त होगा–जैसे जलके सींचने और रखने से फूल फल प्राप्त होताहै तैसेही जब बुद्धि सत्यमार्गकी ओर धाती है तब परमानन्द प्राप्त होताहै। जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा पूर्णमासीसे बहुत प्रकाशता है; जितने जीव संसारके निमित्त यत्नकरते हैं वही यत्न सत्यमार्गकी ओर करें तो दुःखसे मुक्त हों और परम संपदाके भंडारकोपावें। संसाररूपी वृक्षका बीज बुद्धिकी मूढ़ताहै ; इस से मूढ़तासे रहित होना बड़ालाभहै । स्वर्गपातालका राजआदिक जो कुछ पदार्थ प्राप्त होते हैं सो अपने बोधरूपी भंडारसे मिलते हैं। संसाररूपी समुद्रके तरने को अपनी बुद्धिरूपी जहाजहै और तप तीर्थ आदिक शुभआचार से जहाज चलता है। बोधरूपी पुष्पलता के बढ़ाने को दैवी संपदा जलहै उसके बढ़ने से सुन्दर फल प्राप्त होताहै। जो बोधसे रहित बल ऐश्वर्यसे बड़ाभी है उसको तुच्छ में अज्ञान नाशकर डालता है–जैसे बलसे रहित सिंहको गीदड़ हरिणभी जीतलेते हैं। इससे जो कुछ प्राप्त होता दृष्टि आता है वह अपने प्रयत्नसे होताहै । अपनी बोधरूपी चिन्तामणि हृदय में स्थितहै उससे विवेक रूपी फल मिलता है–जैसे कल्पलतासे जो मांगिये वह पाते हैं तैसेही सर्ब्बफल बोधसे पाते हैं। जैसे जाननेवाला केवट समुद्रसे पारकरताहै अजान नहीं उतारसक्ता तैसेही सम्यक् बोध संसार समुद्रसे पारकरताहै और असम्यक् बोध जड़ता में डालताहै । जो अल्पभी बुद्धि सत्यमार्ग की ओर होतीहै तो बड़े सङ्कट दूर करतीहै–जैसे छोटी बेड़ीभी नदीसे उतार देतीहै। हे रामजी ! जो पुरुष बोधवान्है उसको संसार के दुःख नहीं बेध सक्ते–जैसे लोह आदिक का कवच पहिनेहो तो उसको बाण बेध नहीं सक्ते। बुद्धि से मनुष्य सर्बोत्तम पदको प्राप्तहोताहै, जिस पदके पानेसे हर्ष, बिषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती। अहंकाररूपी मेघ जब आत्मारूपी सूर्य्यके आगे आताहै तो माया मलीनता से

आत्मरूपी सूर्य्य नहीं भासता। बोधरूपी वायु से जब यह दूरहो तब आत्मारूपी सूर्य्य ज्यों का त्यों भासताहै—जैसे किसान प्रथम हल आदिकसे पृथ्वीको शुद्धकरता, फिर बीज बोता है और जब जल सींचता है और नाश करनेवाले पदार्थोंसे रक्षा करताहै तब फल पाताहै; तैसेही जब आर्य्यवादिगुणों से बुद्धि निर्म्मलहोती है तब शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है और अभ्यास वैराग करके करता है उससे परमपदकी प्राप्तिहोती है वह अतुलपद है, उसके समान और कोई नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्राज्ञमाहिमावर्णनंनामद्वादशस्सर्गः १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जनककी नाईं अपने आप से आपको विचार करो और पीछे जो विदित वेद पुरुषोंने कियाहै उसीप्रकार तुमभी निर्वान होजाओ। जो बुद्धिमान् पुरुषहैं और जिनका यह अन्तकाजन्महै वे राजस—सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं। जबतक अपने आपसे आत्मदेव प्रसन्न न हो तबतक इन्द्रीरूपी शत्रुओं के जीतनेका यत्नकरो और जब आत्मदेव जो सर्ववत् परमात्मा ईश्वरोंकाभी ईश्वर है प्रसन्न होगा तो आपही स्वयंप्रकाश देखेगा और सर्वदोष दृष्टि क्षीण होजायगी। मोहरूपी बीजको जो मुट्ठी भरभर बोताथा और नानाप्रकारकी आपदारूपी वर्षा से महामोहकी वेलि जो होती दृष्टि आतीथी वह सब नष्ट हो जाती है। जब परमात्माका साक्षात्कार होता है तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती। हे रामजी! तुम सदा बोधसे आत्मपदमें स्थितहो, जनकवत् कार्योंका आरम्भ करो और ब्रह्म लक्षवान् होकर जगत् में विचरो तब तुमको खेद कुछ न होगा। जब नित्य आत्म विचार होता है तब परम देव आपही प्रसन्न होताहै और उसके साक्षात्कार हुये से तुम चञ्चलरूपी संसारीजनोंको देखकर जनककी नाईं हँसोगे। हे रामजी! संसारके भयसे जो जीव भयभीत हुये हैं उनको अपनी रक्षा करने को अपनाही पुरुष प्रयत्न है और दैव अथवा कर्म वा धन, बांधवों से रक्षा नहीं होती। जो पुरुष दैवको निश्चयकरकेरहे हैं पर शास्त्रविरुद्ध कर्म करते हैं और सङ्कल्प विकल्प में तत्पर होते हैं वे मध्यबुद्धि हैं उनके मार्गकी ओर तुम न जाना; उनकी बुद्धि नाशकरती है, तुम परम विवेकका आश्रयकरो और अपने आपको आपसे देखो। वैराग्यवान् शुद्धबुद्धिसे संसार समुद्रको तरजाताहै। यह मैंने तुमसे जनकका वृत्तान्तकहाहै—जैसे आकाशसे फल गिरपड़े तैसेही उसको सिद्धोंके विचार में ज्ञानकी प्राप्तिहुई। यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मञ्जरीहै। जैसे अपने विचार से राजाजनकको आत्मबोध हुआ तैसेही तुमकोभी प्राप्तहोगा। जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखकर प्रसन्नहोताहै तैसेही इसविचारसे तुम्हारा हृदय प्रफुल्लितहो आवेगा और मनका मननभाव जैसे बरफका कणका सूर्यसे तप्तहो गलजाताहै शान्त होजा-

वेगा । जब अहंत्वं आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यसे क्षीण होजावेगी तब परमात्मा का प्रकाश साक्षात्होगा; भेद कल्पना नष्ट होजावेगी और अनन्त ब्रह्माण्डमें जो व्यापक आत्मतत्त्वहै वह प्रकाशित होगा । जैसे अपने विचारसे जनकने अहंकार बासनाका त्यागकिया है तैसेही तुमभी विचारकरके अहंकार बासनाका त्यागकरो। अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होगा और चित्ताकाश निर्मल होगा तब आत्मा-रूपी सूर्य्य प्रकाशित होगा। जबतक अहंकाररूपी मेघआवरणहै तबतक आत्म-रूपी सूर्य्य नहीं भासता । विचाररूपी वायुसे जब अहंकाररूपी मेघनाशहो तब आत्मरूपी सूर्य्य प्रकट भासेगा। हे रामजी ! ऐसेसमझो कि, न मैं हूं, न कोई । और है; न नास्ति है; न अस्तिहै; जब ऐसी भावना दृढ़होगी तब मन शांत होजा-वेगा और हेयोपादेय बुद्धि जो इष्ट पदार्थोंमें होती है उसमें न डूबोगे। इष्ट अनिष्ट के ग्रहण त्यागमें जो भावना होती है यही मनकारूप है और यही बंधनका कारण है-इससे भिन्न बन्धन कोई नहीं। इससे तुम इन्द्रियोंके इष्ट-अनिष्ट में हेयोपादेय बुद्धिमतकरो और दोनोंके त्यागेसे जो शेषरहे उसमें स्थितहो। इष्ट अनिष्टकी भावना उसकी कीजाती है जिसको हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती और जबतक हेयोपादेय बुद्धि क्षीण नहीं होती तबतक समताभाव नहीं उपजता। जैसे मेघके नष्टहुये विना चन्द्रमाकी चांदनी नहीं भासती तैसेही जबतक पदार्थोंमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि है और मन लोलुप होता है तबतक समता उदय नहीं होती । जबतक युक्तअयुक्त लाभ अलाभ इच्छानहीं मिटती तबतक शुद्ध समता और निरसता नहीं उपजती। एक ब्रह्मतत्त्व जो निरामयरूप और नानात्व से रहित है उसमें युक्त क्या और अयुक्त क्या ? जबतक इच्छा-अनिच्छा और वांछित-अवांछित यह दोनों बातें स्थित हैं अर्थात् फुरते और क्षोभ करते हैं तबतक सौम्यताभाव नहीं होता। जो हेयोपादेय बुद्धिमें रहित ज्ञानवान् है उस पुरुषको यह शक्ति आप्राप्त होती है-जैसे राजाके अन्तःपुरमें पटरानी स्थित होती हैं। वह शक्ति यह है; भोगोंमें निरसता; देहाभि-मानसे रहित निर्भयता, नित्यता, समता, पूर्णआत्मा दृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, निरिच्छिता, निरहंकारता, आपको सदा अकर्त्ता जानना, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनन्दस्वरूप रहना, धैर्यसे सदा एकरस रहना, स्वरूपमें भिन्नवृत्ति न फुरना, सब जीवोंसे मैत्रीभाव; सत्यबुद्धि, निश्चयात्मक रूपसे तुष्टता, मुदिता, और मृदुभाषणा; इतनीशक्ति हेयोपादेयसे रहित पुरुषको आप्राप्तहोतीहैं। हे रामजी ! संसारके पदार्थोंकीओर जो चित्त धावता है उसको वैराग्यसे उलटाके खेंचना-जैसे पुलसे जलकेवेगका निवारण होताहै तैसेही जगत्से निवारकर मन को आत्मपदमें लगानेसे आत्मभाव प्रकाशता है। इससे हृदयसे सबबासनाका त्याग

करो और बाहरसे सबक्रियामेंरहो । वेगचलो, श्वासलो, और सर्वदा, सर्वप्रकारचेष्टा करो, पर सर्वदा सर्वप्रकारकी वासना त्यागकरो । संसाररूपी समुद्रमें वासनारूपी जल है और चिन्तारूपी सिवार है; उसजलमें तृष्णावान् रूपी मच्छ फँसे हैं । यह विचारजो तुमसे कहाहै उस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्णकरो और इसजाल को छेदो तब संसारसे मुक्तहोगे । संसाररूपी वृक्षका मूल बीज मनहै । ये वचन जो कहे हैं—उनको हृदयमें धरकर धैर्यवान्हो तब आधि व्याधि दुःखोंसे मुक्तहोगे । मन से मनकोछेदो;जो बीतीहै उसको स्मरणकरो और भविष्यत्की चिन्ता न करो क्यों- कि; वह असत्यरूपहै और वर्त्तमानकोभी असत्य जानके उसमें विचरो । जब मनसे संसारका विस्मरणहोताहै तब मनमें फिर न फुरेगा । मनमें असत्यभाव जानकेचलो बैठो,श्वासलो,निश्वासकरो,उछलो,सोवो, सब चेष्टाकरो परन्तु भीतर सबअसत्यरूप, जानो तब खेद न होगा । अहंममरूपी जो मलको त्याग करो प्राप्तिमें विचरो अथवा राज आ प्राप्तहो उसमें विचरो परन्तु भीतरसे इसमें आस्था न हो। जैसे आकाशका सब पदार्थोंमें अन्वयहै परन्तु किसीसे स्पर्श नहीं करता तैसेही बाहर कार्य्य करो परन्तु मन से किसीमें बन्धायमान न हो तुम चैतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुषहो; तुमसे भिन्न कुछ नहीं और सबमें व्यापरहेहो । जिसपुरुषको सदा यही निश्चय रहता है उसको संसारके पदार्थ चलायमान नहीं करसक्ते और जिनको संसारमें आसक्त भावनाहै और स्वरूप भूलेहैं उनको संसारके पदार्थोंसे विकार उपजताहै और हर्ष, शोक और भय खींचतेहैं; उससे वे बांधेहुयेहैं । जो ज्ञानवान् पुरुष राग द्वेषसे रहित हैं उनको लोहा,वट्टा, पाषाण और सुवर्ण सब एक समानहै । संसार वासनाके त्याग- नेकाही नाम मुक्तिहै । हे रामजी ! जिस पुरुषको स्वरूप में स्थिति हुई है और सुख दुःखमें समताहै वह जो कुछ करता, भोगता, देता, लेता इत्यादिक क्रिया करताहै सो करताहुआ भी कुछ नहीं करता । वह यथा प्राप्तकार्य्यमें वर्त्तताहै । और उसे अन्तः- करण में इष्ट अनिष्टकी भावना नहीं फुरती और कार्य्य में राग द्वेषवान् होकर नहीं डूबता । जिसको सदा यह निश्चय रहता है कि, सर्व्व चिदाकाशरूप है और जो भोगोंके मननसे रहितहै वह समताभाव को प्राप्त होताहै । हे रामजी! मन जड़रूपहै और आत्मा चैतनरूपहै; उसी चैतनकीसत्तासे जीव पदार्थोंको ग्रहणकरताहै इसमें अपनी सत्यता कुछ नहीं । जैसे सिंहकेमारेहुये पशुको बिल्लीभी खानेजाती है, उसको अपनाबल कुछनहीं; तैसेही चैतनकेबलसे मन द्रव्यका आश्रयकरताहै, आपअसत्य रूपहै चैतनकी सत्तापाकर जीताहै; संसारके चिन्तवनको समर्थ होताहै और प्रमाद से चिन्तासे तपायमान होताहै । यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि; मनजड़है और चैतन रूपी दीपकसे प्रकाशितहै । चैतनसत्तासेरहित सबसमानहै और आत्मसत्तासेरहित उठभी

नहीं सक्ता। आत्मसत्ताको भुलाकर जो कुछकरता है उसफुरने को बुद्धिमान् कलना कहते हैं। जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है तब आत्मभाव को प्राप्तहोता है और प्रमाद से रहित आत्मरूप होता है। चित्तकला जब चैत्यदृश्यसे स्फुर होती है उसका नाम सनातन ब्रह्म होता है और जब चैत्य के साथ मिलती है तब उसकानाम कलना होता है; स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है और उसमें भ्रांतिसे मनआदि भासते हैं। जब चेतन सत्ता दृश्यके सन्मुख होती है तब वही कलनारूप होती है और अपने स्वरूपके विस्मरण कियेसे और संकल्पकी ओर धावनेसे कलना कहातीहै। वह आपको परिच्छिन्न जानतीहै उससे परिच्छिन्न हो-जातीहै और हेयोपादेय धर्मिणी होतीहै। हे रामजी! चित्तसत्ता अपनेही फुरनेसेजड़ता को प्राप्तहुई है और जबतक विचारकरके न जगावे तबतक स्वरूप में नहीं जागती इसी कारण सत्यत्व शास्त्रों के विचार और वैरागसे इन्द्रियोंका निग्रहकरके अपनी कलनाको आपजगाओ। सब जीवोंकी कलना विज्ञान और समकरके जगाने से ब्रह्मतत्त्व को प्राप्तहोती है और इससे भिन्न मार्ग्ग से भ्रमता रहता है। मोहरूपी मदिरा से जो पुरुष उन्मत्त होता है वह विषयरूपी गढ़ेमें गिरता है। सोईहुई कलना आत्मबोधसे नहीं जगाते अप्रबोधही रहते हैं सो चित्तकलना जड़रहती है;जो भास-ती है तौभी असत्यरूप है। ऐसापदार्थ जगत्में कोईनहीं जो सङ्कल्पसे कल्पितनहो; इसमे तुम अजड़धर्मा होजाओ। कलनाजड़ उपलब्ध रूपिणी है और परमार्थ सत्तासे विकाशमान होती है—जैसे सूर्य्यसे कमल विकाशमान होता है। जैसे पाषाण की मूर्त्तिसे कहिये कि, तू नृत्यकर तो वहनहीं करती क्योंकि, जड़रूपहै; तैसेहीदेहमें जो कलना है वह चेतन कार्य्य नहीं करसक्ती। जैसे मूर्त्तिका लिखाहुआ राजा गुर गुर शब्द करके युद्धनहीं करसक्ता और मूर्त्तिका चन्द्रमा औषध पुष्ट नहीं करसक्ता तैसेही कलना जड़रूप कार्य नहीं करसक्ती। जैसे निरवयव अंगनासे आलिङ्गन नहीं होता; संकल्पके रचे आकाशके बनकी छायाके नीचे कोई नहीं बैठता और मृगतृष्णा के जलसे कोई तृप्त नहीं होता तैसेही जड़रूप मन क्रिया नहीं करसक्ता। जैसे सूर्य की धूपसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसेही चित्तकलनाके फुरनेसे जगत् भासता है। शरीर में जो स्पन्दशक्ति भासती है वही प्राण शक्ति है और प्राणोंसेही बोलता, चलता, बैठताहै। ज्ञानरूपसंवित् जो आत्मतत्त्व है उससे कुछ भिन्ननहीं; जब संकल्प कलाफुरतीहै तब अहं त्वं इत्यादिक कलनासे वहीरूपहो जाताहै और जबआत्मा और प्राणकाफुरना इकट्ठा होताहै अर्थात् प्राणोंसे चेतन संवित्मिलता है तबउसका नाम जीव होताहै। और बुद्धि, चित्त, मन, सब उसीके नामहैं। सबसंज्ञा अज्ञानसे कल्पित होती हैं। अज्ञानीको जैसेभासितहै, तैसेही उसकोहै; परमार्थसे कुछहुआनहीं; न मन

है, नबुद्धिहै, न शरीरहै केवल आत्मामात्र अपने आपमें स्थितहै—द्वैतनहीं। सबजगत् आत्मरूपहै और काल क्रियाभी सबआत्मरूपहै; आकाशसेभी निर्मल, अस्ति, नास्ति, सर्वबहीरूपहै और द्वितीय फुरनेसे रहितहै इसकारणहै औरनहीं ऐसास्थितहै और सर्वरूपसे सत्यहै। आत्मा सबपदोंसे रहित है इसकारण असत्यकीनाईं है और अनुभवरूपहै इससे सत्यहै और सर्वकलनासे रहित केवल अनुभवरूपहै। ऐसे अनुभवका जहां ज्ञानहोताहै वहां मन क्षीण होजाताहै—जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है वहां अन्धकार क्षीणहोजाताहै। जब आत्मसत्तामें संवित्करके इच्छा फुरतीहै तो वह सङ्कल्पके सन्मुख हुई थोड़ीभी बड़े विस्तारको पाती है;तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण होजाताहै; जन्मोंकी चेष्टासे जगत् स्मरण होआताहै और परमपुरुषको सङ्कल्पसे तन्मय होनेकरके चित्तनाम कहाताहै। जब चित्तकला सङ्कल्पसे रहित होती है तब मोक्षरूप होताहै। चित्तकला फुरनेका नाम चित्त और मन कहते हैं और दूसरी वस्तु कोईनहीं। एकतामात्रही चित्तकारूप है और सम्पूर्ण संसारका बीज मनहै। सङ्कल्पके सन्मुख होकरके चेतन संवित्का नाम मनहोता है और निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है वह जब सङ्कल्प करके मलीन होती है तब उसको कलना कहते हैं। वही मन जब घटादिक की नाईं परिच्छिन्न भेदको प्राप्तहोताहै तब क्रियाशक्ति से अर्थात् प्राण और ज्ञानशक्ति से मिलता है; उस संयोगका नाम सङ्कल्प विकल्पका कर्त्ता मनहोता है। वही जगत्का बीजहै और उसके लीन करने के दो उपाय हैं—एक तत्त्वज्ञान दूसरा प्राणों का रोकना। जब प्राण शक्तिका निरोध होताहै तब मनभी लीन होजाता है और जब सत्यशास्त्रोंके द्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होताहै तौभी लीन होजाताहै। प्राण किसका नामहै और मन किसको कहते हैं? हृदयकोशसे निकल कर जो बाहर जाता है और फिर बाहरसे भीतर आता है वह प्राण है, शरीर बैठाहै और वासनासे जो देश देशान्तर भ्रमता है उसका नाम मन होताहै; उसको वैराग और योगाभ्याससे वासनासे रहित करना और प्राण वायुको स्थित करना ये दोनों उपाय हैं। हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होता है तब मनस्थिर होजाता है क्योंकि, प्राण और चित्तकलाका आपसमें वियोग होताहै और जब प्राण स्थित होताहै तबभी मन स्थिर होजाता है क्योंकि; प्राणस्थितहुये चेतनकलासे नहीं मिलते तब मनभी स्थित होजाता है और नहीं रहता। मन चेतनकला और प्राण फुरने बिना नहीं रहता। मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कुछ नहीं, स्पन्दरूप जो शक्ति है वह प्राणोंकी है सो चलरूप जड़ात्मक है और आत्मसत्ता चेतनरूप है और वह अपने आपमें स्थित है। चेतन शक्ति और स्पन्दशक्तिके सम्बन्ध होने से मन उपजा है सो उस मनका उपजनाभी मिथ्या है। इसीका नाम मिथ्याज्ञान है। हे रामजी!

मैंने तुमसे अविद्या जो परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषके देनेवाली है कही है। चित्तशक्ति और स्पन्द शक्तिका सम्बन्ध सङ्कल्प से कल्पित है; जो तुम सङ्कल्प न उठावो। तो मनसंज्ञा क्षीण होजावेगी। इससे संसार भ्रमसे भयमान मतहो। जब स्पन्दरूप प्राण को चित्तसत्ता चेतती है तब चेतनेसे मन चित्तरूपको प्राप्त होता है और अपने फुरनेसे दुःख प्राप्त होता है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैतालकल्प कर भयमान होता है। अखण्डमण्डलाकार जो चेतनसत्ता सर्वगतहै उसका सम्बन्ध किसके साथहो और अखण्डशक्ति उन्निद्ररूप आत्माको कोई इकट्ठानहीं करसक्ता इसी कारण सम्बन्धका अभाव है। जो सम्बन्धही नहीं तो मिलना किससे हो और मिलाप न हुआ तो मनकी सिद्धता क्याकहिये? चित्त और स्पन्दकी एकता मन कहाती है, मन और कोई वस्तुनहीं। जैसे रथ, घोड़ा, हस्ति, प्यादा इनकेसिवा सेना कारूप और कुछनहीं, तैसेही चित्त स्पन्दके सिवा मनका रूप और कुछनहीं—इस कारण दुष्टरूप मनके समान तीनोंलोकोंमें कोईनहीं। जब सम्यक्ज्ञानहो तब मृतकरूप मन नष्टहोजाता है। मिथ्या अनर्थका कारण चित्त है इसको मतधरो अर्थात् सङ्कल्पका त्याग करो। हे रामजी! मनका उपजना मिथ्या है; परमार्थसे नहीं। सङ्कल्पका नाम मन है इसकारण कुछ है नहीं। जैसे मृगतृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है तैसेही मन मिथ्या है। हृदयरूपी मरुथल है, चेतनरूप सूर्य्य है और मनरूपी मृगतृष्णाका जल भासता है। जब सम्यक्ज्ञान होता है तब इसका अभाव होजाता है। मन जड़तासे निःस्वरूप है और सर्वदा मृतकरूप है, उसी मृतकने सब लोगों को मृतक किया है। यह बड़ाआश्चर्य्य है कि, अङ्गभी कुछनहीं, देह भी नहीं और न आधार है, न आधेय है पर जगत्को भक्षण करता है और बिना जालके लोगों को फँसाये है। सामग्री से बल, तेज, विभूति, हस्त पदाति रहित लोगोंको मारता है; मानों कमलके मारनेसे मस्तक फटजाता है। जो जड़मूक अधम हैं वे पुरुष ऐसे मानते हैं कि, हम बांधे हैं; मानों पूर्णमासीके चन्द्रमाकी किरणोंसे जलते हैं। जो शूरमा होते हैं वे उसको हनन करते हैं। जो अविद्यमान मनहै। उसी ने मिथ्याही जगत् को मारा है और मिथ्या सङ्कल्पसे उदय और स्थित हुआ है। ऐसा दुष्ट है जोकि किसी ने उसको देखानहीं। मैंने तुमसे उसकी शक्तिकही है सो तो बड़ाआश्चर्यरूप विस्तृतरूप है। चञ्चल अस्तरूप चित्तसे मैं विस्मित हुआहूं। जो मूर्ख है वह सर्व आपदाका पात्र है कि, मन है नहीं पर उससे वह इतना दुःख पाता है। बड़ाकष्टहै कि, सृष्टि मूर्खतासे चलीजातीहै और सब मनसे तपते हैं। यह मैं मानताहूं कि, सर्व जगत् मूढ़रूपहै और तृष्णारूपी शस्त्रसे कण कण होगया है; पेलवरूपहै जो कमलसे विदारण हुआहै, चन्द्रमाकी किरणों से दग्धहोगये हैं; दृष्टि

रूपी शस्त्रसे वेधे हैं और सङ्कल्परूपी मनसे मृतक होगये हैं। वास्तवमें कुछ नहीं मिथ्या कल्पनाने नीचकृपण करके लोगोंको हनन किया है; इससे वे मूर्ख हैं। मूर्ख हमारे उपदेश योग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासीहै। जिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं हुआ पर संसारसे उपरान्त हुआ है, मोक्षकी इच्छा रखता है और पदपदार्थ का ज्ञाता है वही उपदेश करने योग्य है। पूर्ण ज्ञानवानको उपदेश नहीं बनता और अज्ञानी मूर्खको भी नहीं बनता। मूर्ख बीणाकी धुनि सुनकर भयमान होता है और बान्धव निद्रामें सोयापड़ाहै; उनको मृतक जानके भयमान होताहै और स्वप्नमें हाथीको देखकर भयसे भागता है। इस मनने अज्ञानियोंको वश किया है और भोगों का लव जो तुच्छ सुख है उसके निमित्त जीव अनेक यत्नकरते हैं और दुःखपाते हैं। हृदयमें स्थित जो अपना स्वरूपहै उसको वे नहीं देखसक्ते और प्रमाद से अनेक कष्टपाते हैं। अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमननिर्वाण वर्णनंनामत्रयोदशस्सर्गः १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी समुद्रमें राग द्वेषरूपी बड़ेकल्लोल उठते हैं और उसमें वे पुरुष बहते हैं जो मनको मूढ़ जड़रूप नहीं जानते। उनको जो आत्म फलहै सो नहींप्राप्त होता। यह विचार और विवेककी बाणी मैंने तुमसे कही है सो तुम सारिखोंके योग्य है। जिन मूढ़ जड़ोंको मनके जीतनेकी सामर्थ्य नहीं है उनको यह नहीं शोभती और वे इन वचनोंको नहीं ग्रहण करसक्ते; उनको कहने से क्या प्रयोजन है? जैसे जन्मके अन्धेकोसुन्दर मंजरीका बन दिखाइये तो वह निष्फल होताहै क्योंकि, वह देख नहीं सक्ता तैसेही विवेक बाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होता है। जो मनको जीतनहीं सक्ते और इन्द्रियोंसे लोलुप हैं उनको आत्म बोध का उपदेश करना कुछ कार्यनहीं करता। जैसे कुष्ठसे जिसका शरीर गलगया है उसको नाना प्रकारकी सुगन्धका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसेही मूढ़कोआत्म उपदेशक बोध सुखदायक नहींहोता। जिसकी इन्द्रियां व्याकुल और बिपर्ययहैं और जो मदिरासे उन्मत्त है उसको धर्मके निर्णयमें साक्षी करना कोई प्रमाणनहीं करता। ऐसाकुबुद्धिकौनहै जोश्मशानमें शवकी मूर्त्तिपाकर उससे चर्चा विचार और प्रश्नोत्तर करे? अपने हृदयरूपी बांबीमें मूकजड़ सर्पवत् मनस्थितहै जो उसको निकालडाले वह पुरुषहै और जो उसको जीतनहीं सक्ता उस दुर्बुद्धि को उपदेश करना व्यर्थहै। हेरामजी! मन महातुच्छहै। जो वस्तु कुछनहीं उसके जीतने में कठिनतानहीं। जैसे स्वप्ननगर निकट होताहै और चिर पर्यंतभी स्थितहै पर जागकर देखिये तो कुछनहीं, तैसेही मनको जो विचारकर देखिये तो कुछनहीं जिस पुरुषने अपने मनकोनहीं जीता वह दुर्बुद्धिहै और अमृतको त्यागकर बिषपान करताहै और मरजाताहै। जो

ज्ञानीहै वह सदा आत्माही देखताहै । इन्द्रियां अपने अपने धर्ममें विचरती हैं प्राण की स्पन्द शक्तिहै और परमात्माकी ज्ञानशक्तिहै, इन्द्रियोंको अपनी शक्तिहै फिरजीव किससे बंधायमान् होताहै ? वास्तव में सर्वशक्ति सर्वात्मा है उससे कुछ भिन्ननहीं । यह मनक्या है ? जिसने सबजगत् नीचकिया है ? हे रामजी ! मूढ़ोंको देखकर मैं दयाकरता और तपताहूं कि ये क्यों खेद पाते हैं ? और वह दुःखदायक कौनहै जिससे वे तपतेहैं ? जैसे उग्र कंटकके वृक्षोंकी परम्परा को प्राप्तहोता है तैसेही मूढ़ प्रमाद से दुःखोंकी परम्परा पाताहै । और वह दुर्बुद्धि देहपाकर मरजाता है । जैसे समुद्रमें बुदबुदे उपजकर मिटजाते हैं तैसेही संसार समुद्र में उपजकर वह नष्ट होजाता है ; उसका शोक करना क्या है , वहतो तुच्छ और पशुसेभी नीचहै ? तुमदेखो कि,दशो दिशाओंमें पशु आदिक होते हैं और मरते हैं उनकाशोक कौनकरताहै? मच्छरादिक जीव नष्टहोजाते हैं औरजलचर जल में जीवोंको भक्षणकरतेहैं उनका विलाप कौन करताहै? आकाशमें पक्षीमृतकहोते हैं उनका कौन शोककरताहै? इसीप्रकार अनेक जीव नाशहोतेहैं उनकाविलाप कुछनहींहोता;तैसेही अब जो हैं उनका विलाप न करना क्योंकि, कोई स्थिर न रहेगा सब नाशरूप और तुच्छ हैं। सबका प्रतियोगी काल है औरअनेक जीवोंको भोजन करता है । जूं आदिकोंको मक्षिका और मच्छर आदिक खाते हैं और मक्षिका मच्छरादिकोंको दादुरखाते हैं । मेढ़कोंको सर्प; सर्पोंको नेवला; नेवलेको बिल्ली; बिल्लीको कुत्ते; कुत्तोंको भेड़िया; भेड़ियोंको सिंह; सिंहोंको सरभ और सरभको मेघकी गर्जना नष्टकरती है । मेघकोवायु; वायुको पर्वत; पर्वत को इन्द्रका वज्र और इन्द्रके वज्रको विष्णुजीका सुदर्शनचक्र जीतलेताहै और विष्णुभी अवतारोंको धरके सुखदुःख जरामरण संयुक्तहोते हैं । इसीप्रकार निरन्तर भूत जातिको काल जीर्णकरताहै; परस्परजीव जीवोंकोखातेहैं और निरन्तर नानाप्रकारके भूतजात दशोदिशाओंमें उपजतेहैं । जैसे जलमें मच्छ,कच्छ; पृथ्वीमें कीट आदि; अन्तरिक्षमें पक्षी; वनवीथीमें सिंहादिक; मृगस्थावरमें पिपीलिका, दर्दुर, कीटादि; विष्टा में कृमि और और नानाप्रकार के जीवगण इसीप्रकार निरन्तर उपजते और मिटजाते हैं । कोई हर्षवान् होताहै, कोई शोकवान्होता है, कोई रुदन करताहै और कोई सुख और दुःखमानते हैं । पापी पापों के दुःखसे निरन्तर मरते हैं और सृष्टि में उपजते और नाश होते हैं । जैसे वृक्षसेपत्ते उपजते हैं तैसेही कितनेभूत उपजकर नाश होजाते हैं उनकी कुछगिनती नहीं । जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने आपसे आपपर दयाकरके आपको संसार समुद्रसे पारकरते हैं । हे रामजी ! और जितनेजीव हैं वे पशुवत् हैं ; मूढ़ों और पशुओं में कुछ भेदनहीं और उनकोहमारी कथाका उपदेश नहीं । वे पशु धर्मा इस बाणीके योग्यनहीं; देखनेमात्र मनुष्य हैं परन्तु मनुष्यका अर्थ उनसे कुछ

सिद्द नहींहोता। जैसे उजाड़ बनमें ठूंठवृक्ष छाया और फलसे रहित किसीको विश्राम-दायक नहीं होते तैसेही मूढ़जीवोंसे कुछअर्थ सिद्द नहीं होता। जैसे गले में रस्सी डालकर पशुको जहां खेंचते हैं वहांचलेजाते हैं तैसेही जहांचित्त खैंचता है वे वहीं चलेजाते हैं। मूढ़चित्त जीव पशु विषयरूपी कीचमें फँसेहैं और उससे बड़ी आपदाको प्राप्तहोते हैं। उनमूढ़ोंको आपदामें देखके पाषाणभी रुदन करतेहैं। जिन मूर्खोंने अपनेचित्तको नहीं जीता उनको दुःखोंके समूह प्राप्तहोतेहैं और जिन्होंने चित्तको वन्धनसे निकालाहै वे संपदावान् हैं; उनकेसव दुःख मिटजाते हैं और वे संसारमें फिर नहीं उपजते। इससे अपने चित्तके जीतेविना दुःखनष्ट नहींहोते। जो चित्तजीतने से परमसुख न प्राप्तहोता तो वुद्धिमान् इसमें न प्रवर्त्तते पर वुद्धिमान् इसके जीतनेमें प्रवर्त्ततेहैं इससे जानिये कि, चित्तभी वशहोताहै और मनरूपी भ्रमके नष्टहुये आत्मसुख प्राप्तहोता है। हेरामजी! मनभी कुछहैनहीं मिथ्याभ्रमसे कल्पित है। जैसे वालकको अपनी परछाहीं में वेताल वुद्धिहोती है और उससे वह भयमान होताहै तैसेही भ्रमरूप मनसे नाशमानते हैं। जवतक आत्मसत्ताका विस्मरण है तवतक मूढ़ताहै और हृदयमें मनरूप सर्प विराजता है; जव अपना विवेकरूपी गरुड़ उदयहो तव वे नष्ट होजातेहैं। अव तुम जागेहो और ज्योंका त्यों जानतेहो। हे शत्रुनाशक रामजी! अपनेही संकल्पसे चित्त वढ़ताहै, इसलिये उस सङ्कल्पका शीघ्रही त्यागकरो तव चित्त शान्तहोगा। जो तुम दृश्यका आश्रयकरोगे तो वन्धन होगा और अहंकार आदिक दृश्यका त्यागकरोगे तो अचित्त मोक्षवान्होगे। यह गुणोंका सम्वन्ध मैंने तुमसे कहाहै कि, दृश्यका आश्रय करना वन्धनहै और इससे रहितहोना मोक्षहै। आगे जैसे इच्छाहो वैसेकरो। इसप्रकार ध्यानकरो कि, न मैं हूं और न यह जगत्है। मैं केवल अचलरूपहूं। ऐसे निःसंकल्पहुयेसे आनन्द चिदाकाश हृदयमें आ प्रकाशेगा। आत्मा और जगत्में जो विभाग कलना आ उदयहुई है वही मलहै। इस द्वैतभावके त्यागकियेसे जो शेषरहेगा उसमें स्थित हो। आत्मा और जगत्में अन्तरक्या है? द्रष्टा और दृश्यके अन्तर जो दर्शन और अनुभव सत्ताहै सर्वदा उसीकी भावनाकरो और स्वाद और अस्वाद लेनेवालेको त्यागकर उनके मध्यजो स्वादरूपहै उसमें स्थितहो। वही आत्मतत्त्वहै उसमें तन्मय होजाओ अनुभवजो द्रष्टा और दृश्यहै उसके मध्यमें जो निरालम्व साक्षीरूप आत्माहै उसी में स्थितहोजाओ। हेरामजी! संसार भावअभावरूपहै उसकी भावनाको त्यागकरो और भावरूप आत्मकी भावनाकरो वही अपना स्वरूपहै। प्रपञ्चदृश्यको त्यागकिये से जोवस्तु अपनास्वरूपहै वहीरहेगा—जोपरमानन्द स्वरूपहै। चित्तभावको प्राप्त होना अनन्तदुःखहै और चित्तरूपी सङ्कल्पही वन्धनहै; उसवन्धनको अपने स्वरूप

के ज्ञान युक्त बलसेकाटो तब मुक्ति होगी। जब आत्माको त्यागकर जगत्में गिरता है तब नानाप्रकार संकल्प विकल्प दुःखोंमें प्राप्त होताहै। जब तुम आत्माको व्यतिरेक शब्द करोगे तब मन दुःखके समूह संयुक्त प्रकट होगा और व्यतिरेक भावना त्यागनेसे सब मनके दुःख नष्ट होजावेंगे। यह सर्व्व आत्मा है–आत्मासे कुछ भिन्न नहीं; जब यह ज्ञान उदयहो तब चैत्य,चित्त और चेतना–तीनोंका अभाव होजावेगा। मैं आत्मा नहीं–जीवहूं इसी कल्पनाकानाम चित्तहै। इससे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्माहूं–जीव नहीं; वह सत्यहै कुछ भिन्न नहीं इसीकानाम चित्त उपशम है। जब यह निश्चय हुआ कि; सब आत्मतत्त्व है, आत्मासे कुछ भिन्न नहीं तब चित्त शान्त होजाताहै–इसमें कुछ संशय नहीं। इस प्रकार आत्मबोधकरके मन नष्ट होजाताहै। जैसे सूर्य्यकेउदयहुये तम नष्ट होजाता है। मन सब शरीरों के भीतर स्थित है, जबतक रहता है तबतक जीवको बड़ा भय होताहै। यह जो परमार्थयोग मैंने तुमसे कहाहै इससे मनको काटडालो। जब मन का त्यागकरोगे तब भय भी न रहेगा। यह चित्त भ्रममात्र उदयहुआहै। चित्तरूपी वैतालका सम्यक् ज्ञानरूपी मंत्रसे अभाव होजाता है। हे बलवानोंमें श्रेष्ठ निष्पाप रामजी! जब तुम्हारे हृदयरूपी गृहमें से चित्तरूपी वैताल निकलजावेगा तब तुम दुःखोंसे रहित और स्थित होगे और फिर तुम्हें भय उद्वेग कुछ न व्यापेगा। अब तुम मेरेवचनोंसे वैरागीहुयेहो और तुमने मनकोजीताहै। इसविचार विवेकसे चित्त नष्ट और शान्त होजाता है और निर्दुःख आत्मपदको प्राप्तहोता है। सब इषणाको त्यागकरके शांतरूप स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तचैत्यरूपवर्णनंनामचतुर्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! इसप्रकार तुमदेखो कि, चित्त आप विचित्ररूपहै और संसाररूपी बीजकी कणिकाहै। जीवरूपी पक्षीके बंधनका जाल संसारहै। जब चित्त संवित् आत्मसत्ताको त्यागताहै तब दृश्यभावको प्राप्तहोताहै और जबचित्त उपजता है तब कलनारूप मलधारणकरताहै वह चित्तबढ़कर मोहउपजताहै,मोहसेसंसारका कारण होताहै और तृष्णारूपी विषकीबेलि प्रफुल्लितहोतीहै उससे मूर्छित होजाता है और आत्मपदकी ओरसावधान नहींहोता। ज्योंज्यों तृष्णाउदयहोती है त्यों२मोहको बढ़ातीहै। तृष्णारूपी श्यामरात्रि अनन्त अन्धकारको देतीहै; परमार्थ सत्ताको ढांप लेतीहै और प्रलयकालकी अग्निवत् जलातीहै उसको कोई संहार नहीं सक्तावहसब को व्याकुल करतीहै। तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकीधारा दृष्टिमात्र कोमल, शीतल और सुन्दरहै पर स्पर्शकियेसे नाशकरडालतीहै और अनेक संकटदेतीहै।जोबड़े असाध्य दुःखहैं व जिनकी प्राप्ति बड़ेपापोंसे होती है ये तृष्णारूपी फूलका फलहैं। तृष्णारूपी

कुतिया चित्तरूपी गृहमें सदा रहती हैं; क्षणमें बड़े हुलासको प्राप्तहोतीहै और क्षण में शून्यरूप होजाती है और बड़े ऐश्वर्य संयुक्तहै। जब मनुष्यको तृष्णा उपजती है तब वह दीन होजाता है। जो देखने में निर्द्धन कृपणभासता है पर हृदय में तृष्णासे रहितहै वह बड़ा ऐश्वर्य्यवान्‌है। जिसके हृदय छिद्रमें तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं पैठी उसके प्राण और शरीरस्थितहैं और उसका हृदय शान्तरूप होताहै। निश्चयजानो कि, जहां तृष्णारूपी काली रात्रिका अभाव होताहै वहां पुण्य बढ़तेहैं—जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा बढ़ताहै। हे रामजी! जिस मनुष्यरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनने भोजन कियाहै उसकी पुण्यरूपी हरियाली नहींरहती और वह प्रफुल्लित नहींहोता। तृष्णा रूपी नदीमें अनन्त कलोल आवृत उठतेहैं और तृणवत् वहतीहै; जीवरूपी खेलने की पुतलीहै और तृष्णारूपी यंत्रीको भ्रमावती है और सब शरीरोंके भीतर तृष्णा-रूपी तागाहै उससे वे पिरोये हैं और तृष्णासे मोहित हुये कष्ट पातेहैं पर नहीं समझते—जैसे हरेतृणसे ढँपेहुये गढ़ेको देखकर हरिणकाबालक चरनेजाताहै और गढ़े में गिरपड़ता है। हे रामजी ! ऐसा और कोई मनुष्य के कलेजेको नहीं काटसक्ता जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह और बलरूपी कलेजा निकाललेतीहै और उससे वह दीन होजाता है। तृष्णारूप अमङ्गल इन जीवों के हृदय में स्थित होकर नीचताको प्राप्त करतीहै। तृष्णा करके विष्णु भगवान् इन्द्रके हेतुसे अल्पमूर्त्ति धार कर बलिके द्वार गये और जैसे सूर्य्य नीति को धरकर आकाशमें भ्रमताहै तैसेही तृष्णारूपी तागे से बांधे जीव भ्रमते हैं। तृष्णारूपी सर्प्पिणी महाविषसे पूर्ण होती है और सब जीवोंको दुःखदायक है; इससे इसको दूरसे त्याग करो। पवन तृष्णासे चलता है; पर्व्वत तृष्णासे स्थित है; पृथ्वी तृष्णासे जगत्को धरती है और तृष्णा से ही त्रिलोकी वेष्टित है निदान सब लोक तृष्णा से बांधेहुये हैं। रस्सी से बांधा हुआ छूटता है परन्तु तृष्णा से बँधा नहीं छूटता तृष्णावान् कदाचित् मुक्त नहीं होता; तृष्णासे रहित मुक्तहोता है। इसकारण; हे राघव ! तुम तृष्णाका त्यागकरो सब जगत् मनके सङ्कल्पमें है उस सङ्कल्पसे रहितहो। मनभी कुछ और वस्तुनहीं है युक्तिसे निर्णय करकेदेखो कि, संकल्प प्रमादका नाममनहै। जब इसकानाशहो तब सब तृष्णा नाश होजावे। अहं, त्वं, इदं इत्यादिक चिन्तन मतकरो; यह महामोह-मयदृष्टिहै; इसको त्यागकरके एक अद्वैत आत्माकी भावनाकरो। अनात्मा में जो आत्मभाव है वह दुःखों का कारणहै। इसके त्यागेसे ज्ञानवानों में प्रसिद्धहोगे। अहं भावरूपी अपवित्र भावनाहै उसको अपने स्वरूप सलाका की भावनारूपसे काट डालो। यहभावना पञ्चमभूमिकाहै; वहां संसारका अभावहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णावर्णनंनामपंचदशस्सर्गः १५॥

रामजीनेपूछा; हे मुनीश्वर ! ये आपके वचनगम्भीर और तोलसे रहितहैं । आप कहते हैं कि, अहंकार और तृष्णा मतकरो । जो अहंकार त्यागें तो चेष्टा कैसेहोगी ? तबतो देहकाभी त्यागहोजावेगा । जैसे वृक्षथम्भके आश्रय होतेहैं । स्थम्भके नाशहुये वृक्षनहीं रहते तैसेही देहको अहंकार धारणकररहाहै; उससे रहित देह गिरजावेगी, इससे मैं अहंकार को त्याग करके कैसे जीतारहूंगा ? यह अर्थ मुझको निश्चयकरके कहिये क्योंकि, आप कहनेवालोंमें श्रेष्ठहैं । वशिष्ठजीबोले, हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानोंने वासनाका त्यागकियाहै सो दो प्रकारकाहै । एककानाम ध्येयत्यागहै और दूसरेकानाम नेयत्याग है । मैं यह पदार्थरूपहूं; मैं इनसे जीताहूं; इन बिना मैं नहीं जीता और मेरे सिवा यह भी कुछ नहीं, यह जो हृदयमें निश्चय है उसको त्याग करके मैं विचारताभयाहूं कि न मैं पदार्थहूं और न मेरे पदार्थ हैं । ऐसी भावनाकरने वाले जो पुरुषहैं उनका अन्तष्करण आत्मप्रकाशसे शीतल होजाता है और वे जो कुछ क्रिया करते हैं वह लीला मात्र है । जिसपुरुषने निश्चय करके वासनाका त्याग किया है वह सर्व क्रियाओं में सर्व आत्मा जानता है । उसको कुछ बन्धनका कारण नहीं होता; उसके हृदयमें सर्ववासनाका त्यागहै और बाहर इन्द्रियोंसे चेष्टाकरताहै । जो पुरुषजीवन्मुक्त कहाताहै उसने जो वासनाका त्याग कियाहै उसवासनाके त्याग का नाम ध्येयत्यागहै और जिसपुरुषने मनसंयुक्त देह वासनाका त्यागकिया है और उसवासनाकाभी त्यागकियाहै वह नेयत्यागहै । नेयवासनाके त्यागसे विदेहमुक्त कहाताहै । जिसपुरुषने देहाभिमानका त्यागकियाहै; संसारकी वासनालीलासे त्यागकी हैं और स्वरूपमें स्थितहोकर क्रियाभीकरताहै वह जीवन्मुक्त कहाताहै । जिसकीसब वासनानाश हुईहै और भीतर बाहरकी चेष्टासे रहित हुआहै अर्थात् हृदयकासङ्कल्प और बाहरकी क्रियात्यागीहै उसकानाम नेयत्यागहै—वह बिदेहमुक्त जानो । जिसने ध्येय वासनाका त्यागकिया है और लीलाकरके कर्त्ताहुआ स्थित है वह जीवन्मुक्त महात्मा पुरुषजनकवत्है । जिसने नेयवासना त्यागीहै और उपशमरूप होगयाहै वह विदेहमुक्त होकर परमतत्त्वमें स्थितहै । परात्पर जिसको कहते हैं वहीहोताहै । हेराघव ! इनदोनों समपदत्यागों में स्थितहुये ब्रह्मपदको प्राप्तहोता है । वे विगतसन्ताप उत्तमपुरुष दोनों मुक्त स्वरूपहैं और निर्मलपदमें स्थितहोते हैं । एककीदेह स्फुरन रूप होतीहै और दूसरेकी अस्फुरहोती है । वह विदेहयुक्त रूपदेहमें स्थित होता है और क्रियाकरता सन्तापसे रहित जीवन्मुक्त ज्ञानकोधरता है और फिर दूसरी देह त्यागके विदेहपदमें स्थित होताहै; उसकेसाथ वासना और देहदोनों नहीं भासते । इससे विदेहमुक्त कहाताहै । जीवन्मुक्तके हृदयमें वासनाकात्याग है और बाहरक्रिया करताहै । जैसे समयसे सुखदुःख प्राप्तहोता है तैसेही वह निरन्तर राग द्वेषसे रहित

प्रवर्त्तताहै और सुखमें हर्ष नहीं दुःखमें शोकनहीं करता वह जीवन्मुक्त कहाता है। जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छात्यागी है सो सबकार्यमें सुपुप्ति की नाईं अचल वृत्ति है, वह जीवन्मुक्त कहाताहै। हेयोपादेय, मैं और मेरा इत्यादि सब कलना जिसके हृदय से क्षीण होगई हैं वह जीवन्मुक्त कहाता है जिसकी वृत्ति सम्पूर्ण पदार्थों से सुपुप्ति की नाईं होगई है; जिसका चित्त सदा जाग्रत है और जो कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्टि आता परन्तु हृदय से आकाशवत् निर्म्मल है वह जीवन्मुक्त पूजने योग्य है। इतना कहकर वाल्मीकि जी बोले कि, इसप्रकार जब वशिष्ठ जी ने कहा तब सूर्य्य भगवान् अस्तहुये; सभाके सब लोग स्नान के निमित्त परस्पर नमस्कार करके उठे और रात्रि व्यतीत करके सूर्य्य के उदय साथ परस्पर नमस्कार करके यथायोग्य अपने अपने आसनपर आ बैठे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामषोड़शस्सर्गः १६॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जो पुरुष विदेह मुक्त है वह हमारी वाणी का विषय नहीं; इससे तुम जीवन्मुक्त का ही लक्षण सुनो। जो कुछ प्रकृत कर्म्म है उसको जो करता है परन्तु तृष्णा और अहंकार से रहित है और निरहंकार होकर विचरता है वह जीवन्मुक्त है। दृश्य पदार्थों में जिसकी दृढ़ भावना है वह तृष्णा से सदा दुखी रहता है और संसार के दृढ़ बंधनसे बन्ध कहाता है और जिसने निश्चय करके हृदय से संकल्पका त्याग किया है और बाहर से सब व्यवहार करता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है। जो बाहर जगत् में बड़े आरंभ करता है और इच्छा संयुक्त दृष्टि आता है पर हृदय में सब अर्थोंकी वासना और तृष्णा से रहित है वह मुक्त कहाता है। जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिट गई है और वर्तमान में निरन्तर विचरता है वह निर्दुःख निष्कलंक कहाता है। हे महा बुद्धिमान्! जिसके हृदय में इदं अहंकार निश्चय है और जो उसको धारकर संसार की भावना करता है उसको तृष्णा रूप जंजीर से बांधा और कलना से कलंकित जानो। इससे तुम, मैं और मेरा; सत् और असत्य बुद्धि संसार के पदार्थों का त्याग करो और जो परमउदार पद है सर्वदा काल उसमें स्थित होजाओ। बन्ध,मुक्त,सत्य, असत्यकी कल्पना को त्याग के समुद्रवत् अक्षोभ चित्त स्थित हो; न तुम पदार्थ जालहो; न यह तुम्हारे हैं; असत्य रूप जानके इनका विकल्प त्यागो।यह जगत् भ्रान्तिमात्र है और इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्र तुम सत्य स्वरूप हो और तृष्णा मिथ्या रूप है। तुम्हारा और इसका क्या सङ्ग है? हे रामजी! जीव को चारप्रकार का निश्चय होता है और वह बड़े आकार को प्राप्त होताहै। चरणों से लेकर मस्तक पर्यंत शरीर में आत्मबुद्धि होना और माता पिता से उत्पन्न हुआ

जानना; यह निश्चय बन्धन रूप है और असम्यक् दर्शन भ्रान्ति से होताहै। यह प्रथम निश्चय है। द्वितीय निश्चय यहहै कि, मैं सब भावों और पदार्थों से अतीतहूं; बालके अग्रसे भी सूक्ष्महूं और साक्षीभूत सूक्ष्म से अति सूक्ष्महूं। यह निश्चय शान्ति रूप मोक्षको उपजाता है। जो कुछ जगत् जालहै वह सब पदार्थों में मैंहीं हूं और आत्मा रूप मैं अविनाशी हूं। यह तीसरा निश्चय है; यहभी मोक्षदायक है। चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्यहूं और जगत् भी असत्य है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्रहै। यहभी मोक्षका कारणहै। हेरामजी! ये चारप्रकारके निश्चय जो मैंने तुमसे कहेहैं उनमेंसे प्रथम निश्चय बन्धनका कारणहै और बाकी तीनों मोक्ष के कारण हैं और वे शुद्ध भावना से उपजते हैं। जो प्रथम निश्चयवान् है वह तृष्णा रूप सुगन्ध से संसार में भ्रमता है और बाकी तीनों भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी हैं। जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् मैं आत्म स्वरूपहूं उसको तृष्णा और रागद्वेष फिर नहीं दुःख देते। अध, ऊर्ध्व, मध्य में आत्माही व्यापा है और सब मैंहीं हूं, मुझसे कुछ भिन्न नहीं है; जिसके हृदयमें यह निश्चयहै वह संसार के पदार्थों में बन्धायमान नहीं होता। शून्य प्रकृति माया, ब्रह्मा, शिव, पुरुष, ईश्वर सब जिसके नामहैं वह विज्ञान स्वरूप एक आत्माहै। सदा सर्वदा एक अद्वैत आत्मामैंहूं, द्वैतभ्रम चित्त में नहीं है और सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूपहूं। ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत जो कुछ जगत् जालहै वहसर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भररहा है—जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुदबुदे सर्वजल रूप हैं तैसेही सर्वजगत्जाल आत्मरूपहीहै। सत्य स्वरूप आत्मासे द्वैतकुछ वस्तुनहीं है जैसे बुदबुदे और तरङ्गकुछ समुद्रसेभिन्न नहींहैं और भूषणस्वर्ण से भिन्न नहींहोते तैसेही आत्मसत्तासे कोई पदार्थ भिन्ननहीं। द्वैत और अद्वैत जो जगत्रचनामें भेदहै वह परमात्मा पुरुषकी फुरन शक्तिहै और वहीद्वैत और अद्वैत रूपहोकर भासताहै। यह अपनाहै, यह औरकाहै; यहभेद जो सर्वदासबमें रहताहै और पदार्थोंके उपजने और मिटने में सुख दुःख भासता है उनकामत ग्रहणकरो; भावरूप अद्वैत आत्मसत्ताका आश्रयकरो और भ्रमद्वैतको त्यागकरके अद्वैत पूर्ण सत्ताहोजाओ; संसारके जो कुछ भेदभासते हैं उनको मतग्रहणकरो इसभूमिका की भावना जो भेदरूपहै वह दुःखदायीजानो। जैसे अन्धहस्ति नदीमें गिरता है और फिर उछलताहै तैसेही तुम पदार्थोंमें मतगिरो। तुम पूर्णस्वरूपहो; महात्मा पुरुषको रागद्वेष कुछ सम्भवनहीं होते। सर्वगत आत्माएक, अद्वैत, निरन्तर, उदयरूप और सर्वव्यापकहै। एक और द्वैतसे रहितभीहै; सर्वरूपभी वहीहै और निष्किञ्चन रूपभी वही है। न मैंहूं, न यह जगत्है, सब अविद्या रूपहै; ऐसे चिन्तनकरो और सबका त्याग करो। अथवा ऐसे विचारो कि, ज्ञान स्वरूप सत्य असत्य सब मैंहींहूँ। तुम्हारा

स्वरूप सर्ब्ब का प्रकाशक, अजर, अमर, निर्विकार, निष्प्रिय, निराकार और परम अमृत रूप है और निष्कलंक जीवशक्तिका जीवनरूप और सर्ब्ब कलना से रहित कारणका कारणहै। निरन्तर उद्योत ईश्वर विस्तृत रूप है और अनुभव स्वरूप सब अनुभव का बीज है। अपना आप आत्मपद उचित स्वरूप ब्रह्म, मैं और मेराभाव से रहित है। इससे अहं और इदं कलना को त्याग करके अपने हृदय में यह निश्चय धारो और यथा प्राप्त क्रिया करो। तुम तो अहङ्कारसे रहित शांतरूप हो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाउपदेशोनामसप्तदशस्सर्ग्गः १७॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है उन महात्मा पुरुषोंका यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि और देहाभिमान से नहीं रहते पर लीला से जगत् के कार्य्योंमें विचरते हैं और जीवन्मुक्त शान्त स्वरूप हैं। जगत्कीगति आदि, अन्त, मध्य, में विरस और नाशरूप है इससे वे शान्तरूप हैं और सब प्रकार अपना कार्य्य करते हैं। सब वृत्तियों में स्थितहोकर उन्होंने हृदयसे ध्येयबासना त्यागीहै; निरालम्ब तत्त्वका आश्रयलियाहै और सर्वमें उद्वेगसे रहित सर्व अर्थमें सन्तुष्टरूपहैं। बिबेक रूपी बनमें वेसदा विचरतेहैं; बोधरूपी बागीचेमें स्थितहैं और सबसे अतीतपदका अवलम्बनकिया है। उनका अन्तष्करण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतलभया है; संसारके पदार्थों से वे कदाचित् उद्वेगवान् नहींहोते और उद्वेग और असन्तुष्टत्व दोनोंसे रहित हैं। वे संसारमें कदाचित् दुःखी नहीं होते। वेचाहे शत्रुओंके मध्यमें होकर युद्धकरें अथवा दया वा बड़े भयानक कर्मकरते दृष्टआवें तौभी जीवन्मुक्त हैं। संसारमें वे दुःखीनहीं होते और न किसी पदार्थमें आनन्दवान् होते हैं; न किसीमें कष्टमानहोते हैं न किसी पदार्थकी इच्छाकरते हैं और न शोककरते हैं; मौनमें स्थित यथा प्राप्त कार्य करतेहैं और संसारमें दुःखसे रहित सुखीहोते हैं। जोकोई पूछताहै तो वे यथाक्रम ज्योंकात्यों कहते हैं और पूछेबिना मकजड़ वृक्षवत् होरहते हैं। इच्छा अनिच्छासे मुक्त संसारमें दुःखीनहींहोते औरसबसे हितकरके और कोमलउचित बाणी से बोलते हैं। वे यज्ञादि कर्मभी करतेहैं परन्तु संसारीकार्य में नहींडूबते। हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुषयुक्त अयुक्त नानाप्रकारकी उग्रदशा संयुक्त जगत्की वृत्तिको हाथमें वेल फलवत् जानताहै परन्तु परमपदमें आरूढ़होकर जगत्की गतिदेखता रहताहै और अपना अन्तष्करण शीतल और जीवोंको तप्तदेखता है। वह स्वरूप में कुछ द्वैतनहीं देखता है परन्तु व्यवहारकी अपेक्षा से उसकी महिमाकही है। हे राघव! जिन्होंने चित्तजीता है और परमात्मा देखा है उन महात्मा पुरुषोंकी स्वभाव वृत्ति मैंनेतुमसे कहीहै और जोमूढ़हैं और जिन्होंने अपनाचित्तनहींजीता और भोगरूपी कीचमें मग्न हैं; ऐसे गर्दभोंके लक्षण हमसे नहींकहते बनते। उनको उन्मत्त कहिये

उन्मत्त इसप्रकार होते हैं कि, महानरक की ज्वाला स्त्री है और वे उस उष्णनरक अग्निके इंधनहैं उसीमें जलतेहैं और नानाप्रकारके अर्थोंके निमित्त अनर्थ उत्पन्नकरते हैं। भोगोंकी अनर्थरूप दीनतासे उनके चित्तहत हुये हैं और संसारके आरम्भ से दुःखीहोते हैं नानाप्रकारके कर्म जो वे करतेहैं उनकेफल हृदयमें धारते हैं और उनकर्मों के अनुसार सुखदुःख भोगते हैं। ऐसेजो भोग लम्पट हैं उनके लक्षण हम नहींकह सक्ते। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषोंकी दृष्टि पूर्व जो कही है उसीका तुम आश्रयकरो। हृदयसे ध्येय वासनाको त्यागो और जीवन्मुक्त होकर जगत्में विचरो। हृदयकी संपूर्ण इच्छा त्यागके वीतराग और निर्वासनीक होरहो। बाहर सब आचारवान् होकर लोगों में विचरो और सर्वदिशा और अवस्था का भलीप्रकार विचारकर उनमें जो अतुच्छ पदहो उनकाआश्रयकरो पर भीतर सर्वपदार्थोंसे निरस और बाहर इच्छाकेसंमुखहो। भीतर शीतलरहो और बाहर तपायमान हो; बाहरसे सबकार्योंका आरम्भकरो और हृदयसे सब आरम्भसे विवर्जितहोरहो। हेरामजी! अबतुम ज्ञानवान् हुयेहो और सब पदार्थोंकीभावनाकातुम्हें अभाव हुआहै; जैसे इच्छाहो तैसे विचरो। जब इन्द्रियों का इष्टपदार्थहोआवे तब कृत्रिम हर्षवान् होना और दुःखआय प्राप्तहो तब कृत्रिम शोक करना। क्रियाका आरम्भकरना और हृदयमें सारभूत रहना अर्थात् बाहरक्रियाकरो पर भीतर अहंकारसे रहित आकाशवत् निर्मलरहो। कार्यकलनासे रहित होकर जगत् में विचरो और आशारूप फांसी से मुक्तहोकर इष्ट अनिष्टसे हृदयमें सम रहो और बाहरकार्य करते लोगों में विचरो। इस चैतन पुरुषको वास्तवमें न बन्ध है और न मोक्षहै; मिथ्या इन्द्रजालवत् बन्धमोक्ष संसारका वर्त्तनाहै। सबजगत् भ्रांति मात्रहै पर प्रमादसे जगत् भासताहै। जैसे तीक्ष्ण धूपसे मरुथलमें जलभासताहै तैसेही अज्ञानसे जगत् भासताहै। आत्माअबंध और सर्वव्यापकरूपहै, उसे बंध कैसेहो और जो बन्धनहीं तो मुक्त कैसे कहिये। आत्मतत्त्वके अज्ञानसे जगत् भासताहै और तत्त्वज्ञान से लीनहोजाता है—जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्पभासता है और रस्सीके जानेसे सर्प लीन होजाताहै। हे रामजी! तुम तो ज्ञानवान् हुयेहो और अपनी सूक्ष्म बुद्धि से निरहंकार हुयेहो अब आकाशकी नाईं निर्मल स्थित हो रहो। जो तुम असत्यरूप होतो संपूर्ण मित्रभ्रातभी तैसेहीहैं उनकी ममताको त्यागकरो क्योंकि, जो आपी कुछ न हुआ तो भावना किसकी करेगा और जो तुम सत्यस्वरूपहो तो अत्यन्त सत्य आत्माकीभावनासे दृश्यजगत्कीभावनासे रहितहो। यह जो अहंमम भोगवासनाजगत् में है वह प्रमादसेभासतीहै और अहंमम और बान्धवोंका शुभकर्म आदिक जो जगत् जालभासता है इनसे आत्माका कुछ संयोग नहीं तुमक्यों शोकवान् होते हो ? तुम आत्मतत्त्वकी भावनाकरो; तुम्हारासंबंध किसीसे नहीं—यह प्रपंच भ्रममात्र है। जो

निराकार अजन्मा पुरुषहो उसको पुत्र बान्धव दुःख सुखका क्रमकैसेहो ? तुम स्वतः, अजन्मा, निराकार, निर्विकारहो तुम्हारा संबंध किसीसे नहीं तुम इनका शोक काहे को करते हो ? शोक करने का स्थान वह होता है जो नाशरूप हो सो न तो कोई जन्मता है और न मरता है और जो जन्म मरणभी मानिये तो आत्मा उसको सत्ता देनेवाला है जो इस शरीरके आगे और पीछेभी होगा। आगे जो तुम्हारे बड़े बुद्धिमान्, सात्त्विकी और गुणवान् अनेक बांधव व्यतीतहुये हैं उनका शोक क्यों नहीं करते ? जैसे वे थे तैसेही तो येभी हैं ? जो प्रथमथे वे अबभीहैं। तुम शांतरूप हो; इससे मोहको क्यों प्राप्त होतेहो जो सत्यस्वरूपहै उसका न कोई शत्रु है और न वह नाश होताहै। जो तुम ऐसे मानतेहो कि, मैं अबहूं आगे न हूंगा तौभी वृथा शोक क्यों करतेहो ? तुम्हारा संशय तो नष्टहुआहै; अपनी प्रकृतिमें हर्ष शोकसे रहित होकर विचरो और संसारके सुख दुःख में समभाव रहो। परमात्मा व्यापकरूपसर्वत्र स्थितहै और उससे कुछभिन्न नहीं। तुम आत्माआनन्द आकाशवत् स्वच्छ विस्तृत और नित्य शुद्ध प्रकाशरूपहो जगत्के पदार्थोंके निमित्तक्यों शरीर सुखाते हो ? सर्व पदार्थ जातिमें एक आत्मा व्यापक है—जैसे मोतीकी मालामें एकतागाव्यापक होता है तैसेही आत्मा अनुस्यूतहै; ज्ञानवानोंको सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानियों को ऐसे नहीं भासता। इससे ज्ञानवान् होकर तुम सुखीरहो। यह जो संसरणरूप संसार भासता है वह प्रमादसे सारभूत होगया है। तुम तो ज्ञानवान् और शांत बुद्धिहो। दृश्यभ्रममात्र संसारका क्यारूपहै ? भ्रम और स्वप्नमात्रसे कुछ भिन्ननहीं। स्वप्नमें जो क्रम और जो वस्तु है; सब मिथ्याही है तैसेही यह संसार है। सर्वशक्त जो सर्वात्मा है उसमें जो भ्रममात्रशक्ति है उससे यह संसारमाया उठी है, सो सत्य नहीं है। वास्तवमें पूंछो तो केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है। जैसे सूर्य प्रकाशता है तो उसको न किसीसे विरोधहै और न किसीसे स्नेहहै,तैसेही वह सर्वरूप, सर्वत्र, सर्वदा, सर्व का ईश्वर है। उस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्त्ति है और उससे नानारूप जगत् भासता है और भिन्न भिन्नरूप निरन्तरही उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते हैं तैसेही देहधारी जैसी वासना करता है उसके अनुसार जगत्में उपजकर विचरता और चक्रकी नाईं भ्रमताहै। स्वर्गमें स्थितजीव नरक में जाते हैं और जो नरक में स्थित हैं वे स्वर्ग्ग में जाते हैं; योनि से योन्यांतर और द्वीपसे द्वीपांतर जाते हैं और अज्ञानसे धैर्यवान् कृपणताको प्राप्तहोता है और कृपण धैर्यको प्राप्तहोता है। इसीप्रकार भूत उछलते और गिरते हैं और अज्ञानसे अनेक भ्रममें प्राप्तहोतेहैं पर आत्मसत्ता एकरूप, स्थित,स्थिर, स्वच्छ और अपने आपमें अचल है और दुःख, भ्रम उसमें कोई नहीं। जैसे अग्निमें बरफका कणका

नहीं पायाजाता तैसेही जो आत्मसत्तामें स्थित है उसको दुःख क्लेश कोई नहीं होता । उसका हृदय जो शीतल रहता है सो आत्मसत्ताकी वड़ाई है । संसार की यही दशा है कि जो वड़े २ ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टिआते थे वे कितनेक दिनपीछे नष्ट होते देखे हैं । तुम और मैं इत्यादिक भावना आत्मामें मिथ्याभ्रमसे भासतीहैं । जैसे आकाश में दूसराचन्द्रमा भासताहै तैसेही ये वांधवहैं, ये अन्यहैं यह मैंहूं इत्यादिक मिथ्या दृष्टि तुम्हारी अव नष्ट हुई है । संसारकी जो विचार दृष्टिहै जिससे जीव नष्ट होतेहैं उसे मूलसे काटकर तुमजगत्में क्रियाकरो । जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारमें विचरते हैं तैसेही विचरो—भारवाहककीनाईं भ्रममें न पड़ना । जहां नाश करनेवाली वासना उठे वहां यह विचारकरो कि, यह पदार्थ मिथ्याहै तव वह वासना शांत होजावेगी । यह वन्ध है, यह मोक्ष है, यहपदार्थ नित्य है इत्यादिक गिनती लघुचित्तमें उठती हैं, उदार चित्तमें नहीं उठतीं । उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनके आचरणके विचारने में देहदृष्टि नष्ट होजावेगी । ऐसे विचारो कि,जहां मैं नहीं वहां कोई पदार्थ नहीं और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो मेरा नहीं; इसविचारसे देह दृष्टि तुम्हारी नष्ट होजावेगी । ऐसे ज्ञानवान् पुरुष संसारके किसीपदार्थसे उद्वेगवान् नहीं होते और किसी पदार्थके अभावहुये आतुर भी नहीं होते । वे चिदाकाशरूप सवको सत्य और स्थितरूप देखते हैं; आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखते हैं और भाई, वांधव भूतजातको अत्यन्त असत्यरूप देखते हैं । नानाप्रकारके अनेक जन्मों में भ्रमसे अनेक वांधव होगये हैं—वास्तवमें त्रिलोकी और वान्धवों में भी वान्धव वहीहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनंनामअष्टादशस्सर्गः १८ ॥

वशिष्ठजी वोले, हे रामजी ! इसप्रसंगपर एक पुरातन इतिहास है जो वड़े भाई ने छोटे भाई से कहा है सो सुनो । इसी जम्वूद्वीप के किसी स्थानमें महेन्द्र नाम एक पर्वतहै वहां कल्पवृक्षथा और उसकीछायाके नीचे देवता और किन्नर आकर विश्राम करते थे उस पर्व्वतके वड़े शिखर वहुत ऊंचे थे और व्रह्मलोक पर्य्यन्त गयेथे जिनपर देवता सामवेद की धुनि करते थे । किसी ओर जलसे पूर्ण वड़े मेघ विचरते थे, कहीं पुष्पसे पूर्ण लताथीं, कहीं जलके झरने वहते थे और कन्दराके साथ उछलते मानों समुद्रके तरङ्ग उठते थे, कहीं पक्षी शव्द करते थे, कहीं कन्दरामें सिंह गर्जते थे,कहीं कल्प और कदम्व वृक्ष लगेथे, कहीं अप्सरागण विचरती थीं, कहीं गङ्गाका प्रवाह चला जाताथा और किसी स्थान में महासुन्दर रमणीय रत्नमणि विराजते थे । वहां गङ्गा के तटपर एक उग्रतपस्वी स्त्री संयुत तप करता था और उसके महासुन्दर दोपुत्र थे । जव कुछकाल व्यतीतहुआ तो पुण्यकनामक पुत्र ज्ञानवान् हुआ पर पावन अर्द्धप्रवुद्ध और लोलुप अवस्थामें रहा । जव काल-

चक्र के फिरते हुये कईवर्ष व्यतीतहुये तो उस दीर्घतपस्वीका शरीर जर्जरीभूत होगया और उसने शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखकर चित्तकी वृत्ति देहसे विरक्त अर्थात् विदेह होनेकी इच्छाकी। निदान दीर्घतपाकी पुर्यष्टका कलनारूप शरीरको त्यागती भई और जैसे सर्प कंचुकी को त्याग दे तैसेही पर्वतकी कन्दरामें जो आश्रय था उसमें उसने शरीरको उतारदिया और कलनासे रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्ता स्वरूप में स्थितहुआ और राग द्वेषसे रहित जो पदहै उसमें प्राप्त हुआ। जैसे धूम्र आकाश में जा स्थितहो तैसेही चिदाकाश में स्थित हुआ। तब मुनीश्वरकी स्त्रीने भर्त्ताका शरीर प्राणोंसे रहित देखा और जैसे दण्डसे कमल काटाहो तैसेही चित्त विना शरीर देखती भई। निदान चिरपर्यन्त योगकर्म कर उसने अपना शरीर प्राण और पवनको वशकरके त्यागदिया और जैसे भवँरा कमलिनीकोत्यागे तैसेही शरीर त्यागकर भर्त्ताके पदको प्राप्तहुई। जैसे आकाशमें चन्द्रमा अस्त होताहै और उसकी प्रभा उसके पीछे अदृष्टहोती है तैसेही दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पीछे अदृष्टहुई। जब दोनों विदेह मुक्त हुये तब पुण्य जो बड़ा पुत्रथा उनके दैहिककर्म में सावधान होकर कर्म करनेलगा पर पावन माता पिता बिना दुःखको प्राप्तहो शोककरके उसका चित्त व्याकुल होगया और वन कुञ्जों में भ्रमनेलगा। पुण्य जो माता पिताकीदेहा-दिक क्रिया करताथा जहां पावनशोकसे विलाप करताथा आया और भाईको शोक संयुक्त देखकर पुण्यने कहा;हे भाई! शोक क्यों करतेहो जो वर्षाकालके मेघवत् आंशुओंका प्रवाह चलाजाताहै? हे बुद्धिमान्! तुम किसका शोक करतेहो? तुम्हारे पिता और माता तो आत्मपदको प्राप्त हुये हैं; जो मोक्षपद है। वही सर्वजीवों का स्थानहै और ज्ञानवानोंका स्वरूपहै। यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एक है पर तौभी ज्ञानवान्को इसप्रकार भासता है और अज्ञानीको ऐसेनहीं भासता। वे तो ज्ञानवान्थे और अपने स्वरूप में प्राप्त हुये हैं उनका शोक तुम किसनिमित्त करते हो? यह क्या भावना तुमने बांधी है? संसारमें जो शोक मोक्षदायक है वह तू नहीं करता और जो शोक करने योग्यनहीं वह करता है। न वह तेरी माताथी; न वह तेरा पिताथा और न तू उनका पुत्र है; कई तेरे माता पिता होगये हैं और कई पुत्र होगये हैं; असंख्यवार तू उनका पुत्र हुआहै और असंख्यपुत्र उन्होंने उत्पन्नकिये हैं और अनेक पुत्र, मित्र, बांधवोंके समूह तेरे जन्म २ के बीत गये हैं। जैसे ऋतु २ में बड़े वृक्षोंकी शाखाओंमें फलहोते और नष्ट होजाते हैं तैसेही जन्महोते हैं; तू काहेको पिता माताके स्नेहमें शोक करता है? जो तेरे सहस्रों माता पिता होकर बीतगये हैं उनका शोक काहेको नहीं करता? जो तू इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है तो उनकाभी शोककर? हे महाभाग! जो प्रपञ्च तुझको दृष्टआता है वह जाग्रतभ्रमहै;

परमार्थमें न कोई जगत् है, न कोई मित्र है और न कोई बांधव है। जैसे मरुथलमें वड़ी नदी भासती है परन्तु उसमें जलका एक बूंद भी नहीं होता तैसेही वास्तवमें जगत् कुछ नहीं। बड़े २ लक्ष्मीवान् जो छत्रचामरों से सम्पन्न शोभते हैं वे विपर्यय होंगे क्योंकि, यह लक्ष्मी तो चञ्चल स्वरूप है कोई दिनोंमें अभाव होजाती है। हे भाई! तू परमार्थ दृष्टिसे विचार देख, न तू है और न जगत्है; यह दृश्य भ्रांतिरूप है इसको हृदयसे त्याग। इसी मायादृष्टिसे वार २ उपजता और विनशताहै। यह जगत् अपने सङ्कल्पसे उपजा है, इसमें सत्पदार्थ कोईनहीं। अज्ञानरूपी मरुथलमें जगत्रूपीनदीहै और उसमें शुभ अशुभरूपी तरङ्ग उपजते और फिर नष्टहोजातेहैं॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधवर्णनंनामएकोनविंशतितमस्सर्गः १९॥
पुण्यबोले; हे भाई! कई माता और कई पिता होहोकर मिटगये हैं। जैसे वायुसे धूलके कणके उड़ते हैं तैसेही बांधव हैं; न कोईमित्र है; और न कोईशत्रु है; सम्पूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है और उसमें जैसी भावना फुरती है तैसेही हो भासती है। बांधव, मित्र, पुत्र आदिकों में जो स्नेह होता है सो मोहसे कल्पित है और अपने मनसे माता पितादिक संज्ञाकल्पी है। जगत् प्रपञ्चमें जैसी संज्ञाकल्पता है तैसीही होभासनी है; जहां बांधवकी भावना होती है वहां बांधव भासता है और जहां औरकी भावना होती है वहां औरही हो भासता है। जो अमृतमें विषकी भावना होती है तो अमृतभी विष होजाताहै सो कुछ अमृतमें विषनहीं भावनारूप भासताहै; तैसेही न कोई बांधव है और न कोई शत्रु है, सर्वदा काल विद्यमान एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है उसमें अपने और औरकी कल्पना कोईनहीं और जो कुछ देहादि हैं वे रक्त मांसादिके समूहसे रचे हैं उनमें अहंसत्ता कौन है और अहंकार, चित्त, बुद्धि और मन कौन है? परमार्थ दृष्टिसे यहतो कुछनहीं है, विचारकियेसे न तू है, न मैंहूं, यह सब मिथ्याज्ञानसे भासते हैं। एक अनन्त चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है उस में तेरीमाता कौन है और पिता कौन है, यह सर्वमिथ्या भ्रमसे भासता है, वास्तवमें कुछनहीं। शरीर से देखिये तो जोकुछ शरीरहै वह पञ्चतत्त्वोंसे रचा जड़रूप है, उस में चेतन एकरूप है और अपना और पराया कौनहै। इस भ्रम दृष्टिको त्यागके तत्त्वका विचार करो; मिथ्या भावना करके माता पिताके निमित्त क्यों शोकवान्हुयेहो? जो सम्यक् दृष्टिका आश्रय करके उसस्नेहका शोक करतेहो तो और जन्मों के बांधव और मित्रोंका शोक क्योंनहीं करते? अनेक पुष्पों और लताओंमें तू मृगपुत्र हुआथा, उस जन्मके तेरे अनेकमित्र बांधवथे उनका शोक क्योंनहीं करता? अनेक कमलों संयुक्त तालावमें हाथी विचरतेथे वहां तू हाथीका पुत्रथा; उन हस्ति बांधवों का शोक क्यों नहीं करता? एक वड़े वन में वृक्ष लगेथे और तेरे साथ फल पत्र

हुयेथे और अनेक वृक्ष तेरे बांधवथे, उनका शोक क्योंनहीं करता? फिर नदीतालाव में तुम मच्छहुये थे और उसमें मच्छयोनिके बांधवथे; उनका शोक क्योंनहीं करता? दशार्णव देशमें तू काक और वानर हुआ, तुषार्ण देशमें तू राजपुत्र हुआ और फिर वनकाक हुआ, वङ्गदेशमें तू हाथीहुआ, विराजदेशमें तूगर्दभ हुआ; मालवदेशमें सर्प्प और वृक्षहुआ और वङ्गदेशमें गृद्धहुआ, मालवदेशके पर्वतमें पुष्पलता हुआ और मन्दराचल पर्वतमें गीदड़हुआ; कोशलदेश में ब्राह्मणहुआ; वङ्गदेश में तीतर हुआ; तुषारदेशमें घोड़ाहुआ; कीट अवस्थामें हाथी हुआ; एकनीचग्राम में वकरा हुआ और पन्द्रह महीने वहां रहा, एक वनमें तड़ाग था वहां कमल पुष्प में भ्रमरा हुआ और जम्बूद्वीप में तू अनेकवार उत्पन्न हुआहै। हे भाई! इसप्रकार वासना पूर्वक वृत्तान्त मैंने कहा है। जैसी तेरी वासना हुई है तैसे तूने जन्म पाये हैं। मैं सूक्ष्म और निर्मल बुद्धिसे देखताहूं कि, ज्ञान विना तूने अनेकजन्म पाये हैं। उन जन्मोंको जानके तू किस २ बांधवका शोककरेगा और किसकास्नेह करेगा? जैसे वे बांधवथे तैसेही यह भी जानले। मेरे भी अनेक बांधव हुये हैं; जिन २ में मैंने जन्मपाया है और जो २ वीतगये हैं तैसेही सब मेरे स्मरण में आते हैं और अब मुझको अद्वैत ज्ञान हुआ है। हे भाई! त्रिरागदेशमें मैं तोता हुआ; तड़ागके तटपर हंसहुआ; पक्षियोंमें काकहुआ; वेलहुआ; वङ्गदेशमें वृक्षहुआ; इसवन पर्वतमें वड़ा उग्र होकर विचरा; पौंड्रदेशमें राजाहुआ और सह्याचल पर्वतकी कन्दरामें भेड़िया हुआ जहां तू मेरा वहां वड़ा भाई था। फिर मैं दशवर्ष मृगहोकर रहा; पांच महीने तेरा भाई होकर मृगरहा सो तेरा वड़ा भ्राताहूं। इसप्रकार ज्ञानसे रहित वासनाकर्म के अनुसार कितने जन्मों में हम भ्रमते फिरे हैं। मैंने तुझसे सब कहा है और सब मुझको स्मरण है। इसप्रकार जगत् जालकी स्थिति मैंने तुझसे कही है। तेरे और मेरे अनेक जन्मके माता, पिता, भाई और मित्र हुये हैं उनका शोक तू क्यों नहीं करता? यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इसकारण सबको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थित होजाओ। यह सब प्रपञ्च भ्रान्तिरूप है; इनकी वासना त्याग जब अहंकार वासनाको त्यागकरे। तब उसपदको प्राप्त होगे जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं। इससे, हे भाई! यह जो जीवभाव अर्थात् जन्म, मरण, ऊर्ध्वजाना और फिर गिरना व्यवपार है उसमें बुद्धिवान् शोकवान् नहीं होते; वे दुःखकी निवृत्ति के अर्थ अपना स्वरूप स्मरण करते हैं जो भाव, अभाव और जरामरण विना नित्य शुद्ध परमानन्द हैं। तू उसको स्मरणकर, और मूढ़मतहो; तुझको न सुख है, न दुःख है; न जन्म है, न मरण है; न माताहै, न पिताहै; तू तो एक अद्वैत रूप आत्मा है और किसी से सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं है, हे साधु! यह जो

नानाप्रकार का संसार विषय संयुक्त यंत्र है इसको अज्ञानरूप नटुआ ग्रहण करता है और इष्ट अनिष्टसे बन्धायमान होताहै। जो आत्मदर्शी पुरुषहैं उनको कुछ क्रिया स्पर्श नहीं करती; वे केवल सुखरूप हैं और जो अज्ञानी हैं वे देह इन्द्रियोंके गुणोंमें तद्रूप होजाते हैं और इष्ट अनिष्टसे सुखदुःखके भोक्ता होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देखनेवाले साक्षीभूत होते हैं; करते हुयेभी अकर्त्तारूप हैं और इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में रागद्वेषसे रहित हैं। जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब आपड़ता है परन्तु दर्पणभले बुरेरङ्गसे रञ्जित नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् रागद्वेषसे रञ्जित नहीं होता। सब इच्छा और भयकलनासे रहितस्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है और पुत्र, कलत्र, बान्धवों के स्नेह से रहित है और उसका हृदय कमल सर्व इच्छा और अहंममसे रहित अपने स्वरूप में सन्तुष्टवान् होता है। इससे मिथ्या देहादिकोंकी भावनाको त्यागकर अपने नित्य, शुद्ध, शान्त और परमानन्द स्वरूप में तू भी स्थित हो। तू तो परब्रह्म और निर्मल रूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधोनामविंशतितमस्सर्गः २०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार पुण्यने पावन से बोध उपदेश किया तब पावन बोधवान् हुआ। तब दोनों ज्ञानवान्के पारगामी और निरिच्छित आनन्दित पुरुष होकर चिरकाल पर्यन्त विचरते रहे और फिर दोनों विदेहमुक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुये। जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही प्रारब्ध कर्मके क्षीणहुये दोनों विदेह मुक्तहुये। हे रामजी! इसीप्रकार तू भी जान। जैसे वे मित्र, बान्धव, धनादिकके स्नेहसे रहित होकर विचरे तैसेही तुमभी स्नेहसे रहित होकर विचरो और जैसे उन्होंने विचार कियाथा तैसेही तुम भी करो। इस मिथ्यारूप संसार में किसकी इच्छाकरे और किसका त्यागकरे; ऐसे विचारकर अनन्त इच्छा और तृष्णाका त्याग करना, यही औषधिहै;तृष्णाकी इच्छाका पालना औषधि नहीं क्योंकि; पालने से पूर्ण कदाचित् नहीं होती। जो कुछ जगत् है वह चित्तसे उत्पन्न हुआ है और चित्तके नष्ट हुये संसार दुःख नष्ट होजाता है। जैसे काष्ठके पानेसे अग्नि बढ़ता जाताहै और काष्ठसे रहित शान्त होजाताहै तैसेही चित्तकी चिन्तनासे जगत् विस्तार पाता है और चिन्तनासे रहित शान्त होजाताहै। हेरामजी! ध्येय वासनावान् त्यागरूपी रथपर आरूढ़होकर रहो, करुणादया और उदारता संयुक्त होकर लोगों में विचरो और इष्ट अनिष्ट में रागद्वेषसे रहितहो। यह ब्रह्मस्थिति मैंने तुमसे कही। निष्काम,निर्दोष औरस्वस्थरूपको पाकर फिर मोहको नहीं प्राप्तहोता। परम आकाशही इसका हृदयमात्र विवेक है और बुद्धि इसकी सखी है जिनकेनिकट विवेक और बुद्धि हैं वे परमव्यवहार करत भी सङ्कटको नहीं प्राप्त होते; इससे तुम

परम विवेक और बुद्धिका सङ्गलेकर जगत् में विचरोगे तब सङ्कट और दुःखसे मोहित न होगे। नानाप्रकारके दुःख, सङ्कट, स्नेह आदिक विकाररूप जो समुद्रहै उसके तरनेके निमित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोई उपाय नहीं सो धैर्य क्या है–दृश्यजगत्से वैराग्य और सत् शास्त्र का विचार। इन श्रेष्ठ गुणों के अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होती है। वह आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नों का भण्डार है। जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यसेभी नहीं प्राप्त होता वह वैराग्य, विचार, अभ्यास और चित्तके स्थिर करने से होता है। तबतक मनुष्य जगत् कोपमें उपजता है और मन तृष्णारूपी तापसे रहित नहीं होता तबतक कष्ट है और जब आत्मविवेकसे मनपूर्ण होताहै तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है। जैसे जूतीके पहिरनेसे सर्व पृथ्वीचर्म से वेष्टितसी होजाती है तैसेही पूर्ण पद इच्छा और तृष्णाके त्यागनेसे पाताहै। जैसे शरद्कालका आकाश मेघों से रहित निर्मल होता है तैसेही इच्छा से रहित पुरुष निर्मल होता है। जिनपुरुषोंके हृदय में आशा फुरती है उनके वशहुये चित्त शून्य होजाताहै और जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्रको पान किया था तब समुद्र जलसे रहित होगया था तैसेही आत्म जलसे रहित समुद्रवत् चित्त शून्य होजाताहै। जिसपुरुष के चित्तरूपी वृक्षमें तृष्णारूपी चञ्चल मर्कटी रहती है उसको वह स्थिर होने नहीं देती और सदा शोभायमान होती है और जिसका चित्त तृष्णासे रहितहै उस पुरुष को तीनों जगत् कमलकी कलीके समान होजाते हैं, योजनों के समूह गोपदवत् सुगम होजाते हैं और महाकल्प अर्द्ध निमेषवत् होजाता है। हेरामजी! चन्द्रमा और हिमालय पर्वतभी ऐसा शीतल नहीं और केलेका वृक्ष और चन्दनभी ऐसा शीतल नहीं जैसा शीतल चित्त तृष्णासे रहित होता है। पूर्णमासी का चन्द्रमा और क्षीर समुद्रभी ऐसा सुन्दर नहीं और लक्ष्मी का मुख भी ऐसानहीं जैसा इच्छासे रहित मन शोभायमान होताहै। जैसे चन्द्रमाकी प्रभाको मेघ ढांपलेताहै और शुद्धस्थानों को अपवित्र लेपन मलीन करता है तैसेही अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषोंको मलीन करतीहै। चित्तरूपी वृक्षके बड़े २ टास दिशा विदिशा में फैलरहे हैं सो आशारूपहैं; जब विवेकरूपी कुल्हाड़ेसे उनको काटेंगे तब अचित पदकी प्राप्तिहोगी और तभी एकस्थानरूपी चित्तरहेगा अविवेक और अधैर्य तृष्णा शाखा संयुक्तहैं उनकी अनेक शाखा फिरहोंगी इसलिये आत्म धैर्यकोधरो कि, चित्त की वृद्धि न हो। उत्तम धैर्यकरके जब चित्त नष्ट होजावेगा तब अविनाशी पद प्राप्त होगा। हे रामजी! उत्तम हृदय क्षेत्र में जब चित्तकी स्थिति होतीहै तब आशारूपी दृश्य नहीं उपजनदेती केवल ब्रह्मरूप शेष रहताहै। जब तुम्हाराचित्त वृत्तिसे रहित अचितरूपहोगा तबमोक्षरूप विस्तृतपद प्राप्तहोगा। चित्तरूपी उलूकपक्षीकी तृष्णा

रूपी स्त्री है। ऐसा पक्षी जहां विचरता है तहां अमङ्गल फैलाता है। जहां उलूक पक्षी विचरते हैं वहां उजाड़ होता है विवेकादि जिससे रहित होगये हैं ऐसे चित्तकी वृत्तिसे तुम रहित होरहो। ऐसे होकर विचरोगे तब अचिन्त्यपदको प्राप्तहोगे। जैसी जैसी वृत्ति फुरती है तैसाही तैसा रूप जीव होजाता है; इसकारण चित्त उपशम के निमित्त तुम वही वृत्ति धरो जिससे आत्मपदकी प्राप्ति हो। हे महात्मापुरुष! जिस को संसार के पदार्थोंकी इच्छा और ईर्षणा उपशम हुई है और जो भाव अभावसे मुक्त हुआ है वह उत्तमपद पाता है और जिसका चित्त आशारूपी फांसीसे बांधा है वह मुक्त कैसे हो? आशा संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता और सदा बन्धायमान रहता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामएकविंशतितमस्सर्गः२१

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको बुद्धिसे विचारो। रामजी बोले; हे भगवन्! सर्व धर्मोंकेवेत्ता! तुम्हारे प्रसादसे जो कुछ जानने योग्यथा वह मैंने जाना; पानेयोग्य पदपाया और निर्मलपदमें विश्राम किया भ्रमरूपी मेघसे रहित शरत्कालके आकाशवत् मेरा चित्त निर्मल हुआ है; मोहरूपी अहङ्कार नष्ट होगया है; अमृतसे हृदय पूर्णमासी के चन्द्रवत् शीतल हुआ है और संशय रूपी मेघ नष्ट होगया है परन्तु आपके वचनरूपी अमृतको पान करता मैं तृप्त नहीं होता। जिसप्रकार बलिको विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त हुआ है, बोधकी वृद्धिके निमित्त वह मुझसे ज्यों का त्यों कहिये। नम्रभूत शिष्यप्रति कहते हुये बड़े खेद नहीं मानते। वशिष्ठजी बोले; हे राघव! बलिकाजो उत्तम वृत्तान्तहै वह मैं कहताहूं सुनो; उससे निरन्तर बोध प्राप्त होगा। हे रामजी! इस जगत् के नीचे पाताल हैं। वह स्थान महाक्षीर समुद्रकीनाईं सुन्दर उज्ज्वलहै और वहां कहीं महासुन्दर नागकन्या विराजती हैं; कहीं विषधर सर्प, जिनके सहस्रशीश हैं विराजते हैं; कहीं दैत्यों के पुत्र रहते और कटकट शब्द करते हैं; कहीं सुन्दर सुखके स्थान हैं; कहीं जीवोंके परम्परा समूह नरकों में जलते हैं और कहीं दुर्गंधिके स्थान हैं। सातपाताल हैं उन सब में जीव स्थित हैं कहीं रत्नोंसे खचित स्थानहैं; कहीं कपिलदेवजी, जिनके चरण कमलोंपर देवता और दैत्य शीश धरते हैं, विराजते हैं और कहीं रत्नों के सुगन्धित बाग लगे हैं। ऐसी दो भुजाओं से पाली हुई पृथ्वी में दानवों में श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजाबलि रहताथा जिसने सर्व्व देवताओं और विद्याधरों और किन्नरोंको लीला करके जीता था और त्रिलोकी अपने वशकर छोड़ी थी। सब देवताओंका राजाइन्द्र उसके चरण सेवन की वांछा करता है; त्रिलोकी में जो जाति जातिके रत्न हैं वे सब उसके विद्यमानरहते हैं और सब शरीरोंकी रक्षा करने और भावना के धर्मों के धरने

वाले विष्णुदेव द्वारपाल हैं। ऐरावत हाथी जिसके गण्डस्थलसे मदझरता है उसकी वाणी सुन ऐसा भयवान् होता है जैसे मोरकीवाणी सुनकर सर्प भयवान् होताहै उस का ऐसा तेज था जैसे सप्तसमुद्रोंका जल कुहीड़ शोषलेती है और जैसे प्रलयकाल के द्वादश सूर्यों से समुद्र सूखने लगता है। उसने ऐसे यज्ञकरे जिसके क्षीर घृतकी आहुतीकाधुवां मेघ वादलहोकर पर्व्वतोंपर विराजा। जिसकी दृढ़ दृष्टि देखकर कुला-चल पर्व्वत भी नम्रीभूत होताथा। जैसे फूलोंसे पूर्णलता नमतीहै तैसेही लीला करके उसने भुवन को विस्तार सहित जीता और त्रिलोकी को जीतकर दशकोटि वर्ष पर्यंत राजावलि राज्य करता रहा। राजाबलिने युगों के समूह व्यतीत हुये देखे थे और अनेक देवता और दैत्य भी उपजते मिटते अनेक वार देखे थे। त्रिलोकी के अनेक भोग भी उसने भोगे थे निदान उनसे उद्वेग पाकर सुमेरु के शिखर पर एक ऊंचे झरोखे में अकेला जा बैठा और संसारकी स्थितिकी चिन्तना करनेलगा कि, इस वड़े चक्रवर्त्ती राज्य से मुझको क्या प्रयोजन है? यद्यपि त्रिलोकी का राज्य वड़ा है तौ भी इसमें आश्चर्य्य क्या है। इसमें मैं चिरकाल भोगभोगता रहाहूं परन्तु शांति न हुई। ये भोग उपजकर फिर नष्ट होजाते हैं, इन भोगों से मुझे शान्ति सुख प्राप्त नहीं हुआ पर वारम्वार मैं वही कर्म और वही व्यवहारकरताहूं और दिनरात्रि वही क्रिया करनेमें लज्जाभी नहीं आती। वही स्त्री आलिङ्गन करती, फिर भोजन करना; पुष्पोंकी शय्यापर शयन करना और क्रीड़ा करनी; ये कर्म वड़ोंको लज्जाके कारणहैं। वही निरस व्यवहार फिर करना जो एक वार निरस हुआ और उसकाल में तृप्त करताहै; फिर वारम्वार दिन२ करते हैं। यहमैं मानताहूं कि, यह काम बुद्धि-मानोंको हँसने योग्य और लज्जाका कारण है। जीवोंके चित्तमें वृथासङ्कल्प विकल्प उठतेहैं—जैसेसमुद्रमें तरङ्गउपजते औरमिटतेहैं तैसेही यहसङ्कल्प और इच्छा जाल जो उठते और मिटते हैं सो उन्मत्तकीनाईं जीवोंकी चेष्टाहै। यह तो हँसी करनेयोग्य वालकोंकी लीला है और मूर्खतासे अनर्थ फैलाती है। इसमें जो कुछवड़ा उदार फल हो वह मैं नहीं देखता वल्कि इसमें भोगोंसे भिन्नकार्य कुछनहीं मिलता इसलिये जो कुछ इससे रमणीय और अविनाशी हो उसको शीघ्रही चिन्तनकरूं। ऐसे विचार कर कहनेलगा कि, मैंने प्रथम भगवान् विरोचनसे पूछाथा। मेरापिता विरोचन आत्मतत्त्व का ज्ञाताथा और सर्वलोकोंमें गयाथा। उससे मैंने प्रश्नकियाथा कि, हे भगवन् महात्मन्! जहां सव दुःखों और सुखोंका अन्त होजाता है और सर्व भ्रम शान्त होजाताहै वह कौनस्थान है? वह पदमुझसे कहिये जहां मनका मोह नाश होजाताहै; सर्वइच्छासे मुक्त होताहै और रागद्वेपसे रहित जिसमें सर्वदा विश्राम होता है फिर कुछ क्षोभनहीं रहता। हेतात! वह कौनपदहै जिसके पायेसे और कुछ

पानानहीं रहता और जिसके देखे से और कुछ देखनानहीं रहता ? यद्यपि जगत्के अत्यन्त भोग पदार्थ हैं तौभी सुखदायक नहीं भासते हैं क्योंकि; क्षोभ करते हैं और उनसे योगीश्वरों के मनभी मोहित होकर गिर पड़ते हैं । हे तात ! जो सुख सुन्दर विस्तीर्ण आनन्द है वह मुझसे कहिये।उसमें स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेविरोचनबर्णनंनाम
द्वाविंशतितमस्सर्ग्गः २२॥

विरोचन बोले, हे पुत्र ! एक अतिविस्तीर्ण बिपुल देश है उसमें अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं । वहां समुद्र, जल, धारा, पर्वत, वन, तीर्थ, नदियां, तालाब, पृथ्वी, आकाश, नन्दनवन, पवन, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्यलोक, देश, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, कमलोंकी शोभा, काष्ठ, तृण, चर, अचर, दिशा, ऊर्ध्व, अध, मध्य, प्रकाश, तम, अहं, विष्णु, इन्द्र, रुद्रादिक नहींहैं;—केवल एकहीहै—जो महानूता नानाप्रकार प्रकाश को धरनेवाला है; सबका कर्त्ता, सर्व व्यापक है और सर्व रूप तूष्णीं भाव से स्थित है । उसने सब मंत्रियों सहित एक मंत्री सङ्कल्प किया। वह मंत्री जोन बने उसको शीघ्रही बना लेता है और जो बने उसको न बनाने काभी समर्थ है वह आप से कुछ नहीं भोगता और सब जाननें को समर्थ है । केवल राजा के अर्थ वह सर्व कार्यका कर्त्ता है । यद्यपि वह आप अज्ञ है तौभी राजा के बलसे तनुतासे ज्ञाता और कार्य करता है । यह सब कार्योंको करता है और उसका राजा एकतामें केवल अपने आप में स्थित है । बलिने पूंछा, हे प्रभो ! आधि—व्याधि दुःखोंसे रहित जो प्रकाशवान् है वह देश कौनहै, उसकी प्राप्ति किस साधनसे होती है और आगे किसने पाया है ? ऐसा मंत्री कौन है और वह महाबली राजा कौन है जो जगत् जाल संयुक्त हमने भी नहीं जीता ? हे देव ! यह अपूर्व आख्यान तुमने कहा है जो आगे मैंनें नहीं सुनाथा । मेरे हृदय आकाश में संशयरूपी बादल उदय हुआ है सो वचनरूपी पवनसे निवृत्तकरो । विरोचन बोले, हे पुत्र! उस देशका मंत्री भगवान् और अनेक कल्पके देवता और असुर गणों से वश नहीं होता; सहस्र नेत्र जो इन्द्र हैं उनके वशभी नहीं होता; यम, कुबेर उसे बश कर नहीं सक्ते और देवता और असुरों से भी जीता नहीं जाता । मुशल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग उसपर चलाये कुण्ठित होजाते हैं—जैसे पाषाण पर चलाये से कमल कुण्ठित होजाते हैं । वह मंत्री अस्त्र और शस्त्रसे वशनहीं होता और बड़े युद्ध कर्मों से भी नहींपाया जाता। देवता और दैत्य सबको उसने बश किया है; विष्णु पर्यंत देवता और हिरण्यकशिपु आदिक असुर उसने डाल दिये हैं । जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरु के कल्पवृक्षको गिरा देता है । प्रमादसे इस त्रिलोकीको बशकर चक्रवर्त्ती राजावत् वह स्थितहै और सुर

असुरों के समूह उससे भासते हैं। यद्यपि वह गुह्य और गुणहीन है तो भी दुर्मति, दुष्ट अहंकार और क्रोध उससे उदय होते हैं। देवता और दैत्यों के समूह फिर फिर उपजाता है सो इसकी क्रीड़ा है। ऐसा मंत्रोंसे संयुक्त मंत्री है। हे पुत्र! जब उसके राजाको वशकीजिये तब उसके मंत्रीको वशकरना सुगम होता है। राजाको वशकिये बिना मंत्री वश नहीं होता; कभी भीतर रहताहै कभी बाहर जाता है। जिसकाल में राजाकी इच्छाहोती है कि, मंत्री अपने को जीते तब यत्न बिना जीत लेता है। वह ऐसा बली मल्लहै जिससे तीनों जगत् उल्लासको प्राप्तहुये हैं वह मंत्री मानों सूर्य है जिसके उदयहुये से त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकाश को प्राप्तहोती है और जिसके लयहुये से जगत्रूपी कमललय होजाते हैं। हे पुत्र? यदि उसके जीतनेकी तुझको शक्ति है तब तो तू पराक्रमवान् है और यदि मोहसे रहित एकत्र बुद्धि हो उससे एकको जीतसकेगा तब तू धैर्यवान् है और तेरी सुन्दर वृत्तिहै क्योंकि; उसके जीतने से जो नहीं जीता उसपर जीतपाता है और जो उसको नहीं जीता पर और और लोक सब जीतेहैं तोभी जीते अजीत होजावेंगे। इसकारण जो तू अनन्त सुख चाहता है तो जो नित्य अविनाशी है उसके जीतने के निमित्त यत्नसे स्थित हो और बड़े कष्ट और चेष्टा करके भी उसको वशकर। देवता, दैत्य, यक्ष, मनुष्य, महासर्प और किन्नरों संयुक्त अतिबली हैं तोभी सर्वओर से यत्नकरने से वशहोते हैं। इससे उसको वश कर॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिवृत्तान्तविरोचन
गाधानामत्रयोविंशतितमस्सर्गः २३॥

बलिने पूछा, हे भगवन्! किसउपायसे वह जीताजाताहै और ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है और राजा कौनहै? यह वृत्तान्त सब मुझसे शीघ्रही कहिये कि, उपाय करूं। विरोचन बोले, हे पुत्र! स्थित हुआ भी त्यागने योग्य है। ऐसा मंत्री जिस उपाय से जीतिये सो भली प्रकार कहताहूं तू सुन। उस युक्ति के ग्रहण किये से शीघ्रही वश होताहै; युक्ति बिना वश नहीं होता। जैसे बालकको युक्तिसे वश करते हैं तैसेही जो पुरुष युक्ति से उस मंत्रीको वशकरता है उसको राजा का दर्शन होता है। और उससे परमपद पाता है। जब राजा का दर्शन होता है तब मंत्री वश हो जाता है और उस मंत्री के वश कियेसे फिर राजा का दर्शन होता है। जबतक राजा को न देखा तबतक मंत्री वश नहीं होता और जबतक मंत्री को वश नहीं किया तब तक राजाका दर्शन नहीं होता। राजा के देखे बिना मंत्रीका जीतना कठिन है और मंत्रीके जीतेबिना राजाको देखना कठिनहै। इसकारण दोनोंका इकट्ठा अभ्यासकर। राजाका दर्शन और मंत्री का जीतना अपने पुरुष प्रयत्न और शनैः शनैः अभ्यास

से होता है और दोनों के सम्पादन से मनुष्य शुभता को प्राप्तहोता है । जब तू अभ्यास करेगा तब उस देश को प्राप्तहोगा ; यह अभ्यास का फल है। हे दैत्यराज ! जब उसको पावेगा तब रंचक भी शोक तुझको न रहेगा और सब यत्नोंसे शान्त होकर नित्य प्रफुल्लित और प्रसन्न रहेगा । जो साधु जन हैं वे सर्व्व संशय से रहित उस देश में स्थित होते हैं। हे पुत्र ! सुन, वह देश अब मैं तुझसे प्रकट करके कहता हूं। देशनाम मोक्षकाहै जहां सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं और राजा उसदेशका आत्म भगवान्है जो सर्वपदोंसे अतीत है । उस महाराजाने मंत्री मनको कियाहै सो मन परिणामको पाकर सर्व ओरसे विश्वरूप हुआहै । जैसे मृत्तिकाका पिण्ड घटभाव को प्राप्तहुआहै और जैसे धूम्रबादलको धरताहै तैसेही मनने विश्वरूपधराहै । उसमन को जीतेसे सबसुख विश्वके जीतपाताहै। मनका जीतना कठिनहै परन्तु युक्तिसे वश होता है। बलिने पूछा, हे भगवन् ! उसमनके वश करने की युक्ति मुझसे कहिये। विरोचन बोले, हे पुत्र ! शब्द,स्पर्श,रूप, रस और गन्धके रसकी सर्वदा सर्वओरसे आस्था त्यागनी अर्थात् नाशवन्त और भ्रमरूप जानना,यही मनके जीतनेकीपरम युक्ति है । मनरूपी हाथी विषयरूपी मदसे मस्तहै वहइस युक्तिसे शीघ्रही दमन हो जाताहै । यह युक्ति कठिन है और अति दुःखसे प्राप्तहोती है परन्तु अभ्याससे सुखेनहीं प्राप्तहोजाती है । क्रमसे अभ्यासकियेसे और विरक्ततासे यहयुक्ति सर्वओरसे प्रकट होतीहै–जैसे रसवान् पृथ्वीसेलता उपजती हैं तैसेहीजो२शठजीवहैं वे इसकी वांछाकरते हैं परन्तु अभ्यासबिना उन्हेंनहीं प्राप्तहोती और अभ्यासवान् को प्रकट होती है । इससे तुमभी अभ्यास सहित युक्तिका आश्रयकरो । जबतक विषयोंसे विरक्ततानहीं उपजती तबतक संसाररूपी वनके दुःखोंमें भ्रमताहै पर विषयोंसे विरक्तता अभ्यासबिना किसीको नहीं प्राप्तहोती । जैसे अभ्यास बिना नहीं पहुंचता तैसेही जब आत्मा ध्येयको पुरुष निरन्तर धरता है तब अभ्यासवान्की वृत्ति विषयों में अप्रतीत होती है । जैसे जलके अभ्याससे बेलको सींचते हैं तब लतावृद्धि होतीहै; ऐसेही पुरुपार्थसे सब कार्योंकी प्राप्तिहोती है; भिन्न नहीं होता । यह निश्चयकिया है कि जो क्रिया आपसे आप करिये उसका फल अवश्य प्राप्तहोताहै। वही लोगोंमें देव कहाताहै । जो अवश्य होनाहै उसकी जो नीतिहै वह दूरनहीं होती उसेही देवशब्द कहिये वा नीतिकहिये पर अपनेही पुरुपार्थका फलपाताहै–जैसे मरुथलमें भ्रमसे जलभासता है और सम्यक्ज्ञान से भ्रमनिवृत्त होजाता है । इसदेव और नीतिको अपने पुरुपार्थसे जीतो । जैसा पुरुपार्थसे सङ्कल्प दृढ़ करताहै तैसाही भासता है । जैसे आकाशको नीलता ग्रहणकरती है पर वह नीलताकुछहै नहीं; तैसेही सुखदुःख देनेवाला और कोई नहीं;जैसा सङ्कल्प करताहै तैसाहीहो भासताहै और जैसी नीति

होतीहै तैसाही सङ्कल्प करताहै उसी नीति से मिलकर कदाचित् कर्म करताहै तो उससे इस जगत् कोशमें जीव शरीर धारकर फिरताहै—जैसे आकाश में पवन फिरता है पर वह कदाचित् नीतिसे और कदाचित् नीतिसे रहित फिरताहै; तैसेही दोनों सीढ़ियां मनमें होती हैं। आकाशरूपी मनमें नीति अनीति रूपी वायु फिरताहै इस कारण, जब तक मनहै तब तक नीतिहै और देवहै। मनसेरहित न नीतिहै, न देव है; मनके अस्त हुये जो है वही रहता है; तैसेही जीवपुरुषसे पुरुषार्थ कर जैसा संकल्प इस लोकमें दृढ़होता है सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता। हे पुत्र! अपने पुरुषार्थ विना यहां कुछ सिद्धनहीं होता; इससे परम पुरुषार्थ करके विषयसे विरक्त हो। जबतक विरक्तता नहीं उपजती तबतक परम सुखके देनेवाली मोक्षपदवी और संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्तहोता। जबतक विषयोंमें मोहकारणप्राप्ति है तब तक संसार दशा डोलायमान करती है; दुःखदायक होती है और सर्पकीनाईं विष फैलाती है; अभ्यासकिये विना निवृत्तनहीं होती। फिर बलिनेपूछा कि,हे सब असुरों के ईश्वर! चित्तमें भोगोंसे विरक्तता कैसे स्थितहोती है; जो जीवोंको दीर्घजीनेका कारणहै? विरोचन बोले; हे पुत्र! जैसे शरत्काल की महालतामें फूलसे फल परिपक्कहोता है तैसेही आत्मावलोकन करनेवाले पुरुषको भोगोंमें विरक्तता प्रकटहोती है। आत्माके देखनेसे विषयोंकी प्रीति निवृत्तहोजाती है और हृदयमें स्थिति प्राप्त होती है। जैसे कमलोंके उदरमें सुन्दरशोभा स्थितहोती है तसही बीजलक्ष्मी स्थित होती है। इससे सूक्ष्मबुद्धि विचारवेत्ताने आत्मदेवको देखकर विषयोंकी प्रीतिकी है उसे सबओरसे निवारो। प्रथम दिनके दोभाग भोग कर्म देहके कार्यकरो; एकभाग शास्त्रोंका श्रवण विचारकरो और एकभाग गुरुकीसेवा टहलकरो। जबकुछ विचार संयुक्त मनहो तब दोभाग वैराग्य संयुक्त शास्त्रोंको विचारो और दोभागध्यान और गुरूके पूजनमें रहो। इसक्रमसे जीव ज्ञानकथाके योग्यहोता है और क्रमसे निर्मल भावको ग्रहण करताहै; तब शनैश्शनैः उत्तमपदको भावनाहोती है। इसप्रकार शास्त्रों के अर्थ विचारमें चित्तरूपी बालकको परचावो। जब परमात्मामें ज्ञान प्राप्तहोता है तबकर्म फांसीसे छूटजाता है। जैसे चन्द्रमाके उदयहुये चन्द्रकान्त मणि द्रवीभूत होताहै तैसेही वह शीतलहो विराजताहै। बुद्धिके विचारसे सर्वदा सम और आत्मदृष्टि देखनी और तृष्णाका बन्धन त्यागना यह परस्पर कारण हैं। परमात्मा के देखने से तृष्णा दूर होजाती है और तृष्णाके त्याग से आत्माका दर्शन होता है। जैसे नौका को केवट लेजाता है और नौका केवटको लेजाती है तैसेही परमात्मा का दर्शन होता है और भोगों का त्याग होताहै। परब्रह्म में जो अनन्त विश्रान्ति नित्य उदय होती है सो मोक्षरूप आनन्द उदय होता है उसका अभाव कदाचित्

नहीं होता । जीवों को आनन्द आत्मविश्रान्ति के सिवा न तपों से प्राप्तहोता न दानों से प्राप्त होता है और न तीर्थोंसे प्राप्तहोता है । जब आत्मस्वभावका दर्शन होता है तब भोगों से विरक्तता उपजती है पर आत्मस्वभावका दर्शन अपने प्रयत्न विना और किसी युक्ति से नहीं प्राप्तहोता है । हे पुत्र ! भोगोंके त्यागकरने और परमार्थ दर्शनके यत्न करने से ब्रह्मपद में विश्रान्त और परमानन्द मोक्षको प्राप्त होताहै । ब्रह्मासे आदिकाष्ठ पर्य्यन्तको इसजगत्में ऐसा आनन्द कोईनहीं जैसापरमात्मामें स्थित हुयेसेहै । इससे तुम पुरुष प्रयत्नका आश्रयकरो और दैवको दूरसे त्यागो । इसमार्गके रोकनेवाले भोगहैं, उनकी निन्दा बुद्धिवान् करतेहैं । जब भोगों की निन्दा दृढ़होती है तब विचार उपजताहै–जैसे वर्षाकाल गयेसे शरत्कालकी सर्व दिशा निर्मलहोजाती हैं तैसेही भोगोंकी निन्दासे विचार और विचारसे भोगों की निन्दा परस्परहोती हैं जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम्रउदय होता है और बादल रूपहो वर्षाकर फिर समुद्रको पूर्ण करता है और जैसे मित्रआपसे परस्पर कार्य्य सिद्ध करदेता है । इससे प्रथम तो दैवका अनादर करो और पुरुष प्रयत्न करके दांतोंसे दांतोंको पीसकर भोगोंकी प्रीतित्यागो और फिर पुरुषार्थसे प्रथम अविरोध उपजावो और उसे अपने गुणवान् जन्म और कल्याणमूर्त्ति को अर्पणकरो और भोगोंसे असङ्ग होकर उनकी निन्दाकरो तब विचार उपजेगा । फिर शास्त्रज्ञान को संग्रहकरो तब परमपद की प्राप्तिहोगी । हे दैत्यराज ! समयपाकर जब तू विषयोंसे विरक्तचित्त होगा तब विचारके वशसे परमपद पावेगा । अपने आपमें जो पावन पद है उसमें तब तू भलीप्रकार अत्यन्त विश्राम पावेगा और फिर कल्पना दुःखमें न गिरेगा । अङ्ग और देशाचारके कर्मसे अल्पधन उपजाना फिर निन्दासे उसे साधूके सङ्ग लगाना । उनके सङ्गसे वैराग्य और विचार संयुक्तहुये तुझको आत्मलाभ होगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलोपाख्यानेचित्तचिकित्सो
पदेशोनामचतुर्विंशतितमस्सर्गः २४ ॥

बलिने विचारकिया कि,इस प्रकार मुझसे पूर्व पिताने कहाथा । अबमैं स्मृतिदृष्टि से प्रसन्नहुआ हूं और भोगोंसे विरक्तता उपजी है कि,इसलिये शान्त और सम,निर्मल, अमृतरूपी, शीतल सुखमें स्थितहोऊं । धनएकत्र होता है और नाश होजाता है फिर आशा उपजती है और फिर धनसे पूर्णहोता है;फिर स्त्रियोंकी वांछा उपजतीहै और फिर उन्हें अङ्गीकार करता है । अब मैं विभूतिकी स्थितिसे खेदवान् हुआहूं । अहो आश्चर्य है कि, इस रमणीय पृथ्वी से अब मैं सम शीतल चित्तहोता हूं और दुःख सुखसे रहित सर्वशांतिको प्राप्त होताहूं । जैसे चन्द्रमाके मण्डलमें स्थित हुआ समशीतल होता है तैसेही भीतरसे मैं हर्षवान् और शीतल होताहूं ।दुःखरूपी

विभूति ऐश्वर्यसे रहितहो अब मैं अक्षोभहूं।। यहसब मनरूपी बालककी दिनदिन प्रतिकला है। प्रथम मैं स्त्रीसे चिढ़ताथा फिर मोहसे मेरीप्रीति बढ़गई थी; जोकुछ दृष्टिसे देखने योग्यथा वह मैंने देखा है; जोकुछ भोगने योग्यथा वह चिरकाल पर्यन्त अखण्ड भोगा है और सर्वभूतजातों को वशकररहाहूं पर उससेक्या शोभनीकहुआ। फिर २ उनमें वहीचेष्टा से और और देखे,इससे चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता फिर २ जगत्के वही पदार्थहैं। इससे अपनी बुद्धिसे इनका निश्चय त्यागकर पूर्णस-मुद्रवत् अपने आपसे आपमें स्वच्छ,स्वस्थ और स्थितहूं। पाताल,पृथ्वी और स्वर्ग में, जो स्त्री और रत्न, पन्नगादिक सार हैं वे भी तुच्छहैं, समयपाकर उन्हें कालग्रास लेता है। इतनेकाल पर्यन्त मैं बालकथा और जो तुच्छ पदार्थ मनके रचेहुये हैं उनकी इच्छासे दुःखकर देवतोंकेसाथ द्वेष करताथा। उनके दुःखोंके त्यागनेसे क्या माहात्म्य का अनर्थहोगा? बड़ा कष्टहै कि,मैंने चिरकाल अनर्थमें अर्थ बुद्धिकीथी; अज्ञानरू-पी मदसे मतवाला था और चञ्चल तृष्णासे इस जगत्में क्यानहीं किया। जो कार्य पीछे ताप बढ़ाते हैं वहीमैंने किये हैं पर अबपूर्व तुच्छ चिन्तासे मुझकोक्याहै। वर्त्तमा-न चिकित्सा पुरुषार्थसे सुफल होगा। जैसे समुद्र मथनेसे अमृत प्रकटभयाहै तैसे-ही अपरमित रूप आत्माकी भावनासे अब सब ओरसे सुखहोगा। मैंकौनहूं; और आत्माके दर्शनकी युक्ति गुरुसे पूछूंगा।इसलिये अब मैं अज्ञानके नाश निमित्त शुक्र भगवान् का चिन्तनकरूं;वह जो प्रसन्नहोकर उपदेश करेगा उससे अनन्त विभव अपने आपमें आपसे स्थितहोगा और निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयमें फैलेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिचिन्तासिद्धांतोपदेशं
नामपंचविंशस्सर्गः २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार चिन्तन करके बलिने नेत्रोंको मूंदा और शुक्रजी जिनका आकाशमें मन्दिर है और जो सर्वत्र पूर्ण चिन्मात्र तत्त्व के ध्यान में स्थित हैं आवाहनरूप ध्यानकिया; और शुक्रजीने जाना कि, हमारे शिष्य बलिने हमारा ध्यानकियाहै। तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपनी देह वहांलेआये जहां रत्नके झरोखे में बलिबैठाथा और बलि उज्ज्वल और प्रभारूप गुरुको देखकर उठा और जैसे सूर्य्यमुखी कमल सूर्य्यकोदेखकर प्रफुल्लित होते हैं तैसेही उनकाचित्तप्रफुल्लित होगया। तब उसने रत्न अर्घ्य पुष्पोंसे चरणवन्दनाकी और रत्नों से अर्घ दिया और बड़े सिंहासन पर बैठाकर कहा, हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे मेरे हृदयमें जो प्रतिभा उठती है वह स्थिर होकर मुझको प्रश्नमें लगातीहै। अब मैं उन भोगोंसे जो मोहके देनेवाले हैं विरक्तहुआहूं और तत्त्वज्ञानकी इच्छा करताहूं जिससे महामोह निवृत्त हो। इसब्रह्माण्ड में स्थिर वस्तु कौनहै और उसका कितना प्रमाण है? इन्द्र क्या है

और अहंक्याहै ? मैंकौनहूं ? तुमकौनहो और यहलोकक्याहै? इनप्रश्नोंका उत्तर कृपा करके कहिये। शुक्र बोले, हे दैत्यराज! बहुतकहनेसेक्याहै; मैं आकाशमें जानाचाहता हूं इससे सबका सारसंक्षेप से मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो। जो चेतनतत्त्व और बिस्तृतरूप है वह सब चेतनमात्र है और चैतनहीं प्रमाण है। तूभी चैतन स्वरूप है, मैंभी चैतनहूं और यह लोकभी चैतनरूप है। यही सबका सार है। इसनिश्चय को हृदयमें दृढ़कर धारोगे तब निर्मल निश्चयात्मकबुद्धिसे अपनेको आपसे देखोगे और उससे विश्रान्तिवान् होगे। हे राजन्! यदि तुम कल्याण मूर्त्तिहो तो इसी कहने से सबसिद्धान्तको प्राप्त होगे और सबका सार जो चिदात्माहै उसको पावोगे और यदि कल्याणमूर्त्ति नहींहो तो फिर कहनाभी निरर्थक होता है। चैतनको जो चैत्यकलाका सम्बन्ध है वही बन्धन है। इससे जो मुक्तहै वही मुक्तहै। आत्मतत्त्व चैतन स्वरूप चैत्यकलनासे रहित है। यह सब सिद्धान्तोंका संग्रह है। हे राजन्! इस निश्चयको धारो और निर्मल बुद्धिसे अपने आपसे आपको देखो; यही आत्मपदकी प्राप्ति है। सप्तऋषियों से देवताओं का कोई कार्य है उस निमित्त में अब आकाश जाताहूं। जबतक यह देह है तबतक मुक्त बुद्धिको यथा प्राप्त कार्य त्यागनेसे योग्यनहीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर शुक्र बड़ेवेगसे आकाशमें चले और जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठकर लीन होजावें तैसेही शुक्रजी अन्तर्द्धान होगये॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलोपदेशोनामषड्विंशतितमस्सर्गः २६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवता और दैत्योंके पूजनेयोग्य शुक्रकेगयेसे बलवानों में श्रेष्ठ बलि मनमें विचारनेलगा कि, भगवान् शुक्रजी यहक्या कहगये कि, त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है; मैंभी चैतनहूं, दिशाभी चैतनरूपहैं; परमार्थसे आदि जो सत्स्वरूप है वहभी चैतन उससे भिन्ननहीं; यह जो सूर्य है उस में चैतन होनेसेही सूर्यत्वभाव भासता है और यह जो भूमि है उसको चैतन न चेते तो इसमें भूमित्वभाव नहीं। यह जो दशोंदिशा हैं यदि इनको चैतन न चेते तो दिशा में दिशात्वभाव न रहे; पर्वत में पर्वतता भी चेतन बिना नहीं; इस जगत् में जगत्भाव; आकाश में आकाशता; शरीर में लक्षणभी चैतनबिना न पाइयेगा; इन्द्रियांभी चैतन हैं; मनभी चैतन हैं; भीतर बाहर सब चैतन है और चिदात्माही अहंत्वंभाव रूप होकर स्थित है। चैतन मैंहूं; सबइन्द्रियों संयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करताहूं और कदाचित् कुछ नहीं किया। काष्ठलोष्ठ तुल्य शरीरसे मेराक्याहै ? मैंतो संपूर्ण जगत्में आत्मा चैतनहूं और आकाशमें भी एक मैं आत्माहूं। सूर्य और भूत, पिञ्जर, देवता, दैत्य और स्थावर-जङ्गम सबका चैतन आत्मा एक अद्वैत चैतन है और द्वैतकलना नहीं। बस यदि इस लोकमें द्वैतका असम्भव है तो शत्रु कौनहै और मित्र किसको कहिये ? जिस शरीर

का नामवलि है उसका शिरकाटा तो आत्मा का क्याकाटा ? सबलोगों में आत्मा पूर्ण है पर जब चित्त दुःखचेतता है तब दुःखी होता है चेतने बिना दुःख नहीं पाता। इसकारण जो दुःखदायक भाव-अभाव पदार्थ भासते हैं वे सर्व आत्मरूप हैं, चैतन तत्त्वसे भिन्न कुछ नहीं। सब ओरसे आत्मा पूर्ण है, आत्मासे भिन्न जगत्का कुछ व्यवहार नहीं। न कोई दुःखहै;न कोई रोगहै; न मनहै; न मनकी वृत्ति है; एक शुद्ध चैतनमात्र आत्मातत्त्व है और विकल्प कलना कोई नहीं। सब ओरसे चैतन स्वरूप, व्यापक, नित्य आनन्द, अद्वैत, सबसे अतीत और अंशांशीभाव से रहित चैतनसत्ता व्यापक है। चैतन आदिक नामसे भी मैं रहितहूं वे चैतन आदिक नामभी मेरे व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं। चैतन जो आत्माकी स्फुरन शक्ति है वही विस्तारमें जगत्रूप होकर भासती है;द्रष्टा, दर्शनसे मुक्त केवल अद्वैतरूप है और प्रकाश प्रकाशक भावसे रहित निराभास द्रष्टा परमेश्वररूपहूं। न मैं कर्त्ताहूं और न मैं भोक्ताहूं; मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप कलना कलंकसे रहितहूं। इनसे परेहूं और यह स्वरूपभी मैंहूं। यह मेरेमें आभासमात्र है और मैं उदित नित्य और आभास सेभी रहित एक प्रकाशरूपहूं। स्वरूपा होनेसे मेराचित्त दृश्यके रागसे रहित मुक्त-रूपहै। प्रत्यक्ष चैतन जो मेरास्वरूप है उसको नमस्कार है। चित्त दृश्यसे रहित है और युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूपमैंहूं, मुझको नमस्कारहै। मैं चित्तसे रहित चैतनहूं;सब ओरसे शान्तरूपहूं;फुरनेसे रहितहूं और आकाशकी नाईं अनन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म; दुःख सुखसे मुक्त और संवेदनसे रहित असंवेदनरूपहूं। मैं चैत्यसे रहित चैतनहूं, जगत्के भाव अभाव पदार्थ मुझको नहीं छेदसक्ते। अथवा यह जगत् के पदार्थ छेदते हैं वह भी मुझसे भिन्ननहीं क्योंकि, छेदमैंहूं और छेदनेवाला मैंहूं। स्वभाव भूत वस्तु से वस्तु ग्रहणहोती है अथवा नहींहोती तौभी किससे किसका नाशहो; मैं सर्वदा, सर्वप्रकार सर्व शक्तिरूप हूं ; सङ्कल्प विकल्पसे अब क्या है। मैं एकही चैतन अजड़रूप होकर प्रकाशता हूं। जोकुछ जगत्जाल है वहसब मैंहींहूं मुझसे भिन्नकुछ नहीं। इतनाकहि वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इसप्रकार तत्त्व के वेत्ता राजा बलि ने विचारा तब ओंकारकी अर्द्धमात्रा तुरीयापद की भावनासे ध्यान में स्थित हुआ और उसके सङ्कल्प भलीप्रकार शान्त होगये। वह सब कलना और चित्त चैत्यसे रहित निःसंग होकर स्थित हुआ और ध्याता जो है अहं-कार; ध्यान जो है मनकी वृत्ति और ध्येय जिसको ध्याताथा तीनों से रहितहुआ और मनसे सब वासना नष्ट होगई। जैसे वायु से रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है तैसेही बलि शान्तरूप पदको प्राप्त हुआ और रत्नों के झरोखे में बैठे दीर्घ काल बीत गया। जैसे स्तम्भ में पुतली हो तैसेही सर्व्व ईषणा से रहित वह समाधि में

स्थित रहा और सब क्षोभ, दुःख, विघ्न से रहित निर्म्मलचित्त, शरत्काल के आकाशवत् होरहा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिविश्रान्तवर्णनंनामसप्तविंशतितमस्सर्गः २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार दैत्यराज बहुतकाल पर्य्यंत समाधि में बैठारहा तब बान्धव, मित्र, टहलुये, मंत्री रत्नोंके झरोखे में देखने चले कि, राजा को क्या हुआ। ऐसा विचारकर उन्हों ने किवाड़ोंको खोला और ऊपर चढ़े। यक्ष, विद्याधर और नाग एक ओर खड़ेरहे और रंभा और तिलोत्तमादिक अप्सरा गण हाथों में चमरले खड़ीहुईं और नदियां, समुद्र, पर्वत आदिक मूर्त्ति धारकर और रत्न आदिक भेंटलेकर सब प्रणाम के निमित्त खड़ेहुये और त्रिलोकी के उदरवर्त्ती जो कुछथे वे सब आये पर राजाबलि ध्यान में ऐसा स्थित था मानों चित्रकी मूर्त्ति लिखीहै और पर्वतवत् स्थित है। उसको देखकर सब दैत्योंने प्रणाम किया; कोई उसे देखकर शोकवान् हुये, कोई आश्चर्यवान्, कोई आनन्दवान् हुये और कोई भयको प्राप्तहुये। तब मंत्री विचारने लगे कि राजाकी क्या दशाहुई है। इसलिये उसने शुक्रजीका ध्यानकिया और भार्गव मुनि झरोखे में आये। उनको देखकर दैत्यगणोंने पूजनकिया और बड़े सिंहासन पर गुरूको बैठाया बलिको ध्यानस्थित देखकर शुक्रजी अति प्रसन्नहुये कि, जो पद मैंने उपदेश किया था। उस में इसने विश्रामपाया है इसका भ्रम अब नष्टहुआ है और क्षीरसमुद्रवत् प्रकाश है। ऐसे देखकर शुक्रजी ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि, दैत्यराजने विचार करके निर्मल आत्मप्रकाश पायाहै। अब भगवान् सिद्धहुआ है और अपने स्वरूप में जो सब दुःखोंसे रहितपद है उस में यह स्थितहुआ है और चिन्ता भ्रम इसका क्षीण हुआ है। अब इसको मतजगाओ। यह आत्मज्ञानको प्राप्तहुआ है औरयत्न और क्लेश इसका दूर होगया है। जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाताहै। अब मैं इसको नहीं जगाता यह आपही दिव्यवर्ष में जागेगा क्योंकि,प्रारब्ध अंकुर इसकारहता है और उठकर अपना राज कार्य करेगा। अब तुम इसको मतजगाओ, अपने राजकार्य में जा लगो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजी ने कहा तब सब सुनकर सूखे वृक्षकी मंजरी ऐसेहोगये और शुक्रजी अन्तर्द्धान होगये। दैत्यभी अपने राजा विरोचन की सभामें जाकर अपने२ व्यवहार में लगे और खेचर, भूचर और पातालवासी अपने २ स्थानमें गये और देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग,किन्नर, गन्धर्व सब अपने २ व्यवहारमें जालगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिविज्ञानप्राप्ति नामअष्टविंशतितमस्सर्गः २८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब सहस्र दिव्यवर्ष व्यतीत हुये तब दैत्यराज समाधिसे उतरे; नौबत नगारे बाजनेलगे; देवता और दैत्य बड़े जय जय शब्दकरने लगे नगरवासी देखकर बड़े प्रसन्न हुये और जैसे सूर्यके उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही खिलआये। जबतक दैत्य न आये थे तबतक राजाने विचारा कि, बड़ा आश्चर्य है कि, परमपद जो ऐसी रमणीय, शान्तरूप और शीतल पदवी है उसमें स्थितहोकर मैंने परम विश्रामपायाहै। इससे फिर उसीपदका आश्रयकरूं और उसीमें स्थित होऊं राज्य विभूतिसे मेरा क्या प्रयोजनहै ऐसा आनन्द शीतलचन्द्रमा के मण्डल में भी नहीं होता जैसा अनुभव में स्थित हुये से पाया जाता है। हे रामजी ! इसप्रकार चिन्तन कर वह फिर समाधि करने लगा कि, जिससे गलित मन हो। तब दैत्योंकी सेना, मंत्री, भृत्य, बांधवोंने आनकर उनको घेरलिया और जैसे चन्द्रमाको मेघ घेर लेता है तैसेही घेर करके प्रणाम करने लगे। बलिराजने मन में विचारा कि, मुझको त्यागने और ग्रहण करने योग्य क्या है; त्याग उसका करना चाहिये जो अनिष्ट और दुःखदायक हो और ग्रहण उसका कीजिये जो आगे न हो पर आत्मासे व्यतिरेक कुछ नहीं उस में ग्रहण और त्याग किसका करूं। मोक्षकी इच्छाभी मैं किसकारण करूं, क्योंकि; जो बंध होता है तो मोक्षकी इच्छा करता है सो जब बंधही नहीं तो मोक्षकी इच्छा कैसे हो ? यह बंध और मोक्ष बालकोंको क्रीड़ा कही है वास्तवमें न बंध है, न मोक्ष है। यह कल्पनाभी मूढ़ता में है सो मूढ़ता तो मेरी नष्ट हुई है; अब मुझको ध्यान विलाससे क्या प्रयोजनहै और ध्यानसे क्याहै। अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है और न कुछ ध्यानसे प्रयोजन है अर्थात् न विदेह मुक्तकी इच्छा है, न जगत् में स्थित रहनेकी इच्छा है; न मैं मरताहूं; न जीता हूं; न सत्यहूं; न असत्यहूं; न समहूं, न विषमहूं; न कोई मेरा है और न कोई और है; अद्वैतरूप मैं एक आत्माहूं सो मुझको नमस्कार है। इस राजक्रिया में मैं स्थितहूं तो भी आत्मपद कार्य्य में स्थितहूं; और सदा शीतलहूं। ध्यानदिशासे मुझको सिद्धता नहीं और न राजकार्य्य विभूतिसे कुछ सिद्ध होना है। इससे राजकार्य्य से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं; मैं आकाशवत्ही रह[illegible] मैं न कुछ इच्छा करूंगा, न त्यागकरूंगा तो भी मेरा कुछसिद्ध नहीं होता इससे जे[illegible] प्रकृत आचारहै उसी को मैं करूं। बंधनका कारण अज्ञान है सोतो नष्ट हुआ [illegible] अब कोई क्रिया मुझको बंधनरूप नहीं। हे रामजी ! इसीप्रकार निर्णय करके ब[illegible] दैत्योंकी ओर देखा तब देवता और दैत्योंने शीशसे प्रणाम किया और राजाने दृष्टि करके उनकी प्रणाम वन्दना अङ्गीकार की। तब राजाबलिने ध्येय वासनाको मनसे त्यागकिया और राज्य के कार्य्य करनेलगा। ब्राह्मण, देवता और गुरुका पूर्ववत् पूजन किया, जो कोईअर्थी

और मित्र, बांधव टहलुये थे उनका अर्थ पूर्ण किया; स्त्रियों को नानाप्रकारके वस्त्र आभूषणदिये और जो दण्डदेनेयोग्यथे उनको दण्डदिया । फिरउसने यज्ञका आरम्भ करके सुरगणों का पूजन किया और शुक्रजीसे आदिले मुख्य २ देवता यज्ञ कराने के निमित्त बैठे । फिर विष्णु भगवान् ने इन्द्रके अर्थ सिद्ध करनेके निमित्त छल करके बलिराजाको वञ्चित करलिया और बांधकर पातालमें स्थित किया । वह आगे इन्द्र होगा अब जीवन्मुक्त, स्वस्थवपु, सदा ध्यानस्थित और इषणासे रहित पुरुष पाताल में है । हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष राजाबलि सम्पदा और आपदामें सम चित्त विचरता है; वह सम्पदामें हर्ष नहीं करता और आपदा में शोक नहीं करता । अनेक जीवोंको उपजना और लयहोना बलिने देखा है; दश करोड़ वर्ष पर्यन्त तीनों लोकों का कार्य्य किया और बड़े विषय भोग भोगे हैं । अन्त में भोगों को विरस जानकर उसका मन विरस हुआ, विचार कियेसे तृष्णा नष्ट होगई और मन उपशम हुआ । हेयोपादेयकी नानाप्रकारकी चेष्टा बलिने देखीं पर पदार्थोंके भाव अभाव में मन शान्तिको न प्राप्त हुआ । अब भोगोंकी अभिलाषा त्याग आत्मारामी हो नित्य स्वरूपमें स्थित पातालमें विराजता है । हे रामजी ! इस बलिको फिर इस जगत्का इन्द्र होनाहै और सम्पूर्ण जगत्का कार्य्य करना है वह अनेक वर्ष आज्ञा चलावेगा परन्तु इन्द्रपदको पाकर भी तुष्टवान् न होगा और अपने ऐश्वर्य्यपदके गिरने से खेदवान् भी न होगा और सब पदार्थों और विभूतियों के उदय और अस्तमें अमरहोगा । यह बलिकी विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तान्त कहाहै । इसी दृष्टिका आश्रय करके तुम भी स्थितहो और बलिकीनाई अपने विवेक से नित्य तृप्ति आत्मनिश्चयको धारो कि, सर्व्व मैंहीहूं । इस निश्चयसे निर्द्वन्द्व और परमपद प्राप्त होगा । हे रामजी ! दश करोड़ वर्ष तीन लोकोंका राज्य बलिने भोगा और अन्तमें विरक्त हुआ तैसेही तुम भी भोगों से विरक्त होजावो । ये भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागकर परमपद में प्राप्त होजाओ । यह जो दृश्य प्रपञ्च नानाप्रकार के विकार संयुक्त भासता है वह न कोई तेराहै और न तू किसीका है । जैसे पर्व्वत और शिला में बड़ा भेद है तैसेही जिस पुरुषका मन संसारकीओर धावताहै वह मनकी वृत्ति में डूबताहै । जब तुम मनको हृदय में धरोगे तब सब जगत्का प्रकाश होगा । तुम आत्मस्वरूपहो तो अपना क्या और पराया क्या—यह सब मिथ्या कल्पनाहै । तुम सबके आदि पुरुषोत्तम हो, तुमहीं साकाररूप पदार्थ और तुमहीं सबओर पूर्ण और सब जगत्में चेतनरूपहो। और स्थावर—जंगम जगत् सब तुममें पिरोया है—जैसे सूतमें मालाके दाने पिरोये हैं। तुम नित्यशुद्ध, उदित, बोधस्वरूप और भ्रान्तिसे रहितहो । जन्म आदिक सर्व्व रोग के नाश निमित्त आत्मविचार करके बलात्कार से भोगों का त्यागकर सर्व्व के

भोक्ता होजाओ। तुम केवल स्वरूप जगत्के नाथ हो और चैतन्य सूर्य्य प्रकाशरूप सर्व्वदा स्थित हो। सर्व्व जगत् तुम्हारे प्रकाश से प्रकाशता है और सुख दुःख की कल्पना तुम्हारे में कोई नहीं। तुम तो शुद्ध, सर्व्वात्मा और सर्व्व प्रकाशक हो; इष्ट अनिष्टको त्याग करके केवल अपने स्वरूपमें स्थितहो। इष्ट अनिष्टके त्यागसे निरन्तर सत्यता उदय होती है उस सत्यता को हृदय में धार फिर जन्म मरण भी नहीं आता। जिस२ पदार्थ में मन लगे उससे निकालकर आत्मतत्त्व में लगाओ। जब इसप्रकार तुम दृढ़ अभ्यास करोगे तव मन जो उन्मत्तहाथी है वह बांधा जावेगा और तभी सर्व्व सिद्धान्तके परमसारको प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम मूढ़ोंकी नाईं मत हो। क्योंकि, मूढ़ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है। मिथ्या चेष्टासे जिनकी बुद्धि नष्ट हुई है और अविद्यारूपी धूर्त्त से विके हैं उनके तुल्य न होना। यह जगत् अणुमात्र भी कुछ नहीं है। पर वड़ा विस्ताररूपी जो दृष्ट आता है सो निर्णय से देखा है कि, मूढ़तासे भासितहुआ है। मूढ़ता परमदुःखरूप है, इससे अधिक दुःख कोई नहीं। आत्मारूपी सूर्य्यके आगे आवरणकर्त्ता जो अज्ञानरूपी मेघ है उसको विवेकरूपी पवनसे नाशकरो तव आत्माका साक्षात्कार होगा। आत्म विचार के अभ्यास और विषयोंसे वैराग्यविना आत्माका साक्षात् कार नहीं होता। वेदरूप वेदान्तशास्त्र जो दृष्टान्त और तर्कयुक्तहै उनसे भी अपने विचार विना साक्षात्कार नहीं होता। आत्मविचार और पुरुषार्थ से आत्माकी प्रसन्नता होतीहै और बुद्धिकी निर्मलता और बोधसे प्राप्तहोती है। इससे सङ्कल्पविकल्पसे रहितहोकर चेतनतत्त्व में स्थितहोजाओ। विस्तृत और व्यापकरूप आत्मतत्त्वकी स्थिति मेरे वचनों से ग्रहण करके सव सङ्कल्प तुम्हारे लीनहोगये हैं; संवेदनरूपी भ्रमशांत हुआ है और संसार कौतुकरूपी कुहिरा तुम्हारा नष्टहुआ है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनामएकोनत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २९॥

वशिष्ठजी वोले, हे रामजी! अवतुम विज्ञानप्राप्तिके निमित्त और क्रमसुनो जैसे दैत्य असुर प्रह्लादको आत्माकी सिद्धताहुई तैसे तुमभी होजाओ। पाताल में एक हिरण्यकशिपु दैत्य महाबलिष्ठहुआहै जिसने इन्द्रभगायेथे और विष्णुजीके सम उसका पराक्रमथा। सम्पूर्ण भुवन उसने वशकरछोड़े थे और सर्व देवता और दैत्यों को वशकरके जगत्का कार्य्यकरता था। वह दैत्यों और तीनोंभुवनों का ईश्वरहुआ और समयपाकर कई पुत्र उत्पन्नकिये—जैसे वसन्तऋतु अंकुर उत्पन्न करती है। उस के पुत्रों में वड़ापुत्र प्रह्लाद सबसे अधिक प्रकाशवान्हुआ और तिसपुत्रसे हिरण्यकशिपु ऐसा शोभितहुआ जैसे सर्व्व सुन्दरलतासे वसन्तऋतु शोभितहै। जैसे प्रलय

कालमें सूर्य सब लोकोंको तपाताहै तैसेही वह सबको तपानेलगा। जब दुष्टक्रीड़ासे देवताओंको दैत्य दुःख देनेलगे तब सब देवतामिलकर विष्णुकी शरणगये और विनतीकी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है इसका नाशकरो और हमारी रक्षाकरो। बारम्बार दुखावने से महा पुरुषभी क्रोधवान् होजाते हैं। हे रामजी ! जब इसप्रकार देवताओंने प्रार्थनाकी तब विष्णुदेवने कहा अब तुमजाओ मैं उसको पुत्रके हेतुसे मारूंगा। ऐसे कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान होगये और हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्य्यकी शिक्षा प्रह्लादको देनेलगा परन्तु वह ग्रहण न करे और बहुतप्रकार ताड़नाभी दे तौभी उसकी शिक्षाको प्रह्लाद अङ्गीकार न करे। वह ईश्वर विष्णुजी की आराधनामें रहताथा इसकारण ताड़नाका दुःख प्रह्लादको कुछ न हो। तबदैत्य अपने हाथमें खड्गलेकर कहनेलगा कि, हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है ? मेरे सिवा ईश्वर और कौन है ? प्रह्लादने कहा मेराईश्वर सर्वव्यापकहै। तब हिरण्यकशिपुने कहा इसखम्भे में कहां है ? जो है तो दिखादे और यदि न दिखावेगा तो तुझको मारूंगा। तब सर्वव्यापक विष्णु खम्भेसे भासनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे। फिर उस खम्भेको फोड़कर बड़ीभुजा और तीक्ष्णनखों के संयुक्त महाभयानकरूपसे विष्णुभगवान् ने नरसिंहरूप प्रकटकरके हिरण्यकशिपु को नखोंसे विदारण किया और ऐसा कोपवान् रूपधरा जिससे दैत्योंकेस्थान जलने लगे और दृष्टिसेमानों पर्वतचूर्ण होतेथे। दैत्योंके कई समूह मारेगये कईभागे और बहुतसे दिशाविदिशा को दौड़गये—जैसे वायुकेमारे मच्छर उड़जाते हैं और कुछ पातालछिद्रमें नाशहोगये। निदान प्रलयकालवत् स्थान शून्यहोगये मानों अकाल प्रलयआयाहै और दैत्योंको नाशकरके फिर विष्णुदेव अन्तर्द्धान होगये। कुछदैत्य, बांधव और टहलुयेजोरहे थे वे प्रह्लादके निकट मुख कुम्हिलाये हुये आये—जैसे जलसे रहित कमलहोता है और भाई, बांधव मिलकर प्रह्लाद को समझाने लगे। प्रह्लादने सबसे मिलकर पिताकाशोचकिया और फिर उठकर सबकर्म किये। निदान संशय संयुक्त सब दैत्य बैठे और विचारकरके शोकवान् हुये और सब सूखकर चित्र की पुतलीवत् होगये। जैसे दग्धवृक्ष सूखकर रससे रहित होजाताहै तैसेही हिरण्यकशिपु बिनादैत्य शोकवान् और महादुःखीहुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेहिरण्यकशिपुवधोनामत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३०॥

वशिष्ठजीबोले, हेरामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारनेसे दैत्यबहुत दुःखीहुये तब प्रह्लादने मौनहोकर विचारा कि, पातालमें सबदैत्य मिलकर चिन्ता संयुक्त बैठे हैं। उनसे जाकर प्रह्लादने कहा कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय कीजियेगा, हमारे दैत्योंके नाशकरनेवाले विष्णु बड़ेबली हैं; जिनके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारा-

वत्हैं । जैसे सिंहमृगोंको मारताहै तैसे वे हमको मारते हैं और पातालमें दैत्य शांतिमान् कदाचित् नहीं होनेपाते । जब दैत्य वर्धमान होते हैं तब विष्णु आ उन्हें नाश करते हैं और जैसे कमलोंपर पर्व्वत आपड़े तैसे उन्हें चूर्णकरते हैं । बड़े आकाश गौरवशब्द करनेवाले दैत्य उपज उपज नष्टहोजाते हैं—जैसे जलमें तरङ्ग उपजउपज नष्टहोजाते हैं । भीतरबाहर वह हमको बड़ा कष्ट देताहै । हमारा शत्रु बड़ा दृढ़ और बड़ा अपूर्व तमआवढ़ाहै; हमाराहृदय तमसे पूर्णहोगयाहै और सम्पदा नष्टहोगई है। जो देवता हमारेपितासे चूर्णहुये थे उनका बल अब हमसे अधिक होगयाहै और वे हमारी स्त्रियोंको वशकरलेगये हैं—जैसे मृगको व्याधलेजाताहै । वे हमारा सबधन भी लेगये हैं। और हमदीन होरहे हैं । जैसे जलविना कमल कुम्हिलाजाताहै तैसेही हमभी बांधव विनाहुये हैं । हमारे घरोंमें धूल उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलकर खचितकिये थे वे शून्यहोगये और हमारेस्थानोंमें जो बड़े कल्पवृक्ष लगेथे वे उखड़कर नन्दनवनमें लगाये हैं । नरसिंहजी की सहायतासे देवताओंने ऐसा बलपाया है । हमारे वृक्ष और स्थान नरसिंहजीने जलादिये हैं जिन देवताओंकी स्त्रियोंकेमुख दैत्य देखतेथे, उनसब दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख अब देवतादेखते हैं । जिस सुमेरु पर्व्वतपर कल्प और मन्दारवृक्ष विराजतेथे वे स्थान अबशून्य होगये, वहाँ धूलउड़ती है और सुमेरु दुर्लभ होगयाहै । जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानोंमें बैठीथीं वे अब देवाङ्गनाओंके शिरपर चमरकरती हैं और वे हास विलास करती हैं; यह बड़ा कष्टहै। हमको आपदा ने दीनकिया है । हे दैत्यो ! हमको और उपाय कोई दृष्टि नहीं आता जब उसही विष्णु की शरणमें जावें तब सुखीहोउंगा वह कैसापुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षोंकी छायामें देवता विश्रामकरते हैं और जैसे हिमालय पर्व्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता तैसेही जो पुरुष विष्णुकी शरणजाता है वह तपायमान नहीं होता । तुम देखतेहो कि, जो देवाङ्गना असुरों की स्त्रियों की पूजन करती थीं वे अब अपने को पुजानेलगी हैं और हम दैत्योंकी स्त्रियों के मुख कुम्हिला गये हैं । जैसे बरफकी वर्षासे कमल सूख जाता है तैसेही हमारे मण्डप टूट गये हैं और नीलमणि के खम्भे गिरपड़े हैं । दैत्यसेना जो आपदा के समुद्र में डूबतीथी उसके रक्षा करने को हमारे पितादि बड़े समर्थ थे और डूबने न देते थे । जैसे क्षीरसमुद्र में मन्दराचलको कच्छपरूपने डूबने नादिया था हमारे पितादि जो बड़ेबड़े बली रक्षा करने वालेथे उन को विष्णुजी ने मारकेचूर्ण किया—जैसे प्रलयकाल का पवन पर्वतों को चूर्ण करता है । ऐसे मधुसूदन की गति अतिविषम है वे दैत्योंकी भुजारूपी दण्ड के काटने वाले कुठार हैं, उनकी सहायता से इन्द्रादिक देवता दैत्य सेना को जीतने और मारनेलगे हैं—जैसे बालक को बानरमारें । इस पुण्डरीकाक्ष विष्णु

को जीतना कठिन है। जो वे शस्त्रों बिनाहों तौभी हमारे शस्त्र इनको छेद नहीं सकते और वज्र भी छेद नहीं सक्ता। वे महा पराक्रमी हैं, उन्हों ने युद्धका बड़ा अभ्यास किया है और पर्वतों के साथ युद्ध करतेरहे हैं। हमारा पिता जो बड़ा बलीथा और जिसने त्रिलोकी के राजा और सब देवता वशकिये थे उसको भी इसने मारडाला तो हमारा मारना कौन कठिन है। यह महाबली है इसको हम नहीं जीत सक्ते; इसलिये एक उपाय मैं तुमको कहताहूं उससे विष्णु प्रकट वश होंगे। उपाय यह है कि, विष्णु जो सर्वात्मा, सबका प्रकाशक और सबका कारण है उसकी हम शरणहों; और हमारी कोई गति आश्रय नहीं। हे दैत्यो! उससे अधिक इस त्रिलोकी में कोई नहीं; जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्त्ता वही देवता है। उसके ध्यान में लगो और एक निमेष भी उसके ध्यान से न उतरो। मैं भी उसके ध्यान में लगता हूं। यह नारायण अजन्मा पुरुष है और मैं सदा उसके परायणहूं और सब प्रकार नारायण में हूं। 'ओंनमोनारायणाय;' यह मंत्र सब अर्थों को सिद्ध कर्त्ता है, इसमंत्रके ध्यान जाप करते हुये हमारे हृदय में स्फुरन रूप होगा। यह हरि सबका आत्मा है; पृथ्वीभी हरिहै, यह सब जगत्भी हरिहै, मैंभी हरिहूं, आकाश भी हरिहै और सबका आत्मा भी हरिहै। अविष्णु होकर जो विष्णु का पूजन करते हैं वे पूजनेका फल नहीं पाते और जो विष्णुहोकर विष्णुका पूजन करते हैं वे परम उत्तमफलपाते हैं। इससे मैं विष्णुरूप होकर स्थित होताहूं। मैं अनन्त आत्मा आकाश गरुड़ पर आरूढ़हूं और सुवर्ण के भूषण पहिरेहूं; मेरे हाथ रूप वृक्षपर जीवरूप सब पक्षी विश्राम पाते हैं। यह मेरी चतुर्भुजा हैं। जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन कियाथा तब यह परस्पर घसे हैं और यह मेरे पारषद हैं, सुन्दर चमर जिनके हाथोंमें हैं, इनको मैंने क्षीरसमुद्र से उपजाया है। त्रिलोकी रूपी वृक्षकी यह सुन्दर मञ्जरी जो महाधवलमनके हरनेवाली हैं। यह मेरे पारषदों में मायाहै जिसने अनन्त जगत् जाल निरन्तर उत्पत्ति, प्रलय किया है और इन्द्रजाल की विलासिनी है। यह मेरे पारषदों में जो शक्ति है इन्हों ने लीला करके त्रिलोकीखण्ड वश किया है। जैसे कल्पवृक्ष लता फूलती है तैसेही मेरे पारषदों में यह फूलती है शीतउष्ण मेरेदो नेत्र हैं जो संपूर्ण जगत् को प्रकाशते हैं और चन्द्रमा और सूर्य उनके नाम हैं। यह मेरा नीलकमल और महा सुन्दरश्याम मेघवत् देह महाप्रकाश रूप है। यह मेरे हाथ में पांचजन्य शंखज जिसकी फुरनरूप धुनिहै क्षीरसमुद्रसे निकलाहै। यह नाभिकमलहै जिससे ब्रह्माउत्पन्नहुये और इस में निवास करते हैं--जैसे भ्रमरा कमलमें निवास करता है। यह मेरे हाथ में कौमोदकी गदा है जो सुमेरु के शिखरवत् रत्नोंकी बनीहुई है और दैत्यदानवों के नाश करने वाली है। यह मेरे हाथों में महाप्रकाश रूप सुदर्शन चक्र है जिसका तेज ज्वाला के

पुञ्जवत् है और साधुको सुखदेने वाला है। यह मेरे हाथोंमें अग्निके समूह वाला कुठार है सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटने वाला है और साधुओं को आनन्द दायकहै। यह मेरे हाथमें शार्ङ्ग धनुष है, इसकी महाप्रकाशवत् धुनि है। यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयन्ती माला है और कौस्तुभमणि मेरे कण्ठमें है। ऐसा मैं विष्णु देवहूं। अनन्त जगत् जो उत्पत्ति और लयहोगये हैं सबोंका धारने वालाहूं। यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपुहै, दशोंदिशा मेरे वक्षस्स्थलहैं और मैं साक्षात् विष्णुहूं। नील मेघवत् मेरीकान्ति है;गरुड़ पर आरूढ़, शंख, चक्र, गदा, पद्मका धारने वालाहूं। जिसका चित्त दुष्टहै वह हमको देखकर भागजाता है। यह सुन्दर, शीतल चन्द्रमावत् मेरी कान्ति है और पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारीहूं। लक्ष्मी मेरे वक्षस्स्थलमें है और अच्युतरूपी विष्णु मैंहूं। वह कौनहै जो मेरेसाथ विरोध करसके? मैं त्रिलोकी जला सक्ताहूं;जोमेरे साथ युद्धकरने को सन्मुखआवे उसको अप और तेज नाश का कारणहै। जैसे अग्निमें पतङ्ग जल मरते हैं तैसेही मेरा तेजहै। मेरीदृष्टि कोई सह नहीं सक्ता। मैंविष्णु ईश्वरहूं, ब्रह्मा, इन्द्र और यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं और तृण काष्ठ स्थावर जंगम जो कुछजाल है सबके भीतर व्यापक रूपहूं। त्रिलोकी में मैं प्रकाश रूप अजन्मा और भयनाश कर्त्ताहूं। ऐसे मेरे स्वरूप को मेरा नमस्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादविज्ञाननामएकत्रिंशत्तमःसर्गः ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार प्रह्लाद ने अपना नारायण स्वरूप करके ध्यान किया। फिर पूजनके निमित्त वैष्णवों का चिन्तन किया और मनमें विष्णु जी की दूसरी मूर्त्ति जो गरुड़ पर आरूढ़ और चारशक्ति—अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे सम्पन्न चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये श्याम रंगहै; चन्द्रमा और सूर्य जिसके सुंदर नेत्र हैं और हाथमें शार्ङ्ग धनुषहै; धारण करके परिवार संयुक्त भलीप्रकार धूपदीप और नानाप्रकार के विचित्र वस्त्र और भूषणों सहित पूजन किया और अर्घ दिया। चन्दन का लेपन, धूप, दीप, नानाप्रकार के भूषणों सहित पिस्ता, खजूर, बदाम आदिक मेवोंसे; भक्ष्य, भोज्य,चोष्य और लेह्य चतुरप्रकार के भोजन कराये। फिर अपना आप विष्णु को अर्पण किया और परम भक्तिको प्राप्तहुआ। जिस प्रकार मनसे पूजनकिया उसी प्रकार अन्तःपुर में विष्णु की मूर्त्ति देखकर पूजा। इसीप्रकार दिन प्रति दिन विष्णुका पूजन किया और जिस प्रकार प्रह्लाद मनकी चिन्तन से पूजाकरे उसी प्रकार और दैत्य भी मानसी पूजा करें। उनको प्रह्लाद ने सिखाया और उस पुर में सब दैत्य कल्याणमूर्त्ति विष्णुभक्त होगये। जैसा राजा होता है तैसीही उसकी प्रजा होती है इसमें कुछ आश्चर्य्य

नहीं । यह वार्त्ता देवलोकमें प्रकटहुई कि, दैत्योंने विष्णुका द्वेष त्याग किया है और भक्त हुये हैं । तव देवता आश्चर्य्यको प्राप्तहुये और इन्द्रादिक अमरगण विचारने लगे कि, यह क्या हुआ जो दैत्योंने विष्णुकी भक्ति ग्रहणकी और इनको यह प्राप्त कैसेहुई । ऐसे आश्चर्य्यवान् होकर क्षीर समुद्रके दैत्योंकी वार्त्ता करनेके निमित्त वे विष्णुके निकट गये और कहा, हे भगवन् ! यह आपने क्या माया फैलाई कि, जो दैत्य सर्वदा विरोध करतेथे वे अव तुम्हारे साथ तन्मय रूपहो रहे हैं; कहां वह दुर्वृत्ति पर्वत को चूर्ण करनेवाले दैत्य और कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेकजन्मों से भी दुर्लभ है । हे जनार्दन ! तुम्हारी भक्ति कहां और उनकी वृत्ति कहां । यह तो अपूर्व वार्त्ता हुई है । जैसे समय विना पुष्पोंकी माला नहीं शोभती तैसेही पात्रविना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती और यह हमको सुखदायक नहीं भासती । जैसा जैसा कोई होता है तैसेही तैसे स्थानमें शोभताहै । जैसे कांचमें महामणि नहीं शोभती तैसेही दैत्योंमें तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती । जैसागुण किसीमें होताहै तैसीही पंक्ति में वह शोभता है और में स्थित हुआ नहीं शोभताहै। जोसुदेश नहीं होता तो दुःखदायक होता है जैसे अंगों में वज्र दुःखदायक होताहै । जैसा गुणवान्हो तैसा पदार्थ जव प्राप्त होताहै तो वह शोभा पाताहै विपर्यय हो तव शोभा नहीं पाता । जैसे कमलनी जलमें शोभती है, मरुस्थलमें नहीं शोभती तैसेही कहां वह अधर्म्म नीचजन भयानक कर्म करनेवाले और कहां तुम्हारी आश्चर्य्य भक्ति । जैसे कमलनी पृथ्वी पर नहीं शोभती तैसेही तुम्हारी भक्ति दैत्यों में नहीं शोभती और तैसेही भक्ति हम को उनमें सुखदायक नहीं भासती ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेविविधव्यतिरेको नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३२ ॥

वशिष्ठजी वोले, हे रामजी ! जव इसप्रकार वड़े शब्दसे देवता कहने लगे तव माधव आकर वोले; हे देवगण ! तुम शोक मत करो । प्रह्लाद मेरा भक्तहै; इसका यह अन्तका जन्महै, और अव मोक्षको प्राप्त होकर फिर जन्म न पावैगा । हे देवगण !गुणवान् के गुणोंको त्यागकर द्वेष ग्रहणकरना अनर्थरूप होताहै और जो प्रथम गुणोंसे रहित निर्गुण हो और फिर उनको त्यागकर गुण ग्रहण करे और शास्त्र मार्गमें विचरे तो यह सुखदायक होताहै। प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होगी । अव तुम अपने स्थानों में जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्त है । इतना कहकर वशिष्ठजी वोले, हे रामजी ! इसप्रकार कहकरभगवान् क्षीरसमुद्रमें अन्तर्द्धान होगये देवता नमस्कार करके अपने २ स्थानोंमें गये और प्रह्लादसे द्वेषभावना त्यागकी। प्रह्लाद दिनप्रतिदिन अपने घरमें जनार्दनकी मनसा, वाचा और कर्मणा से भक्ति

करने लगा और समयपाकर दैत्योंमें बड़ी भक्ति होगई। तब उन्हें परम विवेक प्राप्त हुआ और विषय भोग से वैराग्यवान् हुये। वे विषयोंसे प्रीति न करें; सुंदरस्त्रियों से न रमें; दृश्यमें उनकी प्रीति न उपजे और यहभोगजो रोगरूप है उनमें उनका चित्त विश्रामनपावै और रागभी न करें परन्तु मुक्त कर्त्ता जो आत्मबोध है सो उन्हें प्राप्त न हुआ वे मुक्त फलके निकट आ स्थितहुये और भोगोंकी अभिलाष त्यागकर निर्मल होगये पर परमसमाधिको न प्राप्तहुये चित्त अवस्थामें डोलायमानहोरहे। तबश्याम मूर्त्ति विष्णुदेव प्रह्लादकी वृत्ति विचारकर पातालमें उसके गृह पूजाके स्थान में महाप्रकाश सुन्दररूपसे प्रकटे और उनको देखकर प्रह्लादने विशेष पूजाकी और प्रेमसे गद्गद हो कहा हे ईश्वर! त्रिलोकी में सुन्दर मूर्त्ति, सबके धारनेवाले, सब कलंकों के हरनेवाले, प्रकाशस्वरूप, अशरणों के शरण, अजन्म। और अच्युत में तुम्हारी शरणहूं। हे नीलोत्पल और कमलों के पर्वत, श्यामरूप, असंग चित्तसे ध-रनेवाले! मैं तुम्हारी शरणहूं। हे निर्मलरूप, केलेवत् कोमलअंग और श्वेत कमल की नाईं श्वेतशंख हाथमें धारणकिये! तुम्हारे नाभि कमलमें भँवरेरूप ब्रह्मास्थितहो वेदका उच्चाररूपी गुरुगुरु शब्द करते हैं और हृदय कमलमें विराजनेवाले जल के ईश्वर रूपमें तुम्हारी शरणहूं! जिसके श्वेतनख तारा गणवत् प्रकाशरूप; हँसता मुखचन्द्रमाके मण्डलवत्, हृदय मणि सबका प्रकाशक और शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप! मैं तेरी शरणहूं। हे त्रिभुवनरूपी कमलनियों के प्रकाशनेवाले चन्द्रमा! मोहरूपी अन्धकारके नाशकर्त्ता सूर्य! अजड़, चिदात्मा, सम्पूर्ण जगत् के कष्ट हरनेवाले! मैं तुम्हारी शरणहूं। हे नूतन विकसितरूप कमल पुष्पोंसे भूषित अङ्ग और स्वर्णवत् पीताम्बरधारी महासुन्दर स्वरूप! मैं तेरीशरण हूं। हे ईश्वर! लीलाकरके सृष्टिके उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले और परमशक्ति शङ्करयो-गवत् दृढ़ देह! मैं तेरी शरण हूं। हे दामिनीवत् प्रकाशरूप सबको संहारकर जल में बालकरूप धर वटके नीचे शयन करनेवाले! मैं तेरी शरणहूं हे देवतारूप क-नलोंके प्रकाश करनेवाले सूर्यमण्डल; दैत्य पुत्ररूपी कमलनियोंके तुषाररूपी ब-रफ जलानेवाले और हृदयरूपी कमलों के आश्रयभूत! मैं तेरी शरण हूं। वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब अनेकगुणों से आठ श्लोक प्रह्लादने कहे तब विष्णुजीने प्रह्लादसे कहा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादाष्टकानन्तरनारायणागमनं नामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३३॥

श्रीभगवान्जी बोले, हे गुणनिधि; दैत्यकुलके शिरोमणि! जो तुझ को वांछित फल है सो मांगो और जन्मदुःखके शान्ति निमित्त वरमांगो। प्रह्लाद बोले, हे सर्व

सङ्कल्पके फलदायक और सर्वलोकों में व्यापकरूप। जो वस्तु दुर्लभतरहै वहशीघ्रही मुझसे कहिये और दीजिये। श्रीभगवान्जी बोले,हे पुत्र! सब भ्रमके नाश करनेवाले और परम फलरूप ब्रह्मसे विश्रान्ति होती है और वहजिस आत्मविवेककी समतासे प्राप्त होतीहै वही आत्मविवेक तुझको होगा। वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! इस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहकर विष्णु अन्तर्द्धान होगये। फिर प्रह्लादने पुष्पाञ्जली दी और पूजा करके श्रेष्ठआसन बिछा उसपर आप पद्मासनधरके बैठा और विधिसंयुक्त उत्तमशास्त्रों का पाठ करने लगा। जब पाठ करके निश्चिन्तहुआ तब विचारनेलगा कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा था, उन्होंने कहाथा कि, तुझको विवेकहोगा। इस लिये संसार समुद्र तरने के निमित्त शीघ्रही विचार करूं। इस संसार आडम्बरमें मैं कौनहूं जो बोलता हूं; नर और यह जगत् तो मैं नहीं; यह तो असत्य उपजा है और जड़ रूप पवनसे स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होऊं? यह देहभी मैं नहीं, क्योंकि, यहतो क्षण क्षण में कालसे लीन होता है और जड़रूप है। श्रवणरूपी जड़भी मैं नहीं क्योंकि, जो शब्द सुनते हैं वह शून्य से उपजा है। त्वचा इन्द्रीभी मैं नहीं इसका क्षण क्षणमें विनाश स्वभाव है। प्राप्त हुआ अथवा न हुआ; यह इष्ट है, यह अनिष्ट है;इन्द्री आप जड़ है पर इसके जाननेवाला चेतन तत्त्व है और चेतन के प्रमादसे ये विषय उपलब्ध होते हैं। इससे न मैं त्वचा इन्द्रीहूं और न स्पर्श विषय है; यह जड़ात्मक है। यह जो चञ्चलरूपी तुच्छ जिह्वा इन्द्री है और जिसके अग्रमें अल्प जल अणु स्थित है वही रसग्रहण करता है; वह रसभी आत्मसत्ता करके लब्धरूप होताहै आपजड़ है; इससे यह जड़रूप जिह्वा और रस मैं नहीं ये जो विनाशरूप नेत्र दृश्यके दर्शन में लीन हैं सो मैं नहीं और न मैं इनका विषयरूप हूं, ये जड़ हैं। यह जो नासिका पृथ्वीका अंश है सो केवल आत्माके आधार है यह आप जड़ है पर इसका जाननेवाला चेतन है; सो न मैं नासिकाहूं, न गन्धिहूं; मैं अहंममसे और मनके मननसे रहित शांतरूपहूं और ये पञ्च इन्द्रियां मेरेमें नहीं, मैं शुद्ध चेतन रूप कलना कलङ्कसे और चित्तसे रहित चिन्मात्र और सबका प्रकाशक सबके भीतरबाहर व्यापक और निःसङ्कल्प निर्मल शांतरूपहूं। आश्चर्य है कि अबमुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है। प्रकाश रूप चेतन अनुभव अद्वैत मेरे अनुभव चेतनसे स्थित है। सूर्य, घट, पटादिक सब पदार्थ मैं प्रकाशताहूं। जैसे दीपक से उत्तम तेज भासे तैसेही चेतन अनुभवसे इन्द्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है। जैसे तेजसे चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं तैसेही सर्वज्ञ अनुभव सत्तासे मनकी मनन रूप शक्ति फुरती है। जैसे सूर्यके तेजसे मरुस्थल में मृगतृष्णाकी नदी फुरती है तैसे-ही अनुभव सत्तासे पदार्थ भासते हैं। जैसे दीपक में शुक्लादि रङ्ग भासते हैं,तैसेही

इन पदार्थों में अहंआदिक पदार्थ भासते हैं। वह जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है, सबको अनुभवसे भासता है और सबके भीतर आत्मभावसे स्थितहै। जैसे बीज में अंकुर स्थित होताहै तैसेही चेतनरूप दीपक के प्रकाशसे विकल्परूपी पदार्थों की शक्ति भासती है। उष्णरूपी सूर्य, शीतलरूपी चन्द्रमा,घनरूपी पर्वत,द्रवतारूपी जल है और इसीप्रकार अनुभव सत्तासे सकल पदार्थ प्रकट होते हैं जैसे सूर्यके प्रकाशसे घटपटादिक होते हैं ब्रह्मा, विष्णु,इन्द्र ये सबके कारण रूप जगत् में स्थित हैं और इनका कारण अनुभव तत्त्वआदि अन्तसे रहित और सबकारणोंका कारण है। जैसे बरफसे शीतलता उपजती है तैसेही अनुभवसे जगत् उदय होता है चित्त,चैत्य, दृश्य, दर्शन कलनासे रहित प्रकाशरूप सत्तामेराआत्मा मुझको नमस्कार है। इसीसे सर्वभूत उत्पन्न और स्थित होकर फिर लयहोते हैं सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयभूत आत्मा है। जो इस चित्तसे अन्तःकरण कल्पितरूप होजाताहै। वही होता है। आत्मासे रहित सत्यभी असत्य होजाता है। जो चेतन संवित में कल्पितरूप होताहै सोही पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है और जो चित्त संवित में कल्पितरूप नहीं होता सो सत्यभी असत्यरूप होजाता है। ये जो घट, पटादि पदार्थों के समूह भासते हैं वे विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पण में प्रतिबिम्बित हैं और अनुभव सत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है। जिनका चित्तनष्ट होजाता है उनसन्त पुरुषोंको ऐसे दृढ़भाव प्राप्तहैं और वे परम आकाशरूप आत्मा में अभ्याससे तन्मय होजाते हैं? अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्धहोनेसे वृद्ध नहीं होती और नष्टहोनेसे नष्ट नहीं होती। पदार्थोंके भाव अभावमें सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है जैसे सूर्यकेप्रतिबिम्बमेंघट सत्य हो अथवा असत्य हो सूर्य ज्यों का त्यों है। संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्र रचना ऐसे आत्मामें स्थितहै। जैसे विचित्र गुच्छोंके संयुक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वतपर स्थित होती है तैसेही संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरीको धरने वाला आत्मसत्ता वृक्ष है जितने भूतगण त्रिलोकी उदरमें वर्तते हैं वे सब आत्मासे अभिन्नरूप हैं ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है। वह अनुभवसत्ता आदिअंत से रहित है; जिसका सर्वरूप आकार है और स्थावर जङ्गम सर्व जगत् भूत जात अन्तर अनुभवरूप स्थित है। वह एक अनुभव आत्मा मैं हूं; द्रष्टादर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हूं और सहस्रनेत्र सहस्रहस्त मेरे हैं। मैंहीं चिदाकाशरूप हूं; सूर्यदेह ले आकाश में विचरताहूं और पवन देहसे वहता वायु वाहनपर आरूढ़हूं। मैं विष्णुरूप शंख, चक्र, गदा, पद्मके धरने वालाहूं; सर्व सौभाग्य देखने वालाहूं, और सब दैत्योंको भगाता और नाशकर्त्ता मैंहींहूं। मैं नाभिकमलसे उत्पन्न हुआहूं; पद्मासनसे निर्विकल्प समाधि में स्थितरूप ब्रह्माहूं और मनवृत्तिरूपको प्राप्त

हुआ। मैंनेही त्रिनेत्र आकार लिया है; गौरी मेरी अर्द्धाङ्गना हैं और सृष्टिके अंत में सबको मैंहीं संहार करताहूं। जैसे कोई अपने अंगोंको संकोचले तैसेही मैं संहार करताहूं। त्रिलोकीरूपी मढ़ीकी इन्द्ररूप होकर मैं पालना करताहूं और कर्मोंके अनुसार जैसा कोई तपकरे तैसा फलदेताहूं। तृणवल्लिमें गुच्छे और रसहोकर मैं स्थित हूं;मैंहीं उत्पत्ति कर्त्ता और चेतनरूपहूं और लीलाके निमित्त जगत् आडम्बर विस्ताररूप मैंनेही किया है, जैसे मृत्तिका के खिलौने बालक रचलेता है। मेरे में सर्व कर्म अर्पण करनेसे सर्व शांति प्राप्त होती है और मुझसे रहित कुछवस्तु नहीं; मैं सत्ता स्वरूप आदर्शहूं, सब पदार्थ मेरे में प्रतिबिम्बित होते हैं, तब यह असत्य रूपभी सत्यताको प्राप्तहोताहै–इससे मुझसे भिन्नकुछ नहीं। पुष्पों में सुगन्ध,पत्रोंमें सुन्दरता, पुरुषों में अनुभव और स्थावर–जंगमरूप जो जगत् दृष्टआताहै वह सर्व मैंहूं। मैं सब सङ्कल्पसे रहित परम् चैतन्यहूं और अहं त्वं आदिकसे परेहूं,जलमें रसशक्ति, अग्निमें उष्णता और बरफमें शीतलता मैंहींहूं। जैसे काष्ठमें अग्नि तैसेही सर्व में स्थितहूं, सब पदार्थों में मैं परमात्मा व्यापकहूं और सबको अपनी इच्छासे उपजाताहूं। जैसे दूधमें घृत शक्ति, जलमें रसशक्ति और सूर्यमें प्रकाश शक्तिहै तैसेही मैं चेतन स्वरूप सब पदार्थोंमें स्थितहूं। त्रिकालका जगत् सब मेरे में स्थित है और मैं चित्त के उपचार फुरने से रहित शुद्ध स्वरूप और सबका भरण और पीने वाला और वैराट्राज होकर स्थित भयाहूं। त्रिलोकी का राज्य मुझको अपूर्व प्राप्तहुआ है, जो शस्त्रों और देवों के दलविना निरक्षित विस्तृतहै। बड़ाआश्चर्य है कि मैं इतनाबड़ा विस्तृत रूपहूं और अपने आपमें नहीं समाता,जैसे कल्पान्तर के वायुसे उछला समुद्र आपमें नहीं समाता। मैं अनन्तरूप आत्मा अपनी इच्छा से आप प्रकाशताहूं। जैसे क्षीर समुद्र अपनी उज्ज्वलतासे शोभताहै तैसेही मैं भी अपने आपसे शोभताहूं। यह जगत्रूपी मटकी महा अल्परूप है–जैसे बिलमें हाथी नहीं समाता तैसेही मैं अपने आपमें विस्तृतरूपसे जगत् में नहीं समाता। मैं कोटि ब्रह्माण्ड में व्यापकहूं और ब्रह्मलोकसे परे जो तत्त्वोंका अन्तआता है उससे भी परे मैं अनन्तरूपहूं। यह मैंहूं, यह मैं नहीं, यह निर्बलता मेरेमें तुच्छरूप है; मैं तो आदि अन्तसे रहित चेतन आकाशहूं और मेरेमें परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी। मैं, तू, यह, वह आदिक मिथ्याभ्रमहै। देह क्या, पर क्या और अपर क्या; मैं तो सर्वव्यापक चेतन तत्त्वहूं। मेरे पितामह बड़े नीचबुद्धिथे जो ऐसे ऐश्वर्यको त्याग कर तुच्छऐश्वर्य में खचितहुये थे कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्त्ता ब्रह्मवपु और कहां वह संसार भ्रमका राज अनित्यरूप सुखभोग दुःखदायक। अनन्त सुख, परम उपशम स्वभाव, शुद्धचेतन दृष्टि अब मेरेमें हुई है। सब भावपदार्थों में चैत्यसे रहित

में चेतन आत्मास्थितहूं। अब मुझको नमस्कार है क्योंकि मेरी जयहुई है और जीर्णरूप संसार भ्रमसे निकलाहूं। इससे मेरीजीत पाईहै, पाने योग्य आत्मपद पाया है और जीवित सार्थक हुआ है। ऐसा उत्तम समराज चक्रवर्तीमें भी नहीं रमता ये जीव निरन्तर बोधको त्यागकर दुःखरूपी कार्यांमें रमते हैं। काष्ठ,जल और मृत्तिका से संयुक्त जो पृथ्वी है उसको पाकर जो भुलायमान हुये हैं उनको धिक्कारहै; वे कीट हैं। यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अविद्यासे उपजे हैं और अविद्यारूप इनका बढ़ना है। इनमें क्या गुणहै जिसनिमित्त यत्न करते हैं? इस जगत्रूपी मढ़ीमें कई वर्ष हिरण्यकशिपुने राजसुख भोगा परन्तु उपशम जो शान्ति सुखहै उसको न प्राप्त हुआ। उसने एक जगत्का राजकिया है परन्तुजो सौजगतों का राज सुखहो तो भी अनास्वाद है इससे वह जो समतारूप आत्मानन्द है सो नहीं प्राप्तहोता। जब उस आत्मानन्द के स्वादका यत्नहो तब प्राप्त हो, अन्यथा नहीं होता। जिसपुरुषको बड़े ऐश्वर्य और इन्द्रियोंके सुख प्राप्त हुये हैं पर समतासुखसे रहित है तो जानिये कि, उसको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं मिला और जिनको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं प्राप्त हुआ पर समता सुख संयुक्त हैं उनको सब कुछ प्राप्त हुआ जानिये। वे परम अमृतसे संपन्न हैं और अखण्डित सुख जो आत्मा है उस परमसुख को प्राप्त हुये हैं और आनन्दरूप हैं। जो अखण्डपदको त्यागकर परिच्छिन्नताको प्राप्त है वह मूढ़ है और जो पण्डित और ज्ञानवान् है वह परिच्छिन्नतामें प्रीति नहीं करता। जैसे ऊंट दूसरे पदार्थोंको त्यागकर कंटकोंके पासधावताहै और दूसरा पशुनहींजाता तैसेही मूढ़विना ऐसाकौन है जो आत्मसुखको त्यागकर जलेहुये राजसुखमें रमै और अमृतको त्यागकर कंटक और नीमका पानकरे। मेरे पितामह और २ जो बड़े सब मूढ़हुये हैं वे इसपरम अमृतरूप दृष्टिको त्यागकर राजकंटक में प्रीतिवान् हुये हैं। कहां फूल फलादिकसे संयुक्त नन्दनवनकी भूमिका और कहांजलेहुये मरुस्थलकी भूमिका। तैसेही कहां यह शान्तरूप बोधदृष्टि और कहां भोगोंमें आत्मबुद्धि। इससे ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जिसकी मैं इच्छाकरूं। सब चेतन स्वरूपहैं और अनुभव कर्त्ता चेतनतत्त्व स्वच्छसमभाव और निर्विकार, सर्वदा, सर्व में, सर्वओरसे स्थित है। यह जैसे है तैसा पाया जाता है—ज्ञानवान्को प्रत्यक्ष है। सूर्यमें प्रकाश, चन्द्रमा में अमृतस्रवन, ब्रह्मा में महत्, इन्द्रमें त्रिलोकपालन, विष्णुजी में सब ओर से पूर्ण लक्ष्मी शक्ति है, शीघ्रगमन कर्त्ता शक्ति मनकी है, बलवान् शक्ति पवन में, दाहक अग्निमें, रसशक्ति जलमें है और मौन से महा तपकी सिद्धता शक्ति और बृहस्पति विद्या देवताओं में विमानोंपर आरूढ़ होकर आकाशमार्ग गमन करने की शक्ति है। पर्वतों में स्थिरता, वसन्तऋतु में पुष्प, सबकाल मेघोंकी शान्तशक्ति,

पक्षोंमें ममत्वशक्ति, आकाश में निर्लेपता, बरफ में शीतलता, ज्येष्ठ आषाढ़ में तप्त इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नानाप्रकारके आकार विकार जो त्रिकाल के उदर में स्थित हैं सो सर्व्वशक्ति, स्वच्छ, निर्विकार कलनारूप कलंकसे रहित चेतनकी है सो इस प्रकार हो भासती है और वही आत्मतत्त्व समपदार्थ जातिमें व्यापक हुआ है। जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व्वओरसे समान उदय होताहै तैसेही वहसर्व्व देश पदार्थों का भंडार और सर्व्वका आश्रयभूतहै; त्रिकाल उसीमें कल्पितरूप होते हैं। जैसे अनुभव उसमें होताहै तैसाही तत्कालहो भासताहै। जैसे २ चेतनतत्त्वमें देश, काल और क्रिया द्रव्यका फुरनाहोताहै तैसाही तैसा भासताहै। आत्मामें त्रिकालोंकी समप्रतिभा फुरी है, उसमें फिर अनन्तकालकी प्रतिभाहुईहै और शुद्ध चेतनतत्त्वमें सर्व्वओरसे पूर्ण है। त्रिकालके स्मरणमें दृश्यसंयुक्त भासताहै तो चेतनतत्त्व शेषरहताहै और इसको त्रिकालका ज्ञानहोता है। मधुर, कटुक आदिक भिन्न भिन्नसे एकसमता भासती है। जैसे मधुरता पानकरनेवाले जीवोंको मधुरता भासतीहै औरको नहीं भासती तैसेही सर्व्व जो सङ्कल्पकलना है सबको भोगता है। सूक्ष्मचेतन सत्तास्वरूप सर्व्वपदार्थों का अधिष्ठानहै उससे अनागतहोकर द्वैत जगत् भासता है और नानाप्रकारकी जो पदार्थ लक्ष्मी है वह अत्यन्त दुःखको प्राप्तकरती है। जब त्रिकालका अनुभव होता है तब सबही समभासता है। भाव पदार्थोंमें जो पदार्थ हैं वे ईश्वरके हैं; उन भाव पदार्थोंको त्यागकर अभावकी भावना करनेसे दुःख सबनष्टहोजाते हैं और संतुष्टता प्राप्त होती है। इससे त्रिकालको मतदेखो, यह बन्धनरूप है। त्रिकालसे रहित जो चेतनतत्त्व है उसके देखनेसे विभाग कल्पना कालका अभाव होजाता है और एकसम आत्मा शेषरहता है जिसको वाणी वशकर नहींसक्ती और जो असत्यकी नाई निरन्तर स्थित है उसकी प्राप्तिहोती है। अनामय सिद्धांत शून्यवादीकी नाई स्थितहोता है निष्किंचन आत्मा ब्रह्महोता है अथवा सर्व्वरूप परम उपशम में लीनहोता है और जिसका अन्तष्करण मलीन है और सङ्कल्पसे सम्यक् दर्शी है उसको ज्योंकात्यों नहीं भासता—जगत्भासताहै और जिसकी इच्छा नष्टहुई है और परमपदका अभ्यासकरता है उसको आत्मतत्त्व भासताहै जो किसीजगत् के पदार्थ की वांछाकरता है और हेयोपादेय फांसी से बांधाहै वह परमपद नहीं पासक्ता—जैसे पेटसे बांधापक्षी आकाशमार्ग में नहीं उड़सक्ता। जो पुरुष सङ्कल्प कलना संयुक्त है वह मोहरूपी जालमें गिरपड़ताहै—जैसे नेत्रों बिना मनुष्य गिरपड़ता है। संकल्प कलनाजालसे जिसकाचित्त वेष्टितहै वह विषयरूपीगढ़ेमें गिराहै और अच्युतपदवी को प्राप्त नहीं होता। मेरे पितामह कई दिन पृथ्वी में फुर फुरके लीन होगये हैं वे बालकवत् नीचथे। जैसे गढ़े में मच्छर लीनहोजाते हैं तैसेही अज्ञानसे वे परमतत्त्व

को न जानतेथे । भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है अज्ञानी करते हैं और उससे भाव अभावरूप गढ़े और अन्धकूपमें नष्ट होतेहैं । और इच्छा और द्वेषसे जो उठाहै उससे वन्धमान हुये हैं। जैसे पृथ्वीमें कीट मग्न होते हैं वे जीव उनके तुल्य हैं और जिनको मृगतृष्णारूप जगत्के पदार्थोंमें ग्रहण त्यागकी बुद्धि शांत हुई है वे पुरुष जीते हैं, और सव नीच मृतकरूप हैं कहांनिर्मल और अविच्छिन्न रूप चेतन चन्द्रमावत् शीतलता और कहां उष्णकाल कलंक संयुक्त चित्तकी अवस्था अव मेरे आत्माको नमस्कार है जो अविच्छिन्न प्रकाशता है और प्रकाश और तम दोनोंका प्रकाशरूप है। हे चिदात्मा देव! मुझको तू चिरकालसे प्राप्तहोकर परमानन्द हुआ है। जो विकल्परूपी समुद्रसे मेरा उद्धार कियाहै। जोतू है, वह मैंहूं और जो मैंहूं सो तू है तुझको नमस्कारहै। संकल्प विकल्प कलनाके नष्ट हुये अनन्ताशिव आत्मतत्त्व का चन्द्रमा सदा निर्मल और उदित रूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपदेशोनामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३४॥

प्रह्लाद बोले कि, जिसका नाम 'ओं' है वह विकारसे रहित ब्रह्ममैंहूं। जो कुछ जगत् है वह सव आत्म स्वरूप, सत्य-असत्यसे अतीत, चेतनस्वरूप और सव जीवों के भीतर है। सूर्यादिक में प्रकाश वही है, अग्नि आदिकको उष्णकर्त्ता वही है और चन्द्रमामें शीत कर्त्ता वहीहै। अमृतका स्रवना आत्मासेहीहै और इन्द्रियों के भोगों का भोक्ता अनुभवरूप यही है। राजाकी नाईं खड़ा वैठाहूं तो मैं कभी नहीं बैठा और चलताहूं तो कभीनहीं चलता और न व्यवहार करताहूं। मैं सदाशांतरूप कर्त्ताहूं किसी से लेपायमान नहीं होता। त्रिकालों में समरूपहूं और सर्व्वदा सर्व अवस्था में पदार्थोंके उपजने और मिटनेमें सदा ज्योंका त्योंहूं। ब्रह्मासे आदि तृण पर्यन्त सव जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थितहै। पवन जो स्पंद रूपहै उसमें भी मैं अतिसूक्ष्म स्पंद रूपहूं; पर्व्वत स्थान जो अचल पदार्थ हैं उनसे भी मैं अचलहूं; आकाशसे भी अतिनिर्लेपहूं। मन कोभी आत्मा चलाता है-जैसे पत्रोंको पवन चलाताहै और इन्द्रियों को आत्मा फेरताहै-जैसे घोड़े को सवार चलाता है। समर्थ चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं मैं भोगभोगताहूं और अपने ऐश्वर्यसे आप शोभताहूं।संसार समुद्र में जरामरणरूपी जल के पार करनेवाला आत्मा है। यह सवसे सुलभ है और अपने आपसे जानाजाता है और वान्धवकी नाईं प्राप्त होता है आत्मा शरीर रूपी कमलों के छिद्रों का भँवरा है और विना खेंचे वुलाये सुलभ आ प्राप्त होताहै। जो कोई अल्पभी उसको वुलाता है तो उसीक्षण वह उसके सन्मुख होताहै इसमें कोई संशय और विकल्प नहीं। वह निष्कलंक और परम संपदावान् है और सदा

स्वस्थरूप है । रसदायक पदार्थों में जैसे रसस्वाद है, पुष्पोंमें सुगंधि और तिलों में तेल है तैसेही वह देव परमात्मा देहों में स्थित है तौभी अविचार के वशसे नहीं जाना जाता; जैसे चिरकाल उपरान्त आया बांधव अपने आगे आन स्थित हो तो भी उसको नहीं पहिंचाना जाता । जब विचार उदय होता है तब ऐसे आत्मा परमेश्वर को जानलेता है । जैसे किसी प्रियतम बांधव के पाये से आनन्द उदय होता है तैसेही आत्मा देवके साक्षात्कार हुये से परमआनंद उदय होता है और सब बांधवपन नष्ट होजाता है; जितनी कुछ दुष्ट चेष्टा है उसका अभाव होजाता है, सब ओरसे बंधन फांस टूटजाती है; सब शत्रुक्षय होजाते हैं और आशा फिर नहीं फुरती—जैसे पर्व्वत को चूहा तोड़ नहीं सक्ता । ऐसे देव के देखेसे सब कुछ देखना होता है और सुनेसे सब कुछ सुननाहोताहै;उसके स्पर्श किये से सब जगत् का स्पर्श होता है और उसकी स्थितिसे सर्व्व जगत् स्थित भासताहै । यह जो जाग्रत् है सो संसारकी ओरसे स्वप्न है; उसी जाग्रत् से अज्ञान नष्ट होजाताहै और जितनी आपदा हैं उनका कष्ट दूर होजाता है । आत्माके प्राप्तहुये आत्मामय होजाता है । और वह विस्तृत रूप आत्मा दीपकवत् साक्षिभूत होता है । जगत् की स्थिति में भोगोंसे राग उठा है, सब ओर से आत्मतत्त्व का प्रकाश भासता है और भीतर शांतरूप सबको अनुभव करने वाला सब देहों में मैं स्थित हूं। जैसे मिरचों में तीक्ष्णता स्थित है तैसेही सब जगत् के भीतर बाहर में व्यापरहाहूं । जो कुछ जगत्के पदार्थ भासते हैं उन सबमें ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है; आकाश में शून्यता; वायुमें स्पंदता; तेजमें प्रकाश; जल में रस; पृथ्वी में कठोरता; चन्द्रमा में शीतलता रूप वही है और सब जगत् में अनुस्युत एक आत्मतत्त्वही व्यापरहा है । जैसे बर्फ में श्वेतता; और पुष्पों में गंध है तैसेही सब देहोंमें आत्मा व्यापकहै । जैसे सर्व्व गत काल है और सर्व्वव्यापक आकाश है तैसेही सब जगत् में आत्मा व्यापक है । जैसे राजाकी प्रभुता सबमें होती है तैसेही मुझसे भिन्न और कोई कलना नहीं है । जैसे धूलिको पकड़के आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ते; कमलों को जल स्पर्श नहीं करता और पाषाण को स्फुरन भ्रमस्पर्श नहीं करता तैसेहीमेरेसाथ किसीका सम्बन्ध नहीं स्पर्श करता। सुख—दुःखका सम्बन्ध देहको होता है यदि देह चिरकालरहे अथवा अबहींनष्टहो तो मुझको लाभहानि कुछ नहीं।जैसे दीपक की प्रभा रज्जुसे नहीं बांधी जाती तैसेही आत्मा किसी से बांधा नहीं जाता; सब पदार्थों के ग्रहणमें अबंध रूप है । जैसे आकाश किसी से बांधा नहीं जाता और मन किसी से रोंका नहीं जाता तैसेही परमात्माको देह इन्द्रियका सम्बन्ध वास्तव में नहीं होता।यदि शरीरके टुकड़े होजावें तौभी आत्मा का नाश नहीं होता—जैसे घट फूटेसे दूध आदिक पदार्थ नहीं

रहता परन्तु आकाश कहीं नहीं जाता वह ज्योंका त्योंहीं रहता है तैसेही देहके नाश हुये प्राणकला निकल जाती है आत्मा का कुछ नाश नहीं होता और पिशाच की नाईं उदय होकर भासताहै। जिसकानाम मन है उस मनसे जगत् भासित हुआ है और उसीमें जड़ शरीरके नाशका निश्चय हुआ है, हमारा क्या नाश होताहै। जिसके मनसे दुःख सुखसे वासना नाशहोती है सो भोगोंसे निवृत्ति सुख सम्पन्न होताहै और ग्रहण करते भोगसे और इन्द्रियके अज्ञानसे मूढ़ दुःख पाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य्य है कि, आत्माके अज्ञानसे मूढ़ दुःखपाता है। अब मैंने आत्मतत्त्व देखा है, उससे मेरा भ्रम शान्तहोगया है और कुछभी किसीसे मुझको क्षोभ नहीं अब मुझे न कुछ भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है और न त्यागकी वांछा है; जो जावे सो जावे और जो प्राप्तहो सोहो, न मुझको देहादि के सुखकी अपेक्षा है; न दुःखके निवृत्तिकी अपेक्षा है सुख दुःख आवे और जावे में एक रस चिदानन्द स्वरूपहूं जिस देह में वासना करने से नानाप्रकारकी वासना उपजती है वह देहभ्रम मेरा नष्टहोगयाहै,यह वासना नहीं फुरती। इतनेकाल पर्यन्त मुझको अज्ञानरूपी शत्रुने नाश कियाथा अब मैंने आपको जानाहै और अब इसको मैं चूर्ण करता हूं। इस शरीररूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पिशाच था सो मैंने परमबोधरूपी मंत्रसे दूरकिया है इससे पवित्र हुआहूं और प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभताहूं। मोहरूपी दृष्टि मेरी शान्त हुई है, दुःख सब नष्ट हुयेहैं और विवेकरूपी धन मुझको प्राप्तहुआ है। अब मैं परम ईश्वररूप होकर स्थित हुआहूं। जो कुछ जानने योग्यथा सो मैंने जानाहै और जो कुछ देखने योग्यथा वहदेखाहै। अबमैं उसपदको प्राप्तहुआहूं जिसके पायेसे कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। अब मैंने आत्मतत्त्वको देखा है; विषयरूपी सर्प मुझको त्यागगया है; मोह-रूपी कुहिरा नष्ट होगया है; इच्छारूपी मृगतृष्णा शांत होगई और रागद्वेषरूपी धूलिसे रहित सब ओरसे निर्मलहुआ हूं। अब मैं उपशमरूपी वृक्षसे शीतलहुआ हूं और सब ओरसे विस्तृतरूपको प्राप्तहुआहूं। अब मैंने सबसे उचित परमात्म देव परमार्थ को ज्ञान और विचार से पाया है और प्रकट देखा है। अधोगति का कारण जो अहंकार है उसको मैंने दूरसे त्याग दिया है और अपना स्वभावरूप जो आत्मभगवान् सनातनब्रह्म है सो जो अहंकार के वशसे विस्मरण हुआथा उसे अब चिरकाल करके देखाहै। इन्द्रियरूपी गढ़ेमें मैं गिराथा और रागद्वेषरूपी सर्प से दुःखपाकर मृत्युको प्राप्त हुआथा। मृत्युकी भूमिका टोये विना तृष्णारूपी करंजु-येकी कुंजोंमें मैं भ्रमतारहा जहां कामरूपी कोयलके शब्द होते थे और जन्मरूपी कूपमें दुःखपाताथा। सुखके पानेकी आशामें डूबा; वासनारूपी जालमें फँसा; दुःख-रूपी दावाग्निमें जला और आशारूपी फांसीसे बँधाहुआ मैं कईबार जन्ममरण

को प्राप्तहुआ था क्योंकि अहंकारके वशहुये जन्ममृत्युको प्राप्त होताही है—जैसे रात्रि में पिशाच दिखाई दे और अधीरताको प्राप्तकरे तैसेही मुझको अहंकारने किया था सो अब परमात्मरूप की मुझको तुमने प्रेरणाकी है और अपनीशक्ति विष्णुरूप धारकर विवेक उपदेश किया और जगाया है। हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधसे अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हुआहै। हे विभु ! अब मैं उसको नहीं देखता जैसे दीपक से तम नहीं भासता। अहंकाररूपी जो यक्षथा और मनमें जो वासना थी वह सब नष्ट हुई है। अब मैं नहीं जानता कि, वे कहां गये—जैसे दीपक निर्वाण होता है तब नहीं जानाजाता कि, प्रकाश कहांगया। हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्शनसे मेराअहंभावनष्टहुआ है। जैसे सूर्य्य के उदयहुये चोरभय मिटजाता है तैसेही देहरूपी रात्रि में अहंकाररूपी पिशाच उठाथा वह अब नष्ट हुआ है और अब मैं परमस्वस्थ हुआ हूं। जैसे वानरोंसे रहित वृक्षस्वस्थ होता है तैसेही मैं परमनिर्वाण को प्राप्तहुआहूं। अब मैं सम और शांत बोधमें जागा हूं और चिर पर्य्यन्त चोरोंसे जो घिराथा सो अबछूटा हूं। अब मेराहृदय शीतल हुआहै और आशारूपी मृगतृष्णा शांत होगईहै। जैसे जलसे पर्व्वतकी तप्तता मिटे और वर्षासे शीतलताको प्राप्तहो तैसेही विवेकरूपी विचारसे अहंकाररूपी तप्तता दूरहोगई है। अब मोहकहां और दुःखकहां, आशारूपी स्वर्गकहां और नरककहां; बन्धकहां और मुक्त कहां। अहंकारके होनेसे पदार्थ भासते हैं अहंकारके गये इनका अभाव होजाताहै । जैसे मूर्त्ति दीवारपर लिखी जाती है आकाशपर नहीं लिखीजाती तैसेही अहंकार संयुक्त जो चैतन है वहनहीं शोभता; अहंकारसेही सुख दुःखादिक का पात्र होताहै । जैसे मलीनवस्त्रपर केशर का रङ्ग नहीं शोभता तैसेही उसमें ज्ञाननहीं शोभता । जब अहंकाररूपी मेघका अभाव हो तब तृष्णारूपी कुहिराभी नहींरहता और शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहताहै। निरहंकाररूपी जलमें प्रसन्नतारूपी कमलोंसे शोभताहै। हे आत्मा! तुझको नमस्कार है। इन्द्रियां रूपी तँदुये और चित्तरूपी बड़वाग्नि, दोनों जिससे नष्ट भयेहैं ऐसे आत्मारूपी समुद्र आत्माको नमस्कार है; जिससे अहंकार मेघ दूर हुआ है और दावाग्नि शांत हुई है। ऐसाजो आत्मानन्दरूपी पर्वतहै उस आनन्दके आश्रय मैंने विश्राम पायाहै। हे देव ! तुझको नमस्कार है। जिसमें आनन्दरूपी कमल प्रफुल्लित हैं और जिससे चित्तरूपी तरङ्ग शान्त हुआ है ऐसा जो मानसरोवर में आत्मा हूं उसको नमस्कार है । आत्मारूपी हंस में संवितरूपी पङ्ख हैं और हृदयरूपी कमलोंसे पूर्ण मानसरोवर पर विश्राम करनेवाले को नमस्कार है। कालरूपी कलनासे रहित निष्कलंक; सदा उदितरूप, सब ओरसे पूर्ण और शांत आत्मातुझको नमस्कार है। मैं सदा उदित,शीतल हृदयका तमदूर कर्त्ता, और सर्व

व्यापक हूं परन्तु अज्ञानसे अदृष्टहुआ था सो उस चेतन सूर्य्यको नमस्कार हैं। मन के मनसे जो उपजेथे वह अब शांत हुये हैं और मनको मनसे और अहंको अहंसे छेदके जो शेषरहे सोही मेरी जयहै। भावरूप जो दृश्यपदार्थ हैं उनको आत्मभावसे तृष्णाको अतृष्णाके छेदे से, अनात्माको आत्म विचारके नष्ट किये से और ज्ञानसे ज्ञेय को जाने से मैं निरहंकार पदको प्राप्त हुआहूं और भाव अभाव क्रिया नष्ट होगई है। मैं अब केवल स्वस्थित हूं और निर्भय, निरहंकार, निर्मन, निस्पन्द, शुद्धात्माहूं। मेरा शरीर जीवकी नाईं स्थित है, लीलाकरके मनने अहंकारको जीता है; परम उपशमको प्राप्तहुआहूं और परमशांति मुझको प्राप्त हुई है। मोहरूपी वैताल और अहंकाररूपी राक्षस नष्टहुये हैं; वासनारूपी कुत्सित भूमिकासे मुक्त और विगतज्वर हुआहूं और तृष्णारूपी रस्सीसे जो बँधाहुआ देह पिंजरा था और उसमें अहंकाररूपी पक्षी फँसाथा सो तृष्णारूपी रस्सी विवेकरूपी कतरनी से काटी है। अब जाना नहींजाता कि, शरीररूपी पिंजरेसे अहंकाररूपी पक्षी कहां निकलगया। अज्ञानरूपी वृक्षमें अहंकाररूपी पक्षी रहता था उसके जानने से जाना नहीं जाता कि, कहां गया? दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था; भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि दूर कीथी और वासनासे हम मृतक होगये थे। इतने कालसे मैं चित्तकी भूमिकामें मिथ्या अहंकारको प्राप्तहुआ था अब मैं उपजाहूं आजही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है; अहंकार रूपी महामेघ नष्ट हुआ है और उसमेंतृष्णारूपी समताथी वह नष्ट हुई है। अब मैं निर्मल आकाशवत् शोभताहूं; अब मैंने आत्मा भगवान् देखा है और अपने स्वरूपको प्राप्तहुआहूं और अनुभवरूप सदाप्राप्त हैं। प्रभुताके समूह के आगे अज्ञान अल्परूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मलाभचिन्तनं नामपंचत्रिंशतितमस्सर्गः ३५॥

प्रह्लाद बोले, हे महात्मा पुरुष! तुझको नमस्कार है। तू सर्वपदसे अतीत आत्मा चिरकालमें मुझको स्मरण आया है और तेरे मिलने से मेरा कल्याण हुआ है। हे भगवन्! तुमको देखकर सब ओरसे नमस्कार करताहूं और हृदय से तुमको आलिङ्गन करूंगा। त्रिलोकीमें तुझसे अन्य बांधव कोई नहीं। तू सबसे सुखदायक है और सबका तूही संहार करता और रक्षाकरता है और देने और लेनेवालाभी तूही है। अब तू क्या करेगा और कहां जावेगा? तूने अपनी सत्तासे विश्वको पूर्ण किया है और विश्वरूपभी तूही है। अब सब ओरसे मैं तुझको देखताहूं और तूही नित्यरूप सर्वत्रहै। तेरे और मेरे में अनेक जन्मका अन्तर पड़ाथा पर अब कल्याण हुआ जो तुझको देखा है। तू अत्यन्त निकट है और परम बांधवरूप है–तुझको

नमस्कार है । तू सबका कृतकृत्य स्वरूप कर्त्ता हर्त्ता है और संसार तेरी नृत्य है । हे नित्य निर्मल स्वरूप ! तुझको नमस्कारहै । शंख,चक्र,गदा और पद्मके धारनेवाले विष्णु और अर्द्धचन्द्रमाके धारनेवाले सदाशिवरूप तुझको नमस्कारहै । हे सहस्र-नेत्र इन्द्र ! तुझको नमस्कार है । पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्याका सम्बन्ध तूही है । तेरे में कुछ भेद नहीं तो तुम्हारे हमारे में भेद कैसे हो । जैसे समुद्र और तरङ्गों का संयोग अभेद है तैसेही तेरा और मेरा संयोग अभेदहै । तूही अनन्त और विचित्र-रूप है और भाव अभावरूप जगत् के धरनेवाली नीति है-जो जगत् की मर्य्यादा करती है । हे द्रष्टारूप ! तुझको नमस्कार है । हे सर्वज्ञ ! सर्व स्वभाव रूप आत्मा देव ! जन्म प्रति जन्म में बहुत दुःख मार्गमें विचराहूं और तेरी मायासे चिरकाल दग्ध हुआहूं । हे देवेश ! देशलोक मैंने अनन्त देखे हैं और दृष्टान्त द्रष्टाभी अनेक देखा है परन्तु किसीसे तृप्त न हुआ । जगत्को जिसओर देखूं उसी ओरसे काष्ठ, पाषाण, जल, मृत्तिका, आकाश दृष्टआताथा अब तुझबिना कुछ और दृष्टनहीं आता अब वांछा किसकी करूं जब तुझको देखा है और उपलब्ध स्वरूपको प्राप्त हुआ हूं । तुझको नमस्कार है । नेत्रोंकी श्यामता में जो पुतलीरूप स्थित है और रूपको देखता है वह साक्षीभूत भीतर कैसे नहीं देखता । जो त्वचा में स्पर्श करता है और शीत उष्णादिक को जानता है ऐसा सर्व अङ्गों में व्यापक अनुभव कर्त्ता है-जैसे तिलोंमें तेल व्यापक होता है । उसको अनुभव कोई नहीं करता । जो शब्द श्रवण इन्द्रिय के भीतर ग्रहण करता है उस शब्दशक्तिका जो जाननेवाली सत्ता है और जिसमें शब्द शक्तिका विचार होता है इससे रोम खड़े हो आते हैं सो सत्तादूर कैसे हो ? जो जिह्वाके अग्रमें रसस्वाद को ग्रहण करता है उसरसके अनुभव करनेवाली सत्तादूर कैसेहो ? नासामें जो ग्रहण शक्ति है उसको गन्धआती है उसको अनुभव करनेवाली अलेप सत्ताहै सो सन्मुख कैसे न हो ? वेद, वेदान्त, सप्तसिद्धान्त, पुराण और गीतासे जो जानने योग्य आत्मा है उसको जबजाना तब विश्राम कैसे न हो ? वहतो परावर परमात्मा पुरुष है । जिनभोगोंकी मैं तृष्णाकरताथा वह भोगविद्यमान रमणीय हैं तौभी तेरे दर्शनसे रसनहीं देते । हेस्वच्छरूप निर्मल प्रकाश ! तू सूर्यभाव होकर प्रकट हुआ है और तेरी सत्तासे चन्द्रमा शीतल हुआ है; तेरी सत्तासे पृथ्वी स्थित है; तेरीसत्तासे देवता आकाश मार्गमें विचरते हैं और तेरीसत्तासे आकाशमें आकाशभाव है । मेरी अहंता तेरेमें तत्त्वको प्राप्तहुईहै;तेरे और मेरेमें भेदकुछनहीं । तुझे और मुझे नमस्कार है । मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, निर्विकार और देश, काल, पदार्थ के छेदसे रहितहूं । मनजब क्षोभको प्राप्तहोता है तब इन्द्रियोंकीवृत्तिस्फुरण रूप होती है और प्राण, अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्तहोती है तब देहरूपी यंत्र

वहता है उसयंत्रमें चर्मअस्थि आदिक लकड़ियां और रस्सी हैं; इन्द्रीरूपी घोड़े हैं और मनरूपी सारथी चलानेवाला है। उस देहरूपी रथमें मैं चैतनरूप स्थितहूं परन्तु मैं किसीमें आस्थानहीं करता। देहरहे अथवा गिरे मुझको कुछ इच्छा नहीं; मैं अब आत्मलाभको प्राप्तहुआहूं और चिरकालपर उपशमको प्राप्तहुआहूं। जैसे कल्पके अन्तमें जगत् शान्तिको प्राप्तहोता है तैसेही दीर्घसंसार मार्गमें मैं चिरकाल तक भ्रमता २ अब विश्रामको प्राप्तहुआहूं। जैसे कल्पके अन्तमें वायु चलता२ रह जाता है। हे सर्वरूपात्मा! तुझको नमस्कार है—जो तुझको और मुझको इसप्रकार जानते हैं। हे देव! सम्पूर्ण जगत् जाल जो विस्तृतरूप है उसका तुमने कदाचित् स्पर्श नहीं किया—तुम्हारी जय है। जैसे पुष्पोंमें गंध और तिलोंमें तेलरहता है तैसे ही तुम सब देहोंमें रहते हो। तुम सर्वजगत्के प्रकाशक दीपहो। उत्पत्ति और प्रलय-कर्त्ता और सदा अकर्त्तारूप हो तेरीजय है। तेरे परमाणु चिद्अणु में यह विस्तार रूप जगत् स्थित है जैसे वटबीज में वृक्षहोता है; फिर और में और होता है तैसेही चिद्अणुमें जगत् है। जैसे आकाशमें एकबादलके अनेक आकार दृष्टआते हैं तैसेही चित्तकला फुरने से अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं। इस संसारके जो क्षणभंगुर रूपपदार्थ हैं इनकी अभावना कियेसे अब भाव अभावसे रहित भावको देखताहूं। मुझे अब यह निश्चयहुआ है कि, मान, मद, क्रोध और कलुपता, कठोरता आदिक विकारों में महापुरुष नहीं डूबते पर जिनकी नीच प्रकृति है वे इनदोषों और अवगुणोंमें डूबते हैं। पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीचअवस्थाथी उसको स्मरणकरके अब मैं हँसताहूं कि, मैं कौनथा और क्या जानताथा। हे मेरेआत्मा! मैं उसपदको प्राप्तहुआ था जहां चिन्तारूपी अग्निकी ज्वालाथी और दग्धहुये जीर्णसंसारके आरम्भथे पर अब देहरूपी नगर में स्फाररूपी मनोरथकी जय है और अबदुःख ग्रहणकर नहींसक्ते। जहां दुष्ट इन्द्रियांरूपी घोड़े और मनरूपीहाथी जाताथा उसभोगरूपी शत्रुको अबचारों ओरसे भक्षण कियाहै और निष्कण्टक राजा चक्रवर्त्ती हुआहूं। तू परमसूर्य है और परम आकाशमें तेरा मार्ग है; उदय अस्तसे रहित तू नित्यप्रकाश रूप है और सबके भीतर बाहर प्रकाशता है। अब मैं भोगोंको लीला रूप देखता हूं—जैसे कामी कामिनी को देखे परन्तु इच्छासे रहित हो तैसेही तू ग्रहण करता है। नेत्ररूपी झरोखे में बैठकर तू रूप विषय को ग्रहण करता है और अपनी शक्तिसे इसीप्रकार सब इन्द्रियों में वहीरूप धारकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयों को ग्रहण करता है। ब्रह्मकोटरमें जो देश हैं उनमें प्राण अपान शक्तिसे तूही विचरता है, ब्रह्म पुरी में जाताहै और क्षणमें फिर आता है और सब जगत् देहों में तूही विचरता है। देहरूपी पुष्पों में तू सगन्ध है; देहरूपी चन्द्रमा में तू अमृत है; देहरूपी वृक्ष में तू

रस है और देहरूपी वर्फ में तू शीतलता है । दूधमें घृत, काष्ठमें अग्नि, उत्तम स्वादोंमें स्वाद; तेजमें प्रकाश और सर्व असर्व अर्थ कर्त्ता पूर्ण तूही है और सर्व जगत्‌का प्रकाशकभी तूही है । वायु में स्पन्द, मनमें मुदित और अग्निमें तेज तुझी से सिद्ध हैं; प्रकाश में प्रकाश तू है और सब पदार्थोंको सिद्धकर्त्ता दीपक तू है पर लीन हुयेसे जानानहीं जाता कि, कहांगया । संसारमें जितने पदार्थ और अहं त्वं आदिक शब्द हैं वे ऐसे हैं जैसे सुवर्ण में भूपण होते हैं सो उसने अपनी लीला के निमित्त किये हैं और आपही प्रसन्न होता है । जैसे मन्दवायुसे खण्ड खण्ड हुये बादल के हाथी आदिक आकार होभासते हैं तैसेही तू भौतिक दृष्टिसे भिन्न भिन्न रूपभासता है। हे देव! ब्रह्माण्डरूपी मोतीमें तू निरिच्छित व्यापक है भूतोंरूपी जो अन्नका तूखेत है और चेतनरूपी रससे वढ़नेवाला है। तू अस्तकी नाईं स्थित है अर्थात् इन्द्रियोंके विपयोंसे रहित अव्यक्त रूपहै और सर्व पदार्थोंका प्रकाशकहै। जो पदार्थ शोभा संयुक्त विद्यमान होताहै पर यदि तेरी अवस्था उसमें नहीं होती तो वह अस्तहोता है—जैसे सुन्दर स्त्री भूपणों सहित अन्धेके आगे स्थितहो तो वह अस्तभूत होतीहै तैसेही विद्यमान पदार्थहो और तू न कल्पे तो अस्त होजाता है। जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिविम्व होताहै उसको देखकर अपनी सुन्दरता विना कोई प्रसन्ननहींहोता । हेआत्मा! तेरे संकल्पविना देहत्रुटितहो काष्ठलोष्ठवत् होतीहै। जब पुर्यष्टक शरीरसे अदृष्टहोतीहै तबसुख दुःख आदिक क्रमनष्ट होजाता है और किसी का ज्ञाननहींहोता—जैसे तममें कोई पदार्थ दृष्टि नहीं आता । तेरे देखनेसे सुख दुःख आदिक स्थितहोते हैं—जैसे सूर्यकी दृष्टिसे प्रातःकाल शुक्ल वर्णसे प्रकाशआताहै। जब अपने स्वरूपको प्राप्त होताहै तब अज्ञानरूप सर्वविकार नष्टहोजाते हैं—जैसे प्रकाशसे अन्धकार नष्टहोताहै तो पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है तैसेही अज्ञानके नष्टहुये से आत्मा ज्योंका त्यों भासताहै । यह जो मनरूपतू है तेरे उपजनेसे सुख दुःखकी लक्ष्मी उपजआती है और तेरे अभावहुयेसे सर्वनष्ट होजाताहै । स्वरूपसे तू अनामय रूपहै और क्षणभंगुर देहमें जो मनने आस्थाकीहै सो महासूक्ष्म अणु निमेपके लक्षभाग ऐसा सूक्ष्महै सुख दुःखादिककी भावनाकरके अनीश्वरताको प्राप्त हुआहै। तेरे प्रमादसे फुरनरूप होताहै और तेरे देखनेसे सर्वलीन होजाताहै। यह जो पुर्यष्टक तेरारूपहै उसके देखने से क्षीणपदार्थ जातभासि आते हैं—जैसे नेत्रोंके खोलनेसे रूपभासताहै और अन्तर्द्धान मनके मरनेसे सर्वनष्ट होजाताहै और फिर किसीसे ग्रहण नहींहोता। जो वस्तु क्षणभंगुरहै उससेकुछ कार्य सिद्ध नहींहोता—जैसे विजुलीकेप्रकाशसे कोई कार्य सिद्धनहींहोता तैसेही अन्तर्द्धान होनेसे देहसे कुछअर्थ सिद्धनहीं होता। जो उपजकर तत्काल नष्टहोजाताहै उससे क्याकार्य सिद्धहो? देहा-

दिक जड़ और नाशवन्तहैं और जो सबको प्रकाशताहै वहसदा निर्विकार सच्चिदानन्द रूपहै। सुख दुःखआदिक अज्ञानीके चित्तको स्पर्शकरते हैं और जिसका सम चित्तहै उसको स्पर्श नहींकरते। हे देव! ये जो सुख दुःख आदिक अविवेकके आश्रयहैं सो अविवेक नष्ट होगयाहै। तू निरीह निरंश निराकारहै और सत्य असत्यसे परे भैरवरूप परमात्मा तेरी सदाजयहै। तू सर्वशस्त्रोंका असिपद है। तू जात अजात रूप सदाजयहै; तेरेनाश और अविनाश रूपकीजयहै और तेरेभाव और अभाव रूपकीजयहै और जीतने और न जीतनेयोग तेरीजयहै।मायाहुलास और उपशांति को प्राप्तहुआ है तुझको नमस्कार है। हे निर्दोष! तेरे में स्थितहोनेसे मेरे राग द्वेष मिटगये हैं। अबबंधकहां और मोक्षकहां और आपदा, सम्पदा और भाव–अभाव कहां। अबमेरे सर्वविकार शांतहुये हैं और सम समाधिमें स्थित हुआहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेसंस्तवननामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार चिन्तनकर महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानन्द समाधिमें ऐसे स्थितहुआ जैसे मूर्त्तिका पर्व्वतहो। जब बहुतकाल अपने भुवनमें सुमेरुवत् समाधिमें स्थितरहा तब दैत्यउसको जगानेलगे परन्तु वह न जागा–जैसे समयबिना बीज अंकुर नहींलेता–और पांचसहस्रवर्ष समाधिमें व्यतीत भये पर शरीर उसीप्रकार पुष्टरहा। दैत्योंकेनगरमें शान्तिहोगई और वह परमानन्द आत्माको प्राप्तहुआ; निरानन्द जो प्रकाशहै सो प्रकाशमात्र रहगया और कलना सब मिटगई। इतना काल जब इसप्रकार व्यतीतहुआ तब रसातलमण्डलमें राजभय दूरहोगया और छोटेको बड़ा भक्षणकरनेलगा। निदान दैत्यमण्डलीकी विपर्यय दशाहोगई और निर्बल को बलवान् मारके लूटलेगये। तब अनेक मल्लमिलकर प्रह्लादको जगानेलगे पर तौभी वह न जागा–जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रिमें भंवरे गुंजारकरें और वह तौभी प्रफुल्लित नहींहोता मुंदाहीरहता है। संवितकला जो चित धातुहै सो उसकेभीतर फुर्तीनभासतीथी जैसे मूर्त्तिका लीला सूर्यप्रकाशसे रहितहोता है तैसेहीउसे देखकर दैत्य उद्वेगवान् हुये और जहां किसीको सुखदायक देशस्थान मिला वहां जारहे; मर्य्यादा सब दूरहोगई मत्सरहोनेलगा और पुरुष स्त्रियां रुदन करने और शोकवान् होनेलगे। कोई मारेजावें,कोई लूटेजावें और कोई व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले होगये। सब दैत्यतापरायण हुये, बांधवनष्ट होगये और उपद्रव उत्पन्न होनेलगे। दिशाके मुख अग्निरूप होगये देवताआन दिखाई देनेलगे और दैत्य निर्बलको बधिलेजानेलगे। दैत्यमूल भूमिसे रहित निर्लक्ष्मी उजाड़से होगये

और दैत्यपुरमें अनीति अकाण्ड उपद्रव हुआ । जैसे कल्पके अन्तमें जीव दुःखपाते हैं तैसेही दैत्य दुःख पानेलगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेदैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ३७ ॥

वशिष्ठजीबोले, हेरामजी ! इसप्रकार जब दैत्यपुरीकी दशाहुई तब सम्पूर्ण जगत् जालके क्रमपालनेवाले विष्णुदेव, जो क्षीरसमुद्रमें शेषनागकी शय्यापर शयनकरनेवालेहैं, चतुर्मास वर्षाकालकी निद्रासे जागे और बुद्धिके नेत्रों से जगत् की मर्य्यादा विचारी तो देखा कि, पातालमें प्रह्लाददैत्य समाधिमें पद्मासन बांधकर स्थितहुआ है और सृष्टिदैत्योंसे रहितहुई है। बड़ाकष्ट है कि, अब देवता जीतनेकी इच्छासेरहित होकर आत्मपदमें स्थित होजावेंगे और जब देवता और दैत्योंका विरोध रहता है तब जीतनेकेनिमित्त याचना करते हैं कि, दैत्यनष्टहोवें । अब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होकर परमपदको प्राप्तहोवेंगे। जैसे रससे रहित वेलि सूखजाती है तैसेही अभिमान और इच्छासेरहित देवता जगत्की ओरसे सूखकर आत्मपदको प्राप्तहोंगे। जब देवतोंके समूह शान्ति को प्राप्तहोंगे तब पृथ्वीमें यज्ञ तपादिक उत्तमक्रिया निष्फल हो जावेंगी न कोई करेगा, न किसीको प्राप्तहोगा और जब पृथ्वीलोकसे शुभक्रिया नष्ट हुई तब लोक भी नष्टहोजावेंगे, अकाण्ड प्रलय प्रसङ्गहोगा और सब मर्यादा क्रम जगत्का नष्टहोजावेगा। जैसे धूपसे वर्फ नष्टहोताहै तैसेही जगतक्रम सबनष्ट होवेगा इसके नष्टहुये भी मुझको कुछ नहीं परन्तु मैंने अपनी लीलारचीहै सो सब नष्टहोजावेगी तब मैं भी इस शरीरको त्यागकर परमपद में स्थित हूंगा और अकांडीही जगत् उपशमको प्राप्तहोगा । इससे इसमें मैं कल्याणनहीं देखता। जो दैत्योंके उद्वेग से रहित देवताभी शान्तहोजावेंगे तो तपक्रियानष्टहोजावेगी और जीवदुःखी होकर नष्ट होजावेंगे । इससे मैं जगत्कर्मको स्थापनकरूं कि, परमेश्वरकी नीति इसीप्रकार है। अब रसातलको जाऊं और जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करूं पर जो मैं प्रह्लादसे भिन्न पातालका राज्य करूंगा तो वहदेवताओं का शत्रुहोगा इससे ऐसे भी न करूंगा। प्रह्लादका यह अन्तका जन्म है और परम पावन देहहै और कल्प पर्यंत रहेगी। यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है; इससे मैं जाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद को जगाऊं कि अब वह जागकर जीवन्मुक्त हुआहै दैत्योंकाराज्यकरे। जैसे मणिमलसे रहितप्रतिविम्बको ग्रहणकरती है तैसेही प्रह्लादभी इच्छासे रहितहोकर प्रवर्त्ते। इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्योंसंयुक्त रहेगी और परस्पर इनकाद्वेप न होगा और मेरी क्रीड़ा लीला और इच्छा होगी । यद्यपि सृष्टिका होना न होना मुझको तुल्य है तौभी जो नीति है वह जैसे स्थित है तैसेही रहे । जो वस्तु भाव में तुल्यहो उसका

नाश और स्थित में प्रयत्नकरना कुबुद्धि है; आकाश के हननके यत्न के तुल्य है ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभगवान्चित्तविवेकोनाम अष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः३८॥
वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इसप्रकार चिन्तनकर सर्वात्मा विष्णुदेव अपनेपरिवार सहित क्षीरसमुद्रसे चले—जैसे मेघघटा एकत्रहोकर चले—और आकरप्रह्लादके नगर को प्राप्तहुये। वह नगर मानो दूसरा इन्द्रलोकथा और प्रह्लादके मन्दिरमें देखा कि, निकटदैत्यथे वे विष्णुजीको दूरसे देखकरभागगये—जैसेसूर्यसे उलूकादिक भागजावें तब जो मुख्यदैत्यथे उनकेसाथ विष्णुजीने दैत्यपुरी में प्रवेशकिया—जैसे तारासंयुक्त चन्द्रमा आकाश में प्रवेश करता है तैसेही विष्णुजी गरुड़पर आरूढ़ लक्ष्मीसाथ चमरकरतीं और अनेक ऋषि, देव, सहित प्रह्लाद के गृह आये। आतेही विष्णुजी ने कहा, हेमहात्मा पुरुष! जाग! जाग! ऐसे कहकर पांचजन्य शंख बजाया जिस-से महाशब्दहुआ। फिर उसप्रह्लाद के कानोंके साथलगाया और जैसे प्रलयकालमें इकट्ठा मेघका शब्दहो तैसेही बड़ेशब्दको सुनकर दैत्यपृथ्वीपरगिर गिरपड़े। निदान शनैःशनैः दैत्येन्द्रको जगाया और प्राणशक्ति जो ब्रह्मरन्ध्रमेंथी वहांसे विष्णुजीने उठाई और वह शरीरमें प्रवेशकरगई। जैसे सूर्यके उदयहुये सूर्यकीप्रभावनमें प्रवेश करजाती है तैसे नवद्वारोंसे प्रवेशकरगई। तब प्राणरूपीदर्पणमें चित्तसंवित प्रतिबि-म्बितहोकर चैतन्य मुखलहुई और मनभावकोप्राप्तहुई और तब जैसे प्रातःकाल में कमलखिलआते हैं तैसेही उसके नेत्र प्रफुल्लितहोआये और प्राण और अपान नाड़ी में छिद्रोंकेमार्ग्ग विचरनेलगे। जैसे वायुसे कमलस्फुरनलगते हैं तैसेही मन और प्राणशक्ति से अङ्गफुरनेलगे और जाग जाग शब्द जो भगवान् कहतेथे उससे वह जगा और उसने जाना कि, मुझको विष्णु भगवान्ने जगाया है और जैसे मेघका शब्दसुनकर मोर प्रसन्न होताहै तैसे वह प्रसन्नहुआ और मनमें दृढ़ स्मृति होआई। तब त्रिलोकीके ईश्वरविष्णुदेवने, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्मासे कहाथा कहा कि, हेसाधु! तूअपनी महालक्ष्मीको स्मरणकर कि, तू कौन है। समय विनादेहके त्यागनेकी इच्छा क्याकीथी। जो ग्रहणत्यागके संकल्पसे रहित पुरुष हैं उनको भाव अभावके होने में क्या प्रयोजन है? उठकर अपनेआचारमें सावधान हो, तेरा यह शरीर कल्पपर्यंत रहेगा और नष्ट नहींहोगा। इसनीतिको ज्योंकी त्यों मैं जानताहूं। हे आनन्दित! त जीवन्मुक्तहुआ राज्यमें स्थितहो। हे क्षीणमन! गतउद्वेग तेरा देह कल्पपर्यंत रहेगा और फिर कल्पके अन्तमें तूशरीर त्यागकर अपनी महिमा में स्थितहोगा—जैसे घट-के फूटेसे घटाकाश महाकाश को प्राप्तहोता है। अवतू निर्मल दृष्टिको प्राप्तहुआ है; लोकोंका पारावार तूने देखाहै और अब तू जीवन्मुक्त विलासीहुआहै। हेसाधु! द्वादश सूर्य जोप्रलयकालमें तपते हैं उदयनहीं हुये तो तूक्यों शरीर त्यागता है; उन्मत्त पवन

जो त्रिलोकीकी भस्म उड़ानेवाला वहतो नहींचला है और देवताओंके विमान उस से नहींगिरे तू क्यों व्यर्थ शरीरत्यागता है ? सब लोगोंके शरीर सूखेवृक्षकी मञ्जरिवत् नहीं सूखे; पुष्कर मेघ और वह बिजुली फुरनेनहींलगी पर्वततो युद्ध करके परस्पर नहीं गिरनेलगे, अबतक मैं भूतोंको खेंचने नहींलगा लोकोंमें विचरताहूं । यह अर्थ हैं, यह मैंहूं, यहपर्वत है, ये भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देह मत त्याग; देहको धारेरह । हे साधो ! जो जीव अज्ञान योग से शिथिल हुआ है अर्थात् जिसकी देहमें आत्म अभिमान है कि, मैं और ममसे व्याकुल रहताहै और दुःखोंसे जीर्ण होता है उसको मरना शोभता है । जिसको तृष्णा जलाती है और हृदय में संसारभावना जीर्ण करती है और जिसके मनरूपी वनमें चित्तरूपीलता दुःख सुखरूपी पुष्पोंसे प्रफुल्लित है और उदय होती है उसको मरना श्रेष्ठ है । जो पुरुष अपनी देहमें आधिव्याधि दुःखोंसे जलता है और जिसके हृदयमें काम क्रोध रूपी सर्पफुरते हैं और देहरूपी सूखावृक्ष निष्फल है और चित्त चञ्चल है ऐसी देह के त्यागनेको लोकमें मरना कहते हैं;स्वरूपमें नाश किसी का नहीं होता । क्याज्ञानी का हो क्या अज्ञानीका हो । हे साधो ! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनसे उप- रान्त नहीं होती ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है और जिसका हृदय राग द्वेषसे रहित शीतल हुआ है और दृश्यवर्गको साक्षीभूत होकर देखता है उसका जीना श्रेष्ठ है । जो पुरुष सम्यक् ज्ञानद्वारा हेयोपादेयसे रहित है और चेतनतत्त्व में तद्रूप चित्त हुआ है; जिसने सङ्कल्प मलसेरहित चित्तको आत्मपद में लगाया है और जिस पुरुषको जगत् के इष्ट-अनिष्ट पदार्थ समान भासते हैं और शांतचित्त हुआ लीलावत् जगत्के कार्य करता है; जो इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेष नहीं करता, जिसे ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती और जिसके श्रवण और दर्शन किये से औरोंको आनन्द उपजता है उसका जीना शोभता है । जिसके उदयहुयेसे जीवोंके हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं उसका चिरजीना प्रकाशवान् शोभताहै और वही पूर्णमासीके चन्द्रमावत् सफल प्रकाशताहै—नीच नहीं शोभते ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेनारायणवनोपन्यासयोगो नामएकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९ ॥

श्री भगवान् बोले, हे साधो ! यह जो देहसंग दृष्टि आती है उसका नाम जीना कहते हैं और इसदेहको त्यागकर और देहमें प्राप्त होनेका नाम मरना है । हे बुद्धि- वान् ! इन दोनों पक्षोंसे अब तू मुक्त है; तुझको मरना क्या है और जीना क्या है— दोनों भ्रम मात्र हैं । इस अर्थके दिखाने के निमित्त मैंने तुझसे मरना और जीना कहा है कि, गुणवानों का जीना श्रेष्ठ है और मूढ़ों का मरना श्रेष्ठ है पर तू न जीता

है, न मरेगा। देहके होते भी तू विदेहहै और तेरे आकाश की नाईं अङ्ग हैं। जैसे आकाशमें वायु नित्य चलताहै परन्तु उससे आकाश निर्लेप रहताहै तैसेही तू देहमें निर्लेपरहेगा। देह, इन्द्रियां, मन आदिककी क्रिया सब तुझसे होतीहैं, सबका कर्त्ता और सत्तादेनेवालातूहीहै और स्वरूपसे सदाअकर्त्ताहै। जैसे वृक्षकीउंचाईकाकारण आकाश है तैसेही तेरे में कर्त्तव्य है। तू अब जागा है, तूने वस्तु ज्योंकी त्यों जानी है और तू आस्ति नास्ति सर्व्व का आत्मा है। यह परिच्छिन्नरूप जो देहहै सो अज्ञानीका निश्चयहै और यह केवल दुःखोंका कारणहै। तू तो सर्व्वप्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है और तुझको देह अदेह क्या और ग्रहण और त्याग क्या। जो तत्त्वदर्शी पुरुष हैं उनका भाव पदार्थ उदयहो अथवा लीनहो और प्रलयकालका पवनचले तो भी उसको चला नहीं सक्ता और जिसका मन भाव अभावसे रहित हैवह जो पर्व्वतके ऊपर पर्व्वत पड़े और चूर्णहो और कल्पकी अग्निमें जलनेलगे तो भी अपने आपमें स्थित है–चलायमान नहीं होता। सबभूत स्थित होवें; इकट्ठे नष्ट होजावें अथवा वृद्ध होवें वह सदा अपने आप में स्थित है। इसदेहके नष्टहुये नाश नहीं होता और विरोधीहुये प्राप्त नहीं होता। इसदेहमें जो परमेश्वर आत्मा स्थित है वह मैंहूं। मेरा अनात्मा भ्रम नष्ट होगया है और ग्रहण त्याग मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती। जो विवेकी तत्त्ववेत्ता हैं उसका संकल्प भ्रम नष्ट होजाता है और जो प्रबुद्ध पुरुष हैं वह सब क्रिया करता भी अकर्त्ता पदको प्राप्त होता है। वह सर्व्व अर्थोंमें अकर्त्ता, अभोक्ता रहताहै और जगत्के किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता। जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत होता है तब आत्मपद शेषरहता है। इसनिश्चयकी दृढ़ताको बुद्धिवान् और मुक्त कहते हैं। प्रबुद्ध पुरुष चिन्मात्र स्वरूप है और सबको अपने वशकरके स्थित है; वह ग्रहण किसकाकरे और त्याग किसकाकरे। ग्राह्य और ग्राहक शब्द भाव अविद्या है और देह इन्द्रियोंसे होता है सो ग्रहण करना क्या और त्यागकरना क्या? जब ग्राह्य-ग्राहक भाव हृदयसे दूरहुआ उसी का नाम मुक्त है। जिसको ऐसी स्थिति उदय होती है वह परमार्थसत्तामें सदास्थित रहता है और वह पुरुषों में पुरुषोत्तम सुषुप्तकी नाईं स्थित है; उसके अंगों की चेष्टा बोधको प्राप्त हुईहै। परम विश्रान्ति-वान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत्में स्थित दृष्टि आती है और अर्द्ध सुषुप्तकी नाईं चेष्टा करते हैं पर वे सब जगत् में आत्मा देखतेहैं। वे आत्माविषयिणि बुद्धिसे सुखमें हर्षवान् नहीं होते और दुःखमें भी शोकवान् नहीं होते एकरस आत्म-पदमें स्थित रहते हैं। नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करताहै पर जैसे इच्छासे रहित दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है तैसेही भलीबुरी भावना उसको स्पर्श

नहीं करती। वह आत्मपद में जाग्रत है और संसारकी ओरसे सोया है और सुषुप्ति रूप है। जैसे पालनेमें सोयाहुआ बालक स्वाभाविक अङ्गहिलाता है तैसेही उसका हृदय सुषुप्तिरूप है और व्यवहार करता है । हे पुत्र ! तू अजात परम पदको प्राप्त हुआ है। तू इसदेहसे ब्रह्माका एकदिन भोगेगा और इस राज लक्ष्मीको भोगकर फिर अच्युत परमपदको प्राप्त होगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादबोधोनाम
चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अद्भुत जिसका दर्शन है ऐसे जगत्रूपी रत्नोंके डब्बे विष्णुदेवने जब शीतल वाणीसे इसप्रकार कहातब प्रह्लादने नेत्रोंको खोलकर धैर्य सहित कोमल वचन और मननभावको ग्रहण करके देखा और चर्म दृष्टिसे बाहर देखा कि, बड़ा कल्याण हुआ है। परमेश्वर अपना आपस्वरूप अनन्त आत्मा है और सर्व सङ्कल्पसे रहित आकाशवत् निर्मल है। अब मुझको न शोक है,न मोह है और न वैरागसे देहत्यागकी चिन्ता है । जो कुछ कार्य भयदायक होता है सो एक आत्माके विद्यमान रहते शोक कहां; नाश कहां; देहरूपी संसार कहां; संसारकी स्थिति कहां, भय कहां और अभयता कहां; मैं यथा इच्छित अपने आपमें स्थितहूं। इसप्रकार मैं निर्मल विस्तृतरूप केवल पावन में स्थितहूं और संसार बन्धनको त्यागकर विरक्त हुआहूं। जो अप्रबुध मूढ़ हैं उनकी बुद्धिमें हर्ष,शोक,चिन्ता, विकार सदारहता है। वे देहके भावमें सुख मानते हैं और अभाव में दुःखी होते हैं। यह चिन्तारूपी विषकी पंक्ति मूढ़ोंको लेपायमान होती है । यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है; यह त्यागने योग्य है; इसप्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है पण्डितोंकी नहीं होती । मैं भिन्नहूं और वह भिन्न है यह अज्ञान से अंधवासना है, शुद्धबुद्धिके विद्यमान नहीं रहती जैसे सूर्यकी किरणों से रात्रि दूर रहती है तैसेही यह वासना दूर रहती है । यह त्याग और यह ग्रहण कीजिये सोमिथ्या चित्तका भ्रम है और उन्मत्त अज्ञानी के हृदयमें होता है; ज्ञानवान् के हृदय में यहभ्रम उदय नहीं होता है। हे कमलनयन ! सर्व तूही है और विस्तृत आत्मरूप है। हेयोपादेय और द्वैतभाव कल्पना कहां है ? यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताकाआभासहै। सत्यअसत्यरूप जगत्में ग्रहणत्याग किसका कीजिये। केवल अपने स्वभावसे द्रष्टा और दृश्यका विचार किया है उसमें मैं प्रथम क्षीण विश्रान्तवान् हुआथा अब भाव अभाव जगत्के पदार्थोंसे मुक्तहुआहूं और हेयोपादेय से रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है और समभावको प्राप्त हुआहूं । अब मुझको संशय कुछनहीं रहा, जोकुछ करताहूं वह आत्मासे करताहूं। त्रिलोकी में तब

तकतू पूजने योग्य है जवतक उन्मत्तनहीं हुआ इससे मैं आदर संयुक्त पूजन करता हूं तुम ग्रहण करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार दैत्यराजने कहकर क्षीर समुद्रमें शयन करनेवाले विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसे पूजा और फिर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदिक शस्त्रोंका पूजन करके गरुड़की पूजाकी और फिर देवता और विद्याधरों की पूजाकी। इसप्रकार भगवान्‌के आत्मस्वरूप का हृदयमें ध्यान रखके परिवार संयुक्त पूजन किया, तव लक्ष्मीपति वोले; हे दैत्येश्वर! तू उठकर सिंहासन परवैठ, मैं तुझको अपने हाथसे अभिषेक करताहूं और पांचजन्य शंख वजाताहूं उसका शब्द सुनकर सवसिद्ध और देवता आकर तेरामङ्गल करेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको इस भांति सिंहासन पर बैठाया जैसे सुमेरुपर मेघ आवैठे और फिर क्षीरसमुद्र और गङ्गादि तीर्थोंका जलमँगाके पांचजन्य शंख वजाया जिसके शब्दसे सव सिद्धगण, ऋषि, ब्राह्मण, विद्याधर, देवता और मुनियोंके समूहआये और सवने स्तुतिकी। इस प्रकार अभि-षेक देकर मधुसूदन बोले, हे निष्पाप! जवतक सुमेरुके धरनेवाली पृथ्वी और सूर्य चन्द्रमाका मंडलहै तवतक तू इष्टअनिष्टमें समबुद्धि;वीतराग और क्रोधसे रहित होकर राजभोग और राज्यकी पालनाकीजिये। तुझको पूर्णभूमिका प्राप्तहुई है उसमें स्थित होकर जैसे प्राप्तहो तैसेही हर्ष शोक और उद्वेगसे रहित होकर विचरो। हेयोपादेय से रहितहो। तू बंधमान् न होगा। संसारकी स्थिति तूने सव देखीहै और सवको जानता है अव मैं तुझको क्या उपदेशकरूं। तू राग द्वेषसे रहित होकर राज भोग, अव दैत्योंका रुधिर धरतीपर न पड़ेगा अर्थात् देवताओंके साथ विरोध न होगा। आजसे देवता और दैत्योंका संग्रामगया। जैसे मंदराचलसे रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् हुआथा तैसेही सव जगत् स्वस्थ रहेगा। मोहरूपीतम तेरे हृदयसे दूर हुआ है और सदाप्रकाशस्वरूप लक्ष्मीहुई है और अनन्त विलासोंको राजलक्ष्मी से भोगता आत्मपदमें स्थितरह॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादाभिषेकोनाम
एकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर पुण्डरीकाक्ष परिवार संयुक्त चले मानो दूसरी संसारकी रचना दैत्यके मन्दिरसे चली है। तिस पीछे प्रह्लादने पुष्पां-जलिदी और क्रमसे क्षीरसमुद्रमें पहुंचे और देवताओंको विदाकरके आप शेषनाग के आसनपर जैसे श्वेतकमलपर भँवरा वैठे तैसे स्वस्थहोकर वैठे। हे रामजी! यह दृष्टि अज्ञान के सम्पूर्ण मलके नाशकरनेवाली है। प्रह्लाद को बोध की प्राप्तिकी जो

अवस्था मैंने तुमसेकही है वह चन्द्रमाके मण्डलवत् शीतल है। जो मनुष्य बड़ापापी हो और इसको विचारे तो वहभी शीघ्रही परमपदको प्राप्तहो और जो पापसे रहित है उसकी क्या वार्त्ता कहिये केवल सम्यक् विचार करके पाप नष्टहोजाताहै। वह कौन है जो इनवाक्योंको विचारके परमपदको न प्राप्तहो। हे रामजी ! अज्ञानरूप पाप इसके विचारसे नष्टहोजाते हैं और पापोंका कारण जो अज्ञान है उसका नाश करने वाला यह विचार है—इससे विचारका त्याग कदाचित् न करो । यह जो प्रह्लादकी सिद्धता कही है इसको जो मनुष्य विचारे उसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट होजावें इसमें कुछ संशय नहीं। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! प्रह्लादका मन तो परम पदमें लगगयाथा पांचजन्य शब्दसे उसको विष्णुजीने कैसे जगाया ? वशिष्ठजी बोले, हे निष्पापरामजी! लोकमें मुक्ति दोप्रकारकीहै एक सदेह और दूसरी विदेह, उनका भिन्न भिन्न विभागसुन। जिसपुरुषकी बुद्धिदेहादिकों से असंशक्ति है और जिसको ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं और निरहंकारहुआ चेष्टाकरता है उसको तुम सदेह मुक्तजानो और देहादिक सब नष्ट होजावें फिर न जन्म धारण करे उसको विदेह मुक्तजानो। वह उस पदको प्राप्तहोता है जो अदृश्यरूप है। अज्ञानीकी वासना कच्चेबीजकी नाईं है जो जन्मरूपी अंकुरको प्राप्तकरती है और ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूनेबीजकी नाईं जो जन्मरूपी अंकुरसे रहित होती है। विदेहमुक्तकी वासनाकाअंकुर दृष्टि नहीं आता जीवन्मुक्त पुरुषके हृदयमें शुद्ध वासना होती है और पावनरूप परम उदारता सत्ता मात्र नित्य आत्म ध्यानमें है और संसार की ओरसे सुषुप्ति की नाईं शांतरूप है। सहस्र वर्ष का अन्त होजावे और शुद्ध वासनाका बीज हृदयमें हो तो वह पुरुषसमाधिसे जागेगा—वह जीवन्मुक्तहै। इससे प्रह्लादके हृदयमें शुद्धवासनाथी उससे पांचजन्य शंखके शब्दसे वह जागा। विष्णुजी सब भूतोंके आत्मा हैं जैसे जिसकी इच्छा फुरती है तैसेही तत्काल होता है और वे सर्वज्ञ और सबके कारण हैं। जब विष्णुने चिन्तनाकी तब प्रह्लाद जागा। आप अकारण है कोई इसकाकारण नहीं यही सब भूतोंका कारण है। सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषने विष्णु वपुधारा है और आत्माके देखनेहीसे विष्णुजीका दर्शन होता है और विष्णुकी आराधनासे शीघ्रही आत्माका दर्शन होता है। आत्माके देखने के निमित्त तुमभी इसी दृष्टिका आश्रय करो। तुम विराट्रूपहो,इसी दृष्टिसे शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। यह वर्षाकाल की नदीवत् संसार असार बादलहै सो विचाररूपी सूर्यके देखे विना जड़ता दिखाता है। विष्णुरूप जो आत्मा है उसकी प्रसन्नतासे बुद्धिमान्को यह भास्वररूप माया नहीं वेधती। जैसे यक्ष माया यंत्रमंत्रवाले को नहीं बधसक्ती तैसेही आत्माकी इच्छा से यह संसार माया घनताको प्राप्तहोती है और आत्माकी इच्छासे निवृत्तहोती है।

यह संसार माया ईश्वरकी इच्छासे वृद्ध होती है-जैसे अग्निकी ज्वाला वायुसे वृद्ध होती है और वायुहीसे नष्ट होती है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादव्यवस्थावर्णनन्नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४२ ॥

इतना सुनकर रामजी ने पूंछा,हे भगवन् सब धर्म्मों के वेत्ता! आपके वचन परम शुद्ध और कल्याणस्वरूप हैं जिनको सुनकर मैं आनन्दवान् हुआहूं-जैसे चन्द्रमा की किरणोंसे औषधि पुष्ट होती है-और आपके वचनोंके सुननेको, जो पावन और कोमल हैं, जिसकी वांछा है वह पुरुष जैसे पुष्पोंकी मालासे सुन्दरछाती शोभती है तैसेही शोभता है । हेगुरु ! आप कहते हैं कि,सवकार्य अपने पुरुष प्रयत्नसे सिद्ध होते हैं; जो ऐसे है तो प्रह्लाद माधवके वरविन क्यों जागा-जव विष्णुने वरदिया तव उसको ज्ञान प्राप्तहुआ ? वशिष्ठजी वोले,हेराघव ! प्रह्लाद को जो कुछप्राप्त हुआ वह पुरुपार्थसे प्राप्तहुआ; पुरुपार्थविन कुछ प्राप्त नहीं होता । जैसे तिलों और तेलमें कुछ भेद नहीं तैसेही विष्णु भगवान् और आत्मामें कुछ भेद नहीं । विष्णु है वह आत्माहै और जो आत्माहै वह विष्णु है;विष्णु और आत्मादोनों एक वस्तुके नाम हैं जैसे विटप और पादप दोनोंएक वृक्षके नाम हैं। प्रह्लादने जो प्रथम अपने आपसे अपनी प्रेमशक्ति विष्णुभक्तिमें लगाई सो आत्मशक्तिसे लगाई; आत्मासे आपही वरपाया और आपही विचारकर अपने मनको जीता। कदाचित् आत्मामें आपही अपनी शक्तिसे जागता है अथवा विष्णु शक्तिसे जागताहै । हे रामजी! प्रह्लाद चिर पर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ। विचारसे रहितको विष्णुभी ज्ञान नहीं देसक्ता। आत्माके साक्षात्कार में मुख्य कारण अपने पुरुषार्थसे उपजा विचार है और गौणकारण वर आदिकहै; इससे तू मुख्य कारणका आश्रयकर। प्रथम पांचों इन्द्रियोंको वशकर और चित्तको आत्मविचार में लगा । जोकुछ किसीको प्राप्तहोता है वह अपने पुरुषार्थसे होता है;पुरुपार्थ विना नहींहोता। अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे इन्द्रियरूपी पर्व्वत को लांघे तो फिर संसार समुद्रसे तरजावे और तव परमपदकी प्राप्तिहो । जो पुरुष यत्न विना जनार्द्दन मुक्तिदें तो मृगपक्षियोंको क्यों दर्शन देकर उद्धारनहीं करता जो गुरु अपने पुरुषार्थ विना उद्धार करते तो अज्ञानी अविचारी ऊंट, वैल आदिक पशुओं को क्यों नहीं करजाते । इससे विष्णु,गुरु इत्यादि और किसीके पानेकी इच्छा वुद्धिमान् नहीं करते हैं । अपने मनके स्वस्थकिये विना परम सिद्धता की प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते। जिन्होंने वैराग्य और अभ्याससे इन्द्रियरूपी शत्रु वशकियेहैं वे अपने आपसे उसको पाते हैं और किसीसे नहींपाते। हे रामजी ! आपसे अपनी आराधना और अर्चनाकरो; आपसे आपको देखो और

आपसे आपमें स्थितरहो। शास्त्रविचारसे रहित मूढ़ोंकी प्रकृतिके स्थितिके निमित्त वैष्णव भक्तिकल्पी है प्रथम जो अभ्यास यत्नका सुख कहाहै उससे जोरहित पुरुष हैं उसको गौणपूजाका क्रमकहा है क्योंकि; उसने इन्द्रियों को वश नहीं किया और जिसने इन्द्रियोंको वशकिया उसको भेदपूजासे क्या प्रयोजन है। विचार और उप-शम विनाभी विष्णु भक्ति सिद्धनहीं होती और जब विचार और उपशम संयुक्त हुआ तबकमल और पाषाणसे क्या प्रयोजनहै। इससे विचार संयुक्तहोकर आत्मा का आराधन करो; उसकी सिद्धतासे तुम सिद्धहोगे जिसने उसको सिद्धनहीं किया वह वनका गर्दभ है जोप्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं वे अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते? सब जीवों के भीतर विष्णुजी स्थित हैं उनको त्यागकर जो बाहर के विष्णु परायण होजाते हैं वे बुद्धिमान् नहीं। हृदय गुफामें जो चेतनतत्त्व स्थित है वह ईश्वर का मुख्य सनातन वपु है और शंख,चक्र,गदा,पद्म जिसके हाथमें है वह आत्माका गौण वपु है। जो मुख्यको त्यागकर गौणकी ओर धावते हैं वे विद्यमान अमृत को त्यागकर जो साधनसे सिद्धहो उसकी प्राप्ति निमित्त यत्नकरते हैं। हे राम जी! मनरूपी हाथीको जिस पुरुषने आत्म विवेकसे वश नहीं किया उस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते। जिसके हाथोंमें शंख,चक्र,गदा,पद्म है उस ईश्वर की जो अर्चना करते हैं वे कष्ट तपस्यासे पूजनकरते हैं; उनका चित्त समय पाकर निर्मलभाव, अभ्यास और वैराग्य को प्राप्तहोता है। नित्य अभ्याससे भी चित्त निर्मल होताहै तो आत्मफल को प्राप्तहोताहै; चित्त निर्मल विना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता और जब चित्त निर्मलहुआ तब वैराग्य और अभ्यासवान् होकर आत्म फलका भोगी होताहै — जैसे बोयाबीज समयपाकर फलदेता है तैसेही क्रम करके फलहोता है। हे रामजी! विष्णु पूजाका क्रमभी निमित्तमात्र है। आत्मतत्त्व के अभ्यासरूपी शाखा से फल प्राप्तहोता है और जो सब से उत्तम परम संपदाका अर्थ है वह अपनेमनके निग्रहसे सिद्धहोताहै। अपने मनका निग्रह करनाही बीजहै जो चेतनरूपी क्षेत्रसे प्रफुल्लित होकर फलदायक होता है। संपूर्ण पृथ्वी की निधि और शिलामात्र बड़ी २ मणिकीहोवें तौभी मनके निग्रहके समान नहीं। जैसा दुःख का नाशकर्त्ता और बड़ा पदार्थ मनको निग्रह है वैसा और कोई नहीं। जबतक जीव अनेकजन्म पाता है तबतक अनउपशम मनरूपी मत्स्य संसार समुद्रमें भ्रमाता है। हेरामजी! ब्रह्मा,विष्णु और महेशको चिरकाल पर्यंत पूजतारहे पर यदि मनउपशम और विचार संयुक्त न हुआ तो देवता कृपालहों तो भी उसको संसार समुद्रसे नहीं तारसक्ते। यहजो भास्वर आकार जगत्के पदार्थभासतेहैं उनको इन्द्रियोंसेत्याग कीजिये तब जन्मके अभावका कारण जानिये। विषयों की चिन्तनासे रहित होकर,

निरामय और सब दुःखोंसे रहित आत्मसुख में स्थितहो और जो सत्तामात्र तत्त्व है और सबका साररूप है उसका स्वादलेकर मनरूपी नदीके पारहो॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादविश्रांतिवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः४३
वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! यह संसाररूप नाम्नी माया अनन्त है और किसीप्रकार इसका अन्तनहीं आता। जब चित्त वशहो तब यह निवृत्तहोजाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती। जितना जगत् देखने और सुननेमें आता है वहसब मायामात्र है और मायारूप जगत्के भ्रमसे भासता है। इसपर एक पूर्व इतिहासहुआ है सोतुम सुनो। हे रामजी ! इस पृथ्वीपर कोशलनाम एक देशहै जो सुमेरुपर्व्वतवत् रत्नोंसे पूर्ण है और जो २उत्तम पदार्थ हैं वे सब उस देशमें हैं वहांगाधिनाम एक ब्राह्मणजो वेदोंमें प्रवीण—मानों वेदकी मूर्त्तिथा—रहताथा बाल्यावस्थासे वह वैराग्यादिक गुणोंसे प्रकाशित भुवनवत् शोभताथा। एकसमय वह कुछकार्य मनमें धरके तपकरनेके निमित्तवनमें गया औरउस वनमें एक कमलोंसे पूर्णताल देखकंठपर्यंत जलमें खड़ाहोकर तपकरनेलगा। आठमासपर्यंत दिन रात्रिजबजलमें खड़ारहातो उसके दृढ़तपको देखकर विष्णुप्रसन्न हुये और जहां वह ब्राह्मण तप करताथा वहां,ज्येष्ठ आषाढ़की तपी पृथ्वीपर मेघवत् आकर कहा, हे ब्राह्मण ! जलसे बाहर निकल और जो कुछ वांछित फलहै वह मांग तब गाधिने कहा, हे भगवन् ! असंख्य जीवोंके हृदयरूपी कमलके छिद्रमें आप भँवरे हैं और त्रिलोकीरूपी कमलों के आप तड़ाग हैं आप ऐसे ईश्वर को मेरा नमस्कार है। हे भगवन् ! यही इच्छा मुझको है कि, आपकी आश्चर्य्यरूप माया को, जिससे यह जगत् रचा है, किसी प्रकार देखूं। तब विष्णुजी ने कहा,हे ब्राह्मण ! तुम माया देखोगे और देखकर फिर त्याग भी दोगे। ऐसे कहकर जब विष्णु अन्तर्द्धान होगये तब ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ और जलसे निकला जैसे निर्द्धनपुरुष धनपाकर आनन्दवान् होताहै तैसेही वह ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ। चलते बैठते उसकी सुरत विष्णु के वरकी ओर लगीरहे और यही विचारे कि, मैं माया कब देखूंगा। एक काल में उसी तालाब पर वह स्नानकरने लगा और डुबकी मार मनमें अघमर्षणमंत्र जपने लगा (अघमर्षण पापों के नाशकरने वाले मंत्रको कहते हैं) उस मंत्रको जपते २ जब उसका चित्त विपर्यय होकर निकल गया तब उसको कृष्ण मंत्र भूलगया और आपको फिर अपने गृह में स्थित देखा। फिर उसने आपको मृतक हुआ देखा और देखा कि, सब कुटुम्बके लोग रुदनकरते हैं और शरीर की कांति ऐसी जातीरही है जैसे टूटे कमलोंकी शोभाजाती रहती है। जैसे पवनके ठहरेसे वृक्षअचल होजाते हैं तैसेही अङ्गअचल होगया और होठफटकर विरसहोगये मानों अपने जीनेको हँसते हैं। मातागाधिको पकड़े बैठीरही

और सब परिवारवाले ऐसे इकट्ठेहुये जैसे वृक्षपर पक्षी आन इकट्ठेहोते हैं और जैसे पुलके टूटे जल चलता है तैसेही रुदन करते हैं फिर बांधवलोग कहनेलगे कि, अब यह अमङ्गलरूप है, इसको जलाना चाहिये । ऐसे कहकर उसे सब जलानेले चले और चितामें डालके जलादिया और फिर अपने गृहमें आकर क्रियाकर्म किया । हे रामजी ! उस के उपरान्त वह ब्राह्मण एकदेश में चाण्डाल हुआ । उस देश में एक चाण्डालों का ग्रामथा वहां उसने एक चाण्डालीके गर्भमें, श्वानकी विष्ठा में कृमिवत् प्रवेश हुये देखा और समयपाकर गर्भसे बाहर निकला—जैसे पक्काफल वृक्षसे गिरताहै,तो वहां वह बहुतसुन्दर बालकजन्मा और चाण्डाली इससे प्रीति करनेलगी। इसप्रकार दिन२ बढ़नेलगा जैसे छोटावृक्ष बढ़जाताहै । निदान वह बारहवर्षका होके फिर सोलह वर्षका हुआ तब श्वानोंको साथलेकर वन में जावे और मृगोंको मारे और इसीप्रकार बहुत स्थानों में विचरे । फिर उसका विवाह हुआ तब उसने यौवन अवस्थाको यौवनमें व्यतीतकिया और बहुत बड़ा कुटुम्बीहुआ । फिर जब वृद्धहोकर शरीर जर्ज्जरीभूत होगया तो तृणोंकी कुटी बनाकर बाहरजा रहा—जैसे मुनीश्वर रहते हैं । दैववशात् वहां दुर्भिक्षपड़ा और इसके बांधव क्षुधासे मरनेलगे तब वहांसे अकेला निकला और बहुतेरे स्थान लांघता हुआ क्रांतदेश में पहुंचा । उस सुन्दर देशका राजा मरगया था और उसके मंत्रियोंने एक बड़े हाथीको इस निमित्त छोड़ा था कि, जो कोई पुरुष इसके मुखसे लगे उसको राजा कीजिये यह राजमार्गमें चला जाताथा उस हाथीको देखा कि, बहुत सुन्दर चरणों से सुमेरुपर्व्वतवत् चलाआता है । जब निकटआया तब उसने इसको शीशपर ऐसे चढ़ालिया जैसे सूर्यको सुमेरु शीशपर बैठाले । इसकेहाथी पर आरूढ़ होतेही नगारे और तुरियां बजनेलगे और बड़ेशब्द होनेलगे—मानों प्रलयकालके मेघ गर्ज्जते हैं; भाट आदिक आनकर स्तुति करनेलगे और हाथीपर बैठे से इसके मुखकी शोभा औरही होगई । निदान सेना सहितराजा ऐसा शोभायमानहुआ जैसे तारोंमें चन्द्रमा शोभताहै और अन्तःपुरमें जाकर रानियों में बैठा और सब रानियां और सहेलियां इसके निकट आई और इससे मिलनेलगीं । सहेलियोंने स्नान कराके, नानाप्रकारके हीरे, मोती, भूषण और सुन्दर वस्त्रपहिराये । निदान सबप्रकार सुशोभित होकर राज्य करनेलगा और सब स्थान और सबदेशों में इसकी आज्ञा चलनेलगी और सबलोग इससे भयपावें । वहां वह बड़ेतेज और लक्ष्मीसे सम्पन्नहुआ और तेजवान् होकर ऐसे विचरनेलगा जैसे वन में सिंह विचरता है और हाथीपर चढ़कर शिकार खेलनेजाता था । वहां उसका नाम गावल हुआ ॥

इतिश्रीयोगवा०उपशमप्र०गावलोपाख्यानचांडालनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! इसप्रकार लक्ष्मीपाकर वह आनन्दवान् हुआ और जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभता है तैसेही शोभितहुआ। जब आठवर्षपर्यंत इस प्रकार राज्यकिया तब एकदिन उसके मन में सङ्कल्प फुरा कि,मुझको वस्त्र और भूषणोंके पहिरनेसे क्याहै और इनकी सुन्दरता क्याहै;मैं तो राजाधिराज हूं और अपने तेजसे तेजस्वी शोभायमान हूं। हे रामजी! ऐसे विचारकर उसने भूषण उतारडाले; शुद्धश्याम मूर्त्तिहोकर स्थितहुआ और जैसे प्रातःकाल में तारागणोंसे रहित श्याम आकाश होता है तैसेही होकर फिर अपनी चाण्डाल अवस्थाके वस्त्रपहिन अकेला निकलकर बाहर डेवढ़ीपर जा खड़ाहुआ। निदान उसदेशके बड़े चाण्डाल जिनको यह दुर्भिक्ष से छोड़आया था उसमार्ग में आ निकले;उनमें एक चाण्डाल तन्त्री हाथ में लिये आता था उसने राजा को देखकर पहिचाना और श्यामपर्व्वतवत् राजाके सन्मुख आकर कहा; हे भाई ! इतनेकाल तू कहांथा ? हमको छोड़कर यहां आकर सुख भोगनेलगा है ? हे भाई ! यहां के राजाने तुझको सुखीकिया होगा क्योंकि; तू गाताभला है ? राजाको राग प्यारा होता है और तू कोकिला की नाईं गाताहै इस कारण प्रसन्नहोकर उसने तुझे बहुत धनदिया होगा अथवा किसी और धनी ने तुझसे प्रसन्नहोकर मन्दिर और धन दियाहोगा। हे रामजी ! इसप्रकार वह चांडाल मुखसे कहता और भुजा फैलाता इसके सन्मुख चला और यह नेत्रों और हाथोंसे उसको संकेतकरे, कि चुपरह पर वह चांडाल कुछ न समुझे सन्मुखहोकर चलाही आवे। ज्यों ज्यों वह पासआता था त्यों त्यों राजा की कांतिघटती जाती थी कि, इतने में झरोखों में से सहेलियोंने देखा और देखकर विचार किया कि यह राजा चाण्डाल है। ऐसे विचारकर वे महाशोकको प्राप्तहुईं और कहनेलगीं कि, हमको बड़ा पाप हुआ कि, इसके साथ हमने स्पर्श और भोजनाकिया । इस शोकसे सबकी कान्ति नष्ट होगई जैसे वर्फपड़नेसे कमल पंक्तिकी कान्ति जाती रहती है; और जैसे वन में अग्नि लगनेसे वृक्षोंकी कान्ति जाती रहती है तैसेही उनकी कान्ति जाती रही। सब नगरवासी भी यह सुनकर शोकवान् हुये और हाय२ शब्द करनेलगे। जब वह चाण्डाल राजा अपने अन्तःपुरमें आया तो उसको देखकरके सब भागे और निकट कोई न आताथा। जैसे पर्व्वत में अग्नि लगे तो वहांसे पशु पक्षी भागजाते हैं तैसेही चाण्डालराजा के निकट कोई न आवे। उस देश में जो बुद्धिमान् पण्डित थे उन्हों ने विचारकिया कि, बड़ा अनर्थ हुआ जो हम इतने कालतक चाण्डालराजा से जिये। हमको बड़ा पाप लगा है इसलिये इस पापका और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सबही चितावना के अग्निमें प्रवेश कर जल मरेंगे तब यह पाप निवृत्त होगा। हे रामजी ! ब्राह्मण और क्षत्रियों ने यह विचार करके

चिता बना पुत्र, कलत्र और बान्धवों को छोड़कर चिता में प्रवेश करनेलगे और जैसे दीपक में पतंग प्रवेश करें तैसेही जलने लगे । जैसे आकाश में तारे दृष्ट आवें तैसेही चिताका अनेक चमत्कार दृष्ट आताथा और धुवेंसे अन्धकार होगया । कोई धर्म्मात्मा मनुष्य अपनी इच्छासे जलें और जो अपनी इच्छासे न जलें उनको और लेजलावें । चाण्डालराजा ने विचारा कि, मुझ एकके निमित्त इतने नगरवासी व्यर्थ जलते हैं; इस संसार में उसका जीना श्रेष्ठ है जिस में शोभा उत्पत्तिहो और जिस के जीनेसे पापकी उत्पत्तिहो उसका मरना श्रेष्ठ है । हे रामजी ! ऐसे विचार कर उस राजाने भी चिता बनाई और जैसे दीपक में पतंग प्रवेश करता है तैसेही प्रवेश करगया । जब अग्नि का तेज शरीर में लगा तब गाधिका शरीर जो तलाव में डुबकी लगायेथा कांपा और जलसे बाहर शीश निकाला परन्तु सावधान न हुआ। इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले, कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य्य अस्त हुआ और सबसभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराजप्रध्वंसवर्णनन्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इतना भ्रम उसने दो मुहूर्त्त में देखा और अर्द्धघटी पर्य्यन्तउसे कुछ बोध न हुआ पर उसके उपरान्त बोधवान् हुआ और उस संसार भ्रमसे रहित हुआ । जैसे मद्यप नशेके क्षीणहुये बोधवान् हो तैसाही वह बोधवान् हुआ और बाहर निकलकर विचारने लगा कि,मुझको कुछ भ्रमसा हुआ है । कहां वह मेरा गृहमें मरना, फिर चाण्डालके गृह में जन्मलेना, फिर कुटुम्बमें रहना और फिर राज्यकरना । बड़ा भ्रम मुझको हुआ है । हेरामजी ! ऐसे विचारकर फिर उसने सन्ध्यादिक कर्म्म किये और इस भ्रमको फिर फिर स्मरण करके आश्चर्य्यवान्हो पर यह जानसके कि,भगवान्का वरपाकर मैंने यह माया देखी है । जब कुछकाल व्यतीतहुआ तबएक क्षुधार्थी दुर्बल ब्राह्मण थकाहुआ इसके आश्रमपर आया-मानों ब्रह्मा के आश्रमपर दुर्वासाऋषि आये-तब गाधिने उस ब्राह्मण को आदरसंयुक्त बैठाया और फल फूल इकट्ठे करके जैसे वसन्तऋतुमें फल फूलसे वृक्षपूर्णहोता है तैसेही उसको पूर्णकिया । वह ब्राह्मण कई दिन वहांरहा । संध्यादिक कर्म और मंत्र जाप दोनों इकट्ठेकरें और रात्रिको पत्रोंकी शय्या बनाकरशयनकरें ।एकरात्रिकेसमय शय्यापर बैठे दोनों चर्चा वार्त्ता करतेथे कि,प्रसङ्ग पाकर गाधिने पूछाहे ब्राह्मण ! तेरा शरीर जो ऐसा कृश और थका हुआहै इसका क्या कारणहै ? उसनेकहा हेसाधो ! जो कुछ तूने पूछाहै सो मैं कहताहूं,हमसत्यवादी हैं-जैसे वृत्तान्तहुआहै सो तू सुन । एक कालमें मैं देशान्तर फिरता फिरता उत्तर दिशाकी ओर गया और कान्त देशमें जा

पहुंचा और वहां रहनेलगा।वहांके गृहस्थ भलीप्रकार मेरी टहलकरें और उनकेभले भोजन और वस्त्रोंसेमें प्रसन्नहो रसस्वादसे मेरा चित्त मोहगया। एक दिन मेरे मुखसे यह शब्द निकला कि, यहांके लोग वहुत श्रद्धावान् और दयावान् हैं तव जोलोग पास वैठेथे कहने लगे, हेसाधो ! आगे यहां दया धर्म वहुतथा अव कुछ कम होगया है। तव मैंने पूंछा कि, क्यों ? तव उन्हों ने कहा कि, इस देशका राजा मृतक हुआ तव एक चाण्डाल राजाहुआथा। प्रथम किसीने न जाना और वह आठवर्ष पर्यन्त राज्य करता रहा। जव उसकी वार्ता प्रकट हुई कि, यह चाण्डालहै तव देशके रहने वाले ब्राह्मणक्षात्रिय चितावनाकरके जलमरे औरफिरराजा भी जलमरा। ऐसापाप इस देशमें हुआहै इसकारण दयाधर्म कुछ कम होगयाहै। हेब्राह्मण ! जव मैंने इसप्रकार नगर वासियों से सुना तव मैं वहुत शोकवान् हुआ और वहांसे यह विचारता चला कि, हायहाय मैं वड़पापी देशमें रहाहूं। ऐसे विचारकरमैं प्रयागादि तीर्थोंपर चला और तीर्थकरके कुछ और चान्द्रायणव्रतकरे अर्थात् कृष्णपक्षमें एकएकग्रासघटाता जाऊं और जव अमावास्या आवे तव निराहाररहूं और जवशुक्लपक्ष आवे तव एक-एकग्रास वढ़ाता जाऊं और पूर्णमासी के चन्द्रमाके कलासे वढ़ाना और कलाके घटना इसप्रकार मैंनेतीन कृच्छ्र चान्द्रायण किये हैं वहांसे चल तेरे आश्रमपर आकर व्रत खोला है। हे साधो ! इस निमित्त मेराशरीर कृश और निर्वल हुआ। हे राम जी ! जव इसप्रकार ब्राह्मणने कहा तव गाधि विस्मयको प्राप्तहुआ कि, मैं जानता था कि, मुझको भ्रम ऐसा होगयाहै सो इसने प्रत्यक्ष वार्त्ता कह सुनाई। ऐसेविचार कर फिर गाधिने पूंछा और फिर उसने ऐसेही कहा तव सुनकर आश्चर्य्यवान् हुआ। जव रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य्य उदय हुआ तव सन्ध्या आदिक कर्म्म किये और फिर एकान्त में विचारनेलगा कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है और ब्राह्मणने सत्य कैसे देखा; इससे अव उसदेशको चलकर देखूं जहां मुझको चाण्डालका शरीर हुआ था। हे रामजी ! इसप्रकार विचारकर मनोराज के भ्रमको देखने को गाधि ब्राह्मण चला और चलताचलता उस देश में जा पहुंचा। जैसे ऊंट कांटोंको ढूंढ़ता कण्टकों के वनमें जाता है तैसेही यह जव चाण्डालों के स्थानों को प्राप्तहुआ तव चाण्डालों के स्थान देखे और जहां अपना स्थान था उसको देखा और अपने खेती लगानेका स्थान देखा कि, कुछ वेड़ खड़ी है और कुछ गिरगई है और पशुके हाड़ चर्म्म जो अपने हाथसे डालेथे वे प्रत्यक्षदेखे और आश्चर्य्यवान् हुआ कि, हे देव ! क्या आश्चर्य्य है कि, चित्तकाभ्रम मैंने प्रत्यक्षदेखा। जो वालक अवस्था में क्रीड़ा करने के और भोजन और मद्य पीने के और पात्र इत्यादिक जो खानपान भोगके स्थानथे वह प्रत्यक्ष देखे और महावैराग्यको प्राप्त हुआ। ग्राम-

वासी मनुष्यों से भी पूछा कि, हे साधो ! यहां एक चाण्डाल वड़े श्याम शरीरवाला हुआ था तुमको भी कुछ स्मरण है ? हे रामजी ! जव इसप्रकार ब्राह्मणने पूछा तव ग्रामवासियोंने कहा; हे ब्राह्मण ! यहां एक कटजल नाम चाण्डाल क्रमकरके बड़ा हुआ, फिर उसका विवाह हुआ और बेटे बेटी परिवार सहित वड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर जव वृद्ध हुआ तो दैवसंयोगसे अकेला कहीं चलागया और जाता २ क्रान्त-देशमें वहां के राजाके मरनेके कारण वहांका राज इसको मिला और आठवर्ष पर्यन्त राज करता रहा। जव नगर वासियोंने सुना कि, यह चाण्डालहै तव वह वहुत शोक-वान् हुये और चितावनाकर जल मरे। इसप्रकार सुनकर गाधि वहुत आश्चर्यवान् हुआ और एक से सुनकर और से पूछा उसने भी इसीप्रकार कहा। ऐसे वारम्वार लोगों से पूछते रहा और एक मास वहां रह फिर आगे चला और नदियां, पहाड़, देश, हिमालय पर्वतोंकी उत्तरदिशा क्रान्तदेशमें पहुँचा। जिन स्थानों का वृत्तान्त सुना था सो सवही देखे। जहां सुन्दर स्त्रियांथीं और जहां चमर झूलते थे उनको प्रत्यक्ष देखा। फिर नगरवासियों से पूछा कि, यहां कोई चाण्डाल राजाभी हुआ है; तुमको कुछ स्मरण है तो मुझसे कहो ? नगरवासियोंने कहा,हे साधु ! यहां का राजा मरगयाथा और मंत्रियोंने एकहाथी छोड़ाथा कि, जो कोई मनुष्य इस हाथीकेसंमुख आवे उसको राजाकरें। जव वह हाथी चला तव उसके संमुख एक चाण्डाल आया और हाथीने जव उसचाण्डालको शीशपरचढ़ालिया तव और विचारकिसीनेन किया और उसको राजतिलक दिया। आठवर्ष पर्यन्त वह राजकरतारहा पीछे जव उसके वान्धव आये और उससे चर्चा करने लगे तव सहेलियोंने ऊपर से देखा कि, यह चाण्डाल है। ऐसे देख उन्हों ने उसका त्यागकिया और विचारवान् लोग जो उसके साथ चेष्टा करते थे वे उसे चाण्डाल जानकर जलमरे और वह राजा भी आपको धिक्कार कर जलमरा। अव उसको वारहवर्ष मृत्युपाये व्यतीतहुये हैं। हे रामजी ! इसप्रकार सुनके गाधिब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्तहुआ कि, कहां मैं जलमें स्थितथा और कहां इतनी अवस्था देखी। ऐसे विचारकरता था कि,इतनेमें पूर्व्वका वृत्तान्त स्मरण आया कि यह आश्चर्य्य भगवान् की माया है। मैंने वरमांगाथा इसमाया से इतना भ्रम देखा है। यह आश्चर्य्य है कि, यहां दो मुहूर्त्त वीते हैं और वहां स्वप्नभ्रम की नाईं इतनाकाल मुझको भासित हुआ और सतसास्थित हुआ है सो वड़ा आश्चर्य्य हे। इससे संशय निवृत्त करने के निमित्त फिर उन विष्णुजी का ध्यानकरूं जिनकी मायासे मैंने इतना भ्रम देखाहै और कोई इस संशयको दूर नहीं करसक्ता। हे रामजी ! इसप्रकार विचारकर गाधिब्राह्मण फिर पहाड़की कन्दरा में जाकर तप करनेलगा और केवल एक अंजुली जलपानकरे और कुछ भोजन न

करे। इसप्रकार डेढ़वर्ष पर्यन्त उसने तपकिया तव त्रिलोकी के नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्नहोकर उसके निकट आये और कहा, हे ब्राह्मण! मेरी मायाको देख जो जगत् जालकी रचनेवाली है अव और क्या इच्छा करता है ? हे रामजी ! जव विष्णु भगवान्ने ऐसे कहा तव ब्राह्मण इसप्रकार बोला जैसे मेघकोदेखकर पपीहा बोलता है। हे भगवन्! तेरी माया तो मैंने देखी परन्तु एक संशय मुझको है कि, यह जो स्वप्न भ्रमकी नाईं मैंने देखा इसमें कालकी विषमता कैसे हुई कि, यहां दो मुहूर्त्त व्यतीत हुये हैं और वहां चिरकाल पर्यन्त भ्रमता रहा और उन झूठे पदार्थोंको जाग्रत में प्रत्यक्ष कैसे देखा ? श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! और कुछ नहीं तेरे चित्तही का भ्रमहै। जिसके चित्तमें तत्वकी अदृष्टता है उसको यह चित्त भ्रम होता है। और वह क्या भ्रम था, जितना कुछ जगत् प्रत्यक्ष देखता है वहतेरे मनमें स्थित है। पृथ्वी आदिक तत्व कोई नहीं; जैसे बीजके भीतर फूल, फल, पत्र होते हैं तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो पांच भौतिक हैं वह सव विस्तार चित्तमें स्थित हैं। जैसे वृक्षका विस्तार बीजमें दृष्टि नहीं आता पर जव बोया हुआ उगता है तव विस्तारसे दृष्टि आता है; तैसेही जव चित्त ज्ञानमें लीन होताहै तव जगत् नहीं भासता और जव स्पन्दरूप होता है तव वड़े विस्तार संयुक्त भासताहै। हे ब्राह्मण! जो कुछ जगत् देखता है वह सव चित्तका भ्रम है। जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है तैसेही एक चित्तही अनेक भ्रमरूप पदार्थोंको उत्पन्न करता है और जो चित्त वासनासे रहित है उससे भ्रमरूप पदार्थ कोई नहीं उपजता। इससे चित्तको स्थितकर। हे ब्राह्मण! इसचित्तमें कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। जो तुझको चाण्डाल अवस्था का अनुभव हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य हुआ और तू कहताहै कि, मैंने बड़ी आश्चर्यरूप मायादेखीहै सो उसकोही माया कहताहै। अब जो तुझको विद्यमान भासताहै वह सवभी मायाहै। जो तुझको अपनेगृहमें अनुभव हुआ था और चाण्डालके गृहमें जन्मलिया, कुटुम्बीहुआ और राजकिया, फिर चितामेंजला, फिर अतिथि ब्राह्मणसे मिला,फिरजाकर सवस्थानदेखे सोभीमायाथी। जैसे इतनाभ्रम तूने मायासेदेखा तैसेही यह फैलाव भी सवमायाहै। हे साधू! जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं और जैसे मदिरापान करनेवालेको सव पदार्थ भ्रमते दिखते हैं तैसेही यह जगत्भी भ्रमसे भासताहै। जैसे नौकापर बैठेको तटवृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही यहजगत् भी भ्रममात्र भासताहै और चित्तके स्थितकियेसे जगत्भ्रमनष्ट होजावेगा—अन्यथा निवृत्त न होवेगा। जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटनेसे वृक्षनाश नहींहोता जवमूलसे काटिये तव नाशहोजाताहै तैसेही जव जगत् भ्रमकामूल चित्तही नष्टहोजावेगा तवसंपूर्ण भ्रमनिवृत्त होजावेगा यह चित्तका नाश

होना क्याहै ? चित्तकी चैत्यता जो दृश्यकीओर धावतीहै वही जगत्का वीजहै; जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेसे रहित हो तवजगत् भ्रमभी मिटजावेगा और जगत्की ओर फुरना तवमिटे जवजगत्को मायामात्र जानोगे।हेसाधू! यहसव जगत् मायामात्र है, कोई पदार्थ सत्यनहीं । जैसे वह भ्रमको मायामात्र भासितहै तैसेही यहभी सब मायामात्र जानो। इससे इसभ्रमको त्यागकर अपने ब्राह्मणके कर्म्म करो। हे रामजी! इसप्रकार कहकर जब विष्णुदेव उठखड़ेहुये तव गाधि और और ऋषीश्वर जो वहांथे उन्होंने विष्णुकी पूजाकी और विष्णु क्षीरसमुद्रको गये तववह ब्राह्मण फिर उसी भ्रमको देखनेचला। निदानवह फिर कांतदेशमें गया और उसको देखकरआश्चर्यवान् हुआ विष्णुमायामय कहाते हैं जो कुछ मैंने भ्रममें देखाथा सोई प्रत्यक्ष देखताहूं। ऐसे विचारकर फिरकहा कि,जो इस संशयको और कोई दूर नहीं करसक्ता इससे फिर मैं विष्णुका आराधन करूंगा। हे रामजी ! इसप्रकार विचार कर गाधि फिर पहाड़की कन्दरा में जाकर तपकरनेलगा तव थोड़ेकाल में विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर आये और जैसे मेघ मोरसे कहे तैसेही ब्राह्मणसे वोले; हे ब्राह्मण! अव क्या चाहताहै ? तव गाधिनेकहा, हेभगवन् ! तुम कहतेहो सब भ्रममात्रहै और यह तो प्रत्यक्ष भासताहै। जो भ्रमहोताहै सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और मैंने फिर वह स्थान देखे और थोड़ेकाल से वहुतकाल देखनेका मुझको संशय है सो दूरकरो। हे रामजी ! जव इसप्रकार गाधिने कहा तव भगवान् ने कहा, हे ब्राह्मण! जोकुछ तुझको यह भासताहै वह सब मायामात्रहै और जिसप्रकार तुझको यह भासताहै वहसव मायामात्रहै। जिसप्रकार तुझको यह अनुभवहुआहै वह सुन; हे ब्राह्मण! कण्टक जलनाम चाण्डाल एक चाण्डालके गृहमें उत्पन्न हुआथा और क्रमसे वड़ाहोकर वड़ा कुटुम्वी हुआ। फिर वहां दुर्भिक्ष पड़ा तव उस देशको त्यागकर कांत देशका राजाहुआ । फिर लोगोंने सुना तव सवही अग्निमें जले और वह चाण्डाल आपभी अग्निमें जला। वह कण्टकजल चाण्डाल और था,यह अवस्था उसकीहुईथी और वही प्रतिभा तुझको आनफुरीहै।जैसी अवस्था उसकी हुईथी सो तेरेचित्तमें आनफुरी इसकारण तूने जाना कि, यह अवस्था मैंने देखी है। हे साधु! अकस्मात् ऐसेभी होताहै कि,औरकी प्रतिभा औरको फुरआतीहै। कहीं अन्यथा भी होतीहै, कहीं एक ऐसीभी होतीहै;इसभ्रमका अन्तलेना नहीं वनता क्योंकि यह चित्त के फुरनेसे होताहै। जव चित्त आत्मपदमें स्थितहोताहै तव जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। कालकी विषमताभी होतीहै—जैसे जाग्रतकी दोघड़ीमें अनेक वर्षोंका स्वप्नदेखता है तैसेही यह सव चित्तका भ्रमजान। तू इसभ्रमको न देख; चित्तको स्थिरकरके अपने ब्राह्मणका आचारकर। हे रामजी ! ऐसे कहकर विष्णु गुप्त होगये परन्तु

ब्राह्मणका संशय दूर न हुआ। वह मनमें विचारे कि, औरकी प्रतिभा मुझको कैसेहुई यह तो मैंने प्रत्यक्ष भोगीहै और जाकर देखीहै यह औरकी वार्त्ता कैसेहो। जो आंखों से नहीं देखी होती उसका अनुभव भी नहीं होता और मैंनेतो प्रत्यक्ष अनुभवकिया है। ऐसे ऐसे विचारकर फिर वही स्थान देखे और आश्चर्यमान हुआ फिर विचार किया कि, यह मुझको बड़ा संशयहै इसके दूरकरनेका उपाय भगवान्‌से पूछूं। हे रामजी! ऐसे चिन्तनकर फिर तप करनेलगा और जब कुछकाल पहाड़की कन्दरामें तपकरते बीता तब फिर विष्णुने आकरकहा, हे ब्राह्मण! अबतेरी क्या इच्छाहै? ऐसे जब विष्णुने कहा तब गाधि ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, यह और की प्रतिभा तुझको फुरआईहै और अपनी होकर भासतीहै और काल की विषमता भी भासती है। यह संशय जिसप्रकार मेरे चित्तसे दूरहो सो उपाय कहो। और मेरा प्रयोजन कुछ नहीं है केवल यह भ्रमनिवृत्त करो। श्री भगवान् बोले, हे ब्राह्मण! यह जगत् सब मेरी मायासे रचाहै इससे मैं तुझसे सत्य क्या कहूं और असत्य क्याकहूं। जो कुछ तुझको भासता है वह सब माया मात्र है और चित्त के भ्रमसे भासता है। उस चाण्डालकी अवस्था तेरे चित्तमें भासि आई थी। जैसे किसी को भ्रमसे रस्सी में सर्पभासे इसीप्रकार औरोंकोभी रस्सी में सर्प भासता है तैसेही प्रतिभा तुझको भासि आई है। कालकारूप आकार कुछ नहीं पर काल भी तुझको एक पदार्थकी नाईं फुर आया है। चित्तमें पदार्थ कालसे भासते हैं और कालपदार्थों से भासता है। अन्योन्य घटबंध जो भासता है सो स्वप्नकी नाईं है—जैसे जाग्रत के एक मुहूर्त्त में स्वप्नके अनन्त कालका अनुभव होता है। यह चित्तका फुरना जैसे २ फुरता है तैसे २ होभासता है; रोगीको थोड़ा काल भी बहुत भासता है और भोगी को बहुत कालभी थोड़ा भासता है। हे साधु! जो नहीं भोगा होता उसका भी अनुभव होता है। जैसे त्रिकालदर्शीको भविष्यत् वृत्तान्तभी वर्त्तमानकी नाईं भासता है; तैसेही तुझकोभी अनुभव हुआहै। एक ऐसे भी होताहै कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण होजाता है। यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है। जबतक चित्त आत्मपदमें स्थित नहीं हुआ तबतक अनेक भ्रम भासते हैं और जब चित्त स्थित होता है तब भ्रम मिटजाताहै और तब केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासताहै। जैसे सम्यक् मंत्रका पाठकर गढ़ेका मेघनष्ट होजाताहै—असम्यक् मंत्रसे नाश नहीं होता तैसेही तेराचित्त अब तक वश नहीं हुआ। चित्तको आत्मपदमें लगानेसे सब भ्रम निवृत्त होजावेगा। अहंत्वं आदिक जो कुछ शब्द हैं वे अज्ञानीके चित्तमें दृढ़ होतेहैं; ज्ञानवान् इनमें नहीं फँसता। हे साधु! जो कुछ जगत् है सो अज्ञानसे भासताहै और आत्मज्ञानहुयेसे नाश होजाताहै। जैसे जलमें तुंबी नहींडूबती तैसेही अहंत्वं आदिक शब्दोंमें ज्ञानवान् नहीं

डूबता। सर्व शब्दाचित्तम वर्त्तते हैं सो ज्ञानीकाचित्त अचित्त पदको प्राप्तहोताहै इससे तू दशवर्ष पर्यन्त तपमें स्थितहो तबतेरा हृदयशुद्धहोगा।जब चित्तपद प्राप्तहोगा तब सब संकल्प से रहित आत्मपद तुझको प्राप्तहोगा और जब आत्मपद प्राप्तहोगा तब सब संशय जगत्भ्रम मिटजावेगा। हेरामजी! ऐसे कहकर जब त्रिलोकीके नाथ विष्णु अन्तर्द्धान होगये तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मन में धरकर तप करनेलगा और मनके संकल्प को स्थितकर दशवर्ष पर्यंत समाधि में चित्तको स्थितकिया। जब ऐसे परम तपकिया तब उसे शुद्ध चिदानन्द आत्माका साक्षात्कार हुआ । फिर शान्तवान् होकर विचारा और जो कुछ रागद्वेष आदिक विकार हैं उनसे रहित होकर शान्ति को प्राप्त हुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेगाधिबोधप्राप्तिवर्णनंनामषट्-
चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! यह गाधिका आख्यान मैंने तुझसे मायाकी विषमता जताने के निमित्त कहाहै कि, परमात्माकी माया मोहको देनेवाली है और विस्तृत रूप और दुर्गमहै। जो आत्मतत्त्वका भूलाहै उसको यह आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है। तू देख कि, दो मुहूर्त्त कहां और इतनाकाल कहां ? चाण्डाल और राजभ्रमको जो वर्षों पर्य्यन्त देखतारहा । भ्रम से भासना और प्रत्यक्षदेखना यहसब मायाकी विषमता है सो असत्रूप भ्रम है और जो दृढ़होकर प्रसिद्ध भासित होता है इससे आश्चर्यरूप परमात्मा की माया है जब तक बोधनहीं होता तबतक यह अनेकभ्रम दिखातीहै। रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! यहमाया संसारचक्रहै उसकाबड़ा तीक्ष्णवेग है और सबअङ्गों को छेदने वाला है; जिससे यह चक्ररुके और इसभ्रमसे छूटूं वही उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो मायामय संसारचक्र है उसका नाभिस्थान चित्त है। जब चित्तवश हो तब संसार चक्रकावेग रोकाजावे; और किसी प्रकारनहीं रोकाजाता।हे रामजी ! इसवार्त्ताको तू भलीप्रकारजानताहै। हे निष्पाप ! जब चक्रकीनाभि रोकीजाती है तबचक्र स्थितहोजाताहै—रोकेबिना स्थितनहीं होता। संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभिको जब रोकते हैं तबयह चक्रभी स्थितहोजाता है—रोकेबिना यहभी स्थितनहींहोता। जबचित्तको स्थित करोगे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा और जबचित्त स्थितहोता है तब परब्रह्मप्राप्त होता है । तब जो कुछ करनाथा सोकिया होता है और कृतकृत्य होता है और जो कुछ प्राप्तहोनाथा सो प्राप्त होता है—फिर कुछ पाना नहीं रहता। इससे जो कुछ तप, ध्यान, तीर्थ, दान आदिक उपाय हैं उन सबको त्यागकर चित्तकेस्थित करनेका उपायकरो। सन्तोंकेसङ्ग और ब्रह्मविद् शास्त्रोंके विचारसे चित्तआत्मपदमें स्थित होगा। जो कुछ संतों और शास्त्रों

ने कहा है उसका बारम्बार अभ्यास करना और संसार मृगतृष्णा के जल और स्वप्नवत् जानकर इससे वैराग्य करना। इन दोनों उपायों से चित्त स्थितहोगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी और किसीउपायसे आत्मपदकीप्राप्ति न होवेगी। हेरामजी! बोलनेचालनेका वर्जननहीं;बोलिये,दानदीजिये अथवा लीजिये परन्तु भीतर चित्तको मत लगाओ इनका साक्षीजाननेवाला जो अनुभवआकाशहै उसकीओरवृत्तिहो।युद्ध करनाहो तौभी करिये परन्तु वृत्ति साक्षीहीकीओरहो और उसीको अपनारूपजानिये और स्थितहोइये। शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्धि; ये जो पांच विषय इन्द्रियोंके हैं इनको अङ्गीकार कीजिये परन्तु इनके जाननेवाले साक्षीमें स्थित रहिये। तेरा निजस्वरूप वही चिदाकाश है; जब उसका अभ्यास बारम्बार करियेगा तब चित्त स्थित होगा और आत्मपद की प्राप्तिहोगी। हे रामजी! जबतक चित्त आत्मपदमें स्थित नहीं होता तबतक जगत् भ्रमभी निवृत्त नहींहोता। इसचित्तके संयोगसे चेतन का नाम जीव है। जैसे घटके संयोगसे आकाशको घटाकाश कहते हैं पर जब घट टूटजाता है तब महाकाशही रहता है;तैसेही जब चित्तका नाश होगा तब यहजीव चिदाकाश ही होगा। यह जगत्भी चित्तमें स्थितहै; चित्तके अभावहुये जगत्भ्रम शांतहोजावेगा हे रामजी! जबतक चित्त है तबतक संसारभी है; जैसे जबतक मेघ हैं तबतक बूंदेंभी हैं और जब मेघ नष्ट होजावेगा तब बूंदेंभी न रहेंगी जैसे जबतक चन्द्रमाकी किरणें शीतल हैं तबतक चन्द्रमाके मण्डलमें तुषार है तैसेही जबतक चित्त है तबतक संसार भ्रम है। जैसे मांसका स्थान मशान होता है और वहां पक्षीभी होता है; और ठौर इकट्ठे नहींहोता; तैसेही जहां चित्त है वहां रागद्वेषादिक विकारभी होते हैं और जहां चित्तका अभाव है वहां विकारकाभी अभाव है। हेरामजी! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिमें होती है, दिन में नहीं होती; तैसेही राग, द्वेष, भय, इच्छा आदिक विकारचित्तमें होते हैं। जहांचित्त नहीं वहां विकारभी नहीं—जैसे अग्निविना उष्णता नहीं होती; शीतलताविना बरफ नहीं होती;सूर्यविना प्रकाश नहीं होता और जल विना तरंग नहीं होवे तैसेही चित्तविना जगत् भ्रमनहीं होता। हे रामजी! शांतिभी इसीका नाम है और शिवताभी वही है; सर्वज्ञताभी वही है जो चित्तनष्ट हो आत्माभी वही है और तृप्तताभी वही है पर जो चित्तनष्ट नहीं हुआ तो इतने पदों में कोईभी नहीं है। हे रामजी! चित्तसेरहित चेतन चेतन कहाताहै और अमनशक्ति भी वही है; जबतक सब कलनासे रहित बोध नहीं होता तबतक नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं और जब वस्तुका बोधहुआ तब एक अद्वैत आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी! ज्ञानसंवितकी ओर वृत्ति रखना; जगत्की ओर न रखना और जाग्रतकी ओर न जाना। जाग्रतके जाननेवालेकी ओरजाना स्वप्न औरसुषुप्तिकी ओर न जाना।

भीतरके जानने वाली जो साक्षीसत्ताहै उसकीओर वृत्तिरखनाही चित्तकेस्थित करने का परमउपाय है। संतोंकेसङ्ग और शास्त्रों से निर्णय किये अर्थका जबअभ्यास हो तब चित्तनष्ट हो और जो अभ्यास न हो तौभी सन्तोंका सङ्गऔर सत्शास्त्रोंको सुन कर बलकीजिये तो सहजही चमत्कार हो आवेगा। मनको मनसेमथिये तो ज्ञानरूपी अग्नि निकलेगी जो आशारूपी फांसीको जला डालेगी। जबतक चित्तआत्मपदसे विमुखहै तबतक संसारभ्रम। देखताहै परजब आत्मपदमें स्थितहोताहै तबसबक्षोभमिट जातेहैं जब तुमको आत्मपदका साक्षात्कारहोगा तब कालकूट विषभी अमृत समान होजावेगा और विषका जो विषभाव मारना है सोनरहेगा। जीव जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब संसारका कारण मोह मिटजाता है और जब निर्मल निरंश आत्म संवितसे गिरता है तब संसारका कारण मोह आन प्राप्तहोता है। जब निरंश निर्मल आत्म संवितमें स्थित होता है तब संसार समुद्रसे तरजाताहै। जितने तेज ईश्वर बलवान् हैं उन सबोंसे तत्त्ववेत्ता उत्तमहै; उसके आगे सबलघु होजाता है और उस पुरुषको संसार के किसी पदार्थ की अपेक्षानहीं रहती क्योंकि, उसका चित्त सत्यपदको प्राप्तहोता है। इससे चित्तको स्थितकरो तब वर्त्तमान कालभी भविष्यत् कालकी नाईं होजावेगा और जैसे भविष्यत् कालका रागद्वेष नहीं स्पर्श करता तैसेही वर्त्तमान कालका रागद्वेष भी स्पर्शन करेगा। हेरामजी! आत्मा परम आनन्दरूप है, उसके पायेसे अमृतभी विषसमान होजाता है। जिस पुरुष को आत्मपद में स्थिति हुई है वह सबसे उत्तम है जैसे मेरु पर्व्वतके निकट हाथी तुच्छ भासता है तैसेही उसके निकट त्रिलोकी के पदार्थ सबतुच्छ भासते हैं वह ऐसे दिव्यतेजको प्राप्त होता है जिसको सूर्य्य भी नहीं प्रकाशकर सक्ता वह परम प्रकाशरूप सब कलनासे रहित अद्वैत तत्त्व है। हेरामजी! उसआत्मतत्त्वमें स्थितहो रहो जिस पुरुषने ऐसे स्वरूपको पायाहै उसने सबकुछ पाया है और जिसने ऐसे स्वरूपको नहीं पाया उसने कुछ नहीं पाया। हमको ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवान्को देखकर कुछ लज्जा नहीं आती और जो उस ज्ञानस्वरूप की वार्ता से विमुख है यद्यपि वह महाबाहो हो तौभी गर्दभवत् है। जो बड़े ऐश्वर्य से संपन्नहैं और आत्म पदसे विमुखहैं उसको तू विष्ठाके कीटसे भी नीचजान। जीनाउनकी श्रेष्ठहै जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं और जीना उनका वृथा है जो संसार के निमित्त यत्न करतेहैं वे देखने मात्र तो चैतन्यहैं परन्तु शवकीनाईं हैं। जोतत्त्ववेत्ताहुयेहैं वे अपने प्रकाशसे प्रकाशते हैं और जिनको शरीर में अभिमान है वे मृतक समान हैं। हे रामजी! इस जीवको चित्तने दीन किया है। ज्योंज्यों चित्त बड़ा होता है त्यों त्यों इसको दुःख होता है और जिसका चित्त क्षीण हुआ है उसका कल्याण हुआ है।

जब आत्मभाव अनात्म में दृढ़ होता है और भोगों की तृष्णा होती है तब चित्त बड़ा होजाता है और आत्मपदसे दूर पड़ता है। जैसे बड़े मेघके आवरण से सूर्य नहीं भासता तैसेही अनात्मा अभिमान से आत्मा नहीं भासता। जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त होजाती है तब चित्त क्षीण होजाता है। जैसे बसन्त ऋतुके गयेसे पत्र कृश होजाते हैं तैसेही भोग वासना के अभावसे चित्त कृश होजाताहै। हे रामजी! चित्तरूपी सर्प दुर्वासना रूपी दुर्गंधि, भोगरूपी वायु और शरीर में दृढ़ आस्था रूपी मृत्तिका स्थान से बड़ा होजाता है; और उन पदार्थों से जब बड़ा हुआ तब मोहरूपी विपसे जीव को मारता है। हे रामजी! ऐसे दुष्ट रूपी सर्पको जबमारे तब कल्याण हो। देह में जो आत्म अभिमान होगया है, भोगोंकी तृष्णा फुरती है और मोहरूपी विप चढ़गया है; इससे यदि विचाररूपी गरुड़ मन्त्र का चिन्तन करता रहे तो विप उतरजावे इसके सिवाय और उपायविप उतरनेका कोईनहीं। हेरामजी! अनात्मामें आत्माभिमान और पुत्र, दारा आदिक में ममत्वसे चित्त बड़ा होजाताहै और अहंकाररूपी विकार, ममतारूपी कीड़ा और यह मेरा इत्यादि भावनासे चित्त कठिन होजाता है। चित्तरूपी विपकावृक्ष है जो देहरूपी भूमि पर लगा है; सङ्कल्प विकल्प इसके टासहैं; दुर्वासनारूपी पत्रहैं और सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं; अहंकाररूपी कर्म जल है उसके सींचने से बढ़ता है और काम भोग रूपी पुप्प हैं। चिन्तारूपी बड़ी बेलको जब विचार और वैराग्यरूपी कुठार से काटे तब शान्ति हो—अन्यथाशान्ति न होगी। हे रामजी! चित्तरूपी एक हाथी है उसने शरीररूपी तालाबमें स्थित होकर शुभ वासनारूपी जलको मलीनकर डाला है और धर्म, सन्तोप, वैराग्यरूपी कमलको तृष्णारूपी शुण्डसे तोड़डाला है। उसको तुम आत्मविचाररूपी नेत्रों से देख नखोंसे छेदो। हे रामजी! जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंको भोजन करके सर्वदा काँ काँ करता है तैसेही चित्त देहरूपी अपवित्र गृह में बैठा सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है; उनके रसको ग्रहण करता है और मौन कभीनहीं रहता। दुर्वासनासे वह काककी नाईं कृष्णरूप है—जैसे काकके एकहीनेत्र होता है तैसेही चित्त एक विपयोंकी ओर धावता है। ऐसे अमंगल रूपी कौवेको विचाररूपी धनुप से मारो तब सुखी होगे। चित्तरूपी चील पखेरू है जो भोगरूपी मांसके निमित्त सब ओर भ्रमता है। जहां अमंगल रूपी चील आता है वहांसे विभूतिका अभाव होजाता है। वह अभिमानरूपी मांसकी ओर ऊंचा होकर देखता है और नम्रभाव नहींहोता। ऐसा जो अमंगलरूपी चित्त चील है उसको जबनाश करो तब शान्तिमान् होगे। जैसे पिशाच जिसको लगता है वह खेदवान् होता है और शब्द करता है; तैसेही इसको चित्तरूपी पिशाच लगा है और तृष्णारूपी

पिशाचिनी के साथ शब्द करता है उसको निकालो जो आत्मासे भिन्न अभिमान करता है। ऐसे चित्तरूपी पिशाचको बैरागरूपी मंत्रसे दूर करो तब स्वभाव सत्ता को प्राप्त होगे। यह चित्तरूपी वानर महाचंचल है और सदा भटकता रहता है; कभी किसी पदार्थ में धावता है—जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है उसको ठहरने नहीं देता। हे रामजी ! चित्तरूपी रस्सी से सम्पूर्ण जगत् कर्त्ता, कर्म, क्रियारूपी गांठ करके बँधा है। जैसे एक जंजीरके साथ अनेक बन्धवान् बँधते हैं और एक तागेके साथ अनेक दाने पिरोयेजाते हैं तैसेही एक चित्तसे सब देहधारी बांधे हैं। उसरस्सी को असङ्गशस्त्रसे काटे तब सुखी हों। हे रामजी ! चित्तरूपी अजगर सर्प भोगोंकी तृष्णारूपी विषसे पूर्ण है और उसने फुंकारके साथ बड़े २ लोक जलाये हैं और शम, दम, धैर्य्यरूपी सब कमल जलगये हैं। इस दुष्टको और कोई नहीं मारसक्ता; जब विचाररूपी गरुड़ उपजे तब इसको नष्ट करे और जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हो तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होगी। हे रामजी ! यह चित्त शस्त्रोंसे काटा नहीं जाता; न अग्निसे जलता है और न किसी दूसरे उपायसे नाश होता है, केवल साधुके सङ्ग और सत्शास्त्रों के विचार और अभ्याससे नाशहोताहै। हे रामजी ! यह चित्त-रूपी गढ़ेका मेघ बड़ा दुःखदायक है, भोगोंकी तृष्णारूपी बिजली इसमें चमकती है और जहां वर्षा इसकी होती है वहां बोधरूपी क्षेत्र और शम-दमरूपी कमलोंको नाश करती है। जब बिचाररूपी मंत्रहो तब शान्तहो। हे रामजी ! चित्तकी चप-लताको असंकल्पसे त्यागो। जैसे ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र छिदता है तैसेही मनसे मनको छेदो अर्थात् अन्तर्मुखी कर स्थितकरो। जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होगा तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभसे रहित होगा। शुद्ध बोधसे मनको जीतो और यह जगत् जो तृणसे भी तुच्छ है उससे पारहोजाओ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराघवसेवनवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मनकी वृत्तिही इष्ट-अनिष्टको ग्रहण करती है और खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है; इसमें तुम प्रीति मतकरो बल्कि इसको मिथ्या जानकर त्यागकरो। हे रामजी ! बोधरूपी बेलि जो शुभक्षेत्र और शुभकाल से प्राप्त हुई है उसको विवेकरूपी जलसे सींचो तब परमपदकी प्राप्ति हो। हे रामजी ! जबतक शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं हुआ और जबतक पृथ्वीपर नहीं गिरा तबतक बुद्धि को उदारकरके संसार से मुक्तहो। मैंने जो वचन तुमसे कहे हैं उनको तुमने जानाहै, अब इनका दृढ़ अभ्यासकरो तब दृश्यभ्रम निवृत्त-होजावेगा। हे रामजी ! यह पञ्च-भौतिक शरीर जो तुमको भासताहै सो तुम्हारारूप नहींहै; तुमतो शुद्धचेतनरूपहो। शुद्धबोधसे विचारकरके पञ्चभौतिक अनात्म अभिमानको त्यागो। रामजीने पूंछा, हे

भगवन्! किसक्रम और किसप्रकारसे इसका अभिमान त्यागकर उद्दालकसुखी हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पूर्व्वमें जैसे उद्दालक भूतोंके समूहको विचार करके परमपदको प्राप्तहुआहै सो तुम सुनो। हेरामजी! जगत्रूपी जीर्णघरके वायव्यकोण में एकदेशहै जो पर्व्वत और तमालादिक वृक्षोंसे पूर्ण है और महामणियोंका स्थान है। उस स्थानमें उद्दालकनाम एक बुद्धिमान् ब्राह्मण मानकरनेके योग्य विद्यमानथा परन्तु अर्द्धप्रबुद्धथा क्योंकि; परमपदको उसने न पायाथा। वह ब्राह्मण यौवनअवस्था के पूर्व्वहीं शुभेच्छासे शास्त्रोक्त यम, नियम और तपको साधनेलगा तब उसके चित्तमें यहविचार उत्पन्नहुआ कि, हे देव! जिसके पायेसे फिर कुछ पाने योग्य न रहे; जिस पदमें विश्राम पायेसे फिर शोक न हो और जिसके पायेसे फिरजन्म से बन्धन न हो ऐसा पद मुझको कब प्राप्तहोगा? कब मैं मनके मननभावको त्यागकर विश्रान्तिमान् हूंगा—जैसे मेघ भ्रमनेको त्यागकर पहाड़के शिखरमें विश्रान्ति करता है—और कब चित्तकी दृश्यरूप वासना मिटेगी जैसे तरंगसे रहित समुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही कब मैं मनके संकल्प विकल्पसे रहित शान्तिमान्हूंगा? तृष्णारूपी नदीको बोधरूपी बेड़ी और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी मल्लाह, से कबतरूंगा, चित्तरूपी हाथी जो अभिमान रूपी मदसे उन्मत्त है उसको विवेकरूपी अंकुशसे कबमारूंगा और ज्ञान रूपी सूर्यसे अज्ञानरूपी अन्धकार कब नष्टकरूंगा? हे देव! सब आरम्भोंको त्याग कर मैं अलेप और अकर्ता कब होऊंगा? जैसे जलमें कमल अलेप रहता है तैसेही मुझको कर्म कब स्पर्श न करेंगे? मेरा परमार्थरूपी भास्वर वपु कब उदय होगा जिससे मैं जगत्कीगतिको हँसूंगा हृदयमें सन्तोष पाऊंगा और पूर्णबोध विराट्आत्मा की नाईं होऊंगा? वह समय कब होगा कि, मुझ जन्मोंके अन्धेको ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्तहोगा, जिससे मैं परमबोध पदको देखूंगा? वह समय कबहोगा जब मेरा चित्त-रूपीमेघ वासनारूपी वायुसे रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्व्वतमें स्थितहोकर शान्ति-मान् होगा? अज्ञानदशा कब जावेगी और ज्ञानदशा कब प्राप्तहोगी? अब वह समय कब होगा कि, मन और काया प्रकृतियों को देखकर हँसूंगा? वह समय कब होगा जब जगत्के कर्मोंको बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानूंगा और जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं होजावेगा। वह समय कबहोगा जब मुझको पत्थरकी शिलावत् निर्विकल्प समाधि लगेगी और शरीररूपी वृक्षमें पक्षी आलयकरेंगे और निस्सङ्ग होकर छातीपर आनबैठेंगे? हे देव! वह समय कबहोगा जब इष्ट—अनिष्ट विषय की प्राप्तिसे मेरेचित्तकी वृत्ति चलायमान न होगी और विराट्की नाईं सर्वात्मा हो-ऊंगा? वह समय कबहोवेगा जब मेरा सम असम आकार शान्त होजावेगा और सब अर्थों से निरिच्छितरूप मैं होजाऊंगा? कब मैं उपशम को प्राप्तहोऊंगा—जैसे

मन्दराचलसे रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है—और कब मैं अपना चेतन वपु पाकर शरीरको अशरीरवत् देखूंगा ? कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्तिहोगी और कबमेरे भीतर बाहरकी सब कलना शान्त होजावेंगी और सम्पूर्ण चिन्मात्रही का मुझे भान होगा ? मैं ग्रहण त्यागसे रहित कब संतोष पाऊंगा और अपने स्वप्रकाश में स्थितहोकर संसाररूपी नदी के जरामरणरूपी तरंगोंसे कब रहित होऊंगा और अपने स्वभाव में कब स्थित होऊंगा, हे रामजी ! ऐसे विचार कर उद्दालक चित्तको ध्यानमें लगाने लगा परन्तु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकलजावे पर स्थित न हो । तब वह फिर ध्यानमें लगादे और फिर वह भोगों की ओर निकलजावे । जैसे वानर नहीं ठहरता तैसेही चित्त न ठहरे । जबउसनेबाहर विषयोंको त्यागकर चित्तको अन्तर्मुख किया तब भीतर जो दृष्टिआई तौभी विषयोंको चिन्तनेलगा निर्विकल्प न हो और जब रोकरक्खें तब सुषुप्तिमें लीनहोजावे । सुषुप्ति और लयजो निद्रा है उसही में चित्तरहताहै । तब वह वहांसे उठकर और स्थानको चला—जैसेसूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणाको चलता है और गन्धमादन पर्व्वतकी एककन्दरामें स्थितहुआ जो फूलोंके संयुक्त सुन्दर और पशुपक्षी मृगोंसे रहित एकान्तस्थानथा और जो देवता को भी देखना कठिन था । वहां अत्यन्त प्रकाशभी न था और अत्यन्त तमभी नथा; न अत्यन्त उष्णथा और न शीत जैसे मधुरकार्त्तिकमास होता है तैसेही वह निर्भय एकांतस्थानथा। जैसे मोक्षपदवी निर्भयएकांतरूप होतीहै तैसेहीउस पर्वतमें कुटीबना और उसकुटीमें तमालपत्र और कमलोंका आसनकर और ऊपरमृगछाला बिछाकर वह बैठा और सब कामनाका त्याग किया । जैसे ब्रह्माजी जगत्को उपजाकर छोड़बैठे तैसेही वह सबकलनाको त्यागबैठा और विचार करनेलगा कि, अरे मूर्खमन! तूकहां जाता है, यह संसार मायामात्र है और इतनेकाल तू जगत्में भटकतारहा पर कहीं तुझको शान्ति न हुई क्योंकि; वृथा धावतारहा । हे मूर्खमन ! उपशमको त्याग कर भोगोंकी ओरधावता है सोअमृतको त्यागकर विषकाबीज बोता है, यहसब तेरीचेष्टा दुःखोंके निमित्त है। जैसे कुशवारी अपनाघर बनाकर आपही को बंधनकरती है तैसेही तू भी आपको आपसङ्कल्प उठाकर बन्धनकरताहै । अबतू सङ्कल्पके संसरनेको त्याग कर आत्मपदमें स्थितहो कि, तुझको शान्तिहो । हे मन ! जिह्वाके साथ मिलकर जो तू शब्द करताहै वह दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थहै । कानों के साथ मिलकर सुनताहै तब शुभ अशुभ वाक्य ग्रहणकरके मृगकीनाईं नष्ट होताहै; त्वचाके साथ मिलकर जो तू स्पर्शकी इच्छा करताहै सो हाथीकी नाईं नाशहोता है; रसनाके स्वादकी इच्छा से मछलीकी नाईं नाशहोताहै और गन्ध लेनेकी इच्छासे भँवरेकी नाईं नाशहोजावेगा। जैसे भँवरा सुगन्ध के निमित्त फूलमें फँस मरताहै तैसे तू फँस मरेगा और सुन्दर

स्त्रियोंकी वांछा से पतङ्गकी नाईं जल मरेगा । हे मूर्खमन ! जो एक इन्द्रियका भी स्वादलेते हैं वे नाशहोते हैं तूतो पञ्चविषयका सेवनेवालाहै क्या तेरा नाश न होगा। इससे तू इनकी इच्छात्याग कि तुझको शान्तिहो। जो इनभोगोंकी इच्छा न त्यागेगा तो मैंहीं तुझको त्यागूंगा। तूतो मिथ्या असत्यरूप है तुझसे मेरा क्या प्रयोजनहै। विचारकर मैं तेरा त्यागकरताहूं। हे मूर्खमन ! जो तू देहमें अहं अहं करताहै सो तेरा अहं किस परमार्थका है। अंगुष्ठसे लेकर मस्तक पर्य्यन्त अहं वस्तु कुछनहीं। यह शरीर तो अस्थि, मांस और रक्तका थैला है; यह तो अहंरूप नहीं और श्वास वायुरूप और पोल आकाशरूप है । यह पञ्च तत्त्वोंका जो शरीर बना है उसमें अहंरूप वस्तु तो कुछनहीं है। हे मूर्खमन ! तू अहं अहं क्यों करताहै ? यह जो तू कहता है कि, मैं देखता हूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघताहूं, मैं स्पर्श करता हूं, मैं स्वाद लेताहूं और इनके इष्ट–अनिष्टमें रागद्वेष से जलता है सो वृथा कष्ट पाता है। रूप को नेत्र ग्रहण करते हैं; नेत्र रूपसे उत्पन्न हुये हैं और तेजका अंश उन में स्थित है जो अपने विषयको ग्रहण करता है; इनके साथ मिलकर तू क्यों तपायमान होता है ? शब्द आकाश में उत्पन्न हुआ है और आकाशका अंश श्रवणमें स्थितहै जो अपने गुण शब्दको ग्रहण करता है; इसके साथ मिलकर तू क्यों रागद्वेष कर तपायमान होता है ? स्पर्श इन्द्रिय वायु से उत्पन्न भया है और वायुका अंश त्वचा में स्थित है वही स्पर्शका ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों राग द्वेषसे तपायमान होता है ? रसना इन्द्रिय जलसे उत्पन्न हुई है और जलका अंश जिह्वा है जो अग्रभागमें स्थित है वही रसको ग्रहण करती है; इससे मिल तू क्यों वृथा तपायमान होताहै ? और घ्राणइन्द्रिय गन्धसे उपजी है और पृथ्वीका अंशघ्राणमें स्थितहै वही गन्धको ग्रहण करताहै; उससे मिलकर तू क्यों वृथा राग द्वेषवान् होता है ? हे मूर्ख मन ! इन्द्रियां तो अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं पर तू क्यों इनमें अभिमान करताहै कि, मैं देखता हूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघताहूं, मैं स्पर्श करताहूं, और रसलेता हूं। यह इन्द्रियां तो सब आत्म भर हैं अर्थात् अपने विषयको ग्रहण करती हैं और के विषयको ग्रहण नहीं करतीं कि, नेत्र देखते हैं श्रवण नहीं करते और कान सुनते हैं देखते नहीं इत्यादिक । सब इन्द्रियां अपना धर्म किसीको देतीभी नहीं और न किसीका लेती हैं। वे अपने धर्ममें स्थित हैं और विषयोंको ग्रहण कर इनको राग द्वेष कुछनहीं होता। इनको ग्रहण करनेकी वासनाभी कुछनहीं होती और तू ऐसा मूर्ख है कि, औरोंके धर्म आपमें मान कर रागद्वेषसे जलता है। जो तूभी रागद्वेषसे रहित होकर चेष्टाकरे तो तुझको दुःख कुछनहो। जो वासना सहित कर्म करता है वह बन्धनका कारण होता है; वासना विना कुछ दुःख नहीं होता। तू मूर्ख है जो विचार

कर नहीं देखता। इससे मैं तुझको त्याग करता हूं। तेरे साथ मिलके मैं बड़े खेद पाताहूं। जैसे भेड़ियेके बालकको सिंहचूर्ण करता है तैसेही तूने मुझको चूर्ण किया है! तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ हुआहूं। अब तेरेसाथ मेरा प्रयोजन कुछनहीं, मैं तो निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्दहूं। जैसे महाकाश घटसे मिलकर घटाकाश होता है तैसेही तेरेसाथ मिलकर मैं तुच्छ होगयाहूं। इस कारण मैं तेरा सङ्गत्यागकर परम चिदाकाशको प्राप्तहोऊंगा। मैं निर्विकारहूं और अहंत्वंकी कल्पनासे रहितहूं। तू क्यों अहं त्वं करता है? शरीर में व्यर्थ अहं करनेवाला और कोई नहीं तूही चोर है। अब मैंने तुझको पकड़ कर त्याग दियाहै। तूतो अज्ञानसे उपजा मिथ्या और असत्यरूप है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल जानकर आप भय पाता है तैसेही तूने सबको दुःखी कियाहै। जब तू नाशहोगा तब आनन्द होगा। तेरे उपजनेसे महादुःख है—जैसे कोई ऊंचे पर्वतसे गिरके कूपमें जापड़े और कष्टवान्हो तैसेही तेरे सङ्गसे मैं आत्मपदसे गिरा देह अभिमानरूपी गढ़े में राग द्वेषरूपी दुःख पाता था पर अब तुझको त्यागकर मैं निरहंकारपदको प्राप्तहुआहूं। वह पद न प्रकाशहै, न तम है, न एक है, न दो है, न बड़ा है और न छोटा है; अहं त्वं आदिसे रहित अचैत्य चिन्मात्रहै। जरा, मृत्यु, राग, द्वेष और भय सब तेरे संयोगसे होते हैं। अब तेरे वियोग से मैं निर्विकार शुद्धपदको प्राप्तहोताहूं। हे मन! तेराहोना दुःखका कारणहै। जब तू निर्वाण होजावेगा तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा। तेरे सङ्गसे मैं तुच्छ हुआहूं; जब तू निवृत्तहोगा तब मैं शुद्धहोऊंगा—जैसे मेघ और कुहिरेके होनेसे आकाश मलीन भासताहै पर जबवर्षा होजातीहै तब शुद्ध और निर्मल होरहताहै, तैसेही तेरे निवृत्त हुये निर्लेप अपनाआप आत्मा भासता है। हेचित्त! ये जो देह इन्द्रियादिक पदार्थ हैं सो भिन्नहैं, इनमें अहंवस्तु कुछनहीं; इनको एकतूनेही इकट्ठी कियाहै। जैसे एक तागा अनेकमणियोंको इकट्ठा करताहै तैसेही सबको इकट्ठा करके तू अहं अहं करता है। तू मिथ्या रागद्वेष करताहै इससे तू शीघ्रही सब इन्द्रियोंको लेकर निर्वाण हो जिसमें तेरी जयहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविचारोनामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८॥

उद्दालकबोले; आत्मा जो सूक्ष्मसे सूक्ष्महै, स्थूलसे स्थूल है और शुद्ध, निर्विकार और शान्तरूप है सो मैं अचैत्य चिन्मात्रहूं मेरे में कोई विकार नहीं और जितने जन्ममरणआदिक विकार भासते हैं वे आत्मामें चित्तके कल्पे हैं वास्तुविक आत्माको कोई विकार नहीं। जन्मउसको कहते हैं जो पहिले न हो और पीछेउपजे। आत्मा तो आगेही सिद्धहै फिर जन्म कैसे कहिये? और मृत्यु वह कहाता है जो पीछे न हो

पहिले अभाव होजावे पर आत्मा तो जगत् में अन्तभी सिद्धहै इससे सबविकारोंसे रहित है; फिर मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देहके आदि, मध्य, अन्त तीनों काल सिद्ध हैं; इससे वह सब विकारों से रहित है और चित्तके संयोगसे विकारों सहित भासता है। हे चित्त! तेरे संयोगसे मैंने इतने भ्रम पायेथे और शरीरमें व्यर्थ अहं अहं होताहै सो जाना नहीं जाता कि, कौनहै। शरीरतो रक्तमांसका पिण्डहै, इन्द्रियां, मन आदिक सबजड़ हैं तो अहंकरनेवाला कौन है। जब अहं होता है तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है पर जहां अहंका अभाव है तहां भाव अभाव कैसे हो? अहंकार झूठहै, इन्द्रियां अपने अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं और मनादिक भी अपने स्वभाव में स्थित हैं। यह अहं करनेवाला नहीं पायाजाता कि, कौन है? अहंका रूप कुछ नहीं इससे निश्चय हुआ कि, सब पदार्थ झूठे हैं। अहंकार का ग्रहण करनेवाला भी झूठ है और जितने पदार्थ हैं वे अहंकारसे होते हैं। मैं इससे मिलकर देह इन्द्रियोंके इष्ट–अनिष्ट में क्या राग द्वेष करूं? इसका और मेरा कुछ संयोग नहीं मैं तो निर्लेप और अद्वैत आत्माहूं संयोग किससे हो? मैं भावरूप ब्रह्महूं मेरा संयोग किससे हो? यह तो सब असत्यरूपहै और जो कहिये देहादिक हैं तो भी संयोग नहीं बनता–जैसे लोहे और वट्टेका संयोग नहीं होता। यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहंकरनेवाला कौनथा? यह मिथ्या अहंकार अज्ञानसे दुःखदायक था। जैसे अज्ञानसे बालक को वैताल भासकर दुःखदेता है तैसेही अविचार से दुःखहोता है। जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है तो पहाड़ बादल नहीं होता और बादल पहाड़ नहीं होता; तैसेही आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता। जैसे सूर्यकी किरणों में जल, और रस्सी में सर्पभासता है तैसेही आत्मामें अहंकार भासता है और विचार कियेसे अहंकार कुछ नहीं निकलता। जहां अहंकार होता है वहां दुःखभी आ स्थित होते हैं जैसे जहां मेघ होता है वहां बिजुली भी होती है, तैसेही जहां अहंकार होता है तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढ़ती है। जैसे गरुड़के विद्यमान होते सर्प नहींरहता तैसेही आत्म विचारके विद्यमान रहते अहंकार नहीं रहता। इससे चित्तादिक सब झूठे हैं और अज्ञानसे भासते हैं तो इनसे रचाहुआ जगत् कैसे सत्य हो। यह जगत् अकारण है इससे मिथ्या भ्रमसे भासताहै। जैसे भ्रांतिसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; नौका में बैठेसे तटके वृक्ष चलते भासते हैं और गन्धर्वनगर भासता है। जब चित्त नष्टहोता है तब सब भ्रमका अभाव होजाता है। देह में जो अभिमान है सोही दुःखों का कारण है। जबतक विचार नहीं उपजता तबतक भासता है–जैसे बरफकी पुतली तबतक होती है जबतक सूर्यका तेज नहीं लगा और जब सूर्यका तेज लगता

है तब बरफकी पुतली गलजाती है जैसे बालकको घूमनेसे पृथ्वी भ्रमती भासती है तैसेही चित्तके भ्रमसे यह जगत् भासता है और विचारके उपजेसे अहंकार गल जाता है। हेमन ! तेरे साथ मिलनेसे बड़ादुःख होता है। तुझसे रहित मैंने आपको देखा है, अब तू सब इन्द्रियों सहित निर्वाण हो। आत्मविचारसे आत्म अग्निमें स्थित हो कि सब मल तेरा जलकर शुद्धताको प्राप्तहो। इस देहके साथतेरा मिलाप दुःखके निमित्त है। मन और देहके भीतरसे आपसमें शत्रुभावहै पर बाहरसे स्नेह भासता है। भीतर दोनों परस्पर नाशकरने की इच्छा करते हैं। जो दुःख होता है तो मन उसके नाशकी इच्छाकरताहै और देह कहती है मनन हो तो मेरेमें कोई दुःख नहीं—इसका मिलनाही दुःखका कारण है। हे मूर्खमन ! देहको तेरे संगसे दुःख होता है। आप इसमें भी कोईनहीं। मनमें देहका अभिमान न हो तौभी कोई दुःखनहीं, इनके संयोगसेही दुःखहोता है और बिछुरनेसे दुःख कुछ नहीं—तैसेही मन और देह में वियोगकुछ नहीं। जैसे जहां अंगारे की वर्षा होती है वहां बुद्धिमान् नहीं रहते तैसेही इनमें मिलाप करना हमको योग्य नहीं। हे मूर्खमन ! जितना कुछ दुःखतुझको होता है सो देहके मिलापसे होता है तो फिर इसके साथ तू किस निमित्त मिलता है और आपको सुख जानता है। इसके मिलनेसे तुझको दुःखही होता है परन्तु तू ऐसामूर्ख है जो बारम्बार देहकी ओरही दौड़ता है और सुख जानता है पर तेरानाश होता है। जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानकर मिलनेकी इच्छा करता है पर जल मरता है और मछली मांसकी इच्छा करती है सो कण्डीमें फँसमरती है तैसेही तूदेह कीइच्छा करता है और नाशको प्राप्तहोता है; इससे इसका अभिमान त्याग तो तुझको शान्तिहो। देह कुछवस्तुनहीं केवल मनहीका विकार है। पंचतत्त्वोंकी देह बनी हुई है सोभी कुछवस्तुनहीं है, सब मनके फुरनेसेरचे हैं, इससे फुरनेको त्यागकर आत्मपदमें स्थितहो कि, तुझको शान्तिहो। मैंतो इससे अतीत शुद्धचिदानन्द स्वरूपहूं; मेरे पास न कोई मन है और न इन्द्रियां हैं। मैं अद्वैतरूपहूं। जैसे राजाके समीप पंदोइ नहीं होता तैसेही मेरे निकट मन और इन्द्रियां कोई नहीं—मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूं। भोगोंसे मुझे क्या प्रयोजन है कि, उनसे मिलकर दीनताको प्राप्तहोऊं! मुझको इनके साथ कुछप्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहें अथवा अबहीं नष्टहोजावें; इनके नाश होनेसे मेरा नाशनहीं होता और ठहरनेसे प्रयोजननहीं होता मैंने इनसे आपको भिन्नजाना है। जैसे तिलोंसे तेलनिकाललिया तब फिर तिलोंमें नहीं मिलता और दूधसे माखन निकाललिया तब फिर दूधमें नहीं मिलता; तैसेही विचारकरके अपनाआप निकाल लिया तबफिर इनकेसाथ नहींमिलता। मैं शुद्ध चिदानन्द आत्माहूं, सबजगत्मेरे आश्रय है और सबमें मैं एकही अनुस्युत व्यापाहूं। अब मैं उसी स्वरूपमें स्थितहोऊं।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे बिचारकर उद्दालक ब्राह्मण बिषयोंसे वृत्तिको निवृत्त करके पद्मासन बाँध प्रणव अर्थात् अर्द्धमात्रा और अकार-उकार-मकारकी क्रमसे उपासना करनेलगा और प्राणायामकरके मात्राका ध्यान किया। अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव और अर्द्धमात्रा तुरीया इनको क्रमसहित करने लगा। प्रथम रेचक प्राणायाम करनेलगा और अकारकी ध्वनिकेसाथ रेचककिया उससे सब प्राणवायु भीतरसे निकले और हृदयशून्य और शुद्धहुआ-जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको शून्य कियाथा-और आकाशसे ऐसी ध्वनिहुई जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र पर्यंत चलीगई और देहाभिमान को त्यागकर पुर्यष्टक को सुषुम्णाके मार्गमें प्राप्तकिया। जैसे पक्षी आलयको त्यागकर आकाशमार्गको उड़ता है तैसेही उद्दालकने पुर्यष्टकको ब्रह्मरन्ध्र में स्थित किया। हठ करनेसे दुःखहोताहै इसकारण जबतक सुखरहा तबतक स्थित रहा और जब थका और पुर्यष्टक का वायु अधसे आया तब उकार विष्णुरूप की ध्वनि और ध्यानके साथ कुम्भक किया। जबसब प्राणवायुको आधारचक्रमें रोंका-न नीचेजावे न ऊपरआवे-तो प्राणस्थित संघटहुये और उससे अग्निनिकली जिससे इसकापाप पुण्यरूपी शरीर जलगया। उसमें जबतक सुखरहा तबतक स्थितरहा क्योंकि, हठयोग दुःखदायकहै और फिर मकारकी ध्वनिसे रुद्रका ध्यानकरके पूरक प्राणायाम किया। पूरक प्राणायाम करके सबस्थान बायुसे पूर्ण किये और ऊर्ध्वको चित्तकला प्राप्तहुई उससे यह और को पवित्रकरनेवाला हुआ। जैसे धुआं आकाशको जाता है और जलपाकर औरोंको शीतलकरने वाला होता है तैसेही इसका शरीर औरों को पवित्रकरने वाला हुआ जैसे मन्दराचल मथे हुये क्षीर समुद्र से कल्पवृक्ष निकला तैसेही इसके शरीरमें प्राणबायु स्थितहुई और पद्मासन बांधकर इन्द्रियों को रोंका जैसे हाथी बंधनों से बंधता है तैसेही इसने इन्द्रियों को रोंका अर्द्धमात्रा जो तुरीयापद है उसके दर्शनके निमित्त यत्नकरने लगा उसने नेत्रों को आधा मूंदा और बाह्य विषयोंको त्याग इन्द्रियोंको भी त्यागकिया और प्राण अपान का मूलचक्रमें रोंका जिससे नवो द्वारे रोंके गये। जैसे बालकके खेलनेका पानीचोर होता है और उसके मूंदनेसे चलता पानी सब छिद्रोंसे रोंका जाता है, तैसेहीमूल चक्र के रोंकनेसे नवोद्वार रोंकेगये। इसप्रकार उसने चित्तकोरोंका और जबमनरूपी चंचलमृग दौड़े तबवैराग्य और अभ्यासके बलसे फिर उसेरोंके। जैसे बांधसे जल का वेग, रुकता है तैसेही उसने जब चित्तको स्थितकिया तब अन्तःकरण की जो सात्विकी वृत्ति है उसकोभी त्यागकर स्थितहुआ। जब मनकी वृत्ति जो निद्रारूप है उसमेंमन मूर्च्छित होगया तब राजस-तामसका प्रबाह फिर फुरने लगा और उसको आत्माविवेकसे निवृत्तकिया। जैसे प्रकाश तमको निवृत्त करता है तैसेही इस बिकल्प

रूपी तमको उसने निवृत्तकिया और विवेककेबलसे चित्तकलामें लगा और चित्तकी वृत्तिसे साक्षात्कार किया पर उसमें एकक्षण चित्तस्थित रहा और फिरबाहर निकल गया। जैसे बांधको तोड़कर जलनिकल जाताहै। निदान उसने फिर अभ्यासके बलसे उसे आत्मकलामें लगाया तब उसपरमशान्त आत्मपदमें चित्तकी वृत्तिस्थित हुई और परमआनन्द अमृत में मग्नहुई जो अशब्द, आनन्द और परिणामसे रहितहै और जिस पदमें देवता, ऋषीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थितहैं। हे राम जी! जो उसपद में एकक्षण भी स्थितहुआ है और जो बर्ष पर्यन्त स्थितहुआ है दोनों तुल्यहैं। जिसको उसपदका अनुभव हुआहै वह भोगोंकी इच्छा नहीं करता। जैसे जिसने स्वर्गका नन्दनवन देखाहै वह कञ्जके बनदेखने की इच्छा नहीं करता, तैसेही ज्ञानवान् भोगोंकी बांछा नहीं करता और शोककदाचित् नहीं उपजता। जैसे जिसको राज्यहुआहै वह दीनताको नहीं प्राप्तहोता,तैसेही जिसने आत्मपदमें स्थिति पाईहै उसको विषयोंकी तृष्णा और शोकनहीं उपजता। हे रामजी! जब इसप्रकार उद्दालक स्थितथा तब सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरोंके गण जिनके मुख चन्द्रमाकी नाईं थे उसके निकट आये और नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! स्वर्गमें चलके दिव्यभोगभोगो, तुमने बड़ी तपस्याकीहै। धर्म्म, अर्थ और पुण्यकासार कामहै और कामका सारजो स्त्रियां हैं वे तुम्हारे भोगनेके निमित्तहैं, जिनसे स्वर्गभी शोभता है—जैसे बसन्तऋतुकी मंजरी और पुष्पोंसे पृथ्वी शोभती है। इससे तुम विमानोंपर आरूढ़होकर स्वर्गमें चलो और बहुतकाल पर्यन्त भोगभोगो। हे रामजी! जब सिद्धोंने इसप्रकार बहुतकहा तब उद्दालकने उनको अतिथिजानकर निरादर तो न कियाकिन्तु यथायोग्य पूजा करकेहँसा औरकहा कि, हे सिद्धो! तुमको नमस्कार है, आवो। पर वह उनकी सिद्धतामें आसक्तहुआ क्योंकि, परमानन्दमें स्थितथा और विषयोंके सुखतुच्छ जानता था। जैसे अमृत खानेवाला बिषकी इच्छा नहीं करता तैसेही उद्दालक सुखको न चाहता था। कुछदिन रहकर सिद्ध पुजते रहे और फिर उठगये पर यह परमपद में स्थितरहकर अपने प्रकृत व्यवहार करतारहा। फिर मेरु और मन्दराचल पर्व्वत में बिचरा और कन्दरामें ध्यानलगा बैठा। कहीं एक दिनभर बैठारहे और कहीं बर्षों के समूह बीतजावें; इसप्रकार समाधिकरके उतरा तब समाधि होगई। हे रामजी! चित्ततत्त्वज्ञ अभ्याससे महाचेतन तत्त्वको प्राप्तहोता है। दिशामें जैसे चित्रका सूर्य होता है तैसेही उदय अस्तसे रहितहो उसने परम उपशम पदको पाया, चित्त भलीप्रकार शान्तहोगया और जन्म-रूपी फाँसी को तोड़ उसका देहरूपी भ्रम क्षीणहोकर शरत्कालके आकाशवत् निर्मलहुआ और बिस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उसका बपुहोगया। तब वह सत्ता

सामान्य में स्थित होकर बिचरनेलगा और परम शान्ति को प्राप्तहुआ ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविश्रान्तिवर्णननामएकोन
पञ्चाशत्तमस्सर्गः ४९ ॥

रामजीने पूछा, हे आत्मरूप! आप ज्ञान दिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य्य हैं; संशयरूपी तृणोंके जलानेवाले अग्निहैं और अज्ञानरूपी तापोंके शान्तिकर्त्ता चन्द्रमाहैं। हेईश्वर! सत्ता सामान्यका रूपक्याहै? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! जगत्के अत्यन्त अभावकी भावनाकरके जबचित्त क्षीणहो और उसमें जो शेषरहे सो सत्तासामान्यहै। जबचित्त से रहित आत्मसत्ताहो और उसमें चित्तलीन होजावे तब सत्तासामान्य उदय हो; जो असत्यकी नाईं स्थितहै सोहीसत्ता सामान्यहै। हे रामजी! जब सब इन्द्रियोंका प्रपञ्च शान्तहोकर शुद्धबोध रहे; भीतर बाहरका व्यवधान मिटजावे और सब जगत् एक रूपहोकर समाधि और उत्थान एकसा होजावे ऐसी दशाकी जो प्राप्तिहै सोही सत्ता सामान्यहै। वह देहके होतेही विदेहरूपहै और उसको तुरीयातीतपद कहते हैं। समाधिमें स्थितिहो तौभी केवलरूपहै और उत्थानहो तौभी केवलरूप है। अज्ञानी समाधि और उत्थानके तुल्य नहींहोता क्योंकि, ज्ञानसे उपजी समाधि उसको नहीं प्राप्तिहुई। हमसे आदिलेकर नारद, देवर्षि, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रआदिक जिनको ज्ञानकी दृष्टि पुष्टहुईहै वे सत्तासामान्यमें स्थितहैं और उनकोसमाधि और उत्थानमें तुल्यता है। जैसे आकाशमें पवनका चलना और ठहरना समानहै और जैसे पृथ्वी में जल स्थितहै और अग्निमें उष्णता स्थितहै; तैसेही सत्तासामान्य में वह स्थित है। जब तक जगत्में विचरने को उसकी इच्छाथी तबतक वह ऐसे विचरतारहा और जब बिदेह मुक्ति होनेकी इच्छाहुई तब पहाड़की कन्दरामें पत्रोंका आसनबनाकर पद्मासनबांध और दांतोंसे दांतोंको मिलाकर सब सङ्कल्पोंका त्यागकिया और प्राणवायु को मूल आधारचक्र करके नवें द्वार खेचरी मुद्रासे रोंके। न भीतर; न बाहर, न अध, न ऊर्द्धसर्वभाव–अभाव विकल्पोंको त्यागकर उसने जबआत्मतत्त्वमें चित्तकी वृत्ति कोलगाया तब शुद्धचिन्मात्रामें चित्तकीवृत्तिजा प्राप्तहुई और रोमखड़ेहो आये। जब उस व्युत्थानकोभी उसने त्यागकिया तब सत्तासामान्य विश्वम्भर पदको प्राप्तहुआ, जो परम विश्रान्त, अनादि, आनन्द और सुन्दररूप है। तब पुतलीकी नाईं उस का शरीर होगया और जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसेही निर्मल पद को प्राप्तहुआ। जैसे सूर्य्यकी किरणों के द्वारा वृक्षमें रसहोता है और सूर्य्य उसे खैंचलेता है और जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर उसही में लीनहोता है तैसेही उसका चित्त जिससे उपजाथा उसी में लीनहोगया; सम्पूर्ण उपाधि विलाससे संकल्प रहित हुआ और उस आनन्द पदको प्राप्तहुआ जिसमें इन्द्रादिकों का आनन्द

भी तुच्छ भासता है। ऐसा विश्वम्भर आनन्द जो उत्तम पुरुषोंसे सेवने योग्य है और जो अद्वैत और अशब्द सत्ता सामान्य है उसमें जब उद्दालक प्राप्तहुआ तो परम शान्ति रूप होगया। निदान कुछकाल पीछे उसका शरीर गिरपड़ा—जैसे रस सूखेसे वृक्षगिर पड़ता है। जैसे वीणा बजती है और उसका शब्द प्रकट होता है तैसेही जब वायु चले और उसके शरीरमें प्रवेश कर निकले तो शब्द प्रकट होता था। कुछकाल पीछे देवताओंकी स्त्रियां; अश्विनीकुमारकी शक्ति जिनका अग्निकी नाईं तेज है और देव देवी जो सब देवताओंसे पूज्य हैं सखियों सहित आईं और उस शरीरको सुगंधित पुष्पों की माला पहिरा कर उसकी पूजा करके नृत्य करने लगीं और लीलाकी। हे रामजी! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनासे रहित विवेक रूपी बेलिहुई और उसमें आत्मानन्दरूपी फल लगा। जिसके हृदयमें ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थितहो वह सब भ्रमसे तरजावे। जिसको ऐसा विवेक प्राप्तहो वह सब भ्रम से मुक्तहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकनिर्वाणवर्णनंनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्तहुआ है उसी क्रमसे अपने आपको विचार करके तू भी आत्मपदको प्राप्तहो। हे कमल नयन! कर्त्तव्य यही है कि, गुरु और शास्त्रों के वचनोंको धारण कर जगत् भ्रम से मुक्तहो और आत्म अभ्याससे शान्त पदको प्राप्तहो। प्रथमगुरु और शास्त्रोंके वाक्योंको समझिये और उससे जो विषयभूत अर्थ है उसके अभ्यासमें बुद्धिको लगाइये। इस प्रकार जब दृढ़ताहो तब परम पदकी प्राप्तिहो। अथवा बुद्धिमें एक तीक्ष्ण अभ्यासहो और कलङ्क कलनासे रहित ऐसा बोधहो तो साधनादि सामग्री से रहितहो अथवा वैरागादिक सामग्रीसे रहितहो तौभी अविनाशी पदको प्राप्तहो। रामजीने पूछा; हे भूतभविष्यके ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष तो समाधिमें स्थितहोता है और फिर जगत् व्यवहारमें विचरता है और एक समाधिमें स्थित है जगत्का व्यवहार नहीं करता; इन दोनोंमें श्रेष्ठकौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम समाधिका लक्षण सुनो कि, समाधि किसको कहते हैं और व्युत्थान क्या है। यह गुणोंका समूह अहंकारसे लेकर तत्त्वगुणात्मक है। जो इनको अनात्मरूप देखता है; आपकोकेवल इनका साक्षी चेतन जानता है और स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है उसको समाधि कहते हैं। जो मैत्री, करुणा, अमान्यता आदिक गुणोंमें स्थित हुआ है और जिसका मन आत्मविषयसे शांतिको प्राप्त होता है उसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप दृश्य के सम्बन्धसे रहितहूं वह चाहे वनमें रहे अथवा गृहमेंरहे दोनों स्थान उसको तुल्य

हैं और वे दोनों पुरुष तुल्य हैं। अन्तःकरण का शीतल होना बड़े तपोंका अनंत फल है। हे रामजी! जो इन्द्रियोंको शमन करके बैठा है और मनसे जगत्के पदार्थों की चिन्तना करता है उसकी समाधि मिथ्या है। वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है। और जिसके मनमें कोई बासना नहीं और व्यवहार करता है उसको बुद्धिमानोंकी समाधिके तुल्यजानो। कोईज्ञानी व्यवहार करता है और कोई ज्ञानवान् व्यवहारको त्याग कर बनमें समाधि लगाकर स्थितहो बैठा है पर दोनों निश्चयसे परम पदमें प्राप्तहोते हैं—इसमें संशय नहीं। ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करताभी दृष्टआता है तौभी अकर्त्ता है और अज्ञानीजो कर्त्ताभी नहीं परन्तु वासनासे कर्तव्यभावको प्राप्त होता है। जैसे कोईपुरुष कथा सुनने बैठाहो और उसकामन किसी और ठौर निकल गयाहो तो सुनता बैठाभी नहीं सुनता; तैसेही ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदकी ओर लगा है इससे वह कर्त्ताभी नहीं कर्त्ता क्योंकि, उसको कर्तृत्वका अभिमान नहींहोता। घन वासना सहित अज्ञानी सब इन्द्रियोंको स्थित करके सोगयाहो तो उसको स्वप्न आवे और पर्वतसे गढ़ेमें आपको गिरा देखता है और कष्टवान् होता है। इससे जहां वासना है वहां क्षोभभी है और जहां कुछ वासना नहीं वहांशान्ति है। हे रामजी! जिसमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं और निश्चयसे आपको अकर्त्ता जानता है उसको केवली भावसे समाधिमें स्थित जानो और जिसमें कर्तृत्व अभिमान है और समाधिमें बैठा है तौभी उसको व्युत्थान जानो। हे रामजी! चित्तके चलानेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्को लेकर समाधि लगा बैठता है। तौभी चित्त वासनासे फैलजाताहै। जैसे बीजसे अंकुर उपजताहै और फैलजाता है तैसेही मनमें जो वासनाकी स्मृति होती है उससे चित्त फैलजाता है। और जो जगत्की बासना मनसे जाती रहती है अर्थात् जगत्का सततभाव निवृत्त होजाता है तब चित्त अचल होजाता है। हे रामजी! जिस चित्तसे वासना नष्ट होती है उसको अचल स्थिति कहते हैं; वह ध्यानमें केवली भावसें स्थित होता है और जिसके चित्त में सदा वासना फुरती है उसको सदा क्षोभ होता है। इससे निर्वासनीक होकर तुम परमपदको प्राप्तहो। हे रामजी! जिस चित्तमें वासना गन्धि होती है उसमें कर्तृत्वका अभिमानभी फुरता है और उससे सदा दुःखी होता है। वासनाके क्षीणहुयेसे मुक्त होता है। जिस पुरुषके चित्तसे जगत्की आस्था निवृत्तहुई है और वीत शोकहुआहै वह स्वस्थ आत्मा है। तिसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसके हृदयसे संसार का रागद्वेष मिटगया है और शान्तिको प्राप्तहुआ है उसको सदिव्य समाधि कहते हैं। इससे चित्तमें जो पदार्थ भावना है उसको त्याग कर अपने स्वभावमें स्थितहो; तब गृहमें रहो अथवा बनमें जावो दोनों तुमको तुल्य हैं। हे रामजी! जो गृहमें

स्थित है और चित्त समाहित है और अहंकारके दोषसे रहित है उसको कुटुम्ब और जनोंके समूहभी वनकी नाईं है। ज्ञानवान्को गृह और वन तुल्य है और देह अभिमानी जो अज्ञानी है वह वनमें जाय और समाधि लगा बैठता है पर चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर रहती है तब वह जगत्के समूहको देखता है अथवा सुषुप्तिमें जड़ मृत होजाता है। हे रामजी! चित्त उत्थानमें स्वरूपसे गिराहुआ जगत् भ्रम दिखाता है और जब चित्त निर्वाणपद आत्मामें स्थित होता है तब उपशम होता है। हे रामजी! जो पुरुष सब भाव पदार्थोंमें आत्माको अतीत जानताहै वह समाहित चित्त कहाता है और जिसको जाग्रत जगत् स्वप्नवत् भासताहै वह समाहित चित्त कहाता है। वह पुरुष जनके समूहमें रहताहै तौभी उसका सम्बन्ध किसीसे नहीं। जैसे कोई पुरुष राजमार्गमें चलाजाताहै तो मार्गके किसी पदार्थसे सम्बन्ध नहींरखता तैसेही उसपुरुषका अभिमान किसी में नहीं फुरता। जिसपुरुषका चित्त अन्तर्मुख हुआहै वहसोवे अथवाबैठे; चले अथवा देखे उसे नगर और ग्रामसब महावनरूप भासता है और सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है। जिसपुरुषको आत्मामें प्रीति हुई है वह अन्तर्मुखी कहाता है और जिसका हृदय आत्मज्ञानसे शीतल हुआ है उसको सब जगत् शीतलरूप भासता है। वह जबतक जीता है तबतक विगतज्वर होकर जीता है और जिसका हृदय तृष्णासे जलता है उसको सब जगत् दावाग्निसे तपता भासता है। हे रामजी! यह सब जगत् चित्त में स्थित है; जैसी भावना चित्तमें होती है उसके अनुसार जगत् भासताहै। स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, नदियां, आकाश, देश, काल जो कुछ जगत्है वह सब चित्त अन्तःकरण में है और वही बाहर विस्तार होकर भासता है। जैसे वटके बीजमेंवट फैलजाता है तैसेही चित्तमें जगत् का विस्तार होताहै। बाहर जो सूर्य आदिक भासता है वहभी चित्तके भीतर स्थित है—जैसे फूल खिलताहै उसके भीतरकी सुगन्ध बाहर भासती है और वास्तवमें न कुछ भीतर है न बाहर है जैसा किञ्चन होताहै तैसाही चैत्यतासे फुरता है—तैसेही वहीसत्ता जगत् रूप होकर भासती है। जगत् सब आत्मरूप है और न कोई सत्य है, न असत्य है; एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको सदा ऐसेही भासता है। हे रामजी! जिसके हृदयमें शान्ति है उसको सब जगत् शान्तिरूप है और जिसका हृदय देहाभिमान में स्थित है सो नाश होता है और भयपाता है किसी ओर से उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। वह स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत,नदियां, देश, काल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है। जिसके हृदय में ताप होता है उसको सब जगत् तपता भासता है पर आत्मज्ञानीको शान्तरूप भासता है—जैसे अंधेको सब जगत् तमरूप

भासता है और नेत्रोंवालेको सब जगत् प्रकाशरूप भासता है । हे रामजी! जिस पुरुषको आत्मपदमें प्रतीति हुई है और इन्द्रियों से कर्म भी करता है परन्तु हर्ष शोकके वशनहीं होता वह समाहितचित्त कहाता है। जो पुरुष सबको आत्म देखता है, चित्तको नहीं चितवता; भविष्यत्की इच्छा नहीं करता और वर्त्तमानमें रागद्वेषसे रहित होकर विचरता है वह समाहित चित्त कहाता है। हे रामजी! जो पुरुष जगत् की पूर्वापर गतिको देखकर हँसता है; समपद में स्थित होताहै और किसी में ममता नहीं करता वह समाहितचित्त कहाता है। जो पुरुष अहंममतासे और जगत्की विभाग कलनासे रहित है और जिसे चेतन अचेतन भाव नहीं फुरता वह पुरुष सत्य है और आकाशकी नाईं स्वच्छ निर्मल है और राग,द्वेष, क्रोध विकारोंसे काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है। वह सब भूतोंको अपने समान देखता है और और के द्रव्यको देखकर दृष्टि नहीं करता। वह स्वभावही से उसे नहीं चाहता द्वन्द्व के भय से नहीं त्यागता। ऐसे जो देखता है और अहंकार से रहित होताहै वह न जगत् के सत्यभावको देखता है, न असत्य भावको देखता है; न ज्ञानको देखताहै; न अज्ञान को देखताहै; न जड़ को देखताहै; न चैतनको देखता है; वहतो केवल अद्वैत तत्त्व देखता है। वह महाशान्तपद में स्थित है; वह उठ खड़ा हो अथवा बैठारहे; उदय हो अथवा अस्तहो; बड़े भोगों में रहे अथवा वन में जा बैठे; अथवा मद्यपानसे उन्मत्तहो और नृत्यकरे और गयादिकतीर्थों में निवास करे अथवा कन्दरामें निवासकरे शरीरको अगरचन्दनका लेपनकरे अथवा कीचड़ के साथ लपेटे; देह अभी गिरपड़े अथवा कल्पपर्यन्त रहे; उस पुरुषको कदाचित् कुछ कलंक नहीं लगता। जैसे सुवर्ण को कीचड़के मिलापसे दोष नहीं लगता तैसेही ज्ञानवान् को कर्त्तृत्वका दोष नहीं लगता। हे रामजी! इस सम्वितको अहंताही कलंक है। महापुरुष अहंकारसे रहित है इससे उनको कृतत्व स्पर्श नहीं होता। जैसे सीपीको रूपे का आभास नहीं स्पर्श करता तैसेही ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! अहंताही से जीवदीन होता है। जब अहंता फुरती है तब अनेक प्रकारके दुःख सुख देखता है और परम्परा जन्मोंको देखताहै और भयपाता है। जैसे किसीको रस्सीमें सर्प भासता है और भयपाता है पर जब भली प्रकार दीपकके प्रकाश से देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है; तैसेही अहंतासे यह दुःख पाता है और अहंताके शान्त हुये शान्तिवान् होता है। हे रामजी! ज्ञानवान् जो कुछ कर्म करता, खाता, पीता, लेता, देता, हवन करता है उसमें अहंताका अभिमान नहीं करता इससे करने में उसका कुछ अर्थसिद्ध नहीं होता और जो नहीं करता उसमें भी कुछ अभिमान नहीं इससे करने से उसकी कुछ हानि नहीं होती वह अपने स्वभाव में स्थित है और

जगत्को द्वैतभाव से नहीं देखता, सबको आत्मभावसे देखताहै इससे उसे कर्म स्पर्श नहीं करता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेध्यानविचारोनामएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है सो वास्तवमें आत्मासे भिन्न नहीं है। आत्मारूपी मिरच है उसमें चित्त अहंतारूपी देशकाल तीक्ष्णता भिन्न नहीं जैसे इक्षुसे मधुरता भिन्न नहीं तैसे आत्मासे जगत् भिन्न नहीं । जैसे पत्थरमें कठोरता है तैसेही आत्मामें जगत् है; जैसे पर्वतमें जड़ता होती है तैसेही आत्मामें अहंता होती है जैसे जलमें द्रवता होती है तैसेही आत्मामें अहंता आदिक होती है। जैसे फूल, फल, टास वृक्षसे भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मा में अहंता आदिक अभेद होते हैं; जैसे तीक्ष्णता मिरचोंसे भिन्न नहीं होती तैसेही चित्त अहंता रूपी देशकाल आत्मासे भिन्न नहीं । जैसे अग्नि में उष्णता; बरफ में शीतलता; सूर्य्य में प्रकाश, और गुड़में मधुरता होती है; तैसेही आत्मा में जगत् होताहै। जैसे अमृतमें स्वादवेदना होती है तैसेही आत्मामें देश, काल वेदना होती है। हे रामजी! जैसे मणिमें प्रकाश होता है तैसे आत्मामें अहंता होती है और जैसे जलसे तरङ्ग भिन्न नहीं होता तैसेही आत्मासे अहंता आदिक भिन्न नहीं होते । जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है जो अनन्त आत्मा सबमें पूर्ण है और एकही ईश्वरभाव में स्थित महाघन शिलाकी नाईं स्थित है–उससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे आकाश अपनेभावमें स्थितहै तैसेही सत्यकेवल आत्मामें स्थितहै और अपने आपसे निर्वेद है पर वेदनाभी उससे भिन्न नहीं। जैसे जलही तरङ्गरूप होभासताहै तैसेही आत्मा वेदनरूप होभासता है और जैसे जलमेंद्रवता और पवनमेंचलना भासता है तैसेहीज्ञानरूप आत्मामें अहंतारूप देश,काल,जगत् भासताहै। हेरामजी! जीवोंका जीना ज्ञानसे होताहै और ज्ञानसत्ताका जीना चैतनसे होता है। चिन्मात्र और जीवों मेंरञ्चकमात्र भी कुछ भेदनहीं। जैसे ज्ञान, चैतनसत्ता और जीवमें भेदनहीं तैसेहीं ज्ञाता और जगत्में कुछभेदनहीं–एकही अखण्डसत्ता ज्योंकीत्यों स्थितहै। हे रामजी! सर्वसत्ता एक, अज, अनादि और आदि,अन्त, मध्यसेरहित, प्रकाशरूप, चिन्मात्र, अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थितहै। वह अशब्द है उसमें वाणी प्रवेशनहीं करसक्ती और जितने वाक्यहैं वह उसके जतानेकेनिमित्त कहे हैं। वास्तवमें द्वैतवस्तु कुछनहीं है एक आत्मतत्त्वको अपने हृदयमें धारणकर स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभेदनिराशावर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५२ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! एकआगे पुरातन इतिहास हुआहै उसको तुमसुनो। उत्तरदिशा में एक सुगन्धितपृथ्वी है वह मानोकपूरसेलिपी हुई है और मानो सदा

शिवके हंस आ स्थितहुये हैं। हिमालयके शिखरपर वह कैलास पर्वतहै जो सवपर्वतों से उत्तम और उज्ज्वल है। वह रुद्रके रहनेकास्थान है, वहांकलपवृक्ष लगे हैं और गङ्गाकाप्रवाह चलता है। और भी वहुतसी वड़ीनदी वहां चलती हैं और कमलों सहित वहुत महासुन्दर तालाव स्थित हैं जहां वहुत मृगपक्षी हैं। उस हिमालयके नीचेस्वर्णवत् जटावाले क्रांत रहते हैं—जैसे वृक्षके मूल में पिपीलिका रहती हैं। उस क्रांतदेशकाराजासुरघ मानोप्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्त्तिधारेहुए, वेगवान् ऐसा मानो पवनकी मूर्त्ति वैराग्यवान् मानोगजेन्द्र, वुद्धिवान्मानोवृहस्पति और शुक्रके समान कविथा। राजाऐसाथा मानोइन्द्र है; और धनीऐसामानो कुवेरथा। ऐसाराजा होकर वह राज्य करताथा और भलीप्रकार प्रजाकीपालनाकरताथा। जो भलेमार्ग्गमेंचलें उनकी वह रक्षाकरे और जो पापकर्म्म चोरी आदिककरें उनको दण्डदे और जैसाकर्म्मप्राप्तहो उसमें द्वेषसेरहित होकर व्यतीतकरे। एकसमय वह अपनेस्थान में वैठाथा तव चित्त में विचार उपजा और संशयरूपी वायुसे उसकी वुद्धिरूपी पक्षिणीडोलायमान हुई कि, वड़ा अनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्टदेताहूं। इससेमैं इनको धनदेऊं और कष्ट न देऊं। जैसे तिलोंको तेलीपेरताहै तैसेही मैं पापियोंको कष्ट देताहूं। दुष्टोंको कष्टदिये विना राज्य नहीं चलता—जैसे जलविना नदीका प्रवाहनहीं चलता—और यदिदण्ड देताहूं तो वे दुःखपावते हैं। मैंक्याकरूं दोनोंवातोंमें कष्टहै। हे रामजी! ऐसेविचारमें राजावहुत भ्रमतारहा निदान एकदिन उसकेगृहमें मांडवमुनिआये—जैसे इन्द्रकेघरमें नारदआवें—तवराजाने भलीप्रकार उनका पूजनकिया और संदेहवान् होकर पूछा; हे भगवन्! तुम सर्वधर्मगतहो, तुम्हारे आनेसे मैं वड़े आनन्दको प्राप्तहुआहूं जैसेवसन्तऋतुसे पृथ्वीप्रफुल्लितहोतीहै तैसेहीमैं प्रफुल्लितहुआहूं मैं भी अव आपकोपुण्यवान् जानताहूंकि, मैं भी पुण्यवानोंमें प्रसिद्धहोऊंगा क्योंकि; तुममेरेगृहमें आयेहो। जैसे सूर्य्यके उदयहुये प्रकाश होआताहै तैसेही मैंतुम्हारे दर्शनसे प्रसन्नभयाहूं।हेभगवन्! मुझको एक संशय है उसके निवारणकरनेको आपही योग्यहो। जैसे सूर्यके उदय हुये अन्धकार नष्टहोजाता है तैसेही तुमसे मेरासंशय निवृत्तहोगा। जो कोई महापुरुषोंका सङ्गकरताहै उसका संशय अवश्य निवृत्त होता है। संशयही परमदुःखों काकारण है इससेमेरे संशय को तुम दूरकरो। मुझे यह संशय है कि, यदिकोई दुष्ट कर्मकरताहै तो उसको मैं दण्डदेताहूं और जवउसको दुःखीदेखताहूं तो दया उपजती है। जैसे सिंहनखसे हाथीको खैंचताहै तैसेही यहसंशय मुझको खैंचता है। इससे यही उपाय कहो जिससे मुझको समताप्राप्तहो। जैसे सूर्यकी किरणें सवठौरमें सम होतीहैं तैसेही इष्ट—अनिष्टमें मैंसमहोऊं। कृपाकरके मुझसे वहीउपाय कहिये। मांडव वोले, हे राजन्! यहतो वहुतसुगम है और अपने आधीन है; आपहीसे सिद्धहोता

है और अपनेही गृहमें है। हे राजन्! सबउपाधि मनमें उठतीहै। वहमन तुच्छ है और विचारकियेसे निवृत्तहोजाताहै। जैसे उष्णतासे बरफ जलमय होजाता है तैसेही विचार कियेसे जब मनभाव लीनहोजाताहै तबतापभी निवृत्तहोजाताहै। जैसेशरत्काल केआयेसे कुहिरा नष्ट होजाताहै तैसेही विचारकियेसे मनभाव नष्टहोजाताहै। विचारो कि, मैं कौनहूं, इन्द्रियांक्या हैं; जगत्क्या है और जन्म मरण किसको कहते हैं? इस विचारसे जबतुम अपने स्वभावमें स्थित होगे तबतुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग द्वेष चलायमान न करसकेगा। जैसे वायुसे पर्वतचलायमान नहींहोता तैसेही तुमअचल रहोगे। हे राजन्! जबआत्मबोधहोगा तबमन अपने मनभावको त्याग देगा और तुमसन्तापसे रहित अपने स्वरूपको प्राप्तहोगे। जैसे तरंगभाव मिटनेसे जल निर्मलहोताहै तैसेही तुम अचलहोगे और मनधर्मभीरहेगा परन्तु मध्यसे अज्ञान नष्टहोजावेगा और आत्मसेला भावहोगा। जैसेकाल वहीरहता है परन्तु ऋतु और होजाती है तैसेही मन वहीहोगा परन्तु स्वभाव और होजावेगा। तेरे नौकर और प्रजाभी साधुहोजावेंगे और तेरीआज्ञा में चलेंगे और तुझको देखकर प्रसन्नहोंगे। हे राजन्! जबतुझको विवेकरूपी दीपकसे आत्मारूपीमणि मिलेगा तबतेरी बड़ाई सुमेरु और समुद्र और आकाशसेभी अधिक होगी। जब तुझको विवेकसे आत्म महत्वताका प्रकाश होगा तब तू संसारकी तुच्छवृत्तिमें न डूबेगा। जैसे गोपद के जलमें हाथीनहीं डूबता तैसेही तू राग द्वेष में न डूबेगा। जिसको देहमें अभिमानहै और चित्तमें वासनाहै वह तुच्छसंसारकी वृत्तिमें डूबता है; इससे जितना अनात्मभाव दृश्य हैं उसका त्यागकर पीछे जो शेषरहे सो परमतत्त्व आत्मा है। हे राजन्! जो कुछ सत्य वस्तु है उसको हृदयमें धरो और जो असत्य है उसका त्यागकरो। जैसे तब तक कल्लरसे सोनार धोता है जब तक सुवर्णनहीं निकलता और जब सुवर्ण निकलता है तब धोनेका त्यागकरता है; तैसेही तबतक आत्मविचार कर्त्तव्य है जब तक आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ। जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसे प्रयोजन नहींरहता। हे राजन्! सबमें, सबप्रकार, सबकाल, सब आत्माकी भावनाकरो अथवा जितना दृश्यभाव हैं सो सब त्यागकरो तो जो शेषरहेगा सो तुम को भासि आवेगा। जबतक सर्वदृश्यका त्याग न करोगे तबतक आत्मपद का लाभ न होगा। सर्व दृश्यके त्यागसे आत्मपद भासेगा। हे राजन्! जब किसी वस्तुके पानेका यत्न करता है तो औरका त्यागकर उसीका यत्नकरिये तो प्राप्त होता है तो आत्मतत्त्व अनन्य होकर चित्तविना कैसे प्राप्तहोगा। जब अपना सम्पूर्ण यत्नएकही ओरलगाता है तब उस पदकी प्राप्ति होती है। इससे आत्मपद के पानेकेलिये सब दृश्य का त्यागकर सबके त्याग कियेसे जो शेषरहे सो परमपद है। हेराजन्!

सबके त्यागकियेसे जो सत्ता अधिष्ठान रहेगा सो तुझको आत्मभावसे प्राप्तहोगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तमांडवोपदेशोनाम
त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! इसप्रकार कहकर जब मांडवमुनि अपने स्थानकोगये तब सुरघराजा एकान्तमें बैठकर बिचार करनेलगा कि, मैं कौनहूं? न मैं सुमेरुहूं, न मेरासुमेरुहै; न मैंजगतहूं, न मेराजगतहै; न मैं पृथ्वीहूं, न मेरी पृथ्वीहै; न मैं क्रान्त मण्डलहूं और न मेराक्रांतमण्डल है क्योंकि; यह अपने भावमें स्थितहै, मेरे भावसे तो नहीं। जो मैं न होऊं तौभी यह ज्योंकेत्यों स्थितहैं तो यह मेरे कैसे होवें और मैं इनका कैसे होऊं? न मैं नगरहूं और न मेरा नगरहै। हाथी, घोड़ा, मन्दिर, धन, स्त्री, पुत्रादिक जो कुछ पदार्थ हैं सो न मेरे हैं और न मैं इनकाहूं। इनमें आसक्त होना वृथाहै; इनमें मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जितने भोगोंके समूहहैं ये न मैंहूं और न ये मेरेहैं। नौकर, भृत्य और कलत्र सब अपने भावसे सिद्धहैं, मेरा इनसे सम्बन्ध कुछ नहीं। न मैं राजाहूं, न मेरा राज्य है। मैं एकाएकी शरीर मात्र हूं और इनमें मैं ममत्व करताहूं सो वृथा है। शरीरमें जो मैं अहं करताहूं सोभी व्यर्थहै क्योंकि; हाथ पांव आदिकका स्वरूप भिन्नहै; न यह मैंहूं और न ये मेरे हैं। इनमें मेरा शब्द कुछ नहीं यह रक्त, मांस, हाड़ आदिकरूप हैं सो मैं नहीं। यह जड़ है और मैं चेतनहूं; इनके साथमेरा कैसे सम्बन्धहो। जैसे जलका स्पर्शकमलको नहीं होता तैसेही इनका स्पर्श मुझको नहीं। न मैं कर्म इन्द्रियां हूं और न मेरी कर्म इन्द्रियां हैं। यह जड़है, मैं चैतन्यहूं। न मैं ज्ञानइन्द्रीहूं, न मेरी ज्ञान इन्द्रियां हैं। इनसेपरे मनहै सोभी मैं नहीं क्योंकि, यह जड़ है मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब अनात्मारूप हैं। मेरा इनके साथ अविद्या से सम्बन्ध है। भ्रांतिसे मैं इनको अपना स्वरूप जानताथा पर यह सब भूतोंका कार्य्य है। इनके पीछे चेतन जीवहै जो चेतन दृश्यको चेतनेवाला है सो चेतन चेतनाभी मैं नहीं। इससब से शेषअचेत चिन्मात्रसत्ता मेरास्वरूप है। बड़ा कल्याणहुआ जो मैंने अपना आप पाया। अब मैं जागाहूं। बड़ा आश्चर्य है कि, मैं वृथा देहादिक को अपना जानकर शोक और मोहको प्राप्त होताथा। मैं तो एक निर्विकल्प चेतन और अनन्त आत्मा सबमें व्याप रहाहूं और ब्रह्मरूप आत्मा हूं। इन्द्रियों से आदि जितने भूतगण हैं उन सबका मैं आत्माहूं। यह भगवान् आत्मासबके भीतर व्यापा है। जैसे सबके भीतर तत्त्वहोते हैं तैसेही यह चेतनरूप सर्व भावको भर रहा है और सर्व भावोंमें व्याप रहा है। भैरव और उदय अस्त भाव आदि विकारों से वह रहित है। ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सबका आत्मायही है। सब प्रकाशोंका प्रकाशनेवाला दीपक वही है और संसाररूपी मोतियों के पिरोने

वाला तागा और सबका कारण कार्य्य यही है । वह साकार से रहित है और शरीरादिक सब उसीकी सत्तासे उपलब्ध होते हैं । शरीररूपी रथ इसी से चलता है पर वास्तव में शरीरादिक कुछ बस्तु नहीं । यह जगत् चित्तरूपी नटकी नृत्य लीलारूप है । चित्तमें जगत् फुरता है वास्तव में और कुछ बस्तु नहीं । बड़ा कष्ट है कि, मैं वृथा संग्रह असंग्रहकी चिन्ता करताथा । यह गुणों का प्रवाह है इस में मैं क्यों शोकवान् होता था ? बड़ा आश्चर्य्य है कि, असत्यभ्रम सत्यहो मुझको दीखता था । अब मैं निश्चय करके सम प्रबोध हुआहूं और दुर्दष्टि मेरी दूरहुई है । दृष्टि की जो अलख दृष्टि है सो अब मैंने देखी है और जो कुछ पाने योग्यथा सो मैंने पायाहै और अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्तहुआहूं । जो कुछ दृश्य है उसको मैं स्वरूपसे देखता हूं और अहंमम दुःख मेरा नष्टहुआ है । मैं चिदानन्द पूर्ण और नित्य शुद्ध अनन्तआत्मा अपने आप में स्थित हूं । ग्रहण क्या और त्याग क्या ? यह क्लेश कोई नहीं और न कोई दुःख है, न सुख है; सर्व ब्रह्महै और दूसरी बस्तु कुछ नहीं । मैं राग किसका करूं और द्वेष किसका हो ? मैं मिथ्यामूढ़ता को प्राप्तहो कर दुःखी होताथा; अब कल्याण हुआ कि, मैं अमूढ़ होकर अपनेआप स्वभाव में स्थित हुआ हूं । ऐसे आत्माके साक्षात्कार बिना मैं दुःखीथा । इसके देखे से अब किसका शोक करूं और मोह को कैसे प्राप्त होऊं ? अब मैं क्या देखूं; क्याकरूं और कहां स्थित होऊं ? यह सब जगत् आत्माकेप्रकाश से है और सब आत्मारूप है । हे अतत्त्वरूप ! अर्थात् जिसमें तत्त्वोंकी उपाधि कुछ नहीं; तेरी दृष्टि निष्कलङ्क है । मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हूं । मेरा मुझही को नमस्कार है । मैं अनन्तआत्मा, अनुभवरूप, निष्कलङ्क, सब इच्छा और भ्रम रहित, सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप, अचैत्य, चिन्मात्र सदा अपनेआप में स्थित हूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तवर्णनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! क्रांत जो सुवर्णरूप देश है उसका राजा परमानन्द को प्राप्त हुआ । वह इसप्रकार विचार अभ्याससे ब्रह्मरूप हुआ । जैसे गाधिकापुत्र विश्वामित्र तपस्या करके उसी शरीरसे क्षत्री से ब्राह्मण हुआथा तैसेही राजासुरघ अभ्यास करके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ और जैसे सूर्य्य इष्ट-अनिष्ट में सम है और बिगतज्वर होकर दिनों को व्यतीत करता है तैसेही रागद्वेषसे रहित वह राज्यका कार्य्य करतारहा । जैसे जल ऊंची नीची ठौर में जाताहै और अपना जलभाव नहीं त्यागता, समरहता है; तैसेही राजा हर्षशोकसे रहित होकर राज्यकार्य्य करता रहा और स्वभाव को न त्यागा । आत्म बिचारको धार सुषुप्तिकी नाईं उसकी वृत्तिहोगई

और संसार भावका फुरना रुकगया । जैसे वायुसे रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही वह शुद्ध प्रकाश धारताभया । हे रामजी ! वह दयाकरता भी दृष्टि आवे परन्तु उस की दृष्टिमें कुछ दया नहीं और दयासे रहित भी औरोंको दीखे परन्तु उसकी दृष्टि में निर्दयता नहीं । न कुछ सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ सब पदार्थों में एक समभाव आत्मा देखे और हृदयसे पूर्णमासीके चन्द्रमावत् शीतल रहे । वह जगत् आत्माका किंचनरूप जानताथा और उसके सुख दुःखकाभाव शांतहोगया जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही उसके सुख दुःख नष्टहोगये थे । शोक विलास कर्त्ता, मत्तहोता, स्थित होता, चलता, श्वासलेता और पांचों विषयोंको ग्रहणकर्त्ता वह रागद्वेषको प्राप्त न होता था । जैसे पत्थरमें फुरना कुछ नहीं फुरता तैसेही उसको कर्तृत्व, भोक्तृत्वका मान कुछ न फुरा; सब कर्त्तव्यको कर्त्ताभी निःसङ्गरहा । जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही वह राज्यमें निर्लेप होकर जीवन्मुक्त हुआ । इस प्रकार जब बहुत काल बीता तब उसने शरीरका त्याग किया । जैसे बरफका कणका सूर्य्य के तेजसे जलमय होजाता है तैसेही उसका शरीर अपने भावको त्यागकर आत्मतत्त्वमें लीनहोगया । जैसे नदीसमुद्रमें लीनहोती है और फिर भिन्ननहीं भासती तैसेहीसुरघ अपने भावको त्यागकर उज्ज्वलभाव को प्राप्तहुआ और कलनारूपी मलकोत्यागकर निर्मलब्रह्महुआ । जैसे शरत्कालका आकाश निर्मलहोता है तैसेही वह निर्मल चिदानन्द ज्योतिभावको प्राप्तहुआ और जैसे घटफूटेसे घटाकाश महा-काश होजाता है तैसेही वह पूर्णब्रह्म चिदानन्द तत्त्वहुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमस्सर्गः ५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुमभी इसीदृष्टिका आश्रयकरके विचारो तबसब भय मिट जावेगा । जैसे घोरतममें बालक भय पाता है और जब दीपकका प्रकाश होता है तब निर्भयहोता है तैसेही संसाररूपी घोरतममें आया पुरुष दुःख पाता है और जब ज्ञानरूपी दीपक उदयहोता है तब निर्भयहोजाता है । हे रामजी ! जब आत्म विचारमें कुछभी मनुष्यका चित्त विश्रामपाता है तबउस विश्रामका आश्रयकर वह संसार समुद्र से निकलजाता है; जैसे गढ़ेमें गिरे और तृणका वृक्षहाथ लगे तो भी उसके आश्रयसे निकलआता है । हे रामजी ! यह पावनदृष्टि मैंने तुमसे कही है इस को चित्त में विचारो और परस्पर मिलकर उदाहरणके साथ अभ्यासकर नित्य एक समाधि में स्थितहो और पृथ्वीका भूषणहोकर लोगोंमें विचरो । इतनासुन रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर ! एकसमाधि किसको कहते हैं और कैसे होती है सोकहो जिस में मेराचित्त जो फुरता है सो स्थित हो । जैसे वायुसे मोरकी पुच्छ हिलती है तैसेही

चंचलरूप चित्तसदा फुरता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सुरघप्रबुद्ध हुआथा तब उसका संवाद पर्णादिराज ऋषिकेसाथ हुआथा वही अद्भुत समाधि है; उसको सुनकर विचारोगे तो तुमभी एकसमाधिमान् होगे। उसने परस्पर मिलकर जो चर्चा कीथी सोसुनो। हे रामजी! पारसदेशका राजा महावीर्यवान्था। उसका परघनामथा और वह सुरघका मित्रथा। जैसे नन्दनवनमें कामदेव और वसन्तऋतुका मित्रभाव होताहै तैसेहीसुरघ और परघका मित्रभावथा। एककालमें परघकेदेशमें प्रलयकाल विना प्रलयकालकी नाईं समयहुआ और उससे सब जीव दुःखपानेलगे निदान प्रजाकी पापबुद्धिका फल आनलगा और महादुर्भिक्षपड़ा। कोईक्षुधा से मृतकहुये, कोईअग्निसे जलमरे और बहुतेरे झगड़ाकरके मृतकहुये। प्रजा बहुत दुःखको प्राप्त हुई पर राजाको कुछ दुःख न प्राप्तहुआ। जब प्रजाने बहुतदुःखपाया और राजाने प्रजाको दुःखीदेखा पर प्रजाका दुःखनिवृत्त न करसका तो प्रजा अपने २ कुटुम्बको त्यागकर चलीगई–जैसे बनमें अग्निलगेसे पक्षी त्यागजाते हैं। तब राजाएक पहाड़ की कन्दरा में तपकरनेलगा और ऐसा तपकरनेलगा जैसा कि, जिनेन्द्रने कियाथा। वह उस कन्दरा में फल न पाये केवल सूखे पत्तेलेकर खावे–जैसे अग्नि सूखे पत्तों को भक्षण करती है उससे उसका नाम पर्णाद हुआ। निदान चित्तकी वृत्तिको आत्म पद में लगाकर सहस्रवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब अभ्यासके बलसे चित्तस्थित हुयेसे केवल ज्ञानरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलतासे प्रकाश आया और सब तप्तता मिटगई। तब वह रागद्वेषसे रहितहो निष्क्रिय–आत्मदर्शी–जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा। जैसे सरोवरों में कमलों के निकट भँवरा हंसों के साथजा मिलता है तैसेही सिद्धों के साथराजा जामिले। ऐसे फिरता फिरता वह क्रान्तदेशमें सुरघके स्थानों कोगया। सुरघ पूर्वमित्रको देखकर उठखड़ा हुआ और परस्पर कण्ठलगाके मिले। फिर परस्परभाव करके एक आसनपर चन्द्रमा और सूर्य के समान दोनों बैठगये और आपसमें कुशल पूछनेलगे। प्रथम परघवोले, हे मित्र! तेरे दर्शनसे जैसे कोई चन्द्रमाके मण्डलमें जा आनन्दवान् हो तैसेही में आनन्दवान् हुआहूं। बहुतकाल का जो वियोग होता है तो बहुत प्रीति बढ़ती है। जैसे वृक्षको ऊपर काटेसे बढ़ता है तैसेही प्रीति बढ़ती है। हे साधु! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ और तू भी माण्डव मुनि और आत्माके प्रसादसे ज्ञानको प्राप्त हुआ है। हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तू अब दुःखोंसे मुक्त होकर विश्रामको प्राप्त हुआ है। आत्मपद पानेकी बड़ाई मेरु आदिकसे भी ऊंची है उसको तू प्राप्त हुआ है और परम कल्याणवान् आत्मारामी हुआ है। तुम रागद्वेष मलसे रहित हुयेहो–जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै–और सब कार्य्योंके करते भी समभावमें रहते हो। आधि-व्याधि ताप

तुम्हारे दूरहुयेहैं; तुम्हारी प्रजाभी विगतज्वर हुई है और धन, राज्य और मालमें भी कुशल है। जैसे चन्द्रमाकी किरणें शीतलता फैलाती हैं तैसेही तुम्हारा यश दशों दिशाओं में फैलरहा है और तुम्हारायश ग्रामवासी क्षेत्रोंमें लड़कियां गातीहैं। हे राजन्! तुम्हारे प्रजा, नौकर,पुत्र और कलत्र सब आधि–व्याधिसे रहित हुये हैं। विषय पदार्थ आपातरमणीय हैं उनमें अब तुम्हारी प्रीति नहीं है और तृष्णारूपी सर्पिणी तुमको अब तो नहीं डसती। हे राजन्! तुम्हारी हमारी मित्राई हुई थी। समय पाकर तुम कहां रहे और हम कहां रहे; अब फिर इकट्ठे हुये हैं। बड़ा आश्चर्य है! ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती; सुखसे दुःख होजाता है और दुःख गये से सुख होजाता है। संसारकी दशा आगमापायी है; संयोगका बियोग होता है और बियोगका संयोग होता है। तैसेही तुम्हारा हमारा भी संयोगका बियोग होगयाथा और अब फिर बियोगका संयोग हुआ है। बड़ा आश्चर्य है—ईश्वरकी नीति अद्भुत रूप है। सुरघ बोले,हे देव! परमात्म देवकी नीति जान नहींसक्ते। वह महागम्भीर, बिस्मयके देनेवाली और दुर्ज्ञात है। तुम्हारा हमारा बियोग हुआ तब दूरसे दूर जापड़े; तुम कहां थे और हम कहां थे वेअब फिरइकट्ठेहुये हैं। देवकी नीति आश्चर्य रूप है। तुमने जो मुझसे कुशल पूछी सो तुम्हारा आनाही पुण्य है उससे मैं परम पावन हुआहूं और तुम्हारे दर्शनसे सब पापनष्ट होजाते हैं। आज हमारे पुण्यका फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन हुआ और जो कुछ यश संपदा है वह सब आज प्राप्त हुई है। हेभगवन्! सन्तोंका आना मधुर अमृतकी नाईं है। जैसे अमृत झरने से निकलता है तैसेही तुम्हारे दर्शन और वचनों से परमार्थरूपी अमृत स्रवता है। जिसको पाकर जीव निर्भयताको प्राप्तहोता है। सन्तोंका मिलना परमपदके तुल्य है इसलिये हम परमशुद्धताको प्राप्तहुये हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघपरघसमागमवर्णनं नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५६॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इसप्रकार जब वे पूर्व वृत्तान्त कररहेथे तब फिर परघ बोले, हे राजन्! समाहित चित्त इस जगत्जालमें जो जो कर्मकरता है सो सुखरूप होताहै। संकल्पसे रहित जो परम बिश्राम और परम उपशम समाधिहै उसमें अब तुम स्थित हुयेहो। सुरघ बोले, हे भगवन्! तुम्हींकहो कि, सब संकल्पों से रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं? और यदि तुम मुझसे पूछो तो सुनो। जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुषहैं वे चाहै तूष्णीं रहें अथवा व्यवहार करें असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते। हे साधु! जिनका नित्यप्रबुद्धचित्त है वे जगत्के कार्यभी करते हैं पर आत्मतत्त्वमें स्थितहैं तो वह सर्बदा समाधिमें स्थितहैं और जो पद्मासन बांध

करवैठते हैं और ब्रह्मअंजली हाथमें रखते हैं पर चित्त आत्मपदमें स्थित नहींहोता और विश्रान्तिनहीं पातेतो उनको समाधि कहां ? वह समाधिनहीं कहाती।हेभगवन्! परमार्थतत्त्ववोध आशारूपी सब तृणोंके जलानेवाली अग्नि है। ऐसी निराशरूप जो समाधिहै वही समाधिहै। तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है। हेसाधु ! जिसका चित्त समाहित, नित्यतृप्त और सदाशान्तरूपहै और जो यथाभूतार्थ हैअर्थात् जिसे ज्योंका त्यों ज्ञानहुआ है और उसमें निश्चय है वह समाधि कहाती है; तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है जिसके हृदयमें संसाररूप सत्यताका क्षोभनहीं है, जो निरहंकार है और अनउदयही उदय है वह पुरुष समाधिमें कहाता है। ऐसा जो बुद्धिमान् है वह मेरुसेभी अधिक स्थित है। हे साधु ! जो पुरुष निश्चिन्तहै, जिसकी ग्रहण और त्याग बुद्धि निवृत्त हुई है; जिसे पूर्ण आत्मतत्त्वही भासता है वह व्यवहारभी करता दृष्टआता है तौभी उसको समाधि कही है। जिसका चित्त एक क्षणभी आत्मतत्त्वमें स्थित होता है उसको अत्यन्त समाधि होजाती है और क्षण २ बढ़ती जाती है निवृत्त नहींहोती। जैसे अमृतके पान कियेसे उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है तैसेही एक क्षणकीभी समाधि बढ़तीही जाती है। जैसे सूर्य्यके उदय हुये सब किसीको दिनभासता है तैसेही ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है—कदाचित् भिन्न नहीं भासता। जैसे नदीका प्रवाह किसीसे रोंका नहींजाता तैसेही ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीसे रोंकी नहीं जाती और जैसे कालकी गति कालको एक क्षणभी विस्मरण नहीं होती तैसेही ज्ञानवान्को आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती। जैसे चलनेसे ठहरे पवन को अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता तैसेही ज्ञानवान्को चिन्मात्र तत्त्वका विस्मरण नहींहोता और जैसे सत् शब्द विना कोई पदार्थ सिद्धनहीं होता तैसेही ज्ञानवान्को आत्मासिवाय कोई पदार्थ नहीं भासता। जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है उसे वहां अपना आपही भासता है—जैसे दर्पण के मन्दिरमें सर्व ओर अपनाही मुख भासताहै। जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बर्फ नहीं और श्यामता विना काजर नहीं होता तैसेही आत्मा विना जगत् नहींहोता। हे साधु ! जिसको आत्मासे भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता उसको उत्थान कैसेहो ? मैं सर्वदा वोधरूप, निर्मल और सर्वदा सर्वात्मा समाहित चित्तहूं;इससे उत्थान मुझको कदाचित् नहीं होगा। आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं भासता सर्वप्रकार आत्मतत्त्वही मुझको भासताहै। हे साधु ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्यहै।सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है फिर समाधि और उत्थान कैसेहो ? जिसको कार्यकारणमें विभाग कलना नहीं फुरती और जो आत्मतत्त्वमेंही स्थित है उसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि और उत्थानका वास्तवमें कुछ भेदनहीं। आत्मतत्त्व सदा अपने

आप में स्थित है, द्वैत भेद कुछ नहीं तो समाहित असमाहित क्या कहिये ?॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसमाधिनिश्चयवर्णनंनाम
सप्तपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५७॥

सुरघबोले, हे राजन्! निश्चय करके अब तुम जागेहो और परमपदको प्राप्तहुये हो। तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णमासीके चन्द्रमावत् शीतल हुआहै और परमशोभासे तुम्हारा मुख शोभितहोकर तुम ब्रह्मलक्ष्मी सम्पन्न और परमानन्द से पूर्णहुयेहो। तुम्हारा हृदय कमल शीतल और स्निग्ध विराजमानहै और निर्मल तुम्हारी बिस्तृत गम्भीरता मुझको प्रकट भासतीहै। निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तुम्हारा हृदय भासताहै और अहङ्काररूपी मेघ तेरा नष्टहुआहै। हे राजन्! अब तुमको सर्वत्र स्वस्थ और सर्वथा सन्तुष्टता है और किसी में रागनहीं। तुम वीतराग होकर बिराजतेहो; सार असारको तुमने भली प्रकार जाना है और उसे जानकर असार संसार रूपी समुद्रसे पारहुयेहो। महाबोधको तुमने ज्योंका त्यों जानकर अखण्ड स्थिति पायी है और भाव अभाव पदार्थ दोनोंको तुम जानतेहो। तुम जगत्के सम असम पदार्थों से मुक्तहुये हो और तुम्हारा आशय मुदिता-शान्त हुआ है। इष्ट, अनिष्ट, ग्रहण, त्याग तुम्हारा निवृत्त हुआहै,रागद्वेष और तृष्णारूपी बादलोंसे रहित निर्मल आकाशवत् तुम शोभतेहो और अपने आपसे तृप्तहुयेहो कुछइच्छा तुमकोनहींहै। सुरघ बोले, हे मुनीश्वर! इसजगत्में ग्रहण करने योग्य वस्तु कोईनहीं। जोकुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सब आभासरूप हैं तो ग्रहण किसको कीजिये? और जो कहिये कि, ग्रहण करने योग्य नहीं इससे त्यागकरिये तो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या कीजिये और ग्रहण क्या कीजिये क्योंकि, हैनहीं सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जल भासता है तो उस जलभासका कौनअङ्ग ग्रहणकीजिये और कौन अङ्ग त्याग कीजिये, तैसेही यह जगत्भी है। हे मुनीश्वर! जगत्के कोई पदार्थ तुच्छ हैं और कोई अतुच्छहैं। जो थोड़ेकालमें नष्टहोजाते हैंसो तुच्छहैं और जो चिरकाल पर्यन्त रहते हैं वेअतुच्छ हैं परन्तु दोनों कालसे उपजे हैं। अब मैंने अकालरूपको देखा है इससे दोनों तुल्यहोगये हैं फिर इच्छा किसकी करूं? हे मुनीश्वर! जो पदार्थोंको रमणीयजानते हैं वे उनकी इच्छा करते हैं पर त्रिलोकीमें रमणीय पदार्थ कोई नहीं, सब तुच्छ और नाशरूप हैं और अविचार से जीवोंको भासते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं वे भी सब असार रूपहैं। स्त्री को बड़ा पदार्थ जानते हैं पर वहभी देखनेमात्र सुन्दर है और भीतर से रक्त, मांस, विष्ठा और मूत्रका थैला बनाहुआ है-इसमें भी कुछ सारनहीं। पर्वत बड़े पदार्थ हैं सो पत्थर बट्टे हैं, समुद्र जल है, बनस्पति काष्ठ-पत्रहैं और इनसे आदि जो पदार्थ हैं वे सबआपातरमणीयहैं

बिचार बिना सुन्दर भासते हैं । इनकी जो इच्छा करते हैं वे अपने नाशके निमित्त करते हैं–जैसे पतङ्ग दीपक की इच्छा करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है और हरिणनादकी इच्छासे नाशको प्राप्त होता है, तैसेही जो बिषयोंकी तृष्णाकरते हैं वे अपने नाशको करते हैं । इससे बिचारसे रहित जो अज्ञानी हैं वे पदार्थों को रमणीय जानकर अपने नाशके निमित्त इच्छा करते हैं और जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं वे उन्हें अरमणीय जानकर किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करते। जैसे सूर्य्यके उदय हुये अन्धकारका अभाव होता है तैसेही जब पदार्थों का राग उठगया तब तृष्णा किसमें रहे ? हे साधो ! राग, द्वेष, इच्छा, ग्रहण, त्याग जो कुछ विकार हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्वमें स्थितहो । बहुत कहनेसे क्या है जिस पुरुष के मनसे वासना नष्ट होगई है वह उपशमवान् कल्याणमूर्त्ति परमपदको प्राप्त हुआ है और संसार समुद्र से तरगया है ॥

इतिश्रीयोगवा०उपशमप्र०सुरघपरघनिश्चयवर्णनंनामअष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार सुरघ और परघ जगत्को भ्रमरूप बिचारते परस्पर गुरुजानकर पूजतेरहे फिर कुछ दिन उपरान्त परघ चलागया। हे रामजी ! इनका जो परस्पर संवाद तुमको सुनाया है सो परम बोधका कारण है। इस बिचारके क्रमसे बोधकी प्राप्ति होती है । तीक्ष्ण बोधसे जब बिचार करोगे तब अहंकाररूपी बादलका अभाव होजावेगा और शुद्ध हृदयरूपी आकाश में आत्मरूपी सूर्य्यकाप्रकाश होजावेगा । इससे परमपदके लाभकेनिमित्त अहंकाररूपी बादल के अभावका यत्नकरो । आत्मा जो सत्य और सब आनन्दोंकी सम्पदा चिदाकाश है उससे स्थितिपावोगे । हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्दमें चित्तको लगाताहै वह सदा सुखीहै–उसको शोक कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष आत्मपदमें स्थित हुआहै वह बड़े व्यवहारकरे और रागद्वेष सहित दृष्टिआवे तौभी उसको कुछकलङ्क नहीं होता । जैसे कमल जलमें दृष्टआता है तौभी ऊंचा रहताहै, जल उसको स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान्को व्यवहार का रागद्वेष हृदयमें स्पर्श नहीं करता । हे रामजी ! जिसका मनशान्तहुआहै उसको संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चला नहीं सक्ते । जैसे सिंहों को मृगदुःख दे नहींसक्ते, तैसेही ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःखनहीं देसक्ते । जिसपुरुषको आत्मानन्द प्राप्त हुआहै उसको बिषयोंकी तृष्णा नहीं रहती और न वह बिषयोंके निमित्त कदाचित् दीनहोताहै । जैसे जो पुरुष नन्दनवनमें स्थितहोता है वह कंटकों के वृक्षकी इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् जगत्के पदार्थोंकी इच्छानहीं करता । हे रामजी ! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानकर त्यागकियाहै उसके चित्तको जगत् के

पदार्थ दुःख दे नहीं सक्ते। जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरजावे तो उसको दुःख नहीं होता तैसेही ज्ञानवान्के चित्तमें भोगोंकी दीनता ऐसे नहीं उपजती जैसे नन्दन वनमें कंटकका वृक्ष नहीं उपजता। जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है और संसारका कारण मोह निवृत्त हुआ है वह जगत् का कार्य्य कर्त्ता दृष्टि आता है परन्तु उन को स्पर्श नहीं करता—जैसे आकाश में अन्धकार दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्याके निवृत्तिका कारण विद्या है; और किसी उपायसे निवृत्ति नहीं होती। जैसे प्रकाश विना तम निवृत्त नहीं होता तैसेही विचार विना अविद्या निवृत्त नहीं होती। अविचार का नाम अविद्या है और विचार का नाम विद्या है; जब अविद्या नष्ट होगी तब विषयभोग स्वाद न देवेंगे और आत्मानन्दसे संतुष्टवान् रहोगे। हे रामजी! ज्ञानवान्को विचारके कारण इन्द्रियोंके व्यवहार अन्धा नहीं करसक्ते—जैसे जलमें मछली रहती है उसको जल अन्धा नहीं करसक्ता पर और अन्धा होजाता है। जबज्ञानरूपी सूर्य्य उदयहोताहै तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है; चित्त परमानन्दको प्राप्त होजाताहै और रागद्वेषरूपी निशाचर नष्टहोजाता है। तब फिर वह मोह को नहीं प्राप्तहोता। जिसके हृदय आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य्य उदय हुआहै उसका जन्म और कुल सफल होताहै। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अपने अमृत को पाकर अपनेमेंही शीतलहोता है तैसेही जो पुरुष आत्मचिन्तना में अभ्यासकरता है वह शांति पाताहै। हे रामजी! बुद्धि और श्रेष्ठ दिन; मृत्यु और सत्शास्त्र वही है जिससे संसारसे वैराग और आत्मतत्त्व की चिन्तना उपजे। जब जीव आत्मपदको पाता है तब उसका सब क्लेश मिटजाता है और जिनको आत्मचिन्तनामें रुचि नहीं वे महाअभागी हैं। ऐसे पुरुष चिर पर्य्यंत कष्ट पावेंगे और जन्मरूपी जंगलके वृक्ष होंगे। हे रामजी! जीवरूपी बैल अनेक आशारूपी फांसियों से बँधाहै, जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्गसे जर्ज्जरीभूत होता है, भोगरूपी गढ़े में गिरा है और कर्म्मरूपी भारको लिये जन्मरूपी जङ्गलमें भटककर कर्म्म कीचड़ में फँसाहुआ रागद्वेषरूपी मच्छरों से दुःखी होताहै स्नेहरूपी रथको पकड़के खेंचता है और पुत्र, स्त्रियादिक की ममतारूपी कीचड़ में गोते खाता है और मोह संसाररूपी मार्ग में कर्मरूपी रथ के साथ लगता है और ऊपरसे ज्ञानरूपी तप्तताले जलता है और संतजन और सत्शास्त्ररूपी वृक्षकी छाया नहीं पाता। हे रामजी! जीवरूपी ऐसा बैल है। उसे निकालने का यत्न करो। जब तत्त्व का अवलोकन करोगे तब चित्त भ्रम नष्ट होजावेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र के तरनेका उपाय सुनो। महापुरुष और संतजन मल्लाह हैं, उनकी युक्तिरूपी जहाज है उससे संसाररूपी समुद्र तरजावेगा; और उपाय कोई नहीं यही

परमउपाय है । जिसदेशमें सन्तजनरूपी वृक्षनहीं हैं और जिनकी फलों सहित शीतल छायानहीं है उस निर्ज्जन मरुस्थल में एक दिन भी न रहिये । हे रामजी ! सन्तजनरूपी वृक्ष हैं; जिनके स्निग्ध और शीतल वचनरूपी पत्र हैं, प्रसन्न होना सुन्दरफूल है और निश्चय उपदेशरूपी फल है । जब यह पुरुष उन के निकट जावे तब महामोहरूपी तप्तता से छूटेगा और शान्ति पाकर तृप्तहोगा । तभी तीनों फलोंको पाकर अघावेगा और सबदुःखोंसे मुक्तहोगा । हे रामजी ! अपना आपही मित्रहै और अपना आपही शत्रु है । अपने आपको जन्मरूपी कीचड़में न डाले । जो देहमें अहंभावनासे विषयोंकी तृष्णा करता है वह अपना आपही नाश करता है । जो देह भावको त्याग कर आत्मअभ्यास करता है वह अपना आप उद्धार करता है और वह अपना आपही मित्र है और जो आपको संसार समुद्रमें डालता है वह अपना आपही शत्रु है । हे रामजी ! प्रथम यह विचार कर देखे कि, जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है और कैसे निवृत्त होगा ? मैं कौनहूं; सत्य क्या और असत्य क्या है ? ऐसे विचार कर जोसत्य है उसको अङ्गीकार करे और जो असत्यहै उसका त्याग करे । हे रामजी ! न धन कल्याण करता है न मित्र बांधव और न शास्त्र कल्याण करते हैं; अपना उद्धार आपही होता है । इससे तुम अपने मनके साथ मित्रताई करो । जब वह दृढ़ वैराग्य और अभ्यास करे तब संसार कष्टसे छुटे। जब वैराग्य अभ्यास से तत्त्व के अवलोकनरूपी वेड़ीकटे तब संसार समुद्रसे तर-जाता है । हे रामजी ! जीवरूपी हाथी जन्मरूपी गढ़े में गिरा हुआ है; तृष्णा और अहंकाररूपी जञ्जीरसे बँधा है और कामनारूपी मदसे उन्मत्त है । जब उनसे छूटे । तब मुक्तहो । हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रों में अनात्म अभिमानरूपी मलरक्त होगया है; जब विचाररूपी ओषधिसे उस को दूरकीजिये तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शनहो । हे रामजी ! और उपाय कोई न करो तो एक उपाय तो अवश्य करो कि, देह को काष्ठ–लोष्टवत् जानकर इसका अभिमान त्यागो । जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्टहोगा तब आपही आत्मरूपी सूर्य प्रकाश आवेगा । जब अहंकाररूपी बादल लयहोगा तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासेगा; वह परमानन्द स्वरूपहै; सुषुप्तिसे मौन अंकुरहै और केवल अद्वैत तत्त्वहै;वाणीसे कहा नहीं जाता अपने अनुभवसे आपही जानजाता है । हे रामजी ! सब जगत् अनन्त आत्मा है । जब चित्तका दृढ़ परिणाम उस में हो तब स्थावर जंगमरूप जगत् में वहीदिव्य देवभासेगा और वासना सब निवृत्त होजावेगी । तब अनुभवसे केवल परमानन्द आत्मतत्त्व दिखाईदेगा सो स्वरूप, पूर्ण और अद्वैतहै । सब जगत्का त्यागकर उसीके पानेका यत्न करो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेकारणोपदेशोनामएकोनषष्टितमस्सर्गः ५९ ॥

वशिष्ठजीबोले,हे रामजी ! मनसे मनको छेदो और अहंमन भावको त्यागो। जब-तक मन नष्ट नहीं होता तबतक जगत्के दुःखनिवृत्त नहीं होते। जैसे मूर्त्तिका सूर्य्य मूर्त्तिके नष्टहुये विनाअस्त नहीं होता–जबमूर्त्ति नष्टहो तब सूर्य्यका आकारभी दूर हो; तैसेही जबमन नष्टहो तब संसारके दुःख नष्ट होजावेंगे–अन्यथा नष्ट न होंगे। हे रामजी ! जैसे प्रलयकालमें अनन्तदुःख होताहै तैसेही मनके होनेसे अनन्तदुःख होते हैं और जैसे मेघके वर्षने से नदी बढ़तीजाती है तैसेही मनके जागेसे आपदा बढ़ती जाती है। इसहीपर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्परसुहृदों का हेतुहै। हेरामजी ! सह्याचलसब पर्व्वतोंमें बड़ापर्व्वतहै।उसपरफूलोंके समूह और नानाप्रकारके वृक्ष हैं; जलके झरने चलते हैं और मोतियोंके स्थान और सुवर्ण के शिखर हैं। कहीं देवताओंके स्थान हैं और कहीं पक्षी शब्द करते हैं। नीचे क्रांत रहते हैं ऊपर सिद्ध, देवता और विद्याधररहते हैं, पीठमें मनुष्य रहते हैं और नीचे नागरहते हैं–मानों सम्पूर्ण जगत्का गृह यही है। उसके उत्तर दिशामें सुन्दर वृक्ष और फलोंसे पूर्ण तालाब है जिसकी महासुन्दर रचनाकी स्वर्गकीसी उपमा है। वहां अत्रिनाम एक ऋषीश्वर साधुओंके श्रमदूर करनेवाला रहताथा। उसके आश्रम के पास दो तपस्वी आ रहने लगे–जैसे आकाशमें बृहस्पति और शुक्र आ रहे। उन दोनों के गृहमें दो महासुन्दर पुत्र जैसे कमल उत्पन्नहो तैसेही उत्पन्न हुये और एकका नामभास और दूसरेका नाम विलासहुआ। दोनों क्रमसे बड़े हुये और जैसे अंगुलीके दोनोंपत्र बढ़ते हैं तैसेही वे बढ़नेलगे। परस्पर उनकीप्रीति बहुत बढ़ी और इकट्ठे रहनेलगे। जैसे तिल और तेल; और फूल और सुगन्धि इकट्ठे रहते हैं और जैसे स्त्री और पुरुषकी प्रीति आपसमें होती है; तैसेही उनकी प्रीतिबढ़ी। वे देखनेमात्रतो दो मूर्त्ति दृष्टआतेथे परन्तु मानों एकहीथे। उनकी स्नान आदिकक्रिया और मानसी क्रियाभी एकसमानथी और वे महासुन्दर प्रकाशवान्थे। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यहों। जब कुछ कालव्यतीतहुआ तब उनकेमाता पिता शरीर त्यागकर स्वर्ग कोगये और उनके वियोगसे वे दोनों शोकवानहुये और जैसे कमलकी कांति जल विना जातीरहै तैसेही उनके मुखकी कांति कुम्हिला गई। फिर उन्होंने उनके मरने की सब क्रियाकी और उनके गुणसुमिरणकरके विलापकरें और महाशोकवान् हों क्योंकि, महापुरुषभी लोक मर्यादा नहीं लंघते। हे रामजी ! इस प्रकार शोक कर उनका शरीर कृश होगया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभासविलासवृत्तांतवर्णनंनामपष्टितमस्सर्गः ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे उजाड़वनकावृक्ष जलबिना सूख जाता है तैसेही उनका शरीर सूखगया। तब वे दोनों विरक्तज्वर होकर विचरनेलगे। जैसे समूहसे

बिछुड़ा हरिण शोकवान् होताहै तैसेही वे दुःखीहुये क्योंकि; उनको निर्म्मलज्ञान प्राप्त न था। जब कुछकाल व्यतीतहुआ तब वे फिर आमिले। विलासनेकहा, हे भाई! हृदय को आनन्द देनेवाला अमृतका समुद्र जीवनरूपी जो वृक्ष है उसकाफल सुख है सो तुम इतनेकाल सुखसे रहेहो। तुम्हारा हमारा वियोगहोगया था तब तुम कैसीक्रिया करतेरहे? तुमने अपना कुछ चित्त निर्मल कियाहै और अब आत्मपद पायाहै। अब तुम्हारी बुद्धि शोकसे रहित होकर विद्या तुमको फली है और तुम अब कुशलरूप हुये हो। भास बोले, हे साधु! अब हमको कुशलहुई जो तुम्हारा दर्शनहुआ जगत् में कुशल कहां है; इससंसारमें स्थितहुये हमकोसुख और कुशल कहां है? हे साधु! जबतक ज्ञेय परमात्म तत्त्वको नहीं पाया, जबतक चित्त भूमिका क्षीणनहीं हुई और जबतक संसार समुद्रको नहींतरे तबतक कुशल कहां है जबतक चित्तसे दुःख निवृत्त नहीं होता तबतक चित्तकी भूमिका नष्टनहीं होती। जब तक संसार समुद्र से पारको नहीं होते तब तक हमको सुख कहां है? जब तक चित्तरूपी क्षेत्रमें आशा रूपी कंटकोंकी बेलि बढ़तीजाती है और आत्मविचाररूपी हँसिये से नहीं काटी तब तक हमको कुशल कहां? जबतक आत्मज्ञान उदय नहीं हुआ तबतक हमको कुशल कहां है? हे साधु! संसाररूपी विशूचिका रोग आत्मरूपी औषध बिना दूर नहीं होता। सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं जिससे दुःख प्राप्त हो इससे सुखको नहीं पाते। देहरूपी वृक्ष में बाल अवस्थारूपी पत्र हैं और यौवन और वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं सो मृत्युके मुखमें जापड़ता है। उपजता है और फिर नष्ट होता है। यहसुख जो लवाकार है और दुःख जिसका दीर्घ से दीर्घ स्थावर है। ऐसे जो शुभाशुभ आरम्भ हैं उनमें इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं। हे साधु! चित्तरूपी हाथी वैराग रूपी जंजीर बिना तृष्णारूपी हथिनीके पीछे दूरसे दूर चलाजाता है। जैसे चील्ह पक्षी मांसकीओर चला जाता है तैसेही चित्त विषयोंकी ओर धावता है और आत्मा रूपी चिन्तामणिकी ओर नहीं जाता। अहंकाररूपी चील्ह देहादिकरूपी मांसकी ओर धावता है और सुखरूपी कमल अपमानरूपी धूलिसे धूसर होजाता है और योगरूपी बरफ से नष्ट होजाता है। हे साधु! वह देहरूपी कूपमें गिरा है, जिसमें भोगरूपी सर्प है, आशारूपी कंटक है और तृष्णारूपी जल है उसमें दुःखपाता है। हे साधु! नानाप्रकारके रङ्ग रंजनारूपी रङ्गहै और जिसमें तृष्णारूपी चञ्चलताहै ऐसे चैत्यदृश्यमें मग्न है। चित्तरूपी ध्वजा कालरूपी वायुमें हिलती है। चित्तरूपी समुद्र में चिन्तारूपी भँवरहै जिसमें जीवरूपी तृण आय कष्ट पाताहै और बुद्धिरूपी पक्षिणी है जो वासनारूपी जालमें कष्ट पाती है। यह मैंने किया है; यह करतीहूं और यह करूंगी; इसी वासनारूपी जालमें बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्टपाती है—एकक्षणभी विश्राम-

वान् नहींहोती। हे भाई! इस चित्तरूपी कमलको रागद्वेषरूपी हाथी चूर्णकरता है। यह मेरा सुहृद है, यह मेरा शत्रुहै; यह 'अहं' 'मम'ही इसको मारताहै। शुद्ध आत्म-रूपको त्यागकर देहादिक अनात्मरूप में अहंभाव करता है और दीनताको प्राप्त होता है। जैसे राज्य से रहित राजा कष्ट पाता है तैसेही आत्मभावसे रहित कष्ट पाता है और देहाभिमान जन्म मरण के दुःख देखता है। जब देहाभिमान को त्यागकरे तब कुशल हो अन्यथा कुशल नहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेअन्तरप्रसङ्गोनामएकषष्टितमस्सर्ग्गः ६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार उन्होंने परस्पर कुशलप्रश्न किया। जब कुछ काल व्यतीतहुआ तब अभ्यास द्वारा उनको निर्मलज्ञान प्राप्तहुआ और मोक्ष पदको प्राप्त हुये। इससे, हे रामजी! कल्याण के निमित्त ज्ञानके सिवा और मार्ग कोई नहीं जिसकाचित्त आशारूपी फांसी से बँधा हुआ है वह संसार समुद्रसे पार नहीं होसक्ता। इससे जीव संसार समुद्रमें गोते खाताहै और ज्ञानवान् शीघ्रही ऐसे तरजाताहै जैसे गोपद लंघने में सुगम होताहै। जैसे जिसपक्षीके पंखटूटे हैं सो समुद्र को नहीं तरसक्ता बीचमेंही गिरके गोते खाता है और गरुड़ पंखोंसे शीघ्रही लंघ जाता है; तैसेही जिन पुरुषोंके वैराग्य और अभ्यासरूपी पंखटूटे हैं वे संसार समुद्र से पार नहीं होसक्ते और जिन पुरुषोंके वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख हैं वे शीघ्रही तर जाते हैं। हे रामजी! जो देहसे अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्वमें स्थित हुये हैं वे ऊंचे होकर देखते हैं और अपने देहको देखके हँसते हैं—जैसे सूर्य जनता को देख हँसता है अर्थात् जगत्की क्रियासे निर्लेप रहता है। जैसे रथके टूटेसे रथ वायुको कुछ खेद नहीं होता तैसेही देहके दुःखसे ज्ञानवान्को कदाचित् खेद नहीं होता और मनके क्षोभसेभी आत्मतत्त्वमें कुछ क्षोभ नहीं होता। जैसे तरङ्गपर धूलि पड़ती है तो उससे समुद्रको कुछ लेप नहीं होता तैसेही मनके दुःखसे आत्माको क्षोभ नहीं होता। हे रामजी! जैसे जल और हंसका और जल और बेड़ीका कुछ सम्बन्ध नहीं तैसेही देह और आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे पहाड़ और समुद्रका सम्बन्ध नहीं; जैसे जल, पत्थर और काष्ठ एक ठौर रहते हैं परन्तु कुछ सम्बन्ध नहीं और जैसे जल और बेड़ी का संघट्ट होता है तो जलकणके उठते हैं तैसेही देह और आत्माके संयोगसे चित्तवृत्ति फुरती है। हे रामजी! जीवको दुःख सङ्गसेही होता है। जहां अहंमम अभिमान होताहै वहां दुःखभी होता है और जहां अहंममका अभिमान नहीं वहां दुःखभी कुछ नहीं होता। जैसे मछली को जल में ममत्व होता है और उसके वियोगसे कष्टपातीहै तैसेही जिस पुरुषको देहमें अहंमम भाव है वह बड़ा कष्टपाता है और जिसको देहमें अभिमान नहीं उसको दुःखभी

कुछ नहीं होता । हे रामजी ! ज्योंज्यों मनसे संसर्गता निवृत्त होती है त्यों त्यों भोग प्रवाह कष्ट नहीं देता जैसे जल और पत्थरको कष्ट नहीं होता और जैसे दर्पण में पर्व्वतका प्रतिविम्ब होता है सो दर्पणको प्रतिविम्बका सङ्ग नहीं होता और कष्टभी नहीं होता तैसेही जब देहसे संसर्गभाव उठजाताहै तब कोई कष्ट भी नहीं होता । जैसे दर्पणको कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत्की क्रिया है। हे रामजी! सर्व्वथा संवितमात्र आत्मत्त्व स्थित है। वह शुद्ध है और द्वैत शब्दके फुरनेसे रहित है। जो उसमें स्थित है उसको द्वैत शब्द नहीं फुरता और जो अज्ञानी है उसको द्वैत कलना उठती है। हे रामजी ! यह सब जीव अदुःखरूप हैं परन्तु अज्ञान भ्रमसे आपको दुःखी जानते हैं। जैसे स्थान में चोर भावना अविचारसे होती है तैसेही आत्मामें दुःखकी भावना अविचारसे होती है। यह जीव अशव्दरूप है परन्तु कल-नाके वशसे आपको सम्बन्धी जानता है। जैसे स्वप्नेमें अङ्गना बन्धन करतीहै और स्थानमें वैताल भासता है और भय प्राप्त होता है तैसेही अपनी कल्पनासे जीव बन्धमान होता है। हे रामजी ! देह और आत्माका सम्बन्ध असत्य है—जैसे जल और बेड़ी का सम्बन्ध असत्य है। यदि जलका अभाव हो तो बेड़ीको कुछ चिन्ता नहीं होती और बेड़ीका अभाव हो तो जलको कुछ चिन्ता नहीं; तैसेही आत्मा और देहका सम्बन्ध असत्य है। जब ऐसे जानकर हृदयसङ्गसे रहित हो तब देहका दुःख कुछ नहींलगता। देहके दुःखमें आपको दुःखीमानना;देहसे अहंभावनाकरके आत्मा दुःखी होताहै। जब देहमें अभिमानको त्यागदे तब सुखीहो। ऐसे वृद्धीश्वर कहते हैं। जैसे जल और पत्थर इकट्ठे रहते हैंपरन्तु भीतर सङ्गका अभावहै इससे उन्हें कुछ दुःख नहीं होता तैसेही हृदयसे संग रहित हो तब देह इन्द्रियोंके होते भी दुःखका स्पर्श कुछ न हो और निर्दुःख पदमें प्राप्तहो। हे रामजी ! जिसको देहमें आत्माभिमान है उसको जन्ममरण दुःख रूप संसारभीहै। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होताहै तैसेही देहाभिमानसे सुख दुःखरूप संसार उत्पन्न होताहै और संसार समुद्रमें डूबताहै। जो हृदय संगसे रहित होताहै सो संसार समुद्रके पार होजाता है। हे रामजी ! जिसके हृदयमें देहाभिमान है उसके चित्तरूपी वृक्षमें मोहरूपी अनेक शाखा उत्पन्नहोती हैं और जिसकाहृदय संगसे रहितहै उसका मोहलीन होजाताहै। उसको चित्त लीन कहते हैं। जिसका चित्त देहादिकोंमें बन्धमानहै उसको नानाप्रकारका भ्रमरूप जगत् भासताहै और जिसकाचित्त देहादिकोंमें बन्धमान नहीं वह एक आत्मभावको देखता है। जैसे टूटी आरसीमें अनेक प्रतिविम्ब भासते हैं और साजी एकही प्रतिविम्बको ग्रहणकरतीहै;तैसेहीसंशययुक्त चित्तमें नानाप्रकारका जगत्भासताहै और शुद्धचित्त में एक आत्माही भासता है। हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करते हैं और सङ्गसे

रहितहैं ऐसे निर्मल पुरुष संसारसे मुक्त हैं और जो सर्व व्यवहारको त्यागबैठते हैं पर तपभी करते हैं और चित्त आसक्तहै सो बन्धनमें है। जो हृदयमें संगसे रहित है वह मुक्तहै और अन्तरचित्त किसीपदार्थमें बन्धहै वह बन्ध है। बन्ध और मुक्तका इतनाही भेदहै। जिसका हृदय असङ्गहै वह सब कार्य्य कर्त्ताभी अकर्त्ताहै। जैसे नट सब स्वांगोंको धरताभी अलेपहै तैसेही वह पुरुष अलेपहै। जो हृदयमें अभिमान सहितहै वह कुछनहीं करता तौभी करताहै। जैसे सर्वव्यवहार त्यागकर जीव शयन करताहै और स्वप्नेमें अनेक सुख दुःख भोगताहै तैसेही वह सब कुछ कर्त्ताहै। चित्त के करने से कर्त्ता है चित्तके न करनेसेही अकर्त्ता है। शरीरसे करना सो करना नहीं और शरीरसे न करना सो न करना नहीं। ब्रह्महत्यासे भी असंशक्त पुरुषको कुछपाप नहीं लगता और जो अश्वमेध यज्ञकरे तो कुछपुण्य नहीं होता। जिसके चित्तसेसब आसक्तता दूर हुईहै वह पुरुष मुक्तस्वरूपहै और धन्य २ है और जिसका चित्त आसक्तहै वह बन्ध और दुःखीहै। जो पुरुष आसक्ततासे रहितहै वह आकाशकी नाईं निर्मलहै और समभाव, एक अद्वैत आत्मतत्त्व में स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेअन्तरअसङ्गविचारोनामद्विषष्टितमस्सर्गः ६२॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! सङ्गकिसको कहते हैं? बन्धरूप सङ्गकिसको कहते हैं; मोक्षरूप सङ्ग किसको कहते हैं और सङ्गबन्धनोंसे मुक्तकिसका नामहै और किस उपायसे मुक्तहोता है वह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देह और देहीका जो विभागहै उसका त्यागकरो और उसके साथ जो मिलकर करता है और देहमात्रमें अपना विश्वास करताहै कि,इतनाहीं मैंहूं; इसीको सङ्ग और बन्धकहते हैं। हेरामजी! आत्मतत्त्व अनन्तहै। देहमात्रमें अहंभावनासे आपको उतनाही मानना और उसमें अभिमान करके सुखकी इच्छा करना इसीका नाम बन्धहै और इसीको सङ्ग कहते हैं। जिसको यह निश्चय हुआहै कि, सर्व आत्माहीहै, मैं किसकी इच्छाकरूं और किसका त्यागकरूं; वह इस असङ्गसे जीवन्मुक्त कहाता है। अथवा न मैंहूं, न यह जगत्है; सर्व भाव अभावको त्यागकर अद्वैत सत्तामें स्थित होनेकानाम जीवन्मुक्त है। जिसे न कर्मोंके त्यागकी इच्छाहै, न करनेकी इच्छाहै और हृदयसे कर्तृत्वभाव नहीं इस सङ्गका जिसने त्यागकिया है वह असङ्ग कहाताहै। हे रामजी! जिसको आत्मतत्त्वमें निश्चयहै और जो राग, द्वेष,हर्ष, शोकके वशनहीं होता वह असंसर्ग कहाता है। जिसने सर्वकर्मोंका फल यह समझकर त्यागकिया है कि, मैं कुछ नहीं करता ऐसा जो मनसे त्यागीहै वह असंसर्ग कहाताहै और उसको कोई कर्म्मबन्धन नहीं करसक्ता पर सर्व सम्पदा उसकोहोतीहै और जो संशक्त पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान सहित है उसको अनन्त दुःखउत्पन्न होते हैं। जैसे कोई गढ़े में गिरे

और उसमें कण्टकोंके वृक्षहों तो उनसे वह कष्टपाताहै तैसेही संसक्त पुरुष कष्टपाता है। हे रामजी ! संगके वशसे विस्तृत दुःखकी परम्परा उत्पन्न होती है—जैसे गढ़े के वृक्षसे कण्टक उत्पन्नहों। हे रामजी ! जैसे नासिकामें रस्सी डलाकर ऊंट, बैल और गधे भारउठाते फिरते हैं और मारखाते हैं तैसेही संसक्त पुरुष आशारूपी फांसीसे बांधेहुये दुःखपाते हैं। वही संसक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं; जलमें रहते हैं; शीत उष्णसे कष्टवान् होते हैं और कुहाड़ेके साथकाटे जाते हैं। इसीप्रकार संसक्तता का फल वृक्ष भोगते हैं; पृथ्वी के छिद्र में कीटहोते हैं और अंगपीड़ा से कष्टपाते हैं। अन्नादिक उगते हैं; हसिये के साथकाटे जाते हैं और हृदयमें दुःखपाते हैं; फिर बोयेजाते हैं और फिर काटते हैं सो संसक्तताकाही फल भोगते हैं; इसीप्रकार जो योनिपाते हैं और कष्टवान् होते हैं सो संसक्त हैं। हरेतृणों को हरिण खाते हैं और बधिक उनको बाणसे मारताहै तब कष्टवान् होते हैं। जो जीव तुझको दृष्टि आते हैं वे इसप्रकार संसक्ततासे बांधेहुये हैं। संसक्तताभी दो प्रकारकी है—एकबन्ध और एक बन्धनकरनेयोग्य। जो तत्त्ववेत्ताहै वह बन्दना करने योग्यहै। हे रामजी ! जो आत्मतत्त्वसे गिराहै और देहादिकमें अभिमानी हुआहै वह मूढ़ है और संसार में जन्म मरणको प्राप्तहोताहै; और जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञानहुआहै और निष्ठाहै वह बन्दना करने योग्य है—उसको फिर संसारका जन्ममरण नहीं होता। जिसके हाथमें शंख, चक्र, गदा और पद्महै; जिसको आत्मतत्त्वमें निश्चय है और आत्मतत्त्वमें संसक्त है और जो तीनों लोकोंकी पालना करताहै वह बन्दना करनेयोग्यहै। निरालम्ब सूर्य्य जो आकाशमें विचरताहै और सदास्वरूप निष्ठहै वह बन्दना करने योग्यहै। महाप्रलय पर्यन्त जो जगत्को उत्पन्न करताहै; जो सदाशिव स्वरूपमें संसक्तहै और जो ब्रह्मारूप होकर विराजताहै वह बन्दना करनेयोग्य है। जो लीलासे स्त्रीको अर्धाङ्ग रखताहै, उसके प्रेमरूपी बन्धनसे बँधाहै; विभूति लगाताहै सदा स्वरूप में संसक्तहै और शंकर वपु धारकर स्थितहै वह बन्दना करने योग्यहै। इनसे आदिलेकर सिद्ध, देवता, विद्याधर, लोकपाल जिनकी स्वरूपमें संसक्ति है वे सब मुक्तस्वरूप हैं और बन्दना करनेयोग्य हैं और जो देहादिकों में संसक्त हैं वे बन्ध हैं और जन्म, जरा और मृत्यु पाते हैं और कष्टवान्होते हैं। हे रामजी ! जिनको शरीर में अभिमान है वे यदि बाहर से उदार भी दृष्टिआते हैं परन्तु जब भोगोंको देखते हैं तब इस प्रकार गिरते हैं जैसे मांसको देखकर आकाशसे चील पखेरू गिरते हैं तो वे वृथा यत्न करते हैं। हे रामजी ! जो संसक्त जीव हैं वे बांधे हुये हैं; कोई देवतारूप धार स्वर्गमें रहते हैं और कई मनुष्य लोकमें रहते हैं; बहुत से सर्प आदिक होके पातालमें रहते हैं और तीनोंलोकों में भटकते फिरते हैं। जैसे गूलर में मच्छर रहते

हैं तैसेही ब्रह्माण्डमें संसक्त जीव रहते और मिटजाते हैं। कालरूपी बालक का जीवरूपी गेंदहै, वहउसे कभी नीचेको उछालताहै और कभी ऊपरको उछालता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब असत्यरूप है। मनरूपी चितेरेने सङ्करूपी रङ्गसे शून्य आकाशमें जो देहादिकजगत् लिखाहै वह सब असत्यरूपहै जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और मिटजातेहैं तैसेहीजीव ब्रह्माण्डमें उपजते रहते हैं। जिसकामन देहादिक में संसक्त है वह तृष्णारूपी अग्निसे तृणोंकीनाईं जलता है। हे रामजी! जो संसक्त पुरुष है उसके शरीर पानेकी कुछ संख्यानहीं। मेरुके शिखरसे लेकर चरणोंपर्यन्त यदि गंगाकाप्रबाह चले तो उसके कणके चाहेगिनेजासकें परन्तु संसक्त जीवके शरीरकी संख्या नहीं होसक्ती जो कुछ आपदा है वह उनको प्राप्तहोती है। जैसे समुद्रमें सब नदियां प्राप्तहोती हैं तैसेही सब आपदा उसको प्राप्तहोती हैं। हे रामजी! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करते हैं वे रौरव, कालसूत्र आदिक नरकोंमें जलेंगे और जो कुछ दुःखके स्थान हैं वे सब उनको प्राप्तहोंगे। जो असङ्ग सङ्गती चित्त हैं उन पुरुषोंको सब विभूति प्राप्तहोती हैं। जैसे वर्षा कालमें नदियां जलसे पूर्ण होती हैं और मानसरोवरमें सब हंस आनस्थितहोते हैं तैसेही असंसक्त चित्त पुरुषको सब संपदाप्राप्त होतीहैं। जिस पुरुषको देहाभिमान बढ़जाताहै उसे बिषकी नाईंजानो और जिसका देहाभिमान घटजाता है उसको अमृतरूप जानो। विष ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों मारताहै और अमृत ज्यों ज्यों बढ़ताहै त्यों त्यों अमरहोता है। हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमानका त्यागकरस्वरूपमें संसक्तहोताहै वह सुखीहोता है और जिसके हृदयमें दृश्यका संग है उसको यह संसक्तरूपी अंगार जलावेगा। जिसके हृदय में संगनहीं वह असंगरूपी अमृत से सुखी होवेगा और चन्द्रमा कीनाईं शीतल मुक्तरूपहोगा उसका अविद्यारूपी बिशूचिका रोगनष्टहोकर वह शान्तरूप होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसक्तबिचारोनामत्रिषष्टितमस्सर्ग्गः ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको बिचार करके अभ्यासकरो और सर्व्वदाकाल, सर्वस्थान और सर्व कर्मों के कर्त्ता चित्तको देहादिक में मतसंसक्त कर केवल आत्मचेतन में स्थितकरो। हे रामजी! किसी वस्तु को सत्यजानके चित्त न लगाओ। न आकाशमें, न अधमें, न ऊर्द्धमें, न दिशामें, न बाहर, न भीतर, न प्राणमें, न उरमें, न मूर्द्धमें, न तालुमें, न भौंहके मध्यमें न नासिकामें न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें, न तममें, न प्रकाशमें, न श्याममें, न रक्तमें, न पीतमें, न श्वेतमें, न स्थिरमें न चलमें, न आदिमें न अन्तमें, न मध्यमें, न दूरमें, न निकटमें, न चित्तादि अन्तःकरणमें, न शब्दमें, न स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें, और न कलना,

अकलनामें चित्तलगावे। सब ओरसे चित्तको रोककर चेतनतत्त्व में विश्राम करो द्वैतको लेकर चेतनतत्त्वका आश्रयन करो। हे रामजी! जब सबसे निराश होगे और आत्मतत्त्वमें स्थित होगे तब विगतसंगहोगे और जीवका जीवतत्व चला जावेगा केवल चिदात्मा होकर स्थित होगे। तब सर्व्वव्यवहारकरो अथवा न करो करते भी अकर्ता होगे अथवा इसका भी त्यागकरो केवल चिदानन्दशान्तरूप जो तत्त्व है उसमें स्थित हो तब अद्वैतरूपतत्त्व स्वाभाविक भासेगा। जैसे वादलोंके दूरहुये सूर्य्य स्वाभाविक भासता है तैसेही फुरने से रहित होनेसे चेतनतत्त्व भास आवेगा और जैसे प्रकाशरूप चिन्तामणि स्वाभाविक भासिआती है तैसेही आत्मप्रकाश स्वाभाविक भास आवेगा। फिर जो कुछ क्रिया तुम करोगे वह सब फलदायक न होगी। जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता तैसेही तुमको क्रिया न स्पर्श करेगी और चित्त आत्मगति निर्वाणरूप होगा और क्रिया कर्त्ताभी अकर्त्ता रहोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेशांतसमाचारयोगोपदेशो नामचतुष्षष्टितमस्सर्गः६४॥

वशिष्ठजी वोले, हे रामजी! असंसक्त पुरुष ध्यानकरे अथवा व्यवहार करे वह सदा ध्यानमें स्थित और शोकसे रहित है। वाहरसे यदि वह क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु हृदय उसका सर्व्व कलनासे रहितहै और वह सम्पूर्ण लक्ष्मीसे शोभताहै। हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त चैत्यसे रहित अचल है सो विगत ज्वरहै, उसको कुछ दुःखस्पर्श नहीं करता। जैसे जलकमलोंको स्पर्श नहीं करता और औरोंको निर्मल करता है और जैसे निर्मलीमलीन जलको निर्मल करती है तैसेही वह जगत् को निर्मल करता है। जो आत्मतत्त्वमें लीन है सोक्षोभमान भी दृष्टि आता है परन्तु क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। जैसे सूर्य्यका प्रतिविम्ब क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु सूर्य्यको कदाचित् क्षोभ नहीं; तैसेही ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान दृष्टि आताहै पर क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। हे रामजी! आत्मारामी पुरुष वाहरसे मोरके पुच्छवत् चञ्चलभी दृष्टि आता है परन्तु हृदयसे सुमेरुपर्व्वतकी नाईं अचल है जिनका चित्त आत्मपद में स्थित हुआ है उनको सुख दुःख अपने वश नहीं करसक्ते। जैसे फटिक को प्रतिविम्बका रंग नहीं चढ़ता तैसेही ज्ञानवान्को सुख दुःखका रंग नहीं चढ़ता। जिसपुरुषको परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है उसकाचित्त रागद्वेषसे रंजित नहीं होता। जैसे आकाशमें वादल दृष्टि आता है परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान्के चित्तको रागद्वेष स्पर्श नहीं करता। जो आत्मध्यानी है और जो परम वोधका साक्षात्कार होकर कलना मलसे मुक्त हुआहै वह पुरुष असंसक्त कहाता है। हे रामजी! जो आत्मारामी पुरुषहै उसको आत्मज्ञानके अभ्याससे संसक्तता

निवृत्त होजाती है—अन्यथा संसक्त भाव निवृत्त नहीं होता। जब चित्त परिणाम आत्माकी ओर होगा—जैसे चन्द्रमा परिणाम के वशसे अमावस्या को सूर्य्यरूप होजाता है तब चित्त दृढ़ परिणाम के वशसे आत्मारूप होजावेगा। जब चित्त चैत्यभावसे हीन होता है तब क्षीणचित्त कहाता है और शांत कलना कहाता है। तब जाग्रत् भी सुषुप्ति रूप होजाताहै। उस अवस्था में जो कुछ क्रिया करता है सो फलका आरम्भ नहीं होती क्योंकि; वह तो निरहंकार होजाता है। जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारसे रहित चेष्टा करतीहै और संवेदनसे रहितहै उसको कोई दुःख नहीं होता; तैसेही निरहंकार निःसम्वेदन पुरुष निर्दुःख और निर्लेप कहाता है। हे रामजी! इष्ट—अनिष्टः भाव—अभाव रूपी जगत् चित्तमें होताहै। जब चित्त आत्मभावको प्राप्तहुआ तब किससे किसको बंधनहो तब तो सर्व आत्मतत्त्व होताहै। जैसे नट सर्व स्वांगको धारताहै और अपना अभिमान किसीमें नहीं करता तैसेही सुषुप्ति बोध पुरुष जगत्की क्रिया करताहै और बन्धवान् नहीं होता; जीवन्मुक्त होकर स्थित होताहै। हे रामजी! सुषुप्ति बोधका आश्रय करके जगत् की क्रियाकरो पर क्रिया, कर्म, कर्त्ता त्रिपुटी की भावनासे रहितहो तब तुमको कुछ दुःखहोगा न ग्रहण और त्यागमें अभिमान होगा यथा प्राप्तमें स्थित होगे। सुषुप्ति बोधमें जो स्थितहै सो कर्त्ता हुआभी कुछ नहीं करता। ऐसे निश्चय को धार करके जैसे इच्छाहो तैसे करो। हे रामजी! ज्ञानवान् की चेष्टा बालकवत् होतीहै। जैसे बालक अभिमानसे रहित पालनेमें अङ्गोंको हिलाताहै तैसेही ज्ञानवान् अभिमानसे रहित कर्म करताहै और फलका स्पर्श उसे नहीं होता। जब चित्त अचित्तरूप होजाताहै तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप होजाताहै और जो कुछ क्रिया करताहै वह स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! जब जगत् से सुषुप्ति दशा प्राप्तहोती है तब हृदय शीतल होजाता है; रागद्वेष कुछ नहीं फुरते और आत्मानन्दसे पूर्ण होताहै और जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभता है तैसेही वह शोभताहै। जो सुषुप्ति बोधमें स्थितहै वह महातेजवान् होताहै और आत्मानन्दसे पूर्ण चन्द्रमाकी नाईं होजाताहै। हे रामजी! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्था में स्थितहै वह संसारके किसी क्षोभसे चलायमान नहीं होता—जैसे पर्वत सर्वदा कालमें क्षोभायमान नहीं होता और भूकंपमें सब वृक्षादिक चलायमान होते हैं पर अस्ताचल पर्व्वत कम्पायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता। जैसे पर्व्वत सब कालमें सम रहताहै और तरु उगके गिरपड़ता है पर्व्वत ज्योंका त्यों रहताहै तैसेही ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियामें सम रहताहै। हे रामजी! ऐसी सुषुप्ति दशा अभ्यास योगसे प्राप्त होती है। जब यह दशा प्राप्तहोतीहै तब उसको तत्त्ववेत्ता तुरीया पद कहते हैं सो परमानन्दरूप है उसमें सब दुःख नाश होजाते हैं

और असंसक्त होजाता है। जब मनका मननभाव निवृत्त होजाता है तब ज्ञानवान् को परमसुख उदय होताहै और उससे वह परमानन्द होजाता हैं। जो इस संसार रचनाको लीलारूप देखता है और सर्व्वशोकसे रहित निर्भय होता है उससे संसार भ्रम दूर होजाता है। जब तुरीया पदमें प्राप्तहोता है तब संसारमें फिर नहीं गिरता। जो ज्ञानवान् पुरुष परमपावन पदमें स्थित हुये हैं वे संसार की अवस्थाको देखकर हँसते हैं। जैसे पहाड़पर बैठा पुरुष नगरको जलता देखकर हँसताहै तैसेही ज्ञानवान् आत्मानन्द को पाकर संसारके कार्य्योंमें दुःखजानकर हँसता है। हे रामजी ! तुरीया अवस्थामें स्थित होनेसे अविनाशी होता है और आनन्दरूप आनन्द कलना से आनन्द कलना है। जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है तब जन्म मरण के बन्धनसे मुक्त होताहै और अभिमान आदिक कलनासे रहित परम ज्योतिमें लीन होताहै। जैसे नमककी गोली समुद्रमें जलरूप होजाती है तैसेही वह आत्मरूप होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसक्तचिकित्सानामपंचषष्टितमस्सर्ग्गः ६५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जबतक तुरीयापदमें स्थित रहता है तबतक केवल जीवन्मुक्त होताहै और इससे उपरान्त विदेहमुक्त तुरीयातीत है सो वाणीका विषय नहीं। जैसे आकाश को भुजासे कोई नहीं पकड़सक्ता तैसेही तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं। तुरीयातीत पदसे विश्रान्त भी दूरहै विदेह मुक्तसे पाता है। अब तुम कुछकाल ऐसी सुषुप्ति अवस्थामें स्थितहोरहो, फिर परमानन्द पदमें स्थितहोना। हे रामजी ! तुरीयावस्थामें जो स्थित हुआहै वह निर्द्वन्द्व भावको प्राप्तहुआ है। जब तुम सुषुप्ति अवस्थामें स्थितहोगे तब जगत्के कार्य्यभी करते रहोगे और सदापूर्ण रहोगे और तुमको उदय अस्तकाभाव कदाचित् न प्राप्तहोगा। जैसे मृत्तिका लिखा चन्द्रमा उदय अस्तको नहीं प्राप्तहोता है तैसेही तू उदय अस्त भावको न प्राप्त होवेगा। हे रामजी ! इसशरीरको अपना जानकर जीव राग द्वेषमें जलताहै और जिस पदार्थका सन्निवेश होता है उसके नष्टहुये नष्ट होजाता है। जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटमें होताहै पर घटके नाशहुये मृत्तिकाका नाश नहींहोता तैसेही तुम भ्रमको मत अङ्गीकारकरो। तुम सदाज्योंके त्योंहो तुम्हारा सन्निवेश इसमें कुछनहीं। इससे ज्ञानवान् देहके नाशहुये शोकवान् नहींहोता और देहके स्थितहुये सुखी भी नहीं होता क्योंकि; उसका देहके साथ कुछ संबन्ध नहीं। जो तत्त्वदर्शी पुरुष है वह व्यर्थ प्राप्तिमें निर्दोष होकर विचरताहै और अभिमानादिक विकारोंसे रहित निर्मली आकाशवत् है। जैसे शरत्कालकी रात्रिमें चन्द्रमासे आकाश निर्मल होताहै तैसेही मनकी वृत्ति विकारों से रहित होकर आत्मपदमें स्थित होतीहै—संसारकी ओर नहीं

गिरती। जैसे योग, मंत्र, तप और सिद्धिसे संपन्न पुरुप आकाशमें उड़ता जाताहै वह फिर पृथ्वीपर नहीं गिरता। हे रामजी! तुमभी अपने प्रकृतभावमें स्थित होकर यथा प्राप्तक्रिया को करते निर्द्वंद्व रहो। तुमभी अवस्वरूप के ज्ञाता हुयेहो और परमपदमें जागकर अपने स्वरूप को प्राप्तहुयेहो इससे पृथ्वी में विशोकवान्हो विचरो तब इच्छासे अनिच्छाको त्यागकर शीतल, प्रकाश, अन्धकार, तप्त और मेघसे रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभोगे। हे रामजी! यह जगत् चिदानन्द स्वरूपहै और आदि अन्तसे रहित है। जो अहंत्वं आदिक भ्रमसे रहित है उसमें स्थितहो। आत्मा केवल अव्यक्त और चिन्तनासे रहितहै उसका शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा आदिक नामभी उपदेश व्यवहारके लिये कल्पेहैं; वह तो नामरूप भेद और भयसे रहित अशब्द पदहै और वही जगत्रूप होकर स्थित हुआहै—जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासताहै सो जलसे भिन्ननहीं; तैसेही आत्मासे भिन्न जगत् नहीं और जैसे समुद्र सब जलरूपहै जलसे कुछ भिन्ननहीं; तैसेही सबजगत् आत्मरूपहै भिन्ननहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं और पट और तन्तुमें भेदनहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेदनहीं। हेराम जी! द्वैत कुछ वस्तु है नहीं परन्तु मैं तेरेउपदेशके निमित्त द्वैत अङ्गीकारकरके कहता हूं। यह जो शरीर है उसके साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे धूप और छाया का सम्बन्ध नहीं होता और प्रकाश और तम इकट्ठे नहींहोते; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। देहजड़ और मलीन है और दृश्य असत्य है; आत्मा निर्मल, चेतन और सत्य है तो उसका देहसे सम्बन्ध कैसेहो? जैसे शीत और उष्णका परस्पर विरोध है तैसेही आत्मा और देहका सम्बन्ध नहीं। जैसे वनमें अग्नि लागेसे जंतु जलतेहैं तैसेही भ्रम दृश्यरूप देहमें अहंभाव करके जीव जलतेहैं। हे रामजी! जैसे दावाग्नि में कुबुद्धि जल बुद्धिकरे तैसेही अज्ञानी देहमें आत्मबुद्धि करते हैं। जैसे मरुथलमें सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है तैसेही आत्मामें देहभाव रखते हैं हे रामजी! चिदात्मा निर्मल, नित्य और स्वयंप्रकाश है और देह मलिन और अस्थि, मांस और रक्तमय है इसके साथ आत्माका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा में देह का अभाव है—केवल एक अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित है उसमें द्वैत भ्रम कैसे हो? हे रामजी! स्वरूपसे न कोई बंध है और न कोई मुक्त है सर्वसत्ता एक आत्मतत्त्व स्थित है और भीतर बाहर सब वही है। मैं सुखी हूं; मैं दुःखी हूं; मैं मूढ़हूं इस मिथ्या दृष्टिको दूरसे त्यागो और आपको केवल आत्मरूप जानकर स्थित हो। यह दृश्य परमदुःख देनेवाला है और इसमें दुःखप्राप्त होवेगा। जैसे तृण और पहाड़ की, और पट और पत्थरकी एकता नहींहोती तैसेही आत्मा और शरीर की एकता

नहीं होती । जैसे तम और प्रकाशका संयोगनहींहोता तैसेही देह और आत्माकासंयोग नहीं होता और दोनों तुल्यभीनहींहोते । जैसेशीत और उष्ण; और जड़ और चेतन की एकता नहीं होती तैसेही शरीर और आत्माकी एकता नहीं होती । हे रामजी ! शरीर जो चलता, बोलता है सो वायुके बलसे चलता-बोलता है । आठ स्थानों में वायुके बलसे; अक्षरोंका उच्चार होता है-उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत, नासिका, ओष्ठ, तालु, यही अष्टस्थान हैं । क,ख, ग, और घ-इन चारोंका उच्चार कंठमें होता है;च,छ,ज,औरझ-इन चारोंका तालु स्थानमें उच्चार होता है; ट,ठ,ड और ढ-इन वर्गोंका मूर्द्धनी में उच्चार होता है;त, थ, द और ध-इनका दांतोंमें उच्चार होताहै; प, फ, ब, भ और म-इन पांचोंका ओष्ठोंमें उच्चार होता है और ङ, ञ, नऔर ण-इनका नासिकामें उच्चार होता है । जिह्वामूलमें जिह्वाका उच्चार होता है और जिस पदके आदि हकार हो वह हृदयसे बोलाजाता है । आठों स्थानोंमें इन वर्गोंका वायु से उच्चार होता है और सूक्ष्म नवस्वरका उच्चार होता है पर आत्मा इनसे निर्लेप होता है । जैसे बांसुरी वायुसे शब्द करती है तैसेही इन पांचतत्त्वोंसे शब्द होता है; इनमें आत्माभिमान करना महामूर्खता है । नेत्रादिक इन्द्रियां भी वायु से चेष्टा करती हैं; इससे इस भ्रमको त्याग कर आत्मपद में स्थित हो-आत्मा आकाशवत् सब में पूर्ण है । जैसे आकाश सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां आदर्श होता है वहां प्रतिबिम्ब होकर भासता है तैसेही आत्मा सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां चित्त होता है वहां भासता है । हे रामजी ? जहां वासना से चित्तरूपी पक्षीजाता है वहां आत्माको ऐसा अनुभव होता भासता है कि, मैं यहांहूं । जैसे जहां पुष्प होताहै वहां सुगन्धभी होती है; तैसेही जहां चित्त होताहै वहां अहंभावभी होता है । जैसे आकाश सब ठौर में है परन्तु जहां प्रतिबिम्ब होता है वहां भासता है और जैसे जल सब पृथ्वी में है परन्तु भासता वहीं है जहां खोदाजाता है तैसेही आत्मा सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासता वहीं है जहां चित्तहै । जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सबठौरहै परन्तु जहां आदर्श अथवा जल है वहां भासताहै तैसेही आत्मा जहां तहां पूर्ण है परन्तु चित्तके अहंभावसे भासता है । आत्माका प्रतिबिम्ब चित्तही में भासता है और वह चित्त आत्माकी सत्तासे जगत् रचना फैलाता है व जैसे सूर्य्यकी किरणें धूपको फैलाती हैं । हे रामजी ! भूतोंका कारण अन्तःकरणही है; आत्मतत्त्व तो अतीत है; आदिकारण नहीं है वास्तवमें अकारण है । जगत् जो सत् भासता है सो अविचार से भासता है । उसीके निवृत्तका उपाय आत्मज्ञानहै । हे रामजी ! संसारका कारण अन्तःकरण है और असम्यक्ज्ञानसे सत्यरूप भासता है जैसे मरुस्थल में असम्यक् ज्ञानसे जल भासताहै । जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जगत्का कारण चित्तसे नष्टहो

जाता है जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से चित्त नष्ट होजाता है। संसारका कारण अपना चित्तही है इसीका नाम जीव, अन्तःकरण, चित्त और मन है। रामजी ने पूछा, हे महाआनन्द के देनेवाले! इतनी संज्ञा चित्तकी कैसे हुई हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व भावरूप एक परमात्मतत्त्व है। जैसे समुद्र, नदियां, तरंगादि संज्ञा एक जलही धरता है तैसेही चित्तादिक अनेक संज्ञाको आत्मा धारताहै पर सदा एकरूपहै;संवेदन फुरनेसे अनेक रूपधरताहै। जैसे एकजल कहीं तरङ्ग, कहीं बुद्बुदे, कहीं जल,कहीं चक्र और कहीं स्थिर—इतनी संज्ञाको धारता है परन्तु सबही जलरूप है तैसेही सर्वशक्ति आत्मा सब शरीरोंमें सर्वरूप होता है। जब स्पन्दकलना दूरहोती है तब शुद्ध स्वरूप हो भासता है और जहां अज्ञान संसरनेको अङ्गीकार करताहै तहां वही अनन्त आत्मा जीव कहाता है। जैसे केसरी सिंह पिंजड़े में फँसताहै तैसेही यह जीवरूप होताहै।हे रामजी! जहां अहंभाव फुरता है वहां जीव कहाताहै; जहां निश्चय वृत्तिसे फुरताहै उसको बुद्धि कहते हैं; संकल्प विकल्प से मन, चिन्ताकरनेसे चित्त, और प्रकृति भाव से प्रकृति कहाताहै। हे रामजी? प्रकृतिरूप जो पदार्थ है वह जड़ कहाताहै। और चेतन है सो जीव कहाता है। जड़ जो दृश्य भावसे संवित् भाग है और अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावसे सिद्ध होता है; इनके जो मध्य है सो परमात्मा तत्त्व है सो नानारूपहो भासता है। बृहदारण्य उपनिषद् और वेदांतशास्त्रों में बहुत प्रकारसे जीवकारूप कहाहै इससे भिन्नसंज्ञा शास्त्रकारोंने कल्पनाकर कही है सो वृथाकल्पना है। जबतक अहंभावसे चित्त संसरता है तबतक जगत्भ्रम होता है—जैसे जब तक सूर्य है तब तक प्रकाश होता है और जब सूर्य अस्तहोता है तब प्रकाश जाता रहता है तैसेही जब चित्तका अभाव हुआ तब जगत्भ्रम जातारहता है। देह में आत्मबुद्धि करनी महामूर्खता है क्योंकि; यह अधोर्ध्वसंयोग है जो आत्माका ऐसे संयोग न हो तो देहके नाशहुये आत्मा भी नाशहोजावे पर देहके नाशहुये आत्माका तो नाश नहीं होता। जैसे वृक्षके पत्तों के नाशहुये वृक्ष का नाश नहीं होता और घटके नाशहुये आकाशका नाश नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता। जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागकर पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसेही आत्मा पुरातन शरीरको त्यागकर नूतन शरीर अङ्गीकार करता है। इसीका नाम मूर्खमृत्यु कहते हैं पर शरीरके नाश हुये आत्माकानाश तो कुछ नहीं होता। हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है उसका शरीर जब छूटता है तब उसका चित्त चिदाकाशमें लीन होजाता है और जिसका चित्त वासना सहित है वह एक शरीर को त्याग कर और शरीर पाताहै। जो देहके नाशहुये आपको

नाश मानताहै वह मूर्खहै—जैसे एकस्थानमें अज्ञानसे वैताल भासता है और जैसे माताके स्तनों में मूर्ख बालक को वैताल भासता है तैसेही अज्ञानसे आत्मामें मृत्युभासती है । जो इसका आत्मत्व नाशहो अर्थात् चित्त नाशहोजावे और फिर न फुरे तो आनन्दहो । जो शरीर के नाशहुये आत्माका नाश कहते हैं वे मूढ़ हैं और मिथ्याकहते हैं । जैसे कोई देशसे देशांतर जाताहै तो उसका अभाव नहीं होता तैसेही एक शरीर को त्यागकर और शरीरको प्राप्त होता है तो आत्माका नाश नहीं होता । जैसे जलमें तरङ्ग फुरके फिर लीन होकर और ठौरमें जा फुरते हैं तैसेही आत्मा एक शरीरको त्यागकर औरको धारता है । जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूरजाता है तब दृष्टि नहींआता परन्तु नाश नहीं होता तैसेही शरीरके नाश हुये आत्मा और ठौर प्रकट होताहै नाशनहीं होता । हे रामजी ! वासनाके वशसे यह जीव एक शरीर को त्यागकर और शरीरको प्राप्तहोताहै । इसीप्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है । वासनारूपी रस्सीसे बँधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानों में भटकताहै और कभी ऊर्ध्वलोक और कभी मनुष्यलोकमें घटीयंत्रकी नाईं भ्रमताहै। हेरामजी ! जीवके हृदयमें जो वासना होतीहै उसीसे जरा, मृत्यु, जन्म आदिका दुःख पाता है और कमलरूपी भारउठाकर कभी स्वर्ग,कभी पाताल और कभी मध्यस्थानमें जाताहै शांति कदाचित् नहीं पाता । इससे हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसार है इसको भ्रमरूप जानकर इसकी वासनाको त्यागकरो और अपने स्वरूपमें स्थितहो । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य्य अस्तहुआ तो सब सभा स्नानके निमित्तउठी और परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानको गये फिर रात्रि बिताके सूर्य्यकी किरणोंके निकलतेही आ बैठे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसारयोगोपदेशोनामषट्पष्टितमस्सर्गः ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा देहके उपजे से नहीं उपजता और नाश हुये से नाश नहीं होता इसलिये तुम निष्कलङ्क आत्माहो; तुमको देहके साथ सम्बन्ध कदाचित् नहीं । जैसे कुञ्जमें फूल और फल और घटमें घटाकाश होताहै सो परस्पर भिन्नरूप होते हैं, एकके नाशहुये दूसरे का नाश नहीं होता; तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता । जो देहके नाशमें अपना नाश मानता है वह मूर्ख जड़है;उस अर्द्धचेतनाको धिक्कारहै । हेरामजी ! जैसे रथ, रस्सी और घोड़ेका स्नेहसे रहित संयोग होता है तैसेही शरीर और इन्द्रियों का संयोग है । हेरामजी ! रथ टूटेसे जैसे रथवायुकी हानि नहीं होती तैसेही देह और इन्द्रियों के नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता । जैसे पृथ्वी पहाड़पर जलके प्रवाहका संयोग होता है और वियोगभी होता है सो एकके नाशहुयेसे दूसरेका नाश नहींहोता तैसेही

देह और इन्द्रियों का संयोग है पर इनके नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता जैसे एक स्थान में वैताल भासता है और भयवान् होता है तैसेही देह में अहं भावसे राग, द्वेष, सुख, दुःख पाता है। जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतली होती हैं सो काष्ठसे इतर कुछ नहीं हैं तैसेही जो कुछ शरीर है वह पञ्चभूतोंकाहै पञ्चभूतोंसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जब यह पञ्चभूतों का शरीर पञ्चभूतों में लीन होता है तब उसको मृतकहुआ कहते हैं। यह आश्चर्य्य है जो प्रत्यक्ष पञ्चभूतों का शरीर है उस में आत्मभावना श्वान करते हैं और फिर हर्षकर शोकको प्राप्त होता है इसीसे मूर्खहै। हे रामजी! न कोई पुरुष है और न कोई स्त्री है पर इनके निमित्त मूढ़ रुदन करते हैं। जैसे मृत्तिका के हाथी घोड़ा आदिक खिलौने विचित्र रचना होती है और उसकी प्राप्तिमें अज्ञानी बालक तुष्टवान् और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानी पञ्चभौतिक रचना देखकर उसकी प्राप्ति में राग द्वेष करता है ज्ञानवान् को सबभूत पदार्थ भ्रान्तिमात्र भासते हैं। जैसे माटीके पुरुषों को आपस में मिलने से राग द्वेष कुछ नहीं होता तैसेही बुद्धि, इन्द्रियां, मन और आत्माका जो मिलापहै इससे तुम को रागद्वेष कुछ नहींहोता। जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलतीहैं तो उनको स्नेहबन्धन कुछनहींहोता तैसेही देह,इन्द्रियां,प्राण और आत्मा का आपसमें स्नेहबुद्धिसे रहित है। इससे तुम स्नेहसे रहित होरहो; शोक काहेको करतेहो। जैसे तृण और जल के तरङ्गका संयोग होता है तो तृण इधर उधर जाता है और जलको कुछ हर्ष शोक नहींहोता तैसेही देहभूत आत्माकायोगहै इनकेमिलाप और बिछुरेका दुःखसुखकुछ नहींहोता।आत्मा;और अनात्मा देह,इन्द्रियां, प्राण,मन,बुद्धिआदिक विलक्षण भावहै और परस्पर इनके क्षय और उदय में हर्ष शोक कुछ नहीं परन्तु चित्तके उदय से अनात्माधर्म्म आत्मामें प्रतिबिम्बित भासताहै। तुम तत्त्वबोधका विचारकरके चित्त को त्याग अपने स्वरूप में स्थित हो—जैसे जलतरङ्ग भावको त्यागकर अपने स्थिर स्वभाव को प्राप्तहोता है। जब तुम अपने अक्षोभ भावको प्राप्तहोगे तब भौतिक देहसे आपको भिन्न जानोगे। जैसे वायुमण्डलको प्राप्तहुआ देहादिक जीव पृथ्वी-मण्डलको देखता है तैसेही तुम आत्मपदको स्थित होकर देहादिकभूतोंको देखोगे। हे रामजी! तुम देहादि भूतोंको देखके त्यागकरो और अतीत अजन्मा पुरुष हो रहो तब तुम परमप्रकाशको पावोगे। जैसे सूर्य्यकान्तमणि सूर्य्य के उदयहुये परम प्रकाशको प्राप्त होताहै तैसेही जब बोधकरके द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभाव तुम्हारा जाता रहेगा तब तुम अपने भावको ज्योंका त्यों जानोगे। जैसे मनुष्य मद्यसे मत्तहोजाता है और मद्यके उतरेसे आपको ज्योंका त्यों जानता है और मद्यभाव को स्मरण करता है तैसेही स्मरण करोगे। आत्मतत्त्वका जो स्पन्द फुरनाहुआ है उसीकानाम

चित्त है सो अवस्तुरूप है । जैसे समुद्र में तरङ्गभाव उदय होताहै सो कुछ वस्तु नहीं तैसेही चित्तादिक कुछ वस्तु नहीं भ्रान्तरूप है । इसप्रकार जानकर महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्तहुये हैं और महाशान्तपदकी प्राप्तिमें विचरते हैं । जैसे रत्नमणिकी किञ्चन नानाप्रकारकी लहरहोती है सो मनन कलनासे रहित चमत्कार हैं तैसेही मनुष्योंमें जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं उनका व्यवहार कलनासे रहित होता है जैसे कूपमें प्रतिविम्ब पड़ता है और आकाशमें धूलिउड़ती भासती है पर आकाश मलभावको नहीं प्राप्त होता तैसेही ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहार में कर्तृत्वके अभिमान को नहीं प्राप्तहोता । जैसे मेघके आने जाने से समुद्रको राग द्वेष नहीं होता तैसेही आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगोंके आने जानेमें रागद्वेष नहीं होता। हे रामजी ! जिसमनमें जगत्के किसी पदार्थकी मननवासना नहीं फुरती उसचित्तमें जो कुछ फुरना भासताहै सो विलास स्वरूपजानो वह उसको बन्धनका कारण कुछ नहीं होता और जिस चित्तमें अहं त्वं आदिक जगत्की भावनाहै परन्तु हृदयसे उस की सत्यता बुद्धिहै उससे वह दृश्य,द्रष्टा और दर्शन सम्बंध तीनोंकालों संयुक्त जगत् को फैलावेगा । जो कुछ दृश्यहै वह असत्रूपहै और जो सत्यहै सो एक अव्यक्तरूप है । उसका आश्रयकरके अलेपहो तब हर्षशोककी दशा कहांहै ? जोकुछ दृश्यजगत् भासता है वह सब असत्रूपहै और जो सत्यहै वह सदा ज्योंका त्योंहै । असत्रूप दृश्यके निमित्त तुम क्यों वृथामोहको प्राप्तहोते हो । असम्यक् दर्शन को त्यागकर सम्यक्दर्शी हो । हे सुलोचन रामजी !जो सम्यक्दर्शी हैं वे मोहको नहीं प्राप्तहोते। दृश्य और दर्शन इन्द्रियों के साक्षित्व सम्बन्धमें अर्थात् विषयेन्द्रियके साक्षिरूप आनन्दका जिसे सुखहै वो परब्रह्म कहाताहै और अनुत्तम सुखसे जो उस संवित्में स्थितहै वह ज्ञानवान्है उसको मोक्षप्राप्तहै । जो दृश्य, दर्शनके मिलनेमें स्थितहोता है उस अज्ञानीको वह संवित् संसारभ्रम दिखाती है । दृश्य-दर्शन में जो अनुभव सत्ताहै वहसुख आत्मरूप है, जो दृश्यके साथ लगाहै वह बन्ध है और जो दृश्यसे मुक्तहो संवित्में स्थितहै वह मुक्त कहाताहै । हे रामजी ! दृश्य-दर्शन के सम्बन्धमें जो मध्य संवित्है वह अनुभव गोचर है; उस संवित्का आश्रयकरके जो दृश्यदर्शन मुक्तहै वह संसार समुद्रसे तरेगा। यह सुषुप्तिरूप अवस्थाहै;इसको प्राप्तहुआ परमप्रकाशको प्राप्त होता है और इसीको मुक्तकहते हैं। जो दृश्य दर्शन से मुक्तबुद्धि है वह मुक्तकहाताहै और जो दृश्यदर्शनके साथबँधा है वह बन्ध है। अन्यसब्वोंका अनुभव करनेवाला आत्माहै, वह न स्थूलहै;न अणुहै, न प्रत्यक्षहै;न अप्रत्यक्षहै, न चेतन है, न जड़है; न सत्यहै, न असत्यहै;न अहंहै, न त्वंहै; न एकहै, न अनेकहै; न निकटहै, न दूरहै; न अस्तिहै, न नास्तिहै; न प्राप्तिहै, न अप्राप्तिहै; न सर्वहै, न असर्व है, न

पदार्थहै, न अपदार्थहै; न पंचभौतिक है, न अपंचभौतिक है; जो कुछ दृश्यजाति है सो मनसहित षट् इन्द्रियों से भावको प्राप्तहोता है। जो इनसे अतीत है वह इनका विषयनहीं। क्योंकि, निष्किञ्चनरूपहै। यहभी सबवहीरूप है और ज्योंकात्यों जाने से सब आत्मरूपहै। जगत् अनात्मरूप कुछनहीं, सम्यक्ज्ञानसे ऐसे भासताहै। यह जो कठिनरूपपृथ्वी, द्रवतारूपजल, स्पन्दरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि और अवकाशरूप आकाश भासते हैं वे सब आत्मरूपहैं। जो कुछ वस्तु-अवस्तुरूप जगत् भासताहै सो आत्मसत्तासे भिन्ननहीं। आत्मासे भिन्न जगत्को मानना उन्मत्तचेष्टा है और मूर्खमानते हैं। महात्मा पुरुषोंको कालकलनारूप जगत् सब आत्मरूपहै। कल्पसे आदिलेकर अन्तपर्य्यन्त सब आत्माका चमत्कारहै; ऐसे जानकर तुमअपने स्वरूपमें स्थितहो और संसार समुद्रसे तरजावो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमोक्षस्वरूपोपदेशोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ६७॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! यह जो मैंने तुझको द्वैतके त्यागकी विचारदृष्टि कही है इस विचारसे अपना जो आत्मस्वभाव है सो प्राप्तहोताहै,जैसे बुद्धिमान्को उपासना अभ्याससे चिन्तामणि प्राप्तहोती है। इसके उपरान्त एक और भी परमदृष्टि सुनो जिससे मनुष्य अचल आत्मस्वरूपको देखताहै वह यहहै कि, मैंहीं आकाश, दिशा,सूर्य्य, अध,ऊर्ध्व, देवता,दैत्य,प्रकाश, तम,मेघ,पर्व्वत,पृथ्वी, समुद्र;पवन, धूलि, अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत्हूं। हे रामजी! सर्व्वजगत् आत्माही है तो अहं और त्वं से भिन्न और अनेक और एककैसेहो। जिसके हृदयमें ऐसा निश्चय होताहै उसको सब जगत् आत्मरूप भासता है और वह पुरुष हर्षशोक नहीं पाता। सब जगत् मनोमात्रहै तो अपना और पराया क्या कहिये? ज्ञानवान्को आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता इससे वह हर्ष विषाद को नहीं प्राप्तहोता। हे रामजी! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं। दोप्रकारका तो सात्त्विक निर्मलहै;तत्त्वज्ञानसे प्रवर्तताहै और मोक्षदायक परमार्थरूपहै;और तीसरा संसार दिखाताहै। एक तो अहं है जो तुमको कहा है कि,सर्व्व मैंहींहूं-मुझसे अन्यकुछ नहीं और दूसरायहहै कि,परमअणु जो सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्महै सो साक्षीभूत अव्यक्तरूप मैंहूं-ये दोनों मोक्षदायकहैं और तीसरा यह कि,आपको नख,शीशपर्य्यन्त देहरूप जानना सो दुःखदायक और संसारका कारणहै शान्तिसुखका कारण नहीं। अथवा इनतीनोंका त्यागकर स्थितहो यह सर्व सिद्धान्तका कारणहै।जैसे तुम्हारी इच्छाहो तैसेकरो पर आत्मा सर्वसे अतीत और सबसे परेहै तौ भी अपनी सत्तासे जगत्को पूर्ण कररहाहै और सबका प्रकाशकरूपवहीहै। वह अपने अनुभवसे सदाबस्तु उदयरूपहै और किसी प्रमाणका विषयनहीं;अनुमान आदिक और सत्यवादसे रहित है और सर्व्वकाल सबको अपने प्रकाशसे प्रकाशताहै। यह

जो दृश्यजगत् है वह सब आत्मा भगवान् है और दृश्य,दर्शन, सत, असत्, सूक्ष्म, स्थूल सबसे आत्मा रहित है। वही सर्वरूप सबकीवाणी कहनेमें भी वही आताहै और किसीसे कहाभी नहींजाता । जो नानात्व भासता है वहभी उससे अन्यनहीं। आत्मा आदिक संज्ञाभी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्तकल्पी हैं। वह सर्व्वत्र,तीनोंकालों में स्थित और प्रकाशरूप है । सूक्ष्मभाव और स्थूलभावसे वही है और सबठौर व्यापक अपने फुरनेसे जीवरूपहो भासताहै । जब चित्त सम्वित् स्फूर्तिरूप होती है तब जीवादिकरूपहो भासता है और फुरने से रहित द्वैतकलना मिटजाती है–जैसे आकाशमें जब पवन फुरताहै तब उष्ण शीतहो भासताहै तैसेही फुरनेसे जीवादिक भासताहै। आत्माचेतन सर्वत्र व्यापकरूपहै और कभी किसीभावको प्राप्तनहींहोता। जैसे पदार्थ अपने भावमें स्थित है तैसेही परमेश्वर आत्मा अपने स्वभावमें स्थित है परन्तु उसका भासना पुर्य्यष्टका में होता है। जैसे वायुविना धूलि नहीं उड़ती और अन्धकार में प्रकाशविना पदार्थ नहीं भासता तैसेही पुर्य्यष्टका विना आत्मा नहीं भासता पुर्य्यष्टकामें प्रतिविम्ब भासता है। जैसे सूर्य्यके उदयहुये सर्व्व जीवोंका व्यवहार होता है और सूर्य्यके अस्तहुये से लीन होजाता है पर सूर्य्यदोनों से अलेप है; तैसेही आत्मा सब का प्रकाशक और निर्लेप है। शरीरों के व्यवहार होने और इष्टता में वह ज्योंका त्यों है; न उपजता है, न विनशता है, न वांछा करता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बन्धहै; सर्व्वदा सर्व्वप्रकार ज्योंकात्यों एक रूपहै। उसके अज्ञानसे जीव अनात्मभावको प्राप्त होताहै–जैसे रस्सीमें सर्पभासता है–और केवल दुःखोंका कारण होताहै। आत्मा आदि–अन्तसे रहित और अज–अविनाशी है और अपने आपसे भिन्न नहीं हुआ इससे वांछा, त्याग, देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित है बन्ध नहीं और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे हो? सर्व्व कलनासे रहित आत्मा सब का अपना आप है पर अविचारसे मूढ़रुदन करते हैं; इससे मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको आदि से लेकर अन्तपर्य्यन्त भलीप्रकार विचार देखो और इस युक्ति से शोक का त्यागकरो–मूर्खों के समान लोगों में शोक मतकरो। हे सुमते! बन्ध मोक्षकी कल्पना का त्यागकरो। न बन्ध के त्यागकी इच्छा करो और न मोक्षके प्राप्ति की इच्छाकरो, यंत्री की पुतलीवत् अभिमान से रहित चेष्टाकरो–इसका नाम आत्मामौन है। हे रामजी! मोक्ष कोई पदार्थ का नाम आकाश में नहीं और न पाताल में है; न भूमि लोक में है–चित्तका निर्मल होनाही मोक्ष है। अनात्मा के साथ आपको मिलाना और उसमें आत्माभिमान करना यही मेल है और इसका त्यागकरना और शुद्ध आत्मामें चित्तका लगाना इसका नाम मोक्ष है। जब चित्तसे गुणोंमें वृत्तिका त्यागहो और सम्यक् आत्मज्ञानहो उसीको तत्त्वदर्शी मोक्ष

कहते हैं। हे रामजी! जबतक आत्मबोध नहीं होता तबतक यह दीनदुःखी होता है और जब आत्माका निर्मलबोध होता है तबदुःखों से मुक्तहोता है इससे और उपायोंको त्याग भक्ति करके मोक्षकी वांछाकरो और चिरकालमे जब इसबोधको साध चित्तविस्तृत पदको प्राप्त हुआ तब दशमोक्षकीभी वांछानहीं करता एकमोक्ष क्या है। हे रामजी! जीव को और कोई उपाय मोक्षका नहीं; आत्मबोधकोही पाकर सुखी होंगे। जब चित्त अचित्त होता है तब सबजगत् भ्रम मिट जाता है और जगत्भी कुछ दूसरी वस्तुनहीं, अद्वैत आत्मतत्त्वही है; और जो वही है तो बंध किसको कहिये और मोक्ष किसको कहिये? बंध मोक्षकी कल्पना तुच्छ है उसका त्यागकर चक्रवर्त्ती हो पृथ्वीकी पालनाकरो तो तुमको कर्त्तृत्वका स्पर्श कुछ न होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्माविचारोनामअष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी? सङ्कल्पसेही जगत्उपजा है। अज्ञानसे आपको शरीर जानता है और अपने सङ्कल्पको उपजाके अपना स्वरूप जानता है। जैसे कोई सुन्दरपुरुष हो और उसको देखे विना कुरूपजाने तैसेही आत्माके साक्षात्कार विना देहरूप आत्माको जानता है कि, मैं देहहूं। ज्योंज्यों आत्माका प्रमाद होता है त्यों त्यों देहमें अधिक अभिमान होता है–जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है त्यों त्यों उन्मत्त होता है। हे रामजी! यह नानाप्रकारका दृश्य अज्ञानसे भासताहै। जैसे सूर्य्य की किरणोंसे मरुस्थल में जल भासता है तैसेही असम्यक् ज्ञानसे आत्मामें जगत् भासता है। एक कलनाके फुरनेसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियां, और देह भासती हैं; एक फुरने की ही इतनी संज्ञा हैं। जैसे एकजलकी अनेक संज्ञा होती हैं तैसेही एक फुरने की अनेक संज्ञा हुई हैं। जो चित्त है सो अहंकार है; जो अहंकार है वही मन है; और जो मन है वही बुद्धि है इसमें कुछ भेद नहीं। जैसे बरफ और शुक्लता और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही मन, बुद्धि आदिकमें कुछ भेद नहीं-एकके नाश हुये दोनों का नाश होजाताहै। इससे मन में जो कुछ कलना है उसका त्यागकर मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरो और बन्धन वृत्तिकोभी त्यागकरो। हे रामजी! वैराग और विवेक का अभ्यास करके मनको निर्मलकरो। जब मन निर्मल होगा तब मनका मननभाव नष्ट होजावेगा। जब यह फुरना फुरता है कि, 'मैं मुक्तहोऊं' तब भी मन जगआता है और मनके जागेसे मननभी होआता है। जब मनन हुआ तब अपने साथ शरीर भी भासि आता है अनेक दुःखभी भासि आते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व सब से अतीत है और सर्व्वरूप भी वही है तब कौन बन्ध है और कौन मोक्ष है? जब मनका मनन निवृत्त हुआ तब न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है–आत्मा सर्व्वक्रिया से अतीतहै। क्रियाभी इसप्रकारहोतीहै कि, जैसे

वायुके हिलनेसे वृक्षसेपत्र और फूल हिलतेहैं तैसेही प्राणोंसे फुरनेसे हाथपांव आदिक इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। हे रामजी! चित्तशक्ति सर्व्वव्यापी,सूक्ष्म और अचलहै;वह न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरीहुई चलती है; सदा स्थितरूपहै। जैसे मेरु पर्व्वत न आपही चलता है और न वायुसे चलाया चलता है। हे रामजी ! जितने पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपी दर्पणमें प्रतिबिम्बित भासते हैं।जैसे सर्व्वपदार्थोंको दीपक प्रकाशता है तैसेही सबपदार्थोंको आत्माप्रकाशकरता है। सबपदार्थों में एक आत्मा अनुस्युत प्रकाशता है; और अहं त्वं आदिक कलनासे रहितहै। जहां अहं त्वं आदिककलना नहीं फुरती वहां सुख दुःखभी नहीं फुरता। जैसे वृक्षों और पहाड़ों से अहं त्वं शब्द नहीं फुरता तैसेही आत्मामेंभी नहीं फुरते; इससे ज्ञानवान् में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते। हे रामजी ! आत्मा निरहंकार और निराकार उसमें कर्त्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवे ! आत्मामें कर्त्तृत्व भोक्तृत्व अज्ञान से भासता है—जैसे मरुस्थल में जलभासता है। हे रामजी ! अज्ञानरूपी मदिरापान करके मनरूपी मृगमनहुआ है उससे वह सत् असत्का विचार नहीं करसक्ता—जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत्ही सत् भासती है और मृग उसको सत्जानकर पानकरने के निमित्त दौड़ता है; तैसेही यह जीव अरूप संसार को रूपजानकर दौड़ताहै। जब आत्मसत्ताका सम्यक्बोध होता है तब यह अविद्या नाश होजाती है । जैसे ब्राह्मणों के मध्य चाण्डाली आन बैठे और जब ब्राह्मण उसको पहिचाने कि, यह चाण्डाली है तो वह छुपजाती है तैसेही जब अविद्याको जाना तब वह नष्ट होजाती है । हे रामजी ! जब अविद्या को ज्योंकी त्यों जाना तब अविद्यारूपी जगत्मन को नहीं खैंचसक्ता—जैसे मृगतृष्णाकी नदी को जब जाना तब तृषाहो तौभी मनको जल नहीं खैंचसक्ता । हे रामजी ! जब परमार्थ सत्ताका बोधहोता है तब मूलसे वासना नष्टहोजाती है , जैसे दीपके उदयसे अन्धकार नष्ट होजाताहै तैसेही आत्मज्ञानसे अविद्या वासनासहित नष्ट होजातीहै। हे रामजी ! अविद्या अविचारसे सिद्ध है; जब सत्शास्त्रों की युक्तिसे विचार प्राप्त होता है तब अविद्यानाश होजाती है। जैसे बरफ का कणका धूपसे गलकर जलमय होजाता है तैसेही बिचारसे अज्ञाननष्ट होजाता है। हे रामजी ! देह जड़ है और आत्मा सदा चेतनरूपहै; फिर जड़देह के निमित्त भोगोंकी बांछा करनी बड़ी मूर्खता है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस बन्धनको तोड़डालते हैं। हे रामजी ! आशारूपी फांसीको हृदयसे काटो; जब आशारूपी आवरण दूर होगा तब पूर्णमासीके चन्द्रमावत् हृदय शीतलहोजावेगा। तैसेही यह पुरुष भी तीन तापोंसे मुक्त शीतलहोजाता है—जैसे पर्व्वतमें अग्नि लगे और उसके ऊपर जलकी बहुत वर्षा होतो वह तप्ततासे मुक्तहो शान्तिमान् होताहै। हे रामजी ! जैसे

केशरी सिंह पिंजरे को तोड़कर निकलता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भोग बासनाके बन्धनको तोड़डालता है। हे रामजी ! जैसे रङ्कको त्रिलोकी का राज्य मिलने से वह आनन्दको प्राप्तहो तैसेही ज्ञानवान्को आत्माके साक्षात्कार हुये आनन्द प्राप्तहोता है और वह परम निर्मल लक्ष्मी से शोभता है जब हृदयसे आशारूपी मैल जाता है तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है तैसेही वह शोभता है। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आप में नहींसमाता—जैसे महा कल्पका समुद्र नहीं समाता और जैसे मेघजल को त्यागकर मौन होजाता है तैसेही ज्ञानवान् आशाको त्याग कर आत्ममौन होजाता है। जैसे अग्नि लकड़ीको जलाकर धुवेंसे रहित अपने आपमें स्थित होजाती है तैसेही चित्त की वृत्तिसे रहितहुआ आत्मपद में निर्वाण होजाताहै जैसे दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही चित्त निर्वाणहुआ परमानन्दको प्राप्त होता है। जैसे अमृत को पानकर पुरुष आनन्दवान् होता है तैसेही वह परमानन्द से पूर्ण अपनेआपमें प्रकाशताहै जैसे वायुसेरहित दीपक प्रकाशताहै और शुद्धमणि अपने प्रकाश से प्रकाशती है तैसेही ज्ञानवान् अपने आपसे प्रकाशता है । मैं सर्व्वात्मा, सर्व्वगत, ईश्वर, सर्व्वाकार, निराकार, केवल चिदानन्द आत्माहूं और सदा अपने आपमें स्थितहूं। हेरामजी ज्ञानी अपने आपको ऐसे जानते हैं और पूर्व्वके व्यतीत हुये दिनको हँसते हैं। मैंतो अनन्त आत्माहूं; मायाके भ्रमसे आप को कर्त्ता भोक्ता मानताथा । ऐसे जानकर जो रागद्वेषसे रहित परमशांति को प्राप्त होताहै उसके सब ताप निवृत्त होजाते हैं; उसकीसदा आत्मामें प्रीतिरहती है ; उस का चित्त सब ओरसे पूर्ण होजाता है;वह सबको पवित्र करनेवाला होता है;वहकाम रूपी चक्रसे मुक्तहोकर जन्मोंके बन्धन काटडालता है; रागद्वेष आदिक द्वंद्व और सर्वभयसे मुक्त होता है; अविद्यारूपी संसार समुद्रसे तरजाता है; उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है अर्थात् परम पदपाता है और फिर संसारके जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता है और उसके कर्मोंका अन्त होजाता है। हेरामजी! ज्ञानवान्की क्रियाको देख-कर और सबबांछा करते हैं परन्तु औरोंकी क्रियाको देखकर ज्ञानवान् किसीकी बांछा नहीं करता। वह सबको आनन्दवान् करता है और आप किसीसे आनन्दवान् नहीं होता। वह न किसी को देताहै, न लेता है, न किसीकी स्तुति करता, न निन्दा करता है; न किसी उत्तम पदार्थों को पाकर उदय होता है और न अनिष्टको पाकर नष्ट होता है और हर्ष शोकसे रहित है। उसने सब फलका त्याग किया है और सब उपाधि से रहित है और कर्तृत्व भोक्तृत्वसे आपको न्यारा मानता है । ऐसा जो पुरुष है वह जीवन्मुक्त है । हे रामजी ! जब तुम सब इच्छा त्यागकर मौन हो तब निर्विशेष भावको प्राप्त होगे। जैसे मेघ जलका त्यागकर मौनभाव को प्राप्तहोता है

तैसेही तू मोक्षभावको प्राप्त होगा । हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठमेंलगाकर आनन्दवान् होता है पर उसको ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द निर्वासनिक पुरुषको होताहै, फूलके गुच्छेसे वसन्तऋतु ऐसी नहींशोभती जैसे उदार बुद्धि आत्म ज्ञानवान् शोभताहै; हिमालय पर्व्वतमें प्राप्तहुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतलहोताहै; मोतियोंकी मालासे और केलेके वनकोप्राप्त हुआ भी ऐसा सुख नहींपाता और चन्दनों के पानकरनेवाला भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसाशीतल निर्वासनिक मन होता है, और चन्द्रमाके स्पर्शसेभी ऐसा शीतल नहींहोता जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होताहै । चन्द्रमा बाहरकी तप्तता मिटाताहै परन्तु भीतरकी तप्तनिवृत्त नहींकरता पर निराशतासे हृदयकी तप्तता मिटजाती है और परमशांतिको प्राप्तहोताहै । जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगसे होती है तैसी और किसी उपायसे नहीं प्राप्त होती । हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्ग में नहीं प्राप्तहोता और न सुन्दर स्त्रियोंके स्पर्शसे होता है जैसासुख निर्वासनिक को प्राप्तहोताहै । निर्वासनिक पुरुष उससुखको प्राप्तहोताहै जिससुखमें त्रिलोकीके सुख तृणवत् भासते हैं । हे रामजी ! आशारूपी कञ्जके वृक्षके काटनेको उपशमरूपी कुल्हाड़ा है । जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है उसको सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है; मेरु पर्व्वत एक दूटेवृक्षके समान भासता है और दिशा डिब्बी के समान भासती हैं क्योंकि, वह उत्तमपद को प्राप्तहुआ है और त्रिलोकी की विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है । जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है वह जगत्को देखकर हँसताहै और कदाचित् उसे जगत्के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती । तृणवत् जानकर उसने जगत् को त्यागदिया है और सदा आत्मतत्त्वमें स्थित है उसको किसकी उपमा दीजिये, उस पुरुपकी उदय, अस्त, अहं त्वं आदिक कलना नष्ट होगई हैं और केवल आत्मस्वभावको प्राप्तहुआ है । उस ईश्वर आत्माको कौन तौल सक्ता है; जब दूसरा उसके समान हो तब तौले । हे रामजी ! वह पुरुष सब सङ्कटों के अन्त को प्राप्तहुआ है । यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है । जैसे आकाशमें भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में नदी और मद्यपानसे नगर भ्रमता भासता है; तैसेही यह मिथ्या जगत् भ्रम से भासता इसकी आशामत करो । तुमतो बुद्धिमान् पण्डितहो, मूर्खोंकी नाईं मोहको क्यों प्राप्त होतेहो ? यह मैं और यह मेरा अज्ञान से भासता है; इसकलनाको चित्तसे दूरकरो । यह वास्तव में कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है और नानात्वकुछनहीं है जो सम्यक्दर्शी पुरुषहै वह जगत्को एकरूप जानकर धैर्य्यवान् रहता है कदाचित् खेदनहींपाता । हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है और आत्म विचारसे आत्मपदको प्राप्तहुआ है उसको देखकर मोहने

वाली मायाभी भागजाती है और निकटनहीं आती। जैसें सिंहकेनिकट मृगनहींआता तैसेही ज्ञानवान्के निकटमाया नहींआती। सुन्दर स्त्रियां, मणि, कञ्चनादिक, धन और पत्थर, काष्ठसब उसकोतुल्य भासता है; भोगोंसेउसको सुखनहींहोता और आपदासे खेदनहींहोता; वह सदाज्योंकात्यों रहता है। जैसे पर्व्वतबायुसे चलायमाननहीं होता तैसेही वहपुरुष सुखदुःखसे चलायमान नहीं होता। सुन्दर बालास्त्रीउसके चित्तको खींचनहींसक्ती; कामदेव के चलायेबाण उसके ऊपर टुकड़े२ होजाते हैं और रागद्वेष उसको खींचनहीं सक्ते। वहसदा आपको निराकार,अद्वैत,निष्क्रिय और निर्गुणजानताहै और सुन्दरबगीचे, ताल, बेल, शय्या, इन्द्रियोंके विषयभोग और दुःखदेने वाले उसकोतुल्य हैं रागद्वेषको नहींप्राप्तकरते। जैसे पर्व्वतमें ऋतुके अनुसार मीठा और कटुफूलहोता है तो उसको किसीमें रागद्वेष नहीं होता। अकस्मात् जो भोग प्राप्तहोताहै उसको वह भोगताहै परन्तु हर्ष और शोकवान् नहींहोता।हेरामजी! यथार्थदर्शी इष्टअनिष्ट में चलायमान नहीं होता—जैसे बसन्तऋतुके आनेजानेमें पर्व्वत सुखदुःखको प्राप्तनहींहोता। वहकर्म्म इन्द्रियोंसे कर्म्मकरता है परन्तु उसमें आसक्त नहींहोता और बाहरदृष्टिसे आसक्तभासताहै परन्तु भीतर आसक्तनहींहोता।वह जो बाहर आसक्त दृष्टिनहीं आता परन्तु चित्त आसक्त है वह मग्नहो डूबताहै—जैसे शुद्ध मणि कीचड़में दृष्टिआती है तौभी उसको कुछ कलङ्क नहीं और जो बीचसे खोटी है वह यदि बाहरसे उज्ज्वल भी भासती तौभी सकलङ्कहै; तैसेही जो चित्तसे आसक्तहै वह आसक्तहै और जो चित्तभावसे आसक्तनहीं वह आसक्तनहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप, नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूप है। जिस पुरुषको अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञानहै उसको विस्मरण नहींहोता।हे रामजी! जिसके शरीरसे अहंभाव उठ गया है और इन्द्रियोंसे कर्म करता है तो वह करताभी नहीं करता और जिसके देह में अहंभाव है वहनहीं करता भी करताहै। जैसे किसीको चिर कालके उपरान्त बांधव मिला बिस्मरण नहीं होता तैसेही जिसने अपना स्वरूप जाना है उसको वहफिर बिस्मरण नहींहोता। हे रामजी! जिनको शुद्ध स्वरूपका सम्यक् ज्ञान होता है उनको भ्रान्तिरूप जगत् नहीं भासता—जैसे रस्सीमें भ्रमसे सर्प भासता है पर जब भ्रम निवृत्त हुआ तब ज्यों की त्यों रस्सी भासती है सर्प नहीं भासता। जैसे मरुस्थल में जलबुद्धि निवृत्त हुये फिर जलबुद्धि नहींहोती, तैसेही आत्माके जानेसे देहभाव नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी उतरती है सो फिर पहाड़पर नहीं चढ़ती और सुवर्णका खोट अग्निसे जला हुआ चाहे कीचड़में डालिये तौभी खोटा नहींहोता तैसेही जब हृदय की चिद्ग्रंथि टूटी तब गणोंके व्यवहारसे गांठनहीं पड़ती अर्थात् बंधमान नहीं होता। जैसे वृक्षसे टूटा फल फिरनहीं लगता तैसेही जिसका देहाभिमान टूटाहै वहफिर

नहींहोता और स्वरूपमें अभिमान नहींहोता । जैसे लोहेकेहथौड़ेसे परकाचूर्ण किया तो फिर वह नहीं फुरता । जिसपुरुषने अविद्याको जाना है वह फिर उसकी सङ्गति नहींकरता और जिस ब्राह्मणने चाण्डालोंकी सभाजानी फिर वह उनकीसङ्गति नहीं करता, तैसेहीजब आत्मबिचार से मनकोचूर्णकिया तब फिर वह नहीं फुरता । जिस पुरुषने अविद्यारूप जगत्को जाना है वहफिर जगत्के पदार्थोंमें आसक्तनहींहोता। हे रामजी ! विषजो मधुरजलसे मिलाहो तो जब तक जानानहीं तबतक उसको कोई पानकरता है और जब उसकोजाना तब फिर पान नहीं करता तैसेही जब तक इस संसारको ज्योंका त्यों नहींजाना तबतक इसके पदार्थोंकी इच्छाकरता है पर जब जाना कि, यह मायामात्र है तब इसकीइच्छा नहीं करता । हे रामजी ! सुन्दरस्त्री जो नाना प्रकारके वस्त्र और भूषणसहित दृष्टिआती हैं उनको ज्ञानवान् जानता है कि, ये असत्मांस, रुधिर, आदिककी पुतलियां बनी हैं और कुछ नहीं और जो उनकी इच्छा त्यागता है तो वह निवृत्त होजाता है । जैसे मूर्त्तिपर नील, पीत, श्यामरङ्ग लिखेहोते हैं तैसेही उसके वस्त्र और केश हैं । हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार होता है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती । अवस्तु में वस्तु बुद्धि तब होती है जब वस्तुका विस्मरणहोता है सो ज्ञानवान् को तो सदा स्वरूपका स्मरण है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि कैसे हो ? जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता । जैसे किसी पुरुषने किसीके पास गुड़ रक्खा हो और वह खाजावे तो उसको वह दण्डआदि दे सकेगा परन्तु उसकारस दूरनहीं करसक्ता, तैसेही जिसको आत्माका अनुभव हुआ है उसको कोई कुछनहीं कर सक्ता । हे राम जी ! जैसे कुलटा नारीका किसी पुरुषसे चित्त लगता है तो वह गृहका कार्य्य भी करती है परन्तु चित्त उसका सदा उसमेंही रहता है; तैसेही ज्ञानवान् क्रिया करता है परन्तु उसका चित्त सदा आत्मपद में रहता है और जैसे परव्यसनी नारीको उस का भर्त्ता दण्डभी करता है पर तौभी स्पर्शका सुख उसके हृदयसे दूर नहीं करसक्ता; तैसेही जिसको आत्म अनुभव हुआ है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता और जो देवता और दैत्य दूर नहीं करसक्ते तो औरोंकी क्या वार्त्ता है । जो बड़ेसुख अथवा दुःखका अनुभव प्रवाह आनपड़े तौभी उनको खण्डन नहीं करसक्ता; कर्त्ता हुआ भी वह अकर्त्ता हुआ है । जैसे परव्यसनी नारी पर पुरुषके संयोगसे दुःख पाती है परन्तु उसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है उसके सङ्कल्पसे अखण्ड अनुभव करती है उससे उसको दुःख नहीं भासता ; तैसेही जिसको आत्मसुख हुआ है उसको दुःखसुख और कुछ नहीं भासता । हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानसे जिसकी अविद्या नष्ट हुईहै वह दुःख नहीं देखता । जो उसके अङ्गकाटे जावें तौभी उसके दुःख नहीं होता

और शरीरके नष्टहुये वह नष्ट नहीं होता सुख दुःख उसके नष्ट होगये हैं और सदा वह आत्म पदमें निश्चय रखता है। संकटवान्भी वह दृष्ट आता है परन्तु उसको संकट कोई नहीं। वह वनमें रहे अथवा गृहमें रहे; व्यवहार करे अथवा समाधि करे; वह सदा ज्योंका त्यों रहता है और उसको खेदकष्ट किसी प्रकारसे नहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेनीरास्पदमौनविचारोनामैकोनसप्ततितमस्सर्गः ६९

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजाजनक राजव्यवहार करता था परन्तु आत्मपद में स्थितथा इससे उसको कलङ्क न हुआ और सदा विगतज्वरही रहा; तुम्हारा पितामह राजादिलीप भी सर्व आरम्भोंको करतारहा परन्तु रागद्वेष को न प्राप्तहुआ और जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीकाराज्य करतारहा; राजाअज नानाप्रकारके युद्ध और राजव्यवहार की पालना करताहुआ सदा जीवन्मुक्त स्वभाव में स्थित था; राजामान्धाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता था परन्तु सदा परमपदमें निश्चितरहा और कदाचित् मोहको न प्राप्त हुआ; राजावलि महात्यागी पातालमें राजव्यवहार को करताभी दृष्टआया परन्तु स्वरूपके ज्ञानसे सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकर विचरताथा; नभचर दैत्योंका राजा सदा नानायुद्ध आदिक क्रिया में रहा करता था और देवताओंके साथ सदाविरोध रखता था परन्तु हृदयमें उसके कुछ ताप न था, इन्द्रने युद्धमें वृत्रासुर दैत्यको मारा परन्तु सदा शीतल रहा कदाचित् क्षोभको न प्राप्त हुआ और दैत्योंका राजाप्रह्लाद पाताल में राज्य करतारहा परन्तु हृदय में उसे कुछ क्षोभ न आया। हेरामजी! संवरनामक दैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदयहुआ पररचनेमें बन्धमान नथा वह सदा सांवरी मायापरायण रहा और मायासे एकमायावी रूप होकर स्थितहुआ। हेरामजी! यहसंसार जो सांवरी मायारूपहै उसको सांवरीवत् त्यागकर अपने स्वरूपमेंसे स्थितरहो। विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारते और युद्ध करते रहतेहैं पर हृदयमें अलेप बुद्धिहै इससे सदासुखी जीवन्मुक्तहैं और मुसलनाम दैत्यने विष्णुसे युद्धमें शरीर छोड़ा परन्तु हृदयमें उसे देहसे कुछ, संबन्ध नथा इससे जीवन्मुक्त सुखीरहा और पीड़ाको न प्राप्तहुआ। हे रामजी! सर्व्व देवताओं का मुख अग्नि है सो यज्ञ लक्ष्मीको चिरकाल पर्य्यन्त भोगता है परन्तु ज्ञानवान् है इससे क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है; देवता सदा चन्द्रमाकी किरणोंसे अमृत पानकरते हैं परन्तु चन्द्रमा को कुछ क्षोभ नहीं होता और देवता गुरु बृहस्पतिने स्त्रीकेलिये चन्द्रमासे युद्ध किये और देवताओं के निमित्त नानाप्रकारके कर्म करते हैं परन्तु राग द्वेष को नहीं प्राप्त होते इससे जीवन्मुक्तहैं। हे रामजी! दैत्यों के गुरु शुक्रजी दैत्योंके निमित्त सदा यत्नकरते रहते हैं और लोभीकीनाईं अर्थ चिन्तवते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं। जो हृदयसे सदा शीतल रहता है वह कदाचित्खेद नहीं

पाता । पवन प्राणियों के अङ्गोंको चिरकाल फेरता है और चेष्टाकरता है पर खेदको नहीं प्राप्त होता इससे जीवन्मुक्त है; ब्रह्मा सदा लोकों को उत्पन्न करता है और प्रलय पर्य्यन्त इसी क्रियामें रहताहै परन्तु उसे स्वरूपका साक्षात्कारहै इससे जीवन्मुक्त है; विष्णुभगवान् युद्धादिक द्वन्द्वोंमें रहते हैं और जरा मृत्यु आदिक भावोंको प्राप्त होते हैं परन्तु सदा मुक्तस्वरूप हैं; सदाशिव त्रिनेत्र अर्द्धाङ्गधारी हैं परन्तु हृदय में संसक्तनहीं हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; गौरी मोतियों की माला कण्ठमें धारती हैं और त्रिनेत्रको सदा मालावत् कण्ठके रखती हैं परन्तु हृदयसे शीतल रहती हैं इससे जीवनमुक्त हैं, स्वामिकार्त्तिक दैत्योंके साथ युद्ध करते रहे परन्तु ज्ञानरूपी रत्नोंके समुद्रथे और हृदयसे शीतल थे सदा शिवके भृङ्गीगण अपना रक्तमांस माता को देतेथे परन्तु धैर्य्यमें थे इससे खेदको न प्राप्तहुये और नानाप्रकारकी क्रिया करते थे परन्तु जीवन्मुक्तथे इससे सदा सुखी थे नारदमुनि सदा मुक्तस्वभावहैं और सदा जगत्की क्रियाजाल में रहतेहैं परन्तु क्षोभनहीं पाते इससे जीवन्मुक्त हैं; जीवन्मुक्त और मनमौन जो विश्वामित्र हैं वे वेदोक्त कर्म्म करते फिरते रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; सूर्य्य भगवान् दिनको प्रकाश करते हैं और फिरते रहतेहैं परन्तु जीवन्मुक्त और सदासुखी रहतेहैं; यमसदा जीवोंको दण्ड करते रहते हैं और क्षोभमें रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्तहैं; इन्द्र कुबेरसे आदिलेकर त्रिलोकी में बहुत जीवन्मुक्तहैं जो व्यवहार में शीतलहैं । कोई मूढ़ शिलावत् होरहे हैं; कोई परमबोधवान् वनमें जा स्थित हुये हैं—जैसे भृगु, भारद्वाज और विश्वामित्र; बहुतेरे चिरकाल पर्यंत राजपालन करते रहतेहैं—जैसे जनक, मान्धाता आदि; कोई आकाश में बड़ी कांति धारकर बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदिक स्थित हुये हैं; कोई स्वर्ग में अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक हैं; पातालमें जीवन्मुक्त प्रह्लादादिकहुये हैं कई देवतारूप धारकर आकाश में स्थितहैं कोई मनुष्यरूप धारकर मनुष्यलोक में स्थितहैं और कोई तिर्यक् योनिमें स्थित हैं उनको सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्व में सर्वात्मारूपही भासता है कुछ भिन्न नहीं भासता । नानाप्रकारका व्यवहारहै सोभी अद्वैतसे किया है । हे रामजी ! दिव्य,विष्णु, धाता, सर्व ईश्वर और शिवआदिक सब आत्माकेही नामहैं । वस्तुरूप में जो अवस्तु है और अवस्तुमें जो वस्तुहै सो अवस्तु से वस्तु तब निकलताहै जब युक्तिहोती है और वस्तुसे अवस्तुभी युक्तिसेही दूरहोती है । जैसे अवस्तुरूप रेतसे सुवर्ण युक्तिसे निकलता है और वस्तुरूपी सोने से मैल युक्तिसे दूरहोताहै तैसेही अवस्तुरूप देहादिकों में वस्तुरूप आत्मा शास्त्रोंकी युक्तिसे पाता है और वस्तुरूप आत्मासे दृश्यरूप अवस्तुभी शास्त्रों की युक्तिसे दूरहोती है । हे रामजी ! जो पापोंसे भय करता है वह जब धर्ममें प्रवर्त्तताहै तब निर्भय होताहै और दुःखोंके भयसे जीव आत्मपदकी ओर

प्रवर्तताहै तव भावनाके वशसे असत्‌से सत्‌पाताहै। ध्यान और योगभी शून्यहै परंतु यत्नके वलसे उससे सत्‌पाताहै औरजो असत्‌है वह उदयहोकर सत्‌भासती है। जैसे वाजीगरकी वाजीसे शशेके सींग भासिआते हैं तैसेही आत्मामें असद्रूप जो जगत्‌है सो अज्ञानसे दृढ़ हो भासता है परन्तु कल्पके अन्तमें यहभी नष्ट होजाताहै। हे रामजी! यहजो सूर्य्य,चन्द्रमा,इन्द्रादिकहैं उनके नाम भिन्न रहेंगे और वड़े सुमेरु आदिक पर्व्वत,समुद्र और भावपदार्थ जो उत्तम,मध्यम,कनिष्ठ जोभासते हैं वे सव नाश होजावेंगे क्योंकि, सव मायामात्र हैं, कोई न रहेगा। ऐसे विचारकरके इनके भाव अभावमें हर्ष शोक मत करो और समता भावको प्राप्तहो। हे रामजी! जो असत्‌ है वह सत्‌ की नाईं भासता है और जो सत्‌ है सो असत्‌की नाईं भासता है, इससे यथार्थ विचार कर सत्‌रूप आत्मपद में स्थितहो रहो और असत्‌ रूप जगत्‌ की आस्था त्यागके समता भावको ग्रहण करो। इसलोकमें जो अविवेक मार्ग्ग में विचरता है वह मुक्त नहींहोता। इसप्रकार कोटिजीव संसार समुद्रमें डूवते हैं और जो विवेकमें प्रवर्तते हैं वे मुक्तहोते हैं। हे रामजी! जिसका मनक्षयहुआहै उसको मुक्तरूप जानो और जिसकामन क्षयनहींहुआ वह वन्धनमें है। इससे जिसको सर्वदुःखसे मुक्तिकी इच्छाहो सो आत्मविचारकरे उसीसे सव दुःख नाश होजावेंगे। हे रामजी! दुःखोंका मूलचित्त है और जवतक चित्तहै तवतक दुःखहै; जव चित्त नष्टहोजाताहै तव दुःख सव मिट जाते हैं। हे रामजी! जव आत्मज्ञान होताहै तव चित्तका अभाव होजाता है; दुःख सव मिटजाताहै और राग, इच्छा सव भय मिटकर केवल शान्तरूप होताहै। जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो निराग और निस्सन्देह होकर महावोधवान्‌ व्यवहारभी करतेरहे परन्तु सदा शीतल चित्तरहे। इससे तुमभी विवेकसे चित्तको लीन करो। हे रामजी! मुक्ति भी दो प्रकारकी है--एक जीवन्मुक्ति है और दूसरी विदेह मुक्ति। जो पुरुष सव पदार्थों में असंसक्त है और जिसकामन शांत हुआ है वह मुक्त कहाता है और जिसपुरुपका ज्ञानसे सव पदार्थों में स्नेह नष्ट हुआ है और व्यवहार करता दृष्ट आता है तौभी शीतलचित्त है वह जीवन्मुक्त कहाता है। जो पुरुष सर्वभाव अभाव पदार्थोंको त्यागकर केवल अद्वैत तत्त्वको प्राप्त हुआ है और जिसकी शरीर आदि कोई क्रिया दृष्ट नहीं आती वह विदेह मुक्त कहाता है जिसका स्नेह पदार्थोंसे दूर नहीं हुआ वह मुक्तिके अर्थभी यत्न करताहै तौभी वन्ध कहाताहै जो युक्तिपूर्वक यत्न करताहै उसको दुस्तरभी सुगम होजाताहै और जो युक्तिसे रहित यत्न करता है उसको गोपदभी समुद्र होजाता है। हे रामजी! जिन्होंने आत्मासे आत्म विचार किया है उसको विस्तृत जगत्‌ समुद्र गोपद होजाता है और अज्ञानी को गो पदभी दुस्तरहोजाताहै; उसे कोई इष्ट अनिष्ट अल्पभी प्राप्त होताहै तो उससे

डूब जाता है निकल नहीं सक्ता। उसको गोपदभी समुद्रहै। ज्ञानीको अत्यन्त विभूति और ऐश्वर्य मिले अथवा उसका अभाव होजावे तौभी वह उसमें रागद्वेष करके नहीं डूबता। हे रामजी! अपने प्रयत्न के बल सब होताहै; जो कोई प्रधान हुआ है वह प्रयत्नरूपी वृक्षके फल सेही हुआ है। आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है। इससे और उपाय त्यागकर आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्नकरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमुक्तामुक्तविचारोनामसप्ततितमस्सर्गः ७०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ जगत् जाल है वह सब आत्माब्रह्मका आभास रूप है; अज्ञानसे स्थिरताको प्राप्त हुआ है और विवेकसे शान्त होजाता है। ब्रह्मरूपी समुद्रमें जगत्‌रूपी आवृत जो फुरते हैं उनकी संख्या कोई नहीं करसक्ता। आत्मरूपी सूर्य्य के जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं। हे रामजी! असम्यक् दर्शनही जगत् की स्थितिका कारण है और सम्यक् दर्शनसे शान्त होजाता है—जैसे मरुस्थल में असम्यक् दर्शनसे जल भासता है और सम्यक् दृष्टिसे अभाव होजाताहै। हेरामजी! संसाररूपी अपार समुद्रसे युक्ति और आत्म अभ्यास विना तरना कठिन है। मोहरूपी जलसे वह पूर्ण है; मरणरूपी उसमें आवर्त्त हैं; पुण्यरूपी जग है, बड़वाग्नि इसके अंगों में नरक समान हैं; तृष्णारूपी भँवर हैं; इन्द्रियां और मनरूपी तंदुये और मच्छ हैं; क्रोधरूपी सर्प हैं; जीवरूपी नदियां हैं उसमें प्रवेश करती हैं; और जन्म मरणरूपी आवृतचक्र हैं उनसे जो तरजाता है वही पुरुष है। स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं उनके महाबलवान् नेत्र हैं जिनसे पहाड़ोंकोभी खींचसक्ती हैं और मोतियों की नाईं दांत इत्यादिक जो सुन्दर अङ्ग हैं ये महादुःखके देनेवाले बड़वाग्निकी नाईं हैं। जो इनसे तरजाताहै वही पुरुष है। हे रामजी! जो जहाज और मल्लाहोंके होते भी इनको नहीं तरते उनको धिक्कारहै। जहाज और मल्लाह कौनहैं सो सुनो। जिसमनुष्य के शरीरमें कुछ विचार सहित बुद्धिहै वही जहाजहै और सन्तरूपी मल्लाहहै। इनको पाकर जो संसार समुद्रसे नहीं तरते उनको धिक्कार है। ऐसे संसार समुद्रको ग्रहण कर जो तरगया है उसीको पुरुष कहते हैं। हे रामजी! जिस पुरुषने आत्मविचार में बुद्धिलगाई है वह तरजाता है अन्यथा कोई नहीं तरसक्ता। जिसको आत्म-अभ्यास दृढ़ हुआ है वह तरसक्ता है। हे रामजी! प्रथम ज्ञानवान् पुरुषोंके साथ विचार और बुद्धिसे संसार समुद्रको देखो। जब तुम इसको ज्यों का त्यों जानोगे तब विलास और क्रीड़ा करने योग्य होगे। हे रामजी! तुमतो भगवान् हो परन्तु बोधके विचारसे संसारसमुद्रसे तरजाओ। तुम तो जवानहो तुम्हारे पीछे और तुम्हारे स्वभावके विचारसे और भी संसार समुद्रसे तरजावेंगे। जो इस शुभमार्ग को त्यागकर विषय मार्गकी ओर जाते हैं वे संसार समुद्रमें डूबे हैं। हे रामजी! ये

जो विषय भोग हैं वे विषरूप हैं; जो इनको सेवेगा वह नष्ट होगा परन्तु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको यह; जैसे गारुड़ मन्त्र पढ़नेवालेको सर्प दुःख नहीं देसक्ता तैसेही दुःख दे नहीं सक्ते। जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है वह विभूतिमान् हैं बल, वीर्य और तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारसे चढ़आते हैं। जैसे वसन्तऋतुके आये से रस, फूल, फल, सब सुन्दर हो आते हैं। हे रामजी! जिसे ज्ञानकी धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई है वह पूर्ण अमृत तुल्य शीतल, शुद्ध और सम प्रकाशरूपहै। यह लक्ष्मी पाकर विदितवेद स्थित हो रहते हैं॥

इतिश्रीयोगवा०उपशमप्र०संसारसागरयोगोपदेशोनामएकसप्ततितमस्सर्गः ७१॥

रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! तत्त्ववेत्ताके लक्षण संक्षेपसे फिर कहिये और जिन को तत्त्वका चमत्कार हुआ है उनकी वृत्ति उदारवाणीसे कहिये। ऐसाकौन है जो आप के वचन सुनके तृप्तहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त के लक्षण मैंने तुमको बहुत प्रकारसे आगे कहे हैं पर अब फिरभी सुनो। हे महाबाहो! संसार को ज्ञानवान् सुषुप्तिकीनाईं जानता है और सब इषणा उसकी नष्ट होजाती हैं। वह सब जगत्को आत्मरूप देखता है और कैवल्य भावको प्राप्तहोता है। संसार उसे सुषुप्तिरूप होजाताहै और आत्मानन्दमें घूर्मरहताहै वह देताहै परन्तु अपने जानने से किसीको नहीं देता। और लोकदृष्टि में प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहणकरता है परन्तु अपनी दृष्टिसे कुछनहींलेता ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदारआत्माहै वह यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करताहै जैसे यन्त्रीकी पुतली अभिमानसे रहित चेष्टा करती है तैसेही ज्ञानवान् अभिमानसे रहित चेष्टा करताहै देखता, हँसता, लेता, देताहै परंतु हृदयमे सदा शीतल बुद्धि रहताहै। वह भविष्यत्का कुछ विचार नहीं करता; भूतका चिन्तन नहीं करता और वर्त्तमानमें स्थिति नहीं करता। सबकामों में वह अकर्त्ता है, संसारकी ओरसे सो रहा है और आत्माकी ओर जाग्रत् है। उसने हृदय से सबका त्यागकिया है; बाहर सब कार्य्योंको करता है और हृदयमें किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता। बाहर जैसे प्रकृत आचार प्राप्त होता है उसे अभिमानसे रहित करता है द्वेषकिसी में नहीं करता और सुख दुःख में पवनकी नाईं होता है। एवम् भ्रमको त्यागकर उदासीनकीनाईं सबकार्य्य करता है; न किसी की वांछा है और न किसी में खेदवान् है। बाहरसे सब कुछ करता दृष्टआता है पर हृदयसे सदा असङ्ग है। हे रामजी! वह भोक्ता में भोक्ता है; अभोक्ता में अभोक्ता है; मूर्खोंमें मूर्खवत् स्थित है; बालकोंमें बालकवत्; वृद्धोंमें वृद्धवत्; धैर्य्यवानों में धैर्य्यवान्; सुखमें सुखी; दुःखमें धैर्य्य-वान्है। वह सदा पुण्यकर्त्ता, बुद्धिमान्, प्रसन्न, मधुरवाणी संयुक्त और हृदयसे तृप्तहै उसकीदीनता निवृत्तहुई है, वह सर्व्वथा कोमलभाव चन्द्रमाकी नाईं शीतल और

पूर्ण है । शुभकर्म्म करनेमें उसे कुछ अर्थनहीं और अशुभ में कुछपापनहीं; ग्रहण में ग्रहणनहीं और त्यागमें त्यागनहीं, वह न बंधहै, न मुक्तहै और न उसेआकाशमें कार्य्य है, न पाताल में कार्य्य है, वह यथावस्तु और यथादृष्टि आत्माको देखताहै, उसको द्वैतभाव कुछ नहीं फुरता और न उसको बन्ध मुक्तके निमित्त कुछ कर्त्तव्यहै क्योंकि, सम्यक्ज्ञानसे उसके सबसन्देह जलगये । जैसे पेटीसे छूटा पक्षी आकाशमें उड़ता है तैसेही शङ्कासे रहित उसका चित्त आत्म आकाशको प्राप्तहुआ है । हे रामजी ! जिसकामन संसारभ्रमसे मुक्तहुआहै और जो समरस आत्माभावमें स्थितहै उसको इष्ट अनिष्टमें कुछ राग द्वेषनहीं होता; वह आकाशकी नाई सबमें समरहताहै । जैसे पलनेमें बालक अभिमानसे रहित अङ्गहिलाताहै तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानसे रहितहोतीहै और जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त होजाता है तैसेही आत्मानन्दमें ज्ञानी घूर्म होजाताहै और द्वैतकी सँभाल उसको कुछनहीं; हेयोपादेय बुद्धिसे रहित होता है । हे रामजी ! वह सबको सर्वप्रकार ग्रहण करता है और त्याग भी करता है परन्तु हृदयसे ग्रहण त्याग कुछनहीं करता । जैसे बालकोंको ग्रहण त्यागकी बुद्धि नहीं होती तैसेही ज्ञानीको नहीं होती और न उसको सबकार्यों में राग द्वेषही फुरता। वह जगत्के पदार्थोंको न सत् जानकर ग्रहण करता है और न असत् जानकर त्याग करता है; सबमें एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टमें सुख बुद्धि करता है और न अनिष्टमें द्वेष बुद्धि करता है । हे रामजी ! जो सूर्य्य शीतलहो जावें; चन्द्रमा उष्ण होजावें और अग्नि अधोको धावे तौभी ज्ञानीको कुछ आश्चर्य नहीं भासता । वह जानताहै कि, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है वह न किसी पर दयाकरता है और न निर्दयता करताहै; न लज्जा करताहै, न निलज्जहै; न दीनहोताहै, न उदार होता है; न सुखीहोता है, न दुःखी होता है; और उसे न हर्ष है, न उद्वेग है; वह सब बिकारों से रहित शुद्ध अपने आपमें स्थितहै । जैसे शरत्कालका आकाश निर्मलहोताहै तैसेही वहभी निर्मल भावमें स्थित है और जैसे आकाशमें अंकुर नहीं उदय होता तैसेही उसको राग द्वेष उदय नहीं होता । हे रामजी ! ऐसा पुरुष सुख दुःखको कैसे ग्रहण करे ? उसको जगत् जाल ऐसे भासता है जैसे जलमें तरङ्ग । ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वभाव में स्थितहो । हे रामजी ! जैसे स्वप्नमें एक निमेष में स्वप्नसृष्टि फुरआती है और एकही क्षण में नष्टहोजाती है, तैसेही जाग्रतमेंभी सृष्टि उपज आती है और लीन होजाती है । जो कुछ इच्छा, अनिच्छा, दुःख, सुख, शोक, मोह आदिक विकार हैं वे सब मनमें फुरते हैं; जहां मन होताहै वहां बिकारभी होता है । जैसे जहां समुद्रहोताहै वहां तरङ्गभी होताहै तैसेही जहां मनहोता है वहां बिकारभी होताहै । और जहां चित्तका अभावहै वहां बिकारोंका भी अभाव है । जबतक चित्त

फुरता है तबतक जगत्भ्रम होता है और जब विचाररूपी सूर्य्यके तेजसे मनरूपी बरफ़का पुतला गलजाताहै तब आनन्दहोताहै। तब सुखदुःखकीदशा शान्तहोजाती है और जब सुख दुःखका अभाव हुआ तब ग्रहणत्याग भी मिटजाताहै और इष्ट अनिष्ट वांछित नष्ट होजाते हैं। जब ये नष्टहोजाते हैं तब शुभ अशुभभी नहीं रहते और जब शुभ अशुभ न रहे तब रमणीय अरमणीय भी नष्टहोजाताहै और भोगों की इच्छाभी नष्टहोजातीहै। जब भोगोंकी इच्छा नष्ट होजाती है तब मनभी निराश पदमें लीनहोजाताहै। हे रामजी! जब मूलसे मन नष्टहुआ तब मनमें जो संसारके सङ्कल्प हैं वे कहांरहे? जैसे तिलों के जलेसे तेल नहींरहता तैसेही मन में सङ्कल्प विकल्प नहींरहते तब केवल शान्तआत्माही शेषरहताहै। जैसे मन्दराचलके क्षोभ मिटेसे क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही चित्त शान्तहोताहै। हे रामजी! इससे भाव में अभाव की भावना दृढ़करो और स्वरूप का अभ्यासकरो। जैसे शरत्काल का आकाश निर्म्मल होता है तैसेही कलना को त्यागकर महात्मा पुरुष निर्म्मल होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनंनामद्विसप्ततितमस्सर्गः ७२॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जैसे जलमें द्रवतासे चक्र आवृतहोतेहैं सो असत्ही सत्होकर भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे असत् जगत् सत्हो भासता है। और जैसे नेत्रोंके दुखनेसे आकाशमें तरवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमालाहो भासते हैं सो असत्ही सत्भासते हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे जगत् भासता है। जैसे बादलोंके चलनेसे चन्द्रमा चलता दृष्टि आता है तैसेही चित्तके फुरनेसे जगत् भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जिससे चित्त फुरता है और जिससे अफुर होता है वह प्रकार कहिये कि, उसका मैं उपाय करूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ़में शीतलता; तिलोंमें तेल, फूलोंमें सुगन्ध और अग्निमें उष्णता होती है तैसेही चित्तमें फुरना होता है। चित्त और फुरना दोनों एक अभेद वस्तु हैं; दोनोंमें जब एक नष्टहो तब दोनों नष्ट होजाते हैं। जैसे शीतलता और श्वेतता के नष्टहुये बरफ़ नष्ट होजाता है तैसेही एक के नाशहुये दोनों नाश होते हैं। इसलिये चित्त के नाशके दो क्रम हैं—योग और ज्ञान। चित्तकी वृत्तिके रोकने को योग कहते हैं और सम्यक् विचारनेका नाम ज्ञान है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वृत्तिका निरोध किस युक्तिसे होता है और प्राण, अपान पवन क्योंकर रोकेजाते हैं कि, जिस योगसे अनन्त सुख और सम्पदा प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस देह में जो नाड़ी हैं उनमें प्राण वायु फिरता है—जैसे पृथ्वी पर नदियों का जल फिरता है। वह प्राणवायु एकही है पर स्पन्दके बशसे नानाप्रकारकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है उससे अपान आ-

दिक संज्ञापाता है । योगीश्वरों की कल्पना हैं कि, जैसे पुष्पमें सुगन्ध और बरफ़में श्वेतता अभेद है और आधार आधेय एकरूप है तैसेही प्राण और चित्त अभेद रूप हैं । जब भीतर प्राणवायु फुरती है तब चित्तकला फुरकर जो सङ्कल्पके सम्मुख होती है उसीकानाम चित्त है। जैसे जल द्रवीभूत होताहै और उसमें लहर और चक्र फुरआते हैं तैसेही प्राणोंसे चित्त फुरआता है । चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायुही हैं जब प्राणवायुका निरोध होता है तब निश्चयकरकेमनभी शान्तहोताहै और मन के लीनहुये संसारभी लीन होजाता हैं-जैसे सूर्यके प्रकाश के अभावहुये रात्रिमें मनुष्यों का व्यवहार शांत होजाता है । रामजीने पूछा,हे भगवन्! यहजो सूर्य और चन्द्र निरन्तर आगमन करते हैं तो देहरूपी गृहमें प्राणवायुका रोकना किसप्रकार होता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सन्तजनोंके सङ्ग, सत्शास्त्रों के विचार और विषयके वैराग्यसे योगाभ्यास होता है। प्रथम जगत्में असत् बुद्धिकरनी चाहिये और वांछित जो अपना इष्टदेवहै उसका ध्यान करना चाहिये ।जब चिरकाल ध्यान होता है तब एकतत्त्वका अभ्यास होताहै उससे प्राणोंका स्पन्द रोकाजाताहै। रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेद चित्त होकर अभ्यास दृढ़करे और एक ध्यानसंयुक्त हो उससेभी प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है। ॐकारका उच्चार करनेसे ऊर्ध्व उसकी जो सूक्ष्म ध्वनिहोती हैतो प्रथम शब्द बड़ी ध्वनिसे होताहै और फिर सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है उसमें चित्तकी वृत्ति लगावे तो सुषुप्तिरूप अवस्था में वृत्तितद्रूप होजाती है तभी प्राणस्पन्द रोकाजाताहै । रेचक प्राणायामके अभ्यास से विस्तृत प्राणवायुसे शून्यभाव आकाश में जाय लीन होता है तबभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है । कुम्भकके अभ्यासके बलसे भी प्राणवायु रोकाजाता है । तालु मूलके साथयत्नसे जिह्वाको तालुघंटासे लगा खेचरी मुद्रासे वायु ऊर्ध्वरंध्र को जाती है और ऊर्ध्वरंध्रमें गयेसे भी प्राण वायुका स्पन्द रोकाजाताहै । नासिकाके अग्रमें जो द्वादश अंगुल पर्यंत अपानरूपी चन्द्रमा का निर्मल स्थान आकाशमें है उसको ज्योंकात्यों देखे तौभी प्राणस्पन्द रोकाजाताहै । तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरंध्रका अभ्यासहोतो उसके अन्तमें जब प्राणोंको लगावे तब उस संवितमें प्राणोंका फुरना नष्ट होजाता है। जो भ्रुवमध्य त्रिपुटी में प्रकाश को त्यागकर जहां चेतनकला रहती है वहांवृत्ति लगावे तोउससे भी प्राणकला रोकीजाती है । जो सर्ववासना को त्यागकर हृदय आकाशमें चेतन संवितका ध्यानकरे तौभी चिरकालके अभ्याससे प्राणस्पन्द रोकाजाता है । रामजीने पूछा,हे भगवन् ! जगत्के भूतोंका हृदय क्या कहाताहै जिस महाआदर्श में सर्वपदार्थ प्रतिबिम्बित होजाता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जगत् के भूतों के दो हृदय हैं-एक ग्रहणकरने योग्य है और दूसरा त्यागने योग्य। नाभिसे जो दश

अंगुल ऊर्ध्व है वह त्यागनेयोग्यहै परिच्छिन्न भावसे जो देहके एक स्थानमें स्थित है और उसमें जो संवितमात्र ज्ञान स्वरूप अनुभवसे प्रकाशताहै वह मनुष्यको ग्रहण करने योग्य है जो भीतर बाहर व्याप रहा है और वास्तवमें भीतर बाहरसे भी रहित है वही प्रधान हृदय है और सर्वपदार्थों का प्रतिबिम्ब धारनेवाला आदर्श है। सर्व सम्पदा का भण्डार और सब जीवों का संवित हृदय वही है; एक अङ्गका नाम हृदय नहीं। जैसे जलमें एक पुरातन पत्थर पड़ा हो तो वह जलनहीं होजाता तैसेही संवितमात्रके निकट संवितमात्र तो नहीं होता? यह जड़रूप है और आत्माचेतन आकाश है। इसप्रधान हृदयसे बलकरके संवितमात्रकी ओर चित्त लगावे तब प्राण स्पन्दभी रोका जावेगा। हे रामजी! यह प्राणोंका रोकना मैंने तुमसे कहा है और भी शास्त्रोंमें अनेक प्रकारसे कहा है पर जिस जिसप्रकार गुरु के मुखसे सुने उसी प्रकार अभ्यास करे तब प्राणों का निरोध होता है; गुरुके उपदेशसे अन्यथा सिद्ध नहीं होता। जिसको अभ्यास करके निरोध सिद्ध हुआ है वह कल्याण मूर्त्तिहै और कोई कल्याण मूर्त्ति नहीं होता। हे रामजी! अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़ता से वासनाक्षय होता है अर्थात् वासना रोकी जाती है। जब दृढ़ अभ्यासकरे तब चित्तअचित्त होजाता है। हे रामजी! भृकुटीके दश अंगुल पर्यन्त जो वायु जाता है उसका बारम्बार जब अभ्यास करते तब वह क्षीणहोजाताहै और खेचरीमुद्रा अर्थात् तालुसे जिह्वा लगाकरके जो अभ्यास करे तौभी प्राण रोकेजाते हैं। इसके अभ्याससे चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है और परम उपशमको प्राप्त होताहै। जो यह अभ्यास करताहै वह पुरुष आत्मारामीहोता है, उसके सबशोक दूर होजातेहैं और हृदयमें आनन्दकी प्राप्ति होती है। इससे तुमभी अभ्यासकरो। जब प्राणस्पन्द मिट जाता है तब चित्तभी स्थित होजाताहै; उसकेपीछे जोपद है सोही निर्वाण रूप है। हे रामजी! जब प्राणस्पंद मिट जाते हैं तब चित्तभी स्थित हो जाताहै और जब चित्त स्थितहुआ तब वासना नष्ट होजाती है; जब वासना नष्ट होजाती है तब मोक्षकी प्राप्ति होती है। जबतक चित्त वासनासे लपेटा है तबतक जन्म मरण देखता है और जब मन वासनासे रहित होताहै तब मोक्ष होता है। हे रामजी! प्राणवायुको रोककर वासनासे रहितहो जहां तुम्हारी इच्छाहो वहां विचरो तो तुमको बन्धन न होगा। जब प्राण फुरता है तब मन उदय होता है और जब मन उदयहुआ तब संसारभ्रम होताहै। जब मन क्षीण होताहै तब संसारभ्रम नष्ट होजाताहै। हे रामजी! जब मन से संसारकी वासना मिटजाती है तब अशब्दपद प्राप्तहोता है। जिससे यह सर्वहै और यह सर्वहै, जिससे न सर्व है और जो न सर्व है; जो न सर्वमें है और जिसमें न यहसर्व है ऐसा जो निर्गुण तत्त्वहै सो सर्व कलना

के त्यागेसे प्राप्त होताहै उसकी उपमा किसकी दीजे । आत्मा अविनाशी, निर्विकल्प और निर्गुण है; यह जगत् नाशरूपी संकल्पसे रचित गुणरूप है; उसका किस पदार्थ से दृष्टान्त दीजे ? अर्थात् दूसरा कुछ नहीं; जो कुछ स्वाद है उनको स्वाद कर्त्ता वही है और जितने प्रकाश हैं उनको प्रकाशकर्त्ता वही है; सर्व कलनाका कलनारूप वही है और जितने पदार्थ हैं उनसबका अधिष्ठानरूप वही है।वह चित्त और आवरणके दूर हुये प्राप्त होता है और सब पदार्थोंकी सीमावही है । ऐसा जो आत्मरूप शीतलचन्द्रमा है जब उस में बुद्धिमान् स्थित होताहै तब जीवन्मुक्त कहाताहै और उसके सर्व्वइच्छा और आश्चर्य नष्टहोजाताहै अहंत्वं आदिक कल्पना मिटजाती हैं सर्व व्यवहार विस्मरण होजाता है । ऐसाजो मुक्तमनहै सो पुरुषोत्तम होता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तज्ञानवन्धोनामत्रिसप्ततितमस्सर्गः७३॥

रामजीने पूछा, हे प्रभो ! योगीकी युक्ति तो आपनेकही जिससे चित्तउपशमहोता है अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपाकरके कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह तो निश्चय है कि, आत्मा आनन्दरूप, आदि-अन्त से रहित, प्रकाशरूप, सर्व्व, परमात्मा तत्त्व है इसी निश्चय को बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं । यह जो घट पटादिक अनेक पदार्थशक्ति हैं वह सब परमानन्दरूप आत्मा है उस से भिन्न नहीं । यह सम्यक् ज्ञानकी दृष्टि है । और सर्व्वात्मा नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप, सदा अपने आप में स्थितहै ऐसा निश्चय सम्यक् ज्ञान है और जो इससे भिन्नहो सो असम्यक् ज्ञान है । हे रामजी ! सम्यक्दर्शी को मोक्ष है और असम्यक्दर्शी को बंध है क्योंकि; उसको आत्मा जगत्रूप भासता है और सम्यक्दर्शी को केवल आत्मा भासता है । जैसे रस्सी में असम्यक्दर्शीको सर्प भासता है और सम्यक्दर्शीको रस्सीही भासती है । सर्व्व संवेदन और संकल्प से रहित शुद्ध सम्वित् परमात्मा है उसको जो जानता है वही परमात्माके जानने वाला बुद्धीश्वर है । इस से भिन्न अविद्या है । हे रामजी ! आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें द्वैत कलना कोईनहीं । ऐसा जो यथार्थदर्शी है वही सम्यक्दर्शी है । सर्व्वआत्मा पूर्ण है उसमें भाव, अभाव, बन्ध, मोक्ष कोईनहीं और न एक है न द्वैत है; ब्रह्महीं अपने आपमें स्थित है जो सब चिदाकाशहै तो बंध किसेकहिये और मोक्षकौन हो? ऐसा जिनको ज्ञान है उनको काष्ठपाषाण ब्रह्मासे च्यूंटी पर्यन्त सब सम भासता है अल्पमात्र भी भेदनहीं भासता तो वह कल्पना के सन्मुख कैसे होवे ? हे रामजी ! वस्तुके आदि अन्त अन्वय व्यतिरेककरके आत्मा सिद्धहोताहै अर्थात् पदार्थ है सो है तौभी आत्मसत्तासे सिद्ध होता है औरजो पदार्थका अभाव होजाता है तौभी

आत्मसत्ता शेष रहती है। तुम उसीके परायणहोरहो, वही अनुभव सत्ता जगत्रूप होकर भासती है और जरा–मरण आदिक जो नानाप्रकारके विकार वस्तुरूप भासते हैं वह वस्तु अपने आपमेंही फुरती है। जैसे जलमें द्रवतासे नाना प्रकारके तरङ्ग बुद्बुदे होते हैं सो वे जलरूपहैं। कुछभिन्न नहीं;तैसेही चित्तके फुरनेसे जो नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। आत्मतत्त्वही अपने आप में स्थित है; जब उसमें स्थित होता है तब फिर दीननहीं होता। जो पुरुष दृढ़ विचारवान् है वह भोगों से चलायमान नहींहोता–जैसे मन्द पवनसे मेरुपर्व्वत चलायमान नहींहोता–और जो अज्ञानी है और विचारसे रहितमूढ़ है उसको भोगग्रास करलेते हैं–जैसे जलसे रहित मछलीको बगुला खालेता है। जिसको सर्व्व आत्माही भासता है वह सम्यक्-दर्शी पुरुष कहाता है–यहीमुक्त रूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसम्यक्ज्ञानवर्णनंनामचतुस्सप्ततितमस्सर्गः ७४॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! विवेकी पुरुष जो भोगोंके निकट आ प्राप्त होता है तौभी उनकी इच्छानहीं करता क्योंकि; उसको उनमें अर्थबुद्धि नहीं–जैसे चित्रकी लिखी हुई सुन्दर कमलिनीके निकट भँवरा आन प्राप्तहोता है तौभी उसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! सुख दुःखकी प्राप्ति और निवृत्तिमें इच्छा तवतक होती है जबतक देहाभिमान होताहै;जब देहाभिमान निवृत्तहुआ तबकुछ इच्छा नहीं होती। हे रामजी! ममता करके दुःख होता है; जबरूप को नेत्र देखता है–तब उसको इष्ट मानकर प्रसन्न होता है और अनिष्ट मानकर द्वेष करता है जैसे बैल भारवाहक चेष्टा करता है उसको लाभ और हानि कुछ नहीं और जिसको उसमें ममत्व होता है वह लाभ-हानिका हर्ष-शोक करताहै; तैसेही ममत्वसे जीव इन्द्रियोंके विषयोंमें हर्ष शोक-वान् होता है। जैसे गर्दभ कीचड़में डूबे और राजा शोककरे कि, मेरे नगरका गर्दभ डूबा है; तैसेही ममत्व करके इन्द्रियोंके विषयों में जीव दुःखपाता है; नहीं तो गर्दभ कीचड़ में डूबे तो राजाका क्यानष्ट होताहै। हेरामजी! यह इन्द्रियां तो अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं और इनमें जीव तपायमान होता है सोही आश्चर्य है। जिन विषयोंकी जीव चेष्टा और इच्छा करते हैं सो क्षणमें नष्ट होजाते हैं। हेरामजी! जो मार्गमें किसीके साथ स्नेह होजाता है तो ममत्व और प्यारसे दुःख होता है। जो देहमें ममत्व करेगा उसको दुःख क्यों न होगा? चाहे कैसाही बुद्धिमान्हो वा शूरमाहो तौभी संगसे बंधवान् होताही है अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंका अहंभाव ग्रहणकरेगा तो उनके नाशहोनेसे वहभी नाशहोवेगा। जिन नेत्रोंका विषयरूप है सो नेत्रसाक्षी होकर रूपको ग्रहण करता है और जीव ऐसा मूर्ख है कि, औरोंके धर्म आपमें मान लेता है और उनमें तपायमान होता है। जैसे भ्रमदृष्टिसे आकाशमें मोर पुच्छवत्

तरवरे और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मूर्खतासे जीव इन्द्रियोंके धर्म अपने में मानलेता है। जैसे इन्द्रियोंका साक्षी होकर जीव विषयों को ग्रहणकरताहै तैसेही चित्तभी अभिमानसे रहित साक्षीहोकर ग्रहणकरे तो रागद्वेषसे तपायमान नहो जैसे जलमें चक्र तरङ्ग फुरते दृष्टिआतेहैं तैसेही इन्द्रियोंकेरूपमें और इन्द्रियां फुरआती हैं; आधार आधेयसे इनका संबन्धहोताहै और चित्त इनके साथ मिलकर व्याकुल होता है रूप,इन्द्रिय और मन इनका परस्पर असंग भाव है जैसेमुख, दर्पण और प्रतिविम्ब भिन्न२ असंग हैं तैसेही यहभी भिन्न २ असंग हैं परन्तु अज्ञानसे मिले हुये भासते हैं। जैसे लाखसे सोने,रूपे और चीनीका संयोग होता है तैसेही अज्ञान-से रूप, अवलोक और मन संस्कार का संयोग होता है। जब ज्ञानअग्निसे अज्ञान रूपी लाख जलजावे तब परस्पर सब भिन्न२ होजाते हैं और फिर किसीका दुःख सुखकिसीको नहीं लगता। जैसे दो लकड़ीका संयोगलाखसे होता है तैसेही अज्ञानसे विषय इन्द्रियों और मनका संयोग होता है और ज्ञानरूपी अग्निसे जब बिछुरजाते हैं तब फिर नहीं मिलते। जैसे मालाके भिन्न २ दाने तागेमें इकट्ठेहोते हैं तैसेही देह और इन्द्रियों में अज्ञानसे मेलहोते हैं और जब विचार करके तागा टूटपड़े तब भिन्न २ होजावे फिर न मिले। हे रामजी ! जिन पुरुषोंको आत्माविचारहुआ है वे ऐसे विचारते हैं कि हमको दुःख देने वाला चित्त था और चित्तके नष्टहुये आनन्द हुआ है। जैसे मन्दिरमें दुःख देने वाला पिशाच रहता है तब दुःखहोता है, नहीं तो मन्दिर दुःखनहीं देता, पिशाचही दुःखदेताहै; तैसेही शरीररूपी मन्दिर में दुःख देनेवाला चित्तही है। हे चित्त! तूने मिथ्या मुझको दुःखदियाथा। अब मैंने आपको जाना है। तू आदिभी तुच्छ है, अन्तभी तुच्छहै और वर्त्तमानमेंभी मिथ्या जीवों को दुःख देताहै। जैसे मिथ्या परछाहीं बालकको बैताल होकर दुःख देती है—बड़ा आश्चर्य्यहै। हे चित्त ! तू तबतक दुःखदेताहै जबतक आत्मस्वरूप को नहीं जाना। जब आत्मस्वरूपका ज्ञानहोताहै तब तू कहीं दृष्टि नहीं आता। तू तो मायामात्र है। दूर अथवा जा मैं अब तुझसे मोहित नहीं होता। तू तो मूर्ख जड़ और मृतक है और तेरा आकार अविचारसे सिद्धहै। अब मैंने पूर्व्वका स्वरूप पाया है; तू तत्त्व नहीं, भ्रान्तिमात्र है। जो मूढ़ है वह तुझसे मोहित होताहै, विचारवान् मोहित नहीं होता। जैसे दीपक से अन्धकार दृष्टि नहींआता, तैसेही ज्ञानसे तू दृष्टि नहींआता। हे मूर्खचित्त ! तू बहुतकाल इस देहरूपी गृह में रहाहै और तू बैतालरूप है। जैसे अपवित्रता और श्मशान आदिक स्थानों में बैताल रहताहै तैसेही सत्सङ्गसे रहित देहरूपी गृह श्मशानकेसमान सदा अपवित्रहै वहां तेरे रहनेका स्थान है। जहां सन्तों का निवास होताहै वहां तुझसरीखे ठौर नहींपाते सो अब मेरे देहरूपी गृह में सत्,

बिचार सन्तोषादिक सन्तजन आन स्थित हुये हैं तेरे बसनेका ठौरनहीं। हे चित्त पिशाच! तू पूर्व्वरूपी तृष्णा पिशाचिनी और काम क्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकर चिरपर्य्यन्त बिचरा है अब विवेकरूपी मन्त्रसे मैंने तुझको निकाला है तब कल्याण हुआ। हे चित्त पिशाचरूप! तू प्रमादरूपी मद्यपानकर मत्त हुआ था और चिरपर्यन्त नृत्यकरता था। अब मैंने विवेकरूपी मन्त्रसे तुझको निकालाहै तब देहरूपी कन्दरा शुद्ध हुई है और शुद्धभाव पुरुषोंने निवास कियाहै। हे चित्त! मैंने तुझको विवेकरूपी मित्रद्वारा बश किया है। अब तेरा क्या पराक्रम है? तू तबतक दुःख देताथा जबतक बिचाररूपी मित्र न पायाथा। अब तेरा बलकुछ नहीं चलता। अब मैं महाकेवल भावमें स्थितहूं। आगे भी मैं तुझको जगाताथा, आपसेही तू सबरूप है। जैसे कच्चे मन्त्रवाला सिंहको जगाताहै और आपकष्टपाता है तैसेही मैं तुझको जगाकर कष्ट पाता था। अब मैंने आत्मबिचारसे परिपक्वमन्त्रसे तुझे बश कियाहै तब शांतिमान् हुआहूं। अब ममता और मान मेरे कुछ नहीं रहे, मोह, अहंकार सबनष्ट होगये हैं और इनकाकलत्रभीनष्ट होगयाहै। मैं निर्मल और चेतन आत्माहूं। मेरा मुझको नमस्कार है। न मेरे में कोई आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्त्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, और न देहहै; ऐसा मेरा निर्गुणरूप आत्मा है। मेरा मुझको नमस्कार है। न कोई आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है; किसी शब्दका वहाँ प्रवेश नहीं ऐसानिराश है। प्रकाशरूप, निर्मल आत्मा मैं अपने आप में स्थितहूं। ऐसा जो मैं आत्माहूं मेरा मुझको नमस्कार है। मैं बिकार नहींहूं; मैं तो नित्यहूं, निराशहूं, सर्व्वकार्य्यों में अनुस्युतहूं, और अंशांशीभावसे रहितहूं। ऐसा सर्व्वात्मा जो मैंहूं सो मेरा मुझको नमस्कारहै। मैं सम, सर्व्वगत, सूक्ष्म और अपने स्वभावमें स्थितहूं और पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं और मैंहीं सर्व पदार्थ होकर भासताहूं। ऐसा मैं सर्वात्माहूं। अब मैं सर्वभावको प्राप्त हुआहूं और मन भाव मुझसे दूर हुआ है। मेरे प्रकाशसे विश्वभासताहै; मैं अजर, अमर, और अनन्तहूं और गुणातीत अद्वैतहूं। मनन जिससे दूरहुआ है ऐसा जो मैं सुन्दररूपहूं जिस में विश्व प्रकट है और स्वरूपसे अबिनाशीहूं उस अनन्त अजर अमर गुणातीत ईश्वररूप को नमस्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तउपशमनामपञ्चसप्ततितमस्सर्ग्गः ७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार विचारकर तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक् कर जानते हैं। तुमभी आत्मविचार का आश्रयकरके आत्मपद के आश्रय होरहो। यह जगत् सब आत्मरूप है; ऐसे जानकर चित्तसे जगत्की सत्यताको त्यागकरो। जब ऐसे बिचार करे तब चित्त कहां है? बड़ाआश्चर्य्य है कि जो चित्त बस्तुरूप दिखाई

देताथा सो अविदित मायामात्र अस्तरूपथा। जैसे आकाश के फूल कहनेमात्र हैं तैसेही चित्त कहनेमात्र है और अविचारसे दिखाई देता है। विचारवान् को चित्त असत् भासता है क्योंकि, अविचारते सिद्ध है। जैसे नौकापर बैठे बालकको तट के वृक्ष चलते भासते हैं पर बुद्धिमान्को चलने में सद्भाव नहींहोता; तैसेहीमूर्खको चित्त-सत्ता भासती है और विचारवान्का चित्त नष्ट होजाताहै। जब मूर्खतारूपभ्रम शांत होताहै तब चित्त कुछ नहीं पाया जाता। जैसे बालक चक्रपरचढ़ाहुआफिरताहै तो पर्व्वत आदिक पदार्थ उसको भ्रमसे भासते हैं और जब चक्रठहरजाताहै तब चक्र आदि पदार्थ अचलभासतेहैं; तैसेही चित्तके ठहरनेसे द्वैत कुछ नहींभासता। आगे मुझको द्वैत भासताथा इससे चित्तके फुरनेसे नानाप्रकारकी तृष्णाइच्छा उठती थीं, अब चित्तकेनष्टहुये इन पदार्थोंकी भावनानष्ट हुई हैं और सबसंशय और शोकमेरे नष्ट होगयेहैं। अबमैं विगतज्वर स्थितहूं। जैसे मैं स्थितहूं,तैसेहूं! इषणाकोई नहीं। जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे? जैसे प्रकाश के नष्ट हुये वर्णज्ञान नहीं रहता तैसेही चित्तके नाशहुये इच्छाआदिक नहीं रहते। अब चित्तनष्टहुआ,तृष्णानष्ट होगई और मोहकापिंजड़ा टूटपड़ा अब मैं निरहंकार बोधवान्हूं; सबजगत् शान्तरूपआत्माहै और नानात्वकुछ नहीं। मैं निराभास, आ-दि–अन्तसेरहित आनन्दपदको प्राप्त हुआहूं। मेरा सर्वगत सूक्ष्मआत्मतत्त्व अपना आप है और उसमें मैं स्थितहूं। इन विचारोंसे अबक्या प्रयोजनहै? जबतक आप को मैं देह जानता था तबतक ये विचार मूर्ख अवस्था में थे; अब मैं असित, निरा-कार और केवलपरमानन्द सच्चिदानन्दको प्राप्तहुआ। आगे मैं चित्तरूपी बैतालको आपही जगाताथा और आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्रसे मैंने इस को नष्ट किया है और निर्णयसे अपने स्वरूपको प्राप्त हुआहूं। मैं शान्तात्मा अपने आप में स्थितहूं। हे रामजी! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है वह निर्द्वंद्व रागद्वेष से रहित होकर स्थित होता है और प्रकृतकर्म करता है और परमानन्दसे रहित आनन्दकरके पूर्ण होताहै जैसे शरत्कालकी रात्रिको पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होताहै तैसेही प्रकृत आचार कार्य्यकर्त्ता ज्ञानवान्का हृदय शान्त पूर्णआत्माहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तशान्तिप्रतिपादनंनामषट्सप्ततितमस्सर्गः ७६

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विचार वेदविदोंने कहा है। पूर्व मुझसे ब्रह्माजी ने यह विचार विंध्याचल पर्वतमें कहा था। इसी विचार से वह परमपद में स्थित हुआहै। इसी दृष्टिका आश्रय करके आत्मविचार होकर तमरूपी संसार समुद्र से तरजावो। हे रामजी! इसपर एक और परमदृष्टिसुनो वह दृष्टि परमपदके प्राप्त करनेवाली है। जिसप्रकार वीतव मुनीश्वर विचारकरके निःशङ्क स्थितहुआ है सो

सुनो महातेजवान् वीतव मुनीश्वरने संसार आधिव्याधिसे वैराग्यकिया और नागादिहोके पर्व्वतोंकी कन्दराओं में बिचरनेलगा । जैसे सूर्य्य सुमेरु पर्व्वतके चौफेर फिरता है तैसेही वह बिचरनेलगा और संसारकी क्रियाको दुःखरूप विचारता था कि,यह बड़ेभ्रम देनेवाली । ऐसेजानकर वह उद्वेगवानहुआ और निर्विकल्प समाधि की इच्छाकर अपने व्यवहार को त्यागदिया और अपनी गौरकुटी त्यागकर और केलेके पत्रोंकी बनाकर बैठा । जैसे भँवरा कमलको त्यागकर नीलकमलपर जा बैठता है तैसेही गौरकुटीको त्यागकर वह श्यामकुटीमें जाबैठा । नीचे उसने कुशबिछाया, उसपर मृगछाला बिछाया और उसपर पद्मासन करबैठा और जैसे मेघजलको त्यागकर शुद्धमौन स्थितहोताहै तैसेही और क्रियाको त्यागकर शान्तिके निमित्त शांतरूप स्थितहुआ। हाथोंको तलेकर मुखऊपरकर और ग्रीवाको सूधाकरके स्थितहुआ और इन्द्रियोंकी वृत्तिकोरोक फिर मनकी वृत्तिकोभीरोका । जैसे सुमेरुकी कन्दरा में सूर्य्यका प्रकाशबाहरसे मिटजाताहै तैसेही इन्द्रियोंकी रोकीवृत्ति बाहरसेभी मिटजाती है। और हृदयसे भी विषयोंकी चिन्तनाका योग उसने त्यागकिया । इसप्रकार वह क्रमकरके स्थितहुआ। जब मन निकलजावे तब वह कहै कि, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचञ्चलहै कि,जो मैं स्थित करताहूं तो फिर निकलजाताहै। जैसे सूखापत्ता तरङ्गमें पड़ानहीं ठहरता तैसेही मन एकक्षणभी नहीं ठहरता सर्वदा इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर धाताहै। जैसे गेंदको ज्यों२ ताड़ना करते हैं त्यों२ उछलताहै तैसेही इसमूर्ख मनको जिस२ओरसे खैंचताहूं उसीओर फिर धावताहै और उन्मत्त हाथीकीनाई भूमताहै; जो घटकी ओरसे खैंचताहूं तो रसकी ओर निकलजाता है और जो रसकी ओरसे खैंचताहूं तो गन्धकी ओर धावता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे वानर कभी किसी डालपर कभी किसी डालपर जाबैठताहै इसीप्रकार मूर्खमनभी शब्द,स्पर्श,रूप, रस,गन्धकी ओर धावता है स्थिर नहीं होता। इसके ग्रहणकरनेके पंचस्थानहैं जिस मार्गोंसे विषयोंको ग्रहणकरता है सो पंचज्ञान इन्द्रियां हैं । अरेमूर्खमन । तू किन निमित्त विषयोंकी ओर धावताहै यह तो आपजड़ और असत्रूप भ्रान्तिमात्रहै तू इनसे शान्तिको कैसे पावेगा ? इनमें चपलतासे इच्छाकरना अनर्थका कारण है। ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहण करेगा त्यों २ दुःखके समूहको प्राप्तहोगा । ये विषय जड़ और असत्रूप हैं और तूभी जड़ है जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है तैसेही ये भी असत्रूप हैं । हे मन ? ये तो सब असार रूप हैं तूभी इन्द्रियों सहित जड़ रूप है; तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है ? सबकाकर्त्ता चिदानन्द आत्माभगवान् सदा साक्षीभूतहै तैसेही आत्माभी साक्षीभूतहै तू क्योंवृथा तपायमान होताहै ? जैसेसुर्य सबकी क्रियाओंको कराता साक्षीभूतहै तैसेही आत्मा साक्षीभूतहै और सब

जगत् भ्रान्तिमात्रहै। जैसे अज्ञानसे रस्सीमें सर्प भासताहै तैसेही अज्ञानसे आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश और पातालका सम्बन्ध कुछ नहींहोता, ब्राह्मण और चाण्डालका संयोग नहींहोता और सूर्य्य और तमकासम्बन्ध नहींहोता;तैसेही आत्माचित्त और इन्द्रियोंका सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सत्तामात्र है और येजड़ औरअसत्रूपहैं इनकासम्बन्ध कैसेहो? आत्मासबसेन्यारा साक्षीभूतहै। जैसे सूर्य्य सबजनोंसे न्याराहताहै तैसेही आत्मा सबसेन्यारा साक्षीभूतहै। हेचित्त! तूतो मूर्ख है बिषयरूपी चबेने में रह सर्वओरसे भक्षणकरता भी कदाचित् तृप्तनहीं होता और विचार कि, मिथ्या कूकरकीनाईं चेष्टाकरताहै। तेरेसाथ हमको कुछ प्रयोजननहीं। हे मूर्ख! तूतो मिथ्या अहं अहं करताहै और तेरीवासना अत्यन्त असत्रूपहै। और जिन पदार्थोंकी तू वासनाकरताहै वे भी असत्रूप हैं। तेरा और आत्माका सम्बन्ध कैसेहो? आत्मा चेतनरूपहै और तू मिथ्याजड़रूपहै? यह मैंनेजानाहै कि,जन्ममरण आदिक बिकार और जीवत्व भावको तूने मुझको प्राप्तकियाहै। मैंतो केवल चेतन परब्रह्महूं मिथ्या अहंकार करके जीवत्व भावको प्राप्तहुआ है? और देहमात्र आप को जानताहै। मैंतो संवित्मात्र नित्यशुद्ध आदि अन्तसे रहित परमानन्द चिदाकाश अनन्त आत्माहूं। अबमैं स्वरूप में आपजगा और सद्भाव मुझको कुछ नहीं दृष्ट आता। हे मूर्खमन! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानकर धावताहै वे अबिचारसे प्रथमतो अमृतकी नाईं भासते हैं और पीछे विषकीनाईं होजाते हैं और वियोगसे जलाते हैं। आपको तू कर्त्ताभोक्ताभी मिथ्या मानताहै;तू कर्त्ताभोक्तानहीं और इन्द्रियां कर्त्ता भोक्तानहीं क्योंकि; जड़ हैं। जो तुमजड़ हुये तो तुम्हारेसाथ मित्रभाव कैसेहो और जो तू जड़ और असत्रूप है तो कर्त्ता भोक्ता कैसे हो! और जो तू चेतनऔर सत्रूप है तोभी तेरे में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं होसक्ता क्योंकि, तू मिथ्या है और मैं प्रत्यक्ष चेतनहूं। तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्याअपने में स्थापन करताहै; तू मिथ्या है। जब मैं तुझको सिद्ध करताहूं तब तू होता है तू निश्चय करके जड़ है,तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे हो? जैसे पत्थरकी शिला नृत्यनहीं करसक्ती तैसेही तुझको कर्तृत्वकी सामर्थ्य नहीं। तेरेमें जो कर्तृत्व है सो मेरी शक्ति है–जैसेहसुआ घास,तृणआदिकको काटता है सो केवल आपसेनहीं काटता पुरुषकी शक्तिसे काटता है और खड्गमें जो हननक्रिया होती है वहभी पुरुषकी शक्ति है; तैसेही तुम्हारेमें कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिसे है! जैसेपात्रसे जल पान करते हैं तो पात्र नहींकरता पान पुरुषही करता है और पात्रकरके पानकरता है तैसेही तुम्हारेमेंकर्तृत्व भोक्तृत्व मेरीशक्ति करती है और मेरीसत्तापाकर तुमअपनी चेष्टामें बिचरतेहो। जैसे सूर्यका प्रकाश पाकरलोग अपनी२ चेष्टाकरते हैं तैसेही मेरीशक्तिपाकर तुम्हारी चेष्टाहोती है। अज्ञान करके तुमजड़जी-

वसे रहतेहो और ज्ञानकरके लीन होजातेहो। जैसे सूर्यके तेजसे बर्फका पुतलागल जाता है। इससे, हे चित्त! अब मैंनेनिश्चयकियाहै कि, तू मृतकरूप और मूढ़है। परमार्थसे न तू है और न इन्द्रियां हैं। जैसे इन्द्रजालकी वाजीकेपदार्थ भासतेहैं सो सब मिथ्याहैं। मैं केवल विज्ञानस्वरूप अपने आपमें स्थित निरामय, अजर,अमर, नित्य, शुद्ध, बोध, परमानन्दस्वरूपहूं और मैंही नानारूप होकर भासताहूं परंतु कदाचित् द्वैत भावको नहीं प्राप्त होता सदा अपने आपमें स्थितहूं। जैसे जलमें तरङ्ग बुद्बुदे दृष्टि आते हैं सो जलरूपहैं तैसेही सर्व पदार्थ मेरेमें भासते हैं सो मुझसे भिन्न नहीं। हे चित्त! तूभी चिन्मात्र भावको प्राप्तहो;जब तू चिन्मात्र भावको प्राप्तहोगा तब तेराभिन्न भाव कुछ न रहेगा और शोकसे रहित होगा। आत्मतत्त्व सर्व भावमें स्थित और सर्वरूप है; जब तू उसको प्राप्तहोगा तब सब कुछ तुझको प्राप्तहोगा। न कोई देह है और न जगत् है सर्व ब्रह्मही है; ब्रह्मही ऐसे भासता है;वास्तव में अहं त्वं कल्पना कोईनहीं। हे चित्त! आत्मा चेतनरूप और सर्वगत है, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं तौभी तुझको संताप नहीं और जो अनात्मा, जड़ और असतरूप है तौभी तू न रहा। जो कुछ परिच्छिन्नसा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है; आत्मतत्त्व सर्वव्यापक रूप है द्वैत कुछ नहीं और सर्व वही है तो भिन्न अहं त्वंकी कल्पना कैसे हो? असत्से कार्य्यकी सिद्धता कुछ नहींहोती। जैसे शशेके सींग असत् हैं और उनसे मारनेका कार्य्यसिद्ध नहीं होता तैसेही तुमसे कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य्यकैसेहो? और जो तूकहे कि, मैंसत्—असत् और चेतन—जड़के मध्यभावमेंहूं—जैसे तम और प्रकाशका मध्यभाव छाया है—तो सूर्य्यरूप परमात्मा निरंजनके विद्यमान रहते मंदभावी छाया कैसे रहे जिससे कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहींहोता क्योंकि; तू जड़है। जैसे हसुवा अपने आप कुछ नहीं काटसक्ता जब मनुष्यके हाथकी शक्ति होती है तब कार्य्य होता है; तैसेही तुमसे कुछ कार्य्य नहीं होता जब आत्मसत्ता तुमसे मिलती है तब तुमसे कार्य्यहोता है। तुम क्यों अहंकार करके वृथा तपायमान होतेहो? हे चित्त! जो तू कहे कि,ईश्वर का उपकार है तो ईश्वर जो परमात्माहै उसको करने न करने में कुछ प्रयोजन नहीं। सबका कर्त्ता भी वही है और अकर्त्ता भी वही है। जैसे आकाश पोलसे सबको वृद्धता देनेवाला है परन्तु स्पर्श किसी से नहीं करता तैसेही परमात्मा सब सत्ता देनेवाला है और अलेप है। हे मूर्खमन! तू क्यों भोगोंकी वांछा करता है? तूतो जड़ और असत्रूपहै और देह भी जड़ असत्रूपहै, भोग कैसे भोगोगे? और जो परमात्मा के निमित्त इच्छा करतेहो तो परमात्मा तो सदा तृप्त है और इच्छासे रहित है। सर्व में वही पूर्ण है और दूसरे से रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित है— तुझको किसकी चिन्ता है? इससे वृथा कल्पना को त्यागकर आत्मपदमें स्थितहो—

जहां सर्व क्लेश शांत होजाते हैं। जो तू कहे कि, परमात्मा के साथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्बन्ध है तोभी नहीं बनता–जैसे फूल और पत्थरका सम्बन्ध नहीं होता। तैसेही परमात्मा के साथ तेरासम्बन्ध नहीं होता। समान, अधिकरण और द्रव्यका सम्बन्ध होता हैं–जैसे जल और मृत्तिका का संबंध होता है; जैसे औषधमें चन्द्रमा की सत्ता प्राप्त होतीहै; जैसे सूर्य्यकी तपनसे शिला तपजाती है; जैसे बीज अंकुरका सम्बन्ध होता है; पिता और पुत्र का सम्बन्ध होता है और द्रव्य और गुणका सम्बन्ध होता है। आकार सहित वस्तुका सम्बन्ध निराकार निर्गुण वस्तुसे कैसे हो? परमात्मा चेतन है, तू जड़ है; वह प्रकाश रूप है, तू तम रूप है; वह सत्‌रूप है, तू असत्‌रूप है; इस कारण संबंध तो किसीके साथ नहीं बनताहै तोतू क्यों वृथा जलता है? तू मननरूप है परमात्मा सर्व कलनासे रहित है! तेजकी एकता तेजसे होती है और जलकी एकता जलसे होती है। तू कलंक रूप है; परमात्मा निष्कलंक रूप है; तेरी एकता उससे कैसेहो? जिसका कुछ अंग होताहै उसका संबंध भी होता है सो संबन्ध तीन प्रकारका है–सम, अर्द्धसम और बिलक्षण। जैसे जलसे जलकी एकता और तेजसे तेजकी एकताहोती है यह समसंबंधहै परतेरा आत्माकेसाथ समसम्बन्ध नहीं। दूसरा अर्द्ध सम संबंध यह है कि, जैसे स्त्री और पुरुष के अंग समान होते हैं परन्तु बिलक्षणरूप हैं सो अर्द्धसम संबन्धभी तेरा और आत्माका नहीं। कुछ अन्य कीनाईभी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे जल और दूधका सम्बन्ध होता है तैसे भी तेरा सम्बन्ध नहीं–और अत्यन्त जो विलक्षण हैं उनकीनाईभी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे काष्ठ और लाख; पुरुष और हाथी, घोड़ा आदिकका सम्बन्ध नहीं। आधार–आधेयवत्‌भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे बीज और अंकुर, पिता और पुत्र आदिकका जो सम्बन्धहै तैसेभी तेरा और आत्माका सम्बन्ध नहीं क्योंकि; सम्बन्ध उसका होताहै जिसके साथ कुछभी अङ्ग मिलता है; जिसका कोई अङ्ग नहीं मिलता और परस्पर विरोध हो उसका सम्बन्ध कैसे कहिये? जैसे कहिये कि, शशे के सींग पर अमृतका चन्द्रमा बैठाहै वा तम और प्रकाश इकट्ठे हैं तोजैसे यह नहीं बनता तैसेही आत्मा के साथ देह, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं बनता क्योंकि; आत्मा सर्व कलना से अतीत, नित्य शुद्ध, अद्वैत और प्रकाश रूप है और मनादिक जड़, असत्, मिथ्या और तमरूप हैं इनका सम्बन्ध नहीं। जिनका परस्पर बिरोध हो उनका सम्बन्ध कैसेहो? तुमतो परमात्माके अज्ञानसे मन, इन्द्रियां और देहादिक सहित उदय हुयेहो और आत्मा के ज्ञानसे अभाव होजाते हो फिर सम्बन्ध कैसे हो? हे मन! जो कुछ जगत् है वह सब ब्रह्मस्वरूप है–द्वैत नहीं और अहं त्वंकी कल्पनाभी कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है; सब कलना तेरे में थी और तू

तबतकथा जबतक स्वरूपका अज्ञानथा। जब स्वरूपका ज्ञान होता है और अज्ञान नष्ट होता है तब तू कहां है। जैसे रात्रिके अभावसे निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही अज्ञानके नाशहुये तेरा अभाव होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तानुशासनंनामसप्तसप्ततितमस्सर्ग्गः ७७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार वीतव मुनीश्वर विन्ध्याचल पर्व्वत की कन्दरा में तीक्ष्ण बुद्धिसे विचारनेलगा और औरभी जो कुछ उसने कहा सो सुनो। अनात्मा जो देह इन्द्रियां मनादिक हैं वे संकल्प से उपजे हैं, जब ज्ञान उदय होता है तब इनका अभाव होजाता है। हे मन! जैसे सूर्य्यके उदय हुये तम नष्ट होजाता है तैसेही नित्य उदितरूप अनुभव स्वरूप परमात्माके उदय हुये तुम्हारा अभावहोजाता है। वासनासे उसका आवरण होता है और जब वासनाका अभाव होजाताहै तब आवरणका भी अभाव होजाता है। जैसे मेघ के नष्टहुये सूर्य्य प्रकाशता है तैसेही वासना के अभाव हुये आत्मातत्त्व प्रकाशता है। वासनाका मूल अज्ञान है; जब अज्ञान सहित वासना नष्ट होती है तब चिदानन्द ब्रह्म प्रकाशताहै। वासनाही का नाम बन्ध है और वासना की निवृत्ति का नाममोक्ष है। जब वासनारूपी रस्सी काटोगे तब परमात्माका साक्षात्कार होगा। जैसे प्रकाश विना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसेही मन, इन्द्रियां, देहादिक आत्मविचार विना नाश नहीं होतीं। जब विचारकरके आत्मपद प्राप्त हो तब मनसहित षट् इन्द्रियों का अभाव होजाता है अर्थात् इनका अभिमान नष्ट होता है और इनके धर्म्म अपने में नहीं भासते। जबतक देह इन्द्रियों के साथ आवरण है तबलग आत्मपद नहीं प्राप्तहोसक्ता; इससे कल्याणके निमित्त आत्मपद पानेका अभ्यासकरो। जबतक जीव मन और इन्द्रियोंके गुणोंके साथ आपको मिला जानता है तबतक अपने स्वरूपकी विभुता और सिद्धता नहीं भासती; जब आत्माका साक्षात्कारहोजावेगा तब राग द्वेषादिक विकार नष्टहोंगे। जैसे सूर्यके उदयहुये निशाचरोंका अभाव होजाता है तैसेही आत्माके साक्षात्कार हुये विकारोंका अभाव होता है। जिसके देखेसे इनका अभाव होजाता है उसका आत्माकेसाथ सम्बन्ध कैसेहो! जैसेप्रकाश और तमका सम्बन्ध नहीं होता तैसेहीसत् असत्का सम्बन्ध नहींहोता और जैसे जीवसे मृतक का सम्बन्धनहीं होता तैसेही आत्मा अनात्माका सम्बन्ध नहींहोता। आत्मा सर्व कल्पनासे रहित है और मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं। कहां यह मूक, जड़ और अनात्मा रूप और कहां नित्य, चेतन, प्रकाश, निराकार, आत्मारूप इनकापरस्पर विरोध रूप है तो सम्बन्ध कैसे कहिये—ये तो निश्चय करके अनर्थ के कारण हैं।

जब तक इनका अभिमान है तबतक जगत् दुःख रूप है और जबइनका वियोग हो तब जगत् परमात्मरूप होताहै। जबतक आत्माका अज्ञान है तबतक मनुष्य आपको इनमें मिलादेखता है और दुःख पाता है और जब आत्मा का ज्ञानहोताहै तब अपनेसाथ इनका संयोग नहींदेखता। यहमैंने निश्चय करके जाना है कि, इन्द्रियां और मनके संयोगसे जगत् भासताहै और जब इन्द्रियोंका ग्रामनष्ट होजाताहै तब जगत् परमात्मारूप होजाता है। मैंजो आत्मा, मन और इन्द्रियोंको इकट्ठा जानता था सो प्रमादरूपी मद्यके पानसे मत्तहुआ मनसे जानताथा। अब आत्मविचारसे मन नष्टहुआ तब सुखीहुआहूं। जो विषको पानकरके मूर्च्छितहो सो तो बनताहै परन्तु पानकियेविना मूर्च्छितहो सो आश्चर्यहै। इससे यदि अनात्मा का इसकेसाथ संयोग होताहै तो सुख दुःखकरके राग द्वेषवान् होनाभी बनता पर आत्मा तो सुखदुःखका साक्षीभूत है। सुखका संयोगही जिससे नहीं और राग द्वेषसे जलता है तो महामूर्खता है। आत्मा तो सुख दुःखका साक्षीभूतहै जैसा उस के आगे अभ्यास होताहै तैसाही भासताहै,कदाचित् विपर्यय भावको नहींप्राप्तहोता सुख दुःखमें मूर्ख मन राग द्वेषवान् होताहै, आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है उसके साथ इन्द्रियोंका संयोग कैसेहो? अब जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ तो आत्मामें कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसेकहिये? जहां चित्त कलना होती है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व भी होता है और जहां चित्त कलना का अभाव है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व का भी अभाव है। ऐसा निष्कलङ्क आत्मतत्त्व मैंहूं कि, न कर्त्ताहूं, न भोक्ताहूं, न मेरेमें बंध है, न मोक्ष है, न हन्ताहैं, न अहन्ता हैं; मैं सर्वात्मा अलेप रूपहूं। हे मन! तू भी मैंहूं और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पांचोतत्त्व भी मैंही हूं। इस प्रकार निर्णय करके जिसने धारा है वह मोहको नहीं प्राप्तहोता। जो अहं अभिमान करने वाला आत्मासे आपको भिन्न जानता है वह दुःखीहोताहै और जब अपने स्वभावमें स्थित होता है तब परमसुखी होता है। इससे जिसको कल्याणकी इच्छाहो उसकोएकआत्मा परमात्मपरायण होना योग्यहै। जब स्वरूपकात्यागकर सङ्कल्पकी ओर धावता है तब दुःखोंके समूहको प्राप्तहोता है। हे चित्त! जो तू अपनेमें कर्तृत्व देखताथा सो इन्द्रियों सहित जड़रूप पत्थरके समान हैं—जैसे आकाशमें पवननहीं लगता तैसेही तुमसे कर्तृत्व नहीं होता। जब स्वरूपका प्रमाद होता है तब जीव चित्त आदिकसे आपको मिला जानता है और चित्तादिक आत्माकी सत्तापाकर चेतन होताहै जैसे अग्निकी सत्तापाकर लोहाभी जलासक्ता है तैसेही तुम आत्माकी सत्तापाकर कर्तृत्व भोक्तृत्वमें समर्थ होतेहो। जब आत्म विचार करके स्वरूपका साक्षात्कार होता है, अज्ञान वृत्ति निवृत्त होजाती है और मनादिक का वियोग होता है तब सर्व कलना

से रहितहुआ केवल मोक्षरूप आत्माहोता है और कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव होजाता है। जैसे आकाशमें लालीका अभाव है तैसेही आत्मामें कर्तृत्वका अभावहै। सब जगत् आत्मा स्वरूप भासता है। जैसे समुद्र तो तरङ्ग आदिक नानाप्रकारसे होताहै सो सब जलरूपहै-भिन्ननहीं; तैसेही सर्व जगत् आत्मारूपहै-आत्मासे भिन्न नहीं। सच्चिदानन्द आत्मा में अपने आपमें स्थितहूं और द्वैतकलना मेरेमें कोई नहीं। जैसे समुद्र उष्णतासे रहितहै तैसेही परमात्मा सर्व कलनासे रहितहै और जैसेआकाशमें वननहीं होता तैसेही परमात्मा में कलनानहीं होती वह संवेदनसे रहित, संवितमात्र सर्वात्मा है; जब उसका साक्षात्कार होताहै तब अहं त्वं आदिक कलनाका अभाव होजाता है। वह अनादि, अरूप, सर्वगत, सदाअपने आप में स्थित है; ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है उसको द्वैतकलना आरोपने को कौन समर्थहै ऐसा कौनहै जो आकाश में ऋग्वेदलिखे ? नित्यउद्योत; सर्वकासार, अद्वैत आत्मा है उस में द्वैत कलनाका अभाव है और सब में पूर्ण, निर्मल, नित्य आनन्दरूप है। ऐसे आत्मा को अब मैं प्राप्त हुआहूं; जगत्का सुखदुःख अबनष्टहुआ है और सम शांतरूप हुआहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेअनुशासनयोगोपदेशोनामअष्टसप्ततितमस्सर्गः ७८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचारताथा। फिर जो कुछ वह निर्मलबुद्धि से विचारने लगा सोभी सुनो। हे इन्द्रियरूप मन! तुम क्यों अपने अर्थोंकी ओर धावतेहो? तुमको तो विषयों से शांति नहींहोती-जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखकर दौड़ताहै और शान्तिमान् नहींहोता। इससे तुमभी विषयोंकी ओर तृष्णा करने से शान्तिमान् न होगे। इनकी इच्छा त्यागकर जो परमात्मतत्त्व अविनाशी, सर्व्व अवस्था में एकरस और सत्यहै उसको ग्रहणकरो तब सब दुःख तुम्हारे मिट जावेंगे। तुम्हारे साथ में मिलाथा तब मैंने भी दुःख पाया। तुम अज्ञान से उत्पन्न हुये हो और जो तुम्हारे साथ मिलताहै उसकोभी दुःखप्राप्त होताहै। जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीर से स्पर्शकरती है उसको जलातीहै तैसेही जिसको तुम्हारासङ्ग हुआहै वह दुःख पाताहै। हे मन! यह जीव तुम्हारे संगसे कालके मुखमें जापड़ताहै-जैसे नदीजल सहित होती है तब समुद्रकी ओर चली जाती है-जलसे रहित हो तो क्यों जावे; तैसेही तुम्हारा संग करके जीव कालके मुखमें जापड़ता है, तुम्हारा संग न हो तो क्यों पड़े? जैसे मेघ कुहिरेसे सूर्य्यको घेरलेता है; तैसेही मनरूपी मेघ इच्छारूपी कुहिरे से आत्मारूपी सूर्य्यको घेरलेता है और परम्परा दुःखोंकी वर्षाकरनेवालाहै। हे मन! तेरेमें चिन्ताउठती है इससे तू मर्कटकी नाईं है। जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, हिलाता है तैसेही चित्तदेहको ठहरने नहीं देता।

चित्तरूपी पखेरूके लोभ और लज्जा दो पंख हैं और रागद्वेष रूपी चोंच है जिससे शरीररूपी वृक्षपर बैठा शुभगणोंको काट २ खाता है । चित्तरूपी महानीच कुत्ता भोग भावनारूपी महाअपवित्र पदार्थोंको हृदयरूपी स्थानमें इकट्ठा करता है और ऐसी चेष्टा से कदाचित् रहित नहीं होता । चित्तरूपी उलूक अज्ञानरूपी रात्रि में विचरता है;चेष्टाकरके प्रसन्न होताहै और शब्दकरताहै । जैसे श्मशानसे बैतालशब्द करता है । जबअज्ञानरूपी रात्रिनष्टहो तब चित्तरूपी उलूकका भी अभाव हो और सम्पदा आन प्रवेशकरे । जैसे सूर्य्यके उदयहुये सूर्य्यमुखी कमलउदयहोताहै तैसेही सम्पदा प्रफुल्लित होती है जब मोहरूपी कुहिरा और इच्छारूपीधूलि हृदयरूपी आकाश से निवृत्त होती है तब निर्मल आकाश प्रकट होता है । हे चित्त ! जबतक तू नष्टनहीं होता तबतक शान्ति नहीं होती । स्वस्थ बैठे हुये जो चिन्ता प्राप्त होती है वह तेरेही संयोगसे होती है । जहां चित्तनष्ट होता है तहां सर्व्व आनन्द होकर शीतलता और मित्रतासे पावन होताहै । जैसे शीतकालका आकाश निर्मल होताहै और मेघके नष्टहुये सूर्य्य प्रकाशता है तैसेही अज्ञानके नष्ट हुये आत्मा प्रकाशता और प्रसन्नता,गम्भीरता,महत्त्वता, और समताहोती है । जैसे वायु और मन्दराचल पर्व्वतसे रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है और पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभता है तैसेही अज्ञानके नाशहुये आत्मानन्दपाकर यह मनुष्य शोभता है । हे चित्त ! यह स्थावर जङ्गम जगत् सम्वित्रूप आकाशमें है । उस महत् ब्रह्मको कुम्भी प्राप्त हो । जो पुरुष आशारूपी फांसी को तोड़कर आत्मपदमें प्राप्तहुआ है और जिसने संसारका सद्भाव निवृत्त किया है वह जन्म मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता । जैसे जलाहुआ पत्र फिरहरानहीं होता तैसेही चित्त नष्टहुआ जन्ममरण नहीं पावता । हे चित्त ! तू सबको भक्षण करनेवाला है । जो तू संसारको सत्मानकर उसकी ओर धावेगा तो तेराकल्याण न होगा और जो आत्माकी ओर आवेगा तो तेरा कल्याण होगा।जब तू अपना अभावकर आत्मपदमें स्थित होगा तब कल्याणरूपहोगा और जोतू अपनासद्भाव करेगा कि,आकारको न त्यागेगा तो दुःखी होगा । जो तेराजीनाहै वहमृत्यु समान है और जो मृत्यु है सो जीनेके समानहै । दोनोंपक्षोंमें जोतेरी इच्छा होसो अङ्गीकारकर । जोतू अबहीं आपको आत्मपदमें निर्वाण करेगा तो परमपदको प्राप्तहोकर परमसुखीहोगा और जोन करेगा तो परमदुःखीहोगा।जो आत्मपदकात्याग करेगा वह मूढ़है । तेरानिर्वाणहोना आत्मपदमें जीनेकानिमित्तहै और आत्मासे भिन्न जो तू जीनेकी इच्छा करता है सो तेरा जीना मिथ्या है अर्थात् तू आदिभी मिथ्याहै और अबभी विचारविना भ्रममात्र है; विचार कियेसे नष्ट होजावेगा । जैसे सूर्य्य के प्रकाश बिना अन्धकार होता है और प्रकाशसे नष्ट होजाता है तैसेही विचार बिना

चित्त है, बिचारसे नाश होजाता है। इतने काल में अबिबेकसेही जीताथा। जैसे बालकों को अपनी परछाहीं में बेताल कल्पना होती है और बिचार बिना भयपाता है—बिचार कियेसे निर्भय होता है; तैसेही अब मैं तेरे सङ्गसे छूट अपने पूर्वस्वरूपको प्राप्तहुआहूं और बिबेकसे तेरा अभाव हुआ है। इससे बिबेकको नमस्कार है। हे चित्त! अबिबेकसे तू मेरा मित्रथा अब बोधसे तेरा चित्तभाव नष्ट होगया। तू परमेश्वररूप है। अब वासना नष्ट हुई है। आगे तेरेमें नानाप्रकारकी वासना थी उससे तू मलीन और दुःखरूपथा। अब वासना के नष्ट होनेसे तेरा परमेश्वररूप हुआहै। तेरेमें अज्ञानसे चित्तस्वभाव उपजा दुःखोंका कारण था सो बिबेकसे लीन हुआ है। जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्य्यके उदयहुये लीन होजाते हैं तैसेही बिबेकसे चित्तभाव नष्टहुआ है सो सिद्धान्त का कारण है। तेरे सङ्गसे मैं तुच्छसा होगयाथा; अब शास्त्रोंकी युक्तिसे निर्णय किया है कि, न तू आगेथा, न अब है और न फिर होगा। जबतक मैंने आपको न जानाथा तब तक तेरा सद्भावथा; अब मैंने आपको जानाहै और अपने आप में स्थित हुआहूं। अब मैं परमनिर्वाण और शान्तरूपहूं; सब ताप मेरे नष्टहुये हैं और नित्यशुद्ध चिदानन्द परब्रह्म स्वरूपहूं। जगत् की सत्य—असत्य कलना मेरी नष्ट हुई है क्योंकि, कलना सब चित्तमें थी; जब चित्त निर्वाण होगया तब कलना कहां रही? मैं केवलशुद्ध आत्माहूं मेरा प्रतियोगी कोई नहीं और न व्यवच्छेदहै क्योंकि; दूसरा कोई नहीं केवल चित्तकी चेतना फुरती थी सो निर्वाण होगई है और अब मैं स्वस्थ हुआहूं। जैसे तरङ्गोंसे रहितसमुद्र अचल होता है तैसेही सर्व्व कलनासे रहित मैं बीतरागहूं और संवेदनसे रहित समसत्ता मात्र अपने आपमें स्थितहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तोपदेशोनाम एकोनाशीतितमस्सर्ग्गः ७९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार वीतवने निर्वासनिक हो निर्णय करके विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरा में समाधिलगाई और आकाशवत् निर्मल चित्तहो इन्द्रियों की वृत्तिबाहरसे खींचकर अचलकी ओर फिर ग्रीवाको शमकरके चित्तकी वृत्तिअनन्तआत्मा साक्षीभूत में स्थितकी। जैसे लकड़ियों को जलाकर अग्निकी ज्वाला शान्त होजाती है तैसेही उसके प्राण और मनकी वृत्तिका स्पंद मिटगया और जैसे शिला में खोदीहुई पुतलीहोती है और मूर्त्तिकी लिखी हुई पुतली होती है तैसेही स्थित होगया। मेघोंकी वर्षा शिरपर हो, मण्डलेश्वर शिकारखेलें, बड़े शब्द हों, रीछ और वानर शब्द करें, बारासिंगों और हाथियों के शब्दहों; वनमें अग्नि लगे; पत्थरों की वर्षा हो, वायुचले और धूपपड़े तौभी वह समाधिसे न

जागे और जैसे पहाड़में शिलादबी होती है तैसेही उसका शरीर दबगया । जब तीनसौ वर्ष इसीप्रकार व्यतीत हुये तब चित्त फुर आया कि, शरीर मेरे साथ है परन्तु प्राणनहीं फुरे और चित्तके फुरने में आपको कैलास पर्वत के ऊपर और कदम्बके वृक्षकेनीचे देखा। सौ वर्ष पर्य्यन्त मौनहोकर जीवन्मुक्त और निर्मल आत्मा हो विचरा । सौ वर्ष पर्य्यन्त विद्याधर होकर विद्याधरों में विचरा, उसके अनन्तर और पंचयुग बीतकर इंद्र हुआ तब देवता उसे नमस्कार करते थे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! देशकाल और सनादिक प्रतिभा उसको अनियत और अनियम कैसे भासित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्तसर्व्वात्मरूप है; जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है । जैसे जैसे देशकालका फुरना होता है तैसेही तैसे अनुभव होता है। हे रामजी! जैसा कुछ प्रपंच है वह मनोमात्र है। जैसा फुरना तीव्र होता है तैसेही अनुभव सत्तामें भासित हो वहां स्थित होता है। जब और भ्रममें गया तो नियमके अनुसार तैसेही होता जाता है। जो अज्ञानी होता है उसको वासनासे नानाप्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् होता है वह सब आत्माको देखता है; उसका फुरनाभी अफुरना है और वासनाभी अवासना है। वीतव मुनीश्वर ने चित्त के फुरनेसे इतना देखा परन्तु स्वस्थरूप था इससे उसकी वासना भी अवासनाथी। जैसे भुनाबीज नहीं उगता तैसेही उसकी वासना भी अवासनाथी और भ्रान्तिका कारण न था। फिर कल्पपर्य्यन्त वह चन्द्रधार सदाशिवजी का गण हो समस्त विद्याका ज्ञाता और सर्व्वज्ञ, त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकर विचरा। हे रामजी ! जैसा किसी का संस्कार दृढ़ होता है । तैसाही उसको अनुभव होता है। जैसे वीतव चित्तको स्पंद करके जीवन्मुक्तका अनुभव करता था। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो ऐसे हैं तो जीवन्मुक्त के मतमें बन्ध मोक्ष हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्तको सब ब्रह्मस्वरूप भासताहै;बंधमोक्ष अवस्था उसमें कहांहै? ज्ञानमात्र आकाशमें जैसा फुरनाहोताहै तैसाही भासताहै। हे अङ्ग ! यह सबचिन्मात्र स्वरूपहै और जगत् नानाप्रकारका मनसे भासताहै; वास्तवमें न जगत्है; न अजगत्है; केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै। जगत्के भूत भविष्यत् केवलब्रह्मसत्ता भासताहै। चिन्मात्रसे भिन्नजगत् मनके फुरनेसे भासताहै जिनको ऐसा ज्ञान नहीं उनको जगत् वज्रसारसे भी दृढ़ हो भासता है और ज्ञानवान् को आकाशवत् भासता है। हे रामजी ! अज्ञानसे मन उपजाहै और उससे सम्पूर्ण जगत् हुआ है; वास्तवमें और कुछ नहीं। जैसे समुद्रमें तरंग और उल्लास होते हैं तैसेही चिदाकाश में आकार भासते हैं। जब चित्त अचित्त होजाताहै तब कुछ द्वैत नहीं भासता ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवमनोयज्ञवर्णनंनामअशीतितमस्सर्गः ८० ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर बिन्ध्याचल पर्व्वत में फँसाथा फिर उसकी क्या अवस्था हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसके अनन्तर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर एककालमें शरीर गणोंको मनसे बिचारने लगा कि, कई नष्ट होगये हैं। उन अनष्टों में पृथ्वीके मध्य जो उसका स्थितथा उसको देखा कि, कन्दराकी धूड़में वर्षासे फँसगयाहै और ऊपर तृणजाल जमगयाहै। उसको देखकर कहनेलगा कि,इसमें प्रवेशकरूं पर फिर बिचारकिया कि,यहतो जड़,गूंगा और फँसा हुआहै और इसको मैं नहीं निकालसक्ता; इससे सूर्य्यमण्डल को जाऊं कि सूर्य्य के सारथी अरुण पंगु इसको निकालेंगे; अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है? यह नाश होजावे अथवा रहे इतना यत्नमें किसनिमित्तकरूं? मैं अपने निर्गुण स्वरूपमें स्थित होऊं देहसे मेरा क्या है। इसप्रकार विचार वीतव तूष्णी होगया और एक क्षणके अनंतर फिर चिन्तन करनेलगा कि, पृथ्वीमें देह से न कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है; इससे देहको त्यागना और रखना समान है तो यह शरीर किस निमित्त दबारहे। कुछ काल और इसका प्रारब्धवेग है इसलिये आकाश में जो सूर्य्य स्थित है उसमें प्रवेशकरूं—जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है और उस शरीरको सूर्य्यके सारथी से निकलवाऊं। हे रामजी! ऐसे बिचार कर मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसे आकाशमार्ग में चढ़ा और प्रणामकरके सूर्य्य के भीतर वायुरूप हो प्रवेश किया—जैसे शस्त्र पिंडमें अग्नि प्रवेश करती है। सूर्य्य भगवान्ने जाना कि, वीतव मुनीश्वर ने प्रवेश किया है और सर्वज्ञ थे इससे जाना कि, पृथ्वी में इसका शरीर कीचड़ और तृणों से दबा हुआ है उसके निकलवाने के निमित्त आयाहै। ऐसे बिचार सूर्य्य ने अपने सारथीसे कहा, हे सारथी! बिन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में वीतव मुनीश्वरका शरीर दबापड़ा है उसको तू जाकर निकालदे। तब अरुण नामक सारथीने जिसका शरीर हाथी के समान है बिन्ध्याचल पर्व्वत में आकर नखोंसे वह शरीर निकाला। उसके नखऐसे थे जिनसे वह पहाड़ उखाड़डाले, उन नखों से धराकोटरमें गड़े हुये उस शरीरको उसने निकाला। जैसे समुद्रके तीरे भीहका तंतुकीड़ा पाते हैं तैसेही पर्व्वतकी कन्दरासे उस शरीरको निकालडाला। तब मुनीश्वरने पुर्यष्टकासे उस शरीरमें प्रवेशकिया—जैसे पक्षी आकाशमार्गसे उड़ता उड़ता आलयमें आ प्रवेशकरे—और सावधानहोकर अरुणको नमस्कारकिया और अरुणने भी वीतवको नमस्कारकिया और अपने २ कार्य्यकी ओरहुये। अरुण तो आकाशमार्ग्गको गया और मुनीश्वरका शरीर कीचड़से भराहुआ था इससे उसने तलावपर जाकर डुबकीमारी और जैसे हाथीमल धोताहै तैसेही स्नानकरके संध्यादिककर्मकिये और सूर्य्य भगवान्का पूजनकिया। जैसे प्रथमतपसे शरीर शोभताथा

तैसेही भूषितकिया और मैत्री, समता, सत्, मुदिता आदिक गुणों से सम्पन्नहोकर ब्रह्मलक्ष्मीसे सुशोभितहुआ और सबके सङ्गसे रहितभी रहा कि, इनगुणों को भी स्वरूपमें स्पर्श न करे और आपको शुद्ध स्वरूपजाने ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवसमाधियोगोपदेशो
नामएकाशीतितमस्सर्गः ८१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जब कुछदिन व्यतीतहुये तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदयहुआ और विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरा में जाबैठा। पूर्व जो विचार अभ्यासकिया था और परावर परमात्म दृष्टिहुईथी उससे फिरचित्त को कहा कि, हे चित्त और इन्द्रियो ! मैंने तुम्हारा पूर्वही प्रहारकर छोड़ा है । अब तुम्हारे अचित्तसे अर्थ अनर्थ कोईनहीं क्योंकि; अस्तिनास्ति कलनामेरी नष्टहुईहै। अस्तिनास्तिके पीछे जो शेषरहताहै उसमें स्थितहूं। जैसे पहाड़का शृङ्ग अचलहोताहै तैसेही अचलहूं।सदाउदयरूप असतकी नाईं स्थितहूं और सदाज्ञानस्वरूप प्रकाशवान्हूं । असत्की नाईं इसप्रकार कि,सदा अक्रियरूपहूं और असतरूप उदयकी नाईंस्थितहूं । असत् इसप्रकारसे कि,मन इन्द्रियोंका विषय नहीं और उदयकी नाईं इस कारणसे कि, सबका साक्षीभूत हूं और सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपमें स्थितहूं । प्रबुद्ध और सुषुप्ति विषय स्थितहूं । प्रबुद्ध इस कारण कि, जो इन्द्रियोंके विषयका उपलब्धि करताहूं और सुषुप्ति इस कारण कि, हर्ष, शोक, इष्ट, अनिष्टसे रहित और जगत्की ओर से सुषुप्ति समाधि में हूं और वहां जाग्रत हुआ तुरीया पद्आत्मतत्त्वमें स्थितहूं । जैसे किसी स्थानमें खंभस्थित होता है तैसेही स्थितरूप, नित्य, शुद्ध, समानसत्ता जो आत्मपद है वहां मैं निरामय स्थितहूं । हे रामजी ! इस प्रकार ध्यान करता हुआ वह मुनीश्वर ध्यानमें लगा और छःदिनतक ध्यानमें रहा और फिर जब जगा तो उसकाल को क्षणके समान जाना–जैसे सोया हुआ क्षणमें जागे । इसी प्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्तहुआ और जीवन्मुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त विचरता रहा । न कोई वस्तु उसे हर्ष दे और न शोक दे; चलता हुआ भी स्थिर रहे और इन्द्रियोंका व्यवहार करताभी इष्ट–अनिष्टकी प्राप्तिमें समरहे–कदाचित् किसीमें चलायमान नहो । वह चलता बैठता मन और इन्द्रियों से कहे, हे इन्द्रियो ! मरो । हे मन। अब तू समवान् हुआ है और आत्माको पाकर अब देख तुझको क्या सुख है । जिस सुखके पायेसे और पाने योग्य कुछनहीं रहता,वह निरोग सुख है । ऐसा जो परमशान्तरूप अचल सुख है तिसको आश्चर्य्य करके चंचलताको त्याग और हे इन्द्रियो ! तुम्हारा वास्तव में कुछस्वरूप नहीं और आत्म पदमें तुमदृष्ट नहीं आतीं । अपने स्वरूपके जानेविना तुम मुझको दुःख देतीथीं;

अबमैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुआहूं और अबतुम मुझे वशनहीं करसक्तीं क्योंकि; तुम अबस्तु रूपहो आत्मा के प्रमादसे तुम्हारा भानहोता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मामें जो अनात्म भावना और अनात्मामें आत्मभावना होती है सो अविचार से होती है और बिचार किये से नहींहोती। अब बिचार करके यह भ्रम निवृत्त हुआ है; तुम इन्द्रियांगण और हो; अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्त्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है। और का दुःख आपमें मानना यही मूर्खता है। जैसे बनकी लकड़ी और है, बांस और है और चर्म और है जिससे रथ बनता है और लोहा, पीतल और कड़े जिनसे रथ जड़ाजाता है—सो भी और २ हैं और बैलजो रथको चलाता है सोभी जुदाहै; इनसबसे रथ बनता है और जैसे गृहका आकारहोता है तैसे रथ है उसमें बैठनेवाला पुरुष भी और होता है और रथकी सब सामग्री परस्पर और २ होती हैं तो यदि उसमें बैठनेवाला कहै कि मैं रथहूं तोनहीं बनता; तैसेही शरीररूपी रथ अज्ञानसे मिला है। इन्द्रियां और हैं और मनादिक और हैं उसमें पुरुष है सो जीव है; यदि जीव कहे कि, मैं शरीरहूं तो बड़ी मूर्खता है। उस शरीरके सुखदुःख मूर्खतासे आपको मानता है जो बिचार करके देखो तो रागद्वेषके क्षोभसे मुक्तहो। मैंने अविचाररूप विस्मृति स्वरूपको दूरसेत्यागाहै और स्वरूपकी स्मृतिस्पष्टकीहै कि,आत्मातत्त्व सत्है। उसीको मैंने सत्जानाहै और अनात्मा असत् है उसको असत् जाना है। जो सत् है वह स्थित है, जो असत् है वह क्षीण होजाता है। हे रामजी! इसप्रकार वीतवमुनि बिचार करके जीवन्मुक्त हुआ और अपने स्वरूपमें वहुत वर्षोंको व्यतीत किया। निर्भयपद में चित्तादिक भ्रम सब नष्ट होजाते हैं। ऐसे शुद्धपदको प्राप्तहुआ वह यथाभूतार्थ आत्मध्यानमें स्थित हुआ और ग्रहण और त्यागकी कुछ भावना न रही परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्तहुआ। अगस्त्य मुनिका पुत्र वीतवमुनि उस पदको पाकर निर्वासनिक हुआ। फिर जिस कालमें और जिस प्रकारसे वह बिदेह मुक्तहुआ है वहभी सुनो। बीस हजार और सातसै वर्ष वह जीवन्मुक्त रहकर फिर बिदेह मुक्तहुआ, जो इच्छा अनिच्छासे रहित पद है और जन्म मरणका जिसमें अन्त है उस रागद्वेषसे रहितपदको प्राप्तहुआ। हे रामजी! फिर उसने हिमालय पर्वतकी कन्दरामें प्रवेशकिया और पद्मासन बांध हाथ जोड़कर कहा, हे राग! तुम निरोगता और निर्द्वेषताको प्राप्तहो। तुम्हारेसाथ मैंने चिर पर्यन्त विवेकसे रहित क्रीड़ाकी है। तुम अब जावो, मेरा तुम को नमस्कार है। हे भोग! तुम्हारी लालसासे मुझको परमपदका बिस्मरण होगया था। जैसेमाता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है तैसेही मैं सुखजानकर तुम्हारी लालसा करताथा। अब तुम जावो तुमकोमेरा नमस्कार है। अबमैं निर्वाण

पदको प्राप्त होताहूं। हे दुःख ! तुमकोभी नमस्कार है । तेरे उपदेशसे में आत्मपदको प्राप्तहूं क्योंकि, मैं सदाभोग और सुख चाहताथा, और जब सुख प्राप्त होताथा तब तुझकोभी साथ लेआताथा। सुखसे तेरी उत्पत्तिहोतीहै; सुखकी लालसामेंतो मैं अनेक जन्मपातारहा पर जब सुखआवै तब तुझकोभी साथलेआवे। तुझको देखकर मुझको आत्मपदकी इच्छाउपजी और तेरे प्रसादसे मैं परमशीतल पदवीको प्राप्तहुआहूं।हे दुःख! तूतो दुःखथा परन्तु मुझको आत्मपद प्राप्तकिया इससे तेराकल्याणहोतू अब जा हेमित्र !संसारमें जीना असारहै; जिसका संयोग होता है उसका वियोगभी होताहै। तूनेमेरे साथबड़ा उपकार किया कि, अपना नाशकिया और मुझको सुख प्राप्तकिया क्योंकि जब तू मुझको प्राप्त न था तोमैं आत्मपदके निमित्त कब यत्नकरता था। तूने अपना नाशकरना माना परन्तु मुझको सुख प्राप्तकिया। हेमित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकाल पर्यंत मेरे साथरहा और कदाचित् मुझसे दूर न हुआ । मैंने तेरा नाश नहीं किया पर तूने अपना नाश आपही किया है। तू मुझको जब प्राप्तहुआ था तब मुझको विवेक उत्पन्नहुआ, उस विवेकने तेरा नाशकिया है इससे तुझको मेरा नमस्कार। और, हे मातातृष्णा ! तुझको भी नमस्कार है। तू सदा मेरे साथ रही है और कदाचित् त्यागनहीं किया । जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती तैसेही तूने मेरा त्याग नहींकिया। अब तू जा। हेकामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकर अपना नाशकिया। जब तू बहिर्मुख था तब जीताथा और जब अन्तर्मुख हुआ तब तू मिटगया । तुझको नमस्कार है । हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है । तुमने भी बड़ा उपकार किया कि,नरकोंसे निकालकर स्वर्गोंमें डाला परन्तु अन्त सब का वियोग होना है इससे तुमभी जाओ। हे दुष्कृतो ! तुमभी जाओ । विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है और युवाअवस्था बीज है उससे दुःख फलहोता है तुम्हारे साथभी संयोग हुआथा इससे तुमको भी नमस्कार है, तुमभी जाओ। हे मोह ! तुझको भी नमस्कारहै। तुझसे चिरकाल में बँधाथा और नानाप्रकारके स्थानोंको प्राप्तहोताथा और तू भयदिखाताथा उससे मैं भयपाताथा। इससे तुझको नमस्कारहै,अब तू जा। हे गिरिकन्दरा ! तुझकोभी नमस्कार है। तुममें मैंने चिरकाल तपकिया है। हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमकोभी नमस्कारहै। तुमने मेरेसाथ उपकारकिया है कि, संसार बन्धनसे मुक्तकिया। तुमभी जावो। हे दण्ड और तूंबा ! तुमकोभी नमस्कारहै। तुमभीजावो। बहुत काल तुमभी मेरे सम्बन्धी रहेहो। हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होकर तू मेरे साथ बहुतकाल रहीहै और तूने उपकारकिया है । विवेक उपजानेका स्थान तूही है, तेरे संयोगसे मैंने परमपद पाया है। तूभी अब जा, तुझको नमस्कार है। हे संसारके व्यवहारो ! तुमकोभी नमस्कार है, तुम्हारेमें मैंने बहुत क्रियाकी है। ऐसा

पदार्थ जगत् में कोई नहीं जिससे मैंने व्यवहार न कियाहो, ऐसाकर्म्म कोई नहीं जो मैंने न किया होगा और ऐसादेश कोईनहीं जो देखा न होगा। अब सबको नमस्कार है। हे इन्द्रियो, प्राण और मनादिक! तुमको नमस्कारहै। तुम्हारा हमारा चिरकाल संयोगथा अब वियोगहुआ क्योंकि; जिसका संयोग होताहै उसका वियोगभी होता है। इससे तुम्हारा हमाराभी वियोग होता है। नेत्रोंकी ज्योति सूर्य्यमण्डल में जा लीनहोगी, घ्राणोंकी गन्ध पृथ्वीमें लीनहोगी और प्राण त्वचा पवन में, श्रवण आकाशमें, मन चन्द्रमा में और जिह्वा रस में लीनहोगी। इसीप्रकार सब अपने अपने अंशमें लीनहोंगे। जैसे लकड़ियों के जलेसे अग्नि शान्त होजाती है; शरत्काल में मेघ शान्त होजाता है; तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाता है और सूर्य्य के अस्त हुये प्रकाश शान्त होजाता है तैसेही मनादिक शान्त होजावेगा। हे रामजी! ऐसे विचार करते करते उसका मन सर्व्वकार्य्य से रहितहो प्रणव के ध्यानमें लगा और सर्व्व दृश्यसे शान्त और मोहरूपी मलको त्यागकर प्रणवके विचार में लगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेइन्द्रियनिर्वाणं नामद्व्यशीतितमस्सर्गः ८२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार उसने शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार किया और पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है उसको प्राप्तहुआ भीतर-बाहरके स्थूल सूक्ष्म पदार्थों और त्रिलोकीके सब सङ्कल्पोंको त्यागकर वह अक्षोभरूप स्थितहुआ जैसे चिन्तामणि अपने प्रकाशमें स्थितहोती है; जैसे पूर्णकालसे चन्द्रमा अपनेआप में स्थित होता है, जैसे मन्दराचलके निकलनेसे क्षीरसमुद्र स्थितहोता है और मथनेसे रहित मन्दराचल स्थित होता है जैसे कुम्हारका चक्र फिरता २ ठहरजाता है जैसे सूर्य्यके अस्तहुये जीवोंकी व्यवहार क्रिया ठहरजाती है; जैसे मेघसे रहित शरत् कालका आकाश निर्मल होता है और प्रकाश तमसे रहित आकाश होता है; तैसेही फुरनेसे रहित उसका मन शान्तिको प्राप्त हुआ। प्रणवका ध्यान करके फिर उस वृत्तिके अन्तको प्राप्त हुआ और फिर मंत्रकोभी त्याग-जैसे महापुरुष क्रोध को त्यागते हैं तैसेही वृत्तिको त्यागा। फिर तेजका प्रकाश उदय हुआ उसकोभी निमेषमें त्यागा। आगे न तेज है, न तम है उसमें अभाववृत्ति रहती है उसकोभी निमेषमें त्यागा, तब जैसे नौतन बालककी जन्मसे पदार्थ ज्ञानसे रहित अवस्था होती है तैसेही अवस्था प्राप्त हुई। तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुपुप्तपद है उसका आश्रयकिया और महाअचल जो सुमेरुकीनाईं स्थिर अवस्था है उसकोप्राप्तहुआ। फिर केवल अचेतन चिन्मात्र तुरीया निरानन्द आनन्दपदमें जिसमें स्वरूपसे भिन्न और आनन्द नहीं प्राप्तहुआ। वह असत् असत्रूप है सर्व्वक्रियासे अतीत है, इस

कारण असत्है और अनुभवरूप है इसकारण सत्यरूपहै । ऐसे अशब्द पदको वह प्राप्तहुआ जो परमशुद्ध पावन और सर्व्वभावके भीतर प्राप्त हैं और सर्व्वभाव शब्द से रहित है । जिसको शून्यवादी-शून्य, ब्रह्मवादी-ब्रह्म; विज्ञानवादी-विज्ञान, सांख्य मतवाले-पुरुष; योगवाले, ईश्वर; शैवी-शिव; वैष्णव-विष्णु; शाक्त-परमशक्ति; कालवादी-काल; आत्मवादी-आत्मा और माध्यमिक-माध्यम इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं सो एकपरब्रह्मकोही कहते हैं जो सर्व्वदा, सर्व्वकाल, सर्व्वप्रकार, सर्व्व में सर्व्वरूप है । ऐसे सर्व्वात्मा को वह मुनीश्वर प्राप्तहुआ । जिस आनन्द समुद्र के बलसे सर्व्वको आनन्द होता है ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनन्दको वह प्राप्तहुआ और वहीरूप होगया । जो अन्य और निरन्य, निरंजन, सर्व्व, असर्व्व, अजर, अमरसब के आदि सकलङ्क-निष्कलङ्क है ऐसे आकाश से निर्मल पदको वीतव मुनीश्वर प्राप्तहुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नामत्र्यशीतितमस्सर्ग्गः ८३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्रके पार हो वीतवमुनीश्वर उस परमपदको प्राप्तहुआ जिसपदके प्राप्तहुये जीव फिर जन्ममरणको नहींपाता और जिसपदमें स्थितहुआ परमशांत उपशम आनन्दको प्राप्तहोताहै-जैसे समुद्रमें पड़ी हुई बुन्द समुद्र होजाती है तैसेही ब्रह्मसमुद्रमें वह ब्रह्म होगया और शरीर जो था वह विरसहोकर गिरपड़ा जैसे शीतकाल में वृक्षों के सूखेपत्र गिरपड़ते हैं । शरीररूपी वृक्षमें हृदयरूपी आलयथा और उसमें प्राणरूपीपक्षी रहताथा सो चिदाकाश में प्राप्तहुआ जैसे खँभानी से पत्थर धावताहै तैसेही जा प्राप्तहुआ और अपने स्वरूपमें स्थितहुआ । हे रामजी ! यह मैंने वीतवकीकथा तुमको सुनाई है सो अनन्त विचारकरयुक्तहै इसप्रकार विचारकर वीतव विश्रामवान्हुआहै। तुमभी उसको विचार करसिद्धताके सारको प्राप्तहो और दृश्यकी चिन्तनाकोत्यागकेसावधानहो।हेरामजी! जो कुछ मैंने तुमसे पूर्व्व कहाहै कि, उसपदमें प्राप्तहुआ फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता और अब जो कुछकहता हूं और जो कुछ पीछे कहूंगा उसको विचारो । मुक्ति ज्ञानही से होतीहै और ज्ञानहीसे सबदुःख नाशहोतेहैं; ज्ञानहीसे अज्ञान निवृत्तहोता और ज्ञानहीसे परमसिद्धता को प्राप्तहोता है । पाने योग्य यही वस्तु है, और कोई दुःखोंका नाश नहीं करसक्ता । यह निश्चय है कि, ज्ञानसे सब फांसी कटजाती हैं और ज्ञानही से वीतव ने मनको चूर्णकिया । हे रामजी ! वीतवकी संवित जगत्के अतीत होगई । जो कुछ दुःखहै वह मनसे होता है और मनके उपशमहुये सबजगत् अनुभवरूप होजाता है । वीतवभी मनोमात्रथा; मैंभी मनोमात्रहूं तूभी मनोमात्र है

और पृथ्वी आदि जगत् भी सर्व्व मनोमात्र है; मनसे भिन्न कुछनहीं। जहां मन होता है वहां जगत् होता है, मनहीं जगत्‌रूप है और जगत्‌ही मनरूप है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह मनकी दशा को त्यागके केवल चिदानन्द आत्मतत्त्व में स्थितहोता है और रागद्वेप आदि विकार उसके मिटजाते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नामचतुरशीतितमस्सर्गः ८४

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वीतवकीनाईं विदित वेद होकर तुमभी रागद्वेषसे रहित स्थित हो। जैसे तीससहस्र वर्ष वीतव वीतशोक और जीवन्मुक्त होकर बिचरा है तैसेही तुमभी विचरो। और भी बोधवान् राजा और मुनीश्वर हुये हैं जैसे वे उस पद में प्राप्त हुये राजादिक व्यवहार में रहे हैं तैसेही तुमभी जीवन्मुक्त होकररहो। हे रामजी! सुखदुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्व्वज्ञ है; तुम किस निमित्त शोककरतेहो? बहुत विदित वेद पृथ्वीमें विछुरते हैं परन्तु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते—जैसे तुम अब शोक नहीं करते हो। हे रामजी! तुम अब स्वस्थ, उदार, शम और सर्व्वज्ञहो; अब तुमको फिर जन्म न होगा। जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूप में स्थित है वह हर्पशोकको प्राप्त नहीं होता है। जैसे सिंह, वानर और शृगाल आदिकके वश नहीं होता तैसेही जीवन्मुक्त विकारों से रहित होता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! इसप्रसंगमें मुझको संदेह हुआहै उसको जैसे शरत्काल में मेघनष्ट होजाता है तैसेही नाशकरो। हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीर में शक्ति क्यों नहीं दृष्टि आती कि, आकाश में उड़ताफिरे और सूक्ष्मरूपसे और शरीर में प्रवेश करजावे इत्यादिक? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आकाशगमनादिक जो सिद्धि हैं सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति हैं। जो कुछ जगत् विचित्र दिखाई देना और फिर गुप्त होजाना इत्यादिक हैं वे वस्तु द्रव्यके स्वभाव हैं; आत्माके ज्ञानके नहीं। हे रामजी! कोई द्रव्य, क्रिया और कालको यथाक्रम साधता है उसको भी शक्ति प्राप्त होती है और ज्ञानी साधे अथवा अज्ञानीसाधे उसको शक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं। आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानकीही सिद्धता होती है; वह आत्मासेही तृप्त होता है और सिद्धि जो अविद्यारूप हैं उनकी ओर नहीं धावता। जो कुछ जगत् है वह उसने अविद्यारूप जाना है इससे वह पदार्थोंमें नहीं डबता। जो अज्ञानी है वह सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंको साधता है और जो ज्ञानवान् है वह इन पदार्थोंके वास्तेयत्न नहीं करता। यत्नकरनेसे ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो इन्द्रादिकों के ऐश्वर्य्य को पाता है और वह ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है। अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं ज्ञानवान् नहीं धावते क्योंकि, वे सबसे अतीत हैं। जिसने सर्व्व इच्छा का त्याग किया है और

आत्मपद में संतोषपाया है वह इनकी इच्छा नहीं करता। इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाई के निमित्त होती है अथवा मान और जीने और सिद्धिके निमित्त होती है। आत्मज्ञानीको भोगों की, सिद्धता की और मानकी इच्छा नहीं होती क्योंकि, ये सब अनात्म धर्म हैं और वह नित्य तृप्त, परमशांतरूप, वीतराग, निर्वासनिक पुरुष है और आकाशकी नाईं सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे सुख स्वाभाविक आता है तैसेही दुःख भी स्वाभाविक आता है। शरीरके सुख दुःखकी अवस्थामें वह चलायमान नहीं होता; नित्यतृप्त और असंग होता है और जीवन मरणकी वृत्ति उसको नहीं फुरती सबमें सम रहता है जैसे समुद्रमें नदियां प्रवेश करती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा में स्थित रहता है तैसेही ज्ञानवान्‌को क्षोभ नहीं प्राप्त होता। हे रामजी! जो कुछ ज्ञानवान्‌को प्राप्त होता है उसे वह आत्मा में अर्चन करता है; उस को करने में कुछ अर्थ नहीं और न करने में कुछ प्रत्यवाय है। उसको किसी का आश्रय नहीं सदा अपने स्वरूप में स्थित है और यह मंत्र सिद्धि काल कर्मसे होती है। एक योग क्रिया ऐसी है कि, उसके साधने से उड़नेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंसे शक्ति होती है और एक गुटका मुखमें रखनेसे उड़ने इत्यादिककी शक्ति होती है; शक्तिकी नीति प्रथमही हो रहती है। उससे अन्यथा नहीं होती। हे रामजी! जैसीशक्ति जिस साधनसे नियत हुई है उसको सदाशिव भी अन्यथा नहीं करसक्ते क्योंकि; वह स्वाभाविक स्वतः सिद्ध है—जैसे चन्द्रमा में शीतलता और अग्नि में उष्णता है इत्यादिक आदि नीति है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता और सर्व्वज्ञ जो विष्णु भगवान् हैं वे भी अन्यथा नहीं करसक्ते। हे रामजी! जिसद्रव्य में मारने की सत्ता है वह मारता है; और मद्यमें मत्त करनेकी शक्ति है तैसेही द्रव्य, योग, काल आदिकमें सिद्धताशक्ति नियत हुई है। जैसे एक औषधमें क्लेश करनेकी शक्ति है तो उसके पायेसे क्लेश होता है तैसेही इनमें अपनी २ शक्ति है। जो इनको साधता है उसको ये प्राप्त होती हैं। आत्मज्ञानी जो उसका साधनकरे तो वह कर्त्ता में भी अकर्त्ता है। आत्मज्ञान के पाने में सिद्धि कुछ उपकार नहीं करसक्ती परन्तु जो इनकी वांछाकरे तो यत्न करके पाता है—यत्न विना नहीं पाता। आत्मज्ञानीको इच्छाभी नहीं होती क्योंकि, आत्मलाभसे उसकी सब इच्छा शान्त होजाती हैं। हे रामजी! जितने लाभ हैं उनसे परम उत्तम आत्मलाभ है। आत्माको पाकर फिर किसीकी इच्छा नहीं होती। जैसे अमृतके पानकिये और जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही आत्माके लाभसे और इच्छा नहीं होती। ऐसा आत्मलाभ जिसने पायाहै उसको इन सिद्धियों की इच्छा कैसेहो? जैसी २ किसीकी इच्छा होती है उसको तैसाही प्राप्त होता है। ज्ञानी हो अथवा ज्ञानसे रहितहो इच्छाप्रयत्न के अनुसारही प्राप्त होती है। यह जो

वीतव था उसको इच्छा कुछ न थी और प्रथम जो सूर्य्य के पास जानेकी शक्ति दृष्टि आई थी सो क्रिया के साधनसे थी; पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कुछ न रही। हे रामजी! जो कुछ किसीको फल प्राप्त होता है सो अपने प्रयत्नसे प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान् है वह सदा तृप्त रहता है उसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कुछ नहीं फुरती। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! तीनसौ वर्ष वीतव मुनीश्वर समाधि में रहा तो उसका शरीर पृथ्वीमें पृथ्वी क्यों न होगया और सिंह भेड़िये स्यारआदिक उसको क्यों न भोजन करगये? पीछे विदेहमुक्त हुआ प्रथम क्यों न हुआ? पृथ्वी में दबे हुये शरीर को निकालनेके निमित्त बड़ायत्न क्यों किया, इस संशयको निवारणकरो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संवित वासनाके साथ बँधीहुई सुख दुःखको भोगती है और मलीन भावसे घिरीहुई है; जो वासनासे रहित शुद्ध समतारूप है और जो सुख दुःखके भोगसे रहित है और किसी कारण छेदी नहीं जाती। हे रामजी! जिस जिस पदार्थमें चित्तलगता है वही २ पदार्थ स्वरूपमें भासते हैं। यह पदार्थकी शक्ति है। जैसी पदार्थों में शक्ति होती है तैसीही भासती है; इसकारण बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं तौभी समाधिके बलसे उसका शरीर ज्योंकात्यों रहता है क्योंकि; चित्त जिस पदार्थमें लगता है उसकारूप होजाता है। जैसे मित्रको मित्रभावसे देखता है तो स्वाभाविकही प्रसन्न होता है और शत्रुको देखकर चित्तमें स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरआती है; मीठी वस्तुको देखकर चित्त स्वाभाविकही लोलुप होजाताहै और कटुकमें विरसताको प्राप्तहोताहै; मार्ग चलनेवालेका चित्त मार्ग के पर्व्वत और वृक्षों के रागसे बंधायमान नहींहोता; चन्द्रमाके निकट गयेसे शीतलता होती है और सूर्य्यके निकट उष्णता प्राप्तहोती है सो पदार्थकीशक्तिहै जिस पदार्थकेसाथ वृत्तिका स्पर्शहोता है उसका स्वाभाविक आरम्भ विफल प्राप्तहोताहै। तैसेही योगी जब देह और इन्द्रियोंकी वासना और ममत्वभावको त्यागकरके समभावमें प्राप्तहोताहै तब उसको सम भावका अनुभवहोताहै अर्थात् सबमें एकहीभासताहै। इसकारण शरीरको सिंहादिक कोई भोजन नहीं करसक्ते और जो जीव उसके घात करनेको आते हैं वे हिंसाभावको त्याग अहिंसक होजाते हैं। वीतवका शरीर जो छेदको न प्राप्तहुआ और न पृथ्वीमें पृथ्वीहोगया उसका यहकारणहै कि, सर्वत्रसमता आकाश एकही स्थितहै और काष्ठ, लोष्ठ, पत्थर, ब्रह्मादि तृणपर्यंत सब में एक अनुस्यूत है; जहां पुर्य्यष्टका होती है वहां भासता है और जहां पुर्य्यष्टका नहीं होती वहांनहीं भासता। जैसे सूर्य्यका प्रतिविम्ब सब ठौरमें पूर्ण है परन्तु जहां स्वच्छ ठौर, दर्पण, जल आदि होते हैं वहां भासताहै और जहां उज्ज्वलठौर नहीं होता वहांप्रतिविम्ब नहींभासता तैसेही जहां पुर्य्यष्टका है वहां संवित भासती है अन्यथानहीं भासती, इसकारण वीतवकी संवित जो सम-

भाव में स्थितहै उसको किसीतत्त्व और जीवकाक्षोभ नहीं होता। पंचतत्त्वोंका क्षोभ तब होता है जब प्राणफुरते हैं और जब प्राणफुरने से रहितहोते हैं तबतत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता; वीतवकी प्राणोंके भीतर और बाहरकी स्पन्दकला शांतहोगईथी और प्राण और चित्तकला दोनों फुरनेसे रहितथीं इससे उसकाहृदयभी क्षोभित न हुआ। हे रामजी! देहरूपी गृहमें जब चित्त और वायुकास्पन्दशांत होजाता है तब शरीर नाशहोजाता है और सब सुमेरुकी नाईं स्थित होजाता है; तब किसीकी सामर्थ्यनहीं होती कि, इसको क्षोभ करे और नाशकरे। योगीश्वरका चित्त और प्राण निस्पन्द होजाता है। वह इनकोवशकरके लगाताहै तबउसको न तत्त्वोंका क्षोभहोताहै, न वात, पित्त, कफकाक्षोभ होता है और न और कुछक्षोभ होता है इसकारण योगीका शरीर सहस्र वर्ष पर्य्यन्तभी ज्योंकात्यों रहता है नष्ट नहीं होता है। जैसे वज्रको कोई चूर्ण नहीं करसक्ता तैसेही उसके शरीरको कोई नाश नहीं करसक्ता—सबकी शक्ति उसपर कुंठितहोजाती है। इसकारण वीतवका शरीर ज्योंकात्यों रहा। पहिले वह विदेह मुक्त क्यों न हुआ सोभीसुनो। हेरामजी! तत्त्वज्ञ और विदित वेद,वीतराग महाबुद्धि है। जिनकी अभिमानरूपी गांठि टूटपड़ी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनको न कोई प्रारब्ध कर्म है, न संचितकर्म्म है और न वर्त्तमानका कर्म्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छ विचरता है और जैसी इच्छाकरे तैसी शीघ्रही होती है। हे रामजी! वीतवको जब आकाशमात्रसे जीनेकास्पन्द फुरआया तब वह कुछकाल जीता रहा और जब उसकी संवित में विदेह मुक्त होनेका स्पन्दफुरा तब विदेहमुक्त होगया। ज्ञानवानों की स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है; जिसकी वे वांछा करते हैं सो तत्कालही होजाता है और मन आत्म पद में स्थित होता है; उनको कुछ कृत और कर्त्तव्य नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धिलाभविचारोनामचतु-
रशीतितमस्सर्गः ८४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि,जब विचारसे वीतवका चित्तशांत हो-गया तब उसको मैत्री, करुणादिक गुणप्राप्त हुये परन्तु जब विवेकसे उसका चित्त नष्ट होगया तो फिर मैत्री आदिक गुणकहां आन प्राप्तहुये? वशिष्ठजी बोले, हेराम-जी! चित्तका नाश दो प्रकारका है। जीवन्मुक्तका चित्तअचित्त रूपहोजाता है और विदेह मुक्तका चित्तस्वरूपसे नष्ट होजाता है। जैसे भूनादाना होता है तैसेही जीव-न्मुक्त का चित्त देखनेमें चित्तरूपहै बीचसे शब्दभावनहीं और जैसे दाना नष्टहोजा-वे तैसेही विदेहमुक्तका चित्त देखनेमात्रभीनहीं रहता। हे रामजी! चित्तकी सत्यताही दुःखोंका कारण है और चित्तकी असत्यताही सुखोंका कारण है। जिस चित्त में

विषयों की वासनाफुरती है सो चित्त जन्मों का देनेवालाहै और दुःखों का कारणहै। गुणोंके सङ्गसे अहंमम भावमें रहता है और चित्तकी सत्यतासे जीवकहाता है। हे रामजी! जबतक चित्त विद्यमान है तबतक अनन्त दुःख होता है। दुःखरूपी वृक्ष का बीज चित्तही है। जब चित्तनष्ट होता है तबकल्याण होता है। रामजीने पूछा, हे ब्राह्मण! मन किसकानाम है? कैसे नष्टहोताहै और कैसे अस्त होता है सो कहिये? वशिष्ठजीने कहा, हे प्रश्नवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! चित्तसत्ताकालक्षण मैंने तुमसे कहा है; अब चित्तमृतककालक्षणसुनो। जिसको सुख और दुःखकीदशा धैर्य और स्वरूपको चला नहीं सक्ती। जैसे सुमेरुको पवन चला नहीं सक्ता तैसेही जिसके चित्तको दुःख चला नहीं सक्ता तिसका मृत्यु जानो; अर्थात् जो चित्तसत्पदको प्राप्तहुआ है उसचित्त से चिंतानाश होजाती है। जैसे भुने दानेमें अंकुर नाश होजाता है तैसेही उसका चित्त नाश होजाता है। जिसको आत्मासे भिन्न कुछनहीं फुरता वह चित्तमृतक हुआ है। हे रामजी! जिसके चित्तको अहंइच्छा द्वेषादिक विकार तुच्छनकरसके उसका चित्त मृतकजानो और जिसको इन्द्रियोंके विषय इष्टअनिष्ट न प्राप्तहों और रागद्वेष से ग्रहणत्यागकी द्वैतभावना न उपजे ज्योंकात्यों रहे उसीपुरुषका चित्तमृतक जानो। जिसका चित्त नाशहुआ है उसे जीवन्मुक्तजानो। जिसको संसारके इष्टपदार्थोंमें राग होता है वह ग्रहणकी इच्छा करता है और अनिष्ट की प्राप्तिमें द्वेषकरके त्याग ने की इच्छा करता है। अहंमम भावसंयुक्त देहमें जो अभिमान है उससे आपको सुखी दुःखी मानताहै और अपने में अनुभव होताहै सो चित्त जीता है—यह चित्तसत्यता है जब चित्त संसारसे विरक्त हो और सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों का श्रवण और मनन और स्वरूप का अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है और तभी जीवन्मुक्त होकर विचरता है। जिसप्रकार मैत्री आदिक गुण जीवन्मुक्त में होते हैं सोभी सुनो। हे रामजी! चित्त में जो संसारकी सत्यता रूपी मैल है यही चित्तभाव है। वह जब आत्म ज्ञानसे नष्ट होजाता है तब मैत्री आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य्य के उदय हुये तम नष्ट होजाता है और प्रकाश उदयहोता है और जैसे भूनेदाने का अंकुर जलजाता है तैसेही ज्ञान से चित्तका चित्तस्वभाव नष्ट होजाता है और मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं। तब देखनेमात्र चित्त दिखता है और अज्ञानीकीनाईं यत्न करता भासता है परन्तु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं। जैसे कच्चा-दाना उगता है, भूनानहीं उगता; तैसेही अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता। जैसे चन्द्रमा राहुसे छूटता है तब चित्त में मैत्री, करुणा आदिक गुण उदय होते हैं और जैसे बसन्तऋतु के आये वेलैं सब प्रफुल्लित हो आती हैं तैसेही चित्तभाव

मिटेसे मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक फुरते हैं। जो विदेहमुक्तहोता है उसका चित्त स्वरूपसे भी नष्ट होजाताहै और वहां गुण कोइनहीं रहता। वह अवस्था और कोई नहीं जानता विदेह मुक्तही जानताहै। उसमें द्वैतकल्पना कुछनहीं फुरती और निर्मल पावन पदहै। हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपमें अचित्तहोकर रहताहै और विदेह मुक्तमें चित्त स्वरूपसे नष्टहोजाताहै, इसकारण जीवन्मुक्तमें मैत्रीआदिक गुण पायेजाते हैं। आत्मा जो निर्मल और निष्कलंक है सो चित्तकेनष्टहुये विदेहमुक्त में रहताहै; उसमें गुणोंकी कल्पना कोईनहीं फुरती वह परमपावन निर्मल पदमें स्थित होताहै और शान्तिआदिक गुणभी नष्टहोजाते हैं क्योंकि; चित्तस्वरूपसे नष्टहोजाता है। चित्तके नष्टहुये चित्तकी अवस्था कहांरही। तब न कोई गुणरहताहै, न अवगुण रहताहै; न वह गुणोंसे उत्पन्नहुआ सारकहाता है और न अवगुणों से उत्पन्नहुआ असार कहाताहै; न लोलुप है; न लक्ष्मीहै, न अलक्ष्मी है; न उदयहै, न अस्त है; न हर्ष है, न शोकहै; न तेजहै, न तमहै; न दिनहै, न रात्रिहै; न संध्याहै, न दिशाहै; न आकाशहै; न अर्थ है, न अनर्थहै; न वासना है, न अवासनाहै; न अंजनहै, न निरं-जनहै; न सत्यहै, न असत्य है; न चन्द्रमाहै, न तारे हैं और न सूर्य्य है। ऐसा जो सर्वकलना से रहित शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल और बुद्धिसे परेपदहै उसमें औरकी गमनहीं। जैसे आकाशके स्थानको पवन जानताहै तैसेही उसकी अवस्थाको वहीजाने। वहांस्थित हुये सबदुःख शान्तहोजाते हैं और ब्रह्मानंदमें लीनहोजाताहै। ज्ञानवान् आकाश की नाईं निर्मल पदको प्राप्तहोता है जिसके पायेसे और पाना कुछनहीं रहता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेज्ञानविचारोनामपञ्चाशीतितमस्सर्गः ८५॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! परमाकाशके कोशमें एकपहाड़है उसपर जगत्‌रूपी एक वृक्षहै; तारेउसके फूलहैं; मेघपत्रहैं; सूर्य्य, चन्द्रमा स्कंध हैं, और देवता, दैत्य, मनुष्यादिक सबजीव उसपर पखेरूरहते। सातोंसमुद्र उस पहाड़पर बावलियां हैं और अनन्त नदियां उसमें प्रवेशकरती हैं। चतुर्दश प्रकारके भूतजात उसमें उत्पन्न होते हैं और सुखदुःखरूपी फलोंसे पूर्ण है, और मोहरूपी जलसे वह सींचाजाता है सो दृढ़होकर स्थितहुआहै। उसकाबीज कौनहै? बोधकी वृद्धिके निमित्त यह ज्ञानरूपी सार मुझसे संक्षेपसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इससंसारका बड़ा बीज शरीरहै; जिसके भीतर आरम्भकी घनताहै। जबशुभ अशुभका आरंभ शरीर का अंकुरहोताहै तबशुभ अशुभकरताहै, इससे संसारका बीजशरीरही है; और शरीर का बीजचित्तहै; राजस, सात्त्विक और तामस वृत्ति उसकी टहनियां हैं। वही जन्ममरण का भंडारहै और सुख दुःखरूपी रत्नोंका डब्बाहै। ऐसा जो चित्तहै वहइस शरीरका

कारणहै। हे रामजी! जो कुछ जगत्‌जाल दृष्टिआताहै वह सब असत्‌रूपहै। चित्त के फुरनेसे नानाप्रकारके आडम्बर भासते हैं। जैसे गन्धर्व नगर नानाप्रकारके आरंभ सहित भ्रमसे भासताहै और संकल्पपुर भासता है सो असत्‌है तैसेही यह जगत् असत्‌है। जैसे मृत्तिकामें घटभावहोताहै तैसे चित्तमें जगत्‌का सद्भाव होताहै। चित्त रूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं-एक प्राणोंकाफुरना और दूसरा दृढ़भावना। जब प्राणस्पंद होताहै और हृदयमात्रमें जो एकसौएकनाड़ी हैं उनकीओरसंवेदनरूप चित्त उदयहोताहै तब प्राणस्पंद उनकी ओर नहीं फुरता। जबप्राण फुरता है तब शुद्ध सात्त्विक चित्त उपजताहै और उसमें जगत् भासताहै। जैसे आकाशमें नीलता भासती तैसेही प्राणोंमें नीलता भासतीहै। जब प्राणस्पन्द होताहै तब चित्त संवित उछलतीहै-जैसे हाथसे ताड़नाकिया गेंदउछलताहै। जैसे प्राणस्पंदमें सर्वगत संवित उपलब्धरूप होती है और वहां प्रतिविम्बरूप होकर सात्त्विक भागमें स्थित होतीहै और महासूक्ष्मसे सूक्ष्महै-जैसे वायु में गन्धरहती है। वही संवितरूपको त्यागकर जब वहिर्मुख धावती है तब उससे नानाप्रकारके जगत् भासते हैं और नानाप्रकार की वासना उठती हैं और उनसे अनेकदुःखोंको प्राप्तहोताहै। इससे, हे रामजी! संवित को अन्तर्मुख रोकनाही कल्याणका कारणहै। जब संवित स्वरूपमें स्थितहोतीहै तब क्षोभमिटजाताहै और जबशुद्ध संवितमें अहंउल्लेख फुरताहै तब वेदनरूप होतीहै सोहीचित्तहै; चित्तसे अनेक दुःखहोते हैं और चित्तकाहोना अनर्थका कारणहै। जब चित्त न उपजे तब शान्ति होजातीहै और चित्त तब निवृत्तहोता है जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्टहो। ध्यान और प्राणायामसे योगीश्वर प्राणोंको रोकता है तब चित्त स्थितहोजाता है। यह योगसे अनुभव करताहै। ज्ञानसे जो अनुभव होताहै सोभी सुनो। हे रामजी! चित्तवासनासे उत्पन्नहोताहै और वासनाविचारसे रहित फुरतीहै। जैसे बालकोंको जन्मसेही स्तनोंसे दूधपीनेकी वृत्ति फुरतीहै तैसेही अकस्मात् भावनाकी दृढ़तासे वासना फुरआतीहै। हेरामजी! जिसमें पुरुषकी तीव्र भावना होतीहै वहीरूप पुरुषकाहोताहै। स्वरूपके प्रमादसे जो भासितहोताहै उस में दृढ़ प्रतीत होजातीहै तब उसकी भावना करताहै और जगत्‌की वासनासे मोह प्राप्तहोताहै स्वतःसिद्ध जो अनुभवरूप आत्माहै उसको जाननहींसक्ता। वासनाकी प्रवलतासे स्वरूपका त्यागकरता है और भ्रान्तिरूप जगत्‌को सत्यदेखता है—जैसे मद्यसे मतको पदार्थ और के और भासते हैं तैसेही मूर्खोंको वासनाके बलसे जगत् के पदार्थ सत्यभासते हैं। हे रामजी! असम्यक् ज्ञानसे जीव दुःखीहोताहै; शान्तिको नहीं प्राप्तहोता और मनकी चिन्तासे जलताहै। मन किसका नामहै सो सुनो। जो असम्यक् ज्ञानसे अनात्मामें आत्मभावना हो और वस्तु आत्मामें अवस्तु अनात्म

भावना हो उसका नाम मन है । वह मन ऐसे उत्पन्न होता है कि, प्रथम चेतन सम्वित्में पदार्थों की चिन्तना होतीहै फिर तीव्र पदार्थों की दृढ़ भावना होती है तब वही चेतन संवित् चित्तरूप होजाती है । उस चित्तमें फिर जन्ममरणादिक बिकार उपजते हैं और फिर किसीका ग्रहण और किसीका त्याग करताहै । जब ग्रहण और त्यागका संकल्प हृदयसे निवृत्तहो तब चित्तभी मृतक होजावे । जब बासना नष्टहो-जाती है तब मन अमन पदको प्राप्त होताहै । मनका अमनहोनाही परम उपशमका कारण है । हे रामजी ! जो कुछ जगत्के पदार्थ हैं उनकी अभावना कीजिये और सब जगत् अबस्तु भूत त्याग कीजिये तब हृदय आकाशमें चित्त शांत होगा । हे रामजी ! चित्तका स्वरूप इतनाहै । जब पदार्थोंसे रस उठजावे तब चित्त फिर नहीं उपजता । जबतक पदार्थोंका रस फुरता है तबतक स्थूल रहता है और असम्यक् ज्ञानसे अनात्मामें जो आत्मभावनाहै ज्योंज्यों यह दृढ़होती है त्योंत्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाताहै और ज्योंज्यों अनात्मासे आत्मबुद्धि निवृत्त होजाती है अर्थात् अबस्तुमें वस्तु बुद्धि नहीं होती त्योंत्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण होताजाता है सो कल्याण के निमित्त है । जब चित्त यथाभूत यथार्थ को देखता है तब चित्त अ-चित्त होजाता है, सब आशा निवृत्तहोजाती हैं और परमशांति और शीतलताहृदय में स्थित होती है तब पदार्थोंको ग्रहणभी करताहै परन्तु हृदयसे राग संयुक्त बासना निवृत्त होती है तो उससे चित्त शांतिको प्राप्त होता है । हे रामजी ! जीवन्मुक्तमें भी चेष्टा दृष्ट आती है परन्तु जन्मका कारण नहीं होती क्योंकि; मनमें मनका सद्भाव नहीं होता । जैसे नटुआ अभिमानसे रहित अनेकप्रकारके स्वांग धरता है तैसेही वह अभिमानसे रहित चेष्टाकरता है और जैसे कुम्हारका चक्र भ्रमता २ ताड़नासे रहित हुआ शनैः स्थिर होजाता है तैसेही ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है परन्तु जन्मका कारण नहीं होता और जब प्रारब्धभोग पूर्ण होता है तब स्वाभाविक ठहरजाता है । जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही रागसे रहित ज्ञानी की चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती देखनेमात्र ज्ञानी और अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है । जैसे भूना और कच्चाबीज एक समान भासता है परन्तु कच्चा उगता है और भूना नहीं उगता तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारणनहीं होती क्योंकि; उसका चित्त शांत होजाता है । हे रामजी ! जिसकीचेष्टा अभिमान से रहित है वह जीवन्मुक्त कहाता है । उसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है और वह जब शरीरको त्यागता है तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है । हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा बासनाका फुरना । जब दोनों में एकका अभाव हो जाताहै तब दोनों नाशहोजाते हैं—ये परस्पर कारणरूप हैं । जैसे तालसे मेघ जल-

पान करके फिर वर्षासे तालको पुष्ट करता है सो परस्पर कारणरूप है; तैसेही प्राण स्पन्द और वासना परस्पर कारणरूप हैं। जैसे बीजसे अंकुर होते हैं और अंकुर से बीजहोते हैं तैसेही प्राण स्पन्दसे वासना होतीहै और वासनासे प्राणस्पन्द होता है। ये दोनों चित्तके कारण हैं। जैसे फूल विना सुगन्ध नहीं और सुगन्ध विना फूलनहीं होता तैसेही वासना विना प्राणनहीं होते और प्राण विना वासना नहींहोती। हे रामजी! जब वासना फुरती है तब सम्भावित में क्षोभ होता है और वह प्राणों को जगाती है तब उसमें जगत् उपजताहै। जब हृदयमें प्राणस्पन्दके धर्म्म होते हैं तब सम्वित् क्षोभवान् होता है और चित्तरूपी बालक उपजता है। इस प्रकार वासना और प्राण दोनों चित्तके कारण हैं जब दोनोंमें एक का नाश होजावे तबदोनों नाश होजावें और चित्तका भी नाश होजावे। हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्ष है; सुख दुःखरूपी उसके स्कन्ध हैं; चिन्तारूपी फल हैं; कार्य्यरूपी पत्र हैं; वृत्तिरूपी वेलसे वेष्टित हुआ है और रागद्वेषरूपी दो बगले उसपर आन बैठे हैं; तृष्णारूपी काली सर्पिणी से वेष्टित है और इन्द्रियांरूपी पक्षी उसपर आन बैठे हैं; इच्छादिक रोगोंसे पुष्ट होता है और अज्ञान इसका मूलहै। जब अवासनारूपी खड्गसे शीघ्रही काटाजाता है तब संसारकी अभावना और स्वरूप की भावनासे शीघ्रही नाश होजाता है। जैसे तीक्ष्णपवन से पकाहुआ फल वृक्षसे शीघ्रही गिर पड़ता है तैसेही आत्मभावसे फल गिरपड़ता है। हे रामजी! चित्तरूपी आंधीने सर्व्वदिशा मलीन करके प्रकाशको घेरलिया है और तृष्णारूपी तृण उस में उड़ते हैं। शरीररूपी स्तम्भाकार वायुगोला अज्ञानरूपी कुण्डसे उपजाहुआ वड़े क्षोभको प्राप्तकरता है। जब हृदय में प्रकाशहो तबतम को दूरकरे और जब स्पन्दरोकिये तब धूर शान्त होजातीहै। आत्म विचारसे जब वासना रहितहो तब शरीररूपी धुवांशान्तहोजावे। हे रामजी! प्राणोंके रोकनेसे शान्तिहोती है और वासनाके न उदय होने से चित्त स्थिर होजाताहै। प्राणस्पन्द और वासनाकाबीज संवेदनहै, जब शुद्ध सम्वित्मात्रसे संवेदनका त्यागकरे तब वासना और प्राण दोनों न फुरें। जैसे वृक्षका बीज और मूलकाटडालिये तो फिर नहीं उगता, तैसेही इनकामूल संवेदन है। जब संवेदनका अभावहो तब दोनों नहीं बनते। संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, सम्वित् सत्तासे संवेदन प्रकटहुआहै उससे भिन्ननहीं। जैसे तिलोंमें तेलके सिवा और कुछनहींहोता तैसेही सम्वित सत्ताके सिवा हृदय में और कुछनहीं पायाजाता—वही संकल्पद्वारा संवेदनको देखता है। जैसे स्वप्ने में मनुष्य अपनी मृत्यु देखता है और देशांतरको प्राप्त होता है तैसेही सब सत्ता संवेदन को देखती हैं। चिन्मात्र सम्वित् में संवेदन का उत्थान होता है कि, 'अहंअस्मि' तब संवेदन जगत् जाल दिखातीहै। अपना-

ही संवेदन उठकर आपको भ्रम दिखाता है—जैसे बालकको अपने संकल्पसे उपजा वैतालसत्य भासता है और जैसे स्थान में पुरुष भासता है तैसेही संवित्में संवेदन भासता है। हे रामजी ! असम्यक् ज्ञान से संवेदनरूप होजाता है तो उसमें आत्म-बुद्धि होती है और सम्यक् ज्ञान से लीन होजाता है। जैसे रस्सी में असम्यक् ज्ञान से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में संवेदन भासता है । तीनों जगत् ब्रह्म संवित्-रूप हैं संवेदन भी कुछ भिन्न नहीं। जिनको यह निश्चय दृढ़ होता है उनको बुद्धी-श्वर सम्यक् ज्ञानी कहते हैं । प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जो जगत् है उससे वास्तव बुद्धि त्याग करने से भी संसार के पार होता है और जो अवस्तु बुद्धि से न त्यागेगा तो जगत् बड़े विस्तार को पावेगा । हे रामजी ! संवेदन का जो उत्थान होता है सोबड़े दुःखोंका देनेवाला है और संवेदन जो जड़वत् अजड़ है वह परम सुख सम्पदाका कारण है सो आनन्द उत्थानसे रहित आनन्दस्वरूप है। जिसको संवेदन उत्थानसे रहित असंवेदन संवित् आत्माकी बुद्धिहुई है वह संसार समुद्र से पार होता है। रामजीने पूंछा, हे प्रभो ! जड़तासे रहित असंवेदन कैसेहोता है और असंवेदनसे जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जो सर्व्व ठौरमें आसक्त नहीं होता और कहीं चित्तकी वृत्ति नहीं लगाता और जिसमें जीव तत्त्वका कुछ ज्ञान नरहे वह असंवेदन जड़तासे रहितहै। संवेदन स्पन्द रूपहै, जिससे दृश्यभासता है सो दृश्यकी ओरसे जड़ है और स्वरूपमें चेतन है वह अजड़ कहा-ता है। हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है उससे संवेदनका स्पर्श कुछ न हो ऐसा संवित् अजड़ है। देवता, नाग, दैत्य, राक्षस, हाथी, मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सबवही धारती है। हे रामजी ! अपनी चेष्टासे संवित् आपको आपही बँधाती है। जैसे कुसवारी आपही आपको गृहमें बँधाती है तैसेही संवित् आपको बँधाताहै। जब अपनी ओर आती है तब आपही आपको प्राप्तहोती है। हे रामजी ! जगत् जाग्रत्रूपी समुद्र है उसमें संवित् रूपी जलहै जिससे सब स्थान पूर्ण होगया है। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश, पर्व्वत, नदी आदिक सब संवित्रूपी जलकी लहरें हैं इससे सबजगत् संवित्मात्रहै और उसमें द्वैतकलनाका अभावहै।यह सम्यक् ज्ञान है। इस संवित्का बीज सन्मात्र है उसमें द्वैत कलनाका अभाव है। यहसम्यक् ज्ञान है। इस संवित्का बीज सन्मात्र है और सन्मात्र सत्तासे संवित् उदय हुआ है—जैसे प्रकाश से ज्योति उदय होती है। इससत्ताके दोरूप हैं—एकरूप नानाप्रकार हो भासता है और दूसरा एकही रूप है। घट, पट, तत्त्वं आदिक एकसत्ताके नाना-प्रकार के विभाग स्थित हैं और विभागसे रहित एक सत्तास्थित है—वहसत्ता समान अद्वैतरूप परमार्थहै। हे रामजी ! विषयको त्यागकर जो सन्मात्रहै वह अलेप एक-

रूपहै सोही महासत्ता है। उसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं। नानाआकार भी वह सत्ता कभी नहीं धारती। यह संवेदन से हुये हैं इसकारण अवस्तुरूप है। एक रूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है वह न कभी नाश होताहै और न विस्मरण होता है क्योंकि; अनुभवरूप है। हे रामजी! एक कालसत्ता है और एक आकाशसत्ता है सो यह सत्ता अवस्तुरूप है। इस विभागसत्ताको त्यागकर सन्मात्रसत्ताके परायणहो। कालसत्ता और आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम हैं परन्तु वास्तव नहीं। जहां नानाविभाग कलना, आकार और नाना कारणहैं वह पवित्रकर्त्ता पावन नहीं। इसी से कहाहै कि,आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं और सत्तासमान जो सम्वित्मात्र है वह सबका बीजहै उसीसे सबकी प्रकृति होतीहै। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं उनकी कलना सत्तासाशान पर्यंत है। उस अनन्त, अनादि, बीजरूप परमपदका बीज और कोई नहीं। जब उसका भान हो तब यह निर्विकार होकर स्थित हो। जीवन्मुक्त उसीको कहते हैं जिसे दृश्यकी भावना कुछ न फुरे। जैसे बालक मूक, और अभिमान से रहित होता है तैसेही ज्ञानसे जीव निर्वासनिक हो तब जड़तासे मुक्तहोता है और सर्व्व आत्मभावको प्राप्तहोता है। जिस सम्वित् में दृश्यका स्पर्श होता है वह सम्वित् जड़ है क्योंकि; शुद्धस्वरूप में सलीनका स्पर्श होताहै। जो सम्वित् द्वैतफुरनेसे रहितहै वहशुद्ध और अजड़है और जो द्वैतभावको ग्रहण करती है वह स्वरूपकी ओरसे जड़ है। हे रामजी! जिसकी स्वरूपकी ओर स्थितिहुईहै और दृश्यभावका लेप नहीं होताहै वह सर्व्व वासनाको त्यागकर निर्विकल्प समाधि में लगता है। जैसे आकाशमें नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है तैसेही योगी आनन्दमें वर्त्तता है और निस्संवेदन सम्वित् में प्रविष्ट होकर वहीरूप होजाता है जिसके मनकी वृत्ति वहां स्थिर होजाती है और बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगन्ध लेते, देखते,सुनते और सब इन्द्रियोंकी क्रियाकरते भी मन स्थिर रहता है दृश्यका अभिमान नहीं फुरता वह अजड़ कहाताहै और संवेदनसे रहित सुखीहोता है। हे रामजी! ऐसी दृष्टिप्रथम तो कष्टरूप भासती परन्तु पीछे सब दुःखोंका नाश कर्त्ता होतीहै, इससे इसीदृष्टिका आश्रयकरके दुःखरूप जो संसार समुद्रहै उससे तरजावो। जैसे वटका बीज सूक्ष्महोता है पर विस्तारको पाकर आकाशकोस्पर्श करने लगता है तैसेही सूक्ष्म संवेदन से जब संकल्प फैलता है तब वही बड़े जगत् के विस्तार को धारता है और जन्मके जालको प्राप्त होता है। बीजरूपसे आपही अपने को जन्मों में डालता है और फिर फिर मोह में गिरता है। जब संवित् अपनी ओर होती है तब मोक्षको प्राप्तहोता है और जैसी भावनास्वरूपमें दृढ़ होती है वही सिद्ध होती है। जैसे नटुआ अनेक स्वांग को धारता है तैसेही संवित् अनेक

आकारों को धारती है । जब नट भूमिका को त्यागता है तब अपने स्वरूप में प्राप्त होता है । हे रामजी ! संवित्‌रूपी नटनी जगत् रूपधारकर नृत्य करती है। जो दुःखरूप संसार समुद्रसे न गिरे सो सत्ता सब कारणों का कारण है और उसका कारण कोई नहीं और वही सब सारोंका सार है उसका सार कोई नहीं। उसी चेतनरूपी बड़े दर्पणमें समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है । जैसे तालमें किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं तैसेही सबवस्तु चिद्दर्पणमें प्रतिबिम्बितहोती है। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आत्मसत्तासे सिद्ध होते हैं और उसी अनुभव में सबका अनुभव होता है । जैसे षट्‌रसोंका स्वाद जिह्वासे सिद्धहोता है तैसेही सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रय सिद्ध होते हैं । सब जगत्‌गण उसीसे उपजे हैं; उसी में वर्त्तते और बढ़ते हैं; उसीमें स्थित दिखतेहैं और उसी में लीन होते हैं। सबका अधिष्ठान वही सत्ताहै और गुरूकागुरू; लघुकी लघुता; स्थूलकी स्थूलता; सूक्ष्मकी सूक्ष्मता; द्रव्यों का द्रव्य; कष्टों में कष्ट;बड़ेमें बड़ाई,तेजका तेज, तमकातम, वस्तुकी वस्तु,द्रष्टा का द्रष्टा; किंचनमें किंचन; निष्किंचनमें निष्किंचन; तत्त्वोंका तत्त्व; असत्यका असत्य; सत्यका सत्य; आश्रम में आश्रम और अनाश्रममें अनाश्रम वही है । हे रामजी ! ऐसी जो परमपावन सत्ता है उसमें प्रयत्न करके स्थित हो; फिर जैसे इच्छाहो तैसे करो । वह आत्मतत्त्व निर्मल,अजर, अमर, शान्तरूप और चित्त के क्षोभसे रहित है;उसमें भवसंसार से मुक्तिके निमित्त स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेस्मृतिबीजविचारोनामपडशीतितमस्सर्गः ८६ ॥

रामजीने पूछा, हे महानन्दके देनेवाले ! यह जो बीजोंकाबीज आपने कहा है सो किसप्रकार प्राप्तहो ? जिसप्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्तिहो वह उपायकहिये । वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! इन सब के बीजका जो उत्तर दिया है उस उपायसे परमपद की प्राप्तिहोती है । अब औरभी जो तुमने पूछा है वह सुनो । सत्ता समानमें स्थित होनेके निमित्त यत्न कर्त्तव्य है । जो कुछ संसार की वासना है बलकरके उसको त्याग करिये और शुद्ध आत्मामें तीव्र अभ्यास करिये तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्तिहोगी । हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदमें एक क्षणभी स्थित होगे तो अक्षयभावको प्राप्त होगे । हे रामजी ! सत्तासमान संवित्‌मात्र तत्त्व है उस में स्थित होके जो इच्छाहो सो करो तब उसके सिवा और कुछ सिद्ध न होगा—सब वहीभासेगा। ऐसा जो अनुभवतत्त्वहै वह तुम्हारा स्वरूप है उसके ध्यानमें स्थितहुये तुमको कुछ खेद न होगा। ऐसा संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता और ऊंचापद है पुरुष प्रयत्नसे उस पदको प्राप्तहो । हे रामजी ! केवल संवेदनके साथ ध्यान नहीं होता क्योंकि, सर्वत्र सम्भव संवित् तत्त्वहै । संवित् सर्वदा सर्व्वकाल सहायक होती है और सबसे मिलीहुई है

जो कुछ चित वे, जो इच्छित हो जो कुछकरे सो सब संवित्से सिद्धहोता है। हेराम जी! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है पर उसका भान नहीं होता और जो कुछ भासता है वही अविद्या आवरण है सो इसको दुःखहोता है। स्वरूपके प्रमादसे जो दृश्यकी वासना करता है उसकी दृढ़तासे अन्तःकरण दुःख पाताहै। जब यत्नकरके वासनाका त्याग करिये तब मन और शरीरके दुःख सबनाश हो जावेंगे। पूर्व जो मोह दृढ़ होरहा है—जैसे मेरुको मूलसे उखाड़ना कठिन है तैसेही वासना का त्याग कठिन है। वह वासना मनसे होतीहै; जबतक मनक्षय नहीं होता तबतक वासना भी क्षयनहीं होती। तत्त्व ज्ञानबिना मन नाशनहीं होता। वासना और मनका आवरण एकसाथ दूरहोता है। यह परस्पर कारण रूप हैं। इससे, हे रामजी! तुम पुरुष प्रयत्न करके मनके सङ्कल्प विकल्पको निवृत्त करो और अभ्यास और विचार करके विवेक का उपायकरो और भोगोंकी वासना दूरसे त्यागो—इसीसे तुम शान्तिमान् होगे। इन तीनों के सम अभ्याससे तत्त्वज्ञान,मनोनाश और वासना क्षयका वारम्वार अभ्यास करो। जबतक इनको न साधोगे तब तक अनेक उपायों से भी शांतिको न प्राप्त होगे। हे रामजी! वासना क्षयहो और मनोनाश और तत्त्वज्ञान का अभ्यास न करे तो कार्यसिद्ध नहींहोता और जो मनोनाशकरे और तत्त्वज्ञानसे वासना क्षय न करे तबभी कल्याण न होगा और तत्त्वज्ञान का विचार करे और वासना क्षय नहो तोभी कुशल न होगा। जब इनतीनों का शम अभ्यासहो तब फलकी प्राप्तिहो। हे रामजी! एकके सेवने से सिद्धता नहीं प्राप्त होती—जैसे मंत्रीको कोई प्रतिबन्ध लयकरे तो मंत्र फलदायक नहींहोता। और एक एक चरणपढ़े तोभी फलदायक नहींहोता। जबतक सब मंत्र संध्यादिक एकठौर नहीं होते तबतक मंत्रनहीं फुरते;तैसेही अकेले से कार्यसिद्ध नहींहोता। जब चिरकाल इनकोइकट्ठा सेवे तबकार्यहो। जैसेसेना संयुक्त बड़ा शत्रुहो और उसके मारने को एकशूरमा जाव तो शत्रुको मार नहीं सक्ता और यदि इकट्ठे सेनापर जापड़े तब उसको जीतलेवे;तैसेही संसाररूपी शत्रुके नाशकेलिये जब तत्त्वज्ञान,मनोनाश,और वासना क्षय,का इकट्ठा अभ्यासहो तब संसाररूपी शत्रु नाशहो। हेरामजी! जब तीनोंका अभ्यासकरोगे तब हृदयकी अहंममग्रंथि टूटपड़ेगी। अनेकजन्मोंकी संसार सत्यता जो इसके हृदयमें स्थित होरही है सो अभ्यास योगसे टूटपड़ेगीइससेचलते, बैठते, खाते,पीते, सुनते, सूंघते, स्पर्श करते और जागते इन तीनों का अभ्यास करो। हे रामजी! वासनाके त्यागसे प्राणस्पन्द रोकाजाता है। जब प्राणोंका स्पन्दरोका तब चित्त अचित्त होजाता है। एक प्राणोंके रोकनेसेही वासना क्षयहोजाती है, तबभी चित्त अचित्त होजाता है। आत्मयोगसे अथवा वासना के त्यागसे आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। इनमें जो तुम्हारी इच्छाहो वहीकरो; चाहे प्राणों

को योगसे रोको और चाहे वासना का त्यागकरो। प्राणायाम तब होता है जब गुरू की दीहुई युक्तिस्थित होती है और आसन और आहार के संयमसे प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है। जब सम्यक् ज्ञानसे जगत् को अवास्तव जानता है तब वासना नहीं प्रवर्त्तती। जो जगत् के आदि और अन्त में स्थित है उसमें मन जब स्थित होता है तब वासना नहीं उपजती । हे रामजी ! जब व्यवहार में निःसङ्ग और संसारकी भावना से विवर्जित होताहै और शरीर में नाशवन्त बुद्धि होती है तबभी वासना नहीं प्रवर्त्तती और जब विचार करके वासना क्षयहो तब चित्तभी नष्ट होजावेगा जैसे वायुके ठहरनेसे धूल नहीं उड़ती तैसेही वासनाके क्षयहुये चित्त नहीं उपजता। जो प्राणस्पन्द है वही चित्त स्पन्द है; जब वासना फुरती है तब जगत् भ्रम उपजता है। जैसे अरुणसे धूल उपजती है तैसेही चित्तसे वासना उपजती है जब प्राणस्पन्द ठहरता है तब चित्तभी ठहरजाता है; इससे यत्न करके प्राण स्पन्द अथवा वासना के जीतने का अभ्यासकरो तब शांतिमान् होगे और जो यह उपाय न करोगे और दूसरी यत्नसे चित्तवश करने का उपाय करोगे तो बहुत काल से पावोगे। हे रामजी ! इस युक्तिके विना मनके जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जैसे मतवाले हाथीको अंकुशविना वश करने का उपाय और कोई नहीं तैसेही मनभी युक्ति विना वशनहीं होता। वह युक्ति यह है कि, सन्तोंकी सङ्गति और सत् शास्त्रोंका विचार करना। इसउपायसे तत्त्वज्ञान,वासना क्षय और प्राणोंका स्पन्द रोकना होता है चित्त वश करनेकी यह परमयुक्ति है—इससे चित्त शीघ्रही जीता जाता है। जोइन उपायों का त्यागकर हठसे मन वशकिया चाहते हैं वे क्या करतेहैं ? जैसे तमके नाश करने को दीपक जगावे तो नाश होजाता है और शस्त्रोंसे तमको काटे तो तमनाश न होवेगा तैसेही और उपायोंसे चित्तवश न होगा। इसविना जो और उपाय करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे मतवाला हाथी कमलकी तांतसे बांधा नहीं जाता और जो कोई इससे बांधने लगे तो महामूर्खहै; तैसेही मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते हैं सो महामूढ़ हैं। और उपाय करके क्लेश प्राप्तहोगा आत्मसुख प्राप्त न होगा। जैसे दुर्भागी जीवोंको कहीं सुख नहींहोताहै। हेरामजी ! जिसनेतीर्थ,दान, तप और देवताओंकी पूजा—यह चारों साधनकिये हैं और मन जीतनेका उपाय नहीं किया वह मृगकी नाईंभ्रमता फिरताहै और पहाड़ोंकी कन्दरामें फल और पत्र खाता फिरताहै क्योंकिउसने मनका नाशनहीं किया इससे आत्मपदको नहीं पाया वह और पशुओंके समान है; जैसे और पशु होते हैं तैसेही वहभीहै। हेरामजी ! जिसपुरुषने मनको वशकिया उसको शांति नहीं होती। जैसे कोमलअंग मृगग्रासमें जानेसे शांति नहींपाता और जैसे जलमें पड़ा तृणनदी के वेगसे भटककर कष्टवान्होताहै तैसेहीवह

पुरुषकर्म करताहै और मनको स्थितकिये बिना कष्टपाताहै कभी। दुःखसे जलता है और कभी कर्मोंके वशसे स्वर्गको प्राप्तहोताहै पर वहभी नाश होजाते हैं। जैसे जल में तरङ्ग उछलते हैं; कभी अधको जाते और कभीऊर्ध्वको जाते तैसेही कर्मोंके वशसे जीव स्वर्ग नरक में भ्रमते हैं। इससे ऐसी दृष्टिका त्याग करके शुद्ध संवित्मात्रका आश्रयकरो और वीतराग होकर स्थित हो। हे रामजी! जगत्में ज्ञानवान्ही सुखी है और जीताभी वही है; और सबदुःखी और मृतक समानहैं। और बलीभी ज्ञानवान्ही है जो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसार समुद्रके पारहोता है और सब निर्बल हैं। इससे तुमभी ज्ञानवान्हो संवेदन रहित जो संवित् मात्रतत्त्वहै उसमें स्थितहो वह एक है और सबके आदि, सबसे उत्तम, कलना से रहित और सबमें स्थित है तो कर्त्ता हुये भी अकर्त्ता होगे और परब्रह्म उदय होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंशयनिराकरणोपदेशोनाम
अष्टाशीतितमस्सर्गः ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! जिस पुरुषने आत्मविचारकर अपना चित्त अल्पभी निग्रहकियाहै वह सम्पूर्णफलको प्राप्तहोगा और उसीकाजन्म सुफलहोगा। हे राम जी! जिसचित्त में विचाररूपी कणका उदयहुआ है वह अभ्याससे बड़े विस्तारको पावेगा। हृदयमें जो नीराग पूर्वक विचार उपजताहै तो वह बढ़ता जाताहै और अविद्यारूपी गुणोंके फलको काटडालेगा और सबशुभगुण,आन उस में आलय करेंगे— जैसे जलसे पूर्ण हुये तालका सब पक्षीआन आश्रय करते हैं। हे रामजी! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्तहोताहै और निर्मल बोधसे यथादर्शन होताहै उसको इंद्रियां चला नहीं सक्तीं। जबतक स्वरूपका प्रमादहोताहै तबतक आधि व्याधि दुःख होतेहैं और जब स्वरूपमें स्थितिहोतीहै तब शरीर और मनकेदुःखवशनहीं करसक्ते—जैसे बिजुलीको कोई ग्रहण नहीं करसक्ता, तैसे पुष्टिकर मेघोंको कोई पकड़नहीं सक्ता; जैसे आकाशके चन्द्रमाको मुष्टिमें कोई नहीं पकड़ सक्ता और मूढ़स्त्री चन्द्रमाको मोहनहीं सक्ती, तैसेही ज्ञानवान्को कोई दुःखवश नहीं करसक्ता। हे रामजी! जोहाथी मदसे मत्तहै और जिसके मस्तकसे मद झरताहै और भँवरे उसकेआगे शब्दकरतेहैं उसको मच्छरोंके प्रहार और स्त्रियोंके श्वास नहींछेदसक्ते;तैसेही ज्ञानवान्को विषयोंके राग द्वेष नहीं चलासक्ते। जिसहाथीके मस्तकसे मोती निकलते हैं ऐसे बलवान् हस्तीके नखोंसे विदारनेवाले सिंहको हरिणनहीं मारसक्ता; तैसेही ज्ञानवान् को दुःख नहीं चलासक्ता। जिस के फुत्कारसे वन के वृक्ष जलजाते हैं ऐसे सर्पको दर्दुर नहीं ग्रास सक्ते; तैसेही ज्ञानवान्को रागद्वेष नहीं चलासक्ते। जैसे राजसिंहासनपर बैठे राजों को तस्कर दुःख देनहीं सक्ते तैसेही जो ज्ञानी स्वरूप में स्थित है उसको इन्द्रियोंके

विषयदुःख नहीं देसक्के । जो बिचारसे रहित देहाभिमानी हैं और आत्मतत्वको नहीं प्राप्तहुये उनको विषय उड़ा लेजाते हैं—जैसे सूखे पत्रको पवन उड़ाले जाता है—और ज्ञानवान्‌को नहीं चलासक्के । जैसे पर्व्वत मंद पवनसे चलायमान नहीं होता;तैसेही ज्ञानवान् सुख दुःखमें चलायमान नहींहोता और जो विचार से रहित है वह देश के परिणाम भाव में स्थित मानता है और जगत् भाव है । संसार भाव पदार्थों में रत मनुष्य जन्म में गुरु और शास्त्र का मार्ग उसकी ओर से सो रहाहै और मूढ़ हो खानेपीने में सावधान है जो विचार से शून्यहै, वह मृतक समान है और मृतक कहाता है । उसको यह विचार कर्त्तव्य है कि, ' मैंकौनहूं' 'यह जगत् क्या है' 'कैसे उत्पन्न हुआ है' और 'कैसे निवृत्त होगा, । इसप्रकार विचारकर संतों के संग और अध्यात्म शास्त्र के विचार से जो पुरुष दृश्यभावको त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होता है वह परमपद्पाता है । जैसे दीपक के प्रकाश से पदार्थ पायाजाता है तैसेही विचार से आत्मतत्त्व पाया जाता है । हे रामजी ! जिसको शास्त्र बिचार से आत्मतत्त्व का वोध होता है वह ज्ञानी कहाता है और वह ज्ञान ज्ञेय के साथ अभिन्न रूप है । अध्यात्मविद्या के विचार करके आत्मज्ञान प्राप्तहोता है । जैसे दूध से मथकर मक्खन निकाला जाता है तैसेही बिचार से आत्मज्ञान प्राप्त होता है । ज्ञेय जो भीतर होताहै सोई परब्रह्म स्वरूप है और सत्य है पर असत्य की नाईं होकर स्थित है । ज्ञानवान् उसको पाकर तृप्त होता है और जीवन्मुक्त होकर अपने आप में प्रकाशता है । जैसे चक्रवर्ती राज्य से आनन्द और तृप्ति होती है तैसेही ज्ञानवान् ब्रह्मानन्द में इन्द्रियोंकी इच्छा से रहित शोभता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धपांचों इन्द्रियोंके बिषयों में आसक्त नहीं होता । सुन्दर राग, तन्त्री के शब्द, स्त्रियों के गाने और कोकिलापक्षी और गन्धर्व गन्धर्वी आदि में जो गायन हैं उन किसी में वह आसक्त नहींहोता । अगर, चन्दन, मन्दार, कल्पवृक्ष के सुन्दर फूलों की सुगन्धि; अप्सरा और नागकन्याओं की नाईं सुन्दर स्त्रियों का स्पर्श करने और हीरे, मणि और भूषण और नानाप्रकार के वस्त्रों में वह वन्धवान् नहीं होता । जैसे चन्द्रमा सुन्दर और शीतल है परन्तु सूर्य्यमुखी कमलों को विकाश नहीं करसक्ता तैसेही सुन्दर स्पर्शज्ञानी के चित्तको हर्षवान् नहीं करते । जैसे मरुस्थलमें हंस प्रसन्न नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् स्पर्श में प्रसन्न नहीं होते और रसादिक में भी वन्धवान् नहीं होते । दूध, दही, घृतादिकरस; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य; यह चारा प्रकार के भोजन और कटु, तीक्ष्ण, मीठा, खारा आदि जितने रस हैं इनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते और किसी में वन्धवान् नहीं होते । वे आकाशबोधसे नित्य तृप्त हैं और किसी भोगकी इच्छा नहीं करते जैसे

ब्राह्मण मुर्गी के मांस के खाने की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् उर्व्वशी, रम्भा, मेनका आदि अप्सराओं की इच्छा नहीं करता और चन्दन, अगर, कस्तूरी, मन्दार आदि वृक्षोंके फूलों की सुगन्धिकी इच्छा नहीं करते। जैसे मछली मरुस्थल की इच्छा नहीं करती तैसेही ज्ञानवान् सुगन्धिकी इच्छा नहीं करता और रूप की इच्छाभी नहीं करते। सुन्दर स्त्रियां, बाग, तालाब, नदियां इत्यादिक जो रूपवान् पदार्थ हैं तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करता। जैसे चन्द्रमाबादलोंकी इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् रूप की इच्छा नहीं करते। औरकी क्या बात है, इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र,ब्रह्मा, समुद्र, कैलास, मन्दराचल, रत्न,मणि और कञ्चन ये जो बड़े बड़े पदार्थ हैं उनकी भी वे इच्छा नहीं करते। जैसे राजा नीच पदार्थों की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् पदार्थों की इच्छा नहीं करता। समुद्र और सिंह के गर्ज्जने और बिजुली के कड़कने का जो भयानक शब्द है उसको भी सुनकर वह भयवान् नहीं होता—जैसे शूरमा धनुष का शब्द सुनकर भयवान् नहीं होता। ज्ञानवान् मतवालेहाथी; बैताल, पिशाच और इन्द्रके वज्रकेशब्द सुनता और देखता हुआ भी कम्पायमान नहीं होता और सत्स्वरूप की स्थितिसे कभी चलायमान नहीं होता। शरीर को जो आरेसे काटिये; खड्ग से कणकण करिये और बाणों से बेधिये तौभी कम्पायमान नहीं होता। उसको राग द्वेषभी किसी में नहीं होता, यदि शरीरपर एक ओर जलता अङ्गारा रखिये और एक ओर फूलों की माला रखिये तौभी वह हर्ष-शोकवान् नहीं होता। एकओर खड्ग धारावत् तीक्ष्ण स्थान हो और एकओरपुष्प-शय्या हो तो उसको दोनों तुल्यहैं। एकओर शीतल स्थान होऔर एकओर गरम शिला हो तो दोनों उसको तुल्य हैं। एक ओर मारनेवाला विषहो और दूसरी ओर जियानेवाला अमृत हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! चाहे सम्पदाप्राप्त हो चाहे आपदा हो; चाहे मृत्युहो, चाहे उत्साह हो इनमें व्यवहार करता भी वह दृष्टि आताहै परन्तु हृदयसे हर्ष और शोक नहीं। उसका मन हृदय संयुक्त है और सदा सम रहताहै। हे रामजी! लोहे के कुल्हाड़े से उसका मांस तोड़िये;नरक में डालिये और ऊपर शस्त्रों की वर्षा हो तौ भी ज्ञानवान् भय न पावेगा और न उद्वेगवान् और न व्याकुल होगा;न दीनहोगा। ज्ञानवान् इनमें सदा शममन रहकर पहाड़ की नाईं धैर्य्यवान् स्थित रहताहै। हेरामजी! ज्ञानवान् रागद्वेषसे रहितहै और देह अभिमान से मुक्तहुआहै। उसका शरीर अग्निमें पड़े,वा खाईमें गिरे अथवा स्वर्गमें हो उसको दोनोंतुल्यहैं और वह हर्ष शोकसे रहितहै। हेरामजी! जिसके स्वरूपमें दृढ़ स्थिति हुई है वह चलायमान नहीं होता—जैसे मेरु स्थित है—उसको पवित्र पदार्थ हो अथवा अपवित्र पदार्थ हो पन्थहो वा कुपन्थ हो; विषहो अथवा अमृत हो; मीठा,

खट्टा, सलोना, कड़ुवा, दूध, दही, घृत,रस, रक्त,मांस, मद्य,अस्थि, तृण आदिकजो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोप्य भोजन हैं वह सम हैं । न इष्ट में वह रागवान् होता है और न अनिष्टमें द्वेषवान् है । यदि एक पुरुष प्राणों के निकालने को सन्मुख आवे और दूसरा प्राणों की रक्षानिमित्त आवे तो दोनों को वह आत्मस्वरूप, शांतमन और मधुररूप देखता है और रागद्वेष से रहित है । रमणीय अरमणीय पदार्थों को वह सम देखता है और उसने संसार की आस्था त्यागदी है । वोध स्वरूप में वह निश्चित है, चित्त नीराग पदको प्राप्तहुआ है और सब जगत् उसको आत्म-स्वरूप भासता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पंच विषयों के भोग अपना अवसर नहीं पाते । जैसे दर्पण देखने से प्रतिविम्ब भासता है, दर्पण की सुरत नहीं रहती तैसेही वह विषयों में आत्मा देखता है, विषयोंकी सुरत नहीं रहती अज्ञानी को इन्द्रियां ग्रास लेती हैं—जैसे तृणोंको मृगग्रास लेता है । जिसने आत्म पदमें विश्रान्तिपाई है उसको इन्द्रियां ग्रासनहीं सक्तीं । हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्र में जो पड़ा है और वासनारूपी लहरों से मिलकर उछलता और गिरता है; उसको आशारूपी तेंदुआ ग्रास करलेता है और वह हाय हाय करता है; शान्ति नहीं पाता । जो विचार करके आत्मपदको प्राप्त हुआ है वह विश्रान्ति को पा चलाय-मान नहीं होता । जैसे सुमेरु पर्व्वत जलके समूह से चलायमान नहीं होता तैसेही वह सङ्कल्प विकल्प में चलायमान नहीं होता । जिसकी आत्मपद में विश्रान्ति हुई है वह उत्कृष्टताको प्राप्त हुआ है । हे रामजी ! उस को यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है और वह उसे सम्वित्मात्र जानकर विचार करता है; न किसी का ग्रहण है और न त्याग करता है । इससे भ्रान्ति को त्यागकर सम्वित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है और किसका ग्रहण करता है ? जो आदिमेंभी न हो; अन्तमेंभी न रहे और मध्यमें भी कुछ न भासे उसे भ्रममात्र जानिये । इसप्रकार जानकर, भाव अभाव की बुद्धिको त्यागकर और निस्संवेदनरूप होकर संसार समुद्र से तरजावो और मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म्मकरो चाहे न करो; निस्सङ्ग होगे तब तुमको लेप न लगेगा । हे रामजी ! जिसका मन अभिमान से रहित हुआ है वह कर्म्म करता भी लेपायमान नहीं होता । जैसे मन और ठौर गया होता है तो विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थों को प्रस्तुत होतेभी नहीं जानता, तैसेही जिसका मनआत्मपदमें स्थितहुआ है उसको सुख दुःख कर्म्म नहीं लगता । जो पुरुष अभिमानसे रहितहै वह कर्म्मों में सुख दुःख भोगता दृष्टि आताहै परन्तु वह उसको स्पर्श नहीं करता । देखो तो यह वालकभी जानते हैं कि, मन और ठौर जाताहै तो सुनताभी नहीं सुनता; तैसेही वहपुरुषकरताभी नहींकरता । हे रामजी !

जिसका मन असङ्ग हुआ है वह देखताहै परन्तु नहीं देखता; सुनताहै परन्तु नहीं सुनता; स्पर्श करता है परन्तु नहींकरता; सूंघता और रसलेता है परन्तु नहीं लेता इत्यादिक जो कुछ चेष्टाहैं सो कर्त्ताभी वहअकर्त्ता है और उसका चित्त आत्मपद में लीनहुआहै। जैसे कोई पुरुष देशान्तरको जाताहै तो वह उसदेशमें व्यवहार कर्म्म करताहै परन्तु उसका चित्त गृहमें रहताहै तैसेही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपद में रहताहै। यहबात मूर्खभी जानताहै। जैसावेग मनमें तीव्र होताहै उसकी सिद्धिहोती है और वही भासता है; और नहीं भासता। हे रामजी! सर्व अनर्थोंका कारणसङ्ग है; संसार के सङ्गसेही जन्म-मरण के बन्धन को प्राप्तहोता है; इससे सब अनर्थों का संसार का कारण सङ्गहै। सब इच्छा का कारण सङ्ग है और सब आपदा का कारण सङ्गहै; सङ्गके त्यागसे मोक्षरूप और अजन्मा होताहै। इससे सङ्गको त्याग कर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। रामजीने पूंछा,हे भगवन्! आपसर्व संशयरूपी कुहिरे के नाशकर्त्ता शरत्कालका पवन हैं। सङ्गकिसको कहते हैं यह संक्षेपसे मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भाव-अभाव जो पदार्थ हैं वह हर्ष और शोक के देनेवाले हैं। जिस मलिन वासनासे यह प्राप्त होते हैं वही वासना सङ्ग कहाता है। हे रामजी! देहमें जो अहं बुद्धि होतीहै और संसारकी जो सत्य प्रतीतिहै तो उस संसार के इष्ट अनिष्ट को रागद्वेष सहित ग्रहण करताहै; ऐसी मलिन वासना सङ्ग कहाती है और जीवन्मुक्त की वासना हर्ष शोकसे रहित शुद्ध होती है-सो निस्सङ्ग कहाती है। उसकी वासना जन्म मरण नहीं होती। हे रामजी! जिस पुरुषकी देहमें अभिमान नहीं होता और जिसकी स्वरूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि, उसकी शुद्ध वासना है और वह जो कर्त्ताहै सो बन्धनका कारण नहीं होता। जैसे भुनाबीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानवान् की वासना जन्म मरण का कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति जगत् के पदार्थोंमें स्थितहै और रागद्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलिन वासना जन्मोंका कारण है। इस वासनाको त्यागकर जब तुम स्थितहोगे तब तुम कर्त्ताहुये भी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोकादि बिकारों से जब तुम रहित होगे तब वीतराग और भय और क्रोधसे असङ्ग होगे। हे रामजी! जिसका मन असङ्ग हुआ है वह जीवन्मुक्त हुआ है। इससे तुमभी वीतराग होकर आत्मतत्त्वमें स्थित हो। जीवन्मुक्त पुरुष इन्द्रियों के ग्रासको निग्रह करके स्थित होता है और मान, मद, वैरको त्यागकर सन्तापसे रहित स्थित होता है। वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परन्तु व्यवहार बुद्धि से रहित असङ्ग होकर कर्म करता है। वह करता की अकरता है उसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दरा-

चल पर्व्वतको पाकर शुक्लताको नहीं त्यागा तैसेही जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते । हे रामजी ! आपदा प्राप्त हो अथवा चक्रवर्ती राज्य मिले; सर्पका शरीर प्राप्त हो अथवा इन्द्र का शरीर प्राप्त हो; इन सबमें वह सम और आत्मभाव स्थित होता है और हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता । वह सब आरम्भोंको त्यागकर नानात्व भाव से रहित स्थित होता है । विचारकरके जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसेही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टिको पाकर आत्मतत्त्वको देखो तब बिगत ज्वर होगे और आत्मपदको पाकर फिर जन्म मरण के बन्धन में न आवोगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआर्षेदेवदूतोक्तमहारामायणेमोक्षोपायज्ञामनवतितमस्सर्गः ६० ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणंपंचमंसमाप्तम् ॥

इति ॥